Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
विषय संख्या ८४
पुस्तक संख्या आ ८ सा
भा० ९४
आगत पंजिका संख्या ५०००२

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

113014

GULZAR BOOK BINDING HOUSE
PHARI BAZAR ROORKEE

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Y0002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

40002

साहित्य-सन्देश की

१९५२-१९५३ की फाइल की

विषय-सूची

1973

40002

१—आलोचना के प्राचीन लोक में—श्री राजकुमार मिश्र एम० ए०, साहित्याचार्य, ... १०
२—अँग्रेजी के आलोचना का साहित्य—प्रो० नागरमल सहगल एम० ए० .... १३
३—अपभ्रंश का कार्य तथा आरम्भ—श्री सुकेशनी गौड़ एम० ए० .... ६०
४—आलोचना का आदर्श—प्रो० आनन्दनारायण शर्मा एम० ए० .... १११
५—आज की कहानी की गति विधि : पाश्चात्य आदर्श—प्रो० नागरमल सहल एम० ए० ३३६
६—आचार्य भामह : अलङ्कारवाद और रसवाद—श्री लाल रमायदुपालसिंह एम० ए० एल० एल० बी० ४०२
७—उन्मीलन—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० .... २४४
८—उर्दू की कहानियाँ—पं० हरिशङ्कर शर्मा ३२२
९—उद्भव शतक में भक्ति और रीतिकाल की छाप—श्री महेन्द्रसागर प्रचण्डिया बी० ए० साहित्यालङ्कार ५०२
१०—कवित्व का अधिवास : वाच्यार्थ में या व्यंग्यार्थ में—डा० नगेन्द्र एम० ए० डी० लिट ५
११—काव्य का मूल—प्रो० रमाशङ्कर तिवारी एम० ए० .... ५३
१२—कवि और काव्य प्रेरणा—प्रो नागरमल सहगल एम० ए० .... ९३
१३—कुणाल के पात्र—श्री त्रिलोचन पाण्डेय २४०
१४—कहानियों की परिभाषा—प्रो० कमला गर्ग एम० ए० .... २७४
१५—कहानी के तत्व—श्री मथुराप्रसाद वर्मा एम० ए० .... २७७
१६—कहानी का स्वरूप—प्रिं० सद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए० .... २८१
१७—कहानी एक अनुशीलन—डा. सुधीन्द्र एम०. ऐ. पी-एच. डी. २८५
१८—कहानी का मनोवैज्ञानिक सत्य—बा. गुलाबराय एम. ए २९०
१९—कन्नड़ का कहानी साहित्य—श्री एम. जी. कुलवर्णी ३२८
२०—कहानी का शिल्प-विधान—डा० सत्येन्द्र एम. ए. पी-एच. डी. ३३१
२१—कहानी की प्रणालियाँ और शैलियाँ—बा. गुलाबराय एम. ए. ३४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२—कहानी और उपन्यास : एक समीक्षा—आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ३४५
२३—काव्य-दोषों पर हिन्दी का एक महत्वपूर्ण रीतिग्रन्थ—डा. भोलाशंकर व्यास एम. ए., पी एच. डी. शास्त्री ४०६
२४—कहानी तथा गद्य की कुछ विधाएं—प्रो. शिवबालक शुक्ल एम. ए., बी. ए. (आनर्स) ४१४
२५—कहानीकार यशपाल—श्री गोवर्द्धन शर्मा ४२३
२६—काव्य की आत्मा और उसके विवेचक आचार्य—प्रो. अम्बाप्रसाद 'सुमन' एम. ए. ४४१
२७—खड़ी बोली में गीत—श्री त्रिलोचन पाण्डे ६६
२८—गो० तुलसीदास की भावुकता—प्रो. शिवबालक शुक्ल एम. ए. १४३
२९—गीत काव्य—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी एम. ए. १७७
३०—गांधीवाद के आवेग शील कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी—प्रो. राजनारायण मिश्र एम. ए., साः रः १९३
३१—गुजराती साहित्य के पाँच कर्णधार—श्री हरेश झवेरी ३३२
३२—चिरहँटा और छरहटा का रहस्य—श्री चन्द्रवली पाण्डेय १९५
३३— ,, ,, ,, ,, मिथिलेश एम. ए. साहित्य रत्न ४२६
३४—चौरासी वैष्णवन की वार्ता में आचार्यजी के शिष्य—श्री ललितप्रसाद दुबे एम. ए. रिसर्च स्कालर ४५९
३५—चन्द्रगुप्त नाटक के काल दोष पर एक दृष्टि—पं० रघुवीर मिश्र, एम. ए., शास्त्री ४९७
३६—जातक कथाएँ और उनका महत्व—श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय २६७
३७—जोश मलीहाबादी के विचार—श्री गङ्गाप्रसाद कमठान ४६७
३८—तमिल में आलोचना साहित्य—श्री गो. जानकीराम निरुची ३६
३९—तुलसीदास और शेक्सपियर—प्रो. दामोदर झा एम. ए. ११८
४०—तुलनात्मक अध्ययन कहानी और उपन्यास, कहानी और एकाङ्की, कहानी और निबन्ध—
प्रो. वासुदेव एम. ए. ३०१
४१—तेलगु (आन्ध्र) कहानी साहित्य—श्री न. वी. राजगोपालम ३२४
४२—तमिल का कहानी साहित्य—श्री एम. सुब्रह्मण्यम् सा. र. ३२६
४३—दिनकर जी की नई कृति : रश्मिरथी— १९८
४४—दो 'झाँसी की रानी—प्रो. गोपीनाथ तिवारी ४१९
४५—नवीन समीक्षा प्रणाली के तत्व—श्री कृष्णवल्लभ जोशी १३३
४६—नियतिवाद और कामायनी—प्रो. कन्हैयालाल सहल एम. ए. १४८
४७—प्रगतिवाद और उसकी सार्थकता—श्री गोवर्द्धन शर्मा २१
४८—प्राचीन हिन्दी साहित्य में हास्यरस—श्री गङ्गाप्रसाद कमठान बी. ए. १८५
४९—प्रेमचन्द और उनके बाद की कहानियाँ— डा. हरदेव बाहरी, एम. ए., पी-एच. डी. ३०७
५०—प्रेमचन्द की अमर कृति 'गोदान'—श्री एस. टी. नरसिंहाचारी, एम. ए. ३८४
५१—प्रकृति चित्रण में एक नवीन दिग्दर्शन—प्रो. कन्हैयालाल सहल एम. ए. ४३०
५२—पन्तजी के आलोचक—श्री त्रिलोचन पाण्डे ४६३
५३—प्रभाकर माचवे के दो लघु उपन्यास, एक तारा और परन्तु—श्री कुमारी आनन्दी तमिल ४०६
५४—बङ्गला भाषा में कहानी—श्री हरप्रसाद बागची, एम. ए. ३३४
५५—ब्रज साहित्य के तीन तत्व—श्री शर्मनलाल एम. ए., ... ४४९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५६—भारतीय आलोचना पद्धति और उसकी गति विधि—श्री अम्बाप्रसाद सुमन, एम. ए. २१
५७—भक्ति शिरोमणि सूर की दार्शनिकता—श्री कु० लक्ष्मी स्वामी ५७
५८—भारतेन्दु का व्यक्तित्व—प्रो० चन्द्रप्रकाश वर्मा एम. ए. १८३
५९—भ्रमर गीत की परम्परा में 'उद्धवशतक का स्थान'—श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय २२६
६०—भारत के कथा साहित्य की परम्परा—श्री डा० भोलाशङ्कर व्यास एम. ए., पी-एच डी. शास्त्री २५९
६१—भविष्यत कहानी का रूप—श्री प्रो. शिवनाथ एम. ए. ३२०
६२—भारतीय लोक नायक तुलसी—श्री अरविन्द मालवीय एम. ए. ४४८
६३—मैथिलीशरण गुप्त और भारतीय संस्कृति—श्री अरविन्द मालवीय एम. ए. ७५
६४—मनोविश्लेषण और आलोचना—श्री बा० गुलाबराय एम. ए. १७
६५—मीरा की प्रेम साधना—श्री मथुराप्रसाद अग्रवाल 'पतिंग' एम. ए. (फाइ०) २२४
६६—महादेवी और मीरा—श्री प्रो. धर्मपाल एम. ए. विद्यालङ्कार साहित्य रत्न १८८
६७—मार्क्सीय सौन्दर्य शास्त्र के भारतीय व्याख्याता डा० रामविलास शर्मा—श्री रामेश्वर शर्मा २३६
६८—मराठी कहानी साहित्य का क्रमिक विकास—श्री बलवन्त लक्ष्मण कोतमिरे ३२९
६९—मेरी सर्व श्रेष्ठ कहानी, क्यों—प्रमुख कहानीकारों की अपनी कलम से ३५१
७०—मध्य कालीन संस्कृति और कबीर—श्री सत्यनारायण एम. ए. ३७०
७१—मुद्राराक्षस का नायक राक्षस—प्रो. श्री कैलाशचन्द्र सिंघल एम. ए. ३७६
७२—महाकवि प्रसाद और समन्वयवाद—कुमारी डी. शान्ता एम. ए. ४३३
७३—मराठी लघु कथा—श्री बसन्तम कोनोलकर एम. एस सी., वी. टी. ४५६
७४—मराठी साहित्य के प्रेमचन्द—श्री सुशीलकुमार झा 'शीतल' ५०९
७५—यथार्थ क्या है—डा. सत्येन्द्र एम. ए. पी-एच. डी. १७३
७६—रहस्यवाद की भारतीय परम्परा—श्री प्रो. कन्हैयालाल सहल एम. ए. २१५
७७—रसाभास—प्रो. श्री आनन्द प्रकाश दीक्षित ऐम. ए. (हि. सं.) ३६३
७८—रस का स्वरूप—श्री चर्ल जनार्दन स्वामी ४८२
७९—रा. च. मा. में एक हास्य-रसात्मक नाट्य खण्ड—श्री हृदयनारायणसिंह एम. ए. ४९४
८०—लोकवार्ता और साहित्य—श्री गोवर्धन शर्मा एम. ए. १५१
८१—लोक कहानियों का उद्देश्य—डा. सत्येन्द्र एम. ए. पी-एच. डी. २७१
८२—लघु कथा—श्री सत्य २९४
८३—वात्सल्य रस और कसौटी पर—श्री अज्ञेद प्रसाद राय एम. ए. १३७
८४—विद्यापति की साहित्यिक-शैलियाँ—श्री प्रो. कृष्णकान्त चौधरी एम. ए. २१८
८५—वैदिक कहानियाँ—डा. मुन्शीराम शर्मा एम. ए. पी-एच. डी. २६५
८६—विवर्त—श्री सत्य ४६९
८७—शुक्ल जी की मध्यम कोटि की रसानुभूति—श्री प्रो० वृन्दावन बिहारी अग्निहोत्री एम. ए. २२९
८८—संस्कृत समालोचना पद्धति—श्री चन्द्रकान्त बाली शास्त्री साहित्य रत्न ८
८९—सूरदास के दृष्टिकूट—श्री मोहनशरण मिश्र ९६
९०—साहित्य देवता—श्री रामवरणसिंह 'सारथी' ११५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९१—सेनापति का प्रकृति-चित्रण—श्री मिथिलेशजी एम० ए०, साहित्य रत्न १३९

९२—"ह्वैर विचार" और माडखोलकर—श्री अनिलकुमार १५७

९३—साहित्य में लोक हित की भावना—श्री अयोध्याप्रसाद ज्योतिषी, विशारद १७५

९४—सेनापति : शृङ्गारी या भक्ति कवि—प्रो० शिवबालक शुक्ल एम० ए० .... २२१

९५—साहित्य समीक्षा के भाव—श्री भालचन्द गोस्वामी साहित्यालङ्कार २३८

९६—संस्कृति आलोचना साहित्य में कहानी का स्वरूप— ,, ,, ... २५५

९७—सिद्ध सम्प्रदाय और नाथ-पन्थ के पारस्परिक, साम्य और वैषम्य—श्री शुकदेव साहू एम० ए० २६७

९८—समाजवादी यथार्थवादी—प्रो० दामोदर झा एम० ए० .... ३८८

९९—सन्त साहित्य का मूल—श्री त्रिलोचन पाण्डेय ४१०

१००—सूर सागर में राम कथा—श्री केदार जोशी ४८८

१०१—सन्त सुन्दरदास के नारी सम्बन्धी विचार—प्रो० योगध्यान आहूजा एम० ए०, पी-एच० डी० ५०४

१०२—हिन्दी साहित्य पर अँग्रेजी का प्रभाव—प्रो० मोहनलाल शर्मा एम० ए०, सा० रत्न ३१

१०३—हिन्दी में आलोचना के विभिन्न रूप—श्री श्रीलाल 'भानु' साहित्याचार्य ६१

१०४—हिन्दी गद्य साहित्य पर अँग्रेजी का प्रभाव—प्रो० मोहनलालजी एम० ए० .... ७०

१०५—हिन्दी का नाटक साहित्य—संक्षिप्त रूप रेखा—डा० सुधीन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी० १०५

१०६—हिन्दी कविता का दिशान्तर—श्री बुद्धसेन शर्मा एम० ए०, एल० टी० .... १७९

१०७—हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की आधारभूत प्रवृत्तियाँ—प्रो० कृष्णानन्दनप्रसाद 'अभिलाषी' एम० ए० २३२

१०८—हिन्दी कहानी कला का विकास—डा० लक्ष्मीनारायणलाल एम० ए०, डी० फिल० २९६

१०९— ,, ,, ,, ,, —कु० डो० शान्ता एम० ए० .... २९९

११०—हिन्दी के प्रमुख कहानीकार—श्री त्रिलोचन पाण्डेय एम० ए० .... ३११

१११—हिन्दी की सामाजिक कहानियाँ—डा० ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ एम० ए०, पी-एच० डी० ३१५

११२—हिन्दी कहानी की आलोचना—श्री त्रिलोचन पाण्डेय एम० ए० .... ३४८

११३—हिन्दी काव्य में नारी का रूप—श्री शोभालाल अमी ३७९

११४—हिन्दी का पहला शृङ्गारी कवि : उसका महत्व—श्री त्रिलोचन पाण्डेय ४९९

इसके अतिरिक्त विभिन्न सम्पादकीय विचार धारायें, विचार विमर्श पुस्तकों की आलोचनायें तथा पूरे वर्ष में प्रकाशित नवीन पुस्तकों की सूची—इसमें आपको मिलेगी।

सजिल्द मूल्य ५) पैस्टेज पृथक्

मिलने का पता—

साहित्य सन्देश कार्यालय ४, गाँधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113014
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

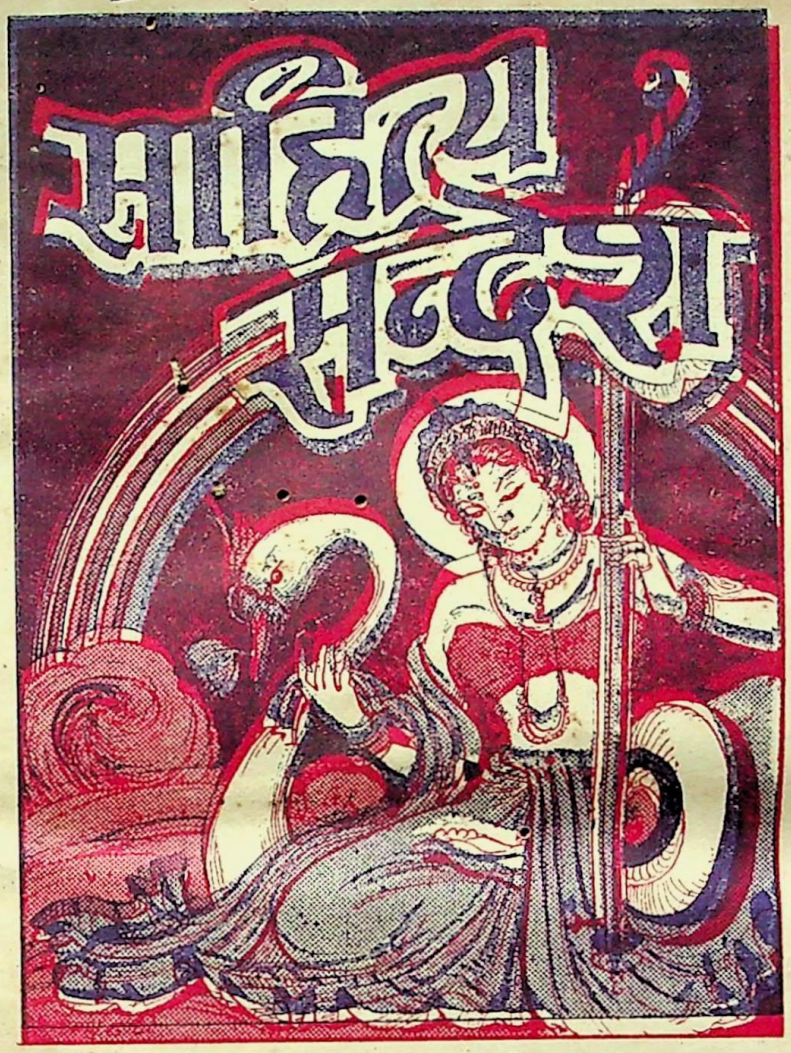

आलोचना

परिशिष्टांक

वर्ष १४] जुलाई—१९५२ [अङ्क १

20002
113014

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा।

वार्षिक मूल्य ४), इस अङ्क का ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचार-धारा—सम्पादक
२—कवित्व का अधिवास: वाच्यार्थ में या व्यंग्यार्थ में—डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट्
३—संस्कृत समालोचना पद्धति—श्री चन्द्रकान्त बाली शास्त्री, साहित्य-रत्न
४—आलोचना के प्राचीन लोक में—श्री रामकुमार मिश्र एम० ए०, साहित्याचार्य
५—अंग्रजी आलोचना का साहित्य—प्रो० नागरमल सहल एम० ए०
६—मनोविश्लेषण और आलोचना—बा० गुलाबराय एम० ए०
७—भारतीय आलोचना-पद्धति और उसकी गतिविधि—श्री अम्बाप्रसाद सुमन एम० ए०
८—प्रगतिवाद और उसकी सार्थकता—श्री गोवर्द्धन शर्मा
९—हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव—प्रो० मोहनलाल एम० ए०, साहित्य-रत्न
१०—तमिल में आलोचना साहित्य—श्री गो० जानकीराम निरुची
११—विचार विमर्श—
१२—साहित्य परिचय—

हिन्दी का नया प्रकाशन : जून, १९५२

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं।

आलोचना

उर्दू साहित्य का इतिहास भाग १-२—
डा० रामबाबू सक्सेना ५), २।)
दक्खिनी हिन्दी—,, ,, ,, ३)
आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना—
शीलकुमारी ७)
कथानिका: एक अध्ययन—प्रो० वासुदेव एम. ए. १)
हुंकार : एक समीक्षा— ,, ,, १)
राज्यश्री : एक समीक्षा—,, ,, १।=)
पथिक—एक समीक्षा— ,, ,, १)
माध्यमिक हिन्दी रचना— ,, १॥)
ज्योति-विहग—शान्तिप्रिय द्विवेदी ५)

कविता

हिमाञ्चला—रामेश्वरलाल खंडेलवाल 'तरुण' २॥)
दूब के आँसू—श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' २)

कहानी

पाप का पुण्य—रावी १॥॥)
सरल कहानियाँ—श्री भैरुलाल व्यास ॥)
दक्षिण की लोक-कथाएँ—श्री रामचन्द्र नगोडा ॥)

उपन्यास

निर्माण पथ—यज्ञदत्त ४)

निबन्ध

आवश्यकता और लेख—रघुवीरशरण गुप्त २)

बालोपयोगी

भारतीय कथाएँ—आनन्दकुमार १।)
सदाचार की कथाएँ—,, १।)
शिक्षापूर्ण कहानियाँ—विश्वनाथ एम० ए० ॥=)
गांधी दर्शन— ,, ,, ॥।)
महापुरुषों के संस्मरण— ,, ,, ॥।)
बापू से सीखो— ,, ,, ॥=)
साहस के पुतले— ,, ,, ॥।)
मेरी कहानी सुनो— ,, ,, ॥=)
सरल रामायण— ,, ,, १)
महाभारत—सत्यकाम विद्यालङ्कार ॥।)

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

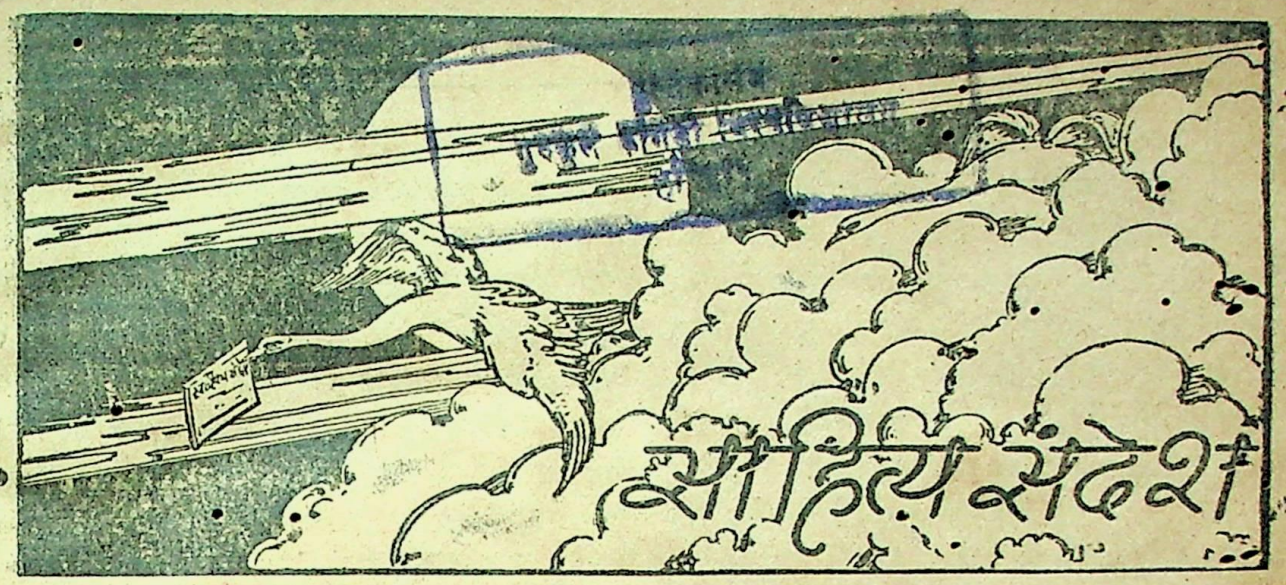

वर्ष १४] आगरा—जौलाई १९५२ [अङ्क १

हमारी विचार-धारा

बङ्गीय हिन्दी परिषद—

बंगीय हिन्दी परिषद कलकत्ता की एक हिन्दी साहित्यिकों की संस्था है। हमें जून के महीने में इस संस्था का निकट परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। हम इसके कर्मठ कार्यकर्त्ताओं से भी मिले। इस संस्था को देख कर इसकी कुछ विशेषताएँ सामने आयीं। पहली विशेषता हमें यह विदित हुई कि इस संस्था का विधान कुछ ऐसा है कि साहित्यिक व्यक्ति ही इसमें स्थान पा सकते हैं, फलतः इसका ऐसे व्यक्तियों से सम्बन्ध नहीं हो सका है जो धन की चिन्ता से इसे मुक्त कर सकें।

दूसरी विशेषता यह समझ में आयी कि इसकी प्रेरक शक्ति प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल हैं। ललिताप्रसाद सुकुल हिन्दी के विख्यात विद्वान् हैं। उनकी कल्पना ने ही संभवतः बंगीय हिन्दी परिषद को यह रूप दिया है कि बंगाल के इस व्यवसाय-प्रधान नगर में वे हिन्दी की साहित्यिक चर्चा का एक तीर्थ स्थापित किये हुए हैं।

अपनी छोटी आयु में ही इस परिषद ने कई प्रकाशन किये हैं, जिनका साहित्यिक महत्व है। ऐसी शुद्ध साहित्यिक संस्थायें हिन्दी में प्रायः नहीं हैं। इस दृष्टि से बंगीय हिन्दी परिषद एक प्रयोग है, जो सफलता की ओर अग्रसर हो रहा है। हिन्दी-प्रेमी जनता का यदि इसको पूरा सहयोग इस रूप में मिल सका कि इसकी प्रकाशित महत्वपूर्ण पुस्तकों को वह खरीद सके, तो इस प्रयोग के सफल होने की हमें पूर्ण आशा है—और तब हिन्दी जगत में ठोस साहित्यिक उद्योगों का वास्तविक अर्थ में युग आ सकेगा।

पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—

ब्रज-साहित्य मण्डल ने हिन्दी के वयोवृद्ध विद्वान् सेठ कन्हैयालाल पोद्दार को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय कई वर्ष पूर्व किया था। इससे हिन्दी के सभी प्रेमी परिचित हैं। इसकी आनुमानिक रूप-रेखा भी कभी हिन्दी पत्रों में प्रकाशित हुई थी। उस समय से इस ग्रन्थ का कार्य निरन्तर होता रहा है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के प्रधान सम्पादकत्व में इस ग्रन्थ के ठोस होने में कोई सन्देह ही नहीं हो सकता था। आरम्भिक घोषणा में ब्रज-साहित्य-मण्डल की ओर से यह कहा गया था कि यह अभिनन्दन-ग्रन्थ ब्रज का विश्व-कोष होगा, 'ऐनसाइक्लोपीडिया आव ब्रज'। यथार्थ यह है कि अभिनन्दन-ग्रन्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने की ऐसी सस्ती प्रणाली हिन्दी में इधर चल गयी है कि लोगों के ऐसे आयोजनों में अश्रद्धा होने लगी है। सभी की यह माँग रही है कि अभिनन्दन-ग्रन्थों में जब तक कोई विशेष दृष्टि न रखी जाय तब तक वह अपव्यय और अनर्थ है। हम आशा करते थे कि पोद्दार अभिनन्द-ग्रन्थ इस विशेष लक्ष्य को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया जायगा। अभी हमें इस ग्रन्थ के सम्बन्ध की जो सूचना मिली है उससे हमें प्रसन्नता है कि यह ग्रन्थ वस्तुतः हिन्दी के लिए एक महत्वपूर्ण देन होगा। इसका लगभग एक तिहाई भाग छप चुका है। छपाई भी बहुत उच्चकोटि की करायी जा रही है। सम्पादकों ने इसे सात भागों में बाँटा है। पहला भाग सेठजी के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित है, और बहुत छोटा है। दूसरा खण्ड साहित्य विषयक है, इसमें ब्रज और ब्रज की संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाले साहित्य के प्रायः प्रत्येक पहलू का परिचय और प्रामाणिक विवेचन है, कितने ही शोधपूर्ण उच्चकोटि के निबन्ध इसमें समाविष्ट हैं और साहित्य के प्रत्येक अङ्ग को लिया गया है। तृतीय-खण्ड ब्रज की कला विषयक है, चतुर्थ इतिहास पुरातत्व से सम्बन्ध रखता है। पाँचवा-खण्ड लोकवार्त्ता-लोकगीत तथा लोक कहानियों का विवेचन और संग्रह प्रस्तुत करता है। छटा खण्ड ब्रज की स्वर्ण कविताओं का संग्रह देगा और सातवें खण्ड में कवियों की नामावली तथा परिशिष्ट में अनुक्रमणिका होगी। इस प्रकार एक हजार से अधिक पृष्ठों के इस ग्रन्थ में ब्रज-विषयक ऐसी कोई बात नहीं दीखती जो छूट गयी हो। फलतः ब्रज का एक विश्व-कोष ही प्रस्तुत हो रहा है। ३५ हजार के लगभग इस पर व्यय होगा। ब्रज की कला, संस्कृति, साहित्य विषयक कितने ही चित्र इसमें रहेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि यह ग्रन्थ हिन्दी के एक विशेष अभाव की पूर्ति करेगा, और अभिनन्दन ग्रन्थ भेंटकर्त्ताओं के लिए एक आदर्श भी प्रस्तुत करेगा।

तुलसी जयन्ती—

साहित्य सन्देश का यह अङ्क उस महिने में आपके हाथ में होगा, जिसमें हिन्दी के महाकवि तुलसी की जयन्ती मनायी जायगी। हम भी इन पंक्तियों द्वारा इस महाकवि को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं। इस कवि की वाणी आज भी कोटिशः पुरुषों के लिए जीवन प्रद है।

किन्तु यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि नयी वैज्ञानिक शोधों से जहाँ इस महाकवि के जीवन-वृत्त की त्रुटियाँ सुलझ जानी चाहिए थीं, वहाँ वे उलटी उलझ गयी हैं। अभी तक श्रावण शुक्ल सप्तमी को तुलसी की जयन्ती मनायी जाती थी। अधिकांशतः आज भी इसी तिथि को यह जयन्ती मनायी जा रही है, किन्तु कुछ स्थानों पर 'सावन कृष्णा तीज' पर इस जयन्ती का आयोजन हुआ है।

उधर सोरों और राजापुर का विवाद भी उग्र है। इन समस्त विवादों को देखकर साधारण व्यक्ति को बड़ा क्षोभ होता है- उसके समक्ष एक ही प्रश्न उठता है कि क्या यह विवाद अनन्त है? क्या इनका उचित निराकरण नहीं हो सकता कि समस्त हिन्दी-जगत एक ही वास्तविक तथ्य को जान सके और उसीको अपना सके! ब्रज साहित्य मण्डल ने इस विषय में जो उपसमिति बनाई है वह यदि चेष्टा पूर्वक इस समस्या पर कोई सर्वग्राह्य अन्तिम निर्णय कराने में सफल हो सकी तो एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो सकेगा।

उधर तुलसी के अध्ययन में भी हमें नयी दृष्टि से काम लेने की आवश्यकता है। भारतीय ग्रामीणजन के लिए आज भी इस महाकवि की रचनाओं में पर्याप्त सामग्री है। उसे ग्रामीणजन की दृष्टि से विद्वानों को प्रस्तुत करने का उद्योग करना चाहिए।

हिन्दी रङ्ग-मञ्च—

हिन्दी में रङ्ग-मञ्च का न होना हिन्दी की ही नहीं भारतीय राष्ट्र की एक बहुत भारी कमी है। इसे सभी जानते हैं तथा इस संबंध में हिन्दी जगत की संस्थाओं ने कभी-कभी कुछ प्रस्ताव भी पास किए हैं। किन्तु इन सबका परिणाम यही निकला है कि हिन्दी रङ्ग-मञ्च अभी तक जन्म नहीं ले सका, यह स्थिति अधिक दिन तक नहीं चलनी चाहिए अन्यथा हिन्दी की बहुत क्षति होने की सम्भावना है। रङ्ग-मञ्च के साथ कवि की कल्पनाएँ वाणी ही नहीं ग्रहण करती वे रङ्ग-मञ्च के विविध उपकरणों के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध कलाओं के द्वारा मूर्त रूप ग्रहण करती हैं। राष्ट्र भाषा के योग्य तथा हिन्दी की अपनी भाव विभूति के अनुकूल यदि कोई रङ्ग-मञ्च खड़ा हो जाता है तो वह विविध कलाओं के सुन्दर विकास का एक केन्द्र बन जाएगा जिससे एक ओर कलाकार के स्वर्ण स्वप्न साकार होंगे तो दूसरी ओर दर्शकों के द्वारा जनता तक उसका कलामय प्रभाव प्रसरित होगा जिससे हिन्दी जनता में एक सांस्कृतिक सुरुचि और सौष्ठव से युक्त शील भी पनप उठेगा। ऐसे महत्व पूर्ण कार्य के लिए धन की तो आवश्यकता है ही किन्तु इससे भी अधिक मिशनरीस्पिट वाले हिन्दी के कलाकारों की आवश्यकता है। जिन व्यक्तियों ने अनेकों कष्ट और धनाभाव सहकर भी हिन्दी को उन्नत बनाने और उसे राष्ट्रभाषा का पद दिलाने में अपनी जान खपाई है उनका देश के लिए एक महान कार्य स्थायी देन रूप में हो गया वैसे ही उत्साही और सेवा भाव से काम करने वाले व्यक्ति आगे आकर राष्ट्र भाषा हिन्दी के इस कार्य में भी सफलता दिला सकते हैं। इधर जहाँ तहाँ विविध उत्सवों तथा जयन्तियों के अवसर पर जो रङ्ग-मञ्च के स्वरूप प्रस्तुत हुए हैं उनके विवरणों से यह विदित होता है कि हिन्दी के कलाकारों में वह क्षमता है कि वे आरम्भ से ही एक महान राष्ट्रीय रङ्ग-मञ्च प्रस्तुत कर सकते हैं। ब्रजसाहित्य मण्डल के हाथरस अधिवेशन पर जो प्रोफेसर गोपालदत्त तथा उनके साथी कलाकारों ने ब्रज भाव विभूति का प्रदर्शन किया और उससे भी पूर्व उन्हीं के कलाकारों द्वारा जो डी० एल० राय के नाटक का अभिनय हुआ और इसी प्रकार कलकत्ते में प्रसाद की जयन्ती के अवसर पर तरुण सङ्घ और अभिनव संस्कृति परिषद के संयुक्त तत्वावधान में ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रगुप्त तथा कामायनी के जो अभिनय और भावुक हुए उनसे नये रङ्ग मञ्च की भावी कल्पना का मनोहर और गौरव पूर्ण रूप खड़ा होता है। ये नौसिखिये या विनोदाभ्यासी उद्योग ही हैं। जहाँ-जहाँ ये प्रयोग हुए हैं वहाँ उन कलाकारों को ऐसा प्रोत्साहन मिलने की आवश्यकता है कि हिन्दी रङ्ग-मञ्च के लिए अपनी कला को विकसित करने में वे संलग्न हो जाँय। इन स्थानीय उद्योगों के साथ-साथ नयी धारा के शब्दों में हम भी आज हिन्दी के एक ज्योति के कलाकार पृथ्वीराज से यह कहना चाहते हैं कि स्ट्रैटफर्ड ऑन एवन के लिए जो फ्रैंक बैन्सन ने किया वह काशी के लिए पृथ्वीराजजी करें। हम यहाँ काशी के स्थान पर हिन्दी शब्द रख देना चाहते हैं। पृथ्वीराज समर्थ हैं और वे यदि एक बार हिन्दी के राष्ट्रीय रङ्गमञ्च के निर्माण का सङ्कल्प कर लेंगे तो उसे पूर्ण करके ही रहेंगे। हिन्दी इस समय रङ्गमञ्च निर्माण के लिए उन्हीं जैसे कलाकार की ओर टकटकी लगाए हुए है।

हिन्दी के साथ खिलवाड़—

हिन्दी के राष्ट्र भाषा हो जाने पर भारत के बहुत से व्यक्तियों को प्रसन्नता नहीं हुई उलटे उन्हें क्षोभ हुआ जिसका प्रदर्शन समय समय पर भाषणों तथा लेखों द्वारा वे करते रहे हैं। साहित्य सन्देश भी इस सम्बन्ध में समय-समय पर अपना मत प्रकट करता रहा है। केन्द्रीय सरकार तो यथार्थतः हिन्दी के साथ खिलवाड़ कर रही है। इस सम्बन्ध में जून के नया समाज से हम एक टिप्पणी उद्धृत कर रहे हैं।

"गत २३ मई को पार्लियामेंट में भारत सरकार के १९५१-५२ के कार्यों और १९५२-५३ का कार्यक्रम का जो विवरण पेश किया गया है उसमें हिन्दी की उन्नति और प्रचार के लिए १५ लाख ८ हजार रुपयों के खर्च की एक पञ्चवर्षीय योजना भी है। इस योजना का उद्देश्य है आगामी १५ वर्षों में हिन्दी को देश की राज भाषा बनाना। निःसन्देह यह बड़ा आवश्यक कार्य है। पर अब तक शिक्षा मन्त्री और उनके विभाग का हिन्दी के प्रति जो भ्रान्त रुख रहा है, जिस तरह उन्होंने हिन्दी विरोधी तत्वों को प्रश्रय प्रोत्साहन सहायता दी है, उसमें हमें इस योजना की सचाई और अमल में आने में काफी सन्देह है। सिर्फ एक विधान के मसविदे और फिर उसके संशोधित रूप के अनुवाद में जिस अदूरदर्शिता और दीर्घसूत्रता का परिचय दिया गया है जितने धन का अपव्यय हुआ है और जितना अनुपयोगी तथा असन्तोषजनक अनुवाद प्रकाशित हुआ है, वही इस नई योजना के बारे में हमारे सन्देह का आधार है। शिक्षा मन्त्री का हिन्दी विरोध आज कोई गुप्त बात नहीं है। चुन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुन कर उन्होंने ऐसे विद्वान अपने विभाग में भरे हैं, जो या तो हिन्दी का ककहरा तक नहीं जानते या फिर सीधे संस्कृत से नये क्लिष्ट शब्द रखने की क्षमता रखते हैं। सरकार इस रकम के उपयोग के लिए ऐसी समिति बनाये जिस पर जनता को विश्वास हो और जिसमें गैर सरकारी हिन्दी-हितैषी लोगों का बहुमत हो। इस लोक-तन्त्र राज्य में भी यदि गैर सरकारी लोगों का मान न हो और उनकी राय न ली जाय तो लोकतन्त्र शासन सार्थक नहीं होगा।

हिन्दी का विरोध और राष्ट्र विरोध—

केन्द्रीय सरकार के रेल मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने बजट की आलोचनाओं का उत्तर पार्लियामेंट में हिन्दी भाषा में दिया इसके लिए शास्त्रीजी को हम बधाई देते हैं—इसीलिए कि उन्होंने वही किया जो भारत के प्रत्येक मन्त्री को करना चाहिए, और इससे यह आशा की जा सकती है कि अन्य मन्त्री महोदय भी इस आदर्श का अनुकरण करेंगे। बिना ऐसा किए हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर शीघ्र ही प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। जहाँ एक ओर शास्त्रीजी ने ऐसे सुसाहस का परिचय दिया वहाँ दूसरी ओर कुछ ऐसे भी सदस्य थे जो हिन्दी भाषण के विरोध में अपने स्थान को त्याग कर संसद से उठ गए। हम तो इसे हिन्दी के प्रति ही नहीं राष्ट्र के प्रति विद्रोह मानते हैं। आज विधान के द्वारा अपना राष्ट्र और हिन्दी एक हो गए हैं। राष्ट्रभाषा ही राष्ट्र का प्रतीक होती है। राष्ट्रभाषा का इस प्रकार विरोध विधान का, राष्ट्रभाषा का, राष्ट्रीय एकता का, अन्ततः राष्ट्र का विरोध है। प्रत्येक भारतीय को दुराग्रह छोड़कर वस्तु स्थिति की यथार्थता को समझना चाहिए।

हिन्दी उपन्यासों में पिष्ट पेषण—

ऐसा विदित होता है कि हिन्दी उपन्यासकार के पास विषयों का अभाव हो गया है। जैसे उसे कोई नया कथानक ही नहीं सूझता यही कारण है कि नवीन प्रकाशित उपन्यासों में प्रायः एक सी ही कथा वस्तु मिलेगी। हिन्दी का लेखक एक लहर में बहता चलता है। आज उपन्यासों में स्थूल रूपेण नीचे लिखी बातें मिलती हैं।

१—सैदानों से ऊबकर उपन्यासकार पहाड़ों में घूमने लगा है।

२—उसके नायक और नायिका बहुत गरीब परिवार के होते हैं।

३—नायक-नायिका भागकर बम्बई जाते हैं और सिनेमा कम्पनियों की ओर लपकते हैं। यह बात दूसरी है कि उनमें से कोई बहुत सफल दिखाई पड़ता है तो किसी को लेखक असफल चित्रित कर देता है।

४—नायक अथवा नायिका का किसी न किसी प्रकार मोटर से सम्बन्ध अवश्य होता है।

५—पात्रों में किसी विधवा की अवतारणा अवश्य होती है। और उसके वैधव्य की उज्ज्वलता को नष्ट करने के लिए सौ उद्योग किए जाते हैं। उसके लिए बड़े-बड़े दार्शनिक और वैज्ञानिक तर्क उपस्थित किए जाते हैं। ऐसी ही कुछ और दो चार बातें छाँटी जा सकती हैं। हमारा प्रश्न तो केवल यह है कि उपन्यासकार आखिर इन्हीं गिने चुने सूत्रों को पकड़ कर क्यों चलता है।

हिन्दी में आज कहानियों की ही तरह उपन्यासों में भी देश की स्थिति के अनुरूप वीरता के भाव भरने, जोखम के काम करने और इतिहास के उज्जवल पृष्ठों को पुनः साकार रूप देने की आवश्यकता है। कला-विज्ञान और मानवता को ऊपर उठाने वाले सैकड़ों विषय ढूँढे जा सकते हैं जिन पर उपन्यास लिखकर लेखक अपनी लेखिनी को धन्य कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवित्व का अधिवास : वाच्यार्थ में या व्यंग्यार्थ में ?

डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट्०

आचार्य शुक्ल ने इस विषय में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा रोचक प्रश्न उठाया है : कवित्व वाच्यार्थ में रहता है या व्यंग्यार्थ में ? अपने इन्दौर-भाषण में उन्होंने लिखा है :

"वाच्यार्थ के अयोग्य और अनुपपन्न होने पर योग्य और उपपन्न अर्थ प्राप्त करने के लिए लक्षणा और व्यञ्जना का सहारा लिया जाता है। अब प्रश्न यह है कि काव्य की रमणीयता किसमें रहती है ? वाच्यार्थ में अथवा लक्ष्यार्थ में या व्यंग्यार्थ ? इसका बेधड़क उत्तर यही है : 'वाच्यार्थ में,' चाहे वह योग्य हो वा उपपन्न हो अथवा अयोग्य और अनुपपन्न। इसके आगे उन्होंने साकेत से दो उदाहरण दिये हैं :—

१—'जी कर, हाय ! पतङ्ग मरे क्या ?' इसमें भी यही बात है। जो कुछ वैचित्र्य या चमत्कार है वह इस अयोग्य और अनुपपन्न वाक्य या उसके वाच्यार्थ में ही है। इसके स्थान पर यदि इसका यह लक्ष्यार्थ कहा जाय कि जीकर पतङ्ग क्यों कष्ट भोगे ? तो कोई वैचित्र्य या चमत्कार नहीं रह जायगा।

अथवा

२—आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ ?
मैं अपने को आप मिटा कर जाकर उनको लाऊँ ॥

इसका वाच्यार्थ बहुत ही अत्युक्त, व्याहत तथा बुद्धि को सर्वथा अग्राह्य है। उर्मिला आप ही सिट जाएगी, तब अपने प्रियतम लक्ष्मण को वन से लायेगी क्या ? पर सारा रस, सारी रमणीयता इसी व्याहत बुद्धि को अग्राह्य वाच्यार्थ में ही है, इस योग्य और बुद्धि ग्राह्य व्यंग्यार्थ में नहीं कि उर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है। इससे स्पष्ट है कि वाच्यार्थ ही काव्य होता है, व्यंग्यार्थ व लक्ष्यार्थ नहीं।"

शुक्लजी के मुख से यह उक्ति सुनकर साधारणतः हिन्दी का विद्यार्थी आश्चर्य चकित हो सकता है। ऐसा लगता है मानो जीवन भर चमत्कार का उग्र विरोध करने के उपरान्त अन्त में आचार्य ने उससे समझौता कर लिया हो। स्वयं शुक्लजी के ही अपने लेखों से अनेक ऐसे वाक्य उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें इसके विपरीत मन्तव्य प्रकट किया गया है। पं० रामदहिन मिश्र ने उनका हवाला देते हुए, तथा अनेक शास्त्र सम्मत युक्तियों के द्वारा शुक्लजी के अभिमत का निषेध किया है और अन्त में इस शास्त्रोक्त मत की स्थापना की है कि काव्यत्व व्यंग्यार्थ में है वाच्यार्थ में नहीं।

परन्तु शुक्लजी द्वारा उठाया गया प्रश्न इतना सरल नहीं है। वास्तव में शुक्लजी की प्रतिभा का सबसे बड़ा गुण यही था कि उन्होंने परम शास्त्र निष्ठ होते हुए भी प्रमाण सदा अपनी बुद्धि और अनुभूति को ही माना था। वे किसी प्राच्य अथवा पाश्चात्य सिद्धान्त को स्वीकार करने से पूर्व उसे अपने विवेक और अनुभूति की कसौटी पर कस कर देख लेते थे। किसी रसात्मक वाक्य को पढ़कर हमें जो आनन्दानुभूति होती है, उसके लिए उस वाक्य का कौन सा तत्व उत्तरदायी है ? उस वाक्य का वाच्यार्थ, जिसमें शब्दार्थ गत चमत्कार रहता है ? अथवा व्यंग्यार्थ जिसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भाव की रमणीयता रहती है ? उदाहरण के लिए उपर्युक्त दोनों उद्धरणों को ही लीजिए। उनसे प्राप्त आनन्द के लिए उनका कौनसा तत्व उत्तरदायी है ? 'जीकर, हाय ! पतङ्ग करे क्या' इसमें 'मरे' शब्द का लाक्षणिक प्रयोग जी कर के साथ बैठ कर विरोधाभास का चमत्कार उत्पन्न करता है। अतएव जहाँ तक कि इस चमत्कार का सम्बन्ध है, उसका अधिवास वाच्यार्थ में ही है, लक्षणार्थ को उपपन्न कराकर इस चमत्कार की सिद्धि अवश्य कराती है, परन्तु उसका कारण वाच्यार्थ ही है, लक्ष्यार्थ दे देने से चमत्कार ही नहीं रह जाता। परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या इस उक्ति का सम्पूर्ण सौन्दर्य इस 'मरे' और 'जी कर' के उपपन्न या अनुपपन्न अर्थ पर ही आश्रित है। यदि ऐसा है, तो इस उक्ति में वास्तव में पर्याप्त रमणीयता नहीं है क्योंकि यह विरोधाभास अपने आप में कोई सूक्ष्म या गहरी आनन्दानुभूति उत्पन्न नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना। इसमें जो सूक्ष्म रमणीयता है [और यह यहाँ स्पष्ट कर देना चाहिए कि इसमें रमणीयता वास्तव में पर्याप्त मात्रा में नहीं है] वह प्रेम की उस उत्कटता (आतिशय्य) पर निर्भर है जो यहाँ लक्ष्यार्थ का प्रयोजन-रूप व्यंग्य है, और जो अन्त में जाकर वक्ता बोद्धा आदि के प्रकरण से उर्मिला की अपनी रति जन्य व्यग्रता की अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार इस उक्ति की वास्तविक रमणीयता का सम्बन्ध रतिजन्य व्यग्रता से ही है जो व्यंग्य है, और स्पष्ट शब्दों में जो उपर्युक्त लक्ष्यार्थ के प्रयोजन रूप व्यंग्य का भी व्यंग्य है।

दूसरे उद्धरण में यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाएगा क्योंकि उसमें रमणीयता वास्तव में अधिक है।

'आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ।
मैं अपने को आप मिटाकर जाकर उनको लाऊँ॥'

उर्मिला और लक्ष्मण के बीच अवधि का व्यवधान है। मिलन के लिए इस व्यवधान अर्थात् अवधि को मिटाना आवश्यक है। अवधि साधारणतः तो अपने समय पर ही मिटेगी—तुरन्त मिटना उसका सम्भव नहीं। उर्मिला उसके एक उपाय की कल्पना करती है, वह स्वयं यदि अवधि बन जाये तो उसका अन्त करना उसके अपने अधिकार की बात हो जाये। अपने को तो वह तुरन्त मिटा ही सकती है और जब अवधि उसका अपना रूप हो जाएगी, तो उसके अन्त के साथ अवधि का अन्त भी हो जाएगा। इस तरह व्यवधान मिट जाएगा और लक्ष्मण से मिलन हो जाएगा। परन्तु जब उर्मिला ही मिट जाएगी तो फिर मिलन सुख का भोक्ता कौन होगा? अतएव अपने को मिटाने का अर्थ यहाँ अपने जीवन का अन्त कर लेना न होकर लक्ष्मण की सहायता से बड़े से बड़ा कष्ट भोगना या बड़े से बड़ा बलिदान करना आदि ही हो सकता है। परन्तु यह लक्ष्यार्थ देते ही उक्ति में कोई चमत्कार नहीं रह जाता, चमत्कार तो अर्थ की बाह्य अनुपपन्नता परन्तु आन्तरिक उपपन्नता के विरोधाभास में है। किन्तु क्या उक्ति की रमणीयता इसी चमत्कार तक सीमित है? वास्तव में बात इतनी नहीं है जैसा कि शुक्लजी ने स्वयं लिखा है, इससे उर्मिला का 'अत्यन्त औत्सुक्य' व्यंजित होता है। इस 'अत्यन्त औत्सुक्य' की व्यञ्जना ही उक्ति की रमणीयता का कारण है—यही पाठक के मन का इस 'अत्यन्त औत्सुक्य' के साथ तादात्म्य कर उसमें एक मधुर अनुभूति जगाता है। यही उक्ति की रमणीयता है जो सहृदय को आनन्द देती है। शुक्लजी का यह तर्क बड़ा विचित्र लगता है कि सारी रमणीयता इसी व्याहत और बुद्धि को अग्राह्य वाच्यार्थ में है, इस योग्य और बुद्धिग्राह्य व्यंग्यार्थ में नहीं कि 'उर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है।' इसमें दो त्रुटियाँ हैं—एक तो 'उर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है' यह व्यंग्यार्थ नहीं रहा—वाच्यार्थ हो गया। औत्सुक्य की व्यञ्जना ही चित्त की चमत्कृति का कारण है, उसका कथन नहीं। दूसरे जिस अनुपपन्नता पर वे इतना बल दे रहे हैं वह रमणीयता का कारण नहीं है, उसका एक साधन मात्र है। उसका यहाँ वही योग है जो रस की प्रतीति में अलङ्कार का। उपर्युक्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है मानो विरोध करते-करते अनायास ही किसी दुर्बल क्षण में शुक्लजी पर कोचे का जादू चल गया हो। कोचे का यह मत अवश्य है कि उक्ति ही काव्य है, और इसके प्रतिपादन में उनकी युक्ति यह है कि व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ दोनों का पार्थक्य असम्भव है—एक प्रतिक्रिया की केवल एक ही अभिव्यक्ति सम्भव है। कोचे के अनुसार 'आप अवधि बन सकूँ' आदि उक्ति और 'उर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है' यह उक्ति सर्वथा पृथक् है। ये दो सर्वथा भिन्न प्रतिक्रियाओं की अभिव्यञ्जनाएँ हैं। अतएव 'आप अवधि बन सकूँ' आदि का सौन्दर्य (काव्यत्व) उसका अपना है जो केवल उसी के द्वारा अभिव्यक्त हो सकता है, 'उर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है' यह एक दूसरी ही बात है।

वास्तव में रमणीयता का अर्थ है हृदय को रमाने की योग्यता, और हृदय का सम्बन्ध भाव से है—वह भाव में ही रम सकता है क्योंकि उसके समस्त व्यापार भावों के द्वारा ही होते हैं। अतएव वही उक्ति वास्तव में रमणीय हो सकती है जो हृदय में कोई रम्य भाव उद्बुद्ध करे; और यह तभी हो सकता है जब वह स्वयं इसी प्रकार के भाव की वाहिका हो। यदि उसमें यह शक्ति नहीं है तो वह बुद्धि को चमत्कृत कर सकती है, चित्त को नहीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए रमणीय नहीं कही जा सकती। स्वयं शुक्लजी ने अत्यन्त सबल शब्दों में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और चमत्कार शब्द की भ्रान्ति को दूर करने के लिए ही रमणीयता शब्द के प्रयोग पर जोर दिया है।

निष्कर्ष यह है कि यदि शुक्लजी क्रोंचे का सिद्धान्त स्वीकार कर लेते हैं तब तो स्थिति ही बदल जाती है। तब तो अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना, वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ आदि का प्रपंच ही नहीं रहता। सार्थक उक्ति केवल एक ही हो सकती है। उसके अर्थ को उससे पृथक् करना सम्भव नहीं है। परन्तु यदि वे उसको स्वीकार नहीं करते हैं—और वे वास्तव में उसे स्वीकार नहीं करते तो वाच्यार्थ में रमणीयता का अधिवास नहीं माना जा सकता, व्यंग्यार्थ में ही माना जायगा—लक्ष्यार्थ में भी नहीं क्योंकि वह भी वाच्यार्थ की तरह माध्यम मात्र है। रमणीयता का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सम्बन्ध अनिवार्यतः रस के साथ है; और रस कथित नहीं हो सकता, व्यञ्जित ही हो सकता है। शुक्लजी के शब्दों से ऐसा मालूम होता है कि वे लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को अनुपपन्न अर्थ को उपपन्न करने का साधन मानते हैं। परन्तु वास्तव में स्थिति इसके विपरीत है। वाच्यार्थ स्वयं ही अपने चमत्कारों के साथ व्यंग्य (रस) का साधन या माध्यम है। मैं उपर्युक्त विवेचन को शुक्लजी का एक हल्का-सा दिशांतर-भ्रमण मानता हूँ, यह उनके अपने काव्य सिद्धान्त के ही विरुद्ध है।

ध्वनि के भेदः—ध्वनि के मुख्य दो भेद हैं। (१) लक्षणा मूला ध्वनि और (२) अभिधा मूला ध्वनि।

लक्षणा मूला ध्वनि—लक्षणा मूला ध्वनि स्पष्टतः लक्षणा के आश्रित होती है, इसे अविवक्षितवाच्य ध्वनि भी कहते हैं। इसमें वाच्यार्थ की विवक्षा नहीं रहती। अर्थात् वाच्यार्थ अभिधेय रहता है, उसके द्वारा अर्थ की प्रतीति नहीं होती। लक्षणा मूला ध्वनि के दो भेद हैं:—(अ) अर्थान्तर संक्रमित वाच्य और (आ) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य। अर्थान्तर संक्रमित वाच्य से अभिप्राय है : जहाँ वाच्यार्थ दूसरे अर्थ में संक्रमित हो जाए। अर्थात् जहाँ वाच्यार्थ बाधित होकर दूसरे अर्थ में परिणत हो जाए। ध्वनिकार ने इसके उदाहरण स्वरूप अपना एक श्लोक दिया है जिसका एक स्थूल हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:—

तब ही गुन सोभा लहैं, सहृदय जबहिं सराहिं,
कमल कमल हैं तबहिं जब, रविकर सों विकसाहिं।

यहाँ कमल का अर्थ हो जायगा मकरन्द श्री एवं विकचता आदि से मुक्त, अन्यथा वह निरर्थक ही नहीं वरन् पुनरुक्ति दोष का भागी भी होगा। इस प्रकार कमल का साधारण अर्थ उपर्युक्त व्यंग्यार्थ में संक्रमित हो जायगा।

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यः—अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य में वाच्यार्थ अत्यन्त तिरस्कृत रहता है। उसको लगभग छोड़ ही दिया जाता है। यह पदगत और वाक्यगत दोनों ही प्रकार की होती है। ध्वनिकार ने पदगत ध्वनि का उदाहरण दिया है:—

रवि संक्रान्त सौभाग्यस्तुषाराऽत मंडलः
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।

सांस सों आँधर दर्पन है जस बादल ओर लखात है चन्दा।

"साहित्य-सन्देश" के सहायक ग्राहक

सहायक ग्राहक वे महानुभाव कहलाते हैं जो एक बार १००) भेज कर साहित्य-सन्देश के सहायक बन जाते हैं। उन्हें वार्षिक मूल्य नहीं देना पड़ता। हाँ, वे ग्राहक न रहना चाहें तो अपना रुपया वापस मँगा सकते हैं। —व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत समालोचना पद्धति

श्री चन्द्रकान्त बाली, शास्त्री, साहित्यरत्न

कई लोग कहते हैं—'आधुनिक समालोचना-पद्धति संस्कृत साहित्य में नहीं हैं'। मैं उनसे निवेदन करता हूँ—'आधुनिक समालोचना-पद्धति संस्कृत साहित्य में नहीं है'।

(२)

आलोचना, समालोचना, विवेचना तथा मीमांसा; एकार्थक होते हुए भी भिन्न दिशा के सूचक हैं। किसी रचना की चतुर्मुखी देख-भाल, जाँच-पड़ताल को 'आलोचना' कह सकते हैं। इसमें गम्भीरता आते ही आलोचना 'समालोचना' बन जाती है। तर्क-सम्मत आलोचना को 'विवेचना' तथा शास्त्र-सम्मत आलोचना को 'मीमांसा' कहते हैं।

(३)

संस्कृत कवियों में ये श्लोक खूब चलते हैं—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ गौरवम्।
दण्डिनः पद लालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥
मुरारिपद चिन्ताचेत् तदा माऽद्ये मतिं कुरुः
मुरारिपद चिन्ताचेद् तदा माऽद्ये मतिं कुरुः॥
मुरारिपद चिन्तायां भव भूतेस्तु का कथा
भव-भूतिं परित्यज्य मुरारि मुररी कुरु।
तावद्भा भारवेः भाति यावन्माघस्य नोदयः
तावद्भा भारवेः भाति यावन्माघस्य नोदयः।

अल्पज्ञ लेखक इन्हें समालोचना मान बैठे हैं। क्या ये समालोचना-परक पद्य हैं? वास्तव में ये श्लोक एक कवि का अचूक मौलिक परिचय-मात्र कराते हैं। अचूक इतने हैं कि—'ज्यों नाविक के तीर'। मौलिक इतने हैं कि—'बिन्दु में सिन्धु समान'। इन्हें आलोचना कहना, आलोचना कला का अपमान नहीं, बल्कि अपने प्रतिभा-भण्डार की रिक्तता की अन्तिम सूचना मात्र है।

(४)

संस्कृत में आलोचनाएँ त्रिधा विभक्त हैं। यथा—

१—धार्मिक आलोचना
२—शास्त्रीय आलोचना
३—टीकाएँ

धार्मिक आलोचना का दृष्टिकोण कुछ दूसरा ही है। किसी पक्ष के प्रति श्रद्धा अधिक उत्पन्न करने के लिए तदीय पक्ष-विपक्ष की परिकल्पना करके खण्डन-मण्डनात्मक 'नेति-नेति' की प्रक्रिया अपनाई गई है। एतद्विषयक ग्रन्थ हैं—पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा। इनमें यज्ञों की आवश्यकता, स्वरूप का विश्लेषण है। मन्त्रभाग, ब्राह्मणभाग का महत्व प्रकाशन भी है। अपने विषय में ये ग्रन्थ आज भी अप्रतिभ है। पर इस विषय का विकास यज्ञ-युग में ही हुआ, आगे चल कर रुक गया।

शास्त्रीय आलोचना दर्शनग्रन्थ और साहित्यशास्त्र तथा व्याकरण शास्त्र तक सीमित है। दर्शनग्रन्थों में वादों का विश्लेषण हुआ है। परमाणुवाद, अवयवीवाद, शरीरात्मवाद, इन्द्रियात्मवाद अनेक वादों की ऊहापोहात्मक आलोचना उपस्थित है। आप इन्हें खण्डन-प्रक्रिया कह सकते हैं। परन्तु तर्कों का विधिवत् उपयोग तत्विक ज्ञान में योग देता है। साहित्यशास्त्र में रस-सम्प्रदाय, वक्रोक्ति-सम्प्रदाय, अलङ्कार-सम्प्रदाय, रीति-सम्प्रदाय तथा औचित्य-सम्प्रदाय की विशद आलोचना देखने योग्य है। रस-सम्प्रदाय में संकुक, लोल्लट, अभिनवगुप्ताचार्य के आरोपवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद और साधारणीकरण के शास्त्रार्थ लोकरञ्जन में आज भी समर्थ हैं। व्याकरण में महाभाष्य आलोचना पद्धति की सर्वश्रेष्ठ रचना है। 'हयवरट्' के स्थान पर 'हरयवट्' क्यों न लिखा जाए, इस विषय पर तलस्पर्शी विवेचना हो जाती है। निरुक्त एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का स्थान रखता हुआ भी आलोचना पद्धति से शून्य नहीं है।

वास्तव में आलोचना-मूलक 'टीका' अपना अलग स्थान रखती है। रचना तर्गत रस, ध्वनि, अलङ्कार, दोष, छन्द, प्रसङ्ग, अन्वय, आतर्कथाएँ, सब-कुछ सूक्ष्मतया टीका द्वारा ही व्यक्त होता है। 'सुश्रुत' की 'निबन्धाख्या' टीका, माधव-निदान की 'मधुकोश' टीका, गीता के शङ्करभाष्य, तिलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य आदि टीकाएँ अपनी स्थान-पूर्ति के बाद स्वतन्त्र स्थान भी रखती हैं। मल्लीनाथ की टीकाओं के अलग संस्करण प्रकाशित किये जायें तो आलोचना का वास्तविक रहस्य सामने आ जाएगा। 'टीका' अर्थ-द्योतिनी तो है ही, पर ग्रन्थ की अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग की प्रकाशिका भी है।

(५)

कुछ योरुपवासी लेखकों ने संस्कृतज्ञों पर आरोप लगाये हैं कि "आलोचना करना भारतीय संस्कृतज्ञ जानते भी नहीं हैं; उनकी दृष्टि में आलोचना करना एक पाप है, जिसका प्रायश्चित तक नहीं है" इत्यादि। उन्होंने संस्कृतज्ञों पर छींटा कसते हुए कहा है—"अभिज्ञान शाकुन्तल में अभिनेय सामर्थ्य नहीं है। कुमारसम्भव तथा नैषध चरित्र अश्लीलता से ओत प्रोत हैं" इत्यादि।

संस्कृतज्ञों पर आरोप लगाने वाले दयनीय हैं। उन्होंने दूर-दूर से संस्कृत को देखा है। यदि निकट से देखा होता तो ऐसा कहने का साहस कभी न करते। योरुपवासी व्यक्तिवाद से पूर्ण रचनाओं पर विश्वास करते हैं, जबकि भारतीय साधारणीकरण की भूमि पर सामूहिक रचनाओं पर आस्था रखते हैं। वे व्यक्ति की नहीं, सिद्धान्त की आलोचना करना श्रेयस्कर समझते हैं। व्यक्ति अनन्त हैं, उनकी रुचियाँ अनन्त हैं। अनन्तता-मूलक रचना को समाज-निष्ठ देश में क्या महत्व मिल सकता है? कालिदास की रचनाओं में पर्याप्त अनियमिततायें हैं। हम उन्हें जानते हैं, 'निरंकुशाः कवयो भवन्ति' कह कर हमीं उनके प्रति उपेक्षा दिखाते हैं; यह उपेक्षाभाव पाप-भीति से नहीं, अंधश्रद्धा के कारण भी नहीं है। अपितु सिद्धान्तों पर अटल विश्वास के कारण है। सिद्धान्त समालोचनाओं में नामी-धामी कवियों की रचनाएँ उद्धृत और उदाहरित की जाती हैं। हिन्दी में अभी ऐसी धारणा नहीं आई।

साहित्य-सन्देश की १९५१-५२ की फाइल

जुलाई १९५१ से जून १९५२ तक की पूरी फाइल जिसमें आलोचना विशेषाङ्क भी सम्मिलित है बनी हुई तैयार है। सजिल्द मूल्य ५) पोस्टेज ।।।=) आज ही मँगालें।

साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना के प्राचीन लोक में

श्री रामकुमार मिश्र एम० ए०, साहित्याचार्य

प्रयाग के त्रिवेणी संगम पर पन्तजी के सत्प्रयत्न से जो आधुनिक आलोचकों का सङ्गम हुआ था, उसी का विवरण पढ़ते समय मेरे एक पुराणपन्थी मित्र कहने लगे कि प्राचीनकाल में ऐसा नहीं था। आलोचकों को बलात् एक स्थान पर एकत्रित करा देना और फिर उनसे सिद्धान्त हीन लट-पटाँग बातें कराना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है ? मैं उनके इस विचार से सहमत न हो सका किन्तु उनके साथ तर्क वितर्क करने में अनेक रत्न हाथ लगे। प्राचीनकाल के अनेक आलोचकों के ग्रन्थों का सार उनकी जिह्वा पर स्थित था। मैं तो उनकी अद्भुत स्मरण शक्ति पर चकित रह गया। भरत के नाट्य-शास्त्र से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ के रस गंगाधर तक के उद्धरण देते हुये वे अपने मत की पुष्टि करने लगे। प्राचीन पद्धति के तर्क कर्कश पण्डितों से विचार विनिमय करने का जिन्हें संयोग पड़ा है वे मेरी परिस्थिति का अनुमान लगा सकते हैं। मेरे लिये आत्मरक्षा का कोई मार्ग शेष न रह गया। पण्डितजी के तर्कों प्रमाणों और उद्धरणों के घटाटोप से वातावरण आच्छन्न हो गया। मुझे स्मरण आया कि इसी प्रकार भीष्म के बाणों से अर्जुन के रथ के आच्छादित हो जाने पर करुणार्द्र होकर भगवान् कृष्ण अपनी प्रतिज्ञा भंग कर हाथ में चक्र लेकर दौड़ पड़े थे। किन्तु यहाँ तो परिस्थिति ही दूसरी थी। हृदय से बहुत कुछ मौन प्रार्थना करता रहा किन्तु कोई त्राणकर्ता आविर्भूत न हुआ। अन्त में मैंने बिना शर्त आत्म-समर्पण में ही कल्याण समझा, अतः पण्डितजी के एक कथन का मैंने समर्थन किया। उन्होंने मेरा भाव समझ लिया। तर्क में मुझे परास्त मानकर उनकी आत्म-सम्मान की भावना को संतोष मिला। फिर तो वे मुझे अत्यन्त सरल कोमल हृदय दीख पड़े। शरण में आये हुये अर्जुन को दिव्य-दृष्टि देकर जैसे भगवान् कृष्ण ने अपने दिव्य स्वरूप के दर्शन दिये थे उसी प्रकार पण्डितजी ने अपने मस्तिष्क-भण्डार के चमत्कारी रत्न मेरे सामने रखने प्रारम्भ किये। उन्होंने जो कुछ कहा था उसे यथार्थ रूप में रखना तो मेरे सामर्थ्य के बाहर है किन्तु यथा-शक्ति सार के रूप में आपके सम्मुख उनका कथन उपस्थित करता हूँ क्योंकि मैं समझता हूँ कि आप भी उत्सुक होंगे कि उनके वचनामृत का पान किया जाय।

आधुनिक आलोचना पद्धति की कटु आलोचना करते हुये उन्होंने कहा कि आज के आचार्य मिथ्या वाक्प्रवाह को ही आलोचना का व्यर्थ नाम दे बैठते हैं। प्राचीनकाल के विवेचक किसी बात की तह तक जाते थे, सिद्धान्त खोज निकालते थे। अपनी आलोचना की कसौटी को शुद्ध यथार्थ और स्पष्ट रूप में सब के सम्मुख रखते थे जिससे आलोचना पथ प्रशस्त था। कुकवि और सुकवि की परीक्षा हो जाती थी। कालिदास ने अपनी कविता की परीक्षा के लिये ऐसे ही आलोचकों को सन्त कहकर पुकारा है।

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद् व्यक्ति हेतवः।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापिवा॥

मैंने पण्डितजी से पूछा—आखिर यह बात कालिदास को क्यों कहनी पड़ी ? क्या उस समय भी असद् व्यक्ति आलोचना के पथ पर थे नहीं तो फिर सन्तों का यह आह्वान क्यों ? श्रद्धाभाव से पूछे गये प्रश्न के उत्तर में पण्डितजी ने बताया कि वास्तव में सदैव सात्विक, राजस तथा तामस स्वभावापन्न आलोचक होते रहे हैं। तामस स्वभावापन्न आलोचक नहीं चाहते कि कविता के परम्परागत गुण मार्ग से कोई इधर-उधर हटे किन्तु सात्विक स्वभाव तो सदा सार ग्राही होता है। कवित्व जहाँ हो वहीं प्रशंसनीय है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं न वमित्यवद्यम्।

कोई वस्तु पुरानी है इसीलिये प्रशंसनीय है ऐसा कोई भ्रम उनके अन्दर नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने अत्यन्त साहस करके पूछा क्या आप कृपा करके यह बता सकते हैं कि प्राचीन भारतीय आलोचना पद्धति की क्या प्रमुख विशेषतायें थीं। उन्होंने अत्यन्त सरलता से कहा कि प्राचीनकाल में आलोचना की सर्व प्रमुख विशेषता उसकी सैद्धान्तिकता थी। किसी कवि को उठाकर उसे उलट-पलट कर देखने, और कविता को चीर फाड़कर कवि के हृदय की खोज करने का दुःसाहस आलोचक नहीं करता था। आजकल के आलोचक कवि को पञ्चतन्त्र के उस बन्दर के समान समझते हैं जिसका हृदय जामुन के पेड़ पर रखा रहता था। प्राचीनकाल में कविता का तो विवेचन होता था किन्तु कविता में ऐसी वस्तुओं की खोज नहीं की जाती थी जिनका उससे कोई सम्बन्ध न हो।

मैंने पूछा क्या इसका कारण यह नहीं था कि उस समय कवि स्वयं ही तटस्थ रहता था और वास्तव में वह कविता में अपने हृदय को रखता ही न था, अतः उस समय की कविता में कवि के व्यक्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु आज इस व्यक्तिवाद के युग में प्रत्येक कवि अपने व्यक्तिवाद के प्रति जागरूक है। अतः आलोचक का भी ध्यान उस ओर जाना स्वाभाविक है।

पण्डितजी ने कहा—हाँ, यह बात अवश्य है कि प्राचीनकाल के कवि अहंकार शून्य सात्विक भावापन्न मुनिवत् आचरण करते थे। अतः उनके व्यक्तित्व में अहंभावना के लेश हो भी कैसे सकता था। दूसरी विशेषता जो प्राचीन आलोचना पद्धति में दिखलाई देती है वह है विचारों की सुस्पष्टता, नियमबद्धता और स्पष्ट विवेचना। कविता की परिभाषा को ही लें तो हम देख सकते हैं कि प्राचीनकाल में किस प्रकार थोड़े में ही मूल सिद्धान्त की बात कह दी जाती थी। आज यदि वह सार ग्राहिता तथा स्पष्ट तर्क-सम्मत पद्धति अपनाली जाय तो आलोचना के वाग्जाल का प्रसार बहुत कुछ कम हो जाय।

मैंने डरते-डरते प्रश्न किया कि आपका तात्पर्य यह तो नहीं है कि आलोचना क्षेत्र संकुचित करके कुछ प्राचीन सिद्धान्तों में ही जकड़ दिया जाय और इस प्रकार आलोचना की प्रसन्न सलिला भागीरथी को पूतिगन्धि पल्वल में परिणत कर दिया जाय?

उन्होंने कहा—कभी नहीं, मेरा यह तात्पर्य कभी नहीं रहा। प्राचीन काल में भी आलोचना की एक ही पद्धति नहीं रही। अनेक आचार्य थे और उनके स्वतन्त्र मत थे। दण्डी, भामह, तथा उद्भट आदि अनेक आचार्य भाषा के बाह्य अलङ्करण को ही कविता का अनिवार्य अङ्ग मानते थे। दूसरी ओर आचार्य वामन और उनके अनुयायी 'रीति' को ही काव्य की कसौटी समझते थे। आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति को ही काव्य का प्राण माना और आनन्दवर्द्धन ने काव्य को आत्मा का पद 'ध्वनि' को दिया। साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ ने रसात्मकता को काव्य का मुख्य लक्षण कहा है। आलोचना पद्धति में मत स्वातन्त्र्य को भी सदैव स्थान रहा है और विचार भेद से कविता के मूल्यङ्कन में भी अन्तर रहा है। विभिन्न आलोचकों की दृष्टि से कविता के भिन्न-भिन्न अङ्ग अधिक महत्वपूर्ण हैं। किन्तु हमारे यहाँ प्राचीनकाल में कभी विचारों की उच्छृङ्खलता को आलोचना नहीं कहा गया। जिस किसी ने अपना मत प्रतिपादन किया तर्क सम्मत शैली का आश्रय लिया। आलोचना शास्त्र है उसमें कवि कल्पना का आश्रय लेना विडम्बना है। इससे तो आलोचक की दुर्बलता ही प्रकट होती है।

मैंने कहा कि यदि आलोचना की प्राचीन पद्धति का ही अनुसरण किया जाय तो रीतिकाल की भाँति हमारे इस युग की कविता भी संकुचित मार्ग पर चलने लगेगी। रसात्मकता और अलङ्करण की प्रवृत्ति हमें नवीनता उत्फुल्लता और स्फूर्ति से हटा कर जटिलता, प्राचीनता और पिष्ट पेषण की ओर ही ले जायगी। क्या आप यह चाहते हैं कि आधुनिक कविता का विकास की बाल्यावस्था में ही गला घोंट दिया जाय? जब कविता की आलोचना का प्रारम्भ भी नहीं हुआ था उस समय भी बाल्मीकि ने सरल किन्तु अत्यन्त सरस रामायण की रचना की, व्यास ने महाभारत जैसा ग्रन्थ रत्न बनाया। मैं तो समझता हूँ कि यदि प्राचीन आलोचना पद्धति का ही अनुसरण किया जायगा तो यह आधुनिक साहित्य के लिए आत्मघात के समान होगा। चीन की स्त्रियों की भाँति जो लोहे के जूते पहन कर पैरों को छोटा रखती हैं और इस अनुपात हीन रचना को ही सौन्दर्य मानती हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हम भी कृत्रिम रसात्मकता को ही काव्य का प्रधान लक्षण मान लेंगे तो हमारा काव्य भी क्या फिर से उसी नायक-नायिका भेद के वर्णन और विवेचन से आच्छन्न न हो जायगा-जिससे हमने अभी-अभी त्राण पाया है।

मेरे इस कथन पर वे मुस्कराये। उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे पर्वत की चोटी से कोई घाटी में चलने वाले मनुष्य की ओर देखे। कहने लगे कि आज तो ऐसी शंका को स्थान नहीं रहा है। आलोचना की प्राचीन पद्धति का अनुसरण करने वाले आचार्य ही आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। कम से कम यह तो सभी मानते हैं कि प्राचीन पद्धति से सम्बन्ध तोड़ कर, उससे अनभिज्ञ रहकर कोई भी अपने आगे का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता। हमारा प्राचीन साहित्य शास्त्र अत्यन्त विस्तृत तथा गम्भीर है। आधुनिक काल के सभी वादों का मूल रूप उसमें ढूँढ़ा जा सकता है। वक्रोक्तिवाद, ध्वनिवाद, और रसवाद का विवेचन आज भी उतना ही नया है जितना कभी रहा है। इस विवेचन पद्धति से न तो आलोचना क्षेत्र में किसी संकुचित विचारधारा के आने की आशङ्का है न कवियों की रचना शक्ति के कुण्ठित होने का भय। रीतिकाल की शृङ्गारमयता का दोष प्राचीन आलोचना-पद्धति के सिर मढ़ना ठीक नहीं। आलोचक और कवि दोनों के मार्ग अलग-अलग हैं। कवि में कारयित्री प्रतिभा की आवश्यकता है और आलोचक में भावयित्री प्रतिभा की। एक व्यक्ति इन दोनों कार्यों को सफलता पूर्वक नहीं कर सकता। एक व्यक्ति एक ही कार्य में कुशलता प्राप्त कर सकता है। संस्कृत के श्रेष्ठ आलोचकों ने कभी कवि होने का दम्भ नहीं किया। हिन्दी के रीतिकाल में किसी मौलिक आलोचना पद्धति का निर्माण करने वाला कोई श्रेष्ठ आलोचक नहीं हुआ। उस समय कविता में जो अस्वाभाविकता आई उसका कारण सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थिति तो थी ही यथार्थ आलोचना का अभाव भी उसका एक प्रमुख कारण था। एक जागरूक आलोचक अपने समय की सारी साहित्यिक गतिविधि को संयत रख सकता है। अतः आप यदि कविता में एकाङ्गिता दोष से बचना चाहते हैं तो आलोचना का हनन नहीं प्राचीन आलोचना पद्धति का ही अनुसरण करना चाहिए। रही किसी के पिष्टपेषण की बात वह भी प्राचीन आलोचना पद्धति की अनभिज्ञता के कारण कही जाती है। हमारे आलोचकों ने कवि की प्रतिभा को कुण्ठित कभी नहीं किया प्रत्युत उन्होंने उसे और भी प्रखर करने के उपाय बताये हैं।

श्रीआनन्दवर्द्धन आचार्य ने ध्वनि का विवेचन करने के अनन्तर अपने ग्रन्थ के अन्तिम भाग में कहा है—

अनेनानन्त्यमायाति कवीनां प्रतिभा गुणः।

मेरे इस विवेचन के अध्ययन के बाद कवियों की प्रतिभा विश्वोन्मुखी, अनन्तमार्गगामिनी हो जायगी। उनके सम्मुख अनेक नये-नये विषयों का तथा उसे प्रकट करने की अनेक नई-नई पद्धतियों का उन्मेष होगा। संसार में असंख्य वर्ण्य विषय हैं फिर अवस्था, देश, काल आदि भेद से तो वे और भी अपरिमेय हो जाते हैं। यदि आलोचना शास्त्र में वर्ण्य विषय रस, भाव, ध्वनि आदि के निबन्धन स्वरूप अनेक मार्गों का होकर उनका वर्णन किया जाय तो परिमित शक्ति वाले कवियों का तो कहना ही क्या सहस्रों सहस्र बृहस्पतियों के द्वारा भी वह कार्य कभी पूरा नहीं हो सकता। जैसे प्रकृति का भण्डार अनन्त है—जिसमें नित्य नवीन रचनायें होती रहती हैं किन्तु फिर भी वे किसी पहली वस्तु का अनुकरण हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता—इसी प्रकार सरस्वती का भण्डार भी अनन्त है।

वाचस्पति सहस्राणां सहस्रैरपि यत्नतः।
निबद्धापित्वयं नैति प्रकृतिर्जगता मिव॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजी आलोचना का साहित्य

प्रो० नाग-मल सहल, एम० ए०

कवि की सृष्टि का आधार है उसकी कल्पना और उसके रचयिता की साकार कल्पना जिसकी संज्ञा है यह संपूर्ण चराचर जगत्। आलोचक की सृष्टि का आधार है उसकी प्रज्ञा और काव्य-संसार। भाषा के बिना उसका व्याकरण सम्भव नहीं; साहित्य के बिना आलोचना अधर में खड़ी नहीं रह सकती। यथेष्ट साहित्य सर्जना के पश्चात् ही आलोचना का दर्शन हुआ करता है। हर देश के साहित्य में आलोचना का प्रादुर्भाव पश्चाद्वर्ती ही होता है, पुरोगामी नहीं। हिन्दी में तो समीक्षा का व्यवस्थित विकास बीसवीं शताब्दी के पहले माना ही नहीं जा सकता। अंग्रेजी में भी आलोचना का प्रारम्भ एलिजाबेथ-युग में ही मानना समीचीन होगा। चासर (१३४०–१४००) का जमाना आत्म-निरीक्षण तथा साहसिक नूतन काव्य प्रयोगों का था। इटली का नया साहित्य भरा-पूरा सारा सुन्दर साहित्य उनका पथ-प्रदर्शक था। प्रोलोग सरीखी छोटी-सी पुस्तक में तत्कालीन समाज का बड़ा सुन्दर बौद्धिक विश्लेषण चासर ने किया है। दांते, पीट्रार्क तथा बोकैसियो इटली के इन तीनों कवियों का चासर ने हार्दिक सत्कार किया है। इतना ही नहीं उनके काव्यों से अपनी रचनाओं का अलंकरण भी किया है—फिर भी चासर को हम प्रथम आलोचक नहीं मान सकते क्योंकि चासर के लिए सब पुराने कवि समरूप से प्रशंस्य हैं। जैसा ओविड, वैसा वर्जिल—ऐसे ही उनके 'The House of Fame' में सब तरह की जमात एक साथ जुटी है। पीट्रार्क का सा सहज विवेक और प्रज्ञा चासर को प्राप्त नहीं थी। चासर का काम वस्तुतः निर्माण का ही था, निर्मित की नाप-जोख का उतना नहीं। निर्मित से अपने निर्माण में सहायता लेना निर्माण ही है, आलोचना नहीं। आलोचना के सूत्रपात में अभी दो शताब्दियों की और ढील थी। प्राचीन ग्रीक और रोमन साहित्य से ही अंग्रेजों ने सब कुछ सीखा था। एलिजाबेथ-युगीन प्रारम्भिक आलोचना से लेकर डा० जॉनसन (१७०९–१७८४) तक की आलोचना में प्राचीनों का ही प्राधान्य है। सारी अँग्रेजी की आलोचना शताब्दियों तक उनसे जरा भी हट कर नहीं पूरी सटकर चली है। प्रारम्भ में तो प्राचीनों का प्रभाव स्वास्थ्यकर ही रहा। मार्लो सदृश कवि तथा Meres सरीखे आलोचक ने प्राचीनों के वैभव और स्वातन्त्र्य को ही परखा-समझा है पर आगे जाकर पोप (१६८८–१७४४) आदि में कोरा अनुकरण ही स्पष्ट प्रतिभाषित होने लगा था। केवल अनुकरण के आधार पर कोई कवि बड़ा नहीं बन सकता। हर बड़ा कवि अपने समय में अवश्य ही स्वच्छन्द (Romantic) रहा होगा। आगे चलकर उस कवि की ख्याति बढ़ने पर वह शिष्टवादी (Classic) गिना जाने लगा होगा। सच्चा कवि अपने नियमों का निर्माण स्वयं करता है। निर्मित, कृत्रिम नियमों का आधार साधारणतः अपंग ही-लिया करते हैं। बच्चे को भी माँ-बाप का सहारा लेना पड़ता है पर वही बच्चा युवक होने पर स्वयं अपना पथ-निर्माण करने में हिचकता नहीं। अंग्रेजी आलोचना शुरू में इसी तरह पराश्रित रही, पर सबल और पुष्ट होने पर उसने तरह-तरह के अपने नये रास्ते बड़ी हिम्मत और लगन के साथ तय किये हैं। आज तो आलोचक इतने स्वतन्त्र हो चले हैं कि उनमें आपस में कई बार समानता से बढ़कर असमानता दिखाई पड़ सकती है, पर मूल में वे एक ही पिता की विभिन्न बुद्धि की सन्तान हैं।

अंग्रेजी आलोचना का इतिहास तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम—एलिजाबेथ युगीन एवं मिल्टन, द्वितीय Restoration यानी चार्ल्स द्वितीय के पुनरागमन से लेकर फ्रांस की क्रान्ति तक (१७८९) तक; तृतीय—क्रान्ति से लेकर अब तक जिसमें कई तरह की क्रान्तियाँ शामिल हैं। प्रथम भाग का प्रतिनिधि आलोचक है सिडनी। द्वितीय का उद्घाटन करने वाला है ड्रायडन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६३१–१७००) तथा समापवर्तन करने वाला है डा० जॉनसन। तृतीय के प्रारम्भ में हैं लैम, हैजलिट, कौलरिज, कार्लायल आदि तथा अन्त में तो सेंट्सबरी, ब्रैडली, निकल, रिचर्ड्स, स्कॉटजेम्स, ऐबरक्रांबी, मिडलटन मरी, चैंबर्स, डाउडेन, क्षटन ब्रान, स्टाफोर्ड ब्रुक, बेकर आदि जिनका कोई अन्त नहीं।

आलोचना के प्रथम-युग में, जैसा सर्वत्र हुआ करता है, ऊपर का आडम्बर अधिक है, अन्तर का रहस्योद्घाटन कम। यह आलोचना नियमों की है, ऊपर-ऊपर की है, रूप को देखने वाली है, आत्मा को नहीं। किसी भी कवि की सच्ची विशेषताओं का दिग्दर्शन इस काल में सम्भव नहीं था। एलिजाबेथन आलोचना के अग्रणी पुटनेहम तथा वेब आदि की आलोचनाएँ इसी कोटि की हैं। काव्य-वस्तु के आधार पर काव्यों का विभाजन, भाषा, छन्द आदि की चर्चा ही प्रधान है। हिन्दी में ऐसे ही पं० पद्मसिंह शर्मा तथा मिश्रबन्धु थे पर जैसे द्विवेदी-युग में पं० रामचन्द्र शुक्ल के समान विचक्षण आलोचक मौजूद थे, वैसे ही एलिजाबेथ युग में विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न सिडनी तथा बेन-जॉनसन थे। प्रारम्भिक आलोचनाएँ सर्वत्र बहिरङ्ग की ही हो सकती हैं, अन्तरङ्ग की नहीं।

तत्वदर्शी प्लैटो (४२७–३४८ ई० पू०) ने अपने 'कामनवेल्थ' से कवि का बहिष्कार किया था। नैतिक और धर्म-प्रवण कवि का ही प्लैटो के यहाँ खटाव हो सकता था। होमर और हीसियड की प्लैटो ने इसलिए निन्दा की कि वे नीति-विरुद्ध उपदेश देते हैं। इसी तरह पुराने ग्रीक नाटककारों की खबर ली है क्योंकि वे अनुचित गलत चीजों का अनुकरण करते हैं। बढ़ई जैसे एक कुर्सी बनाता है तो आदर्श विशेष का अनुकरण करता है पर चित्रकार इस अनुकरण का भी अनुकरण करता है। इस तरह प्लैटो के विचार में काव्य असलियत (Reality) से बहुत दूर है, 'थर्डहैंड' है। प्लैटो के तर्कों का समीचीन उत्तर दिया ऐरिस्टाटल (३८४–३२२ ई० पू०) ने अपनी 'पोलटिक्स' में। तत्वदर्शी, राजनीतिज्ञ तथा नैतिक धर्मोपदेशक सबसे स्वतन्त्र, कवि का इस महान् आलोचक द्वारा विवेचन हुआ। शताब्दियों तक ऐरिस्टाटल साहित्य-संसार में देववत् पूजे गये और उनका महत्व आज भी अनुपम है। ग्रीक साहित्य के आधार पर महाकाव्य, दुःखान्त तथा सुखान्त नाटकों का विवेचन करते हुए ऐरिस्टाटल ने कवि का जोरदार समर्थन किया। आगे चल कर होरेस, (६५-८ ई० पू०) लांजाइनस, सिसरो, क्विन्टीलियन आदि महत्वपूर्ण आलोचक हुए। एलिजाबेथ युग में ये सब ग्रीस और रोम की आलोचनायें मौजूद थीं और सिडनी ने अपनी 'Apology of Poetry' में इन सबका विवेकपूर्ण उपयोग किया है। अंग्रेजी में १५९५ में प्रकाशित सिडनी की यह पुस्तक स्टैंडर्ड आलोचना की पहली चीज मानी गई है। काव्य से हर्षोल्लास और उपदेश दोनों मिलते हैं। मनोवेगों को भी काव्य से स्फूर्ति मिलती है। इस तरह प्यूरिटन लोगों को सिडनी ने बड़ा संयत और गम्भीर जवाब दिया। इस छोटे से लेख में किसी भी आलोचक का थोड़ा-बहुत विवेचन दे सकना भी मुश्किल है। ये सब तो स्वतन्त्र लेखों के विषय हैं। अभी तो विहंगम दृष्टिपात से ही सन्तोष करना है। सिडनी ने नीति की आधारशिला पर ही काव्य की महती गरिमा स्थापित की। बेन जॉनसन (१५७२–१६३७) ने युग की गति के विरुद्ध प्राचीनों की प्रशस्ति गाई। उन्हीं के अनुकरण पर नाटक लिखे पर कवि को एकदम बद्ध भी नहीं किया। कवि पर उचित अनुशासन अवश्य माँगा। काव्य-निर्माण में पूरे श्रम को अपेक्षा उन्होंने मानी। Poetry is not spontaneous utterance, but "elaborate and painful to it." Dante. "It is said of the incomparable Virgil that he brought forth his verses like a bear, and after formed them with licking." फिर भी कवि का काम स्कूल मास्टर का-सा नहीं माना।

"I am not of the opinion to conclude a poets liberty within the narrow limits of arts which either the grammarians or philsophers prescribe" शैली का भी उन्हें पूरा ध्यान था। "Language most shows a man; speak,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

that I may see thee." इन आलोचकों के सामने अंग्रेजी में बहुत कम अच्छी चीजें लिखी गई थीं इसलिए इनकी आलोचना अधिक प्रखर और बलशाली नहीं हो सकती थी।

आधुनिक आलोचना के अधिकांश गुण सर्वप्रथम ड्रायडन में देखे जा सकते हैं। तुलनात्मक आलोचना का पंडित, ऐतिहासिक आलोचना का सूत्रपात करने वाला ड्रायडन, स्वतन्त्र और निर्भीकमना होकर कह सका कि ऐरिस्टाटल ने अपने जमाने लायक सही बातें कही सहीं पर सदा के लिए उसी का अवलम्ब लेकर साहित्य में उन्नति नहीं की जा सकती। ऐरिस्टाटल की पूजा को भी निषिद्ध ठहराना बड़ी हिम्मत का काम था। ड्रायडन ने सब कुछ बुद्धि के प्रखर आलोक में देखा। ड्रायडन के जमाने के नाटक अगर ऐरिस्टाटल को पढ़ने को मिलते तो ड्रायडन के विचार में ऐरिस्टाटल को भी अपने विचार बदलने पड़ते। ड्रायडन का यह स्मरणीय-वाक्य नई क्रान्ति का उद्घोषक है—"It is not enough that Aristotle has said so, for Aristotle drew his models of tragedy from Sophocles and Euripides: and, if he had seen ours, might have changed his mind."

ड्रायडन ने साफ कह दिया कि कवि उपदेशक का बाना पहिन कर आये यह जरूरी नहीं। उपदेश तो अधिक से अधिक गौण हो सकते हैं। काव्य अनुकरणात्मक नहीं, सृजनात्मक होता है क्योंकि कवि फोटोग्राफर की तरह किसी वस्तु का हूबहू चित्रण नहीं करता वह तो कल्पना के सहारे नूतन आह्लादकारिणी सृष्टि का निर्माण करता है।

"It is fancy that gives the life-touches" कल्पना के इस रूप की विशद व्याख्या आगे चल कर कॉलरिज ने की। ड्रायडन ने मिल्टन और शेक्सपियर दोनों की प्रशंसा की है जैसे हम आज भी करते हैं। निष्पक्ष बुद्धि रख कर ही वे ऐसा कर सके थे। अपने Essay of Dramatic poetry में ड्रायडन ने तुकान्त कविता का पक्ष लिया है यद्यपि आगे चल कर वे स्वयं Blank verse के हिमायती बन गये थे। नाटक की भाषा वास्तविक भाषा से जितनी दूर होगी, उतनी ही नाटकीय प्रभाव के लिए आदर्श होगी—यह दूसरी उपपत्ति उन्होंने उपस्थित की जिसका परिणाम १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पोप की कृत्रिम भाषा (Poetic diction) डा० जानसन की आलोचना मजिस्ट्रेट का-सा फैसला है। यह शुद्ध निर्णायक (Judicial) ढङ्ग है। बँधे बँधाए नियम ही इस आलोचना के मानदण्ड हैं। पोप, जो स्वयं नियमबद्ध कवि थे, डा० जानसन के लिए आदर्श बने। यह सारा वातावरण अत्यन्त संकुचित रहा। इन ढेर सारे कृत्रिम बन्धनों के बीच कविता का ही गला घुटने लगा था। नियमों से हट कर चलने वाला काव्य काव्य ही नहीं रह गया। इसी से तो मिल्टन, काउली, ग्रे—इन सबकी डा० जानसन ने खबर ली है। डा० जानसन मौलिकता के शत्रु थे। उपन्यासकार फील्डिङ्ग ने मौलिकता दिखाई तो डा० जानसन ने उनको निकम्मा (barren rascal) करार दिया। गोल्डस्मिथ ने स्थिति में सुधार किया। इसी तरह बर्क की "On the sublime and the Beautiful" महत्वपूर्ण रचना है। डा० जानसन की मृत्यु के बाद आलोचना क्षेत्र में एक बार अनिवार्य अराजकता फैली जिसके महारथी थे जेफ्री और गिफोर्ड। एडिनबरा और क्वार्टरली नामक अपने पत्रों में इन लोगों ने कीट्स, शेली, बायरन आदि नये कवियों की मनमानी, असंयत आलोचना की। इन आलोचनाओं का कोई आधार ही नहीं था—न नियम, न बुद्धि पर केवल छीछालेदर। कीट्स सरीखे महत्वपूर्ण युवक कवि को तो गालियों का ही प्रसाद मिला समझिए ("Go back to the shop, Mr. John; back to the plasters, pills and ointment boxes.") ऐसे ही वर्डसवर्थ की Immortality Ode सरीखी कविता जेफ्री की समझ के बाहर थी। अच्छी चीज को बुरी और बुरी को अच्छा बना देना उन लोगों के बाएँ हाथ का खेल था। इस ओड को वे अत्यन्त अस्पष्ट और मूर्खतापूर्ण बताते हैं। ("We venture to hope that there is now an end of this folly." वर्डसवर्थ की Excursion के लिए लिखा कि ऐसी कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताओं से काम नहीं चलने का। उनकी आलोचना "This will never do" ही रही। इनके बाद नियमों से सर्वथा आबद्ध पूर्ण स्वतन्त्र आलोचना का समय आता है। कॉलरिज, लैम्, हैजलिट, कार्लायल आदि की आलोचनाएँ बुद्धिपरक और अन्तर्भेदिनी थी। कॉलरिज ने कल्पना की सुन्दर मीमांसा प्रस्तुत की और कवि-कल्पना को पूर्ण सृजनात्मक बताया। Lyrical Ballads की वर्ड्सवर्थ लिखित भूमिका का कालरिज ने अत्यन्त तर्कसम्मत उत्तर दिया। आलोचना के विद्यार्थियों के लिए यह वर्ड्सवर्थ कॉलरिज विवाद अत्यन्त पठनीय और रुचिकर होगा। कविता और गद्य की भाषा में एकता तथा छन्दों की निवार्यता आदि से कॉलरिज सहमत नहीं हुए। कार्लायल ने तुलनात्मक आलोचना को खूब आगे बढ़ाया। इन लोगों की मान्यता थी कि जब कवि निर्बन्ध है, तो आलोचना के नियम पहले से कैसे बनाए जा सकते हैं। कवि-प्रतिभा की जैसे इयत्ता नहीं, व्यक्ति-वैभिन्य की जैसे सीमा नहीं वैसे ही आलोचना के प्रकारों का कोई प्रकरण नहीं। सच्चा कवि हर अर्थ में नया होगा—उसका काम है पाठकों को भी नया बनाना ("It is the essence of the poet to be new"; it is his mission "to wrench us from our old fixtures".) Sainte-Beuve (१८०४-६९) नामक फ्रांसीसी आलोचक ने इस पर जोर दिया कि किसी काव्य को समझने के लिए कवि को समझना आवश्यक है। Tel arbre, tel fruit पेड़ का ज्ञान होने से फल का ज्ञान सुगम हो जाता है। कला विज्ञान ज्ञान सम्पन्न (artist-scientist-critic) ऐसा आलोचक का आदर्श बना। English men of letters की पुस्तकमाला इसी वृत्ति का परिणाम है। टेन (१८२८-९३) नामक फ्रांसीसी आलोचक ने इस आदर्श को और आगे बढ़ाया। सर्व श्री सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा आदि से साहित्य सम्मेलन के अपने अपने काव्य की भूमिका लिखवाकर इस दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है। कवि आलोचक भी हो सकता है या कवि ही आलोचक हो सकता है—यह पुराना सवाल है। बेन जानसन ने कवि को ही आलोचक माना था ("To Judge of poets is only the faculty of poets"। कॉलरिज, आर्नोल्ड आदि इसके निदर्शन भी हैं, यद्यपि आलोचक-कवि की कविता अधिक विवेचनामयी, चिन्तनशील एवं बौद्धिक सी होने लगती है जैसे पन्त की कविता होने लगी है। हर साहित्य में ऐसा हुआ है कि पहले स्वतन्त्रता, फिर नियमों से अरुचि, पुनः नियमों की आवश्यकता। यह क्रम काव्य और आलोचना दोनों में लक्षित होगा। अंग्रेजी में निर्बंध आलोचना को संयमित करने के लिए मैथ्यू आर्नोल्ड (१८२२-८८) का प्रादुर्भाव हुआ। आर्नोल्ड ने तो आलोचक को कवि से ही प्रमुख माना। आलोचक कवि के लिए विचार-भूमिका प्रस्तुत करता है। उनकी दृष्टि में कविता भी जीवन का दर्शन नहीं, जीवन की आलोचना (Criticism of life) बन गई। वाल्टर पैटर (१८३९-९४) ने आर्नोल्ड के किये कराये पर पानी फेर दिया। पैटर के प्रभाव के कारण भी आगे चल कर कला के लिए कला सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार हुआ। और ऑस्कर वाइल्ड ने प्रकृति को कला से न्यून और हीन बताया। ऐसी कला में फिर कलाबाजियाँ भी आने लगीं। क्रोचे (१८६६) का फिर अभिव्यंजना वाद आया। बाद में तो मार्क्सवादी आलोचना, फ्रायडवादी तथा प्रभावाभिव्यंजनी (Impressionist) एवं मनोवैज्ञानिक आलोचनाएँ चलीं। आज अंग्रेजी का आलोचना-साहित्य अत्यन्त प्रबुद्ध पर स्फूर्तिमय और समृद्ध है। साहित्य के एक-एक अङ्ग के अनेकानेक विशेषज्ञ हैं। नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता के भेदोपभेदों का विवेचन करने वाले अलग-अलग विशेषज्ञ हैं जिनके नाम गिनाना सम्भव नहीं। हिन्दी की आलोचना ने अंग्रेजी की आलोचना से बहुत सीखा है। हिन्दी के आजकल के बहुत से आलोचक पुरानी संस्कृत की चीजों को तो पूरा समझ भी नहीं पाते। आचार्य शुक्ल जी ने इतना सुन्दर समन्वय उपस्थित किया था। भारत को स्वतन्त्रता का अर्थ अंग्रेजी से विराग कभी नहीं होना चाहिए। अंग्रेजी सब नहीं पढ़ें यह ठीक है पर साहित्यिक रुचि वाले पहले से भी अधिक मनोयोगपूर्वक स्वेच्छया पढ़ें तभी हिन्दी सच्चे अर्थ में गौरवमयी राष्ट्रभाषा बनेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविश्लेषण और आलोचना

श्री बा० गुलाबराय एम० ए०

आलोचना की पद्धति विकास शील है। अब कवि की कृति का ही विश्लेषण नहीं किया जाता है वरन् कवि के मन का विश्लेषण किया जाता है, सो भी केवल ऊपरी मन का नहीं वरन् उसके भीतरी मन की तहों तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है। यह प्रयत्न किस लिए? यह इस लिए कि कवि की कृति में उसके आत्मभाव या आत्मिकता (Personality) की झलक होती है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' कवि की कृति द्वारा हम कवि के मन की झाँकी पाते हैं और कवि की मन की झाँकी उसकी कृति को भली प्रकार समझ सकते हैं। साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन दो प्रकार से होता है। एक साहित्य-सृष्टि में बसने वाले पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, जैसे सूर के बालकृष्ण का अध्ययन; भरत की आत्मग्लानि का अध्ययन और प्रेमचन्दजी के ज्ञान शङ्कर या और किसी पात्र का अध्ययन; दूसरे स्वयं कवि का अध्ययन. स्वयं कवि के अध्ययन से आलोचना को यह लाभ होता है कि आलोचना संकुचित नहीं रहती। हम कवि को बन्धे बंधाये मानदण्डों के अनुसार दोषी नहीं ठहराते। वह एक प्रकार की कविता करता है या दूसरी प्रकार की कविता करता है और इस प्रकार वह अच्छा या बुरा है ऐसा हम निर्णय सहसा नहीं देते। हम उसके मन अन्तस्तल में प्रवेश करके यह जान लेते हैं कि वह अपनी पारिवारिक सामाजिक और वैयक्तिक स्थिति में ऐसी ही कविता कर सकता था। मनोविश्लेषण आलोचना को वैज्ञानिक स्थिति पर ले आता है वह कवि उसकी सामाजिक और पारिवारिक स्थिति में और कृति में एक कार्य-कारण शृङ्खला स्थापित कर देता है।

मनोविश्लेषण की आलोचना को देन समझने से पूर्व हमको मनोविश्लेषण का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। मनोविश्लेषण की सबसे बड़ी देन है अवचेतन (Subconscious) मन का प्रतिपादन। वह चेतन से अवचेतनपन को विशेष महत्व देता है। चेतन मन की वासनाएँ सामाजिक औचित्य-निरीक्षक (Censor) की रोक-थाम के कारण दमित हो जाती हैं किन्तु वे चेतन मन को प्रभावित करती रहती हैं। वे स्वप्न जैसे महत्वाकांक्षा के लिए सीढ़ी पर चढ़ना, किसी के मरने की इच्छा पूर्ण करने के लिए तख्तों को जो कफन के वस्त्र के द्योतक हैं नयी पोशाक की नये पति की कामना पूर्ति के लिए, समुद्र में तैरना कठिनाइयाँ पार कर जाने की इच्छा पूर्ति के अर्थ, भूल, हँसी मजाक और कलाकृतियों में वेश बदल कर प्रतीकात्मक रूपों में प्रकट हो जाती हैं। कभी-कभी ये कल्पनाओं और दिवा स्वप्नों का रूप धारण कर लेती हैं और कभी ये इतनी प्रबल हो जाती हैं कि मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न कर देती हैं और तर्क और सामाजिक नियन्त्रण का बाँध तोड़ कर अनर्गल प्रलाप का रूप धारण कर लेती हैं। इन सब वासनाओं में यौन वासनाएँ बड़ी प्रबल हैं। उनका पूर्वरूप बचपन में भी अपथपाना अँगूठा चूसने आदि में मौजूद रहता है। फ्रायड के मत से दमित यौन वासनाएँ ही हमारे चेतन जीवन को प्रभावित करती रहती हैं। यौन वासना का इतना महत्व देने में और सब लोग फ्रायड के साथ सहमत नहीं हैं। फ्रायड ने आत्मा की तीन श्रेणियाँ मानी हैं, वैयक्तिक आत्मा (Ego), परात्मा (Super Ego) और तदात्मा (Id)। वैयक्तिक आत्मा का सम्बन्ध हमारी चेतनात्मा से है। उसमें आकार, तर्क, संगति का प्राधान्य रहता है। परात्मा का सम्बन्ध नैतिक, भाव और औचित्य है। औचित्य निरीक्षक भी इसी का सहारा लेता है। तदात्मा का सम्बन्ध हमारी सहज वृत्तियों, सामान्य भावनाओं और दमित वासनाओं से है जो हमारे कार्यों को प्रेरक शक्ति प्रदान करती हैं।

मनोविश्लेषण शास्त्र के दो और आचार्य हैं एडलर और युंग। एडलर ने हीनता ग्रन्थि (Inferiority Complex) को महत्व दिया है। वे पारिवारिक स्थिति के कारण बनी हुई हीनता ग्रन्थियों को मूल प्रेरक कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं। हीनता-ग्रन्थि क्षति पूर्ति के नियम के अनुसार मनुष्य उच्च भावना ग्रन्थि (Superiority Complex) बन जाती है। और युंग ने मनुष्यों को दो वर्गों में विभाजित किया है—अन्तर्मुखी (Introvert) और बहिर्मुखी (Extrovert)। अन्तर्मुखी प्रायः भावुक लोग होते हैं जो अपने में ही लीन रहते हैं। वे बाहरी जगत की कम परवाह करते हैं और बहिर्मुखी वे होते हैं जो अपने को बाह्य संसार के अर्थ समर्पित कर देते हैं। वे स्व की अपेक्षा पर का अधिक ध्यान रखते हैं। ये दो प्रकार की मनोवृत्तियाँ अन्योन्य बहिष्कारक (Mutually Exclusive) नहीं होती हैं। वास्तविक जीवन में इन दोनों का मिश्रण रहता है। इनकी श्रेणियाँ भी बहुत सी होती हैं। युंग ने इन दोनों वृत्तियों का समन्वय करने वाली एक मूल वृत्ति भी मानी इसको उसने Phantasy अर्थात् स्वच्छन्द कल्पना कहा है उसमें शाश्वत रचनात्मक क्रिया का प्रसार रहता है। उससे सब विरोधों और प्रश्नों का शमन हो जाता है। उसमें अन्तर और बाह्य एक सजीव एकता में मिल जाते हैं। वह सब सम्भावनाओं की माता है—

It is the creative activity whence issue the solutions to all unanswerable questions; It is the mother of all possibilities in which the inner and outer worlds like all Psychological antithesis are joined in living union.

Yung-psychological Types.

युंग ने इस स्वच्छन्द कल्पना के दो रूप बताये हैं एक सक्रिय और दूसरा निष्क्रिय। निष्क्रिय स्वच्छन्द कल्पना अनियन्त्रित रहती है और वह प्रायः स्नायुविक दोष वाले लोगों में ही होती है। कवि या कलाकार अपनी स्वच्छन्द कल्पना को ऐसी मोड़ दे देता है कि उसमें निर्वैयक्तिता आजाती है और वह सार्वजनिक हित की बन जाती है।

मनोविश्लेषण के सभी सम्प्रदाय प्रतिभा और काव्यावेश (Inspiration) की व्याख्या करते हैं। फ्रायड का मत है कि नई नई कल्पनाएँ कवि को तदात्मा (Id) के भण्डार में मिलती हैं जहाँ दमित वासनाएँ अनियन्त्रित रूप में रहती हैं और जहाँ उनको सहज वृत्तियों की शक्ति का भी सम्पर्क मिलता रहता है। वैयक्तिक चेतनात्मा (Ego) उनमें नियम और व्यवस्था उत्पन्न कर देती है और परात्मा (Super Ego) उनमें नैतिकता, आदर्शवादिता और निर्वैयक्तिता उत्पन्न कर देती है। कवि की सफलता वैयक्तिक को निर्वैयक्तिक बनाने में है तभी दूसरे लोग उसमें रुचि ले सकते हैं। यही हमारे यहाँ के साधारणीकरण का सिद्धान्त है। कभी-कभी यह निर्वैयक्तिता इतनी बढ़ जाती है कि मनोविश्लेषण शास्त्री भी धोखा खा जाते हैं। कवि और पाठक की दमित वासनाओं की (हम भारतीय भाषा में प्राकृत और अर्वाचीन संस्कार कहेंगे) जब मेल खा जाते हैं तभी रस की सृष्टि होती है। हमारे यहाँ स्थायी भावों के संस्कार पाठक में भी माने गये हैं और उन पर विशेष बल दिया गया है। प्राकृत संस्कारों और भूली हुई या दबी हुई स्मृतियों का उल्लेख शकुन्तला में भी हुआ है।

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपिजन्तुः
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोध पूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ॥

अर्थात् सुखी मनुष्य भी (जैसा दुष्यन्त था) सुरम्य स्थलों को देखकर और मधुर शब्दों को सुन कर (इसीलिए हमारे यहाँ उद्दीपनों को महत्व दिया गया है) जो बेचैन हो उठता है उसका कारण यह है कि वह बिना जाने अपने अवचेतन मन में संस्कार वश स्थिर जन्म-जन्मान्तर के भावों का स्मरण करता है।' यह अवचेतन मन की देन आजकल के मनोविज्ञान का ही एकाधिकार नहीं है।

पहले जमाने में काव्यावेश (Inspiration) की व्याख्या धार्मिक आधार पर की जाती थी, तुलसीदासजी ने भी कहा है कि 'शङ्कर जी ने उनके हृदय में बैठ कर रामचरित मानस लिखाया था। सूरदासजी को भी महाप्रभु वल्लभाचार्य की कृपा से भगवल्लीला का स्फुरण हुआ था। आजकल का कलयुगी मनोविज्ञान धार्मिक भावों को तो नहीं मानता लेकिन व्यक्ति के जीवन का अध्ययन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी दमित वासनाओं और कुण्ठाओं का पता लगता है और उनके आधार पर उसकी कविता में फैले हुए मानसिक चित्रों में जान की व्याख्या करता है। फ्रायड के मत से बहुत सी कला और कविता कुण्ठित वासनाओं की मानसिक इच्छा पूर्ति है। जैसे स्वप्न दमित इच्छाओं की पूर्ति का साधन है, वैसे ही कला और कविता भी।' फ्रायड लिखते :—

The artist who is urged on by instinctive needs which are too clamorous; he longs to attain honour, power, riches, fame and the love of woman; but he lacks the means of achieving these qualifications, so like any other with an unsatisfied longing, he turns away from reality, and transfers all his interest, and all his libido too, on to the creation of his wishes in the life of Phantasy,

अर्थात् कलाकार वह है जो अपनी अति-मुखरित सहज वृत्तियों से प्रेरित होकर सम्मान, शक्ति, धन, यश और स्त्री का प्रेम चाहता है लेकिन वह इन इच्छाओं की पूर्ति के साधन नहीं रखता (चहत अमिय जग जुरै न छाछी) इसलिए किसी साधारण मनुष्य की भाँति वह वास्तविकता से भाग कर अपने सब हितों और काम्यवासना को भी केन्द्रित कर कल्पना लोक में अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगा देता है। वह अपनी कला के जादू से उन्हें प्रेषणीय और सार्वजनिक बना देता है और फिर उसे वे वस्तुएँ जो वह कल्पना में चाहता था वास्तविकता में भी मिलने लगता है। यह पलायनवादी कविता की तो व्याख्या कर देता है किन्तु वीर रसात्मक या प्रगतिवादी कविता की व्याख्या नहीं करता। इसके लिए हमको अडलर की हीनता ग्रन्थि में या युग की बहिर्मुखी मनोवृत्ति में (Extrovert Tendencies) का आश्रय लेना पड़ता है आजकल हमारे आलोचक कुण्ठाओं का बहुत उल्लेख करते हैं। उन पर फ्रायड का ही प्रभाव है। यह हम मानते हैं कि लेखकों में कुण्ठाएँ होती हैं। कालिदास में अपनी स्त्री की विद्वता से हीनता ग्रन्थि बनी होगी तुलसीदास जी में अपनी स्त्री से तिरस्कृत होने की, भूषण में नमक के लिए भूषण में अपनी भाषी से नमक के सम्बन्ध में जायसी को अपनी कुरूपता की, कबीर को अपने जुलाहेपन की हीन-भावना हुई होगी और उसकी क्षति पूर्ति में वे ऊँचे उठे होंगे (हीनताभाव भी एक प्रकार की कुण्ठा ही है) किन्तु यह उनकी प्रतिभा की पूरी व्याख्या नहीं है। सैकड़ों आदमियों में यह हीनता ग्रन्थियाँ उनमें उच्च होने की आकांक्षा उत्पन्न नहीं करती। हम यही कह सकते हैं कि मनोविश्लेषण कवि की प्रतिभा समझने में कुछ सहायक होती है। प्रतिभा में हमको कुछ पूर्व जन्म का या अलौकिक अथवा व्याख्यातीत अंश मानना पड़ेगा।

युंग की अन्तर्मुखी (Introvert) और बहिर्मुखी (Extrovert) प्रकृतियों का विभाजन हमको बहुत गहरा तो नहीं ले जाता फिर भी हमको क्लासिकल और रोमाण्टिक तथा विषयगत (Objective Epic) और विषयीगत (Subjective) अथवा प्रगीतात्मक लिखने वाले कवियों की प्रतिभा के समझने में सहायक होता है। बहिर्मुखी लोग क्लासीकल और सहायक आदि की ओर अधिक जाते हैं और अन्तर्मुखी रोमाण्टिक और प्रगीतात्मक कविता लिखने की ओर झुकते हैं। वास्तव में लोगों में दोनों ही प्रवृत्तियों का मिश्रण रहता है। अन्तर्मुखी समाज की परवाह नहीं करता, उसकी वृत्ति विद्रोहात्मक होती है। वह रोमाण्टिक की ओर जाता है और बहिर्मुखी नियमों और आकार की पाबन्दी की ओर अधिक ध्यान देता है। वह Classical कविता की ओर प्रवृत्त होता। सब में ही विद्रोह और नियन्त्रण की प्रवृत्तियाँ रहती हैं। जिसमें जो प्रवृत्ति अधिक होती है वह उसी ओर झुक जाता है। अच्छा कवि वह होता है जिसमें विद्रोह और नियन्त्रण का सन्तुलन रहता है। फ्रायड के अनुसार विद्रोह तदात्मा (Id) से मिलेगा और नियन्त्रण चेतनात्मा और परात्मा से मिलेगा।

इन सिद्धान्तों के व्यावहारिक प्रयोग में हमको सावधानी और सन्तुलन से कार्य लेना चाहिए। सब जगह ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौन भावना की गन्ध न पाना चाहिए। यौन भावना के अतिरिक्त और भी भावनाएँ काम कर सकती हैं। तुलसी के नीचे लिखे छन्द में हमारे उत्साही मनोवैज्ञानिक आलोचक दमित काम वासना काम उभार बता सकते हैं। देखिए—

विन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रत-
धारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा
सुनि, भे मुनिबृन्द सुखारे॥
ह्वै हैं सबै चन्द्रमुखी
परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायक जू
करि कानन को पगु धारे॥

इसमें दमित यौन वासना कही जा सकती है किन्तु उन आलोचकों को यह न भूलना चाहिए कि इसमें रामपद की धूलि रूपी सजीवन मूरि की महिमा अधिक है। इसी ने केवट प्रसङ्ग को भी इतना सरस बना दिया है।

काव्य और प्रेम वासना का भक्ति में उन्नयन (Sublimation) प्रायः हो जाता है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी कहा है 'मोह मोर मुक्ति रूपे उठिबे ज्वलिया प्रेम मोर भक्ति रूबे रहिबे फलिया' किन्तु हमेशा इसका उलटा (Obverse) ठीक नहीं होता। हरेक भक्ति के मूल में लौकिक वासना की गन्ध देखना जैसा प्रायः मीरा के साथ किया जाता है उचित नहीं है। मीरा का वैयक्तिक जीवन जाने बिना हम कुछ नहीं कह सकते हैं। बहुत से आलोचक तो वाल्मीकि के 'या निषाद प्रतिष्ठां' में काम मोहितम् के आधार पर करुणा के स्थान पर काम का ही साम्राज्य देखते हैं। फिर भी हम यह मानते हैं कि काम बहुत सी प्रवृत्तियों के मूल में है।

काम वासना को अथवा दूषित भावनाओं को छिपाने के लिए जो प्रतीक में रच लिए जाते हैं उनके अर्थ लगाने में भी मनोविश्लेषण से सहायता मिल जाती है। फूलों का हार, स्वर्ण मन्दिर, कली आदि नारी शरीर के प्रतीक बन जाते हैं। ऐसे ही टोप, कलम, ऊँचो सुरों पुरुष का प्रतिनिधित्व करते हैं। यात्रा मृत्यु की पानी कठिनाइयों का आकाश हृदय का द्योतक होता है। कुछ प्रतीक तो परम्परागत होते हैं कुछ नये प्रतीक बन जाते हैं। मनोविश्लेषण इन नये प्रतीकों के रहस्योद्घाटन में विशेष सहायता देता है। बहुत सी बातें चेतन के स्तर पर भी स्पष्ट रूप से कहने योग्य नहीं होती हैं, उनको भी प्रतीकों में छिपाया जा सकता है। मनोविश्लेषण क्या साधारण जीवन का ज्ञान भी उन प्रतीकों की कुञ्जी खोज निकाल सकता है जैसे बच्चनजी की निम्नोल्लिखित कविता में दूसरी शादी का संकेत स्पष्ट है। मनोविश्लेषण गहरी पैठ कर सकता है। बच्चन की कविता का कुछ अंश देखिए—

जीवन में एक सितारा था,
माना वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया।
अम्बर के आनन को देखो,
कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे।
जो छूट गये फिर कहाँ मिले॥

पर बोलो टूटे तारों पर अम्बर कब शोक मनाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोविश्लेषण कवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण कर कवि की कृति को समझने में सहायक होता है। मनोविश्लेषण के सहारे हम कवि की कृति का कवि के जीवन और स्वभाव के साथ मेल देख कर एक गुत्थी सुलझाने का सा आनन्द पाते हैं। किन्तु मनोविश्लेषणात्मक आलोचना की सीमाएँ हैं उनका हमें ध्यान रखना चाहिए। मनोविश्लेषण के सिद्धान्त कवि के व्यक्तित्व समझने के एक मात्र कुञ्जी नहीं है। इसी प्रकार उपन्यासों की रचना में मनोविश्लेषण के उदाहरण उपस्थित करने मात्र के लिए जैसा नरोत्तम नागर ने किया है घटनाओं को उपस्थित करना ठीक नहीं है। जीवन का प्रवाह स्वाभाविक रूप से चलने देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

40002
R
८-५
आ-८-सा
भा० २५

भारतीय आलोचना-पद्धति और उसकी गति विधि

श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन' एम० ए०, साहित्यरत्न

40002

'साहित्य' व्यक्ति और समाज के जीवन की भावप्रधान सरस आलोचना है और 'आलोचना' उस आलोचना की आलोचना है। इस प्रकार साहित्य और आलोचना का आधार आधेय सम्बन्ध है। साहित्य ही वह आधार-शिला है जिस पर समालोचना रूपी भवन का निर्माण होता है। यदि नींव ही न होगी तो भवन किस पर बनेगा? इसीलिए तो हम अपने संस्कृत साहित्य में देखते हैं कि काव्यों (आलोच्य ग्रन्थों) के उपरान्त ही लक्षण-ग्रन्थ (आलोचना-ग्रन्थ) लिखे गये।

40002

व्यक्ति और समाज के जीवन की भावप्रधान सरस समालोचना ही वास्तव में 'साहित्य' है। क्रौञ्च-दम्पति में से नर को मार देने वाले बहेलिये के कठोर बाण और मादा की करुणा भरी आँखों से द्रवीभूत आदि कवि वाल्मीकि के हृदय से निम्नाङ्कित श्लोक का सहसा निकल पड़ना एक प्रकार से व्यक्ति और समाज की आलोचना ही है :—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ॥"

वस्तुतः साहित्य अथवा उसका एक अङ्ग काव्य मानव-जीवन की गति-विधि में न्याय चाहता है, जिस प्रकार 'साहित्य' मानव-जीवन का न्याय-निर्देशक है, ठीक उसी प्रकार 'आलोचना' साहित्य सृष्टि में न्याय का मानदण्ड है।

आलोचना का अर्थ है अच्छी तरह देख-भाल करके कारण सहित किसी वस्तु को अच्छा बुरा बताना। इसके लिए बुद्धि पक्ष का प्राबल्य आवश्यकीय है। कौनसी वस्तु अच्छी है और कौनसी बुरी, यह तो छोटा-सा बालक भी जानता है, परन्तु कारण जानते हुए अच्छे बुरे का ज्ञान शैशव के उपरान्त ही होता है। 'आलोचना' के लिए विश्लेषणात्मक बुद्धि चाहिए और वह बुद्धि प्रौढ़ावस्था में ही विकसित होती है। बिल्कुल यही बात साहित्य के क्षेत्र में भी घटित होती है। साहित्य की प्रौढ़ावस्था में ही आलोचना का जन्म होता है। यूनानी और संस्कृत भाषा के आलोचना-ग्रन्थ इस कथन के समर्थन में प्रमाण हैं। जिस समय ग्रीक भाषा में बड़े सुन्दर और प्रौढ़ नाटक लिखे जा चुके थे तदुपरान्त ही एरिस्टोटल ने आलोचना ग्रन्थ लिखे थे। विक्रम की तीसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी तक और आगे भी लौकिक संस्कृत साहित्य (Classical Sanskrit Literature) की प्रौढ़ावस्था मानी जा सकती है। सातवीं शताब्दी के उपरान्त ही हमें आनन्दवर्द्धन के 'ध्वन्यालोक', मम्मटाचार्य के 'काव्यप्रकाश' और विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' के दर्शन होते हैं। संस्कृत साहित्य में अलङ्कार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रस आदि पर जितने भी ग्रन्थ लिखे गये हैं, वे सब एक प्रकार से आलोचना-ग्रन्थ ही हैं। भामह का 'काव्यालङ्कार" नामक ग्रन्थ अलङ्कारों का परम प्रसिद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ है। भामह का समय विद्वानों ने ई० सन् ४०० और ६०० तक रक्खा है।

दण्डी का 'काव्यादर्श', उद्भट का 'अलङ्कार-सार-संग्रह', वामन का 'काव्यालङ्कार सूत्र' और उसकी 'वृत्ति-कविप्रिया', रुद्रट का 'काव्यालङ्कार', आनन्दवर्धनाचार्य का 'ध्वन्यालोक', राजशेखर की 'काव्यमीमांसा', अभिनव गुप्त का 'ध्वन्यालोक-लोचन', कुन्तल का 'वक्रोक्ति जीवित', धनञ्जय का 'दशरूपक', मम्मट का 'काव्यप्रकाश' और विश्वनाथ का 'साहित्य दर्पण' आदि ग्रन्थ ईसा की सातवीं और चौदहवीं सदी के बीच में ही लिखे गये। इससे सिद्ध होता है कि आलोचना का जन्म प्रौढ़ साहित्य के बाद ही होता है।

अलङ्कार और अन्य काव्याङ्गों का विवेचन करने वाली एक प्रामाणिक पुस्तक पण्डितराज 'जगन्नाथ' की 'रसगङ्गाधर' है जो कि सन् १६५० ईसा के लगभग लिखी गई थी। इसमें पण्डितराज ने आलोचना की आचार्य-पद्धति और खण्डन-मण्डन पद्धति को ग्रहण किया है। ग्रन्थकार ने 'रसगङ्गाधर' में सैद्धान्तिक आलोचना को प्रधानता देते हुए आलोचना के व्याख्यात्मक पद्धति को भी अपनाया है। संस्कृत के आलोचक 'रसगङ्गाधर' को उस परम्परा की

113014
पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम तथा प्रामाणिक आलोचना-पुस्तक मानते हैं।

संस्कृत-साहित्य में आलोचना की पद्धतियाँ हिन्दी-साहित्य की वर्त्तमान आलोचना-पद्धतियों के ढङ्ग पर नहीं हैं। हिन्दी में आलोचना-प्रणाली बहुत-कुछ अँगरेजी शैली पर चल रही है। वैसे हिन्दी ने संस्कृत से भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त की है। अँगरेजी के आधार पर हिन्दी में आलोचना के प्रमुख प्रकार चार हैं:—(१) व्याख्यात्मक आलोचना (२) सैद्धान्तिक आलोचना (३) निर्णयात्मक आलोचना (४) आत्माभिव्यञ्जक आलोचना। इसके अतिरिक्त कुछ प्रकार और भी माने जाते हैं जिन्हें ऐतिहासिक, तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक और वाद प्रधान आलोचना कहते हैं। परन्तु ये उपर्युक्त चारों प्रकारों के अन्तर्गत ही आ जाते हैं।

संस्कृत साहित्य में जितने प्रकार की आलोचनायें मिलती हैं, उनको यदि हम वर्गों में विभक्त करें तो सारी पद्धतियाँ ६ में समाविष्ट हो जाती हैं—(१) आचार्य-पद्धति (२) टीका पद्धति (३) शास्त्रार्थ पद्धति (४) सूक्ति-पद्धति (५) खण्डन-मण्डन-पद्धति (६) सर्वांगीण विवेचन-पद्धति।

उपर्युक्त वर्गों को दृष्टि-पथ में रखते हुए उनके अनुसार यदि हम ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नामों की सूची पृथक् पृथक् रूपेण तैयार करें तो नितान्त असम्भव है। क्योंकि बहुत से कवि तथा आचार्यों ने अपने एक ग्रन्थ में ही कई आलोचना पद्धतियों का अनुसरण किया है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने 'रस गङ्गाधर' में आचार्य पद्धति के साथ खण्डन-मण्डन पद्धति को भी अपनाया है। हाँ काल-क्रम के अनुसार हम इतना कह सकते हैं कि संस्कृत में आलोचना ग्रन्थों की पद्धतियों का क्रम इस प्रकार मिलता है—सर्व प्रथम आचार्य पद्धति, फिर सूक्ति-पद्धति, तत्पश्चात् टीका-पद्धति। हिन्दी में मौलिक आलोचना सर्व प्रथम सूक्ति पद्धति के रूप में ही प्रादुर्भूत हुई। संस्कृत में भी हमें कालिदास, भारवि, दण्डी माघ और बाण आदि कवियों के विषयों में आलोचनात्मक सूक्तियाँ मिलती हैं। हिन्दी में कबीर, तुलसी, सूर और नन्ददास के विषय में सर्व प्रथम कुछ सूक्तियाँ ही मिलती हैं। संस्कृत की आलोचनात्मक सूक्तियाँ—

"पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामि का सार्थवती बभूव॥"

—(महाकवि कलिदास की प्रशंसा)

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ-गौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यम् माघे सन्तित्रयोगुणाः॥"

—(कालिदास, भारवि, दण्डी और माघ की प्रशंसा)

"बाणोच्छिष्टं जगति सर्वम्"

—(बाण कवि की प्रशंसा)

"यदि हरि स्मरणे सरसं मनो, यदि विलास कथासु कुतूहलम् मधुर कोमल कान्त पदावलिं, शृणुतदा जयदेव सरस्वतीम्।"

—(गीतगोविन्द की भूमिका में जयदेव की कविता का उद्देश्य)

हिन्दी में संस्कृत की इस परम्परा ने पदार्पण किया और अब तक उसका आसन जमा हुआ है। अन्तर इतना है कि पद्यात्मक सूक्तियाँ अब गद्यात्मक हो गई हैं। पुस्तकों की भूमिका सम्मतियों और विज्ञप्तियों में हम सूक्ति पद्धति के ही दर्शन करते हैं। कबीर, सूर, तुलसी और केशव आदि के विषय में निम्नाङ्कित दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं:—

"तत्व तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठ।
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब झूठ॥"

× × ×

"सूर सूर तुलसी शशी, उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश॥"

सूक्तियों के रूप में आलोचना करने की प्रवृत्ति हमें रीतिकालीन कवियों में अधिक मिलती है। सूक्तियाँ, सूक्तियाँ ही हैं। हम उन्हें 'आलोचना' कहने से हिचकते हैं।

हिन्दी में आलोचना-साहित्य का जन्म तो वास्तव में भारतेन्दु-काल में ही हुआ। हिन्दी का आलोचना-साहित्य सबसे पहिले हमें पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों पर ही मिलता है। तत्पश्चात् पुस्तकों के रूप में।

अँग्रेजी में आलोचना-साहित्य को उन्नत अवस्था में देखकर हिन्दी के लेखक भी आलोचना की ओर बढ़े। आधुनिक ढंग की समालोचना सब से पहिले पं० बदरी-नारायण चौधरी ने 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका के अंकों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदर्शित की थी। चौधरीजी की आलोचना-प्रणाली हिन्दी पत्रों में कई वर्षों तक चलती रही। उस प्रकार की समालोचना प्रायः रचना के दोष-दर्शन को लेकर ही चलती थी। तदुपरान्त द्विवेदी-काल में स्वयं आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की ही आलोचना-पद्धति का प्रचार रहा। 'सरस्वती' के द्वारा उन्होंने हिन्दी भाषा को व्याकरण सम्मत बनाते हुए उसका पूर्णतः परिमार्जन किया। तथा 'सुन्दरताई', 'प्रभुताई' आदि को शुद्ध करके सुन्दरता तथा प्रभुता प्रदान की। लाला सीताराम ने कालिदास के कुछ ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया था। उन अनुवादों की आलोचना द्विवेदीजी ने बड़ी कड़ाई के साथ की थी। यह आलोचना-पुस्तक 'हिन्दी कालिदास की आलोचना' के नाम से प्रसिद्ध है। सारी पुस्तक में प्रायः दोषों की ही भरमार है। उसके पश्चात् आचार्यजी ने संस्कृत के कुछ महाकवियों की भाव-भाषा-सम्बन्धी समालोचनाएँ भी कीं जैसे 'विक्रमांक देव चरित चर्चा', 'नैषध चरित-चर्चा' और 'कालिदास की निरंकुशता'। भारतेन्दु और द्विवेदी-काल में आलोचना का अर्थ रचना के दोष दिखाना ही माना जाता था। द्विवेदी युग में पुस्तकों की आलोचना पर पुस्तकें लिखी गईं। यह कार्य भारतेन्दु युग में नहीं हुआ था।

द्विवेदीजी के ही जीवन काल में किन्तु उनके प्रभाव से स्वतन्त्र मिश्रबन्धुओं (श्याम बिहारी मिश्र, गणेश बिहारी मिश्र और शुकदेवबिहारी मिश्र) ने समालोचना में गम्भीरता और शास्त्रीयता का पुट देकर उसके स्तर को ऊँचा किया। उन्होंने कवियों की कृतियों की अच्छाई, बुराई तथा भावे और भाषागत विशेषताएँ बतलाते हुए उनके स्थान के सम्बन्ध में अपना निर्णय भी दिया। बदरी नारायण चौधरी, महावीरप्रसाद द्विवेदी और मिश्रबन्धुओं को हम निर्णयात्मक आलोचना के समर्थक कह सकते हैं। उनकी कृतियों में काव्य के अच्छे बुरे का निर्णय दे दिया गया है। 'मिश्रबन्धु विनोद' और 'हिन्दी नवरत्न' मिश्र-बन्धुओं के प्रसिद्ध आलोचनात्मक ग्रन्थ हैं। मिश्र बन्धुओंने बिहारी की अपेक्षा देव को ऊँचा स्थान देकर एक साहित्यिक विवाद को जन्म दिया। पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने मिश्रबन्धु के विपरीत बिहारी का ऊँचा स्थान दिखाने के लिए उन्होंने 'बिहारी सतसई' पर अपनी तुलनात्मक समालोचना लिखी। इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने शर्माजी को बारह सौ रुपये का मङ्गला प्रसाद पारितोषिक दिया, मिश्रबन्धुओं के पण्डित कृष्ण बिहारी मिश्र ने बड़ी विद्वत्ता और निष्पक्षता के साथ तुलनात्मक आलोचना-प्रणाली को अपनाते हुए बिहारी की अपेक्षा देव को ऊँचा कवि सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यदि हम हिन्दी के आलोचना साहित्य के काल का विभाजन करें तो तीसरा काल मिश्रबन्धु-काल से ही पुकारा जायगा। इससे पहिले के कालों को भारतेन्दु और द्विवेदी-काल के नाम से पुकारेंगे। वास्तव में भाषा, भाव, कला, छन्द, रस, अलङ्कार और शैली आदि का विवेचन करते हुए मिश्र बन्धुओं ने कवि कृतियों पर अपना उचित मत प्रकट किया। काव्य के बाह्य पक्ष को परखने वाले आलोचकों में मिश्रबन्धुओं का नाम सबसे ऊपर लिखा जायगा।

मिश्रबन्धु-काल के उपरान्त आलोचना में श्यामसुन्दर तथा शुक्ल काल आया। इस काल में आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी, सूर और तुलसी पर व्याख्यात्मक आलोचनाएँ लिखीं। उक्त कवियों की रचनाओं को मनोविज्ञान, इतिहास, भाषा, भाव, रस, काल आदि हर एक दृष्टि से लोकमङ्गल की कसौटी पर कस कर देखा गया। कवि के उद्देश्य और विचारों को समझकर रचना के गम्भीर रहस्यों का उद्घाटन शुक्लजी ने बड़े तथ्यपूर्ण ढङ्ग से किया है। शुक्लजी के सैद्धान्तिक आलोचना सम्बन्धी मौलिक निबन्ध चिन्तामणि में संग्रहीत हैं। उनकी व्याख्यात्मक आलोचनाएँ भूमिकाओं के रूप में निकली हैं। उनके इतिहास में खोज का अभाव तो नहीं है किन्तु उसकी अपेक्षा गम्भीर आलोचना अधिक है। त्रिवेणी में उनकी आलोचनाओं की बानगी दी गई है। अँगरेजी और संस्कृत भाषा के आलोचना-सिद्धान्तों को लेकर डा० श्यामसुन्दर दास ने 'साहित्यालोचन' नाम की एक उत्कृष्ट पुस्तक लिखी। इसमें साहित्य के प्रत्येक अङ्ग पर सैद्धान्तिक रूप से प्रकाश डाला गया है। 'साहित्यालोचन' को हम सैद्धान्तिक आलोचना का प्रसिद्ध ग्रंथ कह सकते हैं। श्यामसुन्दरदासजी ने भी तुलसीदास पर एक ग्रन्थ लिखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने मूल गुसाईंचरित को आधार लेकर तुलसीदासजी का जीवन दिया है। जिस प्रकार शुक्लजी निर्गुण वाद के विरुद्ध रहे हैं उसी प्रकार श्यामसुन्दरदासजी तथा उनके शिष्य बड़थ्वालजी निर्गुणवाद के पक्ष में रहे हैं।

श्यामसुन्दर तथा शुक्ल काल में हिन्दी में आलोचना-साहित्य अंग्रेजी भाषा के आलोचना साहित्य के समकक्ष आगया था। उस काल में व्याख्यात्मक (विवेचनात्मक) और निर्णयात्मक दोनों ही ढङ्ग की आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी गईं। पण्डित कृष्णशङ्कर शुक्ल की 'केशव की काव्य कला' गिरीशजी की 'गुप्तजी की काव्य धारा' सत्येन्द्रजी की 'गुप्तजी की कला' और शिलीमुख की 'सुकवि समीक्षा' आदि पुस्तकें कवियों की रचनाओं के बाह्य एवं आभ्यन्तर स्वरूपों का अच्छा परिचय देती हैं। पाश्चात्य आलोचकों की विचार धाराओं को लेकर बरुआजी ने 'विश्वसाहित्य' लिखा, जिसमें यूरोपीय साहित्य के विकास पर भी प्रकाश डाला गया है। ब्रजभाषा के कवियों की सच्ची परख डा० 'रसाल' की है।

वर्त्तमान काल हिन्दी आलोचना-साहित्य का पाँचवाँ काल है। इसमें वाद प्रधान आलोचनाएँ अधिक लिखी जा रही हैं। इस काल के दो प्रकार के आलोचक हैं—एक तो शुक्लजी की व्याख्यात्मक और मूल्याङ्कन सम्बन्धी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले—उनमें लोकमङ्गल की अपेक्षा कला और सम्बन्धी मूल्यों को अधिक मान दिया है इसमें मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवादी हैं जो आर्थिक-मूल्यों को अधिक महत्व देते हैं। डा० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त आदि इसी प्रकार की आलोचनाएँ लिखते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के रिक्त स्थान की पूर्ति डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी कर रहे हैं। उनकी आलोचनाओं में शुक्लजी की सी ही गम्भीरता और पाण्डित्य पाया जाता है। शुक्लजी ने छायावादी कविताओं की आलोचना करने में न्याय नहीं किया था। प्राचीन परिपाटी पर की जाने वाली कविताओं को ही वे कवित्व-पूर्ण समझते थे। सूर, तुलसी आदि से उनकी इतनी अधिक चिपक होगई थी कि छायावादी कविताओं की आलोचना करना वे पसन्द भी नहीं करते थे। वास्तव में शुक्लजी छायावादी कवियों को समझने में भूल कर गये हैं। उनके तद्विषयक कथन में हमें कुछ कच्चापन ही मिलता है। परन्तु डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्राचीन और अर्वाचीन दोनों वालों के कवियों की बड़ी सार गर्भित आलोचनाएँ लिखी हैं। वे हिन्दी के प्राचीन कवियों की भाँति ही नवीन कवियों की सहानुभूतिपूर्ण गंभीर आलोचना करते हैं। इस समय सर्व श्री बाबू गुलाबराय, रामदहिन मिश्र, सुधांशु, डा० रामकुमार वर्मा, माधवजी, नन्ददुलारे वाजपेयी, कन्हैयालाल सहल, गङ्गाप्रसाद पाण्डेय, डा० नगेन्द्र तथा सत्येन्द्र आदि ऐसे ही आलोचक हैं जो कि प्राचीनता के लिए श्रद्धालु और नवीनता के परम प्रशंसक हैं।

श्री गुलाबरायजी की 'सिद्धान्त और अध्ययन' तथा 'काव्य के रूप' पुस्तकें इस बात को प्रकट करती हैं कि उन्होंने आलोचना क्षेत्र में यूरोपीय और भारतीय आचार्यों का अच्छा समन्वय किया है। उन्होंने प्राचीन सिद्धान्तों को एक नवीन आलोक में रख कर उनके स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया है। बाबूजी में हिन्दी के प्रमुख प्राचीन और नवीन कवियों की आलोचना मिलती है। उन्होंने कलापक्ष का स्पर्श तो किया है किन्तु भावपक्ष को अधिक महत्ता दी है। यह पुस्तक कवियों के रसास्वादन में सहायक होगी। डा० नगेन्द्र की 'विचार और अनुभूति' भी इसी प्रकार की पुस्तक है जो कि प्राचीन और नवीन तथा पाश्चात्य और भारतीय सिद्धान्तों को लेकर लिखी गई है। उनकी 'साकेत एक अध्ययन' और 'सुमित्रानन्दन पन्त' की विशेष ख्याति है। उन्होंने इन पुस्तकों में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का ही विधिवत् विवेचन किया है। 'सुमित्रानन्दन पन्त' में छायावाद के तत्वों और कला का अच्छा विश्लेषण हुआ है। आपकी आलोचनाओं में मनोविज्ञान का भी पुट रहता है।

प्रगतिशील लेखकों में 'कला जीवन के लिए' के सिद्धांत को अपनाने वाले डा० रामविलास जी शर्मा बहुत प्रसिद्ध हैं। हिन्दी-साहित्य के लेखकों और कवियों को शर्मा जी ने सामाजिक विकास-क्रम तथा आर्थिक चेतना की कसौटी पर कसा है। नयी पीढ़ी के आलोचकों के प्रगतिवादी क्षेत्र में शर्माजी अग्रणय हैं। अनोखी और ठोस युक्ति, सबलतर्क, पैनी सूझ और फौलादी पकड़ के लिए आप आलोचना

(शेष पृष्ठ ३५ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिवाद और उसकी सार्थकता

श्री गोवर्द्धन शर्मा

प्रगतिवाद की व्याख्या—संस्कृत के अनुसार प्र० + गम् + क्तिन् = प्रगति होता है, जिसका अर्थ पूर्ण या उत्कृष्ट रूप से किसी भाव को, किसी विचार को गति मान करना है। प्रगति का संश्लिष्ट अर्थ केवल विकास हो सकता है। 'मेरे विचार से परिवर्तित होते हुए विकसित स्वरूप को ही प्रगति कहेंगे, अनन्तर वाद शब्द उसमें संयुक्त होगा।'* आगे बढ़ना, विकास करना ही प्रगति है। ऐसी दशा में जो साहित्य जीवन को आगे बढ़ाने में सहायक हो, वही प्रगतिशील साहित्य है। 'इस दृष्टि से विचार करेंगे तो तुलसीदास सबसे बड़े प्रगतिशील लेखक प्रमाणित होते हैं। भारतेन्दु और द्विवेदीयुग के लेखक, मुख्यतः मैथिलीशरण गुप्त भी प्रगतिवादी कवि हैं।' किन्तु आज के तथाकथित प्रगतिशील हमारी इस मान्यता को अस्वीकृत कर देंगे। ये सभी तो उनके मतानुसार प्रतिक्रियावादी लेखक सिद्ध किये जा सकते हैं अतः 'प्रगति का अर्थ आगे बढ़ना अवश्य है, परन्तु एक विशेष ढङ्ग से, एक विशेषदिशा में †' उसकी एक विशिष्ट परिभाषा है जिसका आधार है मार्क्स का दर्शन, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त। प्रगतिवाद को ठीक से समझने के पहिले हमें मार्क्स के दर्शन को समझ लेना आवश्यक है, जोकि प्रगतिवाद की आधार शिला है।

मार्क्स के मुख्यतः तीन सिद्धान्त हैं। एक तो है इतिहास की भौतिक व्याख्या (Materialistic interpretation of History), दूसरा अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) और तीसरा श्रेणी युद्ध (Class-War)‡।

मार्क्सवाद की व्याख्या—इतिहास की अपनी व्याख्या में मार्क्स समाज की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करता है। उसकी व्याख्या का मूल विश्वास या सिद्धान्त है कि ऐतिहासिक घटनाओं का आधार आर्थिक या भौतिक होता है। अब तक इतिहासकार उन घटनाओं का कारण राजनीतिक चाल, या महात्वाकांक्षा ही बताते थे। मार्क्स ने कहा कि अन्ततोगत्वा ऐतिहासिक घटनाओं के प्रत्येक आधार में आर्थिक शक्तियाँ ही कार्य करती हैं।

उत्पादन के तरीके बदलते रहते हैं। जब उनकी दशा जैसी होती है उसी के अनुरूप राजनैतिक जीवन की भी दशा होती है। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ की यूरोपीय औद्योगिक क्रान्ति के कारण हम पहले पहल थोड़ी संख्या में, सूत्ररूप, कम पूँजीपतियों को चाहते हैं। शनैः शनैः समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया (१) पूँजीवादी वर्ग या मालिक (२) सर्वहारा वर्ग या मजदूर जगत। इन दोनों वर्गों के अपने स्वार्थ एक दूसरे के विपरीत हैं। यही वर्ग सङ्घर्ष का बीजारोपण कर देता है। मार्क्सवादी इसी को श्रेणी युद्ध कहते हैं और कहते हैं कि सम्पत्ति पर और जमीन पर जब तक मनुष्यों का निजी अधिकार रहेगा, तब तक संपत्तिशाली सर्वदा उन मनुष्यों पर अन्याय तथा अत्याचार करेंगे जो सम्पत्तिहीन हैं अथवा श्रम ही जिनकी एक मात्र सम्पत्ति है।

साथ ही में उनकी मान्यता है कि जो धन अथवा सम्पत्ति पूँजीपति एकत्र कर पाते हैं, वह भी श्रमिकों के अतिरिक्त श्रम के फलस्वरूप। वह धन श्रमिकों को ही मिलना चाहिए था क्योंकि श्रम ही उत्पादक है। इस प्रकार संक्षेप में हमने देखा कि मार्क्स का दर्शन 'वर्गसंघर्ष', 'इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या' और 'अतिरिक्त मूल्य' पर निर्भर है।

---

* शिवचन्द्र—'प्रगतिवाद की रूप रेखा।'

† डा० नगेन्द्र—'विचार और विवेचन।'

‡ C. E. M. Joad—Introduction to Modern Political Theory.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्क्सवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति—मार्क्स के इस दर्शन से अनुप्राणित साहित्य ही प्रगतिशील साहित्य कहला सकता है। इसे जरा घुमाफिरा कर कहा जा सकता है कि 'प्रगतिशील साहित्य सदा साम्राज्यविरोधी होता है।'+ साम्राज्यवाद स्वयं पूँजीवाद की ही एक प्रवृत्ति है है ऐसी दशा में साम्राज्यवाद ही का विरोध है और इस प्रकार हम पुनः वर्गसङ्घर्ष के सिद्धान्त पर आ पहुँचते हैं। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि 'प्रगतिवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने काव्य में राजनीति की स्थापना की है।'× पर प्रश्न यह है कि काव्य में इन सिद्धान्तों को आधार मानना कहाँ तक उचित है? प्रगतिवादी एक विवाद ग्रस्त जीवन सिद्धान्त को काव्य कसौटी बना लेने की अक्षम्य गलती करते हैं।* कुछ लोगों का मत है कि मार्क्स ने मनुष्य को एक सङ्कुचित दृष्टि से देखा अतः इनका मत सर्वांश में सत्य नहीं हो सकता। 'मनुष्य और पशु में तात्विक भेद है। मनुष्य का एक इकाई के रूप में परात्मक अध्ययन मार्क्स न कर पाये थे। मनुष्य समाज को पशु समाज की तरह एक (Organism) के रूप में मान कर ही मार्क्स ने बाहर बाहर से नितान्त परात्मक विचार किया था। इस यान्त्रिक दृष्टिकोण ने स्वतन्त्र मानव चेतना अथवा मानवमन को सर्वथा उपेक्षा कर दी।' ऐसी दशा में इन एकाङ्गी सिद्धान्तों अथवा व्यवहार दर्शन पर आधारित साहित्य भी संकुचित और एकाङ्गी ही होगा। यदि प्रगतिवाद के विरोधियों के पास कोई बलशाली तर्क है तो, कहना न होगा, यही तर्क है जिसके आधार पर हमें वे पुनः सोचने को मजबूर कर देते हैं।

बड़ा आश्चर्य तो इस बात का है कि अनेक प्रगतिवादी अपने जोश और कट्टरपन से अनुप्राणित होकर मार्क्स, एंगेल्स से भी आगे बढ़ जाते हैं और अपना दायरा बहुत ही सीमित कर लेते† हैं। 'जनबल की दुर्दम शक्तियों का लौकिक सत्य और असत्य से सङ्घर्ष (मार्क्सवादी सिद्धान्तों की वैज्ञानिक भूमिका में) जब तक काव्य के मूलाधारों से सम्पर्क और दृढ़ पारस्परिक विकास नहीं स्थापित कर लेता तब तक मेरी समझ में सच्चे प्रगति काव्य की रचना असंभव है।'* और प्रगतिवादी अपने विचारों में इतने सङ्कीर्ण हो गये कि हिन्दी के तरुण राष्ट्रीय कवि दिनकर को क्षोभ से अकुलाकर कहना पड़ा—'प्रगति शब्द में+ जो नया अर्थ ठूँसा गया है उसके फलस्वरूप हल और फावड़े कविता के सर्वोच्च विषय सिद्ध किये जा रहे हैं और वातावरण ऐसा बनता जा रहा है कि जीवन की गहराइयों में उतरने वाले कवि सिर उठा कर नहीं चल सकें? फिलहाल हम इस विषय को यहीं छोड़ते हैं और देखें कि मार्क्सवादी आलोचक किस रूप से साहित्य को लेते हैं।

काडवेल एक अंगरेज लेखक था जिसने मार्क्सवादी सिद्धान्तों को आधार बना कर 'भ्रम और वास्तविकता' (Illusion and Reality) नाम की एक समीक्षा पुस्तक लिखी है और काव्य के उद्भव और विकास का विस्तृत विवेचन किया है।

काडवेल के समीक्षा सिद्धान्त—'काडवेल समाज और साहित्य का घनिष्ट सम्बन्ध मानता है। उसका कहना है कि समाज सङ्गठन का आधार आर्थिक है अतएव काव्य का मूलाधार आर्थिक ही ठहरता है। पहले पहल काव्य का उपयोग समाज के लाभ के लिये होता था। समाज में सुख शान्ति और आनन्द का प्रादुर्भाव तथा प्रकृति से सङ्घर्ष कर उस पर मानव समाज की विजय स्थापित करना—ये दो ही कार्य कविता के थे। वर्तमान समय में यह बात नहीं रह गयी है।† काव्य धनिकों और शोषकों के बीच पलकर समाज से विलग हो गया है अतः आवश्यकता इस बात की है कि काव्य पहले की भाँति पुनः समाज के बीच खड़ा हो। समाज का सबसे दुखी अङ्ग श्रमिक वर्ग है। काव्य को उसके सुखसाधन में योग देना चाहिये। उसमें कर्म की

+ घोषणापत्र—'प्रगतिशील लेखक सङ्घ'।

× दिनकर—'मिट्टी की ओर'

* पं० नन्ददुलारे वाजपेयी—'नई धारा' वर्ष २ अङ्क १-२ पृष्ठ ७१।

† वीरेन्द्रकुमार—'प्रकाश की खोज में'।

* 'अंचल'—'लाल चूनर' की भूमिका।

+ 'दिनकर'—'रसवन्ती' की भूमिका।

† विजयशंकर मल्ल—'हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा जगानी चाहिए। मार्क्सवाद की स्थापना से ही विश्व में वास्तविक सुखशान्ति का आविर्भाव हो सकता है। इसलिए काव्य को मार्क्सवाद का पल्ला मजबूती से पकड़ कर उसके प्रसार के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये।'

काडवेल के मत में कतिपय शृङ्खलाबद्ध सूक्ष्म विचारों की अभिव्यक्ति काव्य का वास्तविक लक्ष्य नहीं है। उसका वास्तविक लक्ष्य है 'सामूहिक भावों की व्यञ्जना' द्वारा समाज को गत्वर बनाना।*

काव्य समाज के विकास में योग देने वाला एक अस्त्र है। वह 'श्रम' के लिए मनुष्य को प्रेरित करता है और 'श्रम' को हलका भी बना देता है।

इस प्रकार उक्त तीन प्रमुख मान्यताओं द्वारा काडवेल काव्य के उपयोगितावादी पक्ष का चरम उत्कर्ष प्रदर्शित करता है और अन्य सभी काव्यों को बेकार समझता है।

प्रचार बनाम साहित्य—काडवेल की मान्यताओं का समर्थन अनेक मार्क्सवादी चिन्तकों ने किया है। वे साहित्य को प्रचार का श्रेष्ठ शक्तिशाली साधन मानते हैं।'† इस पर अनेक मतभेद हैं। फ्रांसीसी लेखक विक्टर ह्यूगो की गणना संसार के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में की जाती है, उन्होंने अपने एक उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि मैं यह स्पष्टरूप से स्वीकार करता हूं कि मेरे इस उपन्यास में प्राणदण्ड की प्रथा को उठा देने के लिये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप में युक्तियाँ उपस्थित की गयी हैं।'× इस मत के समर्थकों का मत है कि प्रत्येक साहित्य किन्हीं विश्वासों के प्रचार का काम ही करता है। श्री कीथ भी मानते हैं कि कालिदास ने 'मानव जीवन के गम्भीरतम प्रश्नों के लिए कोई संदेश नहीं दिया है।' + ऐसा जान पड़ता है कि गुप्त सम्राटों ने जिस ब्राह्मणधर्मानुमोदित व्यवस्था की महिमा प्रतिष्ठित की थी, उससे कालिदास पूर्ण सन्तुष्ट थे और परोक्ष रूप में उनकी कृतियों में उस व्यवस्था का समर्थन था। ऐसी दशा में प्रगतिवादी अपने साहित्य को प्रचार का साधन बनाना चाहते हैं तो आपत्ति की कौनसी बात है।

किन्तु इस तथ्य को सर्वसम्मत नहीं कहा जा सकता है। 'काव्य का जन्म विस्मय और कुतूहल से हुआ, धर्म और श्रद्धा की गोद में पलकर वह बड़ी हुई, बुद्धि के युग ने उसे प्रौढ़ता दी, अब अगर प्रचार उसका एकमात्र उद्देश्य बना दिया जाता है तो कविता की मृत्यु में किसी प्रकार सन्देह नहीं होना चाहिये।* कवि संवेदनशील प्राणी है नेता नहीं। + राजनीतिज्ञ की भाँति कतिपय निश्चित सीमा में वह बंधा नहीं रह सकता। 'हम कवि से आशा करते हैं कि वह हमें संवेदनशील बना दे। हम उससे यह आशा हरगिज नहीं रखते कि वह हमें वेदान्तवाद समझा दे या समाजवाद के तत्व रटा दे।.....इन बातों को हम अन्यत्र पा सकते हैं।× दिनकर तो घोषणा करते हैं कि 'साहित्य के क्षेत्र में हम न तो गोयबल्स की सत्ता मानने को तैयार हैं, जो हम से नाजीवाद का समर्थन लिखवाये और न किसी स्टेलिन की ही जो हमें साम्यवाद से तटस्थ रह कर फूलने फलने नहीं दे सकता।' इटली के साहित्यशास्त्री क्रोचे कला का कोई उद्देश्य ही नहीं मानता। ऐसी दशा में मार्क्सवाद का प्रचार साहित्य का अङ्ग हो या नहीं, उसका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

पर हमारी मान्यता है कि दोनों मत गलती पर हैं। इस प्रश्न पर हमें मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। प्रचार बुद्धितत्व से सम्बन्ध रखता है। किसी वस्तु अथवा भाव को बार-बार दोहराना, तर्क से उसकी पुष्टि करना प्रचार के अङ्ग हैं—साहित्य के नहीं। साहित्य हृदय से सम्बन्धित होता है। तर्क यहाँ सफल नहीं हो पाते यहाँ तो भावना ही चाहिए। दोनों में यही मुख्य अन्तर है। 'साहित्य की सबसे बड़ी, प्रचण्ड और अद्भुत शक्ति अनुभूति

* Cristopher Candwel ...lu ion and Real ty.

† Lenin—On Art & Literature

× VictorHuge—'Last days of Condemned' की भूमिका में

+ A. B. Keith—The sanskrit Drama.

* दिनकर—'मिट्टी की ओर'

+ Cecil dey—Hope for poetry

× हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हमारी साहित्यिक समस्यायें'

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जिसके आलोक में पड़ कर वस्तु, आदर्श और आदर्श सत्य हो जाता है।* ऐसी दशा में साहित्य जहाँ प्रचार के पीछे लगेगा तो निजत्व खो बैठेगा। पर प्रचार भी छिपे रूप में, ध्वनि और व्यङ्ग की सहायता लेकर करना चाहिए। मार्क्स स्वयं अपने साहित्यिक मूल्यांकन में किसी प्रकार के राजनीतिक या सामाजिक पूर्वाग्रहों से मुक्त रहता था।+ एंगेल्स की धारणा इस विषय में बहुत स्पष्ट है। उसने कहा है कि लेखक के राजनीतिक विचार जितने ही छिपे हों, उतना ही अच्छा है। स्वयं मार्क्स ने कहा है कि रचना में लेखक के सिद्धान्त प्रच्छन्न रूप से आने चाहिए। किन्तु खेद है कि आज के कुछ प्रगतिवादी इस भावना में विश्वास नहीं करते उनके लिए तो शा, और गार्ल्सवर्दी भी प्रगतिशील नहीं हैं।

प्रगतिवाद के विषय—हम देख ही चुके हैं कि प्रगतिवादी साहित्य का आधार मार्क्सवाद है। अतः पूँजीवादी समाज व्यवस्था की मजाक, बुर्जुआ व्यवस्था के प्रति व्यङ्ग, शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा, अत्याचारों का विशद वर्णन, सामन्तवादी तत्वों के विरुद्ध प्रचार, साम्राज्यवादी भावना के प्रति आक्रोश स्वाभाविक रूप से उसके विषय बन गये हैं। परन्तु चूँकि यह प्रगतिवाद हिन्दी में छायावाद व रहस्यवाद की वायवीय कल्पना के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में पनपा है अतः इसमें भदास, भोंड़ापन, भाषा में अमाधुर्य और कल्पनाओं में नवीनता का जन्म हुआ। साथ ही में राष्ट्रीय-भावना व फ्रायड की चिन्तनधारा का भी इस पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। रूस सभी देशों के प्रगतिवादियों का प्रेरणास्थल है अतः 'लाल झंडा', मास्को अब भी दूर है, लालसेना, 'महामानव स्टालिन' जैसी प्रशस्तियों की भी कोई कमी इस क्षेत्र में नहीं है। विस्तार भय से उदाहरण देना संभव नहीं है।

प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ—प्रगतिवाद के विषय समझने के लिए उसकी प्रवृत्तियों पर विचार कर लेना आवश्यक है। मूल रूप से हम इसकी निम्न ६ प्रवृत्तियों को देख सकते हैं।

(१) स्वतन्त्रता की भावना और अन्तर्राष्ट्रीयता
(२) परिवर्तन की पुकार
(३) समाजवादी यथार्थवाद
(४) सामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता
(५) काव्य के विषय में अति सामान्य धारणा
(६) बौद्धिकता और व्यंग का प्रसार

धर्म व नीति—

१—स्वतन्त्रता की भावना अनेक रूपों में व्यक्त की जाती रही है। समाजद्वारा लगाये गये बन्धनों, रूढ़ियों और मर्यादा के प्रति विद्रोह, सामाजिक पूँजीवादी व्यवस्था से स्वतन्त्रता प्राप्त करने की आकुलता, धर्म के नियमों से मुक्ति, अर्थ की दासता और संस्कारों से विद्रोह, राष्ट्रीयभावना के प्राचीन मूल्यों की अवहेलना सभी इसी स्वातन्त्र्यभावना के प्रकार हैं। धर्म व नीति का बन्धन यहाँ लागू नहीं होता। प्रगतिवादियों के मत में 'साहित्यिक पादरी या धर्मोपदेशक नहीं है। नीति या धर्म के उपदेश देने के लिए वह साहित्य-रचना करने नहीं बैठता*। क्योंकि नीति ईश्वर की दी हुई वस्तु नहीं है और न वह समाज निरपेक्ष है। इसलिए प्रगतिशील साहित्य में दिखलाया गया है कि नीति का आधार समाज की सुविधा-असुविधा नहीं है। समाज की जिस श्रेणी का जिस युग में आधिपत्य रहा है, उसने अपनी सुविधाओं पर, अपने स्वार्थ और विशेषाधिकारों पर ध्यान रख कर नीति वाक्यों की रचना की है, उन पर धर्म का लेबुल लगा दिया है। ऐसी दशा में कला भी श्रेणी विशेष की ही वस्तु है।× धर्म के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह जनता के लिए अफीम जैसा काम करता है किन्तु यदि यही बात गत अर्द्धशताब्दी में यूरोप के साहित्य के सम्बन्ध में कहें तो कितनी यथार्थ होगी।+ इस प्रसङ्ग पर हम एक और

---

* दिनकर—'रसवन्ती' की भूमिका में।

+ विजयशङ्कर मल्ल—हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद।

* प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र—साहित्य की वर्तमानधारा

× Red Virtue—Art isofclass struggle.

+ रोम्यां रोला—'I will not rest'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण यह बताने के लिए काव्य के लिए धर्म या नीति आवश्यक नहीं हैं, दे रहे हैं। गेटे ने एक बार कहा था कि "लोग सत्य की इस सरल उक्ति पर विश्वास नहीं करना चाहते कि कला का एक मात्र उन्नत ध्येय उच्चभाव को प्रतिबिम्बित करना है।" इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध साहित्यालोचक कार्लाइल जब एक बार बर्लिन गये थे तो किसी भेंट के अवसर पर कुछ लोगों ने गेटे पर यह दोष लगाना आरम्भ किया कि इतने प्रतिभाशाली कवि होने पर भी उन्होंने धर्म सम्बन्धी बातों की अवहेलना की है। कार्लाइल ने उनकी संकीर्णता से कुढ़ कर कहा—"Meine Herren! did you never hear the story of that man who vilified the Sun because it would not light his cigar?" यही बस साहित्य व धर्म के सम्बन्ध में कही जा सकती है। इसी प्रकार की स्वातन्त्र्य-भावना हम अन्य क्षेत्रों में भी पाते हैं।

नूतन-पुरातन—

२—दूसरी प्रवृत्ति परिवर्तन की प्रकार है। प्रगतिवादी गलती से यह कह बैठते हैं 'पुरानी कला और साहित्य यद्यपि अभी भी आकर्षक व सुन्दर लगते हैं, किन्तु भीतर से उनमें सड़ांध होती है क्योंकि वह जनता से दूर है।* वहाँ स्वयं लेनिन ने इसके विपरीत मत दिया है। कट्टरपन्थी लोगों को लेनिन के इन शब्दों से लाभ उठाना चाहिए। 'जो सुन्दर है, वह पुरातन होने पर भी हमारे लिए मान्य होना चाहिए। जो वास्तव में सुन्दर है उसकी उपेक्षा हम केवल इसलिये क्यों करें कि वह पुरातन है? नूतन को केवल नूतन समझ कर ही हम उसकी उपासना क्यों करें? ऐसा करना निरी मूर्खता होगी।×

यथार्थ बनाम आदर्श—

३—समाजवादी यथार्थवाद को प्रगतिशील साहित्य में बड़ा महत्व दिया जाता है। पतनोन्मुख पूँजीवादी संस्कृति का यथार्थ चित्रण करके उसके प्रति अनास्था पैदा करना बड़ी विशेषता मानी जाती है। कहा जा सकता है कि मानव जीवन के सम्पर्क से विच्छिन्न होकर केवल शून्य में ही कल्पना की सृष्टि करना अनुचित है। किन्तु इसके विपरीत कहा जा सकता है—'साहित्य कला की कुछ ऐसी सूक्ष्म, प्रभावशाली और सुन्दर विशेषताएँ हैं जो जीवन के स्थूल यथार्थ से मेल नहीं खाती।× आदर्श हीन साहित्य अल्पायु होता है।+ विफलताओं को कबूल कर लेने से मनुष्य की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और सङ्घर्ष की उपादेयता में से उसका विश्वास लुप्त हो जाता है, लेकिन जिसके पास आदर्श है वह किसी भी प्रकार की विफलता मान ही नहीं सकता।' किन्तु हम कह सकते हैं कि मार्क्सवाद के पास भी जनहित का अपना आदर्श है और इसलिये उसपर यह दोषारोपण अनुचित है।

सामयिक अथवा चिरंतन समस्यायें—

४—यह तो एक सर्वसम्मत सत्य है कि साहित्य कुछ विशेष समस्याओं को लेकर चलता है। अब प्रश्न यह उठता है कि काव्य सामयिक समस्याओं को लेकर चले अथवा मानव की जन्मजात समस्याओं को लेकर चले। इस व्यर्थ के वादविवाद में नहीं पड़ कर हम तो केवल यही कहना चाहेंगे कि सामयिकता के मोह में पड़ कर कहीं हम उस अन्तर्दृष्टि को नहीं खो बैठे जो हमें कलाकार बनाती है। अतएव मेरी धारणानुसार पुरानी नीति की कहावत याद रखना ही इस दिशा में उचित है—'अति सर्वत्र वर्जयेत।'

जनता का साहित्य—

५—काव्य को प्रगति वादी जन साधारण की वस्तु मानते हैं। आस्कर वाइल्ड की इस मान्यता में कि काव्य लोकप्रिय नहीं होना चाहिए, अब आस्था नहीं रही। रस्किन ने कहा था—'कला का यदि कोई मूल्य हो सकता है तो वह यही कि केवल मुट्ठीभर विलासी धनिकों और अज्ञ मिलमालिकों के लिए नहीं है।' आज के जनतन्त्रवादी

* Chou Enlai—The peoples new Literature.

× Lenin—On Art and (१) Literature.

× नन्ददुलारे वाजपेयी—साहित्य सुषमा।

+ दिनकर—मिट्टी की ओर।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग में इस उक्ति का विरोध करना अपनी अल्पज्ञता का ढिंढोरा पीटना ही होगा।

प्रगतिवादी साहित्य में सत्य और भावपक्ष (काव्य की आत्मा)—भावना की दृष्टि से हम प्रगतिशील साहित्य में अनेक भ्रान्त धारणाओं का प्रचलन पाते हैं। रोमांस, प्रेम व हृदय की कोमल वृत्तियों पर मानों बुद्धिवाद हावी हो जाना चाहता है। इन वृत्तियों को वह पलायनवादी व स्वप्नद्रष्टा की मूलक प्रवृत्ति मानता है। उसे हीन समझता है। प्रगतिवादी यह भूल जाता है कि रूसो ने फ्रांस की राज्य क्रांति को किस हद तक प्रभावित कर दिया था, इलियट की Waste land कविता ने विश्लववादी भावना में कितनी वृद्धि की। अपने युग के एकान्त वस्तुवादी विज्ञान के प्रति विद्रोह करके रूसो ने बाहर की वास्तविक कठोरता, विषमता और कुरूपता पर आत्मिक सौंदर्य और समता द्वारा विजय पाकर, पूर्ण सौंदर्य, पूर्ण स्वातंत्र्य, पूर्ण मानवता और समीचीन समता का सपना देखा था। उसके इसी स्वप्न ने नवीन आत्मप्रकाश की जो धाराएँ प्रकाशित कीं, उन्होंने तमाम यूरोप की आत्मा में एक उथल-पुथल पैदा कर दी और अपने युग के चिन्तन की धुरती बदल दी। उसी स्वप्न ने फ्रेंच क्रांति जैसी महान् घटना को जन्म दिया। इस दृष्टिकोण से स्वयं मार्क्स तो सबसे बड़ा रोमांटिस्ट दीख पड़ता है जो जगत बदलने के स्वप्न देखता था—अस्तु

अब हम सत्य पर विचार करेंगे। मार्क्सवादी विचारक की दृष्टि में बिना मार्क्सवादी विचारधारा अपनाये साहित्यकार को उस 'सत्य' की प्राप्ति नहीं हो सकती जो उसके लिए अत्यावश्यक है। * किन्तु सत्यजीवन को आँकने की क्षमता प्रगतिवाद में ही है, यह गर्वपूर्ण घोष सर्वथा असत्य है, यह किसी को पता नहीं। 'काव्य की आत्मा ध्वनि द्वारा अभिव्यञ्जित होती है, और यह ध्वनि प्रगतिवाद के किसी भी अङ्ग में नहीं है, अतः जीवन का स्वाभाविक सत्य उसमें स्थान नहीं पा सकता।' काव्य की आत्मा का जहाँ तक प्रश्न है वह किसी पुरानी मान्यता को नहीं मानता।

'विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम् ॥'

—साहित्य दर्पण

इस मन्तव्य को प्रगतिवादी काव्यप्रणेता महत्व नहीं देता। प्राचीनता को अवगत या आत्मसात् कर रूढ़ि या परम्परा में सम्मिलित होने वाले मन्तव्य या सिद्धान्त उसे स्वीकृत नहीं। निस्सन्देह अभिनव का सिद्धान्त मनोविज्ञान सम्मत है और रसानुभूति का सर्वोत्तम मार्ग बताता है। वही सर्वोत्तम समझा जाने वाला भारतीय मत है किन्तु प्रगतिवादी अभिनवगुप्त या आनन्दवर्द्धन को किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधि मान कर उनकी नीयत पर ही आलोचना की कैंची चला देगा ×। जो सर्वथा अनुचित बात होगी। ऐसी दशा में प्रगतिवादियों को कट्टरपंथी न होकर विवेक से काम लेना चाहिये। यही कट्टरपन उनके साहित्य के अस्थायित्व के लिए उत्तरदाता है।

काव्य का कलापक्ष—शैली और छन्दों की दृष्टि से प्रगतिवाद के पक्ष और विपक्ष दोनों ओर बहुत कुछ कहा जा सकता है। जहाँ प्रगतिवाद ने हमें लोक-साहित्य के रूप छन्द व शब्दों के मनोरम दर्शन कराये, कान की कारा से कविता प्रवाह को मुक्त किया वहाँ 'लुचे-टुचे, उल्लू के बच्चे पूँजीपति' जैसी पंक्तियों को कविता कह कर सम्मान दिया है अथवा प्रगतिवाद के नाम पर जो कुछ भी लिख डाला गया, वह सब प्रगतिवाद के लेबुल में छिप सा गया, चाहे वह कूड़ा-कर्कट ही क्यों न हो।

उपसंहार—समाजवाद की स्थापना के लिए प्रगतिवाद के जहाँ उद्योग हैं, वहाँ उसकी नेक-नीयति की प्रशंसा करनी पड़ेगी। किन्तु एक मात्र समाजवाद की भावना के उद्घोष के लिए काव्य के रूपों, लक्षणों की उपेक्षा करना उसे अपनी आत्मा से पृथक् करना है जो अनुचित है। प्रगतिवाद उदार दृष्टि से आज की माँग की पूर्ति करता है, यही उसकी शक्ति है, यही उसकी सार्थकता है।

× वीरेन्द्रकुमार—प्रकाश की खोज में।

* Ralf fox—Novel and the people

+ शिवचन्द्र—प्रगतिवाद की रूपरेखा।

× हजारीप्रसाद द्विवेदी—हमारी साहित्यिक समस्यायें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव

प्रो० मोहनलाल एम० ए०, साहित्यरत्न

"I live not in myself but I become
Portion of that around me." (Hyron)

साहित्य की महाप्राण चेतना युग के आवेग और प्रभाव को अपनी गति में लय कर लेती है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के संस्पर्श-संघात से राष्ट्र के जीवन में जिस आधुनिक चेतना का जागरण हुआ वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नवीन युग का सूत्रपात था। चेतना के इस नवोदित स्पन्दन ने हमारे जीवन के मध्य-युगीन नीति-मूल्यों को चुनौती दी जिसके फलस्वरूप साहित्य की रूढ़िगत रीति-परम्पराएँ अपनी जड़ों में हिल उठीं। सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में इस चेतना ने नवीन सुधारों के लिए बलवती आकांक्षा प्रकट की जिसकी अभिव्यक्ति ब्रह्म-समाज, आर्य समाज आदि सुधारवादी संस्थाओं की प्रतिष्ठा में हुई। राजनीतिक क्षेत्र में इसने राष्ट्रीय जागरण का नवोन्मेष पाया—काँग्रेस की स्थापना में इसी ने काल-क्रम में आँखें खोलीं। साहित्य के क्षेत्र में युग की इन संघटनकारी शक्तियों का प्रभाव-संस्कार एक महान् साधना के रूप में प्रकट हुआ। इस साधना की मूल प्रेरक चेतना अंग्रेजी साहित्य है—इन संघटनकारी शक्तियों के अंतस अथवा पार्श्वों को छूती हुई यह चेतना हमारे साहित्य में और उसके परिवेशों में लहरा उठी।

१९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव-संस्कार हिन्दी ग्रहण करने लगी थी। ४ मई १८०० को वेलेजली ने फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की थी। गिल क्राइस्ट की अध्यक्षता में कम्पनी सरकार ने सिविलियनों को हिन्दुस्तानी सिखाने के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की। यद्यपि गिल क्राइस्ट की —उर्दू फारसी-समर्थन नीति के कारण हिन्दी को आवश्यक प्रोत्साहन नहीं मिल सका, किन्तु हिन्दी की गति उससे रुकी नहीं। उच्च शिक्षा के लिए जैसे-जैसे नए कॉलेज खुलने लगे, हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था होने लगी। इस प्रकार कालेजों और विश्व-विद्यालयों के आंग्ल वातावरण में हिन्दी-साहित्य अपने प्रगति-पन्थ का सार्थवाह हुआ। इसी सिलसिले में पाश्चात्य विद्वानों का भारतीय साहित्य का अनुशीलन भी प्रशंसनीय है। संस्कृत साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान इस देश के साहित्य और संस्कृति की ओर आकृष्ट हुआ। उनके संस्कृत प्रेम ने उन्हें हिन्दी की ओर भी आकर्षित किया। पिनकॉट, ग्रियर्सन, हार्नली, ग्रीव्ज, ग्रिफिथ, श्रीवो आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने हिन्दी में लिखा पढ़ा और हिन्दी-सेवा के लिए लोगों को प्रेरणा दी। पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त मिशनरियों के धर्म-प्रचार के कार्य ने भी परोक्ष रूप से हिन्दी के विकास में सहायता पहुँचाई। बाइबिल के अनुवाद के अतिरिक्त अनेक विषयों पर उन्होंने छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं। कम्पनी सरकार ने भी देशी जनता में शिक्षा-प्रचार के लिए Calcutta School Book Society (1817), Agra School Book Society (1833) आदि सोसाइटीज की स्थापना की जिनकी अध्यक्षता में अँग्रेजी के साथ-साथ देशी भाषाओं के अध्ययन की भी व्यवस्था हुई। इसी समय मुद्रण कला का प्रचार हुआ जिससे पत्रकार-कला को प्रोत्साहन मिला। हिन्दी में सबसे पहले उदन्तमार्तण्ड (१८२६) का प्रकाशन हुआ। फिर तो कितने ही पत्र जैसे बंगदूत, प्रजा, मित्र, सुधाकर, हिन्दुस्तान, भारत-मित्र, ब्राह्मण, भारतेन्दु आदि निकलने लगे। इन पार्श्वों से होता हुआ अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव हमारे साहित्य पर आया।

विकास की प्रथम अवस्था को पार करने के बाद अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन ने हिन्दी लेखकों को इस बात की प्रेरणा दी कि वे आँग्ल-साहित्य के 'रत्नों' को अपनी भाषा में प्रस्तुत करें। आरंभ में यह प्रयत्न अनुवाद-कार्य तक सीमित रहा। बाद में हिन्दी के भाव-जगत् में इससे विस्तार आया। मोटर पाठक गोल्डस्मिथ को हिन्दी जनता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सामने रख चुके थे। उनके 'एकान्तवासी योगी' (Hermit) और ऊजड़ ग्राम (Deserted village) ने हिन्दी के कथा-काव्यों को भाव-प्रेरणा दी। ग्रे की एलेजी का रूपान्तर विद्यारसिक ने प्रस्तुत किया। रत्नाकर ने पोप की कविता का 'समालोचनादर्श' (Essay on Criticism) के नाम से अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त वर्डस्वर्थ, बायरन, स्कॉट, लांगफैलो, रदे, शेक्सपियर आदि की स्फुट रचनायें हिन्दी में आईं। ग्रे की एलेजी के अनुकरण पर तो हिन्दी में भी शोक-गीतियों की परम्परा सी चल पड़ी। हरिश्चन्द्र की मृत्यु पर श्रीधर पाठक ने, श्रीधर पाठक की मृत्यु पर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने, प्रतापनारायण मिश्र की मृत्यु पर हरिऔध ने शोक-गीतियां लिखीं। एडविन आर्नल्ड की Light of Asia का अनुवाद भी निकला। कविता के साथ ही साथ नाटकों और विशेषतः शेक्सपियर के नाटकों के विविध रूपान्तर हुए। गद्य के क्षेत्र में ब्राइट, बर्क, पिट, मिल, स्पैंसर, बेकन, रस्किन, टॉल्स्टाय आदि के विचारों से भी हिन्दी-संसार का परिचय हुआ। इस प्रकार अँग्रेजी साहित्य के संस्पर्श से हिन्दी-साहित्य के सभी क्षेत्रों में नवीन चेतना का आविर्भाव हुआ। हमारे विचारों और भावों को उद्वेलित करती हुई यह चेतना हिन्दी की प्रवृत्ति, प्रगति और अभिव्यक्ति में फूटी। साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में इसी प्रभाव को समझने का यहाँ प्रयत्न किया जायगा।

× × ×

सबसे पहले कविता को लें। अंग्रेजी साहित्य की श्री-समृद्धि को देखते हुए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य के उत्कर्ष के लिए वहाँ से 'रत्न-चयन' करने की आज्ञा दी। अंग्रेजी साहित्य के वैभव की यह अधिकार पूर्ण शब्दों में स्वीकृति थी और उसके प्रभाव को ग्रहण करने की कृतज्ञतापूर्ण इच्छा भी—

'इंग्लिश का ग्रन्थ समूह बहुत भारी है,
अति विस्तृत जलधि समान देहधारी है।
संस्कृत भी सबके लिए औद्यकारी है,
का भी ज्ञानागार हृदयहारी है॥
इन दोनों में से अर्थ-रत्न ले लीजै।
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै॥

द्विवेदीजी का नेतृत्व मिलने पर अंग्रेजी साहित्य की रचनाएँ वेग-पूर्वक हिन्दी में उतरने लगीं। धीरे-धीरे एक दीर्घ सम्पर्क के पश्चात्, हिन्दी-काव्य के भाव-पक्ष और कला-पक्ष में एक युगान्तर-सा उपस्थित हो गया। इस युगान्तर में सबसे गहरा और सबसे व्यापक प्रभाव रोमांटिक कवियों का है। बर्डसवर्थ, शैले, कीट्स, बायरन आदि कवियों की विचार-धारा ने आरम्भ से ही हिन्दी कवियों को प्रभावित किया है। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध हिन्दी कविता में जो प्रतिक्रिया हुई उसे इन रोमांटिक कवियों की तरल भावानुभूति से प्रेरणा मिली। उनके जीवन में नैराश्य और विषाद की जो रेखाएँ गहरी खिंचती जा रही थीं, सपनों के प्रहरी खड़े कर जिस कल्पना-लोक में वे अपना नीड़ बनाने लगे थे, वहाँ रोमांटिक कविता के स्वरों में उन्हें अपने हृदय का स्पन्दन मिला। अथच् हमारे छायावादी-रहस्यवादी कवियों के दृष्टिकोण बनने में अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों से प्रेरणा मिली।

रोमान्टिक चेतना का प्रथम दर्शन श्रीधर पाठक की कविताओं में किया जा सकता है। वही चेतना आगे चलकर मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्णदास, मुकुटधर पाण्डेय आदि में सहज उल्लास के साथ व्यक्त हुई, किन्तु उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए अभी कुछ समय की और अपेक्षा थी, और वह प्रसाद, पन्त, निराला आदि के उदय होने पर संभव हो सकी। आरम्भ में इस रोमांटिक चेतना ने काव्य की रूढ़िगत परम्पराओं और रीतिकालीन नियम-बद्धता का तीव्र विरोध किया। नायक-नायिका-भेद की शृङ्खलाएँ, अलङ्कार-छन्दों के बन्धन, और काव्य की रूढ़ियाँ नवीन आन्दोलन के संघात से टूटने लगीं। साथ ही साहित्य और जीवन के सीमित दृष्टिकोण में भी विस्तार आया। कवि की अनुभूति गीतों के पंख पसार जड़ परम्पराओं की धारा से जीवन के उन्मुक्त वातावरण में साँस लेने लगी। इस प्रकार इस आन्दोलन के दो पक्ष हैं—

१—भाव-संवेदन का विकास।
२—अभिव्यक्ति की विशेषता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव-संवेदन की दृष्टि से इस काव्य-धारा ने आधुनिक कविता को एक नई दिशा दी। कवि के भाव उसके अंतर-स्पर्श से पुलकित हो उठे। प्रकृति ने उसके अन्तर्जगत् में गति-चित्र आंके, सृष्टि के अणु-अणु में उसे किसी रहस्यमयी सत्ता का आभास हुआ, एक मिटने में उसे सौ-सौ वरदान दिखाई पड़े। और फिर, राजा-महाराजाओं, देवी देवताओं, मध्य युगीन सामन्तों के विलासमय कक्षों से कवि की दृष्टि साधारण मानव पर भी गई। खेतों में काम करती हुई कृषक-वधूटी, गाँव की डगर पर गोधूलि की बेला में घर लौटते हुए चरवाहे, दो टूक कलेजा लिए पथ पर पछताता आता भिक्षुक कविता के विषय बने। वर्ड्सवर्थ की 'रीपर' की तरह कवि ने देखा—

"कृषक वधूटी खेत काटती हँस-हँस कर लेकर हँसिया,
गाती गीत 'सुना दो मोहन प्रेम भरी अपनी बंसिया।"

(गुरुभक्तसिंह)

प्रकृति-सम्बन्धी कविताओं पर तो अंग्रेजी का यह प्रभाव और भी अधिक व्यापक है। प्रकृति के सौन्दर्य को देख कर वर्ड्सवर्थ के हृदय में जो उल्लास फूट पड़ता था वही पन्त के हृदय में भी फूटा पड़ता है—छवि की चपल अंगुलियों से कोई उसकी हृततंत्री के तार छू जाता है। शैले 'स्काईलार्क' से उसके मदिर उल्लास का रहस्य पूछता है, पन्त भी मधुप-कुमारी से उसका मीठा गान सुनना चाहता है। उसके 'क्लाउड' की शोभा पन्त और निराला में भी विविध रूप धारण करने लगती है। इसी सम्बन्ध में कवि की ऐसी कविताएँ भी आती हैं जहाँ प्रकृति के सौन्दर्य में वह नारी के सौन्दर्य को भर देता है और उसकी रूमानी कल्पना के शत्-शत् रंगों में कीट्स की फेनिल मादकता और शैले की गुलाबी झिलमिल उतर आती है। और फिर एक वर्ग ऐसी कविताओं का भी है जहाँ प्रकृति के कण-कण में कवि को विराट् चेतना के दर्शन होते हैं। किरण, ऐसा लगता है, मानों किसी के अनुराग में बिखरी हो, लहरों में मानो कोई मौन निमन्त्रण दे रहा हो और नक्षत्रों से मानों किसी का आह्वान आ रहा हो। इन सर्व-चेतनवादी (Pantheistic) कविताओं के क्षेत्र में ही रहस्यवाद की वे आधुनिक कविताएँ आती हैं जो अनन्त की साधना की दृष्टि से तो मूलतः एक ही हैं, किन्तु अभिव्यक्ति-भेद के कारण कई वर्गों में रखी जा सकती हैं—

१—प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवाद— प्रभाव वर्ड्सवर्थ,
२—प्रेम सम्बन्धी रहस्यवाद— ,, कीट्स
३—सौन्दर्य सम्बन्धी रहस्यवाद— ,, शैले।

निराला की बहुत सी रहस्यवादी रचनायें प्रकृति से सम्बद्ध हैं, किन्तु उन पर प्रभाव मूलतः उपनिषदों के दर्शन का है। इसी प्रकार महादेवी की प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी रहस्यवादी कविताएँ भारतीय दर्शन और बौद्ध-साहित्य से प्रभावित हैं। प्रसाद और पन्त में सौन्दर्य और प्रेम के कितने ही आकर्षक रहस्यवादी गीत मिलेंगे। पन्त पर ही यह प्रभाव अधिक स्पष्ट है। पन्त में अंग्रेजी के ब्लेक (Blake) कवि की तरह शिशु के प्रति भी रहस्यमय भाव की अभिव्यक्ति मिलती है यथा—कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम!

यहाँ कवि के उन गीतों को भी रखा जा सकता है जहाँ उसके अवचेतन की कुंठाएँ गहरे नैराश्य में खुलती हैं। वहाँ जो स्पष्ट है वह एक गहरा अभाव जो कवि के अन्तस में संचित होता गया है और जिसमें तीव्र अवसाद और खिन्नता है। कवि देखता है, सर्वत्र उन्मन-उन्मन सृजन छाया हुआ है। एक मधुर इच्छा पर त्रिभुवन-यौवन-धर्म अर्पित करने की आकांक्षा भी वह प्रकट करता है। किसी को आँसुओं की माला पिरोने में ही जीवन की सार्थकता दिखती है। कहीं मधु-कलश, मधुबाला, और निशा निमंत्रण है। उमरखैय्याम * की तरह सुमुखि के सुन्दर मुख में माणिक मदिरा के प्याले की कल्पना बाँध ली जाती है।

अंग्रेजी कविता के सम्पर्क से हमारे काव्य की अभिव्यंजना शैली में भी परिवर्तन हुए। एक ओर महाकाव्य, प्रबन्ध काव्य, मुक्तक और भी परिभाषाओं में ही नवीन मान्यताओं को स्वीकृति मिली। दूसरे, कुछ नवीन रूप भी काव्य-शैली में ग्रहण किए गए। आधुनिक गीतियाँ तो अंग्रेजी के लिरिक का ही हिन्दी संस्करण है—सुख-दुख

* अंग्रेजी में Fitzgerald का रूपान्तर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की वही तीव्र अनुभूति, संगीत की वही स्वर-लहरी, व्यक्तित्व का वही आग्रह, अभिव्यञ्जना का वही 'शब्द-रूप'। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी क्लासिक की विभिन्न काव्य शैलियों को भी हिन्दी में अपनाया गया, जैसे—शोक गीति (Elegy) चतुर्दशपदी (Sonnet), सम्बोधन गीत (Ode), Satire (व्यंग्य गीत)। पैरोडी (Parody) का चलन भी अंग्रेजी से ही हमारे यहाँ आया। लाला भगवानदीन, गुप्तजी, लोचनप्रसाद पाण्डेय, कामताप्रसाद गुरु आदि ने वीर गीत (Ballads) भी लिखे। सत्यनारायण कविरत्न, और सोहनलाल द्विवेदी ने अभियान गीत लिखे। प्रसाद ने भी 'चन्द्रगुप्त' में एक अत्यन्त ओजस्वी अभियान गीत की रचना की।

काव्य-रूपों के साथ-साथ छन्द-विधान पर भी अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सबसे पहले तो तुक से कविता को मुक्ति मिली। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनुप्रासांत (Rhyme) कविता के बन्धन से उन्मुक्त काव्य रचना की अनुमति दे दी थी। जब अंग्रेजी और संस्कृत में इस प्रकार की कविताएँ लिखी जा सकती हैं तो हिन्दी कविता ही तुक के जड़ बन्धनों में क्यों जकड़ी रहे? लोचनप्रसाद पाण्डेय, गिरिधर शर्मा आदि कवियों ने अनुप्रासांत कविता की सीमा के बाहर पाँव रखे। किन्तु इस दिशा में यथार्थ परिवर्तन लाने का श्रेय निराला, पन्त आदि को है। मुक्तछन्द (Free Verse) का उन्होंने प्रयोग किया। प्रवाह का लय ही वहाँ छंद की गति है। निराला की धारणा स्पष्ट है—"जहाँ मुक्ति रहती है वहाँ बन्धन नहीं रहते, न मनुष्यों में, न कविता में।" उसके मुक्त छंद में एक गरिमा है, एक उत्कर्ष है जो अंग्रेजी कविता की तुलना में खड़ा किया जा सकता है—

बिजन बन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी,
स्नेह स्वप्न-मग्न अमल कोमल तनु तरुणी
जुही की कली
दृग बंद किए शिथिल पत्रांक में!

ये पंक्तियाँ किसी रूढ़िगत छन्द से आक्रान्त नहीं हैं; प्रवाह का लय ही वहाँ छन्द की गति है। छन्द-विधान के इस अनूठेपन ने भाषा में भी अपूर्व लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता सहेज दी है। कविता के स्वरों में कवि चित्र के रंग और सङ्गीत के नाद को भर देना चाहता है। पत्रांक में सिमटी जुही की कली स्नेह-स्वप्न-मग्न अमल-कोमल तनु-तरुणी के रूप में एक आकर्षक चित्र बन जाती है। चित्रांकण-कला (Pictorial art) का यह आकर्षण आधुनिक काव्य की निजी विशेषता है। कली के लिए प्रयुक्त प्रत्येक विशेषण एक विशेष व्यञ्जना को लिए हुए है। भाषा की इस चित्रमय व्यञ्जना के अतिरिक्त अंग्रेजी मुहावरे भी हिन्दी में रूपांतरित होने लगे, जैसे भग्न-हृदय (Broken Heart), स्वर्गीय प्रकाश (Divine Light), नया पन्ना उल्टे इतिहास (To turn a new leaf), सुवर्ण का काल (Golden Age) इस प्रभाव के साथ दो प्रकार के शब्द और आए—

१—ध्वन्यर्थ व्यञ्जक शब्द (Onomatopoeia) जैसे, स्पन्दन, धूमिल, गुनगुन, कलकल,

लो छन छन, छन छन,
छन, छन छन, छन छन,
ठुमक गुजरिया हरती मन।

२—चित्रमय विशेषण—स्वप्निल, अलस, उर्मिल, धूमिल—

अहे वासुकि-सहस्र-फन,
× × ×
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयङ्कर····।

काव्यलङ्कारों में हिन्दी ने अंग्रेजी में मानवीकरण (Personification), विशेषण विपर्यय (Transferred Epithet). ध्वन्यर्थव्यञ्जना (Onomatopoeia) आदि अलङ्कार अपना लिए। इस प्रकार अंग्रेजी कविता की रोमांटिक धारा ने हिन्दी कविता की आन्तरिक और बाह्य दोनों पक्षों को अत्यन्त प्रभावित किया है।

रोमांटिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त हिन्दी कविता पर दूसरा प्रभाव मार्क्सवाद का है। अंग्रेजी साहित्य के यथार्थवाद (Realism) ने इस प्रभाव के लिए हिन्दी में भूमिका तैयार कर दी थी। युग की बौद्धिकता जैसे-जैसे हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में उग्र रूप धारण करने लगी, वैसे-वैसे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिलने लगे। पन्त के शब्दों में 'काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई'। अतएव कविता की जड़ों की अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए उसे कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ा।

कॉडवेल ने अपनी पुस्तक Illusion and Reality में काव्य के जो नवीन सिद्धान्त स्थिर किए, उसे हिन्दी कविता के एक नवीन वर्ग ने अपना लिया। संक्षेप में वे सिद्धान्त हैं—

१—काव्य का मूल आधार आर्थिक है। वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आश्रित है।

२—काव्य 'सामूहिक भाव' (Collective Emotion) की व्यंजना है। सामूहिक भाव ही समाज को गतिशील रखते हैं।

३—काव्य समाज के विकास में योग देने वाला साधन है। वह श्रम के लिए व्यक्ति को प्रेरणा देता है, और उसके श्रम को हल्का भी करता है।

इन सिद्धान्तों को ग्रहण कर लेने पर काव्य की प्रेरणा सोने और रूपे के लोक से पृथ्वी पर उतर आई। तदनुरूप काव्य-विषय में भी परिवर्तन हुए। क्रान्ति की आकांक्षा, नारी की मुक्ति, प्राचीन जड़ संस्कारों का विरोध, सामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता, बौद्धिकता और व्यंग्य, स्वदेश-प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना काव्य के विषय हुए। पन्त, दिनकर, नरेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, अंचल, रांगेय-राघव, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा आदि कवियों की वाणी में इस नवीन चेतना के स्वरों को सुना जा सकता है। पन्त और नरेन्द्र में एक बार फिर प्रत्यावर्तन मिलता है और उसका मूल कारण कवि की अन्तस में बैठी हुई वह श्रद्धाभावना है जो भौतिकता से परे अध्यात्म में अपनी जड़ों का पोषण पाती है। (अगले अङ्क में समाप्त)

(पृष्ठ २४ क शेषांश)

जगत् में परम प्रसिद्ध हैं। न्यायाधीश की भाँति आलोचना के आसन पर बैठ कर जब आप अपना विवेचात्मक निर्णय देते हैं तो किसी के साथ कोई रू रियात नहीं करते। आपके व्यङ्ग्य कहीं-कहीं बहुत तीखे हो जाते हैं। रवीन्द्र, पन्त, प्रसाद आदि की भी भूलों और त्रुटियों को निकाल कर आपने साहित्य जगत की आँखों के सामने रख दिया है। आपके प्रगतिशील आलोचनात्मक निबन्धों का सङ्कलन 'संस्कृति और साहित्य' के नाम से प्रकाशित है, जिसमें हिन्दी के छायावादी और प्रगतिवादी युग का तथ्यपूर्ण विवेचन संस्कृति, सभ्यता, समाज और युग-प्रवृत्ति को लेकर किया गया है।

डा० नगेन्द्र की आलोचना का आधार मनोविज्ञान है। उनके आलोचनात्मक निबन्ध हिन्दी की उच्च कोटि की मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीजी 'साहित्य' और 'सञ्चारिणी' के उपरान्त 'सामयिकी' में बहुत कुछ चिन्तनशील बन कर आये हैं। दो तीन वादों को तुलनात्मक रूप में समझाना द्विवेदीजी अच्छी तरह जानते हैं।

श्री विश्वम्भर 'मानव' के आलोचनात्मक निबन्ध उनके गम्भीर अध्ययन के परिचायक हैं। पन्त, बच्चन, प्रसाद, महादेवी वर्मा आदि पर उनकी आलोचनाएँ समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। उनकी 'खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ' तथा 'महादेवी की रहस्य साधना' पुस्तकों ने हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों का अच्छा पथ-प्रदर्शन किया है। इसी प्रकार डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजेन्द्रसिंह गौड़, सुधीन्द्र, रामरतन भटनागर, धर्मवीर भारती, डा० देवराज आदि आलोचक हिन्दी की सेवा स्तुत्य रूप में कर रहे हैं। परन्तु लेख बढ़ जाने के कारण हम उनके विषय में यहाँ कुछ लिखने में असमर्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमिल में आलोचना साहित्य

श्री गो० जानकीराम निरुबी

तमिल भाषा एक अति प्राचीन भाषा है। आलोचक अब भी इसका पता नहीं लगा पाये हैं कि इस भाषा का जन्म कब हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईसा से सैकड़ों वर्ष पहले ही इस भाषा में अच्छा साहित्य था और उसका पर्याप्त विकास हुआ था। तमिल भाषा का व्याकरण "तोलकाप्पियम" का रचनाकाल पाणिनि से भी एक हजार वर्ष पूर्व माना जाता है। इससे अनुमान कर सकते हैं कि इससे पूर्व ही तमिल में कई ग्रन्थ रचे जा चुके होंगे।

तमिल साहित्य को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—प्राचीन साहित्य और आधुनिक साहित्य। प्राचीन साहित्य के भी दो भाग हो सकते हैं—(१) सङ्घ कालीन साहित्य (२) सङ्घकाल के पश्चात् के काल का साहित्य। सङ्घ उन साहित्यिक संस्थाओं को कहते थे जिनके बड़े-बड़े विद्वान सदस्य होते थे। ये सङ्घ राजाश्रय पाकर साहित्य की उन्नति के लिए काम करते थे। तमिल देश में इस प्रकार के तीन सङ्घ थे। इनमें प्रथम दो सङ्घों के बारे में अब भी वाद-विवाद चल रहा है कि इनका काल क्या था और वे किस स्थान पर थे। अब तक इस सम्बन्ध में निर्णय नहीं हो सका। फिर भी इतना अवश्य ज्ञात होता है कि ईसा से लगभग ५००० वर्ष पूर्व प्रथम सङ्घ की स्थापना "काटिचन-बलुनि" नामक राजा ने की थी। लगभग ५४९ साहित्य-कार इसके सदस्य थे। द्वितीय सङ्घ का काल ईसा पूर्व ५००० से लेकर ई० पू० १६०० तक माना जाता है। इसी समय तमिल भाषा का व्याकरण "तोलकाप्पियम" की रचना हुई। ई० पू० १६०० से ईसा बाद २५० तक अन्तिम सङ्घ का काल था। इन तीनों सङ्घों में कई विद्वान थे जिन्होंने तमिल साहित्य की वृद्धि के लिए कार्य किया था। इसके पश्चात् शैव और वैष्णव सन्तों का काल, जैन साहित्य-कारों का काल, महाकाव्य काल, तमिल पर संस्कृत का प्रभाव काल, इस्लाम और ईसाई धर्म विचारों का प्रभाव काल आदि भिन्न भिन्न काल आये। अन्त में अठारहवीं सदी में वर्तमान गद्यकाल आरम्भ होता है जब कि तमिल साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा। इस काल में भी तमिलभाषा की पर्याप्त उन्नति हुई।

बीसवीं शताब्दी में अन्य भाषाओं की तरह तमिल में भी नया विकास हुआ। पाश्चात्य भावों से भरे हुए साहित्य—सरल गद्य और पद्य के रूप में—की रचना हुई। इसी समय पाश्चात्य ढंग पर आलोचना भी लिखी गयी। साहित्य की आलोचना करना तमिल साहित्यकारों के लिए नयी बात नहीं थी। आरंभ में जब बड़े-बड़े काव्य लिखे गये थे तब उन्हें पढ़कर आनन्दित होते थे और उनकी प्रशंसा करते थे। प्रशंसा भी एक प्रकार की आलोचना ही थी, उनके लिए सभी कवि बड़े थे और सभी ग्रन्थ श्रेष्ठ थे। पर इस प्रकार की प्रशंसात्मक आलोचना के कोई शास्त्रीय कारण नहीं रहते थे। 'तोलकाप्पियम' नामक ग्रन्थ में भी छन्द, रस, अलंकार तथा अन्य काव्य लक्षणों पर विवेचन किया गया। वहीं से समालोचना का सूत्रपात कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त कवियों और काव्यों के बारे में कई उक्तियाँ भी प्राचीन काल से चली आई हैं। जैसे रामायण के कवि के बारे में 'कल्बियिल पेरियवन कंबन' (सबसे अधिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति कंबन है) 'कर्पनैयिल उयर कंबन' (कल्पना में कंबन श्रेष्ठ है) 'कंबन बीट्टु कट्टुत्तरियुम कवि पाडुम' (कंबन की गौशाला भी कविता करती थी) 'उच्चिमेत पुलवर कोकुम नच्चिनार्किनियार' (नंच्चिनार्किनियरं को विद्वान लोग सबसे ऊँचा आसन देते थे। 'वेण्याविल, पुकलेन्दी' (एक प्रकार का चौपाई जैसा पद रचना करने में निपुण था पुकलेन्दी नामक कवि) 'कडुत्तुलैनु एलुकडलै पुकुत्ती ..... कुरल' (तिरुक्कुरल (तमिल वेद) का एक-एक दोहा इतना अर्थसमृद्ध था कि उन दो पंक्तियों की व्याख्या पृष्ठों में की जाती है। इसी आशय से ऊपर की सूक्ति में कहा गया है कि एक राई में छेद बना कर मानो सातों समुद्रों को उसमें भर दिया गया हो) इस प्रकार की कई सूक्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

मिलती हैं जो कि एक प्रकार की आलोचना ही हैं।

यद्यपि तमिल साहित्य उन्नत दशा पर था फिर भी उसे विकासशील बनाये रखने के लिए और उसमें नवीन विषयों को भर कर उसे और समृद्ध करने के लिए नवीन ढंग की आलोचना की आवश्यकता बहुत पश्चात् प्रतीत हुई। प्राचीन काल में जब साहित्य पद्य के रूप में रचा गया था तब शब्दार्थ-भावार्थ लिखना, छन्द-रस-अलङ्कार की चर्चा करना, अन्तर्कथाएँ बनाना और अन्यान्य विशेष और गूढ़ बातों पर प्रकाश डालना ही आलोचना का मुख्य रूप था। इस प्रकार के काम करने वालों में 'नक्कीरर', 'इलमपूरणर', 'परिमेललकेर', 'पेराशिरियर', 'शेनावरैयर', 'नच्चिनार्किनियर' 'अडियार्कुनल्लार', 'कल्लाडर' आदि के काम उल्लेखनीय हैं। इन लोगों की साहित्य सेवा तो उत्तम थी। लेकिन जैसे ऊपर बताया गया था, इन लोगों ने केवल काव्य के बाह्य रूप पर विचार किया (जैसे छन्द, रस, अलङ्कार शब्दार्थ आदि) परन्तु काव्य के आंतरिक पक्ष पर प्रकाश डालने का प्रयास नहीं किया।

वर्तमान काल में अंग्रेजी के प्रभाव से अनेकों व्यक्तियों ने साहित्य की आलोचना की है। इन्होंने आलोचना को एक शास्त्र और कला माना है। प्रकृति निरीक्षण और स्वानुभव का लिपिबद्ध रूप ही साहित्य कहलाता है। जब इन अनुभवों को बड़ी चतुराई से शब्दों और वाक्यों द्वारा कवि प्रकट करता है तभी उसमें कला उत्पन्न होती है। सैद्धान्तिक रूप से उसका विश्लेषण करके पाठकों को आनंद प्राप्त कराना आलोचना का काम है। इस प्रकार की आलोचना-शक्ति केवल मात्र अध्ययन से नहीं आती। इसके लिए आलोचकों में कल्पनाशक्ति और निर्माणशक्ति का होना आवश्यक है। तभी आलोचक यह जान सकता है कि काव्य की शैली कैसी है, कवि को कौनसी ऐसी प्रेरणा मिली जिस से उसने इसका निर्माण किया, कौनसे वातावरण में रह कर उसने यह रचना की, कवि ने अपने उद्देश्य का प्रतिपादन कैसे किया आदि-आदि। तमिल के महाकाव्य 'कंबरामायणम्', 'शिलप्पतिकारम', 'जीवकचिन्तामणी' आदि के लिए यद्यपि विस्तृत आलोचना नहीं लिखी गयी है फिर भी दो तीन विद्वानों ने इस दिशा में प्रशंसनीय काम किया है।

तमिल साहित्य का दुर्भाग्य है कि कई कवियों के नाम और ग्रन्थों को छोड़कर अन्य कोई विवरण (कवि का समय, जीवन चरित वातावरण सम्बन्धी बातें) नहीं प्राप्त होते जिनकी सहायता से आलोचना की जा सके। भिन्न-भिन्न कालों में रहने वालों को समकालीन प्रमाणित करने का विचित्र और व्यर्थ प्रयत्न भी हुआ है। साहित्य के क्रमिक, सही, और पूर्ण विकास के बारे में जानने के लिए कोई साधन नहीं मिल रहा है। जब कुछ इतिहासकारों ने शासकों के सम्बन्ध में जानने के लिए शिलालेखों और ग्रन्थों की सहायता ली तब अनेकों विवरण प्राप्त हुए। इस प्रकार के अनुसन्धान करने वालों ने जो लेख लिखे वे 'चेतमिल' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुए। इनमें से अधिकतर लेख अंग्रेजी में लिखे गये। इसके पश्चात् भी अनेकों विद्वानों ने जो अंग्रेजी और तमिल पर समान रूप से अधिकार रखते थे, अंग्रेजी में ही आलोचना लिखते थे। अंग्रेजी में आलोचना लिखने के तीन कारण बताये जाते हैं। एक तो अंग्रेजी जाने हुए लोग भी सरलता से समझ सकते थे, दूसरा पाश्चात्य ढंग से अंग्रेजी में आलोचना लिखना तमिल में लिखने की अपेक्षा सरल समझा जाता था और तीसरा उन आलोचनाओं को व्यापक क्षेत्र देना श्रेयस्कर समझा जाता था।

अँग्रेजी के आलोचना ग्रन्थों में स्वर्गीय व० वे० सुब्रह्मण्य अय्यर का 'रामायण पर आलोचना' सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने रामायण के पात्रों के चरित्रों की विवेचना बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से की है। साथ ही रामायण के कई अच्छे पदों का अनुवाद भी अँग्रेजी में किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने तमिल में भी रामायणम् पर आलोचना लिखी है। इसमें लेखक ने कंबन की तुलना वाल्मीकि, होमर, शेक्सपियर, आदि से की है और यह सिद्ध किया है कि कंबन कई अंशों में इन से श्रेष्ठ है।

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

गत शताब्दी में निरुवावडुदुरै मठ [illegible] नावलर ने "द्राविड प्रकाशिक" नामक आलोचना [illegible] प्रकाशित किया। इसमें तमिल के सभी मुख्य ग्रन्थों की आलोचना की गयी है। धार्मिक विचार वाले होने के कारण इनकी आलोचना निष्पक्ष और सर्वमान्य नहीं हो सकी। फिर भी इस ग्रंथ में लेखक की प्रतिभा और आलोचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति स्पष्ट प्रकट होती है। सम्हित्य, भाषा, व्याकरण आदि के मूल सिद्धांतों के सम्बन्ध में अपने विचार बड़ी दृढ़ता से प्रकट करते हैं और विरोधियों के वादों का खण्डन बड़ी चतुराई से करते हैं।

षणमुखम पिल्ले का निरुक्कुरल (तमिलवेद) पर आलोचनात्मक लेख, वी० के० सूर्यनारायण शास्त्री का "तमिल मोली वरलारु" आदि ग्रंथ कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। शेत्तम्ब के शवराय मुदलियार ने तमिल साहित्य के बारे में जो आलोचनात्मक लेख लिखा है उससे तमिल साहित्य के बारे में जानने के लिए बड़ी सहायता मिलती है। इन्होंने 'कंबनाटार' नामक पुस्तक में महाकवि कंबन के बारे में जो विचार प्रकट किये हैं वे ध्यान देने योग्य हैं। वे लिखते हैं—"कल्पना शक्ति और वर्णन पटुता में कंबन मिल्टन से कम नहीं हैं। यूरोप के आदि कवि होमर और अँग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के समकक्ष कंबन को मान सकते हैं।"

स्वामी कल्याणसुन्दर यतीन्द्रम नवीन ढङ्ग से आलोचना करने में चतुर थे। रामस्वामी पुलवर, सभारत्न मुदलियार आदि प्राचीन ढङ्ग के आलोचक थे। वर्तमान काल में सङ्ग कालीन ग्रन्थों के नये संस्करण निकालने के साथ साथ अनुसंधानपूर्ण आलोचना करने में महामहोपाध्याय उ० वे स्वामीनाथय्यर का स्थान अग्रगण्य है। पोन्नवलम पिल्ले, की 'रामायण की आलोचना', मद्रास विश्वविद्यालय के रा० प० सेतु पिल्ले का रामायण पर लेख, अण्णामलै विश्वविद्यालय के भूतपूर्व तमिल आचार्य स्वामीवेदाचलम का 'मुल्लैपाट्टु आराय्ची" आदि वर्तमान काल के सुन्दर आलोचना ग्रंथ हैं।

आलोचना के साथ साथ अनेकों विद्वानों ने साहित्य सम्बन्धी अनुसंधान का काम भी किया है। श्रद्धार वेलु मुदलियार के अनुसंधान के परिणाम स्वरूप 'अभिदान चिन्तामणी' नामक कोष और अनवरद विनायकम पिल्ले के प्रयत्न के फलस्वरूप एक शब्द कोष प्रकाशित हुआ था। अन्य अनेकों विद्वानों ने शब्दों की व्युत्पत्ति सम्बन्धी खोज भी की है। क० प० सन्तोषम् ने तमिल सभ्यता के बारे में और राव साहब सुब्रह्मण्य मुदलियार ने कंब रामायण के आधार पर दक्षिणी जातियों के बारे में सुन्दर ग्रंथ लिखे हैं।

गत दो चार दशाब्दियों से पाश्चात्य ढङ्ग पर अनेकों विद्वान आलोचना लिख रहे हैं। आलोचना प्रधान कई पत्रिकाएँ समीप काल में प्रकाशित की गयी हैं। इन पत्रिकाओं में कई विद्वान समय-समय पर और कुछ लगातार प्राचीन और नवीन ग्रन्थों पर आलोचनात्मक लिखते आ रहे हैं। कंब रामायण के आलोचकों में पि० श्री० आचार्य और टि० के० चिदंबर नाथ मुदलियार, के काम उल्लेखनीय हैं। आचार्य श्रीनिवासराघवन एम० ए० "चिंतने" नामक अपनी आलोचना प्रधान पत्रिका में कई आलोचनात्मक लेख प्रकाशित करते थे। स्वयं ग्रन्थों की आलोचना लिखने के साथ-साथ आलोचना शास्त्र पर भी प्रकाश डालते थे।

आजकल कुछ मासिक और साप्ताहिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं जिनमें राजनैतिक विषय, कहानी, धारावाहिक उपन्यास के अतिरिक्त आलोचनात्मक लेख भी निकलते हैं। 'कलैमगल', 'अमुदसुरभी' 'कल्की' 'आनन्दविकटन', 'तमिल पोलिल', 'चेतमिल चेल्वी', 'अरिवुक्कडल' आदि पत्रिकाओं की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं।

ब्रज-साहित्य-मण्डल द्वारा पुरस्कृत 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन'

डा० सत्येन्द्रजी की प्रसिद्ध आलोचना पुस्तक 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' पर हाथरस में हुए ब्रज साहित्य मण्डल के अधिवेशन में राष्ट्रपति के सम्मुख १००१) का नवलकिशोर पुरस्कार दिया गया था। यह पुस्तक अपने ढङ्ग की अपूर्व है। इसका मूल्य केवल ६) है।

प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार विमर्श

प्रिय साचवेजी,

मैं आपसे बहुत दिनों से पत्र-व्यवहार करना चाह रहा था पर कई कारणों से अब तक नहीं कर सका था। एक तो पता नहीं मालूम था दूसरे उत्तर न मिलने की आशङ्का। लेकिन जब पूज्य श्रीनिवासजी के द्वारा मुझे प्रमाणपत्र मिल गया है तब आशङ्का का स्थान आश्वासन ने ले लिया है।

इधर आपके यहाँ पत्र लिखने की विशेष उत्सुकता का कारण है 'साहित्य-सन्देश' में प्रकाशित 'आलोचना रचनात्मक हो' शीर्षक आपका निबन्ध। यहाँ इस निबन्ध के वक्तव्य को मैं कुछ विस्तार से चाहता हूँ। आपने साहित्य के जिस 'शून्यवाद' की ओर संकेत किया है वह हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य और मात्राभेद से विदेशी साहित्य में भी है ही। युग को 'हालीन्मुख' कहकर आपने इसके कारणों की ओर संकेत भी किया है।

यों तो साहित्य का स्तर सामन्य रूप से ही निम्न होता जा रहा है (यहाँ विकासक्रम का नियम शायद रास्ता भूल गया है) पर उसमें आलोचना का स्थान प्रथम है। मेरे विचार से इसके दो कारण हैं।—(१) आलोचना के स्वरूप और कार्य में पिछली शताब्दी से बहुत बड़ा परिवर्त्तन और साहित्य-क्षेत्र के विस्तार के कारण आलोचक की बढ़ती जाने वाली कठिनाई। यद्यपि आरम्भ से ही आलोचक से बहुश्रुतता की अपेक्षा की जाती रही है परन्तु जब इधर कलाकारों ने भी इस पर धावा बोल दिया है तब से आलोचक की बहुश्रुतता की गठरी में वृद्धि की अपेक्षा स्वाभाविक ही है। समय के साथ साहित्य के परिमाण में तो वृद्धि होती ही गई है साहित्य-क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है। साहित्य के क्षेत्र का विस्तार दो दृष्टियों से हुआ है, काल और देश की सीमा भी टूटी हैं और अनुभूति के क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है। मम्मट और विश्वनाथ जैसे आलोचकों के सामने जहाँ वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति ही थे वहाँ आज के आलोचकों के सामने ज्ञात रूप में अन्य देश एवं अन्य भाषाओं की साहित्य की परम्परा भी रहती ही है। मनुष्य की चेतना में चाहे देश और काल अपनी सीमा को छोड़कर न समा सके हों लेकिन उसकी बुद्धि के सामने तो यह यथार्थ है ही।

(२) इन सारी चीजों के बावजूद यदि साहित्य के क्षेत्र में गत्यावरोध है तो इसका कारण जीवन में ही ढूढ़ना होगा। मुझे तो लगता है कि जीवन भी आज ठप्प-सा है। मनुष्य आज अपने इतिहास के किसी भी क्षण से अधिक निराश है, सारा उखाड़-पछाड़ और हो-हड़का वह निराशा-जन्य उन्मज्जता में ही कर रहा है। ज्ञान विज्ञान की उन्नति तो उसने की सही पर मैं सार को अपनी चेतना के विकास में उपयोग नहीं कर सका हूँ। इसीलिए आज मनुष्य अपने से असन्तुष्ट है, इस सीमा तक कि अपने ऊपर ही खीझ उठा है। अपने ही जाल में आज वह उलझ गया है। आज की दुनिया की राजनीति आतङ्कवाद की है, हत्या की है जो स्वयं से निराशा का परिणाम है। आज का मनुष्य देवता की पूजा करेगा पर मनुष्य को प्यार नहीं करेगा। यही आज की सबसे बड़ी समस्या है, विचारकों के सामने भी, साहित्यिकों के सामने भी, वैज्ञानिकों के सामने भी। मनुष्य की जो कृति उसे अपने को समझने में सहायता नहीं करती उसका भी कोई मूल्य है? और जो आत्मविस्मरण की ओर ले जाती है वह तो आत्महत्या के प्रयत्न के समान है। लेकिन आज का साहित्य तो काया में उलझ गया है। विधान और टेकनीक की बात आन्तरिक दिवालियेपन का सूचक है। साहित्यकार शब्दों का जाल रचकर किधर जायगा? वह तो कुछ कहने के लिए? कलम उठाता है न? जब कुछ कहना ही नहीं है तब कथन की कला तो चमत्कार और नित नूतनता की ओर ही लेजायगी जो सदा से द्वितीय श्रेणी की चीज हुई है।

वर्तमान स्थिति व्यक्ति से विस्तार की माँग करती है। वह अधिक से अधिक को स्थान दे और अधिक से अधिक में स्थान पा सके। दोनों चीजें साथ-साथ चलनी चाहिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं तो विकास विकलांग रह जायगा। पर बात उल्टी हो रही है। व्यक्ति सिकुड़ता जा रहा है, सिमटता जा रहा है। व्यक्ति के 'अहम्' का खोखलापन तो उसके ढिंढोरे से ही स्पष्ट है।

बात यह है कि अद्वैत के आधार को स्वीकार कर मनुष्य का जीवन चल ही नहीं सकता। बौद्धिक दृष्टि से वर्ण और वर्ग की बात को न मानते हुए भी विकास के स्तर-की भिन्नता को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। मुझे भय है कि संसार के सभी विचारकों ने (जिन्हें मैं जानता हूँ) वेदान्ती अद्वैत की बात न करते हुए भी अपने विचारों के अद्वैत को सबों पर लादने का व्यर्थ दम्भ किया है। जब तक विकास के स्तर की यह भिन्नता एवं भिन्नता को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों (परम्परा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक बौद्धिक आदि) की भिन्नता रहेगी तब तक तो यह सम्भव नहीं है। फिर, साम्यावस्था में तो सृष्टि का लय ही हो जायगा, वह तो विकास का चरम विन्दु ही है, लेकिन यह तो कल्पना की सीमा जहाँ तक जा सकती है वहाँ की बात हुई, अभी की घोर विरोध एवं वैषम्यमूलक स्थिति में तो ऐक्य-स्थापन के लिए कुछ करना ही है। मेरे विचार से भौतिक विकास की सब को समान और अधिक से अधिक सुविधाएँ देना इस दिशा में पहला कदम है। पर यदि हम भौतिक समता पर ही रुक गए तो जीवन में जड़ता आ जायगी। इसलिए दूसरा कदम होगा मानसिक विकास की दृष्टि से जिस हद तक सम्भव हो उस हद तक बौद्धिक विकास की समानता के लिए प्रयत्न करना।

आज साहित्य में प्रेरणा का अभाव है क्योंकि साधकों की कमी है। इसीलिए मेरा विश्वास है कि जब जीवन रचनात्मक होगा तभी उससे प्रेरित साहित्य उच्चकोटि का होगा और तभी आलोचना भी रचनात्मक हो सकेगी।

एक ओर की स्थिति जहाँ यह है वहाँ दूसरी ओर भूखे इसलिए हतप्रभ (उपनिषद में आया है—'अन्नम् ब्रह्म') भारत की ठुकराई हिन्दी के आलोचक। अधिकांश ने तो परीक्षोपयोगी सस्ता संस्करण निकालने का ही जिम्मा लिया है। 'असूर्यपश्य' के वंशधर साधना की छाया से भागते हैं, सरस्वती के पुत्र लक्ष्मी के तलवे सहलाते हैं। जीना आज कितना कठिन हो गया है! उस पर मनुष्य बनकर !!

साहित्य को मैं इसी दृष्टभूमि पर स्वीकार करता हूँ—मानव के विकास के साधन के रूप में। अन्य मानव-प्रयत्नों को स्वीकार करने की मेरी कसौटी भी यही है। आपने जिस 'बढ़ती संकीर्णता' का उल्लेख किया है मैं भी उससे बहुत परेशान हूँ। परन्तु 'उदार दृष्टि' के लिए आवश्यक दृढ़ आधार कैसे पाऊँ यह तो आप जैसे उदार ही बतला सकते हैं। उदारता के साथ ही उसकी रक्षा के निमित्त आवश्यक दृढ़ता तो चाहिए ही। साधना के लिए प्रेरणा और मार्ग-दर्शन मुझे प्रवचन-कर्त्ताओं से नहीं आप जैसों से ही मिलता है।

मेरा अध्ययन तो नहीं के बराबर है। अभी एम० ए० (हिन्दी) का विद्यार्थी हूँ। भाषा के नाम पर हिन्दी और अंग्रेजी के सिवा कुछ नहीं जानता। दोनों भाषाओं के साहित्य का भी बहुत थोड़ा अध्ययन है। फिर भी साहित्य और समाज को इस स्थिति से ऊपर उठाने की इच्छा है। वैसे आवश्यक शक्ति के लिए मार्ग-दर्शन या साधना करने के लिए तैयार हूँ। प्रेम तो बहुत सी चीजों से है—साहित्य, दर्शन, समाज-शास्त्र, राजनीति, मनोविज्ञान। पर कहाँ क्या पढ़ूँ नहीं जानता। मनुष्य को समझना चाहता हूँ। बगैर पढ़े समझ सकूँ तो पढ़ने की कोई जरूरत नहीं समझता। साहित्य और जीवन के आधार पर लिखना विचारना चाहता हूँ। काम की कठिनाई से परिचित हूँ। पर मन नहीं मानता। शरीर तो एक रोज छूटने ही वाला है लेकिन सेवा में ही छूटे यही चाहता हूँ। 'कथनी' को 'करनी' में बदलने के लिए जिधर से प्रेरणा और सहायता मिले स्वीकार्य है।

—सिद्धेश्वरप्रसाद

प्रिय सत्येन्द्रजी,

'साहित्य-सन्देश' में 'आलोचना रचनात्मक हो' विषय पर मैंने एक पत्र लिखा था। उसे पढ़कर कई दिनों पूर्व पटना के एक साहित्य-चिन्ताशील विद्यार्थी श्री सिद्धेश्वर प्रसाद ने एक पत्र मुझे लिख भेजा था, जो अपने आपमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के कई मौलिक प्रश्न सामने लाता है।

सिद्धेश्वरजी के पत्र में मूलतः तीन प्रश्न उठाये गये हैं।

१—आलोचक का काम गयी शती की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक कठिन हो गया है। चूँकि ज्ञान-विज्ञान के क्षितिज और भी बढ़ते जा रहे हैं। मनुष्य की बुद्धि जिसका आलोचना प्रतिफलन है—देश-काल-परिस्थिति के यथार्थ से जैसे चकित और दिग्भ्रमित है। अतः

२—साहित्य और आलोचना में जो गत्यावरोध सा जान पड़ता है, उसका कारण यह है कि मनुष्य का जीवन भी आज ठप-सा है। आज का मनुष्य निराश और अपने आप से असन्तुष्ट है। अतः

३—आज के साहित्य में काया का, टेकनीक का (शायद 'प्रयोग' का भी) ध्यान बढ़ गया है। परिणाम निरा 'वर्ण-चमत्कार' है, (यह शब्द निराला के एक गीत से लिया है) अतः 'विस्तार को विस्तार दिया चाहता हूँ मैं ?' (यह पंक्ति श्री निरालाजी की ही है)

इससे आगे चलकर सिद्धेश्वरजी अपने पत्र में अद्वैत और द्वैत की मौलिक समस्या को छूते हैं। और चेतना के विभिन्न स्तरों के यथार्थ की ओर मेरा ध्यान खींचते हैं। चेतना के विभिन्न स्तरों के एकीकरण का एक मार्ग तो अरविन्द घोष ने अपने दर्शन में सुझाया ही है, जिसमें उत्तरोत्तर अतिमानस की ओर बढ़ा जा सकता है। दूसरा छोर जीवन की भौतिक और जड़ स्थितियों को सुधारने का है, जिस पर मार्क्सीय चिन्ता-प्रभावित विचारकों का विशेष आग्रह है। परन्तु सिद्धेश्वरजी दोनों मार्गों के खतरों से शायद नावाकिफ हैं : पहले मार्ग में ऐकान्तिक व्यक्तिवाद। हमारे प्राचीन योगियों की भाँति मनुष्य को केवल 'असंभूतिऽमुपासते' (ईशावास्योपनिषद् का शब्द) के अन्धतम गर्त में धकेल देगा। (चाहे अरविन्दवादी उसे अन्धतम न मान कर प्रकाश-पुञ्ज मान बैठें) दूसरी ओर मार्क्सीय चिंता के फूहड़ समाज शास्त्र की एकस्वरता और एक ही डंडे से सबको हाँकने की प्रवृत्ति के उदाहरण साहित्य में संयुक्त मोर्चा और त्रासकीवाद पर रामविलास शिवदानसिंह-विवाद पर अमृतराय की पुस्तक और हाल की 'नई चेतना' में चन्द्रबलीसिंह के लेख पर्याप्त हैं। राहुल और रांगेय राघव के उसी 'नई चेतना' में के लेख मेरी बात की पुष्टि करेंगे।

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का कण्ठावरोध साम्यवाद में होगा ऐसा कई सांस्कृतिक नेताओं और चिन्तकों का एक ओर नारा है, तो दूसरी ओर कोरा अध्यात्मवादी आदर्शवाद हमें अधिकाधिक असामाजिक बना देता है और व्यक्ति-स्वातंत्र्य के नाम पर हम अबाध भोग-स्वातन्त्र्य की सुप्त लालसाओं और एषणाओं की ही स्वैर-परितृप्ति तो नहीं करते, यह बात भी कही जाती है।

दर्शन और मनोविज्ञान के क्षेत्र में नये-नये विचार सामने आ रहे हैं। नव्य-मानवतावाद, तार्किक विधायकवाद, अस्तित्ववाद और मनोविज्ञान में गेस्टाल्ट जैसे स्कूल—यह कुछ थोड़े से नाम हैं। मैं यह नहीं कहता कि आलोचक को इन सबसे परिचित हो लेना अच्छा आलोचक बनने की पहली शर्त है, परन्तु यदि मम्मट, रुद्रट, जगन्नाथ, अभिनवगुप्त का बारीक ज्ञान उसके लिए जरूरी है तो विश्व-पीड़ा ('वेल्टान्शूज़' जिसे जर्मन भाषा में कहते हैं) की धाराओं से अपरिचित रहना अथवा बहुत बचकाना ज्ञान उसके विषय में रखना बेहद ना-काफी है। मुझे ऐसे आलोचक हिन्दी में मालूम हैं जिन्हें मनोविज्ञान का ज्ञान फ्रायड के पाकेट-बुक सीरीज के 'लेक्चर्स आन साइकोएनलिजिस' पढ़कर मिला है और मार्क्स का ज्ञान कोई सस्ती सी समाजवाद के सिद्धान्तों पर पुस्तक पढ़ कर। यह मैं समझ सकता हूँ कि आलोचक होने के एक आदमी कोई 'एनसाइक्लोपीडिया' नहीं होता; उसे सब नये-से-नये 'वादों', विचारधाराओं या ज्ञान विज्ञान की सब बातों का पता होना ही चाहिए यह बात नहीं; बल्कि साहित्य को प्रभावित करने वाले 'दर्शन' और 'राजनीति' अपने आप में विशेषीकृत विज्ञान (स्पेशलाइज्ड साइन्स) है। होगये तब साहित्य क्यों न हो ? और 'साहित्य' निरी भावुकता नहीं है। 'वाह वाह ! क्या अच्छी प्रेम की कविता कही है !' 'क्या खूब, शब्दों का कैसा चमत्कार है !' आदि बातें सामन्त युग में हुआ करती थीं—आजकल इस प्रकार के रस ग्रहण को हम अधिक से अधिक बचपना कह सकते हैं। मेरा मानना है कि साहित्य सिरजनेवाला और उसका 'भावक' और विश्लेषक) आलो-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक) वह सब निरे बच्चे नहीं हैं। वे परिपक्व शरीर और मन के मानव हैं ? अतः उनमें निरन्तर वर्धिष्णु जिज्ञासा है। साहित्य-कर्म को वे जीवन से असंपृक्त केवल नक्कासी करना या 'नेल-पालिश' करना नहीं समझते। साहित्य या कला केवल 'विश्रान्तिर्यस्य संभोगे' नहीं है। अतः यदि साहित्य-सृजन और उसका मूल्याङ्कन सचेतन मानव की सचेतन, समूचे व्यक्तित्व से उद्भूत प्रक्रिया है तो, साहित्यिक या आलोचक का काम निरा जीवन के यथार्थ का (सामाजिक यथार्थ का भी) अन्धानुगान करना नहीं, निरा कैमरे के लेन्स की भाँति प्रतिबिम्बित करना ही नहीं—बल्कि व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर नया प्रकाश डालना, उसके स्वप्न और भविष्यत् का भी संकेत देना, अन्दाज बाँधना—और इस तरह से अपरोक्ष रूप से समाज का दिशा-दर्शन कराना भी है। लेखक समाज का दास ही नहीं है। उसका स्वामी भी है। यानी वह उसमें से एक होकर भी उससे ऊपर है, आगे है। तभी उसका लेखकत्व सार्थक है। अन्यथा, वह निरा समाज का मनोरञ्जन करने वाला विट-चेट, या उसे रिझाने वाला या उसके उपयोग मर जीनेवाला व्यावसायिक—व्यापारी या ऐसा ही अन्य साधारण मनुष्य है।

यह लेखक की अपनी विशेषता-विचित्रता है। यही उसका शाप और वरदान है। अतः आलोचक का कार्य और भी जिम्मेदारी से भरा, कठिन और स्थायी महत्व का हो जाता है। आज से सौ वर्ष बाद जब आज की हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ और ग्रन्थादि लोग पढ़ेंगे तब वे कहेंगे कि भारत में हिन्दी भाषा के आलोचकों ने, जब हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो गयी थी—अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। आलोचना कर्म में निहित निर्ममता और निर्मोहीपन को नहीं निभाया। उन्होंने गलत घोड़ों को आगे किया। वे अगर दम फूलकर राह में लँगड़ाने लगे तो उन घोड़ों का दोष क्या ? उन्हें उच्चैश्रवा और चेतक की कोटि में किसने धकेला ?

आज तो कुछ 'परस्पर भावयन्तः' का बाजार गर्म-सा है। उदाहरण के लिए एक कहानी सुनिए—मान लीजिए कि 'अ' लेखक है। 'ब' आलोचक है। 'स' प्रकाशक है या टेक्स्ट-बुक कमेटियों से सम्बन्धित व्यक्ति है। अब तीनों ही एक घटिया वृत्ति के, हलके मत के 'ड' जैसे 'टाउट' (जो लेखक को कुछ पैसे देकर और प्रकाशक से रिश्वत दिलाकर पुस्तक कोर्स कराने में सफल हो जाता है) या नीम-साहित्यिक के दास हैं; या कहीं-कहीं आलोचक स्वयम् यह 'टाउट' हैं। सब मिलकर सङ्गठित रूप से एक किसी लेखक या पुस्तक की स्तुति वे सब इस स्वर में शुरू कर देते हैं—जैसे सियारों में होता है, एक के स्वर में अन्य स्वर पकड़ लेते हैं। या सब सङ्गठित रूप से किसी लेखक या कृति की उपेक्षा, अनुल्लेख या विरोध पर कमर कस लेते हैं। हिन्दी में दोनों प्रवृत्तियों के उदाहरण मिलते हैं। जब तक निन्दा-स्तुति के इस सामूहिक प्रयोग की बाढ़ में आलोचक के स्वच्छया शामिल होने की स्थिति से उबार नहीं है तब तक हिन्दी आलोचना में 'शून्यवाद' ही होगा।

पत्र लम्बा हो चला है। इसलिए और बातें लिखने से बचूँगा। हिन्दी आलोचना-क्षेत्र में विचार-मन्थन पर्याप्त मात्रा में चल रहा है। और मैं उसके भविष्य के विषय में निराश नहीं हूँ। आज का जीवन खंडित है, व्यक्ति असंतुष्ट और द्विधा-व्यक्तित्व का बन गया है, समाज जर्जर है। इस सबका प्रतिफलन साहित्य में भी अवश्य हो रहा है होगा ही। परन्तु क्या हिन्दी आलोचक यह सब जानता है ? या जान-बूझ कर उसकी ओर उपेक्षा करके अपनी रस की सविकल्प समाधि वाली स्वप्निल निराली दुनियाँ में अफीमचियों की तरह मात्र निद्रित रहना चाहता है ? और 'रस' का नशा न हो तो फूहड़ समाजशास्त्रीयता की दूसरी पीनक है ही। मेरा दिन-ब-दिन विश्वास बढ़ता जा रहा है कि हिन्दी आलोचना का सबसे बड़ा नुकसान इस प्रकार के कठमुल्ला आलोचक ही कर रहे हैं। मैं अपने दिमाग की खिड़कियाँ खुली रखना चाहता हूँ। अतः सिद्धेश्वरजी की समस्या जो कि युग की समस्या है मेरी भी समस्या है। उससे सहज निस्तार नहीं है कि यह या वह 'वाद' सुझा कर मैं छुट्टी करलूँ।

आपका—

प्रभाकर माचवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

संस्कृति-सङ्गम—लेखक—आचार्य क्षितिमोहन सेन, शान्तिनिकेतन, प्रकाशक—साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या १६१, मूल्य २॥)

आचार्य महोदय के संस्कृति-विषयक १२ निबन्धों का सङ्कलन प्रस्तुत पुस्तक में है। आचार्य सेन की प्रतिपादन-शैली बड़ी सरस एवं मनोरम है। उनकी दृष्टि में सङ्कीर्णता कहीं नहीं दिखाई पड़ती, कट्टरता और पूर्वग्रह का अभाव भी विवेचन को वैज्ञानिकता का रूप देने में सहायक हुआ है और फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि आचार्य सेन स्वयं अपने विवेच्य विषयों के साथ एकाकार हो गये हैं। 'भारत में नाना संस्कृतियों का सङ्गम' ऐसा निबन्ध है जिसे पढ़कर नेत्रोन्मीलन हुए बिना नहीं रहता। लेखक ने इस निबन्ध में बतलाया है कि देवी-पूजा और तन्त्रमत वैदिक मत के पास बाहर से आकर खड़े हुए हैं। नदियों और वृक्षों की पूजा, तीर्थों की प्रतिष्ठा, ग्राम-देवताओं की पूजा यहाँ तक कि भक्ति भी अवैदिक है। बहुत से लोगों की धारणा है कि 'पूजा' नामक क्रिया भी वेद बाह्य है। इस निबन्ध में संस्कृत के पण्डितों के लिए भी ऊहापोह की बहुत बड़ी सामग्री उपलब्ध है।

'मध्य युग के सन्तों की सहज साधना', 'सहज और शून्य' तथा 'सन्त साहित्य' जैसे निबन्ध सभी के द्वारा रुचिपूर्वक पढ़े जायँगे। आचार्यजी की अन्य पुस्तकों की भी हिन्दी-संसार उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करेगा।

साहित्य-समीक्षा—ले०—प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रकाशक—श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, नया टोला, पटना। पृष्ठ सं० २३५, मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक में समय-समय पर लिखे हुए लेखक के आठ निबन्धों का सङ्कलन है। 'आलोचना के नाम पर' शीर्षक अपने निबन्ध में लेखक ने अनेक प्रकार के तथा-कथित आलोचकों को आड़े हाथों लिया है। छायावाद पर बाह्य प्रभाव दिखलाते हुये आपने उन आलोचकों के मत का सफलतापूर्वक खंडन किया है जो छायावाद के अवसाद या नैराश्य का समाधान असहयोग आन्दोलन की विफलता से करना चाहते हैं। 'भाषा का प्रश्न' अब कुछ असामयिक सा हो गया है। 'भ्रमरगीत की परम्परा' एक अच्छा निबन्ध है किन्तु यदि इसमें 'द्वापर' आदि के भ्रमरगीतों की भी विवेचना का समावेश कर दिया जाता तो यह अधूरा न लगता। 'रहस्यवाद की रहस्यवादिता' तथा 'रस सिद्ध कवीश्वर घनानन्द' भी पठनीय निबन्ध हैं। प्रस्तुत पुस्तक में 'वज्रयान' निबन्ध खोजपूर्ण होते हुये भी कुछ अटपटा सा लगता है। यद्यपि उत्तरवर्ती निर्गुण विचारधारा के मूल रूप की गवेषणा के लिए लेखक ने उसकी सार्थकता सिद्ध करना चाहा है।

नूरजहाँ की टीका—टीकाकार—श्री रामखेलावन चौधरी, सम्पादक—श्री तेजनारायण टंडन, प्रकाशक—विद्या-मन्दिर, लखनऊ। पृष्ठ १५४, मूल्य २।)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूरजहाँ श्री सुरभक्तसिंहजी की एक महत्वपूर्ण कृति है। ऐसी मुहावरेदार सरल-सरस तथा चलती हिन्दी में दूसरा कोई प्रबन्ध-काव्य सम्भवतः नहीं लिखा गया। इस पुस्तक को एक समीक्षा श्री भगवतशरण उपाध्याय पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इस प्रबन्ध-काव्य की सरल सुबोध टीका की गई है। अन्त के कतिपय पृष्ठों में परीक्षोपयोगी प्रश्न भी उत्तर सहित दे दिये गये हैं। छात्रों को लक्ष्य में रख कर रानी कटरा लखनऊ ने अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं, उनमें से ही विवेच्य पुस्तक भी एक है। —कन्हैयालाल सहल

उपन्यास

बसेरा—ले०—मोहनलाल महतो 'वियोगी', प्रकाशक—ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना ४। पृ० सं० १५०, मूल्य २)

'बसेरा' पं० मोहनलाल 'महतो' का नवीन उपन्यास है। सामाजिक पृष्ठभूमि पर इस उपन्यास की कथा-वस्तु आधारित है। सामाजिक प्रतिष्ठा की विडम्बना को बनाए रखने के लिए सुरमा के लिए जो वर पसन्द किया जाता है उसके 'पौन दर्जन कच्चे-बच्चे और दो तीन नाती-पोते' हैं। सुरमा का विरोध, घर से भागना, टी० टी० आई के पंजे से त्राण पाने के लिए गाड़ी से कूद पड़ना और घायल अवस्था में रमेश के द्वारा उद्धार—इस पीठिका पर उपन्यास खड़ा होता है। शेष कहानी लल्लू बाबू के कुचक्रों की है जो उसे अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाना चाहते हैं। इसी के साथ सम्बद्ध प्रासङ्गिक कथा गोविन्द की है जिसे रमेश के पिता ने अपनी जमींदारी शोषण नीति का शिकार बना रखा है।

इस प्रकार 'बसेरा' एक कथा-प्रधान उपन्यास है और उसमें कहानी कहने की रुचि परिलक्षित होती है। चरित्रों की गहराइयों में पैठ कर उनके अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करने की ओर लेखक ने कम ध्यान दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि एक स्थूल मनोवैज्ञानिकता ने ही किसी प्रकार घटनाओं को बाँध रखा है और अन्त में यह तारतम्य भी शिथिल हो जाता है। एक झटके से कहानी समाप्त हो जाती है। जहाँ 'बसेरा' पाने के लिए सुरमा के हृदय में आकर्षण है, उसके लिए वह आँसुओं का छिड़काव करती है ताकि 'प्रेम-देवता के चरणों में धूलि न लगने पावे'। बस, यही 'बसेरा' है। उपन्यास के लिए जो तीव्र दृष्टि और मन के गति-चित्रों को आँकने की क्षमता अपेक्षित है वह महतोजी जैसे कवि लेखक की कला के साथ तादात्म्य नहीं कर पाती इसीलिए 'बसेरा' की कहानी को उपन्यास का बाना भर मिल पाता है। —प्रो० सोहनलाल, एम० ए०

कजली—ले०—भवानी भट्टाचार्य, अनुवादक-श्री शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ ३४२, मूल्य ४॥)

इस उपन्यास में द्वितीय महायुद्ध की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का अत्यन्त करुण चित्र उपस्थित किया गया है। भारतीय स्वतन्त्रता का रण घोष, लाख-लाख बन्दियों का कारागृहों में जन्मभूमि के लिए श्वासों का व्यापार, ब्रिटिश-राजसत्ता की खोखली नीति के परिणाम स्वरूप ३० लाख भारत सन्तान का भूख से छटपटा कर मरना यही इस उपन्यास में दिखाया गया है। १३ वें अध्याय से लेकर १८ वें अध्याय तक उपन्यास में चित्रण की प्रधानता है किन्तु चित्रण में प्रत्येक पात्र के पीछे लेखक का व्यक्तित्व है। उसके अधूरे चित्र में भी पूर्णता प्रतिबिम्बित हो उठी है और कजली अकाल पीड़ित सामान्य नारी न रह कर 'आत्म-उन्नयन' की ओर अन्त में बढ़ती दिखाई पड़ती है, यह प्रकाश एवं स्वतन्त्र चेतना पत्रों का प्राण बन कर आ गई है। यह उपन्यास नैतिकता की बद्धमूल जर्जरीभूत धारणाओं पर करुण परन्तु अचूक प्रहार करता है। वर्णन शक्ति में टीस, कचोट, व्यंग्य एवम् संकेतों का उपयोग अधिक है, सीधा उपदेश कम। आत्मपरिशोधन व विद्रोह साथ साथ चलते हैं। यदि एक ओर उपन्यास 'अकाल का इतिहास' मात्र दिखाई पड़ता है, तो दूसरी ओर द्वार खटखटाती हुई क्रान्ति का सन्देश देता है। अनुवाद सुन्दर और रोचक बन पड़ा है।

—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, एम० ए०

कालिन्दी—ले०—श्री ताराशङ्कर, प्रकाशक—जनवाणी प्रकाशन कलकत्ता ७। पृ० सं० ४१५, सजिल्द मू० ५)

यह बङ्गाल के प्रसिद्ध उपन्यास का सफल हिन्दी अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाद है। इसमें मध्यवर्गीय परिवार की बिगड़ती हुई स्थिति क चित्रण है। रायवंश और चक्रवर्ती वंश के माध्यम द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ है। गाँव की जनता का सुधार नारे लगाने से नहीं, ठोस शिक्षा तथा आत्मचेतना प्राप्त करने से ही होगा अन्यथा छोटी-छोटी बातों के लिए लड़ते-झगड़ते वे अपना जीवन नष्ट कर देंगे। लेखक 'कला के लिए कला' सिद्धान्त का पोषक नहीं सामाजिक प्रेरणा के लिए कला— यही उनका मान्य सिद्धान्त है। इस उपन्यास के पात्रों में 'वैचित्र्य और कौतूहल' ही नहीं, जीवन का सजीव स्पन्दन है। उपन्यास संग्रहणीय है।

—प्रो० नागरमल सहल, एम० एं०

कहानी

विधाता की भूल—लेखक-श्री पन्नालाल शर्मा एम० ए०, प्रकाशक-भारतीय कला मन्दिर, १६ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता। पृ० सं० १३५, मूल्य ३)

'विधाता की भूल' में लेखक की २२ कहानियाँ और रेखा-भाव-चित्र हैं। गर्ग की लेखनी तब चलती है जब वेदना की रग-रग में सादक भावना की उर्मियाँ उद्वेलित होने लगती हैं। यह संग्रह इन्हीं उर्मियों को बाँधने का प्रयत्न है और उर्मियों की तरलता ही इन भाव चित्रों का प्राण है। इनमें से कुछ चित्र जैसे नरगिस, मिलन, चाला, कुहू-कुहू आदि प्रकृति के सौन्दर्य से सम्बद्ध हैं और कुछ सैक्स और आधुनिक जीवन पर व्यंग्य। कुछ व्यंग्य चित्र काफी तीखे हैं, किन्तु अधिकांश चित्रों का व्यंग्य शब्दों को सँवारने और रेखाओं को बनाने में खो गया है। मन से जो टीस उठती है उसकी अभिव्यक्ति सहज होती है, यहाँ वह साहित्यिक फैशन हो गई है। इसी प्रकार जब भाव-चित्र बनते हैं तो कल्पना के उन्मुक्त उड़ान के लिए पूरा अवकाश रहता है, और एक ही भाव-चित्र में कई भाव-स्तर हो सकते हैं। इन भाव स्तरों में एक अतिरिक्त तार-तम्य होता है। लेखक इस तारतम्य को कहीं-कहीं साध नहीं पाया है। 'विधाता की भूल' भाव-चित्र में यही अतिरिक्त असंगति है। राजघाट की अमर समाधि के निकट जो आवाज उठती है वह इस भाव-चित्र के साथ मेल नहीं खाती। इस त्रुटि का कारण अनुभूतियों में गहराई का अभाव है। ये चित्र शायद लेखक की पुरानी रचनाएँ हैं किन्तु उनमें जो आग्रह है वह हृदय को निश्चय की अभिभूत कर देने वाला है। उसे यदि साधा गया तो लेखक में भाव-चित्रों के स्रष्टा का सुन्दर भविष्य छिपा हुआ है।

सितार के तार—ले०-भै० वासाद गुप्त, प्रकाशक-दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, मद्रास। पृ० १६७ मूल्य १॥)

प्रस्तुत पुस्तक लेखक की ५ कहानियों का संग्रह है। समाज के विभिन्न पहलुओं का इन कहानियों में अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। जरा-जीर्ण रूढ़ियों और परम्पराओं से सामाजिक जीवन में जो घुटन पैदा हो गई है और झूठी प्रतिष्ठा के लिए जिस दम्भ को व्यक्ति अपने जीवन का अंग बनाये रखता है उसके खोखलेपन को लेखक ने इन कहानियों में व्यक्त किया है। 'सितार के तार' में प्रतापपुर के घराने के नष्ट हो जाने का यही कारण है और इसी के लिए 'राख' में गोपी को स्वाहा हो जाना पड़ता है। साधु का 'महादान' वणिक की स्वार्थपरता पर तीव्र व्यंग्य है, 'अमर बेलि' में मुई की मजदूरिन की दर्द-कहानी और 'काँटा' में वैवाहिक जीवन की विडंबना।

लेखक के पास अनुभूति है और विचारों की सजगता भी। सबसे ऊपर उसमें कहानी-लेखक की सहृदयता है। इसलिए उसके ये चित्र सुन्दर और मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं।

रेखाएँ—ले०-मदनगोपाल, प्रकाशक-स्वस्तिक प्रकाशन, मोतिया पार्क, भोपाल। पृ० सं० ११६, मूल्य २।)

'रेखाएँ' लेखक की १२ कहानियों का संग्रह है। इनमें समाज के प्रायः उस मध्यवर्गीय स्तर के चित्र मिलते हैं जो बहुत से जड़ संस्कारों को झूठी प्रतिष्ठा के लिए बनाये रखता है। इन रेखाओं के द्वारा लेखक उन पर हल्का सा व्यंग्य करते चलता है। अपनी कहानियों में दूर की कौड़ी लाने का प्रयास न कर वह अपने आस-पास के जीवन से ही इनके लिए साधन जुटा लेता है। कहानियाँ अभी रेखाएँ ही हैं, किन्तु रंगों में गहराई न होने पर भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे जीवन की झलक को बाँध सकने में सफल हैं। लेखक के पास कहानी कहने की रुचि और सहृदयता है।

उर्वशी—लेखक—श्री बालकृष्ण बल्दुवा बी० ए० एल० एल० बी०, प्रकाशक—गङ्गा-पुस्तकमाला-कार्यालय। पृ० सं० ५०, मूल्य ॥≈)

इस संग्रह में बल्दुवाजी की महाभारत काल की ४ कहानियाँ हैं जो उन्होंने 'माया' के सम्पादन काल में लिखी थीं। महाभारत पढ़ते समय लेखक ने यह अनुभव किया कि सौन्दर्य और प्रेम सृष्टि के आदि-काल से मानव-हृदय के लिए आकर्षण के विषय रहे हैं। उसीने इसी आकर्षण को इन कहानियों में आधुनिक रूप में बाँधने का प्रयत्न किया है। उर्वशी, लोपामुद्रा, गङ्गा, देवयानी में इस युग के मानव-मन के स्पन्दनों को सुना जा सकता है। बल्दुवाजी के पास कवि की अनुभूति और कहानीकार की वर्णन-शक्ति है, अतः मनुष्य की आन्तरिक चेष्टाओं और गति-लहरियों को व्यक्त करने में वे कुशल हैं। कथाओं को आधुनिक रूप देने से अतीत का आकर्षण यद्यपि नष्ट हो गया है, पर अपनी स्वाभाविकता में वह अधिक ग्राह्य है। इन कहानियों को हम एक प्रकार से पौराणिक रोमांस कह सकते हैं।

शान्ति-पथ—ले०—रघुवीशरण अग्रवाल एम० ए०, प्रकाशक—नवभारती प्रकाशन, मेरठ। पृ० सं० ११२, मूल्य ॥।≈)

'शान्ति-पथ' लेखक की छः मौलिक कहानियों का नवीन संग्रह है। इन कहानियों की रचना में 'विद्यार्थियों के रुचि-वैचित्र्य एवं चरित्र-निर्माण' का विशेष ध्यान रखा गया है। फलस्वरूप लेखक ने जिन सामाजिक कुरीतियों का चित्रण किया है उनके संस्कार परिमार्जन पर ही उसने बल दिया है। जहाँ उपदेश की प्रवृत्ति कला में घुलमिल सकी है, कहानी वहाँ सफल बन पड़ी है जैसे 'अनमोल मोती' में, पर जहाँ सुधार-भावना प्रबल है वहाँ कहानी प्रवचन हो गई है। इस संग्रह की वास्तविक उपादेयता जनता के चरित्र-निर्माण की चेष्टा है। इस दृष्टि से कतिपय कहानियाँ सुन्दर हैं।

लपटें—लेखक—भैरवप्रसाद गुप्त, प्रकाशक—दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, त्यागरायनगर, मद्रास १७। पृ० सं० ५१, मूल्य ॥≈)

'लपटें' समाज को उस धन-लोलुप स्तर का चित्रण है जो अपने स्वार्थ में अत्यन्त सजग है और उसकी निष्ठा में कोई भी कुकृत्य कर सकता है। उसका स्नेह-प्रेम एक दिखावा है और ईर्ष्या-स्पर्द्धा भीषण आवेगशील। शशि, सुधा, अमर ऐसे समाज के प्रतिनिधि हैं और मानव के आन्तरिक पुरुष का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं। ऐसे वातावरण में कान्ता को घुटन के सिवाय क्या मिल सकता है, पर जब वह घुटन विद्रोह का रूप धारण करती है तो उसकी लपटें समाज के अंधेरे पर्दे को चीर देती हैं। ये ही लपटें कान्ता को बचा सकती हैं।

आकार से अधिक प्रकार में 'लपटें' एक कहानी है—सजीव और मर्म-स्पर्शी।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो—ले०—श्री महावीर-शरण अग्रवाल, प्रकाशक—श्री पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली। पृ० सं० ६०, मूल्य १)

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' लेखक के 'जीवन के नीहारिल पन्थ' में आई हुई कुछ ऐसी घटनाओं और अवस्थाओं के चित्र हैं जिनके प्रति उसे तीव्र मोह है। पुस्तक को कहानी-संग्रह न कहकर मन की गति-लहरियों को बाँधने का प्रयास कहना अधिक संगत है। यौवन के प्रवेश-द्वार पर वह अपने को ठिठका-सा पाता है। जो कुछ उसके सामने बीत चुका था वह अतीत की छाया में समाता सा लगता है पर उसे सन्तोष है कि 'प्रेम की चाह में मनुष्य अपने बलिदान को समर्पण का एक अङ्ग' मान सकता है। इस आस्था ने उसे अवसाद से बचा लिया है और जिधर भी दृष्टि जाय प्रकाश की छटा उसकी दृष्टि को विराम देती है। कृति के सम्बन्ध में जैनेन्द्रजी के ये शब्द सार्थक हैं—'रचना में एक निर्मल उल्लास का भाव मिलता है जो पाठक को आशा का अधिकार देता है।' ये सजल-निर्मल भाव-उर्मियाँ हृदय को छूने में समर्थ हैं।

—प्रो० मोहनलाल एम० ए०

भाषा-विज्ञान

भाषा विज्ञान—ले०—भोलानाथ तिवारी, एम० ए० प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद। पृ० सं० ३६६, मूल्य ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा-विज्ञान की प्रत्येक शाखा का क्रमबद्ध और सुन्दर प्रतिपादन प्रस्तुत पुस्तक की प्रमुख विशेषता है। भाषा-विज्ञान सम्बन्धी सामग्री जो कम से कम एक दर्जन ग्रन्थ पढ़ने पर छात्रों को उपलब्ध होती, वह यहाँ इस एक पुस्तक में सङ्कलित कर दी गई है। इस दृष्टि से यह पुस्तक एम० ए० तथा साहित्य-रत्न के परीक्षार्थियों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। विभिन्न विश्वविद्यालयों के भाषा-विज्ञान सम्बन्धी प्रश्न-पत्रों का भी यदि इस पुस्तक में समावेश कर दिया जाता तो शायद और भी अच्छा रहता। यदि लेखक आगामी संस्करण में प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल, मध्यकालीन आर्यभाषा काल तथा आधुनिक आर्यभाषा काल से सम्बन्ध रखने वाले करीब १०० या १२५ पृष्ठ और बढ़ा दें तो छात्रों के लिए पुस्तक की उपादेयता द्विगुणित हो जाय। पुस्तक में मौलिकता चाहे न हो और न इसके लेखक ने मौलिकता का दावा ही किया है किन्तु फिर भी पुस्तक की उपयोगिता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। इस प्रकार की पुस्तकों से कभी-कभी मूल लेखकों की पुस्तकें पढ़ने का उत्साह मन्द पड़ जाता है, किन्तु बहुत सम्भव है इस पुस्तक से प्रेरणा पाकर कम से कम विशेष अभिरुचि रखने वाले उत्साही छात्र और भी विस्तृत अध्ययन की ओर उन्मुख हों। —कन्हैयालाल सहल

जीवनी-संस्मरण

जैन जागरण के अग्रदूत—अयोध्याप्रसादजी गोयलीय, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। पृष्ठ ६१६, सजिल्द मूल्य ५)

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से जिन महापुरुषों ने जैन समाज में जागृति की बहार पैदा की है और साहित्य समाज और धर्म की अमूल्य सेवा की उन ३७ महानुभावों के जीवन-संस्मरण इस पुस्तक में संग्रहीत हैं। कुछ संस्मरण गोयलीयजी के खुद के हैं शेष विभिन्न लेखकों की लेखनी से प्रसूत हैं। इतिहास, समाज और साहित्य तीनों दृष्टियों से यह पुस्तक अपना महत्व रखती है। हम इसका हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि जैन स्कूलों, पुस्तकालयों में इसे स्थान मिलेगा और युवक इसे पढ़ कर प्रोत्साहन प्राप्त करेंगे।

अज्ञात जीवन—लेखक—श्री अजितप्रसादजी, प्रकाशक—रायसाहब रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग। पृष्ठ ३२०, सचित्र, सजिल्द, मूल्य ३)

लखनऊ के बाबू अजितप्रसादजी जिनका स्वर्गवास अभी गत वर्ष हुआ, जैन समाज और जैन धर्म के बड़े सेवक और विद्वान थे। आपने स्वयं अपने जीवन के संस्मरण लिख कर जैनियों की प्रगति के प्रारंभिक ३०—३५ वर्ष का एक इतिहास सा दे दिया है। पुस्तक महत्वपूर्ण है।

ब्रह्मचारी शीतल—लेखक—श्री अजितप्रसादजी, प्रकाशक—सेंट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ। पृष्ठ १५०, मूल्य २)

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी जैन स्वयं बड़े विद्वान, प्रचारक, बड़े लेखक और सिद्धहस्त सम्पादक थे। आपने जैन समाज की सेवा में अपना जीवन लगा दिया था। बा० अजितप्रसादजी ने उनकी जीवन गाथा लिखकर बड़ा पुण्य कार्य किया है।

बाबू देवकुमार-स्मृति-अङ्क—सम्पादक—पाँच विद्वान, प्रका०—जैन सिद्धान्त भवन, आरा। पृष्ठ ९२ + ३२, मू० १॥)

आरा के प्रसिद्ध पुस्तकालय 'जैन सिद्धान्त भवन' से 'जैन सिद्धान्त भास्कर' नामक एक बहुमूल्य त्रैमासिक पत्र निकलता है। पुरातत्व और इतिहास का यह प्रसिद्ध पत्र है। भवन की स्थापना आरा के दिवंगत, स्वनाम धन्य बा० देवकुमारजी ने की थी। उन्हीं की स्मृति में यह अङ्क निकाला गया है। विभिन्न विद्वानों और समाज सेवकों ने अपने-अपने संस्मरण लिखकर इस अङ्क को सुसज्जित किया है।

विविध

शिल्प-कथा—लेखक—चित्राचार्य श्री नन्दलाल वसु, विश्वभारती, शान्ति निकेतन, प्रकाशक—साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद। पृष्ठ ५२, मूल्य १।)

यह सुन्दर लेख-संग्रह फूल के उज्ज्वल थाल में परोसे हुए रस-पूर्ण भोजन के सदृश मन को तृप्त करने वाला है। नन्द बाबू कला के ऋषि हैं। उनका दर्शन जीवन की प्रेरणाओं को मुक्ति प्रदान करता है।

स्वयं नन्दलाल ने अपने विषय में लिखा है—'मैं साहित्यिक नहीं हूँ। भाषा का शिल्प में नहीं जानता। अतएव विस्तार-पूर्वक समझा-बुझाकर कुछ कहूँ, मुझ में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह शक्ति नहीं।' किन्तु नन्द बाबू ने बिना शब्दों का बहुत विस्तार किए हुए भी तत्व की ओर बारबार हमारा ध्यान खींचा है। वह तत्व 'छन्द सुर और सामञ्जस्य' हैं। व्यष्टि और समष्टि के जीवन में जहाँ यह छन्द, या सुर आ जाता है वहीं शान्ति, कला, अध्यात्म, नूतन, सृजन, आनन्द और उन्मुक्त सहानुभूति स्वयं आ जाती है। अपनी शिल्प-कथा में नन्द बाबू ने इसी छन्द को पहचानने और आत्मसात् करने का मर्म समझाया है।

नन्द बाबू शिक्षा में शिल्प को स्थान देने का आग्रह-पूर्वक प्रतिपादन करते हैं। 'आँखों' का काम जिस प्रकार कानों से नहीं होता उसी प्रकार चित्र, सङ्गीत और नृत्य की शिक्षा केवल लिखाई-पढ़ाई से सम्भव नहीं है। कला की चर्चा का स्थान और मान विद्यालयों में पढ़ाई के साथ ही बराबर रहना चाहिए। उनका महाकाव्य कितना मार्मिक है—'शिल्प को न समझने के लिये बहुतेरे शिक्षित लोग भी अगौरव का अनुभव नहीं करते हैं। यहाँ दरिद्र संथाल का सौन्दर्य बोध उसकी जीवन-यात्रा के अङ्गीभूत और सजीव हैं, किन्तु धनी सन्तान का सौन्दर्य बोध दिखावटी और निर्जीव है।'

शिक्षा संस्थाओं के द्वारा शिल्प, सौन्दर्य और कला की प्रेरणा और अनुभूति उत्पन्न करने के लिये देश व्यापी प्रयत्न करना होगा जिसके लिये नन्द बाबू ने ये उपाय लिखे हैं— पहली बात है विद्यालयों, पुस्तकालयों, छात्रालयों में अच्छी मूर्तियों और चित्रों के नमूने सजा कर रखना होगा।

दूसरी बात है सुन्दर शिल्प और चित्र की सामग्री पर सरल व्याख्या युक्त पुस्तिकाएँ लिखानी होंगी।

तीसरी बात है चित्र-पट की सहायता से सुन्दरतम कलाकृतियों से विद्यार्थियों का परिचय कराना होगा।

चौथी बात है उपयुक्त शिक्षकों के साथ समय-समय पर संग्रहालयों में, चित्रशालाओं और कलामन्दिरों में जाकर विद्यार्थियों को अपनी आँखों से कला सामग्री को देखना होगा। जिससे उनका सौन्दर्य बोध जाग्रत् होगा।

पाँचवीं बात है प्रकृति से छात्रों का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भिन्न-भिन्न ऋतुओं में उत्सवों का आयोजन करना होगा।

छठी बात है कि प्रकृति में जो ऋतु-उत्सव हो रहे हैं उनकी शोभा देखने के लिए विशेष छुट्टी करके छात्रों को शरद् में धान के खेत और कमल के वन, वसन्त में पलाश-सेमूल के सौन्दर्य नृत्य को देखने के लिए भेजना होगा।

अन्तिम बात यह है कि वर्ष में किसी समय विद्यालयों में शिल्पसृजन का एक उत्सव कराना होगा। प्रत्येक शिक्षार्थी को कुछ न कुछ शिल्प वस्तु अपने हाथों से बनाकर इस उत्सव में श्रद्धा के साथ सम्मिलित होना होगा—यह शिल्प-वस्तु चाहे कितनी भी सामान्य क्यों न हो। समाचार पत्रों को चाहिए कि अच्छे चित्र और कलासामग्री को छापकर जनता तक पहुँचाते रहें जिससे सौन्दर्य बोध का यह महान् देश व्यापी यज्ञ सफल हो।

नन्द बाबू के ये दस लेख क्या हैं कला के दस उपनिषद् हैं। पदे-पदे नवीन भाव और नए-विचार दिए गए हैं जिनमें नया प्राण है, जीवन के साथ साक्षात् सम्बन्ध है और तार्किक सिद्धान्तों की जड़ता नहीं है। चित्राचार्य का बहु विध दर्शन ही लेख बन गया है, ठीक जैसे वह चित्र बनता रहता है।

इस प्रश्न के उत्तर में कि जो पहेली का प्राब्लेम का आकार लेता है, वह भी शिल्प है या नहीं। इस पर नन्द बाबू का कहना है कि शिल्प रस की व्यञ्जना में एक ओर जैसे अनिर्वचनीय और अरिपीम है, वैसे ही दूसरी ओर रूप में रेखा में, अर्थ में सुसीम, संहत और सुनिर्दिष्ट है। जो इस प्रकार रेखा, रूप, रङ्ग और अर्थ के द्वारा सुव्यक्त, सुबोध और रसपूर्ण नहीं है, वह नव्य न्याय की कूट पहेली भले ही हो, शिल्प की सौन्दर्यबोध जननी कृति नहीं है।

विज्ञान व मनोविज्ञान के तथ्यों को लेकर क्या होगा? एक समय यूरुप स्वभाव या वास्तविकता की हूबहू नकल करने की ओर झुका हुआ था। कला का यह सही रास्ता नहीं है, यह अन्त तक तृप्ति नहीं प्रदान कर सकता। प्रतिक्रिया के कारण अब स्वभाव को एकदम उड़ा देने की चेष्टा हो रही है, वह भी अस्वाभाविक है; इसमें कोई रस नहीं है। भारतीय कला उस श्रेणी की है जहाँ सूर्य का आलोक दर्पण में पड़ता है, मिट्टी या पत्थर पर नहीं। इस कला ने बहुत करके अनुकरण नहीं किया है।

इसका सच्चा रूप, रूप और अरूप दोनों के बीच विराजमान है।

—बासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश आगरा की

सन् १९५१-५२ की नई फ़ाइलें

इस अङ्क के साथ हमारा १३ वाँ वर्ष समाप्त हो रहा है। अतः इस वर्ष भी हम जुलाई ५१ से जून ५२ तक के वर्ष की कुछ फाइलें बना रहे हैं जो १५ जुलाई तक तैयार हो सकेंगी—सजिल्द मूल्य ५) पोस्टेज ॥।=)

फाइलें सीमित संख्या में बनाई जायँगीं अतः जो सज्जन इसे लेना चाहें वे अपना आर्डर तुरन्त भेजदें जिससे हम उनके लिए सुरक्षित रख सकें।

इस फाइल की विषय सूची इसी अङ्क में अन्यत्र देखें अन्यथा हमसे मँगायें।

साहित्य सन्देश कार्यालय, ४ गांधी मार्ग, आगरा।

परीक्षार्थी प्रबोध के प्रथम खण्ड

का

तीसरा संस्करण छप गया

इस प्रकार—

भाग १, २, ३ तैयार हैं मूल्य प्रत्येक का ३) पोस्टेज प्रथक।

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को

पौने मूल्य में

दिये जायँगे। आज ही आर्डर भेज कर मँगालें।

—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sahitya Sandesh, Agra.
JULY 1952.
REGD. NO. A. 263.
Licence No. 16
Licenced to post without Prepayment

व्यापारियों तथा शिक्षकों को

विशेष रियायत

इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग की समस्त

पुस्तकें

हमारे यहाँ से व्यापाराना कमीशन पर

खरीदिए

इसके अतिरिक्त,

हिन्दी की निम्न परीक्षाओं की पुस्तकें

साहित्य सम्मेलन—प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा
विद्यापीठ देवघर—साहित्यालङ्कार, साहित्यभूषण
माहेश्वरी विद्यापीठ—प्रवेशिका, विद्याविनोदिनी, विदुषी और सरस्वती
बी० ए० और एम० ए० आदि

सरकार द्वारा स्वीकृत
बेसिक रीडर भाग ५

इण्डियन प्रेस लि० की प्रकाशित प्राइमरी और हाईस्कूलों में स्वीकृत पुस्तकें

परीक्षोपयोगी

परीक्षार्थी प्रबोध भाग १, २ और ३ मूल्य ३) प्रत्येक

इच्छित पुस्तकों का उल्लेख करते हुए सूचीपत्र मुफ्त मँगावें

साहित्य रत्न भण्डार, ४ गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १४] आगरा—अगस्त १९५२ [अङ्क २

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम. ए., पी-एच. डी.
महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

मुद्रक
साहित्य प्रेस, आगरा।

वार्षिक मूल्य ४), एक अङ्क का ।=)

इस अङ्क के लेख

१	हमारी विचार धारा	सम्पादक
२	काव्य का मूल	प्रो० रमाशंकर तिवारी एम० ए०
३	भक्त-शिरोमणि सूर की दार्शनिकता	कुमारी लक्ष्मी स्वामी
४	अपभ्रंश का कार्य तथा आरम्भ	कु० सुकेशनी गौड़ एम० ए०
५	हिन्दी में आलोचना के विभिन्न रूप	श्री श्रीलाल 'भानु' साहित्याचार्य
६	खड़ी बोली में गीत	श्री त्रिलोचन पाँडे
७	हिन्दी गद्य साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव	प्रो० मोहनलालजी एम० ए०
८	मैथिलीशरण गुप्त और भारतीय संस्कृति	श्री अरविन्द मालवीय एम० ए०
९	विचार विमर्श	
१०	साहित्य परिचय	

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य सन्देश प्रत्येक माह के द्वितीय सप्ताह में निकलता है।

२. साहित्य-सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।

३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।

४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।

५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।

६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं।

साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : जुलाई, १९५२

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं।

आलोचना

प्रसाद की विचार धारा—
डा० रामरतन भटनागर ४)

आधुनिक हिन्दी साहित्य परिचायिका—
श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ १।।।)

भारत की भाषाएँ और भाषा सम्बन्धी समस्यायें—
श्री महादेव साहा ३)

मुक्ति-पथ का सरल अध्ययन—
कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार १।।।=)

हिन्दी साहित्य अनुशीलन—
रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल' ३।।।)

वत्सराज एक अध्ययन—विश्वप्रकाश दीक्षित ।।।)

तुलसी तत्व—श्री सत्यदेव सहल २)

प्रसाद की नाट्यकला एवं स्कन्दगुप्त समीक्षा—
रामप्रकाश अग्रवाल एम० ए० २।)

कविता

ठंडा लोहा तथा अन्य कविताएँ—
धर्मवीर भारतीय ३)

जवानी और जमाना—श्री श्यामनन्दन किशोर १।।)

कहानी

नए चित्र—रामस्वरूप दुबे १।)

निबन्ध

भारतेन्दु के निबन्ध—डा० केशरी नारायण शुक्ल ५)

मनुष्य की मर्यादा—श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र २।।।)

प्रबन्ध पीयूष—विद्या भास्कर 'अरुण' ३।।=)

बालोपयोगी

पंजाब की कहानियाँ भाग १—संतराम बी. ए. ।।=)

,, ,, भाग २— ,, ,, ।।।=)

,, ,, भाग ३— ,, ,, ।।।)

मनोविज्ञान

सरल बाल मनोविज्ञान—कुमारी कञ्चनलता १।।।)

धार्मिक

महाबली हनुमान—राजबल्लभ ओझा ।।।)

मध्यकालीन धर्म-साधना—
हजारीप्रसाद द्विवेदी २।।)

सामाजिक

गार्हस्थ्य जीवन और ग्राम सेवा—
परशुराम चतुर्वेदी ।।।)

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

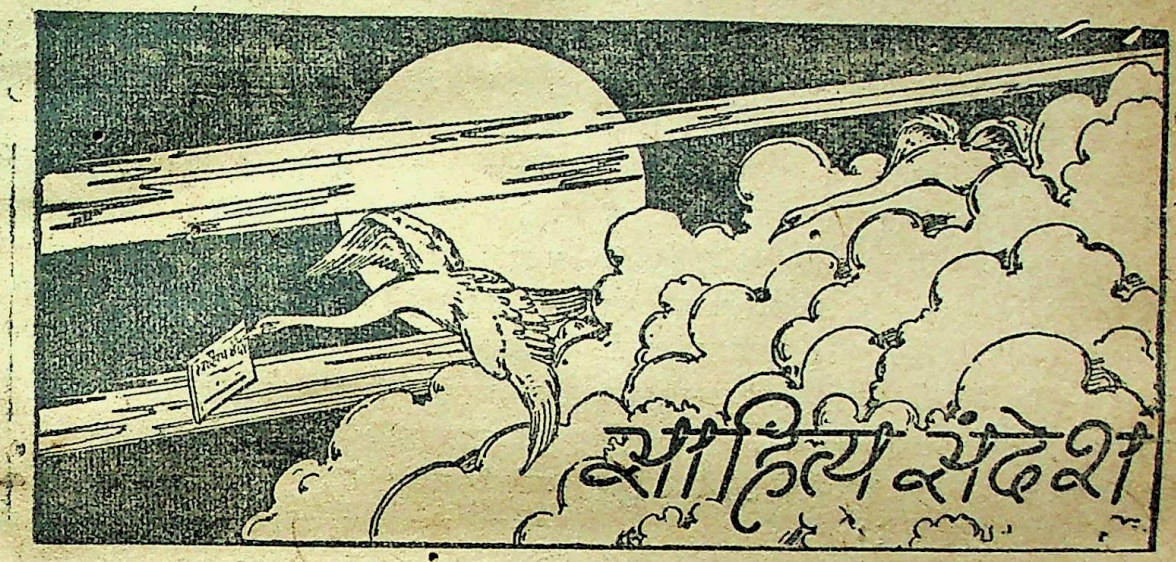

वर्ष १४] आगरा—अगस्त १९५२ [अङ्क २

हमारी विचार-धारा

अपनी बात—

'साहित्य-सन्देश' का चौदहवां वर्ष जुलाई से प्रारम्भ हो गया। यह अङ्क आलोचनाङ्क का परिशिष्टाङ्क होगा और साधारण अङ्क से लगभग ड्योढ़ा होगा—ऐसी घोषणा की गई थी। हमें खेद है कि हम अपनी इस घोषणा का पूर्ण रूप से पालन नहीं कर सके। परिशिष्टाङ्क में जो लेख हम देना चाहते थे उनमें से कई लेख न जा सके और अङ्क को जितना आकर्षक और उपयोगी हम बनाना चाहते थे—नहीं बना सके। इसका हमें खेद है। पाठक हमारी परिस्थिति को जान लेंगे तो सम्भवतः वे स्वयं हमें क्षमा कर देंगे। पत्र के सञ्चालक, प्रबन्ध सम्पादक और मुख्य कार्यकर्त्ता महेन्द्रजी हैं वे जून के प्रारम्भ में बीमार पड़ गए। उन्हें टायफायड हो गया जिससे वे सवा महीने तक खाट पर रहे, उसके बाद भी १५ दिन तक उनमें काम करने की शक्ति न रही। फलतः उनके मनसूबे उनके मन में ही रह गए। बीमारी में उनकी हालत ऐसी रही कि उनसे परामर्श भी नहीं किया जा सका। सन्देश के दूसरे सम्पादक डा० सत्येन्द्र व्रज साहित्य मण्डल के काम से कलकत्ते चले गये और वहाँ वे इतने व्यस्त रहे कि 'साहित्य-सन्देश' का कुछ भी काम न कर सके। साहित्य-सन्देश के वयोवृद्ध प्रधान सम्पादक श्री गुलाबराय जी को अधिक कष्ट देने को तबियत नहीं चाहती। जितना वे स्वेच्छा से कर देते हैं वही उनके आशीर्वाद स्वरूप स्वीकार किया जाता है। ऐसी दशा में साहित्य-सन्देश का जुलाई का अङ्क समय पर निकल गया—यही सन्तोष की बात है। इस अङ्क में जो लेख छपने से रह गये हैं वे आगे के अङ्कों में छाप दिए जायँगे।

'साहित्य सन्देश' का कलेवर—

'साहित्य सन्देश' की पृष्ठ संख्या बढ़े, उसमें कागज अच्छा लगे और उसका गेटअप सुन्दर हो यह परामर्श हमारे अनेक पाठक देते हैं। हम भी चाहते हैं—ऐसा हो। पर परिस्थिति से लाचार हो कर हम वैसा नहीं कर पाते। इधर कई वर्ष से सा० सं० का मूल्य चार रुपया है। चार

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये में हमने गत वर्ष ५३२ पृष्ठ की ठोस पाठ्य सामग्री दी है। पुस्तकाकार में यह सामग्री छापी जाती तो यह १२०० पृष्ठ में छपती और आज कल जैसा मूल्य रक्खा जाता है उसके अनुसार इसका मूल्य १०) होता। हिन्दी में कुछ अच्छे पत्र ऐसे निकले हैं जो वर्ष में ७००-८०० पृष्ठ देते हैं। उनका मूल्य दस रुपये वार्षिक से कम नहीं है। पर हम चार रुपये में ही इतनी सामग्री देते हैं। सो भी उस दशा में जब ६) रिम का रफ कागज हमें गत वर्ष १५) रिम तक खरीदना पड़ा। अच्छा कागज तो मिला ही नहीं। मिला भी तो उसके दाम २१)-२२) रिम रहे। अतः हम न तो अच्छा कागज ही लगा सके और न पृष्ठ ही बढ़ा सके। हम चार रुपये में जो कुछ दे रहे हैं वह अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं है।

'साहित्य-सन्देश' का मूल्य—

हमारे अनेक पाठकों ने अनेक बार हमें यह परामर्श भी दिया कि हम सा० सं० का मूल्य बढ़ा दें। ऐसा करना अनुचित भी नहीं था। परन्तु हमने वैसा किया नहीं। क्योंकि हम जानते हैं कि हमारे अधिकांश ग्राहक गरीब हैं और वे चार रुपये भी कठिनाई से दे पाते हैं। मूल्य बढ़ाना उनके साथ अन्याय करना होगा। अतः हमने हानि उठाकर भी मूल्य बढ़ाना उचित नहीं समझा। आज हमें इस बात का सन्तोष है कि साहित्य सन्देश के पाठक और ग्राहक-अनुग्राहक जितने हैं उतने और किसी साहित्यिक पत्र के नहीं हैं। भविष्य में भी हमारी इच्छा यही है कि हम अधिक से अधिक पाठकों की सेवा कर सकें। और इसके लिए हम अपने पाठकों से केवल एक प्रार्थना करते हैं—साहित्य सन्देश के जो ग्राहक आज हैं वे आगे भी बने रहें और यदि किसी कारण से आगे ग्राहक न रहना चाहें तो अपने स्थान पर अपने किसी मित्र को इसका ग्राहक बना दें। जो सज्जन पहले ग्राहक थे और अब किसी कारण नहीं हैं वे पुनः वार्षिक शुल्क मनिआर्डर से भेजकर ग्राहक बन जायँ। और सभी ग्राहक-अनुग्राहक तथा पाठक अपना कर्त्तव्य समझ कर और साहित्य सन्देश को अपनी संस्था मानकर इसके ग्राहक बढ़ाने की कृपा करें। एक-एक पाठक एक-एक ग्राहक भी नया बना दें तो सात हजार नए ग्राहक बन सकते हैं। इसमें हमारे कृपालुओं में तो ऐसे-ऐसे महानुभाव भी हैं जिन्होंने पचास-पचास ग्राहक बनाए हैं। मेरठ कालेज के प्रो० रामप्रकाश अग्रवाल ने गत वर्ष ७० से ऊपर ग्राहक बनाने की कृपा की थी। कानपुर के प्रो० अयोध्यानाथजी शर्मा ने एक बार में ३० से ऊपर ग्राहक बनाए थे। नूरसराय (पटना) के श्री शिवप्रसाद लोहानी अब तक अनेकों ग्राहक बना चुके हैं। दिल्ली के प्रो० मोहनलाल चेजारा, गोरखपुर के श्री गोपीनाथ तिवारी, मुरादाबाद के श्री विनयकुमार गुप्त, पिलानी के श्री कन्हैयालाल सहल आदि महानुभावों ने इस कार्य में हमारी प्रशंसनीय सहायता की है। अपने ऐसे सहायकों का अब तक हमने कोई लेखा नहीं रक्खा था—किन्तु आगे हम ऐसे सभी कृपालुओं का शुभ नाम साहित्य सन्देश में साभार प्रकाशित करेंगे जो हमारे कम से कम चार-पाँच ग्राहक बनाने की कृपा करेंगे।

लेखक बन्धुओं से—

हिन्दी के सभी ख्याति प्राप्त लेखकों की साहित्य सन्देश पर कृपा रही है और हमें विश्वास है कि वह कृपा आगे भी बनी रहेगी। प्रौढ़ लेखकों के महत्वपूर्ण लेख छापने का प्रयत्न तो हम करते ही रहे हैं—पर साहित्य-सन्देश को इस बात का भी गर्व है कि उसने अपने जीवन में एक नहीं पचासों नए लेखकों को जन्म दिया और उन्हें आगे बढ़ाया है। उनमें से कुछ तो आज प्रथम श्रेणी के लेखकों में गिने जाते हैं। हमारी नीति आगे भी यही रहेगी। हम अपने प्रौढ़ लेखकों के महत्वपूर्ण लेखों का सदैव स्वागत करेंगे और अब हमने यह निश्चय किया है कि ऐसे लेखकों को उनके समस्त लेखों के लिए पुरस्कृत करेंगे। इसके लिए नियम यह रहेगा कि जिन लेखकों को हमें पुरस्कृत करना है उन्हें लेख छपने के साथ ही साथ पुरस्कार के रुपयों के कूपन भेज देंगे जिनके बदले में वे चाहें तो उतने ही मूल्य की अभीष्ट पुस्तकें हमारे कार्यालय (साहित्य-रत्न-भण्डार) से मँगा सकेंगे।

हमारे इस प्रस्ताव को हमारे अनेक मित्रों ने बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसन्द किया है और हमारा विश्वास है कि सभी महानुभाव इसका स्वागत करेंगे। हमारे इस निश्चय से हमें यह भी विश्वास है कि साहित्य-सन्देश में और भी मूल्यवान पाठ्य-सामग्री भविष्य में आ सकेगी।

निवेदन—

अन्त में हम अपने पाठकों से फिर एक बार अपनी पिछली भूलों के लिए क्षमा चाहते हैं और अधिक से अधिक सेवा करने की भावना करते हैं। साथ ही यह भी आशा करते हैं कि हमारे पाठक भी हमारे साथ वैसा ही स्नेह भाव बनाए रखने की कृपा करेंगे।

पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न—

उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग ने माध्यमिक (Intermediate) परीक्षा के लिए सभी विषयों का हिन्दी में पढ़ाया जाना अनिवार्य करके एक सराहनीय कार्य किया है। जब तक पानी में पैर नहीं देते तब तक तैरना नहीं आता। कुछ अध्यापकों ने जो पहले से हिन्दी से परिचित थे इस आयोजन का स्वागत किया है और कुछ ने रोते-रोते इस नई मुसीबत के साथ समझौता करने का प्रयत्न किया है। अब पारिभाषिक शब्दावलियों की समस्या व्यावहारिक रूप में आ रही है। पुस्तकों की तो कमी नहीं है। विषय का विवेचन भी उन पुस्तकों में बुरा नहीं है किन्तु कठिनाई इस बात की है कि किसी ने डाक्टर रघुवीर की शब्दावली का प्रयोग किया है तो किसी ने नागरी प्रचारिणी सभा की, और किसी ने अपनी। मालूम नहीं परीक्षक महोदय कौनसी शब्दावली से परिचित होंगे। पारिभाषिक शब्दावलियों का प्रामाणीकरण अभी नहीं हुआ। यह अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए पाँच सुझाव हैं—

(१) बोर्ड किसी एक शब्दावली को अन्तरिम काल के लिए मान्यता दे दे, और शिक्षक लोग उसी का प्रयोग करें।

(२) कोई ऐसी केन्द्रीय संस्था हो जहाँ शिक्षक लोग अपनी व्यावहारिक कठिनाइयों को लिख भेजा करें और केन्द्र में विभिन्न विषयों के विद्वानों की एक कमेटी रहे जो उन कठिनाइयों पर विचार कर उनका समाधान किन्हीं विशिष्ट पत्रों में छपवा दिया करे। इससे पूर्व कि अध्यापकगण अपनी कठिनाइयों को केन्द्र में भेजें समय-समय पर स्थानीय जानकारों से पारस्परिक विचार विनिमय कर उसका फल भी केन्द्र में भेज दिया जाय।

(३) दिल्ली में 'हिन्दी परिषद' नाम की सरकारी या अर्द्ध सरकारी संस्था बनी भी है किन्तु उसका कार्य कक्ष के भीतर ही होता रहता प्रतीत होता है। उसको चाहिए कि एक परिपत्र द्वारा अध्यापकों की व्यावहारिक कठिनाइयों को आमन्त्रित करे और उनका समाधान सोचे। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की एक केन्द्रीय साधना चाहे हो किन्तु उसके साथ खुले क्षेत्र का स्कूलों और कालेजों के अध्यापकों का सहयोग के साथ भी कार्य होना आवश्यक है। विभिन्न प्रान्तों के विद्वानों के साथ सम्पर्क स्थापित करके शब्दावली के एकीकरण का प्रयत्न करें।

(४) अध्यापकों को भी थोड़े धैर्य से काम लेना चाहिए। पारिभाषिक शब्दावली की कठिनाई को अपने ऊपर से हिन्दी के पढ़ाने के बोझ को उतार फेंकने का बहाना न बनाना चाहिए। उनको दोनों कोशों ही नहीं तीनों चारों कोशों का सहारा लेना चाहिए।

(१) डाक्टर रघुवीर के कोश (उनके विषयवार भी कुछ कोश बने हैं) (२) नागरी प्रचारिणी सभा के विषयवार कोश, (३) राहुल सांकृत्यायन का कोश (४) भार्गव का कोश (५) भंडारी का कोश। इनके अतिरिक्त उपलब्ध पुस्तकों और यदि हो सके तो प्राचीन पुस्तकों जैसे कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र, जीवन सम्बन्धी विज्ञानों के लिए सुश्रुत, योग ग्रन्थ आदि का सहारा लिया जाय। मुझे Organic के लिए जान्तु (जन्तु या जीवधारी सम्बन्धी) एक अच्छा शब्द मिला। ऐसे जो शब्द मिलें, नोट किये जायँ। इसको वे राष्ट्रीय कार्य समझें और वैज्ञानिक बुद्धि को खोये बिना प्रचारक बुद्धि से काम लें।

यह तो रही शिक्षा क्षेत्र की बात। कानूनी और राजकीय कार्यवाही में भी प्रान्तीय सहयोग की आवश्यकता है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने उत्तर प्रदेश की विधान परिषद में जो अपना प्रारम्भिक भाषण दिया था उसमें उन्होंने सुझाव दिया था कि हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त आपस में इस मामले में सहयोग करें। बिहार, मध्यप्रदेश, मध्यप्रान्त,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान, उत्तर प्रदेश सब मिल कर यह निश्चय कर लें कि वे आपस में जो लिखा-पढ़ी करेंगे वह हिन्दी में करेंगे। वे मिलकर आंकड़ सम्बन्धी और पारिभाषिक शब्दावली की कठिनाइयों को दूर कर लें और एक सी शब्दावली का ही प्रयोग करें। ऐसा करने से ही १५ वर्ष की अवधि घट सकेगी नहीं तो वह शिला की भाँति छाती पर ही रखी रहेगी।

'सत्यं शिवम् सुन्दरम्'—

एक सज्जन ने कई विद्वानों से पूछ-ताछ की है कि यह वाक्य कब प्रचार में आया। इस प्रश्न के पूछने का व्यावहारिक कारण यह है गुसाईं चरित में यह वाक्य आता है और यदि यह शब्दावली आधुनिक है तो उसकी प्रामाणिकता में सन्देह उपस्थित हो जाता है। सत्यं, शिवं, सुन्दरम् है तो प्लेटो के The True, the Good, the Beautiful का ही अनुवाद और इसका प्रचार ब्रह्म समाज से ही हुआ। अपने यहाँ इसका जो निकटतम पर्याय मिलता है वह गीता में वाणी के तम के सम्बन्ध में लिखा हुआ यह श्लोक है:—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तम उच्यते॥

श्री मद्भगवद्गीता (१७।१५)

'सत्यं प्रियहितं में सत्यं शिवं (हितं) सुन्दरम् (प्रिय) का भाव आ जाता है।

आत्मकथा पर पुरस्कार—

हमारे देश के महान नेता राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी हिन्दी के महान लेखक भी हैं—यह हमारे पाठक जानते ही हैं। आपने अपनी जीवनी स्वयं ही लिखी है और वह प्रकाशित भी हो चुकी है। अभी हाल में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने आपकी इस 'आत्मकथा' पर 'द्विवेदी पुरस्कार' प्रदान किया है। यह पुरस्कार एक स्वर्णपदक के रूप में है जो प्रतिवर्ष उस पुस्तक पर दिया जाता है जो उस वर्ष की सर्वोत्तम पुस्तक प्रमाणित होती है। इस पुस्तक पर यह पुरस्कार ठीक ही मिला है क्योंकि वास्तव में आपकी यह आत्मकथा बहुत सुन्दर लिखी गई है। हम इस के लिए सभा को और डा० श्री राजेन्द्रप्रसाद जी दोनों को बधाई देते हैं।

दो हजार का पुरस्कार—

उत्तर प्रदेशीय सरकार ने घोषित किया है कि वह २०००) का एक पुरस्कार उस लेखक को प्रदान करेगी जो हिन्दी में सभा विधान (Parliamentary Practice) विषय पर सर्वोत्तम मौलिक पुस्तक लिखेंगे। हम आशा करते हैं कि विद्वान लेखक इससे उत्साहित होकर अच्छी पुस्तक लिखने की चेष्टा करेंगे।

श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित के विचार—

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की हिन्दी शाखा के पारितोषिक वितरण उत्सव में भाषण देते हुए श्रीमती पण्डित ने दो बातें हाल ही में बड़े मार्के की कही हैं। यह उद्धरण हम दैनिक हिन्दुस्तान के ४ अगस्त के अंक से दे रहे हैं। पाठक पढ़ें और विचार करें :—

"जब मैं रूस गयी तो एक प्रमाण पत्र हिन्दी में बना, वह टण्डनजी ने बनाया। पण्डित नेहरू तथा सरदार पटेल ने कहा था कि मैं हिन्दी में बोलूँ, पर मैं यह ख्याल नहीं करती थी कि वहाँ इसका अधिक प्रयोग होगा। पर जैसे ही मैंने प्रमाण-पत्र भेजा वहाँ से टेलीफोन आया कि यह अशुद्ध है और 'अध्यक्ष' के स्थान पर 'सभासद्' लिखा गया है। भाषण का अनुवाद भी मुझे रूसी में सुनाया गया और मुझसे कहा गया कि विदेश विभाग में वार्ता हिन्दी में करना या रूसी में। जब मैंने हिन्दी में करने की इच्छा प्रकट की तो दस मिनट में ही एक दुभाषिये का प्रबन्ध कर दिया गया।

उन्होंने आगे बताया कि संयुक्त राष्ट्र में उनसे नार्वे के मण्डल के नेता ने कहा कि आप लोग सदा अंग्रेजी में बात करते हैं, क्या आपको अपने देश की भाषा नहीं आती? मुझे बड़ी शर्म आई। हम पुरानी तालीम पकड़े हुए हैं, जिससे हमारी उन्नति रुक रही है।"

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य का मूल

प्रो० रमाशङ्कर तिवारी, एम० ए०, डिप०-एड०

आत्माभिव्यक्ति मानव की चिरन्तन लालसा है। अनादि काल से वह विविधरूपों में अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन करता चला आ रहा है। जीवन के प्रथम प्रभात की स्वर्णिम किरणों के दर्शन से उसकी आत्मा की वीणा से आनन्द और विस्मय का जो मधुमय निनाद निस्सृत हुआ तथा अनन्त काल के प्रवाह में उसे जो मार्मिक अनुभूतियाँ हुईं, जिस पूर्णता और अभाव ने उसे उल्लसित और व्यथित किया—उन समग्र 'आध्यात्मिक निधियों' का संरक्षण एवं प्रवर्द्धन करने की कामना मनुष्य की मूल प्रेरक शक्तियों में रही है। वह अपने लघुतम और बाह्यतः अनुपेक्षणीय अनुभव को भी वही स्नेह तथा महिमा प्रदान करता है जो 'किंग माइडास' अपने सुवर्ण को प्रदान किया करता था। इन अनुभवों की संचित राशि की अभिव्यक्ति की प्रणालियों में काव्य का शीर्ष-स्थान है।

किन्तु इस आत्माभिव्यक्ति की प्रेरणा क्यों होती है? काव्य अथवा अन्य कलाओं का मूल प्रयोजन क्या है? इस प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण जीवन से संबद्ध है। आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र के पाश्चात्य पंडितों ने जीवन की मूल प्रेरणाओं के सम्बन्ध में गहरी छानबीन कर नव-सिद्धान्त स्थिर किये हैं। उनमें सर्व-प्रमुख फ्रायड हैं। इन्होंने मनुष्य के निखिल व्यापारों का मूल काम-वासना (लिबिडो) निरूपित किया है। शैशवावस्था से लेकर जीवन के पर्यवसान तक ये वासनाएँ मनुष्य की क्रियाओं की मूल प्रेरक शक्ति रहती हैं। सामाजिक शिष्टाचार के कारण इन वासनाओं की अभिव्यक्ति नहीं होने पाती तथा ये चेतन मन से निकल कर उपचेतन मन में दबी पड़ी रहती हैं। वहीं से ये हमारे जीवन को अदृश्य भाव से प्रभावित किया करती हैं तथा परिवर्तित रूप में अपने प्रकटीकरण का मार्ग निकालती रहती हैं। किन्तु इस अभिव्यक्तीकरण में उनका रूप परिमार्जित (Sublimated) हो जाता है जो समाज को ग्राह्य है। काव्य तथा अन्य कलायें इसी दबी यौन-भावना के शिष्ट, परिमार्जित रूपान्तर हैं। एक दूसरे पाश्चात्य पण्डित 'ऐडलर' किसी अभाव या क्षति की पूर्ति को जीवन की मूल प्रेरक शक्ति मानते हैं। उनके अनुसार हम किसी क्षति के पूरणार्थ काव्य की सर्जना करते हैं। इस सिद्धान्त के मूल में किसी हीन-भावना (Inferiority Complex) के प्रतिशोध-रूप मनुष्य में प्रभुत्व-कामना कार्यशील रहती है।

अब विचारणीय यह है कि क्या काम-वासना अथवा प्रभुत्व भावना ही काव्य-सर्जन की रहस्य-भूमि को आलोकित करने वाला चरम सत्य है? बृहदारण्यक उपनिषद में जीवन की मूल प्रेरणाओं का विवेचन किया गया है। उसके अनुसार मनुष्य के समग्र क्रिया-कलाप पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा (यश की लालसा) इन्हीं तीन एषणाओं से प्रेरित होते हैं। किंचित् विचारने से ज्ञात हो जाता है कि काम-वासना और प्रभुत्व-भावना, दोनों सिद्धान्तों का अन्तर्भाव इन त्रिविध एषणाओं में हो जाता है।* किन्तु हमारे तत्त्व-चिन्तक साधारण मनुष्य के सम्बन्ध में इन एषणाओं की प्रधानता मानते हुए भी उन्हें ही सम्पूर्ण सत्य स्वीकार नहीं करते। 'ब्राह्मण' इन एषणाओं की भूमि से ऊँचा उठ जाता है एवं महनीय त्याग का जीवन व्यतीत करता है क्योंकि वह आत्मा को पहचानता है—

"एवं वै तदात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायश्च वित्तैषणायश्च लोकैषणायश्च व्युत्थाय भिक्षाचर्यं चरन्ति।"

अतएव यह बड़े महत्त्व की कल्पना है कि मानव अन्तश्चेतना के विकास के एक विशिष्ट धरातल पर पहुँच कर साधारण जीवन की सामान्य प्रेरणाओं की संकीर्ण परिधि का अतिक्रमण कर जाता है। तब वह सामान्य से विशिष्ट बन जाता है, लघु से महान् बन जाता है। और

* 'पुत्रैषणा' में 'लिबिडो' तथा वित्तैषणा और लोकैषणा में प्रभुत्व-भावना चली जाती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस महनीयता का रहस्य उसके आत्म-प्रेम, आत्मानुराग में निहित है।

काव्य का विचार करते समय हमें उसे इसी ऊँची भूमि पर प्रतिष्ठित करना होगा। काम-वासना अथवा प्रभुत्व-कामना जीवन की कतिपय निगूढ़ ग्रन्थियों को सुलझाने में उपयोगी या सहायक सिद्धान्त हो सकते हैं, किन्तु उन्हें ही जीवन का श्रेयस् मान लेना कथमपि उचित नहीं है। अस्तु।

कवि कुछ अर्थ में उपनिषद् का पूर्वोक्त 'ब्राह्मण' होता है। उसकी अनुभूतियाँ सर्व-सामान्य अनुभवों से विशिष्ट होती हैं। उसकी लालसायें, उसके स्वप्न, उसके स्पन्दन—सभी विचित्र होते हैं, सभी नव चेतना के आलोक से अनुरञ्जित होते हैं। सुप्रसिद्ध आंग्ल-कवि वर्ड्सवर्थ के अन्तर्जीवन में ऐसे आलोक-क्षणों (Moments of illumination) का प्राचुर्य था। बहिर्जगत के रम्य रूपों में तो आत्मा को रमाने के लिए प्रभूत आकर्षण होता ही है, यह कवि तो अपने प्रगाढ़ चिन्तन के क्षणों में तृण के तिनके जैसी सामान्यतम वस्तु में भी लोकोत्तर छटा एवं आनन्द का दर्शन करता था। काव्य वस्तुतः हमें अपने क्षुद्र स्वार्थों, और संकीर्ण प्रयोजनों की परिधि से बाहर ले जाता है। जीवन की सामान्य दिनचर्या में हम 'स्व' से बहुत ऊपर नहीं उठते। हमारे समस्त कार्यकलाप, हमारी समग्र चिन्तन-धारा व्यक्तिगत सुख-दुःख के केन्द्र से ही शासित होती है। हमारी कल्पना, हमारी भावना, हमारा सत्य, हमारा सौन्दर्य, हमारा शिव—सभी प्रयोजन-सापेक्ष होते हैं। पञ्चभूतों में क्षिति और जल का ही प्राबल्य अधिक होता है, अनल और अनिल तो यदा कदा अपना वैभव प्रदर्शित करते हैं। सामान्य जीवन की कुण्ठाओं से विमुक्त करने का मङ्गलमय कार्य कवि सम्पन्न करता है। उस समय वह उच्चतर सत्य, महत्तर सौन्दर्य एवं व्यापकतर शिव का दर्शन कराता है। तब वह 'व्यक्ति' से उठकर 'विश्व' बन जाता है; उसकी अनुभूतियाँ वैयक्तिक न हो कर सार्वजनीन बन जाती हैं। काव्य हमें इसी प्रयोजनातीत सौन्दर्य और आनन्द की अनुभूति कराता है।

काव्य की इस विश्वजनीनता (Universality) की ओर आचार्य प्रवर शुक्लजी ने 'कविता क्या है ?' शीर्षक लेख में 'हृदय की मुक्तावस्था' द्वारा संकेत किया है। इस 'मुक्तावस्था' की व्याख्या आपने यों की है—

"जब तक कोई अपनी पृथक् सत्ता की भावना को ऊपर किये हुए इस क्षेत्र के नाना रूपों और व्यापारों को अपने योगक्षेम, हानि-लाभ, सुख-दुःख, आदि से सम्बन्ध करके देखता रहता है, तब तक उसका हृदय एक प्रकार से बद्ध रहता है। इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी पृथक् सत्ता की धारणा से छूट कर अपने आप को बिलकुल भूल कर विशुद्ध हृदय-मात्र रह जाता है, तब मुक्त-हृदय हो जाता है।"

हृदय की इसी मुक्तावस्था में कविता योग देती है—"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की वह मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भाव-योग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं।"

आगे शुक्लजी कहते हैं कि कविता मनुष्य के हृदय को "स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठा कर 'लोक-सामान्य भावभूमि' पर ले जाती है" जहाँ वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में खो देता है। "इस अनुभूति-योग के आभास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।" बाबू गुलाबरायजी की सम्मति में शुक्लजी कविता में 'सत्य की अवहेलना न करते हुए भी रागात्मक तत्त्व को प्रधानता देते हैं।' किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात यहाँ है काव्य की विश्वजनीनता, उसकी उदार, उदात्त प्रवृत्ति जो एकता में अनेकता और अनेकता में एकता की प्रतिष्ठा करती है।

शुक्लजी के उपर्युक्त विवेचन में एक ऐसा पद (Phrase) है जो भ्रमोत्पादक है। मेरा संकेत उनकी 'लोक-सामान्य भावभूमि' की ओर है। सम्भवतः भारतीय रस-वाद के समर्थक होने, तथा काव्य को लोकहित से सम्बन्धित करने के कारण, शुक्लजी 'लोक-सामान्य भावभूमि' का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेख करते हैं। मैं इस 'लोक-सामान्यता' को उतनी ही दूर और उतनी ही हद तक स्वीकार करता हूँ जितने से काव्य की प्रेषणीयता (Communicability) को बल मिलता है तथा उसमें घोर, उद्दाम वैयक्तिकता के निर्बाध पल्लवन की सम्भावना नियन्त्रित होती है। वर्ड्सवर्थ मानव की आदिम चित्तवृत्तियों को कविता का उपजीव्य स्वीकार करता है तथा 'सर्व-साधारण में व्याप्त राग विरागों'(Joys in the widest commonalty spread) के ज्ञान से अपनी काव्य-देवी (Muse) को सन्तुष्ट करना चाहता है। उसमें भी शुक्लजी की 'लोक-सामान्य-भावभूमि' को अनुमोदन प्राप्त होता है। किन्तु जैसा आंग्ल-साहित्य के विद्यार्थियों को ज्ञात है, रोमांटिक काव्य-क्रान्ति के इस महान् प्रवर्त्तक की बहुलांश रचनाएँ पाठकों की रागात्मिका वृत्ति का भाजन नहीं बन सकीं क्योंकि—यह दोषारोप किया गया—उनके भाव पाठकों की अनुभूति को उत्तेजित न कर सके। कवि को अवश्य ही कोई 'विचित्र प्राणी' नहीं होना चाहिये; तथापि यह समझना कि कवि की समग्र अनुभूतियाँ 'लोक सामान्य भावभूमि' तक पहुँच ही जायेंगी, सर्वथा भ्रान्तिजनक है। यथा पहले कहा गया है, कवि उपनिषद् के 'ब्राह्मण' के तुल्य या समान है। उसकी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ, उसकी आभ्यन्तरिक प्रतिक्रियाएँ, उसके स्वप्न, उसके स्पन्दन, 'सामान्य' से सम्बद्ध होते हुए भी 'विशिष्ट' हैं। 'कामायनी' की दार्शनिक भावभूमि 'लोक-सामान्यता' की परिधि में नहीं आ सकती; वर्ड्सवर्थ का 'इम्मौर्टैलिटी ओड', शैली के 'स्काइलार्क' तथा 'वेस्टविंड', 'दिनकर' का 'हिमालय के प्रति' अथच पंत, निराला, महादेवी प्रभृति कवियों की अनेक रचनाओं को लोक-सामान्य भाव-भूमि का अनुमोदन उपलब्ध नहीं हो सकता। हाँ यह अवश्य है कि प्रत्येक रचना की 'जनप्रियता' की सीमा—विद्वत् प्रियता की नहीं—लोक-सामान्यता पर बहुत कुछ अवलम्बित है।

ऊपर कहा गया है कि आत्मानुराग जीवन की सर्व प्रमुख प्रेरक शक्ति है। कवि इस आत्मानुराग से अनुप्राणित होता है। इसी कारण वह अपनी अनुभूतियों के मार्मिक अंशों को क्षिप्रता-मय, संवेदनापूर्ण शैली में अभिव्यक्त करता है। वह अपनी अनुभूतियों को लोक में विज्ञापित कर देता है। जिस महनीय सौन्दर्य का साक्षात्कार उसे हुआ है, वह उसे जनवर्ग की वस्तु बना देने के लिए व्यग्र हो उठता है। यहाँ वह 'माइडास' से आगे बढ़कर कर्ण या दधीचि बन जाता है। जब तक उसकी अभिनव अनुभूति उसके अन्तःकरण को आक्रान्त किये रहती है तब तक वह एक अनिर्वचनीय, लोकातीत वेदना से व्यथित रहता है और जिस क्षण वह अपनी अभिनव अनुभूति को सार्वजनीन अभिव्यक्ति प्रदान कर देता है, उसी क्षण उसे लगता है जैसे उसकी सङ्कीर्णता की सीमायें ध्वस्त हो गईं। वह 'व्यक्ति' से 'विश्व' बन गया। कामासक्त क्रौंच के निर्मम वध से महर्षि वाल्मीकि के कोमल मर्म पर जो सहसा आघात लगा वह "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं·····" के रूप में सम्पूर्ण चराचर विश्व में विज्ञापित कर दिया गया। महर्षि को छन्दः-सरस्वती का दर्शन हुआ अथच उनकी व्यथा अब विश्व की व्यथा बन गई, अब निषाद केवल एक ही अन्तःकरण द्वारा अभिशप्त नहीं रहा प्रत्युत् अनेक अन्तःकरणों की भर्त्सना का भाजन बन गया।

नव-प्राणमयी कल्पना के सौन्दर्य लोक में निवास करने वाले सुप्रसिद्ध क्रान्ति-द्रष्टा आंग्ल-कवि शैली को अपने लघु जीवन में सतत एक प्रखर मानसिक उद्विग्नता का अनुभव करना पड़ा। मानव-व्यक्तित्व के समुचित विकास को अवरुद्ध करने वाली परम्पराओं एवं प्रणालियों को ध्वंस करने की अदमनीय लालसा से अनुप्राणित इस कलाकार को एक अभिनव सौन्दर्य, एक नव स्फूर्तिदायक आदर्श के दर्शन हुए थे। उसके सम्पूर्ण काव्य में उस सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न अभिलक्षित हो रहा है। सुप्रसिद्ध काव्य 'प्रोमीथियस अनबाउंड' में 'एशिया' कह रही है—

"·····my brain
Grows dizzy; See'st thou shapes
Within the mist!"

ये पंक्तियाँ वस्तुतः कवि के अन्तर्जीवन की ओर लक्ष्य करती हैं। जिस अभिनव सौन्दर्य का साक्षात्कार कवि को हुआ है उसकी अनिर्वचनीयता, उसकी अपूर्णता,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी अनुपम स्वर्गीयता से उसकी वल्गना सिहर उठती है। 'वेस्ट विंड' में 'जीवन-कुसुम के काँटों' से व्यथित कवि पश्चिमीय पवन से मर्मस्पर्शी अनुरोध कर रहा है—

"Drive my dead thoughts
over the universe
Like withered leaves to
quicken a new birth!
× × × ×
Be through my lips to
unawakened earth
The trumpet of a prophecy! O wind,
If winter comes, can
spring be far behind?"

"हे पवन! सूखी पत्तियों की भाँति तू मेरे मृतप्राय स्वप्नों को समग्र विश्व में व्याप्त करदे जिससे एक अभिनव चेतना का उद्बोधन हो सके।

× × × ×

मैं चाहता हूँ कि मेरे ये छन्द सुषुप्त मानवता के लिए नव-युग के अभ्युदय का तुमुल उद्घोष करें। यदि सम्प्रति मानव शीतर्तु की प्रपीड़ना से व्यथित है तो क्या वसन्त का आगमन अधिक काल तक स्थगित हो सकता है?"

कवि की वेदना-बहुल अन्तरात्मा नव-सत्य के दर्शन से छटपटा रही है। वह इस चेतना को सम्पूर्ण विश्व में विकीर्ण कर देने को आतुर है। उसकी अनुभूति समग्र मानवता का अनुमोदन चाहती है, वह व्यक्तिगत धरातल से उठ कर मनुष्य-मात्र का प्रतिनिधि होना चाहता है। जिस स्वप्न के उसे दर्शन हुए हैं वह अवश्यमेव जागतिक व्यवस्था में उस स्वर्ण-युग का प्रवर्तन करेगा जब अत्याचार और प्रपीड़न की जगह चिरन्तन सुख और आनन्द का उदय होगा।

ऊपर जो कुछ विवेचन हुआ है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि अपनी आत्मा का प्रसार चाहता है, अपनी भावनाओं एवं धारणाओं के लिये लोक मान्यता (Social Sanction) चाहता है, अपने 'व्यक्तित्व' का 'समाजीकरण' अथवा 'सार्वजनीनीकरण' चाहता है। भारतीय साहित्य-शास्त्र में सम्मानित 'साधारणीकरण' का सिद्धान्त कवि और काव्य के इसी विश्वजनीन स्वरूप की ओर लक्ष्य करके स्थिर किया गया समझना चाहिये। 'रस-निष्पत्ति' की व्याख्या करने वाले साहित्य-शास्त्रियों में आचार्य भट्ट नायक ने काव्यगत भावों का साधारणीकरण माना है। 'अभिनव-भारती' के लेखक अभिनवगुप्ताचार्य भट्ट नायक के मत का अनुमोदन करते हैं तथा आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, स्थायी एवं सञ्चारी—सबका साधारणीकरण मानते हैं। हिन्दी के आचार्यों में इस विषय में परस्पर यथेष्ट मत वैभिन्न्य है। आचार्य शुक्ल आलम्बन का साधारणीकरण तथा साथ ही साथ पाठक या दर्शक का आश्रय के साथ तादात्म्य भी मानते हैं। बाबू श्यामसुन्दरदास भावक या पाठक का साधारणीकरण मानते हैं। किन्तु विद्वानों ने इन के मतों की आलोचना और खण्डन किया है।* इन विभिन्न मतों की समीक्षा करना प्रस्तुत लेख का विवेच्य विषय नहीं हैं; मेरी स्पष्ट धारणा यह है कि 'सबजेक्टिव' या 'औबजेक्टिव', दोनों प्रकार की कविताओं में एक त्रिकोण-सा रहता है—प्रथमतः कवि, द्वितीयतः कवि का भाव, और तृतीयतः पाठक। किसी न किसी रूप में और किसी न किसी ढङ्ग से इन तीनों का 'साधारणीकरण'—(Universalisation) होता है। इस सम्बन्ध में मुझे श्रद्धेय बाबू गुलाबरायजी का मत अत्यन्त पुष्ट जान पड़ता है। आप "सिद्धान्त और अध्ययन" में लिखते हैं—

"·····कवि भी अपने निजी व्यक्तित्व से उठ कर साधारणीकृत हो जाता है। वह लोक का प्रतिनिधि हो कर भावाभिव्यक्ति करता है। पाठक का साधारणीकरण इस अर्थ में होता है कि वह अपने व्यक्तित्व के क्षुद्र बन्धनों को तोड़ कर लोक सामान्य भावभूमि पर आ जाता है।···· भावों का साधारणीकरण इस अर्थ में होता है कि उनमें

(शेष पृष्ठ ५९ पर देखिए)

* 'साहित्य-सन्देश', फरवरी, सन् ५१ में अम्बा-प्रसाद सुमन एम० ए०, का "साधारणीकरण क्या और किसका?" शीर्षक लेख द्रष्टव्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-शिरोमणि सूर की दार्शनिकता

कुमारी लक्ष्मी स्वामी

सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण करने से पूर्व इतना कह देना परम आवश्यक है कि सिद्धान्तों की व्याख्या करना सूर सरीखे भक्तों का साध्य नहीं था। वह एक उच्च-कोटि के भक्त थे, जिनकी भक्ति की अनन्यता ही उनका काव्य-प्रवाह है। उन्हें दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना करने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई। जिस समय सूर के भावुक कवि-हृदय का श्रोत साहित्य-क्षेत्र में प्रवाहित होता हुआ जन-समाज की भाव-भूमि को भगवद्भक्ति और प्रेम में सराबोर कर रहा था, उस समय दर्शन की उलझनों की गुत्थियाँ सुलझाने के लिए महाप्रभु वल्लभ और विट्ठलदासजी उपस्थित थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्त सूर को न तो इस व्याख्या की वांछना ही हुई और न ही वह इस कार्य के लिए उपयुक्त पात्र थे। हाँ! तब भी सम्प्रदाय की बैठकों में सूर जाया करते थे। और वहाँ पर हुई धार्मिक और दार्शनिक चर्चाओं को वह सुनते अवश्य थे और यही कारण है कि वह पुष्टिमार्ग के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों से परिचित हुए बिना न रह सके, अतएव हमें उनके अनेक पदों में उच्चकोटि के गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों का दिग्दर्शन होता है। जिनमें मुख्यतः ब्रह्म, माया और जीव आदि का वर्णन विशेषतः है।

यह तो स्पष्ट ही है कि सूर का प्रतिपाद्य विषय वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग है। वल्लभ की वाणी और आत्मा ही सूर की भावुक वाणी में मुखरित हुई किन्तु फिर भी यह नितान्त सत्य है कि सूरदासजी ने वल्लभाचार्यजी के पुष्टि-मार्गी सिद्धान्तों को ज्यों का त्यों अपने काव्य में नहीं उतारा, इसीलिए जहाँ वह सम्प्रदाय की वाणी का मान करते थे, वहाँ उन्होंने अपने व्यक्तित्व का लोभ भी नहीं होने दिया।

सूर के कृष्ण—सूरदास के कृष्ण ही पूर्ण ब्रह्म हैं और यह सिद्धान्त उन्होंने अपने गुरू से ही लिया :—

सकल तत्व ब्रह्माण्ड देव, मुनि माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण सबै अंश गोपाल।

ये पूर्ण ब्रह्म वास्तव में निर्गुण हैं :—

पिता मात इनके नहीं कोई
आपहिं करता, आपहिं धरता
निर्गुण गए ते रहत हैं जोई।

उन्होंने राम को भी उतनी ही महत्ता दी है जितनी कृष्ण को। यद्यपि इनकी लीला का वर्णन विस्तार सहित नहीं किया। सूर के कृष्ण परब्रह्म हैं। यही उनके (एक पुरुष) हैं और यही नारायण भी :—

विष्णु रुद्र विधि एकहिं रूप,
इनहिं जान मत ब्रह्म स्वरूप।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि सूर का एक पुरुष ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों से ऊँचा है। इसी प्रकार कृष्ण, नारायण और हरि से भी बड़े हैं। उनकी मुरली की टेर सुन कर नारायण भी ललचाने लगते हैं। यथा:—

नारायण धुनि सुनि ललचाने
श्याम अधर सुनि बैन।

सूर ने स्थान-स्थान पर विष्णु का तादात्म्य श्रीकृष्ण से किया है। जैसे कि उस समय की अनेक देवताओं में सामञ्जस्य बैठाने की प्रवृत्ति थी; उसी का अनुसरण सूर ने भी किया है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। सूर वास्तव में तुलसी की तरह ही कृष्णावतार और रामावतार में कोई अन्तर नहीं समझते थे।

यद स्पष्ट है कि सूर के कृष्ण मूल रूप से निर्गुण हैं, किन्तु साधारण जनों के लिए अगम अगोचर ब्रह्म रूप कृष्ण की कल्पना करना कठिन ही नहीं असम्भव है। इसीलिए सूर को सगुणोपासना को अपना लक्ष्य बनाना पड़ा किन्तु स्थान-स्थान पर उन्होंने निर्गुण का आभास ही दिया है। जैसे:—

अविगत गति कछू कहत न आवे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावे ॥

यदि हम कृष्ण के सम्बन्ध में उनके सिद्धान्तों को देखें तो हमें विदित होगा कि उन्होंने कृष्ण के दो रूप हमारे सामने रखे। वास्तव में कृष्ण निर्गुण निराकार हैं, पर वह भक्तों के लिए लीला रूप धारण कर लेते हैं और इसी प्रकार वह भक्त की भावना से निर्गुण से सगुण हो जाते हैं। लीलाधर कृष्ण लीला करके गोलोक को चले जाते हैं और उन्हीं के अनुग्रह से भक्त भी उस लोक को प्राप्त होता है।

माया का निरूपण:—सूर ने माया का वर्णन तीन प्रकार से किया है।

(१) माया का दार्शनिक रूप।

(२) सांसारिक रूप—यह द्वन्द्वों में फँसाकर मनुष्य को वासना और मोह की ओर खींचता है। स्त्री और स्वर्ण इसके स्वरूप हैं।

(३) राधा—यह भगवान की अनुग्रहकारिणी शक्ति है।

दार्शनिक रूप—ब्रह्म निर्गुण है। माया के तीन गुण है। सत, रज और तम। वह त्रिगुणात्मक है। इन्हीं तीनों तत्वों के द्वारा वह सृष्टि की रचना करती है; किन्तु सब कुछ भगवान की इच्छा से। वह स्वतन्त्र नहीं है, भगवान के आधीन है। यह सृष्टि माया के वशीभूत है और माया हरि के। सूर के अनुसार माया की सत्ता ब्रह्म से अलग नहीं है। सृष्टि के आरम्भ में उसी के द्वारा सृष्टि की रचना होती है। और प्रलयोपरान्त उसी में समा जाती है। वह ब्रह्म का अंश है। वास्तव में ब्रह्म की अभिव्यक्ति का नाम ही माया है:—

सो हरि माया, जा वस माहि

सांसारिक रूप—यह माया का मोहकारी रूप है। यह विशेषतया नारी के सौन्दर्य के रूप में विकसित होता है। यह माया का उच्छृङ्खलता और उत्पाती रूप है। कामिनी और कञ्चन मनुष्य के लिए एक आकर्षण हैं, जो उसे पतन की ओर ले जाते हैं; किन्तु सूर ने माया के इस रूप को भी काव्य का सुन्दर विषय बना दिया है। उन्होंने उसे गाय का रूपक माना है, जो उत्पात करती-फिरती है पर यह गाय कृष्ण की ही है। वह स्वयं गोपाल है। अतः कभी उनसे उसे हटाने की विनय करता है :—

माधवजी नेकु हटाइयो गाइ।
निसि बासर यह इति-उति भरमत अगह गही नहिं जाइ
नारदादि सुकादि मुनि जन थके करत उपाइ
ताहि कहो कैसे कृपानिधि सूर सकत चराइ

राधा रूप:—माया की भाँति राधा भी कृष्ण की शक्ति है, जो अनुग्रहकारी माया है। उसका वही स्थान है, जो शिव के साथ शक्ति का, विष्णु के साथ लक्ष्मी का और राम के साथ सीता का है। राधा प्रकृति की प्रतीक है। राधा को शेष महेश और नारदादि की स्वामिनी कहा गया है। वास्तव में राधा ही कृष्ण को आल्हादिनी शक्ति है। इस दार्शनिक परिभाषा में राधा की कल्पना सूर की मौलिकता है।

जीव अथवा आत्मा:—आत्मा का आविर्भाव परमात्मा के आनन्द गुण के तिरोभूत होने से हुआ। उसकी विशेषताएँ हैं दीनत्व, सर्वदुःख सहन, सर्व हीनत्व आदि। परमात्मा से जीव का विकास उसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार अग्नि से चिनगारी का। इनके मत में जीव भी उतना ही सत्य है, जितना ब्रह्म। वास्तव में जीव और ब्रह्म एक ही हैं, क्योंकि ब्रह्म जीव का उपादान कारण भी है। जीवात्मा परमात्मा का प्रतिबिम्ब नहीं है उसका अंश है। उनमें केवल यही अन्तर है कि ब्रह्म सर्वशक्तिमान है और जीव की शक्तियाँ अपनी सत्ता के कारण सीमित हैं।

मुक्ति और उसके साधन:—सूर के अनुसार मुक्ति का साधन केवल भक्ति है। उनके अनुसार भक्त दुर्बल है, वह काम, क्रोध आदि वासनाओं से भरा पड़ा है। बस केवल भगवान के अनुग्रह ही से ऊपर उठ सकता है। सूर ने भक्ति के शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार आदि सभी रूपों का वर्णन किया है। विनय में दास्यासक्ति के दर्शन होते हैं। वैसे सूर में कान्तासक्ति की प्रधानता है और रसों में शृङ्गार की प्रचुरता पाई जाती है। क्रमशः स्मरण, गुण-गान, विरह, आत्मनिवेदन और तन्मयता की अवस्थाओं को पार करता हुआ भक्त परम विरहासक्ति को पहुँचता है। और यही परम विरहासक्ति भक्त का लक्ष्य है। तुलसी की रामभक्ति में दास्यभाव था, इसीलिए भक्त को आवश्यक होता था कि वह स्वामी के सामने स्वयं को अधिक से अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध करके ले जाए। पर सूर का भक्त कृष्ण का सखा होता था। अनेक दोष और दुर्बलताओं के होते हुए भी वह कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त कर सकता था। इसी कारण तुलसी की अपेक्षा पुष्टिमार्गी भक्ति का प्रचार अधिक हुआ।

सूर की भक्ति में स्त्री-पुरुष दोनों का स्थान बराबर है। सूर ने भक्ति और योग में जो सम्बन्ध स्थापित किया है उसका वर्णन 'भ्रमरगीत' में है। यहाँ पर इतना ही कह देना उपयुक्त है कि सगुणोपासकों में निर्गुणवाद और योगमार्ग का दार्शनिक विरोध है, जिसे उपस्थित करने वाले सर्व प्रथम सूरदास थे। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि

'अवगति गति कछु लखि न परे।'

भिन्नता—

(१) सूर सागर में पुष्टि अथवा मर्यादा शब्द एक बार भी नहीं आता; जबकि महाप्रभु का समस्त सिद्धान्त पुष्टि प्रवाह और मर्यादा जैसे पारिभाषिक शब्दों पर आधारभूत है।

(२) सूर ने शुद्ध सांसारिक मुक्त और देव जैसे आत्माओं के विभाग भी नहीं किये।

(३) वल्लभाचार्य के धार्मिक सिद्धान्तों में आविर्भाव तिरोभाव जैसे पारिभाषिक शब्द भी बार-बार आते हैं, पर सूर साहित्य में वह एक बार भी दिखाई नहीं देते।

(४) जहाँ महाप्रभु ने माया को तुलना 'कनक कपिश वस्त्र' से की है वहाँ सूर ने उसे 'काली कमली' माना है यथा:—'ये कमरी, कमरी कर जानत।'

(५) सूर ने राधा को कृष्ण की शक्ति का प्रतीक माना है; किन्तु वल्लभाचार्यजी के सिद्धान्तों में राधा का कोई स्थान नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर के चिंतन में पर्याप्त मौलिकता है।

सूर के विचार में तुलसी की तरह भक्ति का स्थान योग और वैराग्य से ऊँचा है। सूर की मुक्ति कल्पना शुद्धाद्वैत की मुक्ति कल्पना है। वह सायुज्य मुक्ति नहीं चाहते, सानिध्य मुक्ति चाहते हैं। संक्षेप में यही सूर के दार्शनिकता के सिद्धान्त हैं। वास्तव में तो इन भक्तों के सिद्धान्तों का विवेचन करना एक महान जटिल कार्य है।

(पृष्ठ ५६ का शेषांश)

'अयं निजः परो वा····' की भावना आ जाती है।"

'लोक-सामान्य भावभूमि' के सम्बन्ध में मैंने अपना दृष्टिकोण पहले ही निवेदन कर दिया है। मेरी दृष्टि में कवि का 'साधारणीकरण', उसका व्यक्तिगत संकीर्णताओं के क्षितिज से मानवी धरातल पर अधिष्ठित होकर अपने स्वप्नों और सत्यों की 'कान्तासम्मित' ढङ्ग से मनोरम और हृदयग्राही अभिव्यञ्जना करना—यह किसी भी काव्य में सर्व-प्रमुख तथ्य है। इस प्रकार जब कवि देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है तब वह ऐसे भावों की परख कर सकता है जो विश्व-मानव को स्पन्दित और अनुप्राणित कर सकें। ऐसे ही भाव 'साधारणीकृत' भाव कहलाते हैं। यहाँ यह आवश्यक नहीं कि ये भाव "मानव-जगत् के परमप्रिय, व्यापक एवं सर्वसाधारणगृहीत"† भाव हों। वास्तव में, कवि की जो अनुभूति जितनी ही सच्ची, जितनी प्रखर, जितनी सशक्त एवं मार्मिक होगी उसके भावों का उतनी ही अधिक मात्रा में साधारणीकरण हो सकेगा अथवा उतनी ही मात्रा में उसका भी साधारणीकरण सम्पन्न होगा। कालिदास, शेक्सपीयर, गेटे प्रभृति इस लिये विश्व-कवि नहीं हैं कि उन्होंने 'सर्व-साधारण गृहीत भावों' की अभिव्यञ्जना की है, बल्कि इस लिये कि उनके भावों में उनकी अनुभूति की गहराई, क्षिप्रता एवं सशक्तता पर्याप्लुत हो रही है।

† द्रष्टव्य—"साधारणीकरण: क्या और किसका?" शीर्षक लेख 'साहित्य-सन्देश', फरवरी १९५१।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश का अर्थ तथा आरम्भ

कु० सुकेशनी गौड़ एम० ए०

सबसे प्राचीन अपभ्रंश का उल्लेख पतञ्जलि ने २०० ई० पूर्व महाभाष्य में किया है। संस्कृत (वैदिक तथा लौकिक) में जो प्रयुक्त शब्द हैं वह शब्द कहलाते हैं और इनके अतिरिक्त जो बहुत से शब्द होते हैं वह 'अपशब्द' अथवा 'अपभ्रंश' कहे गए हैं जैसे 'गो' के गोवि, गोणि आदि बहुत से अपशब्द हैं।

बहुत से साहित्य शास्त्रियों का कहना है कि संस्कृत के अतिरिक्त और भाषाओं में आए शब्दों को अपभ्रंश कहते हैं। कुछ का मत है कि Deteriorated form या Corrupted form अर्थात् बिगड़े हुए रूप को अपभ्रंश कहते हैं जैसे 'स्नेह' का 'सनेह'। परन्तु पतञ्जलि ने अपभ्रंश का अर्थ दूसरे प्रकार के अर्थ में नहीं लिया है क्योंकि 'गो' से बने 'गोवि' 'गावि' इत्यादि शब्द ध्वनि परिवर्तन अथवा ध्वनि विकार (phonetics) के कारण हो सकते हैं। 'गा' का स्त्री लिङ्ग 'गावि' बनाया है। इनके अनुसार 'गोणि' 'गोपिता' बिगड़े हुए रूप नहीं हैं यह स्वतन्त्र शब्द हैं।

पतञ्जलि के समय में प्राकृत का प्रचार हो चुका था। इस प्रचार के कारण महावीर स्वामी तथा बुद्धदेव थे। बुद्धदेव विदेह में प्रचलित प्राकृत में उपदेश देते थे जिसको श्रावक लिख लेते थे और श्रावकों के कारण ही भाषा के अनेक रूप मिलते हैं। गोवि, गोणि आदि शब्द अर्धमागधी तथा जैन ग्रन्थों में मिलते हैं। यह शब्द पुराने हैं इससे प्रतीत होता है कि अपभ्रंश नाम की कोई स्वतन्त्र भाषा थी। पतञ्जलि के अनुसार और बोलियों में जो 'गाय' के वाचक शब्द संस्कृत के अतिरिक्त आए हैं उन्हें अपभ्रंश कहते हैं न कि बिगड़े भ्रष्ट रूप को। मयूर के लिये अपभ्रंश में 'मोरइल्ल' और प्राकृत में "मोरल्लो" का प्रयोग होता है। अपभ्रंश में स्वार्थिक 'अ' प्रत्यय का प्रयोग होता है। 'नचन्तअ' और 'उ' भी कहीं-कहीं लगता है 'नचन्तउ' परन्तु प्राकृत में ओकारान्त की प्रवृत्ति है इस 'अ' तथा 'उ' से मालूम होता है कि अपभ्रंश तीसरी शताब्दी में पृथक भाषा के रूप में प्रचलित थी।

अपभ्रंश के उदाहरण भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र में मिलते हैं। यह भाषा गुजरात सिन्ध की ओर प्रचलित थी। भरतमुनि ने नाटकों में 'आभीरी' का प्रयोग करने का निर्देश किया है। अपने नाट्य शास्त्र में किस जाति की कौन सी भाषा होनी चाहिये बताते हुए भरतमुनि ने आभीरों आदि के पात्रों की भाषा अपभ्रंश होने का उल्लेख किया है।

दन्डी ने ७ वीं शताब्दी में भी आभीरों की बोली का उल्लेख करते हुए बताया है कि अपभ्रंश काव्यों में प्रयुक्त होने वाली आदि की वाणी को आभीर तथा संस्कृत से भिन्न बोली को अपभ्रंश कहते हैं। ८ वीं सदी में रुद्रट ने प्राकृत आदि भाषाओं का वर्णन करते हुए प्राकृत के छः भेद बताये हैं। उन्होंने पाँच भेद गिनाकर छठे के लिये 'भूरिभेदा देश विशेषा' कह कर यह बताया कि आभीर जिस देश में थे उस देश की भाषा अपभ्रंश थी।

मारकन्डेय ने 'प्राकृत सर्वस्य' में २७ अपभ्रंशों का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा कि आभीर प्रायः देश के सब भागों में फैल गए थे। इन्होंने प्रान्तीय देशज शब्दों को लेकर अनेक अपभ्रंशों को जन्म दिया। २७ अपभ्रंशों में थोड़ा ही अन्तर था। इनमें मुख्य चार अपभ्रंश थीं—नागर, उपनागर, ब्राजड, केकैय।

जो भी भाषा साहित्य में प्रयुक्त होने लगती है उसका एक रूप निश्चित हो जाता है उसी को परिनिश्चित कहते हैं। अपभ्रंश का जन्म गुजरात पश्चिमी-पञ्जाब और राजस्थान में हुआ था। राजशेखर ने १० वीं शताब्दी में अपनी 'काव्य-मीमान्सा' में लिखा है कि समस्त मरुभूमि उदयपुर तथा टोंक के निवासी अपभ्रंश बोलते थे। अतः यह निश्चित है कि इस भाग में अपभ्रंश भाषा का अस्तित्व था। यहाँ के निवासियों का सम्पर्क आभीरों तथा गुर्जरों के साथ होने से उनकी भाषा सम्बन्धी विशेषताएँ इनकी निजी भाषा में आईं। समुद्रगुप्त के शिलालेख पर आभीरों का उल्लेख है। गुजरात

(शेष पृष्ठ ६५ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में आलोचना के विभिन्न रूप

श्री श्रीलाल 'भानु' साहित्याचार्य

साहित्य में समालोचना का कार्य बहुत ही गुरुतर है। साहित्य में जो अनर्गल और अनावश्यक विषयों का समावेश हो जाता है उसका परिशोधन समालोचना के ही द्वारा होता है। यदि साहित्य एक वन्य-वृक्ष है तो उसे उपवन-तरु बनाने में एक समालोचक ही समर्थ है। साहित्य रूपी उद्यान में काटने और सींचने के दोनों काम समालोचना के ही द्वारा हो सकते हैं। साहित्य के विभिन्न अङ्गों में समालोचना का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस समय आलोचना की क्यारी कई रूपों में प्रस्फुटित हो रही है, जिनका विवरण हम आगे करेंगे।

हिन्दी में समालोचना का प्रारम्भ भारतेन्दु के समय में हो चुका था। हिन्दी साहित्य में आलोचना सर्वप्रथम गुण-दोष के रूप में प्रकट हुई। लेखों के रूप में इसका सूत्रपात भारतेन्दु के समय में ही हुआ। लेखों के रूप में पुस्तकों की विस्तृत समालोचना पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपनी 'आनन्द कादम्बिनी' नामक पत्रिका में शुरू की। 'प्रेमघनजी' ने लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना लिखी जिसमें दोषों का उद्घाटन बड़ी बारीकी से किया गया था।

निर्णयात्मक आलोचना—के अनुसार आलोचक पुस्तक के गुण-दोष प्रदर्शित करता है। निर्णयात्मक आलोचना में आलोचना करते समय कुछ स्थिर और सदासामान्य सिद्धान्त सामने रख लिए जाते हैं और उन्हीं के द्वारा आलोचना की जाती है। इसमें आलोचक का स्थान बड़े महत्व का होता है। वह एक निर्णायक की तरह हमारे सामने आता है और उचित-अनुचित, गुण दोष का प्रदर्शन करता है। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस प्रकार की समालोचना की नींव डाली। द्विवेदीजी ने 'कालिदास की निरंकुशता' में निर्णयात्मक समालोचना के उदाहरण उपस्थित किये। इसके पश्चात् उन्होंने 'विक्रमांकदेव चरित चर्चा' तथा 'नैषध चरित चर्चा' नामक आलोचनात्मक पुस्तक लिखकर इस क्षेत्र में नवीन आलोचना शैली के उदाहरण प्रस्तुत किये। इस शैली में सबसे बड़ा दोष यह है कि समालोचक कला की उन्नति को नहीं मानता। भिन्न-भिन्न समय पर कला में जो परिवर्तन होते हैं उनको यह भूल जाता है और एक ही तराजू पर सब प्रकार का साहित्य तौलता है।

द्विवेदीजी ने जीवन पहलू—आत्म पक्ष पर पूरा ध्यान दिया, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उनकी छत्रछाया में नवीन धारा के कवियों को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण त्रुटियों के रहते हुए युग-काव्य का पोषण करना द्विवेदीजी का ही काम था और वे युग द्रष्टा साहित्यिक और समीक्षक के पद को गौरवान्वित करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। द्विवेदीजी ने 'हिन्दी नवरत्न' पर अपना मत देकर समीक्षा की एक सुन्दर रूपरेखा प्रस्तुत की।

तुलनात्मक आलोचना—द्विवेदीजी के बाद दूसरे बड़े आलोचक मिश्रबन्धु थे। इन्होंने सर्वप्रथम तुलनात्मक समालोचना की पद्धति चलाई। आपने 'हिन्दी नवरत्न' में बिहारी से देव को ऊँचा बताया जिसके कारण देव और बिहारी पर एक बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ। मिश्रबन्धुओं की समीक्षा में देश-काल के उपादानों का संग्रह हुआ और कवियों की जीवनी पर भी प्रकाश पड़ा, किन्तु वह सब उल्लेख नाम-मात्र का था, समीक्षा की दृष्टि में कोई परिवर्तन न हो पाया। सब कुछ होते हुये मिश्रबन्धु रीति-काव्य का मोह न त्याग सके, न उन्होंने काव्य के भावपक्ष को कोरी कलात्मकता से प्रथक करके देखा। रीति-काव्य और रीति-ग्रन्थों का उनकी समीक्षा पर अमिट प्रभाव पड़ा है। मिश्रबन्धु के देव और बिहारी के विवाद को लेकर पं० पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई' की भूमिका लिख हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना का सूत्रपात किया। शर्माजी ने अपनी पुस्तक में बिहारी की तुलना बड़ी विद्वत्ता के साथ संस्कृत की गाथा शप्तशती तथा आर्या शप्तशती से की है। शास्त्रीय सिद्धान्तों का आश्रय ग्रहण कर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि शर्माजी ने गम्भीर विवेचन का प्रयत्न किया है परन्तु अधिकांश में—आलोचना गम्भीर न रह कर प्रभाववादी होगई है। शर्माजी की समीक्षा का आधार रीति-कविता है। उनकी समालोचना में साहित्य का प्रधान अङ्ग उसका रचना कौशल माना गया है। उन्होंने साहित्य की आत्मा को छोड़ कर उसके शरीर पर ही अधिक ध्यान दिया है। नवीन सुधार का विषय काव्य-आत्मा नहीं, काव्य-शरीर था। यह भी समय को देखते हुए अनिवार्य था। पं० पद्मसिंह शर्मा की समीक्षा काव्य-शरीर का आग्रह करके चली, देव और बिहारी को आदर्श बनाकर आगे बढ़ी।

बिहारी के विपरीत देव की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए पं० कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' नाम की एक विद्वतापूर्ण पुस्तक लिखी। इसमें मिश्रजी ने बड़ी शिष्टता, सभ्यता और मार्मिकता के साथ दोनों बड़े कवियों की भिन्न-भिन्न प्रकार की रचनाओं की तुलना की है। इस पुस्तक में मिश्रजी वास्तव में निष्पक्ष और एक सहृदय मार्मिक आलोचक के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। इस पुस्तक के उत्तर में लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' नाम की पुस्तक निकाली जिसमें बिहारी की उत्कृष्टता को सिद्ध किया गया। विपक्ष में अनेक लेख लिखे गये परन्तु इनमें से अधिकांश लेखों में साहित्यिक आलोचना के स्थान पर वितण्डावाद के ही दर्शन होते हैं। श्री मिश्रजी व दीनजी दोनों इस युग के मुख्य समीक्षकों में से हैं। जिन पर रीति पद्धति की पूरी छाप है। द्विवेदीजी अपनी समीक्षा में काव्य विषय को महत्व देते हैं, भले ही शैली का सौन्दर्य अथवा भावात्मकता उसमें न हो। मिश्रजी और दीनजी विषय की अपेक्षा काव्य शैली को मुख्य ठहराते हैं। पं० विश्वनाथ मिश्र ने 'बिहारी की वाग्विभूति' के नाम से एक पुस्तक लिख बिहारी की कविता का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है।

तुलनात्मक समालोचक कलाकारों के वर्गीकरण पर विश्वास करता है। उसकी दृष्टि एक दूसरे की समता पर भिन्नता दिखाने की ओर रहती है। वह दो व्यक्तियों को या दो साहित्यों को लेता है। उनकी भावधारा और शब्द सृष्टि की तुलना करता है और अन्त में यह निर्धारित करता है कि एक दूसरे से कौन कितना बड़ा या छोटा है।

मनोवैज्ञानिक आलोचना:—ज्यों ज्यों मनोविज्ञान की उन्नति होती गई त्यों-त्यों इसकी सहायता से बहुत से तथ्यों की खोज होने लगी। मनोविज्ञान केवल एक पाठ्य विषय न रहकर एक सहायक विषय भी होगया है। इस प्रकार की आलोचना का सूत्रपात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का विस्तृत अध्ययन कर और भारत की रसपद्धति और पश्चिम के आलोचना सम्बन्धी दृष्टिकोण का समन्वय कर शुक्लजी ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया। विभिन्न कवियों की ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनकी कला का शुक्लजी ने मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से विश्लेषण किया है। सूरदास, तुलसीदास और जायसी पर लिखी गई आलोचनाएँ इसी ढङ्ग की हैं। इसमें उन्होंने कवियों के ऊपर कलात्मक तथा मानसिक विकास पर बहुत विस्तृत प्रकाश डाला है। बाबू श्यामसुन्दरदास का भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा तुलसी पर लिखी व्याख्यानात्मक तथा मनोवैज्ञानिक आलोचनाएँ भी बहुत विस्तृत तथा मार्मिक हैं। डा० नगेन्द्र की लिखी हुई 'सुमित्रानन्दन पन्त' नामक पुस्तक भी मनोवैज्ञानिक समीक्षा का अच्छा उदाहरण है। श्री माताप्रसाद गुप्त ने तुलसीदास जी पर ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक आलोचना लिखी। इसी प्रकार डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'तुलसी दर्शन' नामक पुस्तक में तुलसीदासजी के दार्शनिक सिद्धान्तों की बहुत विशद विवेचना की है।

मनोवैज्ञानिक समालोचक कला का अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं समझता जब तक कलाकार का पूर्ण अध्ययन न कर ले। जब कला कलाकार के मानसिक प्रवृत्तियों का ही प्रतिबिम्ब मात्र है तब क्यों न मूल स्रोत की खोज की जाय? जब मूल का परिज्ञान हो जायेगा तब शाखाओं के समझने में कितनी देर लगेगी। अतएव इस प्रणाली में कलाकार के अध्ययन में ही उसकी कला का अध्ययन हो जाता है।

विश्लेषणात्मक आलोचना:—(क) आधुनिक कवियों पर—विश्लेषणात्मक आलोचना की परिपाटी पर आज हिन्दी में अनेक उत्कृष्ट आलोचना पुस्तकें लिखी जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हैं। आधुनिक कवियों की विशद आलोचना प्रस्तुत करने में श्री नगेन्द्र (साकेत एक अध्ययन) श्री सत्येन्द्र (गुप्तजी की कला) श्री रामनाथ सुमन (प्रसाद की काव्य साधना) श्री नन्ददुलारे वाजपेयी (जयशङ्करप्रसाद) गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश (महाकवि हरिऔध) आचार्य श्री लालभानु (रामकुमार वर्मा अ०) तथा गङ्गाप्रसाद पांडे (कामायनी-एक परिचय) प्रमुख हैं। इन आलोचकों ने अपने-अपने विशिष्ट कवि के बहुत सुन्दर आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये हैं।

(ख) प्राचीन कवियों पर:—विशद विवेचन करने वाले आलोचकों में आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी का प्रमुख स्थान है। सन्त साहित्य पर आपका अध्ययन पर्याप्त विस्तृत है। आपकी 'कबीर' और 'सूरदास' पर लिखी हुई आलोचनायें सर्वथा मौलिक और अपने ढंग की अनूठी पुस्तकें हैं। इनके अतिरिक्त प्राचीन कवियों पर विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वालों में सर्वश्री अखौरी गङ्गाप्रसादसिंह (पद्माकर की काव्य-साधना तथा केशव की काव्य-कला) डा० ब्रजेश्वर वर्मा (सूरदास) गङ्गानाथ झा (महाकवि विद्यापति) भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र (मीरा की प्रेम-साधना) डा० रामकुमार वर्मा (कबीर का रहस्यवाद) रामरतन भटनागर (सूर साहित्य की भूमिका, केशवदास, विद्यापति आदि) नलिनी मोहन (भक्तवर सूरदास) भुवनेश्वर मिश्र माधव (सन्त साहित्य) इत्यादि प्रमुख हैं।

सामयिक युग में आलोचनात्मक अध्ययन में मनोवैज्ञानिक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण को अधिक अपनाया जा रहा है। सर्वश्री नगेन्द्र, अज्ञेय तथा जैनेन्द्र मनोविश्लेषण का आश्रय ग्रहण कर मानव मन की खोज का प्रयत्न कर रहे हैं।

ऐतिहासिक आलोचना—किसी विषय की ऐतिहासिक दृष्टि से आलोचना करना ऐतिहासिक आलोचना कहलाती है। कलाकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है। यह स्वाभाविक है कि उस समय के रहन-सहन, वातावरण, विचारधारा आदि का उस पर प्रभाव पड़े। उसकी कला उसका एक चित्र खींचती है। अतएव समालोचक के लिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि उस समय के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का अध्ययन करे, उसका पूर्ण इतिहास जाने। आलोचनात्मक इतिहासों में पं० रामचन्द्र शुक्ल का (हिन्दी साहित्य का इतिहास), डा० रामकुमार वर्मा का (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास), कृष्णशंकर शुक्ल का (आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास), हजारीप्रसाद द्विवेदी का (हिन्दी साहित्य की भूमिका) डा० श्यामसुन्दरदास का (हिन्दी साहित्य) मोतीलाल मेनारिया का (राजस्थानी भाषा और साहित्य) आचार्य चतुरसेन शास्त्री का (हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास) महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का (हिन्दी काव्य-धारा) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

परीक्षा की दृष्टि से साहित्य का सरल इतिहास आदि के नाम से जो इतिहास निकल रहे हैं, वे महत्वहीन हैं। उनमें इतिहास लेखक यथोचित सामग्री का उपयोग करने में असमर्थ रहते हैं। इस ओर बाबू गुलाबराय का प्रयत्न अवश्य सराहनीय है। उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य के सुबोध इतिहास' में आधुनिकतम साहित्य की आलोचना प्रस्तुत की है और वे उसे प्रति वर्ष नए संस्करण में 'अप-टू-डेट' करते जाते हैं। इतिहास लेखन-कला की नींव डालने वाले आचार्य शुक्लजी हैं। उनका प्रयास इस क्षेत्र में विशेष रूप से सफल है। अभी कुछ समय पूर्व डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय और डा० श्रीकृष्णलाल के हिन्दी साहित्य की ५० वर्षों की प्रगति पर लिखे गये क्रमशः 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' और 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' नामक इतिहास प्रकाशित हुए हैं। डा० वार्ष्णेय ने हिन्दी साहित्य का १८५० से १९०० तक और डा० श्रीकृष्णलाल ने १९०० से १९२५ तक की हिन्दी साहित्य की प्रगति का उल्लेख किया है। आधुनिक कवियों की छानबीन करने के कारण पं० श्री कृष्णशङ्कर शुक्ल के इतिहास ने ख्याति पाई है।

सैद्धान्तिक आलोचना—में आलोचक आलोचना शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों तथा नियमों का परिचय देता है। ये नियम या सिद्धान्त ही निर्णयात्मक आलोचना के आधार पर होते हैं। जिन ग्रन्थों में आचार्यों द्वारा दिये हुए काव्य के आदर्श बतलाये जाते हैं और उन आदर्शों की उपलब्धि के लिए नियम और उपनियम निरधारित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये जाते हैं वे ग्रन्थ सैद्धान्तिक आलोचना के ग्रन्थ कहलाते हैं। इन ग्रन्थों के आदर्श तथा नियम और उपनियम निर्णयात्मक आलोचना के आधार बनते हैं।

आधुनिक युग में सैद्धान्तिक आलोचना का सूत्र पात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'नाटक' नाम की पुस्तिका से होता है। इस पुस्तक में नाट्यकला के विकास तथा भारतीय और योरोपिय नाटकों के इतिहास की संक्षिप्त विवेचना है तथा नाट्य-शास्त्र पर भी प्रकाश डाला गया है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'रसज्ञ-रञ्जन' के कुछ निबन्धों में सैद्धान्तिक आलोचना का अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है। बाबू श्यामसुन्दरदास का 'साहित्यालोचन' सर्वप्रथम आलोचना शास्त्र का ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें मौलिकता कम है तथापि वह एक प्रकार से सर्वाङ्गपूर्ण है। साहित्यालोचन ग्रन्थ में काव्य, नाटक, उपन्यास आदि विविध साहित्यांगों की पहलीवार सुन्दर व्याख्या की गई है और श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'विश्व साहित्य' में यूरोपीय और विशेष कर अँग्रेजी साहित्य की मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इनमें से प्रथम ग्रन्थ (साहित्यालोचन) का हिन्दी साहित्य समीक्षा पर अभीष्ट प्रभाव पड़ा और साहित्य को नैतिक सीमा से ऊपर उठ कर सार्वजनिक कला वस्तु के रूप में देखने की अपूर्व प्रेरणा प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त जगन्नाथ प्रसाद भानु का (काव्य प्रभाकर) हरिऔध का (रस कलश) डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री का (साहित्य मीमांसा) लाला भगवान दीन की (अलङ्कार मंजूषा) सेठ कन्हैयालाल पोद्दार की (अलङ्कार मंजरी) रसालजी का (अलङ्कार पीयूष) आदि। रसों पर पं० हरिशङ्कर शर्मा का (रसरत्नाकर) बाबू गुलाबराय का (नवरस) अयोध्या नरेश महाराज प्रतापनारायण का (रस कुसुमाकर) पोद्दारजी का (रसमंजरी) आदि ग्रंथ प्रकाशित हुए।

हाल में इस सम्बन्ध में और भी कई प्रयत्न हुये हैं। उन सबका नामोल्लेख करना भी कठिन है। उनमें से कुछ यह हैं—शिवनारायण शर्मा का (साहित्य) शिवनन्दन प्रसाद का (साहित्यालोचन के सिद्धान्त) रामदहिन मिश्र का (काव्यालोक)। इन सबमें श्री रामदहिन मिश्र के काव्यालोक का विशेष महत्व है। उसमें भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों का बड़ी सुन्दरता के साथ समावेश किया गया है। उसमें नवीनता के साथ शास्त्रीयता भी है।

खोज के रूप में:—हिन्दी का खोज सम्बन्धी कार्य दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है। साहित्य सम्बन्धी तथा भाषा सम्बन्धी। आजकल हिन्दी में खोज और आलोचना के द्वारा हिन्दी आलोचना साहित्य का भण्डार ही सबसे अधिक भरा जा रहा है। विश्वविद्यालयों में पी-एच० डी० और डी० लिट्० के अनेक विस्तृत निबंध लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं।

(अ) साहित्य सम्बन्धी:—हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों में 'संस्कृत साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' (सनमानसिंह जयपुर) प्राकृत तथा अपभ्रंश का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव (रामसिंह तोमर) इसके अतिरिक्त अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय (दीनदयालु गुप्त) रीतिकाल की भूमिका तथा देव और उनकी कविता (डा० नगेन्द्र) हिन्दी नाट्य साहित्य का इतिहास (डा० सोमनाथ गुप्त) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा) तुलसी दर्शन (डा० बलदेव प्रसाद) तुलसीदास (डा० माताप्रसाद गुप्त) प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन (डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा) आधुनिक काव्यधारा (डा० केशरी नारायण शुक्ल) हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण (डा० किरणकुमारी गुप्ता) आदि आदि थीसिसों के नाम उल्लेखनीय हैं। अभी हाल में श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' शीर्षक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया है। यह एक प्रकार से हिन्दी सन्त परम्परा का विश्वकोष सा है। डा० सत्येन्द्र ने 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' शीर्षक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिख कर साहित्य के एक विशिष्ट अङ्ग की ओर कदम बढ़ाया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी की रामसाहित्य धारा की ओर अनेक विद्वानों का ध्यान गया। 'रामकथा की उत्पत्ति और विकास' (कामिल बुल्के) पर हिन्दी में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्ययन प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ में रामकथा के समस्त भारतीय तथा विदेशी उद्गमों की परीक्षा की गई है और उसके फल-

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप परिणाम दिये गये हैं।

(ब) भाषा सम्बन्धी:—साहित्य क्षेत्र के अतिरिक्त भाषा के क्षेत्र में भी कुछ महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें अवधी का विकास (डा० बाबूराम सक्सेना) ब्रजभाषा (डा० धीरेन्द्र वर्मा) भोजपुरी का विकास (उदयनारायण तिवारी) विहारी भाषाओं की उत्पत्ति तथा विकास (नलिनीमोहन सान्याल) हिन्दी शब्दार्थ विज्ञान (हरदेव विहारी) उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त भाषा सम्बन्धी अध्ययनों में मुहावरा मीमांसा (ओमप्रकाश गुप्त) भारतीय आमोद्योगों की शब्दावली का अध्ययन (हरिहर प्रसाद गुप्त) हिन्दी प्रदेश के हिन्दू पुरुषों के नामों का वैज्ञानिक अध्ययन (विद्याभूषण विभु) उल्लेखनीय हैं।

मार्क्सवादी आलोचना:—प्रगतिवादी झण्डे के नीचे अब मार्क्सवादी आलोचना का प्रचार हो रहा है। इस प्रकार की आलोचना; कला को इतनी मुख्यत नहीं देती जितनी कि किसान-मजदूरों, दलितों और शोषितों की भौतिक आवश्यकताओं को। यह लोग वर्गहीन समाज के पोषक हैं। इस प्रकार की आलोचनाओं में प्रगतिवाद (शिवदानसिंह चौहान) धर्मवीर भारती का (प्रगतिवाद) डा० रामविलास शर्मा की (प्रगति और परम्परा) अमृतराय की (नई समीक्षा) शिवचन्द्र का (प्रगतिवाद की रूपरेखा) विजयशङ्कर मल्ल का (हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद) आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त प्रकाशचन्द्र गुप्त, भगवतीशरण उपाध्याय को भी प्रगतिवादी आलोचकों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। डा० रामविलास शर्मा की दृष्टि इन सभी आलोचकों से अधिक व्यापक है।

इनके अतिरिक्त आजकल कुञ्जीवादी आलोचनाओं का अधिक प्रचार हो रहा है। अमुक-अमुक लेखक, एक अध्ययन, एक दृष्टि, एक परिचय, मीमांसा या ऐसे ही नामों से कोई लेखक चन्द वरदाई से आज तक हिन्दी में नहीं बचा है। इस स्तर की आलोचना का यह लाभ है कि विद्यार्थी कठिन मूल न पढ़कर सस्ती टीकाओं से परीक्षा पास कर लेता है। वहाँ एक बड़ी हानि यह है कि आलोचना के स्तर को इस प्रकार की सस्ती किताबों ने पनियल बना दिया है। यानी विचार के स्तर से आलोचना निरे गद्य-अन्वय और भाष्य के स्तर पर उतर आयी है। यह आलोचना पद्धति निरी पूरक है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी में पत्र सम्बन्धी आलोचना, कृति मूलक आलोचना, वैज्ञानिक आलोचना, प्रभावाभिव्यञ्जक आलोचना आदि कई प्रकार की आलोचनाओं के रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

इस प्रकार हमारे आलोचना साहित्य में आलोचना की कई शैलियों के दर्शन होते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के विभिन्न अङ्गों की भाँति समालोचना साहित्य भी निरन्तर विकासोन्मुख है। समय तथा परिस्थितियों के अनुरूप हिन्दी साहित्य का आलोचक आज मानवता के प्रति जागरूक हुआ साहित्य को प्रति दिन शोषित तथा पीड़ित वर्ग के निकट ला रहा है। साहित्य तथा जीवन के सम्मिलन के ये मङ्गलमय चिह्न हैं।

अभी हिन्दी में उत्कृष्ट समालोचना साहित्य की आवश्यकता है। उसके लिये हिन्दी साहित्यकारों के जीवन चरित्र और कृतियों की माला निकाली जाय। जब सब प्रसिद्ध साहित्यकारों पर इस प्रकार की पुस्तकें निकलेंगी तो प्रभावाभिव्यञ्जक आलोचना के लिये अवकाश मिलेगा। फिर तो आलोचना की सुन्दर परिपाटी चल पड़ेगी।

(पृष्ठ ६० का शेषांश)

काठियावाड़ में भी इनकी घनी बस्ती थी। मगध तक काशी में भी इनका प्रसार था। यह जाति बड़ी प्रबल थी।

अपभ्रंश भाषा का उदय आभीर और गुर्जरों के कारण ही हुआ। जिस प्रकार मुसलमानों ने यहाँ प्रवेश किया तथा उर्दू की रचना हिन्दी के आधार पर की थी और उर्दू एक परान्नित (Parasite) भाषा बन गई इसी प्रकार इन लोगों की स्वतन्त्र भाषा 'आभीर' कहलाई पर जब ये 'चातुरवर्ण' में मिलकर ग्रामों में निवास करने लगे तब ग्रामीणों की बोली के शब्दों के मेल से अपभ्रंश का विकास हुआ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ी बोली में गीत

श्री त्रिलोचन पाण्डेय

साहित्य में पद्य के विकास के उपरान्त ही गीत रचना होती है। गीतों में मनुष्य के हृदय की अनुभूति निर्बन्ध व्यक्त होती है। इसमें आवश्यक है कवि अन्तः प्रेरणा द्वारा क्रियाशील हो। आनन्द या दुःख भावना जब अत्यधिक प्रबल हो उठती है तो हृदय की सीमा में उसे बाँधा नहीं जा सकता, भाव वाणी द्वारा स्वतः छलक पड़ते हैं, मर्मान्तक अनुभूति शब्दों के माध्यम से अप्रयास व्यक्त होने लगती है। यही स्वानुभूत कविता रससिद्ध होकर प्रभाव साम्य में सफल होती है। अतः कवि के भावों की सत्यता के अतिरिक्त व्यक्त करने वाले माध्यम का भी सशक्त होना आवश्यक है। इसी कारण भाषा के पूर्ण विकास होने पर ही सफल गीतों की रचना सम्भव होती है। हिन्दी साहित्य भी इस तथ्य का अपवाद नहीं।

खड़ी बोली में पद्य रचना तो भारतेन्दु युग से ही आरम्भ हो गई थी पर उसमें खड़ी बोली का 'खड़ापन' कर्ण कटु हो गया था। श्रीधर पाठक के कुछ प्रकृति चित्रण प्रभावपूर्ण हुए पर उनमें कोमलता का अभाव है। पद्य-रचना, छन्द—अलङ्कारों की सीमा से बद्ध थी, तुक-विराम से कठोर नियमों से शासित थी और द्विवेदीजी की गृद्ध-दृष्टि गद्य-पद्य दोनों क्षेत्रों में ही समान रूप से जागरूक थी। फलतः कविगण स्वतन्त्र प्रयत्न नहीं कर पाए। वे स्वयं संस्कृत वाङ्मय के उपासक थे, हिन्दी कविता प्रायः पद्य नियमों से ही जकड़ी रही। "माय री माय साँवरी गति में मोरे पाँयन में काँकरी गरति है" सी. ब्रजभाषा की कोमलकान्त पदावली व माधुर्य का तत्कालीन पद्य-साहित्य में सर्वथा अभाव है। खड़ी बोली के विकास को ध्यान में रखने से यह स्वाभाविक भी था अतः पद्य-रचना प्रायः साधारण कोटि की हुई।

बाद में 'हरिऔध' व 'गुप्त' जी के सतत प्रयत्नों से खड़ी बोली की कर्कशता कुछ कम हुई। अनुकान्त रचनाएँ सफल रहीं। "पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारो-त्कृष्टता" का लेखक अब इतनी समर्थ रचना करने में सफल हुआ—

"सखि वे मुझ से कह कर जाते!
तो कह क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?"

और 'साकेत' में विरहिणी उर्मिला की उक्तियाँ तो अत्यन्त सुन्दर बनीं, शब्द-चित्रों द्वारा सुन्दर प्रकृत चित्रण हुआ—

"सखि नील नभःसर में उतरा
यह हंस अहा तरता तरता।
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं
निकला जिनको चरता चरता।
गढ़ जायँ न कंटक भूतल के
कर डाल रहा डरता डरता।"

प्रकृति सम्बन्धी गीतों व नारी के करुण प्रदर्शन में गुप्तजी को यथेष्ट सफलता मिली किन्तु प्रबन्ध परम्परा से बद्ध मुक्तक रचनाओं में वे सफल न हो सके। अज्ञात को सम्बोधित कुछ गीत हैं अवश्य, पर वे पद्य-मय-पद्य ही हैं, तन्मयता का उनमें अभाव है। इसका प्रमुख कारण भाषा का उत्तोत्तर विकास होना है।

गीतों का क्रमिक विकास 'प्रसाद' से होता है। नपे तुले शब्द, भावानुकूल छन्द-योजना, कोमलता व गम्भीरता का प्रदर्शन सर्व प्रथम उन्हीं की रचनाओं में उपलब्ध होता है। 'प्रसाद' को भावुक कवि-हृदय प्राप्त था जिस पर बौद्ध दर्शन के दुःखवाद व करुणा का पूरा प्रभाव पड़ा था। अतः उनके गीत भावोद्रेक में सफल हुए हैं जिन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

१—**नाट्य गीत**—अपने नाटकों में प्रसाद ने यथेष्ट गीत रखे हैं जो भावों की पुण्यभूमि के साथ ही पात्रों की परिस्थिति व चरित्र पर भी प्रकाश डालते हैं। मनोरञ्जकता गौण है। अभिनय के उपयुक्त इन गीतों में सङ्गीत का पूरा ध्यान रखा गया है। लौकिक-पारलौकिक विवेचन का सुन्दर समावेश है,—'न छेड़ना उस अतीत स्मृति के खिंचे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए बीन-तार कोकिल, करुण रागिनी तड़प उठेगी सुना न ऐसी पुकार कोकिल" या "संसृति के वे सुन्दरतम क्षण यों ही भूल नहीं जाना....." आदि में।

२—**प्रबन्ध-काव्य**—कामायनी है तो प्रबन्ध काव्य पर प्रसाद ने मुक्तक गीतों का समावेश भी किया है। प्रकृति पर दक्षि नायिका का आरोप करते हुए वे कहते हैं—

"फटा हुआ था नील वसन क्या ओ यौवन की मतवाली
देख अकिंचन जगत लूटता तेरी छवि भोली भाली।"

या उनका तारे को सम्बोधन—

"तम के सुन्दरतम रहस्य हे कान्ति किरण रञ्जित तारा
व्यथित विश्व के सात्विक शीतल विन्दु भरे नव-रस सारा।"

में सौन्दर्य, कोमलता के साथ ही रहस्य भावना का संकेत भी है।

'आँसू' में छन्द की नवीनता, नया उपमा-विधान, प्रतीक पद्धति अपने भावों की व्यञ्जना में अत्यन्त सफल रही। 'आँसू' को ही उन्होंने "मस्तक की घनीभूत पीड़ा" कहा है। वासना का उन्मेष, विस्फोट व कवि का परिस्थिति से सामञ्जस्य—यही 'आँसू' के गीतों की रूप रेखा है।

"माना कि रूप सीमा है यौवन में सुन्दर तेरे।
पर एक बार आये थे निस्सीम हृदय में मेरे॥"

में कवि का प्रेम व प्रिय के असीम सौन्दर्य की सुन्दर झाँकी है। कहीं प्रिय को उपालम्भ है, कहीं नैराश्य व्यञ्जना अत्यन्त प्रखर हो उठी है—

"झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरद-माला।
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला॥"

३—**मुक्तक गीत**—'लहर' और 'झरना' में संग्रहीत हैं। 'प्रसाद' को मुक्तक गीत रचना में अधिक सफलता हुई—"ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे....." या "खोलो प्रियतम खोलो द्वार" अत्यन्त प्रसिद्ध गीत हैं।

"मरते कोमल वत्स यहाँ रहती न जवानी परदेसी।
माया के मोहक बन की मैं क्या कहूँ कहानी परदेसी॥"

प्रसाद की वेदना स्पष्ट है, निराशा व्यक्त है जो सोचने को विवश कर देती है।

किन्तु प्रसाद की तत्सम-प्रियता, अमूर्त उपमाओं का विधान समास पद्धति व गूढ़ता गीतों के पूर्ण विकास में सहायक न हो सकी। द्वैत-भाव समन्वित चित्रण ने भावों के स्वाभाविक विकास में बाधा की है। बुद्धि का प्राधान्य होने से गीत सरल व सुबोध न हो सके। गीतों में अनुभूति की गम्भीरता अवश्य है पर भावों की व्यापकता नहीं।

'पन्त' हिन्दी में अपनी जन्म प्रदत्त सुकुमारता लेकर आए। हिमांचल की सुरम्य हिमाच्छन्न घाटियों में कवि-कल्पना, भावुकता का विकास हुआ था—कविता में यही प्रभाव स्पष्ट है। भावों को मूर्तिमान रूप देने व साकार चित्र उपस्थित करने में 'पन्त' सिद्धहस्त हैं। भावों की कोमल से कोमल अभिव्यक्ति में वे अद्वितीय हैं। कविता व जीवन दोनों में स्वतन्त्रता प्रिय होने से कविता में लिंग-भेद, छन्द बंधन उन्हें स्वीकृत नहीं हुए। फलतः उनके गीतों को सूक्ष्म भावानुभूति व गहराई मिल सकी। भावोन्मेष के साथ-साथ लेखन-कार्य भी हुआ और हर्षातिरेक या वेदना शब्दों में मूर्तिमान् हो गई। आत्म-व्यथा व पीड़ा का तथा संसार में दुर्भाग्य-अभिशाप का वर्णन 'ग्रन्थि' में है—

"वह मधुप विंध कर तड़पता है यही,
नियम है संसार का रो हृदय रो।
दग्ध चातक तरसता है, विश्व का,
नियम है यह रो अभागे हृदय रो।"

"सतह की चल जल माली" के साथ ही वे जीवन के गम्भीर पक्षों की ओर भी झुके किन्तु 'पन्त' मुख्य रूप से सौन्दर्य व प्रेम के उपासक हैं, कठोरता व संघर्ष की गहराई उनमें नहीं है। 'ग्राम्या' में दलित वर्ग से केवल 'बौद्धिक सहानुभूति' रही है। 'उत्तरा' तक की रचनाओं में उनके प्रकृति सम्बन्धी या स्वच्छन्द वैयक्तिक उद्गार ही आकर्षक हुए हैं। उनके 'गुञ्जन' में सुख-दुःख का पलड़ा बराबर करने वाला गीत "सुख दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन" प्रसिद्ध हुआ। 'भावी पत्नी के प्रति' भी सुन्दर गीत है। 'स्वर्णकिरण का एक गीत'—

"विदा विदा शायद मिल जाँए यदा कदा
मैं बोला तुम जाओ प्रसन्न मन जाओ मेरा काशी
उसकी पलकों पर आँसू थे ओठों पर नि श्छल हाँसी"—

मानसिक दर्शन व साम्य पर निर्भर होने से अत्यन्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावपूर्ण हुआ है। 'पन्त' में कसक है, निराशा है, पर वे आशावादी भी हैं, द्रष्टा हैं और अनेक प्रभावों में उनका मानसिक धरातल बदलता रहा है। कहीं "एक धार बहता जग जीवन एक धार मेरा मन" उन्हें जीवन से निराश कर देता है तो कहीं "मेरे मानस का स्वर्गलोक उतरेगा भू पर नई बार" की भावना प्रवृत्त करती है। प्रकृति व्यापारों पर मानवी भावों का आरोप अधिक है। किन्तु परिवर्तित चिन्तन के कारण एक से अनुभूति सूचक गीत सर्वत्र नहीं मिलते। उनका बुद्धिवाद, तुकों का दीर्घ ह्रस्व नियम गीतों के प्रवाह व लय में बाधक होता है, इसी कारण गीत सर्वत्र पूरे ग्राह्य नहीं हो सके हैं। फिर संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग भी बाधक हुआ है।

गीत काव्य का चरम विकास 'महादेवी' जी की रचनाओं में हुआ। विरह वेदना की अभिव्यक्ति में उन्हें पूर्ण सफलता हुई। वर्ण्य विषय के साथ कवि की अनुभूतियों को एकाकार होने पर ही सुन्दर व सफल गीत बनते हैं। हृदय-स्पर्शी कविता तभी सम्भव होती है। भाषा विकास की दृष्टि से भी खड़ी बोली अब तक यथेष्ट परिष्कृत हो चुकी थी, प्राञ्जलता व सुकुमारता, भावाभिव्यञ्जन-शक्ति प्राप्त हो चुकी थी। कविता का शरीर वाह्य-गठन सज चुका था। महादेवी में तन्मयता व एकीकरण के साथ कुशल चित्रकार की सूक्ष्म पकड़ थी। अतः गीत रचना में उन्हें सर्वश्रेष्ठ सफलता हुई। उनकी कविता का सम्बन्ध भी रहस्यवादी शाखा से रहा जिसमें प्रिय के अज्ञात, अरूप व असीम होने से मानसिक अनुभूति ही होती है। प्रिय से क्रीड़ा, अभिसार व आँख मिचौनी शब्दों द्वारा पार्थिव होते हैं, पर मानसिक साम्य के आधार पर उन्हीं से रसानुभूति होती है। हृदय के भाव असीम प्रेम को छन्दबद्ध करने में लीन रहते हैं, अतः महादेवी की विरह साधना व तत्सम्बन्धी गीत हिन्दी साहित्य में अपूर्व बन सके हैं।

गीतों के आवश्यक उपादान महादेवी को प्राप्त थे। भाषा-क्षेत्र में 'प्रसाद' 'पंत' का मार्ग पकड़ राधा कृष्ण के रूपकों द्वारा या अन्यत्र स्वतन्त्र रूप में महादेवी ने अपनी वीणा के तार झंकृत किए। उनकी राधा क्या है? मूर्तिमती आकुलता! और कृष्ण? स्वरूपमान विरह—

"आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।"

साधक की प्रिय से क्रीड़ा, आशा-निराशा सभी अनन्त हैं—

रंगमय हे देव दूरी,
छू तुम्हें रह जायगी यह चित्रमय क्रीड़ा अधूरी।"

किन्तु उन्हें अपने मिटने का दुःख नहीं है। तार झंकृत होते हैं, अनुभूति में पीड़ा व संघर्ष है जिसने सारे गीत वेदनामय कर दिए हैं।

"क्या अमरों का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव अरे यह,
मेरा मिटने का अधिकार।"

प्रकृति में मानव सुख दुःख की अनुभूति, प्रिय की निरन्तर उपेक्षा, अनुहार विनय के कारण सारे गीत वेदना की निवृत्ति व करुणा से ओत-प्रोत हो गये हैं। साथ ही उपयुक्त शब्द-चयन पद-लालित्य का भी पूर्ण समावेश है। कवियित्री प्रिय के गीतों का माध्यम व गीत स्वयं बन गई है, वहाँ द्वैत का पता ही नहीं—

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ...
अधर भी हूँ और उसकी चाँदनी भी हूँ।

अपने जीवन प्रदीप से वे यही कहती रही हैं—

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल,
युग-युग, प्रतिदिन, प्रतिपल, प्रतिक्षण।
प्रियतम का पथ आलोकित कर
दे प्रकाश का रूप अपरिमित।
तेरे जीवन का अणु गल-गल।"

जबकि उनकी जीवन-कहानी बरसात की मेघघटा की तरह है जिसकी क्षणिकता का उन्हें गर्व है।

मेवाड़ के मरुभूमि की मन्दाकिनी, भक्ति के तपोवन की शकुन्तला मीरा ने शब्दों के पुष्पों में सौरभ भरा था; महादेवी ने भी साहित्य को अनमोल गीतों से सजाया। मीरा कुसुमी साड़ी पहन कर कृष्ण-दर्शन चाहती थी पर ये कहती हैं—"काटूँ वियोग-पल रोते संयोग समय छिप जाऊँ।" मीरा में अपूर्व तन्मयता, गति व मिठास है—"पग घुँघरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँध मीरा नाची रे" में उसकी साधना का चरम उत्कर्ष है। महादेवी लिखती हैं—

"चुभते ही तेरा अरुण बान
बहते बन कन से फूट फूट मधु के निर्झर से सजल गान"।

उनके अभिसार के दृश्य भी तदनुरूप ही उत्कृष्ट हुए हैं। प्रभाव-साम्य, तन्मयता, एकनिष्ठ व अनवरत विरह साधना में मीरा व महादेवी वर्मा में अद्भुत साम्य है। प्रेम व विरह के निरूपण, एकान्त महती साधना में महादेवी के जोड़े का कवि हिन्दी में दूसरा नहीं। न गीतों में ही कोई उनकी तरह सफल हो सका है।

तदुपरान्त रामकुमार वर्मा व माखनलाल चतुर्वेदी के कुछ गीत प्रसिद्ध हुए। वर्माजी के प्रयत्न 'आधुनिक कवि सीरीज' में सङ्कलित हैं। चतुर्वेदीजी की 'फूल की आशा' व देश प्रेम सम्बन्धी गीत सफल हुए। वीणापाणि से उनका संबोधन है—

"तुम रहो न मेरे गीतों में तो गीत रहें किनमें बोलो
तुम रहो न मेरे प्राणों में तो प्राण कहें कैसे बोलो
मेरी कसकों में कसक कसक मेरी खातिर बनवास करो
मेरे गीतों के राजा तुम मेरे गीतों में बास करो।"

परवर्ती गीत रचयिताओं में 'बच्चन' व 'नरेन्द्र शर्मा' उल्लेखनीय हैं। 'बच्चन' के गीत अनुभूति की मार्मिकता, भावों की कसमसाहट के कारण कीट्स की कविताओं का स्मरण कराते हैं। बीच-बीच में संसार की मीमांसा, प्रणय बन्धन, अवसाद, निराश प्रेमी के उद्गार अत्यन्त मार्मिक हुए हैं। गीतों की दृष्टि से 'निशा निमन्त्रण' 'मिलन यामिनी' बच्चन की सर्व श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। कवि ने संयोग वियोग का पूरा सजीव वर्णन किया है पर मांसलता तक नहीं पहुँचा है। सर्वप्रियता का यही मुख्य कारण है—

"मनुज के अधिकार कैसे, हम यहाँ लाचार ऐसे
कर नहीं इनकार सकते, कर नहीं सकते वरण भी
स्वप्न भी छल जागरण भी।"

मनुष्य की विवशता, दैन्य व निस्सारता का अत्यन्त उत्कृष्ट निरूपण है, मार्मिक तथ्य है। बात 'प्रसाद' ने भी यही कही थी—"देव न थे हम और न ये हैं, सब परिवर्तन के पुतले" किन्तु प्रतीकात्मक शैली द्वारा भाव गूढ़ हो गया। जब कि 'बच्चन' में स्पष्टता है। "प्रिय शेष बहुत है रात अभी मत जाओ" "वह पगध्वनि मेरी पहचानी" अत्यन्त प्रसिद्ध गीत हैं। "इस पार-उस पार" कविता की तो खूब धूम रही। नए कवि या तो 'पन्त' के नाम की माला जपते या 'बच्चन' के गीत गुनगुनाते हैं! अनुभूति की तीव्रता तह तक का निरावरण चित्रण उनकी विशेषता है।

'नरेन्द्र शर्मा' के गीतों में निराश प्रेम की व्यञ्जना प्रधान रही। सिनेमा के सम्पर्क से भाषा शैली व भावों का माध्यम बदल गया जो उनकी कविता में लक्षित होता है। व्याकुल कवि नैराश्यजन्य उद्गार प्रकट करता हुआ कहता है—

"आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आज से दो प्रेम योगी अब वियोगी ही रहेंगे!"

यही भावना 'अञ्चल' द्वारा इस प्रकार व्यक्त हुई—

"अब मिलेंगे कौन जाने किन्तु तब तक
भूलना मुझको न प्रियतम!"

'अञ्चल' तक आते आते मानसिक अनुभूति का स्थान मांसलता ने ले लिया। मनुष्य की वासनाओं, तृषा का उन्मुक्त चित्रण ज्यों का त्यों होने लगा। 'मैं' 'तू' तक ही गीत सीमित हो गए और "घिरती घटा तुम्हें प्रिय मेरी याद दिलाती होंगी" जैसे गीत लिखे जाने लगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली पद्य के विकास के साथ-साथ सुन्दर व सफल गीतों की रचना भी हुई। 'प्रसाद' 'पन्त' ने कोमलता द्वारा भाषा को सशक्त किया, फलतः खड़ी बोली में माधुर्य व कोमल कान्त पदावली का अभाव न रहा। भावों की गहराई के साथ साथ कविता-कामिनी को खूब सजाया-सँवारा गया। वाह्य गठन अत्यन्त आकर्षक हुआ। महादेवी ने गम्भीर अनुभूति के साथ अन्य प्राप्त उपादानों के योग से गीतों के पुष्ट रूप का निर्माण किया। वर्णन में मानसिक पक्ष का प्राधान्य, संकेत-शैली व प्रतीकात्मक पद्धति गीतों में उद्बुद्ध रस के साधारणीकरण में अत्यन्त सहायक व सफल हुए। अन्तर्वृत्तियाँ खूब रमीं। काव्य में रस सदा व्यंग्य होता है वाच्य नहीं। अनुभूति का अपरोक्ष वर्णन ही रस निष्पत्ति में सहायक होता है। यही सफलता-असफलता का साहित्यिक मापदण्ड है और इसी तथ्य पर हिन्दी गीतों का भविष्य निर्भर है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के गद्य साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव

प्रो० मोहनलालजी एम० ए०

हिन्दी नाटकों पर अँग्रेजी के नाट्य-साहित्य का प्रभाव तीन प्रकार से आँका जा सकता है—

१—अनुवाद।

२—शेक्सपियर और एलिजाबेथ-युग के नाट्यकार।

३—आधुनिक नाट्यकार (इब्सन, शॉ आदि)।

पहले प्रभाव के अन्तर्गत केवल अनूदित कृतियाँ आती हैं, दूसरे और तीसरे ने अधिक व्यापक रूप से हमारे नाट्यकारों को प्रभावित किया है।

अनुवाद कार्य भारतेन्दु-युग से आरम्भ होता है। सबसे पहले हिन्दी में तोताराम वर्मा ने एडिसन के Cato का केटो-वृत्तान्त (१८७९) के नाम से अनुवाद किया। इसके पश्चात् शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद की धूम मच गई। रत्नचन्द्र ने Merchant of Venice और Comedy of Errors का अनुवाद किया। स्वयं भारतेन्दु ने Merchant of Venice का रूपान्तर किया। पुरोहित गोपीनाथ ने As you like it और Romeo and Juliet का तथा मथुराप्रसाद उपाध्याय ने Macbeth का अनुवाद किया। इब्सन के एक-आध नाटकों के अनुवाद भी देखने में आए। शॉ, गॉल्सवर्दी आदि के नाटकों का भी प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रभाव हमारे नाट्यकारों पर पड़ा।

अँग्रेजी नाटकों के सम्पर्क से हमारे यहाँ नाटक की कला, रूप और उसके विधान में परिवर्तन हुए। पारसी रङ्गमञ्च के रोमाञ्चक और चटकीले वातावरण से नाटक को मुक्ति मिली, यद्यपि पारसी रङ्गमञ्च पर स्वयं एलिजाबेथ-युग की नाटकीय सीन-सीनरी और अति-नाटकीय तत्वों का प्रभाव था। भारतेन्दु के बाद कृष्णचन्द्र और बृजचन्द्र ने बनारस में 'श्री भारतेन्दु नाटक-मण्डली' की स्थापना की जहाँ साहित्यिक नाटकों के अभिनय को प्रोत्साहन दिया जाता था। इसके बाद प्रसाद का नाट्य-क्षेत्र में आना हुआ। उनके स्पर्श से नाट्य-साहित्य में नए प्राण आ गए। यह हिन्दी नाटकों के इतिहास में रोमांटिक प्रवृत्ति का युग था। बद्रीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, सुदर्शन, गोविन्द-बल्लभ पन्त के ऐतिहासिक नाटक भी इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत लिखे गए।

इस प्रभाव ने हिन्दी नाटकों में विधान और कला की दृष्टि से निम्न परिवर्त्त किए—

१—प्रस्तावना, नान्दी, मङ्गलाचरण आदि प्रथाओं का उन्मूलन।

२—अङ्क और दृश्य विधान में प्रवेशकों और संधियों आदि का बहिष्कार।

३—संवादों में तीव्रता और पात्रानुकूलता। शेक्सपियर की परम्परा पर Soliloquy (स्व-कथन) की प्रथा का पालन, पर पृथक्-कथन (Aside) और पद्य-बद्ध कथन की प्रणालियों का बहिष्कार।

४—निरर्थक और अप्रासङ्गिक गीतों में कमी।

५—दुखान्त नाटकों का प्रचलन।

रोमान्टिक प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हिन्दी के लेखकों का ध्यान जीवन की उन समस्याओं की ओर भी आकृष्ट हुआ जिनकी उपेक्षा इस युग के बौद्धिक चिन्तन में असम्भव थी। जैसे-जैसे जीवन में ये समस्यायें उग्र रूप धारण करने लगीं, साहित्य में भी उनकी अभिव्यञ्जना के उत्क्रांत स्वर मिले। लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, भुवनेश्वर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृथ्वीनाथ शर्मा आदि के नाटकों में इस युग का विचार-संघर्ष मिलता है। उनके विचारों पर और उनकी नाटकीय कला पर इब्सन, गाल्सवर्दी, शॉ आदि यथार्थवादी नाट्यकारों का गहरा प्रभाव पड़ा है। जिन समस्याओं को इन नाट्यकारों ने उठाया है उनमें मुख्य हैं, सेक्स की समस्या, व्यक्ति और समाज की समस्या, भूख और गरीबी की समस्या, घर और बाहर की समस्या, शासन और राजतन्त्र की समस्या। इन समस्याओं पर अंग्रेजी के विचारशील, यथार्थवादी नाट्यकारों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव तो पड़ा ही है, पर वे हमारी विचार-धारा से भी प्रभावित हैं। महात्मा गांधी के चिन्तन ने इन सारी समस्याओं पर अपना विशिष्ट प्रभाव डाला है और जिन लोगों ने राजनीतिक समस्याओं को अपने नाटकों में उठाया है वे गांधी की विचार-धारा से विशेष प्रभावित हुये हैं। पश्चिम की आमूल क्रान्ति यहाँ नहीं मिलती। सेठ गोविन्द-दास जैसे नाट्यकारों ने इन समस्याओं के निदान में गांधीवादी आस्था को ही ग्रहण किया है। रांगेय राघव का इधर 'रामानुज' नाटक भी निकला है जिसमें सामाजिक-सांस्कृतिक क्रान्ति के स्वर अधिक स्पष्ट हैं। किन्तु जिन नाट्यकारों में गांधीवादी आस्था का अदम्य आग्रह है उनके चिन्तन पर भी पश्चिम की बौद्धिक उत्तेजना का प्रभाव पड़ा है। और उन नाट्यकारों पर जिन्होंने व्यक्ति और सैक्स तथा घर और बाहर को लिया है (जैसे लक्ष्मी-नारायण मिश्र) पश्चिम का प्रभाव—विशेष कर इब्सन और शॉ का प्रभाव—अधिक स्पष्ट है।

इस बौद्धिक प्रभाव को हिन्दी नाटकों में विधान की दृष्टि से निम्न रूपों में देखा जा सकता है—

(१) ये नाटक घटना-बहुल या पात्र-बहुल नहीं, वे विचार-नाट्य (Drama of ideas) हैं।

(२) उनमें नाटकीय इकाइयों की समन्विति है।

(३) उनकी शैली यथार्थवाद की है। उसमें तीखा व्यंग्य, विक्षोभ और विदग्धता है।

(४) रङ्गमञ्च के लिए वहाँ पर्याप्त निर्देश मिलते हैं।

(५) भूमिकाओं में नाटक सम्बन्धी बहुत सी बातों का स्पष्टीकरण है।

अँग्रेजी नाटकों के इन प्रभाव बिन्दुओं के अतिरिक्त और कई दृष्टियों से भी हमारा नाट्य-साहित्य प्रभावित हुआ है। उस पर संक्षेप में विवेचन किया जा सकता है—

१—एकांकी नाटकों का विकास—यों रूपक के दस भेदों में हमारे यहाँ भी एकाङ्की का कोई रूप खोजा जा सकता है, पर जिस अर्थ में आज एकाङ्की स्वीकृत है वह निःसन्देह पश्चिम की देन है। इस सम्बन्ध में रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, भुवनेश्वरप्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(२) प्रतीकवाद (Symbol plays) नाटकों की रचना। उदाहरण के लिए पन्त की 'ज्योत्स्ना' पर शैले की Cenci (चेंची) का प्रभाव है। प्रसाद की कामना भी इसी कोटि में रखी जा सकती है। अँग्रेजी में कैन्टेसी नाटकों का भी प्रभाव यहाँ पड़ा है।

(३) गीति-नाट्य और भाव-नाट्य का प्रचलन। प्रसाद के 'करुणालय' और प्रेमी के 'स्वर्ग-विहान' के बाद उदय-शङ्कर भट्ट के विश्वामित्र, मत्स्य गन्धा और राधा गीति नाट्य हिन्दी में लिखे गये। भाव-नाट्यों में गो० पन्त की वरमाला, भट्ट की अंबा, और मुरारिलाल की मीरा को लिया जा सकता है।

(४) रेडियो के लिए लिखे गए फीचर।

× × ×

साहित्य के अन्य रूपों की तरह हिन्दी के कथा-साहित्य पर भी अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा है। 'उपन्यास' नाम से आज जो धारणा बनती है वह अँग्रेजी उपन्यासों के तत्वों की ही स्वीकृति है। हमारे यहाँ कथा-साहित्य के विकास में इस प्रभाव को इन रूपों में देखा जा सकता है—

१—हिन्दी उपन्यास के प्रथम चरण में जिन तिलस्मी और साहसिक उपन्यासों की रचना हुई थी, या आज भी यदा-कदा जो इस प्रकार के उपन्यास लिखे जाते हैं, उन पर अंग्रेजी के सनसनी खेज (Terror novels) उपन्यासों का प्रभाव है। श्रीमती शैले, होरेस वालपोल, हैगर्ड आदि उपन्यासकारों का वहाँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव मिलता है। अँग्रेजी के सनसनी खेज उपन्यासों के नायक हमारे यहाँ के इस किस्म के उपन्यासों के नायकों से अधिक साहसी और रहस्यमय हैं, यद्यपि नैतिक आदर्श और शौर्य की दृष्टि से उतने महान् नहीं।

राजनीति के ऐसे आन्दोलन से प्रभावित हो कर हिन्दी में 'रक्तमण्डल' जैसे उपन्यास भी लिखे गये। उनमें जिन वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग किया गया है वे वेल्स की स्मृति दिलाते हैं। उदाहरण के लिए 'रक्तमण्डल' में एक मृत्यु किरण का आविष्कार मिलता है। पुस्तक एक ओर तो टेरर नॉवेल है, दूसरी ओर वेल्स की शैली का वैज्ञानिक रोमांस।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—दूसरा वर्ग जासूसी उपन्यासों का है जिन पर शरलॉक होम्स, एडगर वैलेस, कोपेनहम, विल्की कॉलिन्स आदि का प्रभाव ढूँढ़ा जा सकता है।

३—तीसरी कोटि में प्रेमाख्यानक और ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी रचित 'अँगूठी का नगीना', 'कुसुपुरी', 'लखनऊ की कब्र' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं—प्रथम दो प्रेमाख्यानक उपन्यास, अन्तिम ऐतिहासिक रोमांस। इसी शैली में आगे चल कर वृन्दावन-लाल वर्मा ने 'गढ़कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी' जैसे उत्कृष्ट ऐतिहासिक रोमांस लिखे। इस शैली पर वाल्टर स्कॉट का प्रभाव स्पष्ट है।

४—हिन्दी में कुछ कथा-प्रधान उपन्यास 'रॉबिन्सन क्रूसो' और 'गुलीवर्स ट्रेवेल्स' के अनुकरण पर भी लिखे गए। उदाहरण के लिए लक्ष्मीदत्त जोशी का 'जवा कुसुम' और ब्रजनन्दनसहाय का 'अरुण बाला' लिए जा सकते हैं।

५—हिन्दी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता के विकास पर अँग्रेजी और फ्रेंच उपन्यासकारों का प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त जोला, फ्लाबेयर बोदलेयर और मोपासां के यथार्थ-वादी अथवा प्रकृतिवादी चित्रण का प्रभाव भी हिन्दी उपन्यास पर आया। यौन जीवन के गुह्य प्रदेशों में झाँकने की प्रवृत्ति भी नरोत्तम नागर, भगवतीचरण वर्मा, उग्र, इलाचन्द्र जोशी आदि में आई। इसके बाद उपन्यासकारों का एक नया वर्ग आया जिसका नेतृत्व डी० एच० लारेंस, जेम्स जॉयस, हक्सले, वर्जिनिया, वूल्फ आदि ने किया। इनमें मन के अवचेतन स्तरों की खोज-बीन की उत्कट प्रवृत्ति मिलती है। फ्रायड के निष्कर्ष तब तक यूरोप की मनसा पर छा गए थे। लारेंस का अहंवाद और सेक्स-आकर्षण अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि पर उतरा। जैनेन्द्रजी में आत्म-प्रपीड़न को व्यक्त करने की यह क्षमता देखी जा सकती है। हक्सले की सी प्रखर दृष्टि व जागरूकता भी उनमें है, किन्तु हक्सले की दृष्टि में जहाँ नकारात्मकता के घेरे में चक्कर काटने लगी है, वहाँ जैनेन्द्रजी की यह भी है, वह भी है' में व्यग्र हो उठी है।

६—इधर मार्शल प्रूस्त, दास्तावेस्की आदि रूसी लेखकों का प्रभाव भी हिन्दी पर पड़ा है। यशपाल, अञ्चल, राहुल सांकृत्यायन आदि में इसे देखा जा सकता है।

७—पश्चिम के कुछ अच्छे उपन्यास भी हिन्दी में अनूदित हो कर आए। बहुत पहले हरिऔध ने 'वेनिस का बाँका' और श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने 'अमरपुरी' रूपान्तरित किए थे। गोर्की और टालस्टाय के उपन्यास भी हिन्दी में आ गए थे। इधर पर्ल एस० बक की पुस्तक Good Earth का 'अन्नपूर्णा' के नाम से सत्येन्द्र शरद् ने अनुवाद किया है। शिवदानसिंह ने पुश्किन की The captain's Daughter का 'कप्तान की बेटी' के नाम से एक उत्कृष्ट अनुवाद हिन्दी को दिया है। इन पंक्तियों के लेखक ने भी आल्डस हक्सले की नवीनतम पुस्तक Ape and Essence का 'पशु और मानव' के नाम से अनुवाद किया है। पुस्तक आधुनिक जीवन पर एक भर्त्सना-पूर्ण व्यंग्य है, और उपन्यास शैली में एक नवीन टेक्नीक का विकास।

उपन्यास के अतिरिक्त हिन्दी कहानियों पर भी अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्ट है। संक्षेप में उसे इन रूपों में प्रकट किया जा सकता है—

१—तोता-मैना, वैताल-पचीसी आदि मनोरञ्जनकारी कहानियों से मनोवैज्ञानिक दिशा की ओर प्रगति।

२—कहानियों में जीवन की समस्याओं को ग्रहण करने की प्रवृत्ति।

३—घटना-प्रधान या चरित्र-प्रधान कहानियों के अतिरिक्त विचार-मूलक कहानियों की रचना की ओर भी झुकाव।

४—कहानी में मनोविश्लेषण-तत्व की नियोजना।

× × ×

अन्त में निबन्ध और आलोचना पर अंग्रेजी के प्रभाव को देखना समीचीन है। निबन्ध गद्य का आधुनिकतम रूप है। इसके विकास में गद्य की प्रतिष्ठा है। इसीलिए निबन्ध को गद्य की कसौटी माना गया है। हमारे यहाँ निबन्ध साहित्य की वह विधा है जो विचारों की अभिव्यक्ति में 'बन्ध' को अपेक्षित मानती है, पर अंग्रेजी में निबन्ध विचारों की विच्छिन्न धारा (Loose sally of the

CC-0. Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

mind) और उसका अव्यवस्थित (Irregular) असंकलित (Undigested) रूप है। वास्तव में डा० जॉनसन की यह परिभाषा निबन्ध के आदि रूप की है। अंग्रेजी के आदि निबन्धकार बेकन ने भी निबन्ध में विश्रृंखल विचार प्रकाशन को महत्व दिया है। इन मंतव्यों के अनुसार निबन्ध के लिए किसी विशिष्ट, सुनिश्चित, मर्यादित विचार-संघटन की आवश्यकता नहीं है, कारण निबन्ध मूलतः व्यक्ति का प्रयास है। किन्तु आधुनिक युग में निबन्ध में उसकी आदिम वैयक्तिकता, प्रयत्नशीलता और सहज उल्लास-भावना के साथ-साथ शृङ्खलाबद्ध विचार-संघटन को भी स्वीकार कर लिया गया है। हिन्दी में 'निबन्ध' से जो धारणा बनती है वह अंग्रेजी Essay के इन तत्वों की सर्वकृति है।

भारतेन्दु-युग के निबन्धकारों में सच्ची प्रयत्नशीलता के दर्शन होते हैं। दूसरे, उनके निबन्धों में वैयक्तिकता का अदम्य आग्रह भी मिलता है। जीवन के प्रति उनमें जो सहज उल्लास-भावना थी, उसके कारण उनके निबन्धों में जिन्दादिली भी है। एडिसन और स्टील ने 'स्पेक्टेटर' और 'टैटलर' पत्रों में जिस प्रकार के हल्के, व्यंग्यपूर्ण और उल्लासमय निबन्ध लिखे, उसी प्रकार के निबन्ध बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने हिन्दी-जगत् को दिए। 'हिन्दी-प्रदीप' में बालकृष्ण भट्ट और 'ब्राह्मण' में मिश्रजी के निबन्ध निकलते थे। ये निबन्ध उसी प्रकार की रचनाएँ हैं जिन्हें अंग्रेजी में Table Talks कहा जाता है।

द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता ने लेखक के व्यक्तित्व को उनके निबन्धों में झाँकने से रोक दिया। किन्तु कुछ लेखकों में उनके व्यक्तित्व का इतना तीव्र आग्रह है कि इतिवृत्तात्मकता के प्राचीर उसके चारों ओर टिक नहीं सके। शुक्लजी के निबन्धों में उनकी वैयक्तिकता सुरक्षित है। इसी प्रकार सरदार पूर्णसिंह और बाबू गुलाबराय में भी उनका व्यक्ति-वैशिष्ट्य देखा जा सकता है। शुक्लजी के निबन्धों में जहाँ विचारों के स्तर एक पर एक उठते हैं, वहाँ रस्किन का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी तरह पूर्णसिंह की शैली में कार्लाइल का भावोत्साह मिलता है।

आधुनिक युग ने हमें कितने ही उच्चकोटि के निबन्धकार दिए हैं। उनमें प्रायः सभी समालोचनात्मक निबन्धों से सम्बन्ध रखते हैं। पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा भी हिन्दी का निबन्ध-साहित्य काफी पुष्ट हो रहा है। निबन्धों के लिए यह माध्यम भी पश्चिम से ही आया है।

हिन्दी आलोचना का सूत्रपात भारतेन्दु युग से होता है। १८८२ में 'आनन्द कादम्बिनी' में श्री निवासदास के 'संयोगिता-स्वयंवर' की प्रेमघन ने आलोचना की थी। 'हिन्दी-प्रदीप' में बालकृष्ण भट्ट की लिखी हुई आलोचनाएँ भी प्रकाशित हुआ करती थीं। पर ये आलोचनाएँ वास्तव में पुस्तक या लेखक का परिचय-मात्र होती थीं। आलोचना का सम्यक रूप द्विवेदी-युग से विकसित हुआ। अंग्रेजी आलोचना के सम्पर्क ने हमारे समीक्षा-सिद्धान्तों को नवीन आलोक दिया। भारतीय समीक्षा अलङ्कार, रीति, वक्रोक्ति, रस, औचित्य सम्प्रदायों के नियमों से आबद्ध थी। लेखक की अन्तः प्रकृति की छानबीन, कला-वृत्ति के अध्ययन के लिए कलाकार की भाव-भूमि को समझने की प्रवृत्ति और मनोवैज्ञानिक तथ्यों को पकड़ने की प्रयत्नशीलता इन नवीन मूल्यों को भी नए आलोचकों ने स्वीकार किया।

आधुनिक युग की आलोचना पर जिन दो धाराओं का प्रभाव पड़ा है उनका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

१—रोमांटिक आलोचना जो मूलतः वैयक्तिक और प्रभाववादी है।

२—प्रगतिवादी आलोचना जो वैज्ञानिक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद को आधार मानती है।

रोमांटिक आलोचना में कला-कृति का मूल्याङ्कन रीतिबद्ध रूढ़ियों और शास्त्रीय धारणाओं के आधार पर न हो कर उसकी प्रभाव-शक्ति के आधार पर होता है। आलोचक की क्षमता कृति के प्रभाव (Impression) को पकड़ने की क्षमता है। साहित्य का मूल लक्ष्य आलोचक के लिए और उसी दृष्टि से पाठक के लिए आनन्द है। अतः सौन्दर्य-बोध रोमांटिक आलोचना का मूलाधार है। उसे लोगों ने केवल एक दृष्टिकोण के रूप में नहीं लिया, किन्तु फिलॉसफी के रूप में ही स्वीकार कर लिया। इस आलोचना-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्धति का विकास बर्ड्सवर्थ, कालरिज, लैंब, हैजलिट आदि से हो कर पेटर, ऑस्कर वाइल्ड आदि की अतिशय वैयक्तिक प्रभाववादिता को निहित करता हुआ, आधुनिक युग की नवीन उद्भावनाओं में व्यक्त हुआ है। इस युग में इस पर फ्रायड का भी प्रभाव आया। मन के अवचेतन स्तरों में प्रवेश करने की इसमें उत्कट प्रवृत्ति मिलती है। रोमांटिक आलोचना के ऐतिहासिक और जीवन-चरित सम्बन्धी पक्ष भी हैं; पहले पक्ष में लेगुई, केजामिआँ, गॉस, सैण्टसबरी आदि आलोचक आते हैं, और दूसरे में निकलसन, मिडलटन, मरी आदि व्यक्ति। सौन्दर्य बोध के भी सैद्धान्तिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक आदि कितने ही उप-भेद किए जा सकते हैं। सौन्दर्य-बोध के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन ब्रिजेज और अबरक्राम्बी में मिलता है। अबरक्राम्बी ने उसके दार्शनिक पक्ष का भी विवेचन किया है। सौन्दर्य बोध की मनोवैज्ञानिक सीमा-रेखाओं पर ब्रैडले की आलोचनाएँ हैं। इसी सीमा-रेखा पर रिचर्ड्स आता है यद्यपि उसमें वस्तु के मूल्याङ्कन के लिए उसके नैतिक, बौद्धिक और टेकनिकल मानों का भी आग्रह है। सौन्दर्य-बोध का एक शास्त्रीय पक्ष भी है जिसमें रुचि वैशिष्ट्य से अधिक निर्धारित मान दण्डों को महत्व दिया जाता है। इस क्षेत्र में इलियट का नाम उल्लेखनीय है। इसके विपरीत प्रभाववादी पक्ष है, उदाहरण के लिए क्विलरकूच।

प्रगतिवादी आलोचना मार्क्स, कॉडवेल, फाक्स, फ्लिनजेंडर आदि के प्रभाव को ग्रहण कर प्रकट हुई है। यह आलोचना-पद्धति निम्न सिद्धान्तों को ग्रहण करती है—

१—वह मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को आधार मान कर चलती है।

२—वह बुद्धिवादिनी है। वह काव्य और कला के वैयक्तिक और आत्म-निष्ठ मूल्य पर प्रहार करती है।

३—वह गति और परिवर्तन में विश्वास करती है—स्थिति-वाद में उसकी आस्था नहीं।

४—वह श्रमजीवी जन का दर्शन है।

आलोचना की इन विविध धारणाओं में हिन्दी आलोचना की गति-विधि इस प्रकार समझी जा सकती है—

१—शास्त्रीय आलोचकों का वर्ग जो भारतीय समीक्षा-सिद्धान्तों को स्वीकार करता है, किन्तु जिनमें नवीन मनोवैज्ञानिक मूल्यों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति भी है—रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, गुलाबराय, विश्वनाथप्रसाद मिश्र आदि।

२—रोमांटिक आलोचकों का वर्ग जो कला-कृति के मूल्यों को उसके अन्तरे से पकड़ता है किन्तु जिनमें भारतीय समीक्षा-सिद्धान्तों के मूल्यों का विवेचन भी मिलता है—रामकुमार वर्मा, सत्येन्द्र, नगेन्द्र, शान्तिप्रिय द्विवेदी।

३—मनोवैज्ञानिक आलोचकों का वर्ग जो सौन्दर्य-बोध और वैयक्तिक रुचि वैशिष्ट्य को महत्व देता है—इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय।

४—मार्क्सवादी आलोचना—डा० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह, अमृतराय।

कुछ आलोचक इस वर्गीकरण में मुश्किल से आ पाते हैं। दूसरे और तीसरे वर्ग की सीमा-रेखाओं पर नन्ददुलारे वाजपेयी और तीसरे और चौथे की सीमा-रेखाओं पर प्रकाशचन्द्र गुप्त को रखा जा सकता है। इस प्रकार हमारे आलोचना-साहित्य पर अँग्रेजी का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

× × ×

अँग्रेजी साहित्य के जिस व्यापक प्रभाव को इस निबन्ध में बाँधने की चेष्टा की गई है, उससे ऐसा बोध हो सकता है कि हमारे साहित्य की अपनी निधि कोई महत्वपूर्ण नहीं। इस लेख का लक्ष्य यह नहीं है—यह तो केवल आंग्ल प्रभाव को समझने का प्रयास है। साहित्य की अन्य विधाएँ भी हैं जैसे इन्टरव्यू, स्केच, जीवनी, संस्मरण, जिन पर अँग्रेजी प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव को समझते समय यह विस्मृत नहीं कर देना चाहिए कि हमारे साहित्य की अपनी विशिष्ट निधि भी है और वह अत्यन्त मूल्यवान् है। साहित्य के क्षेत्र में चेतनाओं का समन्वय मङ्गल-विधायक होता है। उनसे जीवन के लिए नवीन स्फूर्ति मिलती है। अतः जहाँ से आलोक मिले उसे जीवन के नव-विधान के लिए ग्रहण करना वांछनीय है। कवि की वाणी तभी अपनी सार्थकता पाती है—

'ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित,
नव मानव, किरणों से ज्योतित।' —पन्त

CC-0. Kanya Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिलीशरण गुप्त और भारतीय संस्कृति

श्री अरविन्द मालवीय एम० ए०

आधुनिक हिन्दी-साहित्य के 'प्रतिनिधि कवि' और आर्य-संस्कृति के वर्तमान 'वैतालिक', 'राष्ट्रीय कवि' श्री मैथिलीशरण गुप्त का सम्पूर्ण जीवन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतीक है। किसी कलाकार का जीवन वास्तव में उसकी कलाकृतियों में परिलक्षित होता है और यदि हमें उस कलाकार के जीवन से परिचित होना है तो हमें उसकी कलाकृतियों का सिंहावलोकन करना चाहिए। इस दृष्टि से यदि हम गुप्तजी की कृतियों का अध्ययन करते हैं तो हमें दृष्टिगत होता है कि भारतीय संस्कृति अपने सम्पूर्ण रूप में—वैदिक काल से लेकर वर्तमान बीसवीं शताब्दी तक—उनमें व्याप्त है। गुप्तजी स्वयं ही अपने व्यक्तित्व से एक सच्चे भारतीय लगते हैं—उनकी सादी खादी की पोशाक, धोती, कुरता और टोपी—उनका रहन-सहन, खान पान सब कुछ पूर्ण भारतीयता ग्रहण किये हुए है। उन्होंने भगवती भारती की आराधना का श्रीगणेश उस युग में किया जब कि भारतेन्दु समस्त भारतीय जनता को आह्वान कर चुके थे कि—

"रोवहु सब मिलि आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥"

और जनता के मस्तिष्क में—

"सब मिलि बोलो एक जबान।
हिन्दी, हिन्दू हिन्दुस्तान॥" *

का नारा ताजा ही था, स्वामी दयानन्द ने आर्य-समाज का शंख फूँक दिया था और भारतीय काँग्रेस देश-सेवा के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थी। साथ ही पूज्य भगवत्प्रेमी और वैष्णव पिता का आशीर्वाद × एवं आचार्य द्विवेदी का गुरुत्व गुप्तजी को निरन्तर अपने कार्य में प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करता रहा।

यदि हम गुप्तजी की समस्त नहीं तो प्रमुख कृतियों पर एक विहंगम दृष्टिपात करें तो हम अनुभव करते हैं कि वास्तव में गुप्तजी के रग-रग में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति व्याप्त है और इसको उन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा बहुत सफलता से व्यक्त किया है। गुप्तजी को साहित्य-गगनाङ्गन में प्रज्वलित करने के लिए सर्वप्रथम पुस्तक उनकी 'भारत-भारती' है। जिस प्रकार इससे पहले प्रकाशित 'जय-द्रथ-वध' में उसकी भूमिका में गुप्तजी ने कहा था कि "हिन्दी में आजकल ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है, जिनके द्वारा हमें अपनी पूर्व परिस्थिति का यथार्थ ज्ञान हो कर सब प्रकार की उन्नति करने में प्रोत्साहन मिले", इसी प्रकार की भावना 'भारत-भारती' की इन पंक्तियों में प्रतिबिम्बित है—

'हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी॥'

वास्तव में जनता ने इस ग्रन्थ को 'अपनी भारती' समझ कर अपनाया। अपनी तीन 'समस्याओं'—हम कौन थे? हम क्या हो गए हैं और हम क्या होंगे—का विवेचन कवि ने तीन 'खण्डों'—अतीत, वर्तमान और भविष्य—में किया है। इसमें अतीत एवं वर्तमान कालों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थितियों पर व्यंग्य (Satire), हास्य एवं करुणापूर्ण प्रकाश डाला गया है। वर्तमान काल के रईसों पर उनका यह व्यङ्ग हमें प्रायः याद आता है:—

'हो आध सेर कबाब मुझको, एक सेर शराब हो,
नूरेजहाँ की सल्तनत है, खूब हो कि खराब हो।'
कहना मुगल सम्राट का यह ठीक है अब भी यहाँ,
राजा-रईसों को प्रजा की है भला परवा कहाँ?

गोवध के सम्बन्ध में उनके कैसे करुणाजनक उद्गार हैं—

'दाँतों तले तृण दबा कर हैं दीन गाएँ कह रहीं—
हम पशु तथा तुम हो मनुज पर योग्य क्या तुमको यही?'

---

* श्री प्रतापनारायण मिश्र द्वारा।

× 'तू आगे चलकर हम से हजारगुनी अच्छी कविता करेगा।'

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भविष्य के सुधार के लिए कवि जनता से कहता है कि—

'होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो ।'

उसे प्राचीनता में अन्धविश्वास नहीं, वह नवीनता से भी पल्ला नहीं छुड़ाना चाहता; वह कहता है कि वर्त्तमान युग और इसकी स्थितियों से अलग रहना मूर्खता है, क्योंकि—

'विपरीत विश्व प्रवाह के निज रात जा सकती नहीं ।'

इसके पश्चात हम 'साकेत' और 'यशोधरा' को लेते हैं। इन दोनों ग्रंथों में गुप्तजी ने केवल काव्य की उपेक्षिताओं का ही नहीं भारतीय संस्कृति और सभ्यताओं की उपेक्षिताओं का भी उद्धार किया है। 'साकेत' का प्रणयन कर गुप्तजी ने 'रामायण' और 'रामचरितमानस' की त्रुटियों की पूर्ति की। उर्मिला, कैकेयी जैसी उपेक्षिता स्त्री-पात्रों को उठाया और लक्ष्मण, भरत, दशरथ जैसे गौण पात्रों पर और प्रकाश डाला। 'साकेत' का सम्पूर्ण महत्व उर्मिला के अश्रुओं पर आधारित है, यद्यपि वह कुछ आवश्यकता से अधिक बह गया है। उर्मिला के आँसू, उसकी विरहव्यथा, उसकी सहनशीलता, कर्तव्यपरायणता एक सच्ची आर्य नारी का रूप गठित करते हैं। हमने आज तक सीता को ही याद कर रोना सीखा था, पर गुप्तजी द्वारा हमें उर्मिला की विरह-व्यथा और उसकी सहनशीलता का परिचय मिलता है। उर्मिला की विरह-व्यथा भी तो कोई कम न थी, क्योंकि :—

'सीता ने अपना भाग लिया ।
पर इसने वह भी त्याग दिया ।'

सीता को अपने पति के सुख के साथ-साथ दुःख की संगिनी होने का सुअवसर मिला, परन्तु उर्मिला को यह सुयोग कहाँ प्राप्त हुआ ? वह तो !

'मरण जीवन की यह संगिनी,
बन सकी बन की न विहंगिनी ।'

परन्तु वह चुप रहती है; उसने अपने मन को समझाया कि—

'.....तू प्रिय का विघ्न न बन !
आज स्वार्थ है त्याग बना
है अनुराग विराग भरा ।'

और अपने लिए यही पर्याप्त समझा कि—

'आराध्य-युग्म के सोने पर, निस्तब्ध निशा के होने पर,
तुम याद करोगे मुझे कभी, तो बस फिर मैं पा चुकी सभी ।'

और इस प्रकार वह चुपचाप विरह-कथा सहती रहती है—चाहे वह अधिक रोए या कम, उसका रोना-धोना सब अपने में ही सीमित और मौन रहता है। वास्तव में नारी जीवन की इस अवस्था में इतना सहन कोई आश्चर्य नहीं है, पर उर्मिला ने अपनी सहनशीलता और तप से ऐसा आदर्श स्थापित किया कि भगवान राम को भी इसकी दाद देनी पड़ी—

"तूने तो सहधर्मचारिणी के भी ऊपर
धर्म-स्थापन किया भाग्यशालिनि इस भू पर ।"

सब के द्वारा ताड़ित एवं लांछित कैकेयी को भी गुप्तजी ने आत्मग्लानि द्वारा पवित्र बना दिया—

'युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी—
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी ।'

'यशोधरा' के द्वारा गुप्तजी की भारतीय नारी के प्रति मान्यताएँ बहुत स्पष्ट हो जाती हैं।

'अबला जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी ।'

यह कहकर गुप्तजी ने भारतीय नारी का एक सच्चा और सजीव रूप हमारे समक्ष रख दिया है। 'यशोधरा' द्वारा नारी की मान्यताओं, उसकी सहानता, कर्तव्य-परायणता एवं सहनशीलता पर अच्छा प्रकाश डाला है। यशोधरा को इस बात की प्रसन्नता है कि पति सिद्धि-प्राप्ति के लिए गए, परन्तु वह उससे छिपा कर चोरी-चोरी, बिना उसकी सम्मति लिये हुए गए, इसका उसे बहुत मलाल है।* उसे इस बात का दुःख है कि 'अमृतपुत्र' ने नारी को भ्रम से गलत समझा; नारी को सिद्धि-मार्ग की बाधा मान कर उन्होंने सम्पूर्ण नारी जाति पर कलङ्क का टीका लगाया; उन्हें पता नहीं कि—

'स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,

* 'सिद्ध हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात ।
पर चोरी-चोरी गए, यही बड़ा व्याघात ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र धर्म के नाते।

परन्तु यशोधरा ऐसी नारी नहीं; वह उसको चैलेंज के रूप में लेती है। उसे मुक्ति की आवश्यकता नहीं है; उसके लिए गार्हस्थ जीवन ही—उसका कर्तव्य बन्धन—मोक्ष से श्रेयस्कर है*। गौतम की जीवन से विरक्ति जरा, मृत्यु, रोग आदि से घृणा × को वह उसी प्रकार निराधार साबित करती है—

'यदि हममें अपना नियम और शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है।
वह जरा एक विश्रान्ति, जहाँ संयम है;
नवजीवन-दाता मरण कहाँ निर्मम है?'

गौतम कहते हैं—

'मैं सूँघ चुका वे फुल्ल फूल,
झड़ने को हैं सब फटित फूल।
चख देख चुका हूँ मैं, सफूल—
सड़ने को हैं वे अखिल आम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।'

पर यशोधरा कहती है—

'माना, ये खिलते फूल सभी झड़ते हैं;
जाना, ये दाड़िम, आम सभी सड़ते हैं।
पर क्या यों ही ये कभी टूट पड़ते हैं?
या काँटे ही चिरकाल हमें गड़ते हैं?
मैं विफल तभी, जब बोल रहित हो जाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?'

इस प्रकार हम देखते हैं कि गौतम को यशोधरा के इस मान पर घुटना टेक देना पड़ता है और वह स्वयं द्वार पर उसे मनाने जाते हैं, और अपनी 'दुर्बलता' स्वीकार करते हैं।* रानी की महत्ता को अन्त में उन्होंने मान ही लिया—

'दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
भूत-दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से'

× × ×

'द्वापर' के द्वारा भी गुप्तजी ने भारतीय नारी को बहुत सम्मान और प्रतिष्ठा के पद पर पहुँचाया। 'विधृता' द्वारा नारी जीवन की विडम्बना, उसकी अबलावस्था एवं उसके हृदय की शुद्धता पर अच्छा प्रकाश डाला है—

'अविश्वास हा, अविश्वास ही
नारी के प्रति नर का,
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं,
स्वामी है वह घर का,
उपजा किन्तु अविश्वासी नर,
हाय! तुम्हीं से नारी,
जाया होकर जननी भी है,
तू ही पाप पिटारी।'

साथ ही—

'नर के बाँटे क्या नारी की नग्न-मूर्ति ही आई?
माँ, बेटी या बहिन, हाय, क्या सङ्ग नहीं वह लाई?'

—विधृता के स्वामी पति का यह पश्चाताप वास्तव में पुरुष जाति की नारी के प्रति वर्तमान कलुषित दृष्टि को स्वच्छ करने योग्य है।

उपरोक्त प्रमुख ग्रन्थों के संक्षिप्त अवलोकन से हमको ज्ञात होता है कि गुप्तजी ने अपनी कृतियों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पर्याप्त परिलक्षण किया। भारतीय

---

* 'निज बन्धन सम्बन्ध सयत्न बनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ॥'

× देखी मैंने आज जरा।
हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा?
हाय! मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा?
सूख जायगा मेरा उपवन, जो है आज हरा?
सौ-सौ रोग खड़े हों सम्मुख, पशु ज्यों बाँध परा,
धिक्! जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा,
रिक्त मात्र है क्या सब भीतर, बाहर भरा भरा?
कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा।

*' मानिनि, मान तजो लो, रही तुम्हारी बान।
दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तव-तत्रभवान!
... .
माना, दुर्बल ही था गौतम छिप कर गया निदान,
किन्तु शुभे परिणाम भला ही हुआ, सुधा सन्धान।
क्षमा करो, सिद्धार्थ शाक्य की निर्दयता प्रिय जान,
मैत्री-करुणा-पूर्ण आज वह शुद्ध बुद्ध भगवान।'

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यता के प्रत्येक कालों एवं प्रकारों पर उन्होंने रचनाएँ कीं—पौराणिक मूलक ('चन्द्रहास', 'शकुन्तला' आदि), महाभारत मूलक ('जयद्रथ-बध', 'नहुष', 'सैरंध्री' आदि), हिन्दू-संस्कृति-मूलक ('हिन्दू', 'विकटभट', 'रङ्ग में भङ्ग' आदि) आदि। उनकी अन्य रचनाओं, स्फुट कविताओं आदि में भी हमें यही बात दृष्टिगत होती है। 'स्वदेश सङ्गीत', 'वैतालिक', 'किसान' आदि ग्रन्थ स्पष्टतया उनकी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक भावना को व्यक्त करते हैं।

गुप्तजी की कृतियों एवं उनकी विचारधारा में एक विशेषता है—वह भारत के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गगनांगन में अतीत एवं वर्तमान का स्वर्णिम सम्मिश्रण देखना चाहते हैं; वह प्राच्य और प्राश्चात्य का समन्वय चाहते हैं। उनका विश्वास है कि हमको लकीर के फकीर बनकर वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ—जिनका मुख्य केन्द्र पाश्चात्य जगत है—से अनिभिज्ञ न रहना चाहिए। हमें अपनी प्राचीन सभ्यता की गुणकारी बातों को ग्रहण करना चाहिए और उन बातों को त्याग देना चाहिए जो देश-काल भेद से हानिकारक और व्यर्थ हो गई हैं। इसी प्रकार हमें वर्तमान सभ्यता से भी अपने हित की बातों को ग्रहण करना चाहिए। 'जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी कीजै।' वाले सिद्धान्त को गुप्तजी मान्य समझते हैं। इस दृष्टिकोण को उन्होंने 'भारत-भारती', 'स्वदेश-सङ्गीत', 'हिन्दू', 'किसान' एवं 'अनघ' में स्पष्ट किया है। वह 'भारत-भारती' में कहते हैं—

'हमको समय को देखकर ही नित्य चलना चाहिए,
बदले हवा जिस तरफ हमको भी बदलना चाहिए।'
विपरीत विश्व-प्रवाह के निज नाव जा सकती नहीं,
अब पूर्व की बातें सभी प्रस्ताव पा सकती नहीं।'

गुप्तजी की कृतियों को देखने से यह भी ज्ञात होता है कि भारतीय-संस्कृति में केवल हिन्दू संस्कृति ही उनमें परिलक्षित है। गुप्तजी ने अधिकांश रचनाएँ हिन्दू धर्म और सभ्यता पर ही लिखी हैं। इस कारण कुछ लोग गुप्तजी को 'राष्ट्रीय कवि' न मानकर 'जातीय कवि' मानते हैं; लोगों का कहना है कि गुप्तजी केवल अतीत के ही गीत गाते हैं, 'वर्तमान जीवन चित्र' नहीं 'अङ्कित' करते। परन्तु हम इस बात को समीचीन नहीं मानते। पहले तो यह दृष्टिकोण ही गलत है कि उन्होंने कितना हिन्दुओं पर लिखा, कितना मुसलमानों पर और कितना अँग्रेजों पर; उन्होंने भारतीय-संस्कृति को अपनाया और भारतीय-संस्कृति के ढाँचे में जिस जाति का सबसे अधिक हाथ है, उस पर सबसे अधिक लिखा। अपनी कृतियों में उन्होंने सब धर्मों के प्रति श्रद्धा दिखलाई है और सब जातियों में मेल रखने की भावना को व्यक्त किया है।* और फिर लोगों का यह कहना भी अब निर्मूल है कि उन्होंने मुसलमान आदि संस्कृति पर कुछ नहीं लिखा, क्योंकि अब उनका 'काबा और कर्बला' प्रकाशित हो गया है, जिसको वह पहले 'हसन-हुसेन' के रूप में मुस्लिम-संस्कृति को वाणी देने के लिए लिखना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने फारसी के उमर खैयाम के 'रुबाइयातउमर खैयाम' का हिन्दी में अनुवाद किया।

इसके अतिरिक्त एक बात और है। जैसा कि श्री इन्द्रनाथ मदान ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी कलाकार' में कहा है, गुप्तजी सांस्कृतिक समन्वय सहित गार्हस्थ जीवन के कवि हैं। जो काम बँगला में शरत् बाबू ने उपन्यास द्वारा किया वही काम गुप्तजी ने हिन्दी में कविता द्वारा किया। दोनों कवि वैष्णव हैं और दोनों का उद्देश्य घरेलू जीवन में पुनः नारी की प्रतिष्ठा करना है। दोनों के नारी पात्र भारतीय-संस्कृति की नई व्याख्या करते हैं। इस कारण गुप्तजी को भारतीय संस्कृति के गार्हस्थ-जीवन का कवि कहा जा सकता है। गुप्तजी ने स्वयं कहा है कि—"जाति, देश और विश्व की समस्या को सुलझाने की बात तो दूर रही, मैं तो केवल 'कौटुम्बिक कवि' हूँ।"

इस प्रकार "भारतीय संस्कृति के सफल गायक" और "द्विवेदी युग और छायावाद युग के बीच की कड़ी" को जोड़ने वाले कवि की कृतियों के प्रति हम अपनी सद्भावना प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी वह संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते रहेंगे।

* 'भारत माता का यह मन्दिर, नाता भाई भाई का।
समझे माँ की प्रसव-वेदना वही लाल है माई का॥'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-विमर्श

आनन्दवर्द्धन का रसात्मवाद : एक समाधान—

इसी मासिक के जून १९५२ के अङ्क में प्रकाशित मेरे "क्या आनन्दवर्धन ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते थे ?" शीर्षक अनुशीलन के साथ सम्मानीय सम्पादकजी ने एक अत्यन्त ही विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी लगादी है। वह टिप्पणी इस प्रकार है:—

"फिर आपके मत से आनन्दवर्द्धन रसध्वनि को आत्मा का स्थान देता है और रस को भी ध्वनि के अन्तर्गत करता है। यह ध्वनि की विशेष व्याख्या हो जाती है। इसी के द्वारा समन्वयवादी रस और ध्वनि का विरोध-शमन करते हैं। —सम्पादक।"

मैं इस समीक्षा का अतीव आभारी हूँ और इससे अपने पक्ष को पुष्ट करने का एक स्वर्णिम अवसर प्राप्त होता है, यद्यपि इस दिशा पर एक स्वसमुत्थ शङ्का का परिहार करने का प्रयास मैंने पहले ही अपने अँगरेजी के निबन्ध में किया है जो अब भी प्रकाशनाधीन है।

रस को ध्वनि के अन्तर्गत आचार्य ने पूर्णरूप से नहीं माना है प्रत्युत रस के एक विशेष प्रकार को ही आनन्दवर्द्धन ने ध्वनिभेद के रूप में स्वीकार किया है। इससे रस का ध्वन्यतर्गतत्व पूर्णरूप से निरस्त हो जाता है। आनन्दवर्द्धन की वह कारिका जिसमें कि इस विचार को व्यक्त किया गया है इस प्रकार है :—

"रसभावतदाभास तत्प्रशान्त्यादिरक्रमः।
ध्वनेरात्माऽङ्गिभावेन भासमानो व्यवस्थितः॥"

द्वि० उ०; ३।

इसका हिन्दी भाषान्तर कुछ-कुछ ऐसा होगा :—

'अङ्गी के रूप में (प्रधान रूप में) सुशोभित होने वाले अक्रम (भेद), अर्थात् रस, भाव, उनके प्रशम इत्यादि, को ध्वनि की आत्मा के रूप में माना जाता है।'

आशय यह कि अङ्गी रसादि को ही ध्वनि से सम्बद्ध माना गया है। अङ्ग रसादि से उसका कोई सबन्ध नहीं। दूसरे शब्दों में जब रसादि काव्य में प्रधान रूप से प्राप्त होते हैं तब और तभी वे अक्रमध्वनि की संज्ञा प्राप्त करते हैं अन्यथा नहीं। गुणीभूत रस अथच अविवक्षित रस गुणीभूत-व्यङ्ग्य और चित्र के विषय माने गये हैं। इस सम्बन्ध में उक्त कारिका पर आचार्य अभिनवगुप्त का निम्न व्याख्यान अवधान देने योग्य है :—

"ननु किं सर्वदैव रसादिरर्थो ध्वनेः प्रकारः। नेत्याहः किन्तु यदाङ्गित्वेन प्रधानत्वेनावभासमानः।"

समर्थन के लिए आचार्य ने लिखा है :—

"एतच्च सामान्यलक्षणे 'गुणीकृतस्वार्थौ'-इत्यत्र यद्यपि निरूपितं तथापि रसवदाद्यलङ्कारप्रकाशनावकाशदानायानूदितम्।"

स्पष्ट है कि रसादि ध्वनि, गुणीभूतव्यङ्ग्य और चित्र तीनों में प्राप्त होते हैं। अन्तर है तो केवल विवक्षित अविवक्षित होने का और फिर प्रधान रूप और गौण रूप में विवक्षित होने का। रस और ध्वनि में महाविषयता किसकी है—यह प्रश्न भी इसी के साथ उठाया जा सकता है। पर उत्तर जैसा कि विवेचन से अवभासित होता होगा सीधे-सीधे यह है कि रस महाविषय है और वही हो सकता है।

काव्य तो कोई रस के बिना हो ही नहीं सकता। रसशून्य काव्य एक विरोधी पदयुग्म है। जैसे कोई कहे कि 'शीतल अनल अथवा जलता जल अमुक स्थल पर प्राप्त किया जा सकता है' वैसी ही ऊटपटाँग बात एक यह भी होगी। आचार्यों ने इसकी उपचार से सम्भव परिकल्पना की है। ग्रन्थकार आनन्दवर्द्धन ने चित्र का विवेचन करते हुए लिखा है :—

"अथ किमिदं चित्रनाम ? यत्र न प्रतीयमानसंस्पर्शः। प्रतीयमानोऽपि त्रिविधः प्राक्प्रदर्शितः। तत्र यत्र वस्त्वलङ्कारान्तरं वा व्यङ्ग्यं नास्ति स नाम चित्रस्य कल्पयतां विषयः। यत्र तु रसादीनामविषयत्वं स काव्यप्रकारो न सम्भवत्येव। यस्मादवस्तुसंस्पर्शिता काव्यस्य नोपपद्यते। वस्तु च सर्वमेव जगद्गतंमवश्यङ्कस्यचिद्रसस्य भावस्य वाङ्गत्वम्प्रतिपद्यते अंततो विभावत्वेन। चित्तवृत्तिविशेषा हि रसादयः; न च तदस्ति वस्तु किञ्चिद् यन्न चित्तवृत्तिविशेषमुपजनयति तदनुत्पादने वा कवि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयतैव तस्य न स्यात् कविविषयश्च चित्रतया कश्चिन्निरूप्यते।"

अत्रोच्यते—सत्यम् न तादृक् काव्यप्रकारोऽस्ति यत्र रसादीनामप्रतीतिः। किन्तु यदा रसभावादिविवक्षाशून्यः कविः शब्दालङ्कारमर्थालङ्कारं वोपनिबध्नाति तदा तद्विवक्षापेक्षया रसादिशून्यतार्थस्य परिकल्प्यते। विवक्षोपारूढ एव हि काव्ये शब्दानामर्थः। वाच्यसामर्थ्यवशेन च कविर्विवक्षाविरहेऽपि तथाविधे विषये रसादिप्रतीतिर्भवन्ती परिदुर्बला भवतीत्यनेनापि प्रकारेण नीरसत्वम्परिकल्प्य चित्रविषयो व्यवस्थाप्यते।"

[ध्वन्यालोक (चौ० सं० सि०) पृ० ४९६-७]

अभिनव ने भी लिखा है :—

"स च रसादिर्ध्वनिर्व्यवस्थित एव। न हि तच्छून्यं काव्यकिञ्चिदस्ति। यद्यपि च रसेनैव सर्वञ्जीवति काव्यम्; तथापि तस्य रसस्यैकघनचमत्कारात्मनोऽपि कुतश्चिदंशात् प्रयोजकीभूतादधिकोऽसौ चमत्कारो भवति।"

[ध्वन्यालोक (चौ० सं० सि०) पृ० १७५]

और यह महाविषय रस ही ग्रन्थकार आनन्दवर्द्धन की और टीकाकार अभिनव की दृष्टियों में काव्यत्व का अवच्छेदक हो सकता है। ध्वनि तो अपेक्षाकृत स्वल्पगोचरविषय है। साथ ही ध्वनि को काव्य की आत्मा मानने से अतिव्याप्ति की जगह अव्याप्ति आने की अधिक सम्भावना है। यही सब सोच-समझकर आचार्यों ने मुख्यतया आनन्दवर्द्धन ने—ध्वनि के स्थान पर रस की काव्यात्मकता प्रदान की। अतः न तो ध्वनि की कोई विशेष व्याख्या का अवकाश है और न रस व ध्वनि के विरोधशमन का प्रश्न ही उठता है।

—प्रो० लाल रमायदुपालसिंह, एम० ए०,
साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त अलङ्कार—

'साहित्य-सन्देश' के जून १९५२ के अंक में 'एक निवेदन' प्रकाशित हुआ है जिसके सम्बन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक है—

अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त अलङ्कार में अन्तर बतलाते हुए उद्योतकार कहते हैं—

"अर्थान्तरन्यासे समर्थ्यसमर्थकयोः सामान्यविशेषभावः। दृष्टान्ते तु सामान्यं सामान्येन विशेषो विशेषेण समर्थ्यते इति तयो भेदः।"

इससे स्पष्ट है कि दृष्टान्त अलङ्कार में उपमेय तथा उपमान वाक्य दोनों या तो सामान्य होते हैं अथवा दोनों विशेष होते हैं। बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव या तो सामान्य-सामान्य में होता है, अथवा विशेष-विशेष में; सामान्य-विशेष में अथवा विशेष सामान्य में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव नहीं हुआ करता। उद्योतकार के उक्त विवेचन को दृष्टि में रख कर निम्नलिखित पद्य पर विचार कीजिये—

"एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ,
बहुत तारे थे अँधेरा कब मिटा,
सूर्य का आना सुना जब तब मिटा।"

पद्य का पूर्वार्द्ध सामान्य कथन है तथा उत्तरार्द्ध विशेष-कथन। इसलिए उद्योतकार के मतानुसार यहाँ अर्थान्तरन्यास ही माना जायगा। किन्तु अलङ्कार का हर एक पारखी उद्योतकार के मत को मानकर ही चले, ऐसा आग्रह मैं नहीं करना चाहता। पं० रामदहिन मिश्र ने भी उक्त पद्य में अर्थान्तरन्यास न मानकर दृष्टान्त अलङ्कार ही माना है। उसी तरह 'काव्याङ्ग प्रकाश' के लेखक भी यदि इसमें दृष्टान्त अलङ्कार मानें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अलङ्कार वास्तव में रत्न की तरह है। किसी जौहरी का ध्यान उसकी आब पर जाता है, किसी का ध्यान उसके रंग पर जाता है। इसी प्रकार अलङ्कार-निर्धारण भी दृष्टि-भेद के कारण कभी-कभी मत-भेद का रूप धारण कर लेता है। इसी तरह की बात प्रस्तुत पद्य के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। यह भी सम्भव है कि अधिकाँश विद्वान् पं० रामदहिन मिश्र तथा 'काव्याङ्ग प्रकाश' के लेखक का ही समर्थन करें किन्तु उद्योतकार का मत भी विचारणीय अवश्य है। यही कारण है कि उक्त पद्य के अलङ्कार-निर्धारण को मैंने विवादास्पद कहा था। 'काव्याङ्ग-प्रकाश' के लेखक ने 'निवेदन' जिस शैली में प्रस्तुत किया है, वह अवश्य अभिनन्दनीय है क्योंकि लेखक सत्यान्वेषण में प्रवृत्त है, छिद्रान्वेषण में नहीं। —कन्हैयालाल सहल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना

सूफी काव्य संग्रह—सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी एम० ए०, प्रकाशक–हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। पृ० ३२६, मू० ३)

सूफियों ने हिन्दी में प्रेम गाथाओं की प्रबन्ध काव्यात्मक शैली में तथा स्फुट प्रणालियों में रचना ही प्रस्तुत की है। वस्तु भाव शैली और भाषा सभी दृष्टियों से हिन्दी के लिए सूफियों ने एक महत्वपूर्ण दैन दी है। इस पुस्तक में लेखक ने इस दैन का एक संक्षिप्त परिचय दिया है। इसको उसने तीन भागों में बाँटा है। पहला भूमिका का भाग है, जिसमें सूफियों का इतिहास और उनका साम्प्रदायिक दर्शन तथा साहित्य पर परिचयात्मक साधारण विवेचन सम्मिलित है। दूसरा भाग कवि परिचय और मूल पाठ से सम्बन्धित है। इस भाग में ११ प्रेम गाथा के लेखक सूफी कवियों का परिचय तथा उनकी रचनाओं में से कुछ अवतरण दिए गए हैं और १२ स्फुट काव्य लिखने वाले कवियों का परिचय तथा उनकी रचनाओं के कुछ नमूने हैं। तीसरे भाग में टिप्पणियाँ हैं। इन टिप्पणियों में ग्रन्थ की वस्तु का विवरण भी दिया गया है और पुस्तक में दिए हुए अवतरण में आये स्थलों तथा शब्दों का अर्थ भी है। यह संग्रह विद्यार्थियों की दृष्टि से ही नहीं सभी के लिए उपयोगी है क्योंकि संक्षेप में एक ही स्थान पर सूफी सम्प्रदाय और साहित्य का संक्षिप्त किन्तु संपूर्ण परिचय इस पुस्तक के द्वारा मिल जाता है। जो स्थल रचनाओं में से इस संग्रह में दिये गए हैं वे उस कवि की समस्त विशेषताओं को स्पष्ट नहीं कर पाते, इनसे अच्छे स्थल चुने जा सकते थे। विवेचन में भी लेखक ने सरसरी दृष्टि से काम लिया है। और फलतः उनमें कुछ भ्रान्तियाँ भी आ गयी हैं। उदाहरणार्थ जायसी के सम्बन्ध में यह कहना कि वे हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की बातों से भली भाँति परिचित हैं—समीचीन नहीं जान पड़ता। कवि की रचनाओं को सूफी काव्य कहना भी कुछ संगत प्रतीत नहीं होता। पुस्तक की छपाई सफाई आकर्षक है। पुस्तक पढ़ने योग्य और संग्रह करने योग्य है।

उर्दू साहित्य का इतिहास—भाग १ (पद्य खण्ड)—ले० रामबाबू सक्सैना एम० ए०, डी० लिट्०, अनुवादक–श्री रामचन्द्र टण्डन एवं श्री सालिग्राम श्रीवास्तव, प्रकाशक-हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद। पृ० ४५३, मू० ५)

यह पुस्तक डा० रामबाबू सक्सैना के हिस्ट्री ओफ उर्दू लिटरेचर नामक ग्रन्थ का अनुवाद है। जिसमें इसी के उर्दू रूपान्तर की सहायता भी ली गयी है। डा० सक्सैना का यह अँग्रेजी ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। सम्भवतः इसीलिए हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है। इसमें १४ अध्याय और एक परिशिष्ट है। उर्दू के आरम्भ से लेकर आधुनिक युग में डा० इकबाल तक उर्दू कवियों का एक विस्तृत परिचय इसमें दिया गया है। नये कवियों का परिचय परिशिष्ट में दिया गया है। इसमें नजीर, लखनवी, चकबस्त, डा० इकबाल ही पर लिखा गया है। सबसे प्रथम उर्दू कवि अमीर खुसरो हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी पुस्तक खालिक बारी को अरबी और फारसी शब्दों के उर्दू पर्याय का कोश बताया है। अमीर खुसरो से आज तक के कवियों को इस लेखक ने मुख्यतः चार स्थानीय विभागों में बाँटा है। १ में दक्कन के कवि, २ में दिल्ली के कवि, ३ में लखनऊ के कवि, ४ में रामपुर और हैदराबाद के कवि। मर्सिया और उसके लेखकों पर लेखक ने एक अलग अध्याय दिया है। यह भी ठीक ही है कि लेखक ने नजीर अकबराबादी और शाहनसीब देहली को भी एक अलग अध्याय बनाया है। १४ वें अध्याय में उर्दू कविता की नवीन गति का परिचय कराया है। और इसमें वर्तमान काल से जो नई प्रवृत्तियाँ उर्दू कविता और उसकी शैली में उदय हुई उनका उल्लेख भी किया है।

उर्दू साहित्य का इतिहास भाग २ (गद्य खण्ड)—लेखक तथा प्रकाशक वही, अनुवादक श्री सालिग्राम श्रीवास्तव। पृष्ठ १४३, मूल्य २।)

इस दूसरे भाग में उर्दू गद्य के विकास का पता चलता है। लेखक ने फोर्ट विलियम कालेज से उर्दू गद्य का आरम्भ माना है, और काव्य को छोड़ कर उर्दू के अन्य जितने भी रूप हैं उन सबका उल्लेख इस छोटी पुस्तक में किया है। उर्दू के पत्र-पत्रिकाओं का भी उल्लेख है। अन्त में लेखक ने उर्दू भाषा की विशेषताओं का भी संक्षेप में उल्लेख कर दिया है। इन दोनों भागों में उर्दू साहित्य के इतिहास की एक सुन्दर प्रामाणिक रूपरेखा मिल जाती है, हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है। यदि इस पुस्तक में परिशिष्ट रूप से ही सही उर्दू के कवियों और लेखकों की उस शैली पर विशेष टिप्पणियाँ रहतीं जिनका हिन्दी शैली से निकट सम्बन्ध है तो एक ओर जहाँ हिन्दी उर्दू की मौलिक एकता का रूप स्पष्ट होता वहाँ हिन्दी के पाठक से इसका सीधा सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता। अनुवादक अथवा सम्पादक परिशिष्ट देकर इस हिन्दी उर्दू के आन्तरिक और वाह्य साम्य और विभेद के इतिहास पर सोदाहरण तथा सकारण उल्लेख कर देते तो पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती। पुस्तक में पीछे अनुक्रमणिका का अभाव बहुत खटकता है। —सत्येन्द्र

नाटक

लकड़ बग्घा—लेखक-श्री जी० पी० श्रीवास्तव, प्रकाशक-भारतीय प्रकाशन मंदिर, बनारस १। पृष्ठ सं० ६४, मूल्य १।)

जी० पी० श्रीवास्तव हास्य रस के सिद्ध लेखक हैं। उन्हीं के तीन छोटे प्रहसनों का इसमें संग्रह है। पहला प्रहसन 'लकड़ बग्घा' सबसे बड़ा है। यह १९२७ में 'जैसी करनी वैसी भरनी' के नाम से माधुरी में प्रकाशित हो चुका है। इसमें कर्ज की समस्या को हास्य का विषय बनाया गया है। 'भारत माता की जय' में परमिट और राशन प्रणाली पर व्यङ्ग है। 'करिया अच्छर भैंस बराबर' में साक्षरता को प्रेरणा दी गयी है। तीनों ही अभिनेय हैं। —सत्येन्द्र

निबन्ध

निबन्ध रत्नाकर—ले०-डा० सत्येन्द्र, प्रकाशक-रत्न प्रकाशन मन्दिर, आगरा। पृ० ३४३, मूल्य २॥)

यद्यपि ये निबन्ध स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों के लाभार्थ लिखे गये हैं तथापि इनमें परीक्षा पास कराने की अपेक्षा विद्यार्थियों को निबन्ध साहित्य से वास्तविक रुचि रखने और रसास्वाद कराने की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। वास्तविक बात यह है कि अच्छा निबन्ध लेखक वही हो सकता है जो अच्छे निबन्धों के रसास्वाद करने की क्षमता रखता हो। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि निबन्ध लेखन के व्यावहारिक पक्ष की अवहेलना की गई है। निबन्ध लेखन के नियमादि पूर्ण विवेचन के साथ दिये गये हैं। साथ ही कुछ निबन्धों की रूपरेखा भी दी गई है। इस पुस्तक में निबन्ध लेखन ही नहीं, गद्य रचना के सभी अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है। निबन्ध साहित्य का इतिहास भी दिया गया है और कुछ दूसरे सिद्धहस्त लेखकों के निबन्ध और उनकी चिट्ठियाँ भी (जो साहित्य की अमूल्य सामग्री हैं) नमूने के तौर पर दी गई हैं। इसमें खराबी सिर्फ इतनी है कि सभी स्तर के लेख एक साथ दे दिये गये हैं। यह गुण भी हो सकता है। दूसरा दोष यह है कि इसमें शैलीकार की अपेक्षा शैली और शिल्प विवेचक और आलोचक का रूप अधिक है। यह दोष भी लेखक के पाण्डित्य का है और इससे विद्यार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं। मूल्य की दृष्टि से इसमें सामग्री भी विस्तृत और गुण में बढ़ी-चढ़ी है।

साहित्य-सुमन—सम्पादक-श्री हरशरण दास-शरण, प्रकाशक-रामकिशोर नन्दकिशोर, दिल्ली। पृ० २०२, मूल्य ३।॥)

इस पुस्तक में विविध साहित्यिक विषयों पर विविध लेखकों द्वारा लिखे हुए निबन्धों का संग्रह है। इसमें कुछ निबन्ध सैद्धान्तिक हैं (जैसे ललित कला और जीवन, उपन्यास क्या है, वियोगी होगा पहला कवि) और कुछ व्यावहारिक आलोचना से सम्बन्ध रखते हैं। खड़ी बोली का विकास व जयशङ्करप्रसाद और उनकी काव्य धारा में कामायनी के मनोवैज्ञानिक आधारों और दार्शनिक पृष्ठभूमि के विवेचन में कुछ नई सामग्री मिलती है। अपभ्रंश युग और उनका साहित्य शीर्षक में हिन्दी के आविर्भाव के पूर्व के साहित्य की अच्छी झाँकी मिलती है।

प्रायः सभी निबन्ध विद्यार्थियों के उपयोगी हैं किन्तु विषयों के गाम्भीर्य के अनुकूल उनके विस्तार और विवेचन में अपेक्षाकृत कमी रही है।

प्रबन्ध-प्रकाश—लेखक-श्री कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार प्रकाशक-नव-साहित्य मंडल, दिल्ली। पृष्ठ २७६, मूल्य ३।)

ये निबन्ध भी विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। इनमें गद्य रचना के प्रारम्भिक सिद्धान्तों के साथ विविध विषयों पर कुछ पूरे निबन्ध और कुछ की रूपरेखा दी गई है। इसके प्रायः सभी निबन्ध विचारात्मक हैं किन्तु विचारात्मक निबन्धों में विषय वैविध्य पर्याप्त है जिससे विद्यार्थी की सामान्य जानकारी भी बढ़ सकती है। प्रायः विद्यार्थियों के लिए लिखी जाने वाली पुस्तकों में राजनीतिक विषय अछूते रहते हैं। इसमें संयुक्त राष्ट्र, पञ्चवर्षीय आर्थिक विकास योजना आदि महत्व-पूर्ण विषयों का भी विवेचन किया गया है। इसकी शैली सरल है। लेखक स्वयं इसी प्रकार की शैली में विश्वास करते हैं। ज्ञान-वितरण की ओर लेखक का ध्यान अधिक है। शैली अनलंकृत होते हुए भी अपनी अभिव्यक्ति में स्पष्ट है। इसमें भारतीय नारी पर दो अच्छे निबन्ध हैं। इसके अन्य निबन्ध भी विचारपूर्ण और ज्ञान वर्द्धक हैं।

—गुलाबराय

प्रबन्ध पीयूष—लेखक-प्रो० विद्याभास्कर 'अरुण' एम० ए०, प्रकाशक-जन-साहित्य प्रकाशन, जालंधर। पृष्ठ ३२०, मूल्य ३॥=)

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के सामयिक व साहित्यिक ५५ निबन्धों का संग्रह है। लेखक ने लगभग सभी विषयों—साहित्यिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक पर अपनी लेखनी चलाई है। भारत राष्ट्र और उसकी समस्याएँ, विश्व के रंग-मञ्च पर, साहित्य सीकर, ज्ञान के उद्यान में व रेडियो भाषण—इन पाँच भागों में पुस्तक का विभाजन किया गया है। 'विश्व के रंग-मञ्च पर' के निबन्धों में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी हुई सामग्री को लेखक ने एकत्र कर विद्यार्थियों को एक ऐसी वस्तु प्रदान की है जिससे वे परीक्षाओं में ही लाभ नहीं उठा सकते, अपितु अपने मस्तिष्क को भी विचार-समृद्ध बना सकते हैं। 'साहित्य सीकर' खण्ड में साहित्य की प्रमुख विधाओं एवं उसके आधुनिकतम वादों को परीक्षार्थियों के बौद्धिक-स्तर के अनुरूप सरस एवं सुस्पष्ट भाषा में समझाया गया है। महत्वहीन विषयों को छोड़कर परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रचलित विषयों पर ही निबन्ध लिखे गये हैं।

यह निबन्ध-पुस्तक विद्यार्थियों को विचार-प्रौढ़ बनाने में एवं उनके बौद्धिक-स्तर को ऊँचा करने में तो सहायक होगी ही साथ ही उन्हें स्वयं लिखने की भी प्रेरणा प्रदान करेगी।

—बाँकेलाल रावत

कविता

हिमांचला—लेखक-श्री रामेश्वरदयाल खण्डेलवाल 'तरुण', प्रकाशक-प्रकाश परिषद, मेरठ। पृष्ठ १०४, मूल्य २॥)

श्री रामेश्वरदयाल खण्डेलवाल 'तरुण' एक तरुण हृदय की तरल तरङ्गों के साथ साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुए हैं। उनका हृदय नवचेतना से भरा है—'जीवन लहरा उठा—धूप में लहराते नीले सागर सा' इनकी कविताओं में आशा, साहस और कठिनाइयों से न चेतने वाला अदम्य उत्साह है। वे एक अमर विश्वास लेकर चले हैं। सूरज

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्त हो जाय तो उनके पथ ज्योतित करने वाले तारों में विश्वास है। तारे भी न हों तो जुगनू में ही उनको आशा के स्फुलिंग मिलते हैं। और यदि वे भी न हों तो उनको अपने ऊपर विश्वास है। 'इस लोह छाती में साहस भरा भर पूर है।' कठिनाइयाँ उनका बल बढ़ाती हैं देखिए :—

सागर में जितना चढ़ता जल,
नाविक में उतना बढ़ता बल।
कायरता है—इन लहरों से-
आगे बढ़ कर होड़ न लेना,
माँझी साहस छोड़ न देना।

'संघर्ष कर आहें न भर' जहाँ हम को पलायन वाद से दूर रणक्षेत्र में लेजाकर गाण्डीव धारण कराता है वहाँ सङ्घर्ष की श्रान्ति बचाने के लिए विश्राम और मुक्ति की खोज भी है—

चलो हृदय, इस निर्भय जग से दूर कहीं कुछ देर चलें।

इस कविता में कवि का मनोराज्य है किन्तु अन्त में उस मधुबन्धन से मुक्ति की भी खोज है :—

जीवन मधु भी पायेंगे यदि काँटों में छिद जायेंगे,
श्रम करते, जीवन-सन्ध्या में शत दल में मुद जायेंगे।
मुक्ति प्रात में निकल उड़ेंगे, तृप्त मधुप जैसे निकलें।

यह पुस्तक नवयुग की भावनाओं से पूर्ण है। इसमें मानव गौरव भर पूर है :—

'है सुरत्व की इच्छा, असफल मानवता का लक्षण'

और देखिए :—

होंगे तो होंगे देव अतुल धन-बल सागर,
पर मानव अपनी दुर्बलता में भी सुन्दर।

जीवन के सङ्घर्ष में ही कवि मुक्ति चाहता है :—

इन काँटों में ही कली खिलेगी, देखो तो।
भव-बन्धन में ही मुक्ति मिलेगी, देखो तो॥

ये पंक्तियाँ हमको कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की अमर पंक्ति 'तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन' की जो गीता के निष्काम कर्म और कवीन्द्र रवीन्द्र की 'असंख्य बन्धन माझे लभिब मुक्तिस्वाद' से प्रभावित है, याद दिलाती है।

इन कविताओं में सौन्दर्य और प्रणय के गीत भी हैं। और प्रकृति के मनोरम चित्र भी हैं जो छायावाद से प्रभावित हैं। तरुणजी की स्मृति में मूर्त से अमूर्त की और अमूर्त से मूर्त की उपमाओं की सुन्दर छटा है। सरला आज कल की चपल बालिका का एक चित्रोपम अङ्कन है। पन्तजी की भी एक ऐसी ही पंक्ति है—सरला न ही था उसका मन। पुस्तक में पंतजी का प्रभाव अवश्य है किन्तु अन्धानुकरण नहीं है। इसमें प्रगतिवाद की गतिशीलता है। ग्रामीणों और विपन्नों के करुण चित्र हैं किन्तु कटुता नहीं। इसमें गतिशीलता के साथ छायावादी कोमलता है और आत्मसमर्पण भी है। इसके आरम्भ से अन्त तक विश्रामदायिनी धवल चाँदनी कोमलतम रुपहला अञ्चल वाली 'स्नेहमयी रजनी हिमांचला' की जिसके नाम पर पुस्तक का नामकरण हुआ है, शीतल छाया है।

पगध्वनि—लेखिका—कुमारी शान्ति एम० ए०, प्रका०—अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ। पृष्ठ ५१, मूल्य २)

कुमारी शान्ति के इस संग्रह के गीतों में एक प्रतिरोध जन्य करुण है पर सन्तोष के साथ, उसमें एक क्षीण वैराग्य और निराशा की रेखा है जो उनके 'जन्म दिन आया ही व्यर्थ,' 'गीत लिखना अब उपहास है' आदि कविताओं में व्यक्त होता है, यह ठीक है 'कहाँ है व्यथित हृदय की पीर, कहाँ शब्दों का हास विलास !' फिर भी हमारे पास शब्दों के सिवाय और कोई स्थायी और सार्वजनिक माध्यम नहीं। उनसे बहुतों को सान्त्वना मिलती है। लेखिका ने ही स्वयं बहुत सी बातें कही हैं जो व्यर्थ नहीं हैं। कवियित्री ने बुरी चीज को भी अच्छा कहा है यदि उसकी दिशा ठीक हो।

यदि कर्म निज निभते चले

× × ×

फल के लिये फिर भाग्य पर, सन्तोष बहुत बुरा नहीं।

× × ×

जो क्रान्ति करदे विश्व में वह रोष बहुत बुरा नहीं।

× × ×

सच पर पतिंगे सा जले, मद होश बहुत बुरा नहीं
यह दोष बहुत बुरा नहीं

कवियित्री को निराशों का सामना करने का अभ्यास हो गया है अब वे उसको विचलित नहीं करते। निराशा में भी आशा की झलक आ जाती हैं देखिए :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्य ही मिलते हैं अंगार नित्य ही मिलता पारावार।
शोक भी हो तो कितनी बार

× × ×

दृष्टि में मेरा लक्ष्य, रोग भी हो तो कितनी बार

ऐसी ही कुछ स्वर्ण रेखाएँ नैराश्य के बादलों का आशामय बना देती है।

दूबके आँसू—लेखक-श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', प्रकाशक-सुशीला कमलेश गोकुलपुरा, आगरा। मूल्य २)

वैसे तो कमलेशजी प्रगतिशील कवि हैं किन्तु इस पुस्तक में उनके प्रेम के गीतों का संग्रह है किन्तु इन प्रेम के गीतों में भी उनकी प्रगति-शीलता स्पष्ट है। इन गीतों की मूल झंकार यह है कि कवि को सौन्दर्य का स्वाभाविक आकर्षण रहा है किन्तु अब वह उसके ऊपर उठ गया है और कर्तव्य पथ में आरूढ़ है। सुनिये :—

मुझे प्यार के बन्धनों में न बाँधो
गगन में लगा गूँजने गीत मेरा
लुभाते रहे जो मुझे रंग फीके
सजनि वह गया अब समय बीत मेरा
असीमित जलधि की पिपासा लिये है
समीमित सलिल के कणों में न बाँधो।

इन पंक्तियों में अवचेतन गत अहंभाव की ध्वनि अवश्य है किन्तु वह आदर्श से प्रेरित है, इस कारण वह कवि की आत्मोन्नति में सहायक हो सकती है। कवि यद्यपि प्रेम के बन्धनों से ऊँचा उठ गया है तथापि उसकी कसक बाकी है। प्रेम जीता वेदना का भार लेकर, कवि यहाँ, बैठा व्यथा का भार लेकर।

इन कविताओं में कहीं-कहीं निराशा की झलक अवश्य है किन्तु कवि निराशा पर रुकने वाला नहीं उसमें एक दृढ़ संकल्प और आगे बढ़ने की अदम्य अभिलाषा है :—

क्या चिन्ता यदि विपदा घेरे
तेरा लक्ष्य सामने तेरे
प्राण दीप जूझे झंझा से फिर भी मन्द प्रकाश न हो
मेरे मीत उदास न हो

इन गीतों की भाषा और भाव दोनों में ही गति और प्रगति है। प्रेम के गीत होते हुए भी ये गीत साधारण प्रेम के पथ से जिसमें रोना या कराहना रहता है भिन्न है, वे कवि और पाठक को ऊँचा उठाकर आशा का सञ्चार करते हैं :—

मैं अमरता के नये नभ का विहग बन
दिव्यता से भव्य नाता जोड़ता हूँ
लो सुरा के सुखद प्याले तोड़ता हूँ।

—गुलाबराय

गाँधी गौरव—लेखक-पं० गोकुलचन्द्रजी शर्मा, प्रकाशक-नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर। पृ० ११२, मू० १)

यह काव्य ग्रन्थ शर्माजी की महत्वपूर्ण रचना है। काव्य की दृष्टि से भी इसका महत्व है और विचार की दृष्टि से भी। काव्य की दृष्टि से इसमें १२ सर्ग हैं, सभी सर्गों में एक ही छन्द व्यवहृत है। प्रवाह और प्रसाद दोनों से युक्त है। विचारों की दृष्टि से इसमें गाँधीजी का चरित्र-वर्णन है जो स्वयं ही आदर्श है। ऐसी पुस्तकें स्कूलों में पाठ्य ग्रंथ बनाई जायँ तो हमारे युवकों का चरित्र कुछ ऊँचा उठे।

कहानी

अष्ट दल—सम्पादक-पि० आर० श्रीनिवास शास्त्री, प्रकाशक-मैसूर हिन्दी प्रचार परिषत्, बँगलोर ४। पृष्ठ १०६, मूल्य १)

इसमें हिन्दी के प्रसिद्ध आठ कहानी लेखकों की आठ कहानियाँ संग्रहीत हैं। सङ्कलन अच्छा है। अन्त में कठिन शब्दों के शब्दार्थ भी दिए गए हैं।

शैतान—लेखक-खलीलजिब्रान, अनु०-श्री नरेन्द्र चौधरी, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग। पृ० ८८, मूल्य १)

सीरिया के प्रसिद्ध कवि, लेखक और चित्रकार खलील जिब्रान विश्व के महान लेखकों में से हैं। इनकी पुस्तकों का अनुवाद लग-भग ३० भाषाओं में हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक में आपकी आठ भाव कथाओं का संग्रह है। सभी विचारोत्तेजक और मर्मस्पर्शी हैं।

जीवनी

हमारे आराध्य—लेखक-पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रकाशक-ज्ञानपीठ काशी। पृ० २६०, मूल्य ३)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक में उन सोलह विदेशी विभूतियों का श्रद्धा और विवेचनापूर्ण विवरण दिया गया है जिनसे चतुर्वेदीजी प्रभावित हुए हैं। जहाँ तक ज्ञान का सम्बन्ध है लेखक के लिए देशी और विदेशी का प्रश्न नहीं है, वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मानने वाले हैं। भूमिका में उन्होंने स्वयं ही इस शङ्का का निराकरण कर दिया है कि उनकी पुस्तक में सब विदेशी विभूतियाँ ही हैं।

चतुर्वेदीजी सिद्धान्तः अराजकतावादी हैं पर व्यवहार में वे बड़े कोमल हृदय अहिंसावादी हैं। अपनी सैद्धान्तिक रुचि के अनुकूल ही उन्होंने महाप्राण माइकिल, बाकूनिन, प्रिन्स क्रोपाटकिन, अराजकतावादी मैलटेस्टा प्रभृत महापुरुषों को प्राथमिकता दी है। लेखक की सहानुभूति अराजकतावादियों में ही सीमित नहीं है वरन् उन्होंने जहाँ भी स्वतन्त्र-भावना, समाज सेवा और आत्म त्याग के सद्गुण देखे हैं उनके आश्रयों का प्रेमपूर्वक स्वागत किया है। किसी जाति विशेष से उनको द्वेष नहीं है:—बाकूनिन, क्रोपाटकिन आदि रूसी हैं, इमरसन और थोरो अमेरिका निवासी हैं, रोमांरोला फ्रांसीसी हैं और कागावा जापानी।

प्रिन्स क्रोपाटकिन, महाप्राण बाकूनिन, माइकिन आदि अराजकतावादी भी इसीलिए अराजकतावादी हैं कि उन्होंने व्यक्ति को चरम महत्व दिया है। चतुर्वेदीजी ने इन लोगों के सिद्धान्तों की सराहना की है। किन्तु व्यक्तित्व का महत्व देने की कोई सीमाएँ निर्धारित नहीं की हैं।

कागावा का त्यागमय व्यक्तित्व किसी देश के लिए गर्व की वस्तु हो सकता है। उसकी पुस्तकों से पर्याप्त आय थी किन्तु वह अपने ऊपर सौ रुपया मासिक व्यय करता था। सम्पन्न होते हुए भी उसने गन्दी नालियों में रहना न छोड़ा जिससे कि उनका सुधार करा सके।

लेविन्सन स्क्रॉट जैसे सम्पादकों की हमारे देश को बहुत आवश्यकता है जो सम्पादन कला का नैतिक मानदण्ड ऊँचा करा सके। चतुर्वेदीजी ने अपनी शैली के आकर्षण से पुस्तक को सुपाठ्य बना दिया है। उनके आरम्भ करने के ढङ्ग अनूठे हैं। आशा है चतुर्वेदीजी के अन्य आराध्यों की भी शीघ्र ही प्रकाशन होगा।

—गुलाबराय

राजनीति

भारतवर्ष के स्वातन्त्र्य-संग्राम का इतिहास—लेखक—श्री सुखसम्पतिराय भण्डारी, प्रकाशक—डिक्सनेरी पब्लिशिङ्ग हाऊस, ब्रह्मपुरी अजमेर। पृष्ठ ६११, मूल्य ८॥)

नाम के अनुकूल प्रस्तुत पुस्तक में भारत की स्वतन्त्रता के लिए किए गए विभिन्न समयों और विभिन्न व्यक्तियों के आन्दोलनों और संग्रामों का ऐतिहासिक ढङ्ग से विश्लेषण और विवेचन है। प्राचीन भारत की सभ्यता की चर्चा करते हुए विद्वान लेखक ने मौर्य काल के भारत का वर्णन किया है और फिर अँग्रेजों के समय कैसे क्या हुआ इसकी विस्तार से चर्चा की है। सन सत्तावन के गदर और उससे पूर्व का वर्णन पुस्तक में है और उसके बाद भारत में सम्पूर्ण गणतन्त्र की स्थापना तक का विशद वर्णन है। इस बीच में जितने भी आन्दोलन हुए हैं सभी का थोड़ा बहुत परिचय पुस्तक में मिल जाता है। अपने ढङ्ग की यह पुस्तक पहली है। इसे इतिहास तो नहीं इतिहास की रूप रेखा हम अवश्य कह सकते हैं। भावी इतिहास लेखकों के लिए यह पुस्तक लाभदायक प्रतीत होगी।

पिता के पत्र—लेखक—श्री देवकीनन्दन विभव, प्रकाशक—साहित्य निकेतन, गाँधी रोड, आगरा। पृष्ठ १३१, मूल्य २)

विभवजी आगरे के प्रसिद्ध राजनैतिक नेता हैं और पुराने साहित्यिक भी। १६४२-४४ के जेल जीवन में आपने कुछ पत्र अपने पुत्र को लिखे थे जो अब सभी नवयुवकों के हितार्थ प्रकाशित कर दिये हैं। पत्र १८ हैं। इनमें आपने युवकोपयोगी विषयों पर सुन्दर ग्राह्य विचारों का निरूपण करके एक उपयोगी पुस्तक तैयार कर दी है। हम इस पुस्तक का हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि स्कूल कालेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थी इससे लाभ उठावेंगे।

काश्मीर देश व संस्कृति—ले०—श्री शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशक—राज कमल प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ २०७, मूल्य ५)

काश्मीर आज भारत के ही लिए नहीं विश्व के लिए एक समस्या बना हुआ है। ऐसे अक्सर पर काश्मीर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास, सांस्कृतिक भूगोल, जातियाँ, भाषाएँ, साहित्य, स्थापत्य आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की प्रत्येक व्यक्ति को उत्सुकता हो सकती है। चौहान जी ने उक्त समस्त विषयों पर संक्षिप्त, प्रामाणिक तथा रोचक विवरण इस पुस्तक में दिया है। चौहान जी कुछ काल तक काश्मीर में रहे हैं। इसी कारण उन्होंने जहाँ अधिकांश सामग्री अन्य विद्वानों की कृतियों से ली है वहाँ उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से उसे व्यवस्थित किया है और अपनी स्पष्ट दृष्टि से प्रत्येक वस्तु के मर्म को यथार्थ रूप से रखने की चेष्टा की है। निश्चय ही उन्होंने समाजवादी दृष्टिकोण से तथ्यों का सङ्कलन किया है और समाधान भी उसी दृष्टि से किया गया है, फिर भी यह सब इतना बुद्धि सङ्गत और संयत है कि न तो पाठक को उसमें कोई दुराग्रह प्रतीत होता है और न वस्तु के ज्ञान से कोई बाधा पड़ती है। हिन्दी में इस प्रकार की कदाचित यह पहली ही पुस्तक है जिसमें किसी देश अथवा किसी क्षेत्र को लेकर इतने अधिकार पूर्वक रोचक पुस्तक लिखी गयी हो। राज कमल के द्वारा इसका प्रकाशन भी अत्यन्त सुन्दर और मोहक हुआ है। इसमें बस केवल एक कमी बहुत खटकती है वह है चित्रों तथा रेखा चित्रों का अभाव, ऐसी पुस्तक में चित्र अवश्य होने चाहिए थे। क्योंकि शब्द चित्रों के लिए वस्तु चित्रों का प्रमाण यथार्थ को और भी स्पष्ट कर देता है। पाठक का चित्रों से ज्ञानवर्द्धन ही नहीं मनोरञ्जन भी होता है।

—सत्येन्द्र

प्राप्ति-स्वीकार

सचित्र अक्षर ज्ञान—सं०-श्रीराम लालपुरी, प्रकाशक-आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। बड़ा आकार मूल्य १॥) बच्चों को साक्षर बनाने की नई और सुन्दर तथा आकर्षक पोथी।

पंचतंत्र की कहानियाँ भाग १—प्रकाशक-राज कमल प्रकाशन, दिल्ली। मूल्य १) प्रसिद्ध संस्कृत पुस्तक का हिन्दी में बढ़िया संस्करण।

बापू के आदेश—लेखिका-श्रीमती कमला कर्मा, प्रकाशक-श्यामदत्त मिश्र, ११ तूतावाड़ी, गया। पृष्ठ ८७, मूल्य ॥) सात-आठ विषयों पर महात्मा गान्धी के विचारों की चर्चा करने वाली पुस्तक।

महात्मा गान्धी—लेखक आचार्य कृपलानी, प्रकाशक-सर्वोदय साहित्य-संघ, काशी। पृष्ठ ८०, मूल्य ॥≈) गांधीजी के जीवन पर विचार-पूर्ण राजनीतिक अध्ययन।

गान्धीजी के प्रमुख अनुयायी—लेखक-श्री सत्यनारायण प्रकाशक-सर्वोदय साहित्य-संघ, काशी। पृष्ठ ६२, मूल्य ॥)

धीरेन्द्र मजूमदार, विनोबाभावे, मश्रूवाला, काका कालेलकर आदि गांधीजी के १० साथियों का जीवन परिचय।

कमला नेहरू—लेखक श्री परमेश्वर द्विरेफ, प्रकाशक-युगान्तर प्रकाशन मन्दिर लि०, जयपुर। पृष्ठ ४३, मूल्य ॥।)

श्रीमती कमला के जीवन का काव्यमय परिचय।

सम्राट रघु—लेखक-श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, प्रकाशक-विजय पुस्तक भण्डार, दिल्ली। पृष्ठ ८०, मू० १।)

महाकवि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के प्रथम-सात सर्गों का भाषानुवाद।

साहित्य प्रारम्भिका—लेखक-श्री अझारिया, अनुवादक श्रीमती शकुन्तला कुमारी रेणु। प्रकाशक-नवरत्न-सरस्वती भवन झालरा पाटन। पृष्ठ १२०, मूल्य १॥)

इस पुस्तक में गुजराती साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया है। मूल पुस्तक गुजराती में है। प्रस्तुत पुस्तक उसका अनुवाद है। इस पुस्तक से ज्ञात होता है कि गुजराती साहित्य की प्रगति किस प्रकार हुई है और अब उसकी क्या दशा है। हिन्दी के विद्यार्थियों को यह पुस्तक बड़ी उपयोगी होगी।

प्राचीन काव्य दिग्दर्शन—सम्पादिका-प्रो० शकुन्तला अग्रवाल, प्रकाशक-शक्ति प्रकाशन लुधियाना। पृष्ठ १२०, मूल्य १॥)

लुधियाना से निकलने वाले 'नया साहित्य' नामक पत्र का यह विशेषाङ्क पुस्तकाकार निकला है। इसमें विद्यापति, जायसी, कबीर आदि आठ प्राचीन कवियों का परिचय दिया गया है। परीक्षार्थियों को दृष्टि में रखकर इसका प्रकाशन हुआ है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि रवीन्द्रनाथ—लेखक-श्री विश्वनाथ अय्यर म० ए०, प्रकाशक-श्री रामविलास प्रेस, कोइलोण ट्रावनकोर)। पृष्ठ ५६, मूल्य ॥।) —एक अहिन्दी भाषी न्दी अध्यापक की लिखी सुन्दर जीवन गाथा।

युग-सन्देश—एक किसान की कलम से। प्रकाशक-वर ब्रह्मदेवसिंह परिहार, बरहटा, मऊगंज, रीवाँ। पृष्ठ १६ ल्य ।) —राजनैतिक समस्याएँ, प्रजातन्त्र, आधिनायक त्र, फासिस्तवाद—आज की समस्याओं पर पद्यमय विचार।

मङ्गल-प्रभात—सम्पादक-श्री कामताप्रसाद जैन, । महावीर प्रकाशन, अलीगञ्ज (एटा)। पृष्ठ ६४, खक के सुपुत्र के विवाहोत्सव पर वितरित। मूल्यवान त्रों से युक्त।

जैन मन्दिर और हरिजन—लेखक-श्री महेन्द्र सार जैन, प्रकाशक-भारत वर्षीय दि० जैन परिषद्, दिल्ली। ० १६, बिना मूल्य —हरिजनों के मन्दिर प्रवेश पर हियुक्त पुस्तिका।

जैन धर्म और वर्ण-व्यवस्था—लेखक-पं० फूल-न्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री, प्रकाशक-भा० दि० जैन परिषद, दिल्ली। पृष्ठ १६, बिना मूल्य —चारों वर्णों और उनके कार्यों का उल्लेख।

नाम साधन—लेखक-श्री गुरुचरणाश्रित, प्रकाशक-बोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स लिमिटेड बम्बई २। पृष्ठ ४८, मूल्य ।≈) अध्यात्म विषय की छोटी सी पुस्तिका।

अणुव्रती सङ्घ और अणुव्रत—प्रकाशक-अणु-व्रती समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता। सङ्घ का विधान और उसके नियम।

भूदान यज्ञ—लेखक-आचार्य विनोबा भावे, प्रकाशक-सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ ३२, मूल्य ।) भूदान यज्ञ के सम्बन्ध में विनोबा जी के विचार।

कला—लेखक-श्री बद्रीश पोखरिपाल, प्रकाशक-नव साहित्य-मण्डल, सञ्जी मण्डी, दिल्ली। पृष्ठ २८, मूल्य ॥) लेखक का एक सुन्दर भाव नाट्य।

भारत के पुरुषोत्तम—लेखक-श्री भैरूलाल व्यास, प्रकाशक-हिन्दी साहित्य समिति बेलगाँव। —गाँधीजी, राजाजी, नेहरूजी आदि तेरह महापुरुषों का संक्षिप्त जीवन-वृतान्त।

हिन्दी के प्रचार में सहयोग देने वाले हमारे प्रेमी सहायक

१—प्रो० श्री रामप्रकाशजी एम० ए० ३०१, बाउन्ड्री रोड मेरठ।
२—श्री बिहारीसिंहजी, श्रीरामजानकी विद्यालय डा० वेन, पटना।
३—श्री मोहनलालजी चेजारा, रामजस कालेज दिल्ली।
४—श्री शिवप्रसाद लोहानी, नूरसराय, पटना।
५—श्री आनन्द स्वरूप कौशिक, कौशिक पुस्तक भण्डार, खुर्जा।

जो सज्जन हिन्दी के प्रचार की दृष्टि से साहित्य-सन्देश के कम से कम चार पाँच ग्राहक बनायेंगे उनके हम आभारी होंगे तथा उनके शुभ नाम साहित्य-सन्देश में प्रकाशित किये जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

यहां है

हमने साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को हर महीने पौने मूल्य में पुस्तकें देने की योजना पिछले दिसम्बर मास से निकाली थी और अब तक हमारे ग्राहक उससे लाभ उठाते रहे।

अब डाकखाने के नये कानूनों के अनुसार हम जवाबी कार्ड को साहित्य-सन्देश के अङ्क में नहीं रख सकते। अतः हम उस कार्ड को इसी पृष्ठ पर नीचे छाप रहे हैं, आप लाइन पर से काट कर उसे हमारे पास भेजदें। इस पर आपको टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं।

साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा।

(यहाँ से काटिये)

(यहाँ से काटिये)

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

नाम .....

पता .....

ग्राहक सं .....

१—साहित्य रत्न पथ प्रदर्शिका प्रथम खण्ड— परीक्षा सम्बन्धी ६)

२—साहित्य रत्न पथ प्रदर्शिका द्वितीय-खण्ड— ,, ६)

३—मध्यमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-२००२ से २००७ तक २॥)

४—नूरजहाँ की टीका—रामखेलावन चौधरी ,, २)

५—गोदान एक अध्ययन—प्रेमनरायण टण्डन ,, १॥)

६—स्कन्दगुप्त एक अध्ययन— ,, १॥)

७—सेवासदन एक अध्ययन— ,, १॥)

८—अजातशत्रु एक अध्ययन— ,, १॥)

९—वत्सराज एक अध्ययन— ,, ॥)

१०—तत्कालिक चिकित्सा—लालबहादुर लाल १॥)

११—साहित्य सुषमा—लक्ष्मीधर वाजपेई—निबन्ध ७)

१२—रासपंचाध्यायी—उदयनारायण तिवारी—आलोचना २)

१३—तुलसी गीतावली—गुलाबराय ,, १)

१४—प्रेमचन्द कृतियाँ और कला—प्रेमनारायण टंडन ,, २)

१५—कुणालायन प्रथम खंड—द्वारिकाप्रसाद मिश्र कविता २)

१६—दूब के आँसू—पद्मसिंह शर्मा कमलेश ,, २)

१७—पीयूष कण— बाजपेई ,, २॥)

१८—कालिज की कहानियाँ—अजान— कहानी २॥)

१९—पुष्पहार—बी० पी० खन्ना विमल ,, २॥)

नोट :—जो पुस्तक आप न लेना चाहें उसे काट दें।

नियम पीछे देखें—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sahitya Sandesh, Agra.
AUGUST. 1952.

REGD. No. A. 263.
License No. 16.
Licensed to post without prepayment.

साहित्य सन्देश आगरा की

सन् १९५१-५२ की फाइल

तैयार है

साहित्य सन्देश के गत वर्ष की पूरी फाइल आलोचना विशेषांक सहित सजिल्द तैयार हैं, फाइलों के शीघ्र समाप्त होने की आशा है। मूल्य ५) पोस्टेज ।।।=)

फाइल की सूची मुफ्त मँगायें

साहित्य सन्देश कार्यालय,
४, गांधी रोड, आगरा।

Postage will be Paid by addressee

BUSINESS REPLY CARD

AGRA G. P. O.
Permit No 1136

No Postage Stamp necessary if Posted in India

Book Post

To.

श्री सञ्चालक,
साहित्य-सन्देश,
साहित्य-रत्न-भण्डार,
४, गांधी मार्ग,
आगरा।

२—पीने मूल्य में कृपया पीछे छपी पुस्तकें बी० पी० से भेज दें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि बी० पी० अवश्य छुड़ा लूँगा। अन्तिम ता० ३१—८—५२, तक

२—एक रु० से कम की बी० पी० नहीं भेजी जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १४] आगरा—सितम्बर १९५२ [अङ्क ३

सम्पादक

गुलाबराय एम० ए०

सत्येन्द्र एम. ए., पी-एच. डी.

महेन्द्र

*

प्रकाशक

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक

साहित्य प्रेस, आगरा।

*

वार्षिक मूल्य ४), एक अङ्क का ।=)

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचार धारा — सम्पादक

२—कवि और काव्य-प्रेरणा — प्रो० नागरमल सहल एम० ए०

३—सूरदासजी के दृष्टिकूट — श्री मोहनशरण मिश्र

४—हिन्दी का नाटक साहित्य—संक्षिप्त रूपरेखा — डा० सुधीन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

५—आलोचना का आदर्श — प्रो० आनन्द नरायण शर्मा एम० ए०

६—साहित्य देवता — श्री रामवरणसिंह 'सारथी'

७—तुलसीदास और शेक्सपीयर — प्रो० दामोदर का एम० ए०

८—साहित्य परिचय

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य सन्देश प्रत्येक माह के द्वितीय सप्ताह में निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजना चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ॥) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : अगस्त, १९५२

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं।

आलोचना

हिन्दी संत काव्य संग्रह—परशुराम चतुर्वेदी ५)
हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह—
गणेशप्रसाद द्विवेदी ६)
मध्यकालीन प्रेम साधना—परशुराम चतुर्वेदी ३)
भाषा विज्ञान—भारत भूषण सरोज २॥)
साहित्य परीक्षण—सं० सत्यदेव चतुर्वेदी ३॥।)
तुलसीदास और उनका युग—
डा० राजपति दीक्षित ७)

कविता

युद्ध—मैथिलीशरण गुप्त ।॥)
जय भारत— ,, ,, १०)
नन्ददास ग्रन्थावली—ब्रजरत्नदास बी० ए० ५)

कहानी

कारावास—श्री यश १॥)

उपन्यास

चेतन—उपेन्द्रनाथ अश्क ६॥।)

नाटक

रजत रश्मि—डा० रामकुमार वर्मा २॥)

अर्थ शास्त्र

भारतीय अर्थ-शास्त्र का विवेचन—
ओ३म्प्रकाश केला १०)

नागरिक शास्त्र

नागरिक और नागरिकता—शुभदा तेलंग ४॥)

भ्रमण

पैरों में पंख बाँध कर—रामवृक्ष बेनीपुरी ४॥)

बाल साहित्य

मनुष्य कैसे पैदा हुआ—अरुण एम० ए० १॥)
चिड़ियाघर की सैर—पृथ्वीनाथ शर्मा १॥)

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान—साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न हो सकी

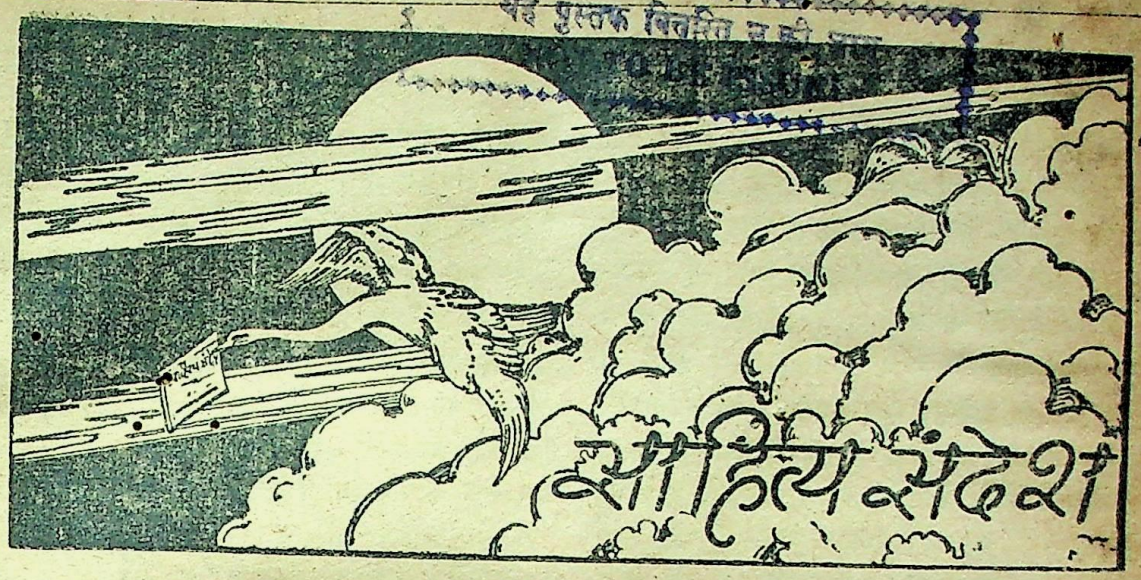

वर्ष १४] आगरा—सितम्बर १९५२ [अङ्क ३

हमारी विचार-धारा

मातृ भाषाओं का प्रश्न—

मातृ-भाषाओं के प्रश्न पर लगभग ८-१० वर्ष पूर्व बहुत विचार विमर्श पत्रों में हुआ था। उस समय पं० बनारसीदास चतुर्वेदीजी के कारण यह प्रश्न प्रान्त-निर्माण और जनपदीय आन्दोलन के साथ जुड़ गया था। पर्याप्त चर्चा के बाद समस्त हिन्दी प्रदेश ने एक प्रकार से उस त्रिगुर्टीय संयोजना को अवांछनीय एवं त्याज्य घोषित कर दिया था। इन तीनों के तीन महारथी पोषक और प्रवर्त्तक थे। मातृ-भाषाओं के प्रश्न का पोषण महा-पंडित राहुलजी ने किया था और हिन्दी-भाषी तीन प्रान्तों को भाषावार ३० प्रदेशों अथवा जनपदों में विभाजित करने की भी उन्होंने माँग की थी। प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन से चतुर्वेदीजी का ही सीधा सम्बन्ध था। वे बुन्देलखण्ड के राजकीय नमक का ऋण चुकाना चाहते थे। जनपदीय आन्दोलन का सेहरा डा० वासुदेवशरण अग्रवाल को पहनाया गया। इस आन्दोलन का उद्देश जन-पदों के सांस्कृतिक, अध्ययन को प्रोत्साहन देना, और उसके निमित्त जनपदीय मण्डलों की स्थापना करना था।

आठ-दस वर्ष बाद आज फिर किंचित हेर फेर से ये पुराने प्रश्न नये रूप में हिन्दी जगत के सामने लाये जा रहे हैं।

इस बार हाथरस सम्मेलन के अवसर पर अन्तर्जनपदीय परिषद की स्थापना हो चुकी है। यह परिषद डा० नरेन्द्रदेवजी के सभापतित्व में अपना कार्य आरम्भ कर चुकी है। इस समय यह शुद्ध जनपदीय अध्ययन की ओर ही प्रवृत्त है, यद्यपि श्री चतुर्वेदीजी ने इस विषय की पत्रों में चर्चा करते हुए फिर वे ही कुछ पुराने स्वर छेड़े थे। हमें आशा है कि परिषद के कर्णधार यथार्थ की दृष्टि से ओझल न होने देंगे, और इस विद्वत्परिषद को राजनीति का दास नहीं बनने देंगे।

उधर राहुलजी ने भी फिर मातृ-भाषा के प्रश्न की चर्चा छेड़ दी है। 'नया समाज' के एक लेख में उन्होंने लिखा है भाषानुसार प्रदेश यह कोई अनुचित मांग नहीं है।" उन्होंने फिर अपनी धारणा को मातृभाषाओं के आधार पर हिन्दी-क्षेत्र को बांटने का आग्रह किया है। उनका यह आग्रह इसलिए विशेष है कि इससे शिक्षा के प्रसार में सुविधा होगी, अंग्रेजी सरलता से हटाई जा सकेगी है, उर्दू-हिन्दी का संघर्ष भी [illegible] सकता है।

NOT TO BE ISSUED

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः ये सब तर्क हैं, शिक्षा-प्रसार का सबसे बड़ा प्रश्न आज भी केवल देव-नागरी वर्णमाला ही सिखाना है, साक्षरता की दृष्टि से 'हिन्दी-साहित्य' का उच्च-अध्ययन सम्भवतः कहीं भी नहीं कराया जाता। राहुलजी खड़ी-बोली को ढाई जिले की भाषा मानते रहे हैं, खड़ी-बोली की वर्णमाला सीख लेने के उपरान्त इस ढाई जिले में भी शिक्षा-प्रसार में विशेष सुविधा नहीं हुई। अँग्रेजी और उर्दू के प्रश्न से तो मातृ-भाषाओं का किंचित भी सम्बन्ध नहीं बैठता। अँग्रेजी और उर्दू का प्रश्न जहाँ खड़ा होता है, वहाँ मातृ-भाषाएँ बहुत पीछे पड़ी रह जाती हैं, और पड़ी रह जायँगी। ब्रज और अवधी का समस्त साहित्य अभी तक निर्विवाद रूप से 'हिन्दी' का साहित्य ही माना जाता है। उसी प्रकार अन्य-भाषाओं के लिए भी मार्ग खुला है। खड़ी बोली ने उसमें कभी कोई बाधा नहीं दी। इस दृष्टि से ही प्रत्येक हिन्दी-भाषा भाषी जन को अपनी बोली और हिन्दी भाषा को देखना चाहिए।

कागज का ऐतिहासिक मान—

सन् १९४६ में ब्रज-साहित्य-मण्डल ने एक छोटी पुस्तिका 'ग्रन्थ शोधन विधि' प्रकाशित की थी। हस्तलिखित ग्रन्थ के नोट्स लेने और उनके सम्बन्ध में अन्य आवश्यक सूचनाएँ देने की विधियाँ इसमें बतायी गयी थीं। तभी यह प्रश्न खड़ा हुआ था कि हस्तलिखित ग्रन्थ के समय निर्णय करने में अन्तर तथा बाह्य-साक्ष्यों में एक महत्वपूर्ण साक्ष्य स्वयं वह कागज भी है जिस पर वह पुस्तक लिखी गयी है। किन्तु यह साक्ष्य तभी महत्वपूर्ण और निर्भर करने योग्य हो सकती है जब इस सम्बन्ध में भली प्रकार विधिवत् वैज्ञानिक शोध के उपरान्त कागजों के समस्त प्रकारों और उनका काल क्रम के अनुसार विवेचन किया जा चुका हो, और निश्चय-पूर्वक यह कहा जा सके कि इस प्रकार का कागज इस काल का ही हो सकता है। सन् ४६ में ही डा० वासुदेवशरण अग्रवाल को इस विषय पर पूछ-ताछ के लिए पत्र लिखा गया था। इस बार नेशनल आरकाईव्स (National orchives) नई दिल्ली में, वहाँ के कुशल अधिकारियों से हमने स्वयं इस विषय की चर्चा की। नेशनल आरकाईव्स राष्ट्रीय संग्राहलय प्राचीन से प्राचीन और नवीन सरकारी कागज-पत्रों का संग्रहालय है। इसमें कागज के सम्बन्ध में ऐसी ऐतिहासिक और वैज्ञानिक सामग्री होनी चाहिए। हमें विदित हुआ कि विदेशों में इस विषय पर अच्छी सामग्री है। अपने यहाँ इस विषय की वैज्ञानिक शोध नेशनल आरकाईव्स के कुशल-विभाग द्वारा करायी जानी चाहिए। कुछ कार्य इस दिशा में यहाँ हुआ भी था पर वह रुक गया, और अब इधर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा। कागजों के विषय में इस वैज्ञानिक सामग्री के अभाव में ग्रन्थों की ऐतिहासिक शोध का विषय अधूरा ही रह जाता है। यह वैज्ञानिक सामग्री हिन्दी के लिए ही नहीं समस्त देश के लिए लाभप्रद होगी। राष्ट्रीय संग्रहालय के अधिकारी तथा सरकार को इस दिशा में प्रयत्नशील होना चाहिए।

हिन्दी की ग्राह्यता—

पटना कालेज के एक विद्यार्थी से हमें एक पत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें से कुछ उद्धरण ये हैं :—

"हिन्दी हमारी राज्य भाषा हो चुकी है किन्तु यह जन-भाषा का स्थान अभी तक नहीं ले सकी है—अभी भी लोग इसे बिहार, यू० पी० और सी० पी० की 'मनोबोली' समझते हैं। इसका क्या कारण है? यों तो यह सदा का नियम रहा है कि साहित्यिक भाषा और जनता की भाषा में अन्तर रहता है—संस्कृत-अपभ्रंश और फिर खड़ी बोली का विकास इसका साक्षी है। फिर भी हिन्दी सिर्फ साहित्य की भाषा नहीं यह राष्ट्र की भाषा है लेकिन क्या कारण है कि लोग इसे अपनाने में हिचक रहे हैं? जिस हिन्दी के प्रति लोगों का इतना सम्मान था वह आज उनके दिल से हट क्यों रहा है? जिस हिन्दी को वे सबसे सुगम भाषा और देवनागरी को सुगम लिपि समझते थे उसे ही आज क्लिष्ट और असुविधा जनक क्यों मान रहे हैं? खासकर दक्खिन भारत के लोग इसके शत्रु क्यों हो रहे हैं? हिन्दी के विरुद्ध आज आन्दोलन क्यों छेड़ा जा रहा है? हिन्दी को स्वीकार करना "उत्तर" का आधिपत्य स्वीकार करना आज क्यों दक्खिन वाले कह रहे हैं? क्या आपने इस पर कभी ध्यान दिया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

× × ×

"क्या डा० रघुवीर के नये-नये शब्द अहिन्दी भाषियों को आकृष्ट कर सकेंगे ? क्या अहिन्दी भाषी आगामी बारह वर्षों में इसे अपना लेंगे ? क्या भविष्य में बिहार ऐसे हिन्दी क्षेत्र में भी लोगों को हिन्दी को उच्च स्थान दिलाने के लिए आन्दोलन करना पड़ेगा ?

मेरे विचार से आज हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यही है कि (सिर्फ कानून के बन्धन हो जाने से ही कोई किसी चीज को स्वीकार नहीं कर लेता है बल्कि उसके लिए उसे उसके योग्य होना आवश्यक है) हिन्दी को कानूनी नहीं हार्दिक समर्थन प्राप्त कैसे हो ?

मैं तो समझता हूँ कि हिन्दी अभी पूर्ण नहीं हुई है उसे इसके योग्य होना है। उसे द्रविड़, कन्नर, मलयालम् सभी के लिए द्वार खोलना है, सभी के शब्दों को पचाना है और उसे अपना बनाकर लोगों को सहयोग देना है। और जब तक साहित्य-महारथी इस ओर ध्यान नहीं देंगे, हिन्दी का कल्याण नहीं। आज मद्रास में आन्दोलन हुआ कल बङ्गाल में होगा, परसों आसाम में और फिर एक-एक कर सभी प्रान्तों में हो सकता है। सिर्फ सद्भावना-मण्डल ले जाने से ही भाषा की ग्राह्यता सिद्ध नहीं हो जाती उसके लिए हमें प्रयत्न करना है।

आज बहुत से व्यक्ति कुछ ऐसे ही विचार करते हैं। हिन्दी जन भाषा नहीं हो सकेगी, उसे राष्ट्र-भाषा के पद पर दृढ़ करने की आवश्यकता है। जन भाषा वह होती है जो सर्वसाधारण की अपनी भाषा होती है। हिन्दी अपने हिन्दी क्षेत्र में ही जन भाषा हो सकती है, दक्षिण में नहीं। यह सत्य है कि कानून ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा नहीं बना सकता। किसी भी भाषा को कानून का आसरा नहीं लेना चाहिए। हिन्दी को राष्ट्र भाषा की मान्यता इस कानून बनने से बहुत पूर्व देश ने प्रदान की थी, और देश की उसी पुकार को समझकर महात्मा गाँधीजी ने दक्षिण में हिन्दी प्रचार को जोर दिया था। हिन्दी में राष्ट्र भाषा की योग्यता है। कानून ने इसी स्थिति को मान्यता प्रदान की है। हिन्दी के विरोध के आज दो कारण हैं एक राजनीतिक। काँग्रेस विरोधी दलों के आदर्श, रूस के नाम से साम्यवाद के सिद्धान्तों के सहारे जनपदीय बोलियों को महत्व देने वाला आन्दोलन भी राजनीतिक ही है। ऐसे ही विचार के लोग हिन्दी के साम्राज्यवाद का उल्लेख करते हैं—'साम्राज्य वाद' की छाप लगते ही हिन्दी घृणा की वस्तु बन जायगी। दूसरा कारण अहंकार विषयक है—विविध प्रान्तों में अपनी भाषा के गौरव का ज्ञान उदय हुआ है, उन्हें भ्रम है कि राष्ट्र भाषा हिन्दी के कारण उनकी अपनी भाषा के गौरव की हानि होती है। वास्तव में ये दोनों भावनाएँ ही गलत हैं, जिस प्रकार 'राष्ट्रध्वज' राष्ट्रीय बल का प्रतीक है उसी प्रकार राष्ट्रभाषा को केवल इसी एक भाव से प्रत्येक जन को स्वीकार करना चाहिए। हिन्दी की शक्ति को बढ़ाना है, उसमें प्रत्येक व्यक्ति को मनतः सहयोग देना चाहिए। डा० रघुवीर के कोष को आदर्श भले ही न माना जाय पर एक कमी की पूर्ति का विशद यत्न तो उसे मानना ही होगा। जो उनके कार्य से सहमत नहीं हैं, उन्हें उससे कोई अच्छी वस्तु प्रस्तुत करने का उद्योग भी करना चाहिए।

इसी प्रकार यह भी ठीक है कि शिष्ट मण्डलों से काम नहीं चल सकता। साहित्य-कर्ता को आज राष्ट्र को, सम्पूर्ण राष्ट्र को ध्यान में रखकर कठिन परिश्रम के साथ रचना में संलग्न होना पड़ेगा।

हिन्दी में विग्रह—डा० ग्रियर्सन के पद-चिह्न—

डा० ग्रियर्सन ने अत्यन्त परिश्रम और योग्यता से भारतीय भाषाओं का सर्वे किया था। वे कितनी ही भाषाओं के पण्डित थे। उन्होंने 'सम भोजपुरी फोक सॉंग्स' नामक पुस्तक में ये शब्द लिखे—

"At present owing to the Govt. preference for the Exotic Hindi all works of any importance published in Bihar are Written in that language.....This is a great pity, for Hindi is only understood by the educated classes and even amongst

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

them, is a foreign tongue which they have to learn in addition to their native language." जिस करुणा की प्रेरणा डॉ० ग्रियर्सन को हुई थी, वही करुणा की प्रेरणा आज हिन्दी में विग्रह पैदा करने वाले अन्य विद्वानों को हो रही है। डा० ग्रियर्सन ने आगे लिखा है—"Nowhere is it a vernacular, and it is radically different from the language of Bihar." प्रश्न यह है कि वह भाषा जो हिन्दी कही जाती है किस प्रदेश की वर्नाक्युलर है। बिहार में तो वह कहीं की वर्नाक्युलर नहीं क्योंकि भोजपुरी का स्वरूप कुछ ऐसा है—

अच्छा काम नाहीं कै लूं ए के न इ
मारेलू करेजवा में बान
सगरे अजोध्या के राम ए दुलरुआ
तेके दिहलू हा बन-बास.

और उत्तर-प्रदेश जिसे हिन्दी का क्षेत्र कहा जाता है उसमें महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन हिन्दी को मेरठ आदि ढाई जिले की भाषा मानते हैं—तो इस ढाई जिले की बोली कुछ यों है—

"खइयो ज मेरे पिया सूल बबूल पै सोइयो
खड्डे के सातरे
अइयो ज मेरे पिया मूँड मुँडाइ के, हाथ कुतंग
सिर ढोबरा।"

और—

अपणी गोरी का मैं राव जी, "कओ तो बागों
गोरी बसि रये
बागों तो ना है ठौर जी, बाप राजा के माली
बस रये।" आदि

इस भाषा को भी हिन्दी से radically different पूर्णतः भिन्न माना जा सकता है। वास्तविक बात यह है कि जब भेद-बुद्धि पैदा हो जाय या पैदा करनी हो तो ऐसी ही युक्तियाँ दी जा सकती हैं। भारत की संस्कृति में विश्वास रखने वालों को यह सोचना है कि संस्कृत-नाटकों में संस्कृत के साथ जो विविध प्राकृतें और अपभ्रंश समाविष्ट रहतीं थीं वे क्या परस्पर इससे भी अधिक radically different भिन्न नहीं थीं, फिर क्यों वे एक साथ एक ही भाषा के रूप में प्रस्तुत की जा सकीं?

तुलसीदास की अवमानना—

'नव-भारत टाइम्स कलकत्ता' में—२६ जुलाई के अंक में तुलसी जयन्ती के अवसर पर सम्पादकीय पृष्ठ के एक लेख में ये पंक्तियाँ लिखी गयी हैं—

"उनका युग अन्धकार और निराशा से पूर्ण था। समाज में से व्यवस्था के सूत्र छिन्न-भिन्न हो चुके थे; जीवन का सभी ओर से पतन हो रहा था। एक ओर जहाँ ब्राह्मणवर्ग धर्म और ईश्वर के नाम पर वाह्याडम्बर, पूजा पद्धति द्वारा पुरोहित शोषण करता था, तो दूसरी ओर अनेक निस्सार पन्थों की स्थापना द्वारा जनता को भ्रम में डाला जा रहा था। सामन्ती और पुरोहिती शोषण से जनता आर्थिक कठिनाइयों का सामना तो कर ही रही थी, उस पर शैवों और ब्राह्मणों का द्वन्द्व उसे पीसे डाल रहा था। फलतः जनता का नैतिक स्तर गिर गया। उस युग के समाज के सम्मुख दो ही आदर्श थे, जिनके पास द्रव्य था उनका आदर्श था—

आलिंगन, चुम्बन, परिरम्भन, नख-क्षत चारु
परस्पर हांसी (सूर, और दुःखों से पीड़ित आम जनता का आदर्श था—

नारि मुई घर सम्पत्ति नासी, मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी॥

वस्तुतः भारतीय जीवन में यह महत् संक्राति का युग था। तुलसीदास इस संक्रान्ति की संस्कृति के भाव-पक्ष के निर्माता हैं।

इसी संक्रान्ति की प्रतिछबि हमें उनके जीवन में भी दिखायी देती है। वे कबीर की ही तरह अपनी माँ की पाप की सन्तान थे।

आयो कुल मगन बधावनों बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को॥

(शेष पृष्ठ १२८ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि और काव्य-प्रेरणा

प्रो० नागरमल सहल, एम० ए०

हिन्दू का वर्ण जैसे जन्मना माना जाता है, कर्मणा नहीं वैसे ही सुकवि का वर्ण जन्म से ही निखरता है, कर्म से नहीं या बहुत कम। Poets are born, not made अंग्रेजी की इसी आशय की यह उक्ति बहुत पुरानी है। जो कवि जन्म सिद्ध नहीं, वह असिद्ध ही रहेगा ऐसी अधिकांश देशों की बहुत पुरानी धारणा है। संस्कृत के एक कवीश्वर ने तो ठोक पीट कर बनने वाले कवियों को कपि की संज्ञा दी है। बिना काव्य-मेधा के केवल अभ्यास के सहारे चलने वाली कविता चिरस्थायिनी होती नहीं देखी गई। बहुत-सी कठिन चीजें श्रमपूर्वक सीखी जा सकती हैं, पर हृदय में काव्याङ्कुर बिना काव्य-विटप खड़ा ही नहीं हो पाता। बिना पानी और सम्हाल के जैसे अंकुर अनुर्वर रह जाता है उसी प्रकार बिना काव्याभ्यास के काव्याङ्कुर भी कुम्हलाने लग सकता है। बिना प्रयोग के खूब चमकीली वस्तु के भी जर लग जाता है इसी तरह जन्मना कवि भी अगर कवि-कर्म से विरक्त रहे तो काव्य का सुफल हमें नहीं मिलता।

जन्मना कवि आखिर कौन होता है और वह कैसे जाना जाय? हरिऔधजी ने बहुत वयस्क होने पर काव्य-रचना प्रारम्भ की थी; मैथिलीशरणजी गुप्त का भी क्रमिक विकास हुआ है। उन्हीं के शब्दों में—

'करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद,
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।'

गुप्तजी को कवि बनाने में आचार्य द्विवेदीजी का कितना हाथ है यह किसी से छिपा नहीं है, फिर भी पन्त और निराला को ही कवि माना जाय, हरिऔधजी और गुप्तजी को नहीं—ऐसी बात नहीं। वर्ड्सवर्थ की कविता मूल जोश का प्रवाह नहीं, वह तो शान्त वातावरण में याद किया हुआ भावानुप्रेषण है ('emotion recollected in tranquillity') पर कवि शैली को यह बात बड़ी अटपटी लगती है। उन्हें एक क्षण का विलम्ब भी सह्य नहीं। 'When composition begins, inspiration is already on the decline' स्याही-कलम की स्थिति पर आते आते प्रेरणा का बल क्षीण हो जाता है। कीट्स का भी यही कथन है कि कविता पेड़ की पत्तियों की तरह सहज रूप में अवतरित न हो तो उसका न आना ही श्रेयस्कर है' If poetry comes not as naturally as the leaves to a tree, it had better not come at all.' अंग्रेज कवि ब्लेक का कथन है कि मैं अपनी कविता की प्रशंसा इसलिए कर सकता हूँ कि उसको लिखाने वाली तो कोई दिव्य शक्ति थी; कवि स्वयं तो जैसे श्रुति लेखक मात्र रहा हो×। कल्पना-प्रवण कवि, ब्लेक के शब्दों में, अनन्त के जाज्ज्वल्यमान प्रकाश में रहता है। ('lives in Eternity's Sunrise) अधिकांश कवियों का यही अनुभव है कि चाहने पर वे अच्छी कविता नहीं लिख सके पर अनचाहे किसी अज्ञात उमङ्ग में ऐसी रचना कर गये जो अमर और अक्षुण्ण हो गई। इच्छा-शक्ति के आग्रह से, केवल बुद्धि के व्यायाम से कविता का स्फुरण हो नहीं सकता। मुन्शी अजमेरीजी ने कभी लिखा था कि गुप्तजी कभी महीनों कुछ लिखते ही नहीं, कभी दो चार दिन इतने तल्लीन रहते हैं कि खाना-पीना तक भूल जाते हैं। पट्टी पर लिख लिखकर वे उसे कागज पर उतारा करते हैं। ब्राउनिङ्ग सदृश कवि एक बार लिखी हुई चीज को दुबारा देखना हराम समझते हैं तो टेनीसन सरीखे उसमें पुनः पुनः परिवर्तन कर उसको और सुघड़ बनाते रहते हैं। प्लेटो की रचना में सुकरात से कहलाया गया है कि तमाम अच्छे कवि, चाहे वे महाकाव्य-प्रणेता हों चाहे गीतिकाव्य

× "I may praise it, since I dare not pretend to be other than the Secretary; the Authors are in Eternity"—Blake

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रचयिता, कलाविद् होने के नाते सुन्दर रचना नहीं करते। सुन्दर रचना वे इसलिए कर पाते हैं कि कविता लिखते समय जैसे वे अपने वश में नहीं रहते†। कवि दांते इसको श्रमसाध्य मानते हैं। विलियम मारिस ने तो यहाँ तक कह डाला है कि काव्य की दैवी प्रेरणा की बात मूर्खों का प्रलाप है। और मनुष्यों की तरह कवि भी साधारण मनुष्य ही होता है जो अपनी कारीगरी और कला का जानने वाला होता है। ("That talk of inspiration is sheer nonsense, there is no such thing. It is a mere matter of craftsmanship") पुराने धार्मिक ग्रन्थ अधिकांश देशों में अपौरुषेय माने गये हैं। धार्मिक लोग तो वेदों को सचमुच ईश्वर प्रणीत ही मानते हैं पर आज के बुद्धिजीवी युग में यह तर्क सुग्राह्य नहीं। इसलिए इसका भी समाधान यों किया गया कि वैदिक ऋषि मन्त्रकर्त्ता नहीं, मन्त्रद्रष्टा मात्र थे। कोई अदम्य, अज्ञात दैवी प्रेरणा जैसे उन ऋषियों से मंत्र लिखवा दिया करती थी। ग्रीस आदि देशों की भी यही धारणा रही है। वहाँ की धारणा है कि वह दैवी शक्ति कवि की जिह्वा पर शब्द भेज देती है ("He gives the word on my tongue without my having to seek it.") शेक्सपियर के लिए कहा गया है कि काव्य-सृजन उसने थोड़ा ही, स्वयं प्रकृति ने उसके लिए किया है। स्वच्छन्दतावादी (Romantic) कवि तो इस दैवी या अतिप्राकृत प्रेरणा को मानते ही हैं, पर शिष्टवादी (Classic) सब नहीं, यद्यपि मिल्टन को अन्धा होने के बाद इतना जोश आता था कि तड़के ही लड़कियों को उठाकर कविता लिखवाना शुरू कर देते थे कि वे बेचारी परेशान हो जाती थीं। ऐसे जोश में कवि को छन्द के बारे में सोचना नहीं पड़ता, छन्द उसके लिए स्वयं बनते जाते हैं। गुप्तजी ने ऐसे जोश या 'मूड' को 'भावानन्द' के नाम से अभिहित किया है देखिए—

'उड़ने को है तड़पता मेरा भावानन्द
व्यर्थ उसे पुचकार कर फुसलाते हैं छन्द।'

कुछ अपने निजी अनुभव की बात कहना भी यहाँ अप्रासङ्गिक नहीं होगा। मैंने कविताएँ कोई पाँच सात ही लिखी हैं पर एक भी इच्छापूर्वक नहीं। "Poetry is not like reasoning, a power to be exerted according to the determination of the will. A man can not say, 'I will compose poetry.'" क्योंकि मैंने अपने को कवियों की जमात में कभी समझा ही नहीं और न कभी जान बूझ कर ऐसा प्रयास किया ही, फिर भी कुछ कविताएँ लिखनी पड़ीं जो मुझे अब भी अच्छी लगती हैं—शुद्ध आलोचक की दृष्टि से भी। एक बार मैं यों ही गुनगुना रहा था—'हे चिर सुन्दर नित नव नूतन
अभिनन्दन वन्दन हे!'

कई बार गुनगुनाते रहने पर ऐसा लगा जैसे बात आगे बढ़ रही है। कागज-पेंसिल उठाई और बात यों बढ़ी बिना जरा भी प्रयास या विचार के—(शेली के शब्दों में वह अवस्था 'Unpremeditated ease' की थी पर 'Profuse strains' की नहीं, अन्यथा तो मैं कब का कवि बन गया होता)

हे भवभयभञ्जन मन अतिरञ्जन
शीतल अञ्जन खञ्जन हे।
मनभावन वदन सुषमा सदन
छवि रदन छदन मत्त-मदन-मद-मर्दन हे!
वाणी वर वीणा विनोदनी
आधि व्याधि सकल अविकल
सत्वर सत्व संहारिणी—हे चिर।
संताप-ताप-ध्वान्त
कलिकल्मष अभ्रंकष
कालुष्य-कदम्ब हे शान्त शान्त!
कर कमल अमल शोभित हे चिर।
पाद पद्म अवनत मस्तक
छटा छबीली छकि छकि दर्शक

† "All good poets, epic as well as lyric, compose their beautiful poems not by art, but because they are inspired and possessed."

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन रे क्यों मचले मान मान-
तू कैसा मेरा मेहमान।
हे चिर०।

विस्तार-भय से पूरी कविता नहीं दे रहा हूँ। इसका शीर्षक फिर शायद बुद्धि पूर्वक रखा 'अद्वैत'। अपनी ही कविता के भावों की व्याख्या करने का तो यह अवसर नहीं। सन् ४० में एक बड़ी कविता हठात् लिखी गई। पता नहीं था किस विषय पर लिख रहा हूँ। इसलिए शीर्षक रख दिया 'शीर्षक के अन्वेषण में' ही, जो कई दृष्टियों से सार्थक रहा। इसका प्रारम्भ था—

'भव्य भवनों के वैभव को गले लगा कर क्या मैं रोऊँ ?

मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय तो कवि असाधारण मनुष्य तो नहीं होता (चाहे कुछ मनचले युवक लम्बे बाल रखकर कवि की वेश-भूषा धारण कर उल्टा-सीधा गाते रहें) पर उसके जीवन में असाधारण या विशेष क्षण आ सकते हैं, जब वह सहज रुचि के कारण उसमें इतना तल्लीन हो जाता है कि अपना साधारण 'स्वत्व' भूल जाता है। स्वयं 'विगलितवेद्यान्तरमानन्द' होकर ही वह पाठक को रस-विभोर कर सकता है। बिना रुचि के श्रम-पूर्वक किया गया काम कर्ता और भोक्ता दोनों के लिए नीरस हो जाता है। आज की अव्यवस्थित शिक्षा-प्रणाली के फलस्वरूप न जाने कितने छात्र 'अन्यमनस्क' (Absent-minded) हुए कक्षाओं में इतस्ततः घूरते रहते हैं। कमाऊ बनाने के लिए माता पिता कितनों ही को जबर्दस्ती ठोक पीट कर वैद्य-राज बनाने के लिए उनका श्रम और समय बर्बाद करते हैं। हाथ के कारीगर भी बिना तल्लीनता के कोई सुन्दर चीज आज तक बना नहीं पाये। जली भुनी स्त्री वर्षों की साध लिए पाकदक्ष होते हुए भी रोटी को जलाकर ही मानेगी। चोटी बांध कर पढ़ने वाले विद्यार्थी अपनी 'संथा' को न रट पाये, न समझ पाये। रुचि एक तो होती है सहज, एक पड़ती है बनानी। सहज रुचि का विकास अनुकूल वातावरण में सुफल देता है। बनाई हुई रुचि का विकास बनावा हुआ सा ही लगता है। क्योंकि उसमें मन रमता नहीं। यह मन का रमना ही कवि की काव्य-प्रेरणा है, यही उसके काव्य को मनोरम बनाता है। जितनी देर तक यह रम सके उतना ही कवि का बड़प्पन। उसी के अनुपात से उसका ब्रह्मानन्द सहोदर संप्रेषणीय बनता है। छोटा कवि कम देर के लिए रम पाता है; बड़ा कवि बड़ी देर तक रम कर रस लेता रहता है और देश-देशान्तर में सदा-सर्वदा के लिए देता रहता है। यही कवि का 'जौहर' है, यही उसका 'हुनर' है। केवल अलङ्कार, छन्द, रस की पुस्तक पढ़ कर कोई आज तक तुकड़ से बढ़ कर कवि बन नहीं पाया। बिना इनके थोड़े बहुत ज्ञान के भी दैवी प्रेरणा के भरोसे बैठे रहने वाले भी अधिक निहाल नहीं कर पाये। छायावादी युग के प्रारम्भ में बहुत से कविपुङ्गवों ने हृत्तन्त्री के तार झनझनाए, पर वह राग कभी सुरीला बना ही नहीं। मन का रमना अगर काव्य के लिए जरूरी है तो बुद्धि का रमना आलोचना के लिए भी। बुद्धि भी रमती जरूर है, नहीं तो इतने नैयायिक, तार्किक और वेदान्ती कहाँ से पनपते। आत्मचेतना भुलाकर रस विभोर बन कर ही कवि और आलोचक दोनों—भावुक और भावक के रूप में पाठकों को रस-लीन कर सकते हैं। तल्लीन होकर ही तल्लीन किया जा सकता है अन्यथा तो उभय-पक्ष से वितीनीकरण ही होता है। तल्लीनता में लिखी गई चीज सजीव हो जाती है। स्वयं सप्राण होकर ही वह मुर्दा दिलों में प्राण फूँक सकती है। यह काव्य-प्रेरणा तल्लीनता की अवस्था से भिन्न नहीं है। हर कार्य की सिद्धि के लिए इसकी अपेक्षा है। हाथ में माला लिए हुए ग्राहकों को ठगने वाला बनिया भगवान् को नहीं ठग सकता। प्रेमचन्द के सब उपन्यास और सब उपन्यासों के सब अध्याय एक से नहीं क्योंकि वे शहरी लोगों के वर्णन में तल्लीन नहीं हो पाये, क्योंकि कई बार उनको लिखने के लिए लिखना पड़ा। यही चीज वर्ड्सवर्थ की कविता में देखने को मिलती है। कविता के लिए यह तल्लीनता कुछ तो संस्कार वश, कुछ रुचिवश, कुछ अनुकूल वातावरण वश बन पाती है। जन्मना कवियों को भी प्रयत्न कवि बनना पड़ता है—अन्य कवियों तथा साहित्य-शास्त्र का अध्ययन उनकी दिशा को निश्चित, निरुद्ध कर देता है। बिना सहज रुचि के तल्लीनता आती नहीं—यही सिद्ध-कवियों का रहस्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरदासजी के दृष्टिकूट

श्री मोहनशरण मिश्र

संस्कृत साहित्य में वेदव्यासजी के महाभारत में दृष्टि-कूटों की भरमार है। सूरदासजी ने सूरसागर में भी बहुत-से कूट पदों की रचना कर लोगों को चक्कर में डाल दिया है। जो पद्य लोगों को भ्रम में डाले, उनकी दृष्टि को झुठला दे, उन्हें 'दृष्टिकूट' कहते हैं। यह भी काव्य-विनोद का अन्यतम प्रकार है। विन्दुमती, अक्षरच्युतक, मात्रा-च्युतक, प्रहेलिका, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका और भिन्न-भिन्न वस्तुओं के आकार के (चित्र के) अनुरूप पद्यबन्ध (छत्रबन्ध, मुरजबन्ध, खड्गबन्ध आदि) के द्वारा शूद्रक ने अपने काम-विकार को वशीभूत किया था, यह महाकवि बाणभट्ट ने बतलाया है। वासना के उदात्तीकरण में कला, दर्शन और विज्ञान के अभ्यास में तल्लीनता सर्वोच्च और अमोघ साधन है, यह बात आधुनिक मनोविज्ञान के प्रतिष्ठा-पक 'फ्रायड' के सिद्धान्तों के भी अनुकूल है। पर यह प्रकार बड़ा कठिन है। साहित्य दर्पणकार ने तो इन सब प्रकारों की 'काव्यांतर्गडुभूत तया तु नेह प्रपंच्यते' कह कर स्पष्ट ही निन्दा की है। शरीर के किसी भाग में एक जगह सिकुड़ कर जमा हो जाने वाली एवं गाँठ-सी दीख पड़ने वाली नसों को 'गडु' कहते हैं। भले ही वह शरीर को तकलीफ नहीं पहुँचाता, पर विकृत तो लगता ही है। सूरदासजी के दृष्टिकूट में कहीं वर्ण विपर्यय, (अक्षरों के हेर-फेर) कहीं विन्दु (अनुस्वार आदि का) त्याग, कहीं मात्रा त्याग, कहीं श्लेष, कहीं यमक, कहीं गणित के प्रयोग, कहीं शब्दों के पर्याय के ग्रहण आदि भिन्न-भिन्न क्रियाओं द्वारा पदार्थ एवं वाक्यार्थ बदल कर पाठकों को चकित करने की कला दिखलाई गई है। कुछ ऐसे ही पदों की चर्चा करूँगा जिनमें दृष्टिकूट के आनन्द के साथ ही सूरदासजी ने अलङ्कारों के नाम लेकर इन्हीं पदों को उनका उदाहरण भी बनाया है। इनके कूट पद लोगों को बड़े पसंद आते हैं। सहोक्ति अलङ्कार (Connected discription) के उदाहरण स्वरूप सूरदासजी का निम्नलिखित पद्य बड़ा प्रसिद्ध है!

सखीरी, सुन परदेसी की बात।
अर्ध बीच दै गयो धाम को, हरि-अहार टरि जात,
ग्रह नछत्र अरु वेद अरध करि को बरजे मोहि खात।
रवि पञ्चम सँग गये स्याम घन ताबे मन अकुलात,
कहुँ सहुक्क कवि मिले 'सूर' प्रभु प्रान रहत नतु जात।

इसमें श्रीकृष्ण के मथुरा से लौटने की अवधि बताई गई है, जो उनके द्वारा निर्धारित की गई थी। "धाम को (घर का) अर्ध बीच दै गये" (घर का आधा पक्खा अर्थात् आधे पखवाड़े का बीच दे गये थे) वाक्य द्वारा पन्द्रह दिन पर आने की बात कह गये थे। पर 'हरि अहार चलि जात' (हरि = सिंह। अहार = आहार = मांस, विन्दुच्युत करने के करण मांस) के द्वारा कई मास बीत जाने पर भी उनका नहीं आना बताया गया है। अतः ग्रह = ९, नक्षत्र = २७, और वेद = ४ को जोड़ कर ४० का आधा २० (= विष) खाने में मुझे कौन रोक सकता है? बीस में दीर्घ की जगह पर ह्रस्व कर मात्राच्युतक तथा दंत्य 'स' की जगह पर मूर्धन्य के वर्ण विपर्यय द्वारा अर्थ को सङ्घटना की गई है। रवि पञ्चम अर्थात् रविवार से आरम्भ कर पाँचवाँ बृहस्पतिवार हुआ, जिसका पर्याय जीव अर्थ लेने पर यह बतलाया गया है कि प्राण, हृदय, या आत्मा की सारी स्फुरणा तो श्याम के साथ ही चली गई। सहुक्क शब्द द्वारा सहोक्ति अलङ्कार की बात बतलाते हुए कवि ने यह भी कहलाया है कि यह शुभ समाचार बतलाइये कि श्याम कब आवेंगे? तभी तो प्राणों के लिए कुशल है, अन्यथा नहीं।

इसी तरह निम्नोद्धृत पद्य में दृष्टिकूट के साथ ही ललित = (चाहा हुआ) (The artful indication) अलङ्कार भी बताया गया है। जहाँ जो कुछ कहना हो उसी का प्रतिबिम्ब मात्र कहने से अलङ्कार होता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी कही न मानत राधे ।
ये अपनो मत समझत नाहीं कुमत कहा प्रण नाधे ॥
दधिसुत-सुत-सुत के हितकारी सजि-सजि सेज बिछावै ।
तापर पौढ़ चहत है आपन भल बल को समुझावै ॥
ग्रह-नछत्र अरु वेद अर्ध करि खात हरष मन बाढ़ो ।
ताते चहत अमरपन तन को समुझि-समुझि चित काढ़ो ॥
जग प्रिय घटे देखि निज नयनन आपुन रंग बनावै ।
'सूर' ललित सब बात समुझि कौ को कहि कहा रिझावै ॥

इस पद्य में सखी द्वारा राधिका के मान मोचन के प्रयास और राधिका के असीम हठ की बात बताई गई है। दधिसुत से उदधि-सुत = कमल, कमल-सुत से ब्रह्मा, ब्रह्मा के पुत्र से वसिष्ठ, वसिष्ठ के हितकारी से अग्नि अर्थ अपेक्षित है (क्योंकि इनका अग्निहोत्र अटल रहता है) की शय्या सजा-सजा कर उस पर शयन द्वारा अपना भला चाहती हो। भला ऐसी दशा में तुम्हें कौन समझावे ? इसी प्रकार ग्रह ९, नक्षत्र २७, और वेद ४ मिलाकर (४०) के आधा बीस (विष) खाते हुए मन में आनन्द मानती और अमरता चाहती हो। संसार के लिए प्यारे जल के घट जाने पर अपनी आँखों से देख कर भी सफेद पुल बँधवाती हो। सूरदासजी कहते हैं कि इन सब बातों को विचार कर यही सिद्ध होता है कि तुम्हारे कर्त्तव्य ललित हैं; तुम्हें कोई कैसे समझावे ?

इसी तरह निम्न लिखित पद्य में तद्गुण (The Borrower = तत् = उसके, गुण = श्वेत आदि रंग एवम् शूरता आदि धर्म) अलङ्कार भी प्रयुक्त किया गया है। जहाँ अपना गुण छोड़कर संगति का गुण लिया जाय वहाँ तद्गुण अलङ्कार होता है।

ठाढ़ी जलजा-सुत कर लीन्हें ।
दधि-सुत-वाहन हित सजनी ! भख विचारि चित दीन्हें ॥१॥
को जाने कहि कारण प्यारी ! सो लखि तुरत उड़ानो ।
चपला औ बराह-रस-आखर आदि देखि झपटानो ॥२॥
तद्गुण देखि सबै मिलि सजनी ! मन ही मन मुसकानी ।
सूर, श्याम को लगी बुलावन आपस आपन मानी ॥३॥

इस पद्य में तद्गुण अलङ्कार द्वारा भ्रांतिमान अलङ्कार और हास्यरस व्यंग्य है। अतः अलङ्कार द्वारा अलङ्कार-ध्वनि एवं रसध्वनि भी है। उक्त पद्य में बताया गया है कि हे सखी, मैं जलजा (शुक्ति सीप, पानी से उत्पन्न) अर्थात् मोती हाथ में लिए खड़ी थी। मेरा विचार था कि हंस को मोती चुगाऊँ। दधि सुत (उदधिसुत, कमल) के पुत्र (ब्रह्मा के) वाहन (हंस) के भख (भक्ष्य पदार्थ) अर्थात् हंस मोती चुगता है किन्तु उसे देखकर हंस न जाने क्यों उड़ गया। परन्तु चपला, वराह (के पर्याय कोल) और रस के आदि अक्षर अर्थात् चकोर उस मोती को खाने के लिए झपटा। क्योंकि श्वेत मोती को भी उसने हथेली के लाल रङ्ग से रँगा होने के कारण अङ्गार समझ लिया। अतः वहाँ बैठी हुई सभी सखियाँ हथेली के रङ्ग के तद्गुण होने एवं मोती चुगना रूप हंस का धर्म चकोर के द्वारा अपना लिए जाने के कारण हँस पड़ीं। सूरदासजी कहते हैं कि उन्होंने मेरा कहना नहीं माना और श्याम को बुलाने लगीं। यहाँ हथेली के रंग जाने से हंस के द्वारा मोती को मोती नहीं मानने एवं चकोर के द्वारा अंगार समझ लेने के कारण दो बार भ्रम है।

इसी प्रकार निम्न लिखित दृष्टिकूट में पूर्वरूप (The original) अलङ्कार प्रयुक्त हुआ है।

पूर्वरूप उस अलङ्कार को कहते हैं जिसमें वस्तु अपने प्रथम रूप पर ही अटल रहे। सङ्गति का गुण ग्रहण करने पर भी उसे त्याग कर अपने पहले रूप पर स्थित हो जाय या प्रयत्न कर भी पूर्व रूप (पूर्वगुण) न मिटे।

कूद्यो कालीदह में कान ।
रोवत चली यशोदा मैया सुनत ग्वाल मुख हान ॥
छूटे दिन दुवार को बैरी लटकत सो न सम्हारै ।
सूरज-सुत-रिपु सुत जे आदिक गिरत कौन तन धारै ॥
अङ्ग-अङ्ग बिरहानल सँग ते महा स्याम सो भासै ।
बाबर मित्र-वेद-सुत बातें सुनत रंग परगासै ॥
समुझावत सब पाछिल बातें तनक न मन में आवै ।
सूरस्याम सुत सुरत सम्हारत कालीदह को धावै ॥

उक्त पद्य में बताया गया है कि श्री कृष्ण कलिय-ह्रद में कूद पड़े। यह बात ग्वालों के मुख से सुनकर यशोदा माता रोती हुई चल पड़ीं। उनके बाल खुले हैं और वस्त्र लटक रहे हैं और गहने गिर रहे हैं। उनको वे नहीं सम्हाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाती हैं। छूटे दिन (दिन के पर्याय बार) दुवार को बैरी लटकत अर्थात् दरवाजे का शत्रु पट (वस्त्र) और सूरज सुत सुग्रीव के रिपु बाली के सुत अङ्गद (बिजाइठ आदि गहने) शरीर से गिर रहे हैं। यहाँ अङ्गद शब्द के सूर नामक गहने का बोधक होते हुए भी अपने सजातीय अन्यान्य भूषणों के भी बोधक हैं। जो शब्द या अर्थ अपने अर्थ का बोध कराते हुए इतर सजातीय शब्द या अर्थ का बोध करावे उसे उपलक्षण शब्द या अर्थ कहते हैं। उनके सभी अङ्ग पुत्र-वियोगाग्नि (यहाँ जान-बूझकर अमङ्गलरूप अश्लीलता के निवारणार्थ कवि ने शोकानल के स्थान पर विरहानल का प्रयोग किया है।) से अत्यन्त काले पड़ गये हैं। वानरों के मित्र ऋक्ष अर्थात् नक्षत्रों में वेद याने चौथे रोहिणी (नक्षत्र) के पुत्र बलरामजी की बातें सुनकर कुछ धैर्य धारण करती हैं और रङ्ग पलटता है। बलदेवजी श्री कृष्णजी के पहले के चमत्कारों—गोवर्धनधारण, अग्निपान—आदि की बातें तो समझाते हैं पर यशोदाजी तनिक भी नहीं मानतीं। सूरदासजी कहते हैं कि वे (यशोदाजी) अपने पुत्र का बार-बार स्मरण कर कालिय-हद में कूदना चाहती हैं।

तात्पर्य यह है कि वे अपने पूर्व विचारों को कुछ बदल कर यथास्थित कर लेती हैं।

इनमें पहले उदाहरण में 'सहोक्ति', द्वितीय में 'ललित', तृतीय में 'तद्गुण' और चतुर्थ में 'पाछिल बातें' द्वारा क्रमशः सहोक्ति, ललित, तद्गुण और पूर्वरूप अलंकार रूपी अर्थ व्यक्त किये गये हैं।

इसी प्रकार निम्नलिखित पद्य में मीलित (शुद्ध रूप मिलित The Lost) का चमत्कार-पूर्ण प्रयोग देखते ही बनता है। जहाँ सादृश्य में भेद की प्रतीति नहीं हो वहाँ मीलित अलङ्कार होता है।

सुन सुत नन्दनंदन की रीति।
भूपति कंस पर्‌यो धरनीतल छाँड़ि आपनो नीति॥
द्वार-धार नीतन तें डारत हारत सब सुख हेर।
बार-बार झाँकत जल अपनो सोवत झकझकत फेर॥
रवि-पञ्चम पल होत नहीं थिर थकित भयो सब गात।
धवल बसन 'मिल रहे' अङ्ग में सूर न जान्यो जात॥

नागरिक लोग कहते हैं कि श्रीकृष्णजी के चमत्कार-पूर्ण कार्यों को सुनकर राजा कंस अपने दुष्कृत्यों को छोड़-कर पछाड़ खाकर गिर पड़ा है। द्वार के पर्याय [प्राकृत बार अर्थात् जल (यहाँ बनयोरभेदः, माना गया है) की धारा नीतन अर्थात् नयनों से (नीत = नीति = नयु का बहुवचन = नीतन) लगातार बरसा रहा है, अर्थात् निरन्तर हो रहा है और अपने सारे सुखों को भूल गया है। और बार-बार अपने जल अर्थात् द्वार (जल = बार = द्वार) की ओर झाँकता रहता है तथा सोते-सोते चौंक उठता है। रवि पञ्चम अर्थात् रविवार से पाँचवें बृहस्पति के पर्याय अर्थात् उसका जीव या चित्त स्थिर नहीं है तथा सम्पूर्ण शरीर शिथिल हो गया है। सूरदासजी कहते हैं कि चिन्ता की अधिकता से (उसका रंग) ऐसा सफेद पड़ गया है कि उजले वस्त्र उसके शरीर के रंग में इस भाँति घुल-मिल गये हैं कि कपड़े और शरीर के रंग में कोई भेद ही नहीं भासित होता। यहाँ 'मिल रहे' शब्द द्वारा 'मीलित' अलंकार व्यक्त किया गया है।

इसी भाँति निचले पद्य में 'सामान्य' अलङ्कार को छटा नामोल्लेखपूर्वक दिखाई गई है। भेद रहने पर भी जब सादृश्य के कारण कोई विशेषता न बतलाते हुए जो कुछ कहा जाय उसे 'सामान्य' अलंकार कहते हैं।

ऊपर में बतलाये हुए 'मीलित' में एक पदार्थ न्यून (अल्प) गुण वाला रहता है और वह अधिक गुण वाले दूसरे पदार्थ में डूब जाता (अन्तर्भूत हो जाता) है। किन्तु 'सामान्य' अलङ्कार में दोनों पदार्थ एक-से रहते हैं, अतः अलग-अलग नहीं जान पड़ते हैं। 'मीलित' में न्यून गुणवाला पदार्थ अपने गुण को त्याग देता है, किन्तु 'सामान्य' में दोनों पदार्थ अपना गुण नहीं त्यागते। इस पद्य में सामान्य अलङ्कार द्वारा अद्भुत रस व्यंग्य है। बीभत्स रस अद्भुत का पोषक होने के कारण अंग बन गया है।

आज नँद-नन्दन सजनी ! देख।
कीन्हे दधि-सुत-सुत-से सजनी ! सुन्दर स्याम सुभेख॥
सारँग पलट-पलट छत्र दोई लैगयो आप चुराइ।
सोई सबके घर घर आये जस के तस सुख पाइ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को वह कौतुक करे और सुन समुझ आप निज बात।
सूरदास 'सामान्य' करन को ये ही बलित लखात॥

पहले के पद्यों में तो केवल शब्दों के पर्याय द्वारा ही नूतन अर्थ की उद्भावना की गई थी, किन्तु इस पद्य में तो शब्दों के अक्षरों को उलट कर रखने, पर्याय और कई शब्दों के केवल आदि अक्षर लेकर ही नये अर्थ निकाले गये हैं। सारङ्ग के पर्याय लवा को पलट कर बाल और छव को उलट कर बछ शब्द द्वारा बालक और बछड़ा अर्थ निकाला गया है। इस पद्य में श्रीकृष्णजी के गोचारण करते वक्त ब्रह्माजी के द्वारा गोपबालकों और गायों को लक्ष्यालक्ष्य रूप से चुरा कर ले भागने एवं छिपा देने पर संध्या समय उन्हीं रूपों वाले बालकों और गायों को अपने-अपने घर में श्रीकृष्णजी द्वारा भेज देने का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार नीचे के पद्य में 'उन्मीलित' The unlost अलङ्कार का नाम-निर्देशपूर्वक कथन किया गया है। पूर्ण सादृश्य होने पर भी किसी कारण से जिसमें थोड़ा भेद जाना जाय तो वह 'उन्मीलित' अलङ्कार होता है।

जोर-उतपल-आदि उरतें निकसि आयो कान।
बीच-निशि को आदि अञ्जन लग्यो लेप समान॥
वेदपाठी दृगन सोई रीत के बहु छीट।
रहे बिच-बिच समझ मो को परे नाहीं डांट॥
बाँसुरी ते जान मो को पर्यो ना सुत सोइ।
सूर 'उन्मीलित' निहारौ कहै का मति भोइ॥

इस पद्य में 'जोर' और 'उत्पल' के क्रमशः पर्याय 'बल' और 'कमल' शब्द के आदि वर्ण लेकर बक (बकासुर) अर्थ लिया गया है। इसी तरह 'बीच' और 'निशि' क्रमशः पर्याय 'मध्य' और जामिनी (यामिनी को ब्रज और अवधी भाषा में 'जामिनी' बोला और लिखा जाता है।) के आद्यक्षर लेकर मजा (मज्जा) अर्थ माना गया है। तथा वेदपाठी और दृगन के पर्याय क्रमशः श्रोत्रिय और नयन के पूर्वाक्षर श्रो एवं अर्थात् रक्त अर्थ निकाला गया है।

कोई गोपी किसी सखी से कहती है कि आज कन्हैया बकासुर के पेट फाड़कर निकल आये। उनके सर्वाङ्ग में मज्जा और रक्त के छींटे लगे हुये थे। इससे वे बिल्कुल ही पहचाने नहीं जाते थे। लगता था कि मानों बकासुर के ही लड़के हों। किन्तु ज्यों ही उन्होंने बाँसुरी बजाई त्यों ही मति भ्रम मिट गया और मैं समझ गई कि ये श्रीकृष्ण हैं। यहाँ रक्त-मज्जा से सने रहने तथा बकासुर के पेट से निकलने का साक्ष्य रहने पर भी बाँसुरी बजाने के चलते ही भेद मालूम पड़ सका।

इसी प्रकार से निचले पद्य में 'विकल्प' (The Alternative) अलङ्कार की सुषमा नाम-कथन-पूर्वक दिखाई गई है।

जब दो या अधिक समान बलवानों में विरोध के कारण एक का ग्रहण किया जाय तब 'विकल्प' अलङ्कार होता है। इसके प्रवर्तक अलङ्कार-सर्वस्वकार आचार्य रुय्यक हैं।

भूसुत आइगो इहि बेर।
लेन सुत-सुत हाय सजनी समझ आपस बेर॥
पाण्डुसुत-पितु-तात होके लेइगो री प्रान।
कै सु जीवनमूरि लैकै हरैगो तन सान॥
मोहि यह सन्देह सजनी पर्यो 'विकल्प' आन।
सूर समझ उपाय करि कछु देहु जीवन-दान॥

इसमें बताया गया है कि हे सखी, भूसुत (=अङ्कुर=अँकुर=अकूर=शुद्ध शब्द अक्रूर) अर्थात् अक्रूर इस समय आ गया है। वह आपसी बैर समझ कर सुत सुत अर्थात् नन्दजी के पुत्र (सुत=नन्दन=नन्द) कुँवर कन्हैया को ले जाने के निमित्त आया है। ऐसा होने पर वह पाण्डुसुत-पितु-तात (अर्थात् पाण्डुसुत=कर्ण के पिता सूर्य के पुत्र यम) अर्थात् साक्षात् यमराज बन कर हम लोगों के प्राण ही ले लेगा अथवा वह सम्पूर्ण ब्रजवासियों के जीवनमूरि अर्थात् जीवन के आधारभूत श्रीकृष्ण को जीते जी ले जायगा। हे सखी इस प्रकार सङ्कल्प विकल्प हो रहा है कि दो में से एक अवश्य करेगा। सूरदासजी कहते हैं कि सखी ने यह कहा कि अपनी समझ से कुछ उपाय कर मुझे जीवन दान दे।

इसी तरह निम्नोद्धृत दृष्टिकूट में 'अतद्गुण' The Non Borrower अलङ्कार की छवि भी देखने योग्य है। जहाँ श्रेष्ठ संगति होने पर भी उसके गुण न ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये जायँ, न लगें वहाँ अतद्गुण अलङ्कार होता है।

आज रण रोप्यो भीम-कुमार।
कहत सबै समझाय सुनौ सुत धरम आदि चितधार॥
आदि रसाल यज्ञफल के सुत जे बाँधे अभिमान।
सूरज-सुत के लोक पठावत ते सब करत न हान॥
दशनराज जो महारथी सो आवत उग्र अनूप।
सहित सैन सुत-संग सिधारत सो सब सजे सरूप॥
तंतुपुत्र की है का गनती जो सन्मुख भट आवै।
सुमनलोक लौं अब या बेला भँवर-संग उड़ जावै॥
बैठे जदपि जुधिष्ठिर साम्हें सुनत सिखाई बात।
भयो 'अतद्गुण' सूर सरस बढ़ बली बीर बिख्यात॥

सञ्जय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि आज युद्ध-क्षेत्र में भीमसेन का पुत्र घटोत्कच क्रुद्ध हुआ है। वह सबसे समझा कर कह रहा है कि हे धर्मराज युधिष्ठिर आदि महानुभावो, आप लोग ध्यान से सुनें। रसाल के पर्याय 'अंब' और यज्ञ के फल 'धर्म' के आदि वर्ण अर्थात् अंध के (धृतराष्ट्र के) पुत्र दुर्योधन आदि जितने अभिमानी हैं सबको अभी सूरज सुत के लोक अर्थात् यमलोक में भेज देता हूँ। दशनराज (दशन के पर्याय द्विज) अर्थात् द्विजराज महारथी द्रोणाचार्य को भी सैन्य, रथ और पुत्र के सहित मृत्युलोक की यात्रा करा दूँगा। तंतुपुत्र अर्थात् सूत पुत्र कर्ण किस खेत की मूली है? वह तो सामने आ ही नहीं सकता। वह इसी समय सुमनलोक अर्थात् स्वर्ग की ओर भँवर-संग अर्थात् (भँवर = भ्रमर = शिलीमुख = बाण) मेरे बाण के साथ उड़ जायगा। सूरदासजी कहते हैं कि यद्यपि सामने ही सत्यनिष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर बैठे हैं पर उस पर (घटोत्कच) पर उनकी सत्यनिष्ठा का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, अतः वह वीर बढ़-चढ़ कर झूठी डींग मारने में बड़ा रस ले रहा है; अतः यहाँ 'अतद्गुण' अलङ्कार है।

अधोंकित पद्य में विभावना (Peculiar Causation) का भी नामकरण पूर्वक चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। एक ही पद्य में इस अलङ्कार के सब (छहों) भेद बता दिये गये हैं।

हेरत हरष नन्दकुमार।
बिन दिये बिपरीत कवजा पगन लाली भार॥
रंच उघरत देख नीकन मान उर बर भेद।
परे सारँग रिपुन मानत करत अदभुत खेद॥
निकस सारँग ते सुसारँग हरत तन की ताप।
सुधाधर मुख पै रुखाई दई धौं केहि साप॥
श्रीसुतन ते सरस सागर होत छन-छन आज।
कियो पति आधीन सूरज के बिभावन ब्याज॥

इस पद्य में सूरदासजी स्वाधीन पति का नायिका के बचनों को उद्धृत कर रहे हैं कि आज नंदकुमार प्रसन्नता से देख रहे हैं। 'कवजा' शब्द को उलटकर पढ़ने से 'जावक' (महावर) हुआ। अतः जावक लगाये बिना ही पैरों में लाली का आधिक्य है। (यह पहली विभावना है, क्योंकि महावर लगाना रूप कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति बताई गई है।) नेत्रों के थोड़े ही खुलने से वे उन्हें शोभायुक्त समझ लेते हैं। (हेतु के अपूर्ण होने पर भी जहाँ कार्य का पूर्ण होना बताया जाता है वह दूसरी विभावना है।) सारंग अर्थात् मुख के रिपु घूँघट के रहते भी नेत्र अपना कटाक्ष विक्षेप कर ही लेते हैं (जहाँ बाधा रहने पर भी कार्य का पूर्ण होना कथन किया जाय वहाँ तीसरा भेद होता है)। सारंग अर्थात् कोयल तुल्य कण्ठ से सारंग यानी कोकिल की ध्वनि निकल कर शरीर की जलन बुझाती है (यहाँ चौथी विभावना है, जहाँ अकारण वस्तु से कार्य का प्रकट होना कहा जाय वह चौथी विभावना है)। सुधा धारण करने वाले मुख चन्द्र पर कटुवचन रूपी रुखाई किसने जमाई है? (पाँचवी विभावना यदि कारण के विरुद्ध कार्य बतलाया जाय तो विभावना का पाँचवाँ भेद माना जाता है।) श्री सुतन अर्थात् लक्ष्मी के सुन्दर शरीर से सरस सागर अर्थात सुख का समुद्र उमड़ रहा है, अर्थात् नेत्रों से प्रेमाश्रु झर रहा है। (छठी विभावना, जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति बताई जाय वह छठी विभावना है। यहाँ लक्ष्मी से सागर की उत्पत्ति बताई गई है पर लक्ष्मी की उत्पत्ति का कारण सागर है। इस तरह एक ही पद्य में विभावना के छहों भेद दिखाये गये हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में विभावना उस अलङ्कार को कहते हैं, जिसमें किसी घटना के कारण के बारे में कोई अद्भुत कल्पना करली जाय।

इसी तरह अधोलिखित पद्य में असम्भव (Improbability) अलङ्कार का प्रदर्शन किया गया है। जब अर्थ सिद्धि की असम्भवता का वर्णन किया जाय तब असम्भव अलङ्कार होता है।

अब रथ देखि पस्त न धूर।
दूर बढ़िगो स्याम सुन्दर ब्रज-सजीवन-मूर॥
भूमि-सुत की देख करनी आंद ते कर हीन।
परे जीवन-मध्य नाहीं रहत पावत मीन॥
अष्ट सुर इनको पठाये कंस नृप के त्रास।
तिपी-पी पल माँझ कीन्हीं निपट जीव निरास॥
कलहनी-पति-पिता-पुत्री तकत बनत न आज।
कौन जानत रहै यह 'बिन सम्भवन्' को काज॥
आइ हैं कै कहो सजनी सकल मोहि जनाइ।
सूर समझैं गमन पति का करत सुरत सुभाइ॥

इस पद्य में बताया गया है कि अक्रूर श्रीकृष्ण को लेकर चले गये। अब न तो रथ दीख पड़ता है न धूल। भूमिसुत अर्थात् अक्रूर के कर्त्तव्य उसके आदि अक्षर हटाकर अर्थात् अत्यन्त क्रूरतापूर्ण देखो। (मछली फंसाने के लिए, हाथ के पंजे के आकार के बने हुए हथियार को 'कूर' कहते हैं उसका दूसरा नाम 'तेकानी' भी है।) जब जीवन अर्थात् जल के बीच कूर डाल दिया जाता है तब मछलियाँ (जल में) रहने नहीं पातीं; अतः ब्रज के जीवन में भी अक्रूर की क्रूरता के चलते सजीवता, उत्साह और सुख कहाँ? अष्टसुर अर्थात् वसुदेव ने (यहाँ अष्ट शब्द से संख्येय वसु का एवं सुर के पर्याय देव के ग्रहण द्वारा वसुदेव अर्थ लिया गया है) इनको (श्रीकृष्ण को) राजा कंस के डर से भेज दिया है। तिपी अर्थात् छिपी के पर्याय शब्द गो + पी को क्षण भर में निराश कर दिया। (पद्माकर ने भी छिपाना अर्थ में 'गो' क्रिया का प्रयोग कर दिया है—'याही डर गिरिजा गजानन को गोप रही गिरि ते, गरे ते, निज गोद ते उतारैना।' कलहिनी पति अर्थात् शनि के पिता सूर्य की पुत्री यमुना की ओर श्रीकृष्ण बिना देखते नहीं बनता अर्थात् वह सूनी लगती है। यह कौन जानता था कि ऐसा असंभव कार्य हो जायगा। हे सखी, समझाकर कहो कि ब्रजबल्लभ कब आयँगे? सूरदासजी कहते हैं कि यह नायका 'प्रोषित पतिका' है; अतः बार-बार सुभावना के उनका स्मरण करती है। अपने पति के परदेश जाने से विरह के कारण जो व्याकुल रहे वह नायिका 'प्रोषितपतिका' कहलाती है।

इसी प्रकार निम्नाङ्कित पद्य में 'समुच्चय' अलङ्कार (The Conjugation) का चमत्कार पूर्ण प्रयोग दिखाया गया है। जहाँ बहुत से भाव एक साथ ही उत्पन्न हों वहाँ समुच्चय अलङ्कार होता है।

दृगजापति-पतनी-पति-सुत के देखत हूँ सुरझानी।
उठि-उठि परत धरनि पै सुन्दरि मन्दिर भई अभानी॥
सारङ्गवचन सुनत जीवन की कछू आस उर आनी।
भूतनया-रिपु-पितु-सेना की संगिनि मति-गति ठानी॥
कासों कहौं 'समुच्चय भूषण' सुमिरन करत बखानी!
सूरदास प्रभु बिन ब्रज ह्वै है कहिये कहा सयानी॥

दृग के पर्याय शब्द लोचन जिसका पर्याय शब्द पक्षी है (पक्षिविशेष मैना, हिमाचल की स्त्री मैना) अतः मैना की पुत्री पार्वती के शङ्करजी की पत्नी गङ्गा के पति (प्रभु) समुद्र के पुत्र चन्द्र को देखते ही कोई नायिका अपने पति के स्मृति मात्र से मुर्झा गई। इससे वह बार-बार पृथ्वी पर मूर्छित होती, गिरती और उठती है तथा घर के भीतर अज्ञान-सी हो रही है। सारङ्ग अर्थात् पपीहे की 'पी-पी' की रट सुनकर हृदय में जीवन की कुछ आशा धारण करती है। भूतनया अर्थात् सीताजी के शत्रु, जयन्त के पिता इन्द्र की सेना मेघ की प्राणसंगिनी विद्युत-की सी चञ्चल दशा में पड़ी हुई है। मैं किससे कहूँ कि यह पति के स्मरण से 'समुच्चय' अलङ्कार की स्फुट व्याख्या कर रही है। सूरदासजी कहते हैं कि गोपी ने सखी से कहा कि हे सयानी, बतलाओ तो कि ब्रजबल्लभ के बिना ब्रजवासियों की क्या दशा होगी?

इस पद्य में स्मृति, मूर्च्छा, वैवर्ण्य, उत्साह, अवसाद, मोह, आशा, आवेग, चपलता, चिन्ता, और दैन्य-आदि अनेक भावों के एक साथ ही स्फुरित होने से समुच्चय का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला भेद है। जब अनेक मिलकर एक कार्य का साधन करते हैं तब समुच्चय का दूसरा भेद होता है।

उपर्युक्त तरीके से ही निम्न-लिखित पद्य में अर्थापत्ति अलंकार का नाम कथन-पूर्वक प्रयोग हुआ है।

जहाँ इस प्रकार कहा जाय कि जिन्होंने ऐसा कर डाला है उन्हें यह काम कर डालना क्या बड़ी बात है, वहाँ 'काव्यार्थापत्ति' नामक अलंकार होता है।

बाम बाम जिन सजनी कीन्हीं।
तिनको ऊधो कहा बात बड़,
हम हित जोग-जुगति चित चीन्हीं॥
पुहुपन पति बाहन-भख हम संग,
खात न तनक लाज-गति भीनी।
बृच्छ-भाग धर फिरे सबन को,
कवन आप तब समझ न झीनी॥
'भनित अर्थ भूषन' उनहीं हित,
कीन्ह भरत चित चाह नवीनी।
'सूर' कहौ जो तुम्हैं रुचैं हम,
जीवन जौन मीन गति हीनी॥

गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धवजी, जिन्होंने वाम (टेढ़ी मेढ़ी) कुब्जा को वाम अर्थात् सुन्दर स्त्री बना ली है; उन्होंने हमारे लिये यदि योग की युक्तियों को परम हितकारी जाना है तो कौन-सी बड़ी बात है? पुहपन-पति अर्थात् सुमन-नायक (देवाधिदेव, देवों में प्रथम पूज्यं) गणेश के वाहन अर्थात् मूषक के भक्ष्य कपड़ों को उन्होंने हम लोगों के साथ ही धारण करते एवं खाते-पीते हुए कोई लज्जा नहीं मानी। वृक्ष भाग (स्कंध पर) अर्थात् कंधे पर हम लोगों को लिये फिरे तब क्या उनका विचार प्रौढ़ एवं सूक्ष्म नहीं था। उन्हीं के निमित्त 'काव्यार्थापत्ति' अलंकार रचा है। सूरदासजी कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि यदि मछली के समान हम लोगों ने प्राण नहीं छोड़ दिये तो जो मन में आवे सो कह डालना।

अब रत्नावली (The jawelled necklace) अलंकार की चमक देखिये।

जहाँ प्रस्तुत अर्थ में ढूँढ़ने से और-और व्यक्तियों के नाम निकले वहाँ 'रत्नावली' अलंकार होता है।

भई है कहा प्रथम सी बाल?
द्वितिय सूर मिल सुता तृती हित चाहब त्योंहि गुपाल॥
चौथ सिंगार पंच कर षट्बुध करीं षष्ठईं चाल।
सतईं तोल आदि सों मारो फिरत बाल बेहाल॥
नव तो छोड़ अवर नहिं ताकत दस जिन राखो साल।
एकादस लै मिलौ बेग ही जानो नवल रसाल॥
द्वादस सो तलफत पिय प्यासे सुरुचि सम्हारो लाल।
सूर स्याम 'रतनावलि' पहिरो हो मण्डिन हित हाल॥

अर्थात् हे सखी, प्रथम राशि अर्थात् भेड़-सी किंकर्तव्य-विमूढ़ क्यों बन रही हो? द्वितीय राशि अर्थात् वृष के सूर्य (भानु) याने वृषभानु की पुत्री राधा से श्रीकृष्ण तृतीय हित चाहत अर्थात् मिथुन-मिलन—चाहते हैं। क्योंकि उसने चौथ अर्थात् कर्क (करके) याने शृङ्गार करके पञ्च-कर याने सिंह की सी कमर से षट बुध षष्ठईं चालकरि अर्थात् कन्या के समान चाल-ढाल और भोलापन दिखाकर सतईं तोल अर्थात् तराजू से तोल-तोल कर आठ सों मारो अर्थात् बिच्छू सा डङ्क मारा है अतः लाल बेहाल हैं। इस-लिए नवम धन अर्थात् उस धनी (धन्यवादार्ह स्त्री) को छोड़ कर और किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। इसलिए हे सखी दस अर्थात् मकर (म + कर) [म = मान, छल-प्रपञ्च। यहाँ 'नामैकं देशग्रहणे नाममात्रस्य-ग्रहणाम्' माना गया है।] मान मत करो या प्रपञ्च मत पसारो, वह और भी चित्त में सालने लगता है। अतः एकदश अर्थात् दधि का घट लेकर नवीन रसिकशिरोमणि नायक से मिलो। वे प्रियतम द्वादश अर्थात् मीन के समान तड़फड़ा रहे हैं, उन्हें प्रेम से प्रसन्न करो। हे रत्नावलि! श्याम रत्नावली धारण कर तुम्हारा भला चाहते हैं।

अब निचले पद्य में विषाद The Despondency अलङ्कार का निरालापन भी देखिए। अभीष्ट अर्थ से विरुद्ध अर्थ की प्राप्ति यदि दिखाई जाय तो 'विषाद' अल-ङ्कार होता है।

हौं अलि कितने जतन बिचारौं।
वह मूरति वाके उर-अन्तर बसी, कौन विधि टारौं!
जब हौं कहत लाज की बातें तब अति व्याकुल होई।
चन्द्र चौथ निकसत सो मोको जान परत बल सोई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरभी तमजा-सुत-पितु नाहीं चलत हार नित हेरौं।
अपस्मार जहँ सूर सम्हारत बढ़ विषाद उर पेरौं॥

अर्थात् हे सखी, उसको मैं किस प्रकार समझाऊँ? उसके हृदय में श्रीकृष्ण की मूर्ति बसी है; अतः उसे कैसे हटाऊँ? जब मैं उसे लज्जा की बातें समझाती हूँ तब वह बहुत घबड़ाती है। 'चन्द से चौथ' अर्थात् चन्द्रमा से चौथा ग्रह बृहस्पति अर्थात् उसका जीव हठात् निकलता-सा जान पड़ता है। सुरभी के पर्याय गो + तम अर्थात् गोतम ऋषि की जाया (जा = जाया) अञ्जनी के पुत्र हनुमान के पिता पवन अर्थात् साँस भी नहीं चल रही है। अपस्मार की-सी उसकी दशा हो रही है; अतः 'विषाद' अलङ्कार है।

अब नीचे लिखे पद्य में 'उदात्त' अलङ्कार The Exalted अलङ्कार का अनोखापन भी परखिये। जब समृद्धि का विशेष कथन किया जाय तब 'उदात्त' अलङ्कार होता है।

खेलौ भानुजा के भौन।
हौं कहत बलि जाउँ बाहर कहा हित ते गौन॥
दिन-दिनन में लगे माणिक सिया-रिपु-पितु हेर।
लाज मानत रहत निशि-दिन सकत ना मुख फेर॥
खचर खेलन हेतु आवत आपते सत कोट।
नचत हैं सारङ्ग सुन्दर करत शब्द अनेक॥
सबै तव हेतु देखन चल्यो आवंत लाल।
संभु-भूसन बदन बिलसत कञ्ज ते गुहि माल॥
यह 'उदात' अनूप भूसन दियो सब घर तोर।
सूर सबरे लच्छनन युत सहित सब तृन तोर॥

यशोदाजी ब्रजवल्लभ से कहती हैं कि मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, तुम भानुजा अर्थात् यमुनाजी के घर में खेलो; बाहर जाने से क्या लाभ है? दिन के पर्याय 'वार' अर्थात् सभी द्वारों में माणिक्य जड़े हैं, जिन्हें देखकर सिया-रिपु जयन्त के पिता इन्द्र भी लज्जित हो जाते हैं। और सामने सिर नहीं उठाते अर्थात् तुम्हारा ऐश्वर्य अपार है। खचर अर्थात् पतङ्ग उड़ाने का खेल खेलने को बिना बुलाये अनेकों गोप-बालक आते हैं। सारङ्ग अर्थात् भौंरा नामक (बिनौ) खिलौने नाचते हैं और मधुर शब्दों से मन को मोह लेते हैं। तुम्हारे दर्शनार्थ सारे ब्रजवासी आते हैं। शम्भुभूषण-वदन अर्थात् चन्द्रवदनी स्त्रियाँ अपने अपने 'कंजते गुहिमाल' अर्थात् कर कमलों से तुम्हारे लिये मालाएँ गूँथ लाती हैं। इस प्रकार के उदात्त अलङ्कार तुम्हारे परखे हैं। सूरदासजी कहते हैं कि इस हेतु सब के सब तुम्हें दीठ न लग जाय इसलिये तिनका तोड़ते हैं।

इस पद्य में उदात्त अलङ्कार के सिवाय 'भानुजा के घर में' जहत्स्वार्था लक्षणा है तथा 'खचर खेलन हेतु आवत आपते शतकोट' में अजहत्स्वार्था लक्षणा भी है। 'कंजते गुहिमाल' में परिणाम Cammutation अलंकार भी है। जहाँ उपमेय का काम (उपमेय की सहायता से) उपमान द्वारा ही किया हुआ कहा जाय वहाँ परिणाम अलङ्कार होता है। परिणाम अलंकार में 'होना' और 'करना' इन धातुओं के अर्थवाली क्रियाओं का प्रयोग होता है। रूपक में केवल अलङ्कार के लिये उपमेय के साथ उपमान की योजना रहती है, परन्तु परिणाम में उपमेय का काम (उपमेय की सहायता से) उपमान से लेने के लिये ही उपमेय के साथ उपमान की योजना की जाती है।

इसी तरह प्रतिषेध अलङ्कार Prohibition के प्रयोग को भी बानगी देखिये। जहाँ प्रसिद्ध अर्थ का निषेध किया जाय वहाँ प्रतिषेध अलङ्कार होता है।

द्वितिय रासि दिनपति-पुर नाहीं।
जहाँ कीन तुम सब मन भाई रोकत भये न को पर छाहीं॥
यहै हेमपुर अष्ट सुरन सुत! दिनपति ही को बास।
समझ बूझि कै काम बीजिये राख-राख उर भास॥
यों 'प्रतिषेध' अलंकृत जब हूँ सुमुखी सरस सुनायो।
'सूर' कही मुसक्याय प्राण प्रिय मो मत एक गनायो॥

श्री रुक्मिणीजी श्रीकृष्णजी से कहती हैं कि यह द्वितीय रासि दिनपतिपुर (द्वितीय राशि दिनपतिपुर) अर्थात् वृषभानु नगर (द्वितीय राशि वृष, दिनपति भानु, पुर = नगर) नहीं है; जहाँ आपने मनमानी घरजानी की थी और किसी ने रोका नहीं। यह तो हेमपुर अर्थात् कुन्दनपुर है। हे अष्टसुरन सुत अर्थात् हे वासुदेव! (अष्ट = वसु, सुर = देव) जहाँ दिनपति अर्थात् सूर (शूर) अर्थात् तेजस्वी वीरों का बास है। यहाँ पर मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मे भय करते हुए समझ बूझकर काम कीजिए । इस प्रकार सुमुखी रुक्मिणीजी ने जब प्रतिषेध अलङ्कार सुनाया तब सूरदासजी कहते हैं कि भगवान् ने मुसकाकर कहा कि मेरे लिये वृषभानुपुर और कुन्दनपुर एक ही समान हैं ।

अब अन्त में युक्ति अलङ्कार Covert speech की युक्तता दिखाकर लेख समाप्त किया जाता है ।

का विपरीत भवन में धारा ।
बैठी हती अकेली सुन्दर लिखत रूप सुत-सुत मारा ॥
दधिसुत-अरिभख-सुत-स्वभाव चल तहाँ उवाहुल आई ।
देख ताहि सुर लिख कुबेर को चित्त तुरत समुझाई ॥
करत व्यङ्ग से व्यङ्ग दूसरो 'युक्ति' अशंकृत माहीं ।
सूर देखि ग्वालिन की बातें कंत समुझ तहाँ हीं ॥

अर्थात् अपने भवन में धारा के विपरीत अर्थात् राधा अकेली बैठी सुत सुत अर्थात् नन्द नंदन का चित्र लिख रही थी । इतने में ही दधिसुत अर्थात् उदधिसुत चन्द्र के अरि राहु के भक्ष्य सूर्य के पुत्र कर्ण के स्वभाववाली अर्थात् सखी (फारसी में दासी को सखी कहते हैं, यहाँ उसका तद्भव सखी अर्थ लिया गया है ।) उत्सुकता-वश वहाँ आई । उसको देखकर सुर (के पर्याय) अर्थात् सुमन (अर्थात् पुष्प), कुबेर अर्थात् धन (धनु से तात्पर्य है) का चित्रण किया । सारांश यह कि चित्र के हाथ में फूलों का धनुष बना दिया और उसे यह समझा दिया कि मैं काम-देव का चित्र रच रही थी । इसमें सखी ने जो राधिका को उलाहना दिया था कि तेरा प्रेम श्रीकृष्ण पर है उसे छिपाया और सखी के प्रति यह दूसरा व्यंग्य किया कि पुष्पबाण (कामदेव) तुम्हारे ऊपर सवार है और तू और को लगा रही है अतः सूरदासजी कहते हैं कि यह 'युक्ति' अलङ्कार हुआ ।

यद्यपि उपर्युक्त सभी पद्य दृष्टिकूट एवं अलङ्कारों के ज्ञान कराने के निमित्त ही महाकवि द्वारा रचे गये हैं, पर इनमें कहीं भी रस-भङ्ग नहीं है; क्योंकि कहीं भी अनौचित्य को स्थान नहीं दिया गया है और अनौचित्य के सिवा रस-भङ्ग का दूसरा कोई कारण नहीं । चमत्कार-प्रदर्शन की प्रमुखता के कारण कहीं-कहीं व्यंग्य के गूढ़ हो जाने की बात कही जा सकती है; किन्तु उद्देश्य की भिन्नता के चलते वह क्षम्य है ।

सभी पद्य मुक्तक हैं; अतः कथानक, नायिका-नायक-भेद आदि की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हैं और दूसरे से अत्यन्त ही विलग एवं असम्बद्ध भी । अतः दूसरे पद्यों के साथ इनके तारतम्य का विवेचन उचित नहीं । इनमें कहीं भी मधुररस एवं भक्ति की पावन धारा खण्डित नहीं हो पाई है । आलम्बनों, उद्दीपनों, अनुभावों, संचारी तथा स्थायी भावों की तीव्रता के मनोहर और प्रचुर नियोजनों के चलते रस-परिपाक का निर्वाह बड़ी कुशलता से हुआ है । जगह-जगह आवश्यकतानुसार शब्दों के तोड़-मरोड़ भी हैं और विदेशी शब्दों का प्रयोग भी, पर उन्हें अपना बनाकर ।

साहित्य-सन्देश के सहायक ग्राहक बनने के नियम और निवेदन

जैसा पहले भी प्रकाशित किया जा चुका है, हम साहित्य-सन्देश के कुछ सहायक ग्राहक बना रहे हैं । इन ग्राहकों को वार्षिक मूल्य नहीं देना होगा । उन्हें केवल १००) एक बार जमा करा देने होंगे । जब तक यह रुपये जमा रहेंगे तब तक उन्हें साहित्य-सन्देश बिना मूल्य मिलेगा । सहायक महोदय जब ग्राहक नहीं रहना चाहें, तब उनका रुपया एक महीने की सूचना मिलने पर वापस कर दिया जाता है । कार्यालय से एक आना की स्टाम्प लगी रसीद मिलती है, जिसे रुपया लौटाते समय वापस करना होता है—

हम अपने कृपालु पाठकों और ग्राहक अनुग्राहक महोदयों से निवेदन करेंगे कि वे हमारी इस योजना से स्वयं लाभ उठा कर हमें सहयोग प्रदान करें । —सञ्चालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का नाटक साहित्य—संक्षिप्त रूप रेखा

डा० सुधीन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

भारत का नाटक-साहित्य संस्कृत भाषा में इतना समृद्ध रहा है, कि उसके आगे प्राचीन विदेशी नाटक ने भी हार मानी है। जिस नाटक साहित्य ने अभिज्ञान शाकुन्तल (कालिदास) जैसे विश्वविख्यात नाटक को प्रस्तुत किया हो उसे संसार का गौरवमय साहित्य कहा ही जाना चाहिए। परन्तु हिन्दी भाषा में नाटक का सम्बन्ध कविता से उतना नहीं है जितना 'गद्य' से है और गद्य-साहित्य का माध्यम विकसित अवस्था में ही बनता है। इस आदि-काल में जो हिन्दी के नाटक उपलब्ध हुए हैं वे नाटक कहलाते अवश्य हैं परन्तु उनमें नाटकीय तत्वों का अभाव है। वे श्रव्य-काव्य अधिक हैं, दृश्य काव्य नहीं क्योंकि वे प्रायः पद्य के बाने में 'सम्भाषण' है। जो कुछ गद्य उनमें है वह व्रज भाषा में है, आज की गद्य-भाषा में नहीं। इसके अतिरिक्त वे नाटक मौलिक भी नहीं हैं, क्योंकि वे या तो प्राचीन संस्कृत नाटकों के अनुवाद हैं, या छाया।

प्रयोगावस्था (पूर्व भारतेन्दु काल)—गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन जैन कवि बनारसीदास ने 'समय सार' नाटक लिख कर हिन्दी में नाटक का सूत्रपात किया। मध्य काल के इने-गिने नाटक इस प्रकार हैं :—

चौदहवीं शताब्दी—

विद्यापति ठाकुर—पारिजात हरण, रुक्मिणी हरण।
केशवदास—विज्ञान गीता।
कृष्णजीवन—करुणाभरण।
हृदयराम पंजाबी—हनुमन्नाटक।
महाराज जसवन्तसिंह (जोधपुर)-प्रबन्ध चन्द्रोदय (अनुवाद)

अठारहवीं शताब्दी—

नेवाज कवि—शकुन्तला (उपाख्यान)।
रघुराम नागर—सभासार।
देव—देवमाया प्रपञ्च।
आलम—माधवानल कामकन्दला।

उन्नीसवीं शताब्दी—

रीवा नरेश विश्वनाथसिंह—आनन्दरघुनन्दन।
मनसाराम—रघुनाथ रूपक गीतां रो।
व्रजवासीदास—प्रबोध चन्द्रोदय।

इनमें हनुमन्नाटक, प्रबोधचन्द्रोदय, शकुन्तला, देव-माया, प्रपञ्च और आनन्द रघुनन्दन ही विशेष महत्वपूर्ण हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आनन्द रघुनन्दन नाटक का आदर के साथ उल्लेख किया है। उसमें सम्वाद है, अङ्क-विधान और पात्र-विधान भी है। इन सब नाटकों का आधार पौराणिक कथाएँ हैं। और सब नाटक या तो अनुवाद हैं या पद्यात्मक सम्भाषण। नाटक के अन्य तत्वों का इनमें अभाव है। मुगल काल में नाटक की उन्नति न होने का कारण यह हो सकता है कि मुसलमानी धर्म में नाटक कुरान के आदर्शों के प्रतिकूल है इसलिए इस कला को कोई प्रोत्साहन न मिल सका। मुगल काल में सङ्गीत और चित्र कला की तो उन्नति हुई परन्तु नाट्य कला की नहीं। केवल ग्राम्य जीवन में हीन कोटि के रूपक (स्वाँग) साँस लेते रहे, अथवा उन क्षेत्रों में जहाँ हिन्दू राज्य था। फिर भी अखिल भारतीय वातावरण का प्रभाव इतना था कि इस कला का उत्कर्ष दब गया था। गाँवों में रास लीला, रामलीला में ही नाटक की इतिश्री हो गई थी। पूरन भक्त, राजा गोपीचन्द आदि के स्वाँग-पूर्ण अभिनय उसी के अवशेष हैं। इस काल को प्रयोगावस्था ही कहा जाना चाहिए।

भारतीय जीवन में और साहित्य में सच्चा पुनर्जागरण (Renaissance) और नवजीवन आया पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क और संसर्ग से। अँग्रेजी राज्य के साथ अँग्रेजी भाषा और साहित्य ने भारतीय जीवन पर शुभ प्रभाव डाला और नवजीवन की शक्तियाँ जाग्रत हुईं। अंग्रेजी के समृद्ध साहित्य का प्रभाव भारत की सभी भाषाओं पर पड़ा है। बंग भाषा इस सब में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे है और उसके पश्चात् हिन्दी का स्थान है।

इस नव जागरण के वातावरण में भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र (गिरधर दास) ने विशुद्ध नाटक रीति के अनुसार 'नहुष' नाटक की सृष्टि की और इसीलिए भारतेन्दुजी ने इसे हिन्दी का सर्व प्रथम नाटक कहा है। इसमें नाटकीय तत्वों का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसी के आस पास राजा लक्ष्मणसिंह ने कालिदास के शाकुन्तल का हिन्दी अनुवाद 'शकुन्तला' के रूप में किया। हिन्दी नाटक साहित्य में विकास के चिह्न भारतेन्दु के उदय के साथ प्रकट हुए। वे संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी साहित्य के ज्ञाता थे। हिन्दी में इस अभाव की पूर्ति का बीड़ा उन्होंने उठाया। नाटक-लेखन का कार्य उन्होंने बड़े मनोयोग और प्रतिभा के साथ सम्पन्न किया। यद्यपि उनका यह कार्य अनुवाद से प्रारम्भ हुआ, परन्तु उसका अन्त अनेक मौलिक नाटकों से हुआ। अभी तक के नाटक धार्मिक और पौराणिक ही थे। वे ब्रजभाषा में थे और वे पद्यात्मक। परन्तु भारतेन्दु की लेखनी से पौराणिक ही नहीं, सामाजिक और राष्ट्रीय भावना से पूर्ण कई कल्पना-प्रधान नाटकों का जन्म हुआ। श्री चन्द्रावली नाटिका, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, नीलदेवी आदि उनकी मौलिक नाट्य कृतियाँ हैं। उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) सामाजिक राजनैतिक—अन्धेर नगरी, प्रेमजोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, भारत जननी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।

(२) पौराणिक—सत्य हरिश्चन्द्र, सती प्रताप, चन्द्रावली।

(३) ऐतिहासिक—नीलदेवी।

इस प्रकार भारतेन्दुजी ने विविध नाट्य साहित्य की सृष्टि की।

उनके अनुवादित या रूपान्तरित नाटकों का परिचय इस प्रकार है:—

	भाषा	मूल नाटक	मूल लेखक	अनुवाद-नाम
(१)	प्राकृत	कर्पूर-मञ्जरी	राजशेखर	कर्पूर-मञ्जरी
(२)	संस्कृत	मुद्रा-राक्षस	विशाखदत्त	मुद्रा-राक्षस
(३)	संस्कृत	रत्नावली	हर्ष	रत्नावली
(४)	,,	प्रबोध चन्द्रोदय	कृष्ण मिश्र,	पाखंड विडम्बन (तीसरा अंक)
(५)	,,	धनञ्जय विजय	वाच्चन कवि	धनञ्जय विजय
(६)	,,	विद्या सुन्दर	चौर कवि	विद्यासुन्दर
(७)	बंगला	भारत माता	(?)	भारत जननी
(८)	अंग्रेजी	मरचैंट ऑफ वेनिस	शेक्सपीयर	दुर्लभ बन्धु
(९)	संस्कृत	चंडकौशिक	....	सत्य हरिश्चन्द्र

भारतेन्दुजी बहुभाषा विद्वान् थे। उन्होंने विख्यात नाटकों को ही अनुवाद के लिए चुना है और उनके अनुवाद भी उच्चकोटि के हैं।

भारतेन्दु नाट्य-कला—भारतेन्दु एक सफल कवि ही नहीं विद्वान् और विचारक भी थे। संस्कृत और अंग्रेजी नाट्य-कला तथा नाट्य शास्त्र के वे मर्मज्ञ थे। उनका समन्वय करते हुए उन्होंने हिन्दी में नवीन नाट्य-शास्त्र को जन्म दिया। नाटक के अध्ययन से पता चलता है कि वे रूढ़िपूजक या परम्परा भक्त नहीं थे। प्राचीन नाट्याचार्यों से उन्होंने ग्रहण किया है परन्तु उसका अन्धानुकरण नहीं किया है। युग की सामान्य स्थितियों के प्रकाश में उन्होंने नाट्य कला को कुछ नवीन रूप दिया है। कई अप्रयुक्त अव्यर्थ विधानों का उन्होंने परित्याग किया और नवीन रीति और शैली का अङ्गीकार। यदि संस्कृत साहित्य में भरत मुनि का नाट्य शास्त्र अग्रगण्य है तो हिन्दी में भारतेन्दु का 'नाटक'। उन्होंने समन्वयात्मक दृष्टि से इसमें प्राचीन कला और नवीन रीति का सुखद समन्वय किया। नाटक प्रहसन, भाण और नाटिका जैसे रूपक-उपरूपक के विभिन्न भेदों को ध्यान में रख कर उन्होंने अपने नाटक लिखे। यदि वे दीर्घायु होते तो निस्सन्देह उनके हाथों प्राचीन भारतीय नाट्य शास्त्र का उद्धार और संस्कार हुआ होता। भारतेन्दुजी के नाटकों में भारतीय और पाश्चात्य कला का मधुर संगम है। उन्होंने अपने कई नाटकों में शास्त्रीय नान्दीपाठ, मङ्गलाचरण और प्रस्तावना का भी बहिष्कार किया है। अंकों की योजना अंग्रेजी के 'दृश्य' के अनुरूप हुई है। जिस समय भारतेन्दु का आविर्भाव हुआ उस समय उत्तर भारत में पारसी थिये-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टरों का बोलबाला था, जिन्होंने अपने तड़क-भड़क वाले परदों, विचित्र वेश-भूषाओं और कुरुचिपूर्ण अभिनय से नाट्य-कला को इतना नीचे गिरा दिया था कि नाट्य का नव पल्लव मुरझा गया। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ नाटकों का कुरुचि-पूर्ण प्रदर्शन होता था। नाटक में भारतेन्दुजी ने ही लिखा था—

"काशी में पारसी नाटक वालों ने नाच घर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खैमटे वालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटक कर नाचने और पतली कमर बलखाय यह कहकर गाने लगा तो डा० थीबो, बाबू प्रमदा दास मित्र प्रभृति विद्वान् यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं।"

वस्तुतः इसी से प्रेरणा मिली भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को सुरुचि पूर्ण नाटक प्रस्तुत करने की। वे सभ्य, संस्कृत और प्रतिभाशाली कवि के साथ-साथ कुशल अभिनेता भी थे। उन्होंने नाटक के क्षेत्र में युगान्तर ही कर दिया। मौलिक हिन्दी नाटकों के पिता भारतेन्दु ही थे। उनके नाटकों में जीवन के विविध अङ्ग प्रतिविम्बित हुए। समाज-सुधार के महान् उद्देश्य को लेकर उन्होंने नाटक लिखे और उसमें यथार्थवादी चित्र अङ्कित किए। वे कैसे देश-भक्त थे इसका प्रतिविम्ब 'भारतदुर्दशा' रूपक में है। हास्य विनोद व्यंग्य के साथ-साथ साहित्यिक सौन्दर्य उनके नाटकों में मिलता है। 'भारतेन्दु' एक युग-नायक साहित्यकार थे। उनके पथ चिह्न साथियों और अनुगामियों के लिए मार्ग दर्शक बने। भारतेन्दु की नाटक-परम्परा को उतने ही वेग से चलाने वाले नाटककार बहुत काल तक नहीं हुए। अतः उनके अस्त होते ही हिन्दी के नाटक-साहित्य में फिर अन्धकार छा गया। उसमें केवल इने गिने नाटककार दीपक जलाते रहे। इस प्रकार नाटककारों में सबसे पहिला स्थान है लाला श्रीनिवासदास का। उनके रणधीर और प्रेममोहिनी, तप्ता-संवरण और संयोगिता स्वयम्वर नाटक मौलिक नाटक कृतियाँ हैं। राधाकृष्णदास का 'महाराणा प्रताप' एक श्रव्य ऐतिहासिक नाटक है। इनके अन्य नाटक हैं दुःखिनी वाला महारानी पद्मावती आदि।

अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रद्युम्न विजय', 'व्यायोग' तथा 'रुक्मिणी परिणय' भी उल्लेखनीय हैं। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी कई अच्छे नाटक लिखे जिनमें 'भारत सौभाग्य' प्रसिद्ध है। प्रतापनारायण मिश्र ने 'भारत दुर्दशा रूपक' और 'कलिकौतुक रूपक' तथा अम्बिकादत्त व्यास ने 'गोसङ्कट नाटक' अपने युग की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को लेकर लिखे। बालकृष्ण भट्ट ने 'बालविवाह', 'रेल का विकट खेल', 'कलिराज की सभा' आदि तथा राधाचरण गोस्वामी ने भी सती चन्द्रावली, अमरसिंहराठौर, बूढ़े मुहमुँहासे, श्रीदामा, भक्तराज आदि नाटक लिखे।

इस युग में मौलिक नाटकों की अधिक सृष्टि नहीं हुई। इसका कारण यह था कि रोचक उपन्यासों का प्रचार अधिक था और नाटक के लिए रंगशाला उपयुक्त न थी। रङ्ग मञ्च पर आधिपत्य था पारसी नाटक कम्पनियों का जिनका सम्बन्ध कला से नहीं पैसे से था। वे उर्दू संस्कृति के साँचे में ढली और उसके ढाँचे में पली हुई थीं अतः हिन्दी नाटक उनके लिए काम के नहीं थे। फिर हिन्दी नाटक को प्रोत्साहन कैसे मिलता? लोक-रुचि जब भ्रष्ट हो जाती है तो उसे परिष्कृत करना एक दुष्कर कार्य होता है जिन्हें पारसी थियेटरों की 'इन्दर सभा', 'गुलबकावली', 'लैलामजनूं' जैसे नाटकों का व्यसन लग गया हो उन्हें देश हित, समाज सुधार आदि ऊँचे भावों को लेकर लिखे हुए नाटक कैसे रुचिकर हो सकते थे? जिन्हें सस्ते कामुक गानों में रस आता हो वे उच्च भावों से ओत-प्रोत गीतों की ओर कैसे जा सकते थे?

भारतेन्दु-मण्डल के कुछ उत्साही सदस्य ही अभिनय का साहस करके अपने वृत्त के नाटकों का नाट्य के लिए करते थे।

इस काल में नाटककारों का ध्यान प्राचीन संस्कृत नाट्य-साहित्य की अमर निधियाँ हिन्दी में लाने की ओर अधिक रहा। लाला सीताराम 'भूप' ने भवभूति के 'उत्तर रामचरित', 'महावीर चरित' और 'मालती माधव' के तथा कालिदास और शूद्रक के कुछ नाटकों का अनुवाद किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँग्रेजी साहित्य की ओर भी आकर्षण कम न था। सब से पहले तोताराम वर्मा ने जासफ ऐडिसन के केटो नाटक का 'कैटो वृत्तान्त' नाम से अनुवाद किया। विदेशी नाटक के अनुवाद का श्री गणेश इसी के द्वारा हुआ। भारतेन्दु तो अंग्रेजी की ओर पीछे झुके। फिर तो यह द्वार भी खुल गया और शेक्सपियर के कई नाटकों का हिन्दी रूपान्तर हुआ जैसे जयपुर के प्रधान मन्त्री पुरोहित गोपीनाथ ने 'मनभावन' (As you like it) मथुराप्रसाद उपाध्याय ने साहसेन्द्र साहस (Mocbeth) को प्रस्तुत किया। नाटककारों का ध्यान बङ्गला से अनुवादित भारतेन्दु के 'भारत जननी' आदि की देखा-देखी बङ्गला भाषा की ओर भी गया और इसमें सब से आगे आये बाबू रामकृष्ण वर्मा। श्री केशवराम भट्ट ने बङ्गला के नाटकों से ही आधार लेकर 'मुज्जाद सन्बुल' और 'शमशाद सौसन' नाटक प्रस्तुत किये।

द्विवेदी कालीन नाटक—नाटक साहित्य की दृष्टि से द्विवेदी काल में कोई नवीनता नहीं दिखाई देती। यह अवश्य है कि इस काल में कुछ नये नाटककार प्रकट हुए जैसे सत्यनारायण कविरत्न और रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण'। किंतु जिन नाटकों की धूम जनसाधारण में रही है वे हैं—राधेश्याम कथावाचक, आगाहश्र काश्मीरी, नारायणप्रसाद बेताब, श्रीकृष्णजौहर, तुलसीदत्त शैदा, विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल'।

उपर्युक्त विविध नाटककारों में सत्यनारायण के अतिरिक्त सभी मौलिक नाटककार हैं। पूर्णजी का महानाटक 'चन्द्रकला-भानुकुमार' प्रसिद्ध है। परन्तु वह साहित्यिक दृष्टि से ही पठनीय है। शेष नाटककारों ने पारसी थियेटर की रङ्गशाला के प्रभाव से रङ्गमञ्चीय नाटक लिखे। नाटकीयता की दृष्टि से इनमें कई प्रकार की त्रुटियाँ रहीं जैसे सम्भाषण में पद्यों की भरमार और गद्य में भी तुक का जमघट। इन सबके नाटक पौराणिक हैं जैसे 'वीर अभिमन्यु', 'श्रीकृष्णावतार', 'परमभक्त प्रह्लाद', 'श्रवणकुमार', 'पतिभक्ति', 'महाभारत' इत्यादि।

मौलिक नाटकों में पंडित बदीनारायण भट्ट के 'दुर्गावती', माखनलाल चतुर्वेदी के 'कृष्णार्जुन युद्ध', और मिश्रबन्धुओं के 'नवनोन्मीलन' का अपना स्थान है। उनमें साहित्यिक सौन्दर्य तो अवश्य है परन्तु रङ्ग-मञ्च की अनुकूलता नहीं। इनमें भी पद्यों का प्रयोग हुआ है। मैथिलीशरण गुप्त का 'चन्द्रहास' और 'अनघ' पद्य-रूपक हैं। माधव शुक्ल का 'महाभारत' भी प्रसिद्ध नाटक है। द्विवेदी काल में नाटकों में परिवर्तन अवश्य दिखाई दिया। भाषा परिष्कृत और परिमार्जित हुई है और भाव धार्मिक के साथ-साथ सामाजिक राजनैतिक विषयों की ओर। रङ्गमञ्च के अभाव में यह नाटक जनता के सामने न आ सके और केवल साहित्य के पाठकों के ही मनोरञ्जन की वस्तु रहे।

प्रसाद-कालीन नाटक—हिन्दी के नाटक साहित्य में गौरवपूर्ण युगान्तर आया श्री जयशङ्कर प्रसादजी के एक राशि पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों से। उनमें एक बहुमुखी प्रतिभाशाली साहित्य स्रष्टा की अभूतपूर्व कला जाग्रत हो उठी जिसमें देश ने देखा प्राचीन गरिमामय अतीत का सांस्कृतिक आलोक और जिसमें साहित्य रसिकों ने पाया मनोमुग्धकारी काव्य रस। प्रसाद के नाटकों के द्वारा मानो हमारा स्वर्णिम अतीत अपने नाना मुखों से आत्म गायन करने लगा। प्रसादजी ने यद्यपि 'कोलाहल की अवनी' तज कर किसी स्वर्णिम लोक की ओर अपनी कल्पना की नौका को प्रचालित किया परन्तु उनका सम्बन्ध वर्तमान जीवन की समस्याओं से नहीं छूटा। प्रसादजी के नाटक पौराणिक और ऐतिहासिक भित्ति पर खड़े हुए सांस्कृतिक भवन हैं जिनमें इस प्राचीन और पुरातन देश का महिमामय जीवन शतसहस्र स्वरों में गा रहा है। उनकी लेखनी से जो नाटक प्रसूत हुए उन्होंने इतिहास के अन्धकारमय पृष्ठों पर स्वर्णिम आलोक विकीर्ण किया। उनका वर्गीकरण इस प्रकार होगा:—

पौराणिक—(क) जनमेजय का नाग यज्ञ, सज्जन और करुणालय।

ऐतिहासिक—

(क) बुद्ध काल—अजातशत्रु।

(ख) मौर्यकाल—चन्द्रगुप्त।

(ग) गुप्त काल—स्कन्दगुप्त और ध्रुवस्वामिनी।

(घ) हर्ष काल - राज्यश्री।

(ङ) राजपूत काल—प्रायश्चित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावात्मक काल्पनिक रूपक—'कामना' और 'एक घूँट'

ऐतिहासिक नाटकों में प्रसादजी ने मध्ययुग के हिन्दू-काल का जीवन प्रस्तुत किया है। परन्तु उसमें ऐसी शाश्वत और सामाजिक समस्याएँ उठाई हैं जो आज भी अपना समाधान हमसे माँगती हैं।

प्रसादजी के नाटकों में एक ऐसा वातावरण है जो हमें उठाकर उसी युग में पहुँचा देता है। उसमें एक प्रकार की गौरवपूर्ण विराट भावना की अनुभूति पाठक के मन में होती है। इसे हम आज की जड़ता की दृष्टि से सांस्कृतिक चेतना का नाम दे सकते हैं। कला और शिल्प की दृष्टि से भी इसके नाटक एक ऐसी ऊँचाई पर हैं कि जिस तक पहुँचने में भावी पीढ़ी को भी श्रम करना पड़ेगा। आर्य जाति के ब्राह्मण और बौद्ध संस्कृतियों का सत्य-दर्शन इसके नाटकों में अन्तर्भूत है, अन्तरंग और बहिरंग दोनों में ये नाटक उदात्त और उज्ज्वल हैं। वे यद्यपि आज के दरिद्र दुर्बल रंग मञ्च के लिए अगम्य हैं फिर भी उनकी कला-पूर्णता और श्रेष्ठता अप्रतिद्वन्दित है। प्रसादजी के पीछे ही आए श्री हरिकृष्ण प्रेमी जिन्होंने इतिहास के आधार पर कई नाटक लिखे परन्तु उनका क्षेत्र मध्य-युग का मुसलमान काल रहा। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं रक्षाबन्धन, शिवासाधना, स्वप्न भंग, प्रतिशोध इत्यादि। इन सब ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीयता का नैतिक पक्ष नाटककार ने लिया है और उसमें गान्धीवाद के आदर्शों की पूरी छाप है जैसे हिन्दू मुस्लिम एकता। श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रताप प्रतिज्ञा के द्वारा, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क जय पराजय के द्वारा ऐतिहासिक चित्राधार प्रस्तुत करते हैं। श्री उदयशङ्कर भट्ट ने दाहर अथवा सिन्धु पतन ऐतिहासिक और अम्बा, सगर विजय जैसे पौराणिक नाटक लिखे हैं। इन सब नाटकों में एक प्रकार की नैतिक राष्ट्रीयता की चेतना मिलती है। कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये जो पौराणिक अथवा विदेशी घटना या चरित्र को लेकर किसी नैतिक आदर्श की प्रेरणा देते हैं जैसे श्री उग्र का महात्मा ईसा। बद्रीनाथ भट्ट का 'तुलसीदास', 'दुर्गावती', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का 'अशोक', गोविन्द बल्लभ पन्त का 'राजमुकुट', 'अन्तःपुर का छिद्र' इत्यादि।

इस युग में एक ऐसे नाटककार भी सामने आए जिन्होंने राष्ट्र के जीवन का और इतिहास का कोई कोना और कोई अंश नहीं छोड़ा और अपनी प्रतिभा सभी क्षेत्रों में दिखाई। वे नाटककार हैं:—सेठ गोविन्ददास। इन्होंने काल्पनिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक प्रश्नों को लेकर अनेक नाटक हिन्दी को दिये। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं 'कर्तव्य' जिसमें राम और कृष्ण का जीवन है, हर्ष और शशि गुप्त जिनमें उक्त ऐतिहासिक पुरुषों का जीवन है, प्रकाश, स्वयं सिद्धस्त, स्वातन्त्र्य, कुलीनता जिनमें भिन्न-भिन्न सामाजिक राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक प्रश्न लिये गये हैं। इस काल में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने हिन्दी में (इब्सन आदि नाटककारों के प्रभाव से) समस्या-नाटकों का श्री गणेश किया। उनके नाटक राक्षस का मंदिर, सन्यासी, सिन्दूर की होली आदि में 'समस्या' ही प्रखर मुखर है। इस काल के अन्य प्रमुख नाटककार हैं—वर माला और अंगूर की बेटी के लेखक गोविन्दबल्लभ पन्त, स्वर्ग की झलक आदि के लेखक उपेन्द्रनाथ अश्क, और आवारा आदि के लेखक पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र आदि।

नवीन धाराएँ—इस युग में नाट्य साहित्य के क्षेत्र में कुछ ऐसी नवीन दिशाएँ भी प्रकट हुई हैं जिनसे नाटककारों की विशाल कल्पना-प्रतिभा को क्षेत्र मिलता है। वे हैं:—

(१) कल्पना प्रधान रूपक
(२) गीति नाट्य या गीति रूपक
(३) एकाङ्की नाटक
(४) ध्वनि नाट्य (रेडियो प्ले)

(१) कल्पना प्रधान रूपक का सूत्रपात प्रसादजी ने ही किया। अपने 'एक घूँट' और 'कामना' नाटिका के द्वारा। सुमित्रानन्दन पन्तजी ने ज्योत्स्ना के द्वारा इसी मार्ग की पर प्रगति की। इन नाटकों में वस्तु और घटना-चक्र का इतना महत्त्व नहीं है जितना भावना और कल्पना का। 'ज्योत्स्ना' तो एक अति कल्पना है ही।

(२) गीति नाट्य का सूत्रपात भी प्रसादजी ने 'करुणालय' द्वारा दिया। मैथिलीशरण गुप्त ने अनघ द्वारा और श्री उदयशङ्कर भट्ट ने 'मत्स्यगंधा', 'राधा' और 'विश्वामित्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा इसे पुष्ट किया। हरिकृष्ण प्रेमी ने स्वर्ण विहान द्वारा इस निधि में योग दिया।

(३) एकाङ्की नाटक का सूत्रपात इस युग की वह महत्वपूर्ण धारा है जो आज बढ़कर कदाचित सबसे अधिक लोकप्रिय हो रही है। एकाङ्की नाटक का शिल्प विधान (Technique) हिन्दी ने पश्चिम के 'वन एक्ट प्ले' से लिया है भारतीय नाट्य शास्त्र के एक अङ्क वाले रूपक उपरूपकों से नहीं। परन्तु इसमें कई नाटककारों ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा प्रदर्शित करदी है और इसीलिए यह धारा सबसे अधिक अभिनन्दनीय हो गई है। इन एकाङ्की नाटककारों में अग्रगण्य हैं—डाक्टर रामकुमार वर्मा, श्री सुदर्शन, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क, श्री उदयशङ्कर भट्ट, श्री हरिकृष्ण प्रेमी, भुवनेश्वर, सेठ गोविन्ददास, जगदीशचन्द्र माथुर और विष्णु प्रभाकर। इन नाटकों में आज के मानव का सर्वाङ्गीण जीवन वो बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग ग्रन्थियों को सुलझाने का काम अधिक लिया जारहा है।

(४) ध्वनि नाट्य रेडियो के आविष्कार ने जन मनरञ्जन के लिए एक नया माध्यम हमें दिया है। ध्वनि नाट्य रेडियो के ध्वनि विस्तारक यन्त्र पर नाटक ध्वनि द्वारा प्रस्तुत किया जा कर श्रव्य वस्तु के रूप में श्रोताओं के पास पहुँचता है जैसे, दृश्य काव्य ने श्रव्य काव्य का बाना पहिन लिया हो। इस प्रकार के नाटक में दृष्टि से अधिक श्रवण को प्रभावित करने वाली बातों की विशेष योजना की जाती है। इस क्षेत्र में श्री विष्णु प्रभाकर, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशङ्कर भट्ट, गिरिजा कुमार माथुर, भगवतीचरण वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त आदि क्रियाशील हैं।

इस प्रकार हिन्दी का नाटक-साहित्य आज बहुमुखी समृद्ध और सम्पन्न है। परन्तु चलचित्र के सम्मोहन और आकर्षण ने उनके सामने जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित कर दिया है। यदि कथा के रूप में, साहित्य के रूप में नाटक को जीना है तो अवश्य ही नाटक को चलचित्र से आतङ्कित होने की आवश्यकता नहीं है। उसकी पृथक महत्ता असंदिग्ध है।

(पृष्ठ ११४ का शेष)

लगता है। अँग्रेजी में रोमांटिक काव्य पर जितनी भी आलोचनाएँ आज तक लिखी गईं, उनमें सबसे अधिक प्राणवान और प्रदीप्त आलोचना कालरिज की 'लिरिकल-बैलड्स' की भूमिका (प्रीफेस) है, इसलिए कि कालरिज ने एक कवि का हृदय पाया था और विश्लेषक की बुद्धि। हिन्दी में भी छायावाद का जितना मार्मिक और सूक्ष्म विश्लेषण महादेवी वर्मा और पन्त ने किया, उतना छायावाद के अपने आलोचकगण भी न कर सके। ऐसी आलोचनाओं से साहित्य-सृजन में बाधा नहीं पड़ती, अपितु उसकी धारा इधर उधर बिखरने के बदले एक सुनियोजित पथ पर संयम और मर्यादा के साथ आगे बढ़ती है। और ऐसा आलोचक यदि एक ओर जनता के सामने अभिनव आदर्श की अवतारणा करता है तो दूसरी ओर स्रष्टाओं को भी गुमराह नहीं होने देता।

आज हिन्दी में सफल और सशक्त आलोचकों का एकान्त अभाव नहीं रह गया है। शुक्लजी की परम्परा को जीवित रखने और आगे बढ़ाने के लिए अभी सर्वश्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, गुलाबराय, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामकुमार वर्मा, नगेन्द्र, सत्येन्द्र, रामविलास शर्मा, अमृतराय प्रभृति सुधी आलोचक वर्तमान हैं, जो आलोचना का नित्य नवीन मान निर्धारित कर उसे प्रगति के पथ पर अग्रसर कर रहे हैं। यह हमारे लिए सौभाग्य और गौरव की बात है। और अब वह दिन दूर नहीं, जब हिन्दी भी संसार की दूसरी समृद्ध भाषाओं के समान आलोचना का श्रेष्ठतम आदर्श विश्व के सम्मुख समुपस्थित कर कृतकृत्य होगी। (If winter comes can spring be far behind) यदि शीत का आगमन होता है तो बसन्त भी दूर नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना का आदर्श

प्रो० आनन्द नारायण शर्मा, एम० ए०

आलोचना के आदर्श के चर्चा करते हुए प्रायः आदर्श आलोचक की उपमा हंस से दी जाती है और उसके नीर-क्षीर विवेक को आलोचना का चरम उत्कर्ष माना जाता है। अर्थात् जिस प्रकार हंस जल मिश्रित दूध में से दूध का पान कर जल को छोड़ देता है (यद्यपि वैज्ञानिक परीक्षण की कसौटी पर यह बात सत्य नहीं उतरती और अधिकतर हंस ऐसे ही मिले हैं, जो भूख लगने पर निस्संकोच और निर्लेप भाव से दूध और जल दोनों को चट कर जाते हैं) उसी प्रकार आलोचक को भी चाहिए कि वह आलोच्य वस्तु के गुणों का ग्रहण और आलेखन कर दुर्गुणों को उनसे अलग छाँट कर दिखा दे। लेकिन आज के दृष्टिकोण से इसे आदर्श आलोचना तो क्या, सामान्य आलोचना कहने में भी संकोच का अनुभव होगा। इसमें आपत्तियाँ स्पष्ट हैं। एक तो किसी कलाकृति के गुणों और दुर्गुणों की दो आपाततः पृथक कोटियाँ निश्चित करना नीर-क्षीर विवेक से कहीं कठिन कार्य है और फिर सब काल और व्यक्तियों की दृष्टि में गुणों की कसौटी एक ही नहीं रहती। उदाहरण के लिए, एक युग था जब कवि भूषण की अमृत-ध्वनि छन्द में लिखी उच्चारण का व्यायाम कराने वाली—

'दिलितय दलन दबाय करि सिव सरजा निस्संक
लूट लियो सूरत सहर बंकक करि अति डंक।'

और इसी प्रकार की दूसरी पंक्तियाँ अनुप्रास का सुन्दरतम उदाहरण मानी जाती थीं और इनके सुनने मात्र से वीरों के हाथ मूँछों पर चले जाते थे। पर आज समय और उसके साथ जन-रुचि इतनी अधिक बदल चुकी है कि ये ही पंक्तियाँ यदि हमें कोई प्रेरणा दे सकती हैं तो केवल पैरोडी लिखने की। और कला का तो प्रश्न ही इनके साथ नहीं उठता। इसी रीतिकाल की और भी बहुत सी पुनः-पुनः प्रशंसित पंक्तियों का आज भाग्य विपर्यय हो चुका है और वे हमारे लिए अपना महत्त्व खो चुकी हैं। यह ठीक है कि आज भी हिन्दी के कुछ अध्यापक उन्हें अपना कंठहार बनाए हुए हैं, किन्तु यह उनकी बात है, जो साहित्य को जीवन की व्याख्या से अधिक पुरातत्व की कहानी मानते हैं।

समान रूप से वैयक्तिक दृष्टिकोण में भी विभेद देखा जा सकता है। महाकवि कालिदास ने जब अपने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में महाभारत की कथा ग्रहीत की तो उन्होंने उसे उसी रूप में नहीं रहने दिया। उसमें अपनी ओर से दुर्वासा शाप के प्रसङ्ग की उद्भावना कर उन्होंने उसे और भी कलात्मक और काव्योचित बनाने की चेष्टा की। इसी दुर्वासा-शाप की कल्पना को लेकर कभी बङ्गला साहित्य के दो प्रमुख आलोचकों में अच्छा खासा विवाद उठ खड़ा हुआ था। श्री द्विजेन्द्रलाल राय का कथन है कि दुष्यन्त के छोड़ कर चले जाने और फिर कोई संवाद न भेजने के कारण शकुन्तला की दशा बड़ी दयनीय हो गई थी। उसे बराबर दुष्यन्त की याद सताया करती थी। फिर भी वह सर्वथा विवेकशून्य न थी और आश्रम के सारे कर्त्तव्यों का पालन करने के बाद जो समय अवकाश का होता था, उसी में अपने पति के लिए आँसू बहाया करती थी। एक बार ऐसे ही अवकाश के समय में जब आसमान में काली बदली घिरी होगी, पुरवा हवा 'सन-सन' शब्द के साथ बह रही होगी, उसका अन्यथा वृत्तचेत, उन्मन हो जाना स्वाभाविक हो गया। उस काल में उसकी वेदना और भी घनीभूत हो गई होगी। तभी उसके यहाँ अतिथि के रूप में दुर्वासा ऋषि पधारे। अब यदि पति की पावन स्मृति में लीन रहने के कारण वह ऋषि की ओर ध्यान न दे सकी, उनकी यथोचित अभ्यर्थना न कर सकी तो इसमें उसका बहुत अधिक दोष नहीं, न इसके लिए दुर्वासा को क्रुद्ध होना चाहिए था। उस घड़ी वह शाप की पात्रा न हो कर दया की भिखारिन थी। आखिर धर्मशास्त्रों में ही तो पति को ज्ञान, पति ही ध्यान और उसकी ही उपासना को परमेश्वर की पूजा से भी बढ़कर मानने का आदेश दिया गया है। फिर बालिका [illegible] शाप दिलवा कर कौन-सी कलात्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कता का परिचय दिया।

इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ का मत है कि दुर्वासा-शाप की कल्पना सर्वथा सङ्गत और न्याय्य है और यह कालिदास जैसे महाकवि का ही काम है कि वे ऐसी मौलिक उद्भावना द्वारा अपनी कवि सुलभ सूझ का परिचय दे सके। उनका तर्क है कि दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेम एक उच्छृङ्खल और अमर्यादित प्रेम था। उसमें गुरुजनों की अनुमति नहीं ली गई थी और आश्रम के नियमों की स्पष्ट अवहेलना की गई थी। फ़िर उसे साधना की आँच में तपाया नहीं गया था, इसलिए उसकी परीक्षा अनिवार्य थी। कालिदास ने दुर्वासा के शाप की कल्पना कर इस अबाध-उन्मुक्त प्रेम को मर्यादा के अङ्कुश द्वारा संयमित करने का प्रयास किया है और साथ ही दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों के चरित्रों को साधना के ताप में तपने का अवसर प्रदान कर कुन्दन की तरह दमका भी दिया है। इसी बहाने जहाँ महाभारत में दुष्यन्त के पास सभा भवन में शकुन्तला को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है, वहाँ कालिदास ने इस शाप को बीच में रखकर उसे दोष मुक्त कर दिया है। यह कवि की सबसे बड़ी विशेषता है।

तो पाठक देखें, दोनों ही आलोचक अपने-अपने स्थान पर सही हैं और जो बातें उन्होंने कहीं हैं वे तर्क सङ्गत और मानने योग्य भी हैं। अतः निष्कर्ष यह कि आलोचना में अन्तिम कुछ नहीं होता और गुण-दोषों की दो सर्वथा पृथक कोटियों का निर्धारण कुछ बँधे-बँधाये नियमों के आधार पर तो किया ही नहीं जा सकता। यों सामान्यतः कुछ चीजें ऐसी होती हैं जिनके विषय में दो मत नहीं होते तथा जो सब कालों में और सभी प्रकार की रुचि के लोगों को आकर्षित करती हैं और कुछ इसके विपरीत बराबर दोष की कोटि में ही परिगणित की जाती हैं। पर केवल उनका ही निर्देश तो आलोचना का ककहरा दुहराना ही कहा जायगा। आलोचक की प्रतिभा की पहचान तो वहीं होती है जहाँ वह अपनी विद्वत्ता और अतल भेदिनी दृष्टि के बल पर बारीक गुत्थियों का भी विश्लेषण-विश्लेषण करता है और अपनी बात को अधिक-से-अधिक युक्ति युक्त और प्रभावोत्पादक बनाकर पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। यह तनिक भी आवश्यक नहीं कि आलोचना के क्रम में जो निष्कर्ष उपस्थित किये जायँ उनसे हर युग में हर व्यक्ति सहमत हो ही, बल्कि ऐसा प्रायः नहीं ही होता है एवं इसमें आलोचक की जरा भी हेठी नहीं। आलोचना में द्रष्टव्य केवल इतना होता है कि जो निष्कर्ष निकाले गए, वे तर्क सङ्गत हैं और आलोच्य वस्तु से ही उद्भूत हैं, ऊपर से आक्षित नहीं। हाँ, निष्पक्षता आलोचना की पहली शर्त है। आदर्श आलोचना लेखक या कवि के व्यक्तित्व से तटस्थ रह कर ही लिखी जा सकती है। यदि किसी कारण कोई आलोचक किसी लेखक विशेष से अधिक प्रभावित है और उसकी कृतियों में अनावश्यक रूप से रस लेने का अभ्यस्त हो चुका है तो उसकी आलोचना पूरी छान-बीन से युक्त और बुद्धि को प्रभावित करने वाली न रह कर कोरा उच्छ्वास और कुछ प्रशंसात्मक पंक्तियों का जमघट मात्र बन जायगी। जैसे पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के काव्य में दोषों की चर्चा करते समय उन दोषों को भी कवि का कौशल ही मान लिया है। इसके विपरीत यदि स्वभाव, सिद्धान्त या शैलीगत भेद के कारण आलोचक और आलोच्य के बीच पहले से ही वैषम्य का सूत्रपात हो चुका है तो आलोचना छिद्रान्वेषण के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकेगी। उदाहरणार्थ मिस मेयो का 'भारतदर्शन' प्रस्तुत किया जा सकता है, जहाँ लेखिका की दृष्टि चारों ओर की विषमता, विकृति और गन्दगी में ही उलझ कर रह जाती है। जब तक आलोचक आलोच्य वस्तु को उसकी तरह से समझने की चेष्टा नहीं कर पाता, लेखक की मनःस्थिति में अपने को डाल कर उसके निबद्ध विचारों से तादात्म्य नहीं स्थापित करता, वह प्रतिपादित विषय के साथ न्याय न कर सकेगा। दुःख की बात है कि आज हिन्दी में जितनी आलोचनाएँ लिखी जा रही हैं, उनमें कुछ को छोड़ कर शेष सभी किसी-न-किसी प्रकार के पक्षपात दोष से पीड़ित हैं और उनमें आलोचक प्रतिभा-सम्पन्न होकर भी तटस्थता का निर्वाह नहीं कर पाते।

पक्षपात से ही मिलती जुलती एक दूसरी वस्तु है, पूर्व ग्रह। जिस प्रकार एक आदर्श आलोचक के लिए पक्षपात का परित्याग वांछनीय है, उसी प्रकार आदर्श आलो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चना के निर्माण से पूर्व पूर्वग्रह का परिहार भी आवश्यक है। पूर्वग्रह का अर्थ है पहले से ही किसी विशेष पदार्थ के प्रति एक विशेष प्रकार की धारणा बद्ध मूल कर लेना। पक्षपात का कारण अपर व्यक्ति का स्वभाव या चरित्र होता है। पूर्व-ग्रह अपने ही संस्कारों पर आधारित होता है। आलोचना के क्षेत्र में दोनों समान रूप से घातक हैं। आलोचना के मापदण्ड सदैव स्थिर नहीं होते और न ऐसा ही होता है कि एक ही मापदण्ड से विभिन्न वस्तुओं की परीक्षा कर ली जाए। रीति-युग में कविता के लिए रसात्मक होने के साथ ही घनघोर चमत्कारात्मक होना भी आवश्यक था अतएव उस युग के मापदण्ड रस, रीति, अलङ्कार, छन्द आदि ही हैं। आज की कविता (विशेषकर प्रयोगवादी कविता) को इन कसौटियों पर कसने से शून्य ही हाथ लगेगा। हिन्दी की अत्याधुनिक अतुकान्त और प्रयोगवादी कविता को देखकर पुराने आचार्य चौंक उठते हैं क्योंकि उनके अनुसार तो उसे पद्य भी नहीं कह सकते। एक ही युग में भी हीरे-ज़वाहरात की तौल रत्तियों में व्यक्त की जाती है, सोने-चांदी की भरियों में और अनाज और भूसे की सेरों तथा मनों में। पानी तौलकर नहीं बिकता। ठीक ऐसे ही मुक्तक की कसौटी अलग है, प्रबन्ध-काव्य की अलग एवं उपन्यास-कहानियों की इन सबसे भिन्न। एक मुक्तक के कवि की तुलना जब एक प्रबन्धकार से की जाती है तो हमें मान लेना होगा कि उनमें समता से अधिक विषमता के लिए ही अवकाश है और दूसरी बात, मुक्तक का कवि भी अपने क्षेत्र में उतना ही सफल हो सकता है, जितना एक सफल-कुशल प्रबन्धकार। तुलसी का स्थान सूर से अधिक गरिमामय है, किन्तु केवल इसी कारण नहीं कि तुलसी ने प्रबन्ध-काव्य का सर्जन किया और सूर मुक्तकों की माला ही पिरोते रहे। आचार्य शुक्ल को बहुधा हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ आलोचक कहा जाता है। ऐसा कहना उचित भी है। उनके जैसा प्रतिभाशाली, विद्वान् और सूक्ष्मदर्शी आलोचक हिन्दी में उनसे पहले नहीं हुआ! बाद में भी उनके टक्कर के लोग, यह तो नहीं कहा जा सकता कि नहीं हैं, पर विरले अवश्य हैं; फिर भी शुक्लजी को कबीर आदि निर्गुणिए सन्तों और छायावाद के सम्बन्ध की जो आलोचनाएँ हैं, उनसे बहुत कम लोगों को सन्तोष होता है। आज के आलोचक दबी जबान से यह भी कह देते हैं कि उन्होंने कबीर या छायावाद-रहस्यवाद को ठीक से समझा ही नहीं। बात वस्तुतः ऐसी नहीं। शुक्लजी का सगुण-मत वाद के प्रति एक आस्तिक आग्रह था। उनके आदर्श कवि थे तुलसीदास। तुलसी के काव्य के आधार पर ही उन्होंने अपने काव्यालोचन के सिद्धान्त स्थिर किए। इसलिए स्वभावतः उन्हें वे कवि न रुचे जो प्रबन्धकार नहीं थे और अरूप की उपासना किया करते थे। इसी प्रकार तुलसी की सहज सरल अभिव्यञ्जना-प्रणाली, जिसमें पांडित्य का अभाव नहीं, पर जो उसके भार से बोझिल भी नहीं हो गई है, के प्रशंसक-परिशंसक बन जाने के बाद शुक्लजी को लाक्षणिक वैचित्र्य और चमत्कार-विधान का अरुचिकर लगना भी आवश्यक हो गया। उन्होंने छायावाद को इस पहलू से नहीं देखा कि वह क्या है। वे आरम्भ से ही यह धारणा बनाकर चले कि उसे कैसा होना चाहिए। इसीलिए वह जो कुछ था, उसका भी श्रेय उसे न मिल सका और शुक्लजी की तत्संबन्धी आलोचना एकाङ्गी हो गई। यहाँ कबीर आदि सन्तों अथवा छायावादी कवियों को तुलसी-सूर से श्रेष्ठ घोषित करना उद्देश्य नहीं, ऐसी हिमाकत शायद ही कोई समझदार आलोचक करे, केवल इतना संकेत करना ही अभीष्ट है कि इसी पूर्व-ग्रह के कारण इन बेचारों को शुक्लजी जैसे समर्थ और सशक्त आलोचक की सहानुभूति से वंचित होना पड़ा। सहानुभूति तत्त्व का आलोचना में बहुत ऊँचा स्थान है। इसी के बल पर आलोचक आलोच्य वस्तु की गहराइयों में उतर पाता है। वह वहाँ पहुँचकर रत्नों का संकलन करता है। उसके बाद तब वह अपनी वैज्ञानिक बुद्धि की कसौटी पर परख कर इस बात की जाँच कर सकता है कि उसने जो कुछ पाया है, उसमें मुक्ता और प्रवाल अधिक हैं या सीपी और घोंघे। लेकिन जिसने धीरता-पूर्वक सागर के अन्तर-तल में प्रवेश ही नहीं किया, केवल तट पर ही खड़ा रहकर लहरों को गिनता रहा, उससे कैसे आशा की जा सकती है कि वह कुछ बहुमूल्य पदार्थ भेंट कर सकेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण पाठक और आलोचक में एक मौलिक अन्तर होता है। साधारण पाठक किसी कलाकृति को एक दो या तीन बार पढ़कर और फिर चुपचाप आँखें बन्द कर उसका आनन्द लिया करता है। उसके लिए श्रेष्ठता का मापदण्ड यही है कि बार-बार उसे पढ़े और रसमग्न हो। वह अपने आनन्द को अपने तक ही सीमित रखता है। उसका कारण दूसरों को नहीं बता पाता। लेकिन आलोचक का काम सिर्फ अपनी आँखें खुली रखने से ही नहीं चल सकता है, अपितु वह अपने साथ अन्य पाठकों को भी आँखें खोलने पर बाध्य करता है। उसे एक साथ ही समीक्षक और व्याख्याता दोनों बनना पड़ता है। कभी-कभी वह अपनी सूझ-बूझ के द्वारा ऐसी बातें भी कह जाता है, जो स्वतः आलोच्य कवि या लेखक के मस्तिष्क में भी आने से रह गई होती हैं और तब हम उसके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सकते। पर वहाँ विचारणीय यही है कि कहीं उसने बिहारी के दोहों का वैद्यकशास्त्र के अनुसार तो अर्थ नहीं किया या फिर तुलसी के मानस में मार्क्सवाद की परिभाषा तो नहीं ढूँढ़ रहा। इस हद की मौलिकता तरस खाने योग्य हो जाती है।

आलोचना गुण-दोषों की मात्र निर्जीव तालिका नहीं, एक प्राणवान पथ-प्रदर्शिका भी है। कवि तो कविता करने के उपरान्त अपने कर्त्तव्य से उपराम हो जाता है। वह बहुत-सी बातें स्पष्ट रीति से उद्घोषित करता है और शेष के लिए केवल संकेत देकर छोड़ देता है। अब यह आलोचना का दायित्व है कि वह कविता की मान्यताओं की परीक्षा करे, उसके संकेतों को खोल कर पाठकों के सामने रक्खे और तब यदि आवश्यक हो तो पाठकों की सुविधा के लिए अपनी सम्मति भी पेश करे। जहाँ ऐसा होता है वह निर्णयात्मक आलोचना कही जाती है। किन्तु निर्णय देने के लोभ में आलोचक को पथ-भ्रष्ट होकर अर्थ का अनर्थ नहीं करना चाहिए। आलोचना में स्पष्टता का होना आवश्यक है। कविता या कहानी केवल संकेतों के सहारे भी चल सकती हैं, बल्कि कभी-कभी तो तथ्यों को अधिक खोल कर रखने से अर्थ-स्वारस्य नष्ट हो जाता है और कला सन्देश न बन कर उपदेश सी लगने लगती है। लेकिन आलोचना में भी अगर उसी तरह पहेलियाँ बुझाई जाने लगीं तो वह पाठकों के लिए सिरदर्द बन कर ही रह जायगी।

कहा जाता है कविता, कहानी, उपन्यास या अन्य सर्जनात्मक साहित्यों में हृदयपक्ष की प्रधानता रहती है और आलोचना में बुद्धि-पक्ष की। वस्तुतः हृदय और बुद्धि दो स्वतन्त्र शक्तियाँ नहीं, वे एक ही जीवन-चेतना के व्याप्त होने के दो मार्ग हैं। आज की आलोचना केवल बुद्धि का विलास बन कर ही नहीं रह सकती। आलोचना में बुद्धि का स्थान उतना ही है कि वह सत् और असत् की परख कर सके। किन्तु इस परख के पूर्व भी और उसके बाद तो अनिवार्य रूप से अभिव्यक्ति के लिए हृदय की सहायता लेनी होगी। हृदयहीन होकर आलोचना नहीं लिखी जा सकती और उसे दूसरों के हृदयों तक उतारने के लिए भी हृदय की भाषा की ही आवश्यकता है। आलोचक के पास यदि हृदय-तत्त्व का अभाव है तो पहले तो वह विषय वस्तु को समझने में ही भूल कर बैठेगा और फिर उसकी अभिव्यक्ति तो कभी जीवन्त हो ही नहीं सकती। आलोचना भी अन्ततः एक कला है और कोचे से पूर्णतया सहमत न होते हुए भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि कला प्रथमतः अभिव्यक्ति है, बाद में और कुछ। यदि अभिव्यक्ति सबल नहीं है तो विषय चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, वह पाठक या श्रोता को बहुत दूर तक नहीं प्रभावित कर सकता। इस प्रकार हृदय और बुद्धि के सामुपातिक सहयोग से लिखी गई सन्तुलित आलोचना का महत्त्व किसी भी सर्जनात्मक साहित्य से किसी अंश में कम नहीं, ज्यादा जो हो। तब वह एक ध्वंसात्मक कृति नहीं रह जाती; उसमें निर्माण की क्षमता आ जाती है और वह एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति पाठक के निविड़ अन्धकार से भरे हृदय को अपनी आलोकमयी किरणों से उद्भासित कर देती है। वह एक साथ ही मस्तिष्क को पुष्ट खाद्य और मानस को सुस्वाद रस प्रदान कर जीवन में नई ज्योति जगाती है। और तब आलोचक भी एक 'असफल कवि' की कोटि से ऊपर उठकर एक सफल स्रष्टा की श्रेणी में परिगणित होने

(शेष पृष्ठ ११० पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य देवता : एक दृष्टि

श्री रामवरणसिंह 'सारथी'

'साहित्य-देवता' में साहित्य-देवता के कलाकार पं० माखनलाल चतुर्वेदी की अनुभूतियों का सजीव-चित्रण है, जिस चित्रण में युग के चरण-चिह्नों के प्रतिविम्ब हैं, और मनोभावों के ऐसे चित्र हैं, जिन्हें समय त्वरित मिटा नहीं सकता। इस देवता के तीन रूप हैं। (१) गद्य-गीत (२) गद्य-काव्य और (३) काव्यमय-गद्य। इन तीनों रूपों की आत्मा में सायुज्यता है, लेकिन आकृतियों में विभिन्नता है। गद्य-गीत में कलाकार की अनुभूति भावावेश के प्रखर वेग में वेगवती भाषाओं में भावनाओं की गहराई की ओर प्रधावित हो उठी है। उसका स्वरूप अतुकान्त गीति-काव्य की भाँति है जिसमें कलाकार का एक ही भाव विशेष रूप से प्रतिध्वनित होता है। गद्य-काव्य में कलाकार की कल्पना की सजीवता की प्रमुखता होती है। उसमें कलाकार की अनुभूति फैलती और फूलती हुई महाकाव्य का रूप तक ग्रहण कर सकती है। महाकाव्य की गाथा तक विस्तार पा सकती है। गद्य-काव्य में कलाकार की अनुभूतियाँ कल्पना की फुलवारी में रङ्ग-विरङ्ग की साड़ियाँ पहन कर अभिसारिका की नृत्य करने लगती है और भावों की विविधता अप्सरा की भाँति अपनी छटा दिखलाती है। काव्यमय-गद्य निबन्ध, शब्द-चित्र, नाटक और उपन्यास सभी में परिलक्षित हो सकता है? इसके लिए सिर्फ अमूर्त अनुभूति को मूर्त रूप प्रदान करते समय भाषा को काव्यमय स्वरूप से अलंकृत बना देना है।

'साहित्य-देवता' के उन तीन रूपों में अनुभूतियों की अभिव्यक्ति चाहे गद्य-गीत में हो, या गद्य-काव्य में हो अथवा काव्यमय गद्य के आवरण से अतिरञ्जित हो, पर उन तीनों रूपों में व्यंग्य की ही अधिकता है। इन व्यङ्गों की विविधा में सर्वत्र विचित्रता बिखरी हुई है। विचित्रिता से ओत-प्रोत विविध-युक्तियों से साहित्य-देवता के मन्दिर अथवा सौध जिस तरह निर्मित हुए हैं, उनमें अनुभूति की पावनता देखने लायक चीज है। जरा 'साहित्य-देवता' शीर्षक अनुभूति की निम्न पंक्तियाँ देखें :—

"वेदनाओं के विकास के संग्रहालय, तुम्हें किस नाम से पुकारूँ? मानव-जीवन की अब तक पनपी हुई महत्ता के मन्दिर, ध्वनि की सीढ़ियों से उतरता हुआ ध्येय का माखन चोर, क्या तुम्हारे ही गोद के कोने में राधे कह कर नहीं दौड़ा आ रहा है? अहा, तब तो तुम जमीन को आसमान से मिलाने वाले जीने हो? गोपाल के चरण-चिह्नों को साध-साध कर चढ़ने के साधन! ध्वनि की सीढ़ियाँ जिस क्षण लचक रही हों और कल्पना के सुकोमल रेशम-डोर जिस समय गोविन्द के पदारविन्द के पास पहुँच कर झूलने की मनुहार-कर रही हो, उस समय यदि वह झूल पड़ता होगा?—आह, तुम कितने महान् हो?' ·····व्यास का कृष्ण और वाल्मीकि का राम किसके पङ्खों पर चढ़कर आज भी लोगों के हृदयों में विराज रहे हैं? वे चाहे कागज के बने हों, चाहे भोज-पत्रों के, वे पङ्ख तो तुम्हारे ही थे?·····ऋषियों का राग, पैगम्बरों का पैगाम, अवतारों की आन युगों को चीरती किस लालटेन के सहारे हमारे पास तक आ पहुँची? वह तो तुम हो। और आज भी कहाँ ठहर रहे हो। सूरज और चाँद को अपने रथ के पहिये बना, उनके घोड़ों पर बैठे, बढ़े ही तो जा रहे हो प्यारे? उस समय हमारे सम्पूर्ण युग का मूल्य तो मेल-ट्रेन में पड़ने वाले छोटे-से स्टेशन का-सा भी नहीं होता।"

मैंने पहले कहा है कि 'साहित्य देवता' में कलाकार पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी की अनुभूति गद्य-गीत, गद्य-काव्य और काव्यमय-गद्य के रूप में अभिव्यञ्जित हुई है। गद्य-गीत के घेरे में आशिक, असहाय, श्यामघन, तुम आने वाले हो, मुरलीधर, गृह-कलह, इसी पार, मोहन, दूर की निकटता,—के साथी से—में स्पष्टतः गीतितत्व की आत्मा का सरस सङ्गीत है। गीति-तत्व के प्राणों की बाँसुरी की एक ही प्रतिध्वनि है। उनमें प्रायः आत्मा का सरस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्गीत स्निग्ध, मधुर और मृदु सा बन कर फूट पड़ा है। उनमें मिसरी-सी भी मीठी-वाणी देखने लायक वस्तु है—'तुम आने वाले हो' शीर्षक में पढ़ें :—

"मेरा सारा बाग, बिना मौसम के ही फूल उठा;

——इसलिए कि तुम आने वाले हो।

और फूल भी नीले हैं, पीले हैं, हरे हैं, बैंगनी हैं, नारङ्गी भी हैं। मगर इन फूलों पर गूँजने वाले परिन्द अब एक ही रङ्ग के हैं, कृष्ण, श्याम, काले।

इन गूँजने वालों में से एक कहता है, आज उनके एक-एक अपराध उनके सामने रख दो। बहुत सहा, अब न सहो।

दूसरा कहता है—समय को श्रम मत बनाओ। श्रम को समय बनाओ। प्राण दो, प्रणय दो।

तीसरा कहता है—पुष्प में बन्द होकर, फिर निकल आना कैसा? प्रणय का खेल खेलकर प्राण का मूल्य करना कैसा?

और इन गूँजने वालों को, मैं अपनी आशाओं का प्रतिनिधि कह कर, इनकी कज्जलता में, कितनी उज्ज्वलता का अनुभव करता हूँ।

——इसलिए कि तुम आने वाले हो"

इस प्रकार 'साहित्य-देवता' के आशिक, असहाय, श्यामघन, तुम आने वाले हो, मुरलीधर, गृह-कलह, इसी-पार, मोहन और दूर की निकटता में गीति का रसास्वादन करने का पर्याप्त स्थल है, जहाँ पाठक अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार गीति काव्य का आनन्द प्राप्त कर सकता है। और गद्य-काव्य की भी शोभा-सुषमा की झलक देखी जा सकती है। मुक्ति भरत जहाँ पानी, साहित्य देवता, साहित्य की वेदी, असहाय नाश, अमर निर्माण, गिरधर-गीत, मीरा-मुरली, लहरें चीर आदि अनुभूति गद्य-काव्य की अमर विभूति है—देखें—"जब रसवन्ती बोल उठे" में :—

"तुम्हें पता रहे कि बोली जबान के घाट आकर कुछ और होती है और कलम के घाट कुछ और। जबान की पनिहारिन, दिग्विजय की वायु-तरंगों पर चढ़कर, बन्धन रहित रूप से दौड़ने वाली ध्वनि है। उसमें सौ खून माफ हैं। किन्तु वह अभी-अभी है, और अभी नहीं है। किन्तु सूफ के कँटीले पौधे में से जब कलियाँ चटक कर कलम पर आया करती हैं; तब वे कितनी ही बार कलम होकर ही आया करती है। प्रतिभा की नव-बधू, स्याही से सास जैसा और कागज से ससुर जैसा भय मानकर पद निर्दोष किया करती है, किन्तु वाणी की स्वच्छन्दता में जितना कठोर मरण है, स्याही और कागज के मद में अनन्त काव्य को वेध सकने वाली उतनी ही महान अमरता है। वे धन्य हैं, जिनकी बोली हवा पर से भी अमर रहने को कागजों पर उतर आती है। किन्तु जबान की स्वच्छन्दता पतन का टीका नहीं है। जबान से उतरना ही वह चाहिए, जिसे यदि युग कागज पर उतार दे, तो वह अमर हो उठे।"

गद्य-काव्य और काव्यमय-गद्य में यह अन्तर है कि काव्यमय-गद्य में कथा विस्तार के लिए कलाकार को निश्चित सीमा की डोरी में आबद्ध कर नहीं रखा जा सकता है। कलाकार अपनी कलाकृति में स्वच्छ हो कर अपनी अनुभूति को, भावना को, विचार की तरङ्गों को फैला सकता है। काव्यमय-गद्य में फैलाव के लिए यथेष्ट स्थान है। कलाकार अपनी अनुभूति को कला साँचे में लम्बी दूर तक विस्तारित कर उसे अभिव्यक्त कर सकता है। सिर्फ अभिव्यक्ति शैली में अवरोध नहीं हो, गति में तीव्रता हो, भावों में शिथिलता न हो, अनुभूति के पर कल्पना-गगन में बन्धन-रहित होकर चक्कर काटते हों। गद्य-काव्य खिली हुई किसी फूल की पंखुड़ियाँ तो नहीं है, हाँ, खिली पंखुड़ियाँ मध्य स्थित उसके सौरभ है। पंखुड़ियों में चिंपके सौरभ का सञ्चयन सिर्फ गद्य-काव्य में कहा जा सकता है। लेकिन काव्यमय-गद्य किसी पुष्प की खिली हुई पंखुड़ियाँ हैं, जिसमें विस्तार और सुगन्ध दोनों का समन्वय है। सौरभ का स्थान गौण है और पंखुड़ियों के फैलाव का स्थान अधिक है। उसमें सौरभ की रूप-रेखा, तरलता और स्निग्धता पंखुड़ियों में ही अवस्थित रहती है। सौरभ के संचयन करते समय पंखुड़ियों के स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है और केवल उसकी तरलता और स्निग्धता अवशेष रहती है। काव्यमय-गद्य का एक उदाहरण—"बैठे-बैठे का पागलपन" से:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम, साहित्य के जगत् में, रस की हृदय को छू लेने वाली, मीठी किन्तु पुरुषार्थमयी सुकोमलता का नाम है। जीवन की साधों के उदय और अस्त को नवीनता की डोरी में गूंथकर, खतरे को गोद में निवास करने वाले अनहोने पन के निकट पहुँचना और इस पहुँच का, सूर्य किरनों की तरह नित्य अस्त होकर भी, फिर-फिर कर नया बालपन पाना—यही तो 'इस जगत्' के प्रेमी का प्रत्यक्ष प्रेम-स्वरूप हो जाना है। रामतीर्थ के शब्दों में—'प्रेमी वह जो प्रेम पर मरे", प्रेम वह जिस पर—जिसकी अपौरुषेय शक्ति पर, स्वेत की ओत-प्रोतता पर और बलि की क्षितिज को छू लेने वाली सामर्थ्य पर—जगत मर-मर कर रह जाय। हृदय के ब्रह्म का आधार यही कहा जायगा। इसे कवि कहिये, योधा कहिये, योगी कहिए, बलि कहिए या हृदय 'वाद' के युग में उसे हृदय कहिए।"

पं० माखनलाल चतुर्वेदी की बहिर्मुखी प्रतिभा को देखते हुए गद्य-गीति, गद्य-काव्य और काव्यमय-गद्य के सम्मिश्रण से एक अनुपम मुक्तक काव्य है। जिसमें, जीवन और काव्य सम्बन्धी विविध विषयों पर, संगीतमय, काव्य-मय और सूक्तिमय ढङ्ग से सूत्रबद्ध विचार प्रकट किये गये हैं। यह 'साहित्य' की जाह्नवी है, सुरसरि है, इस कारण यह 'साहित्य-देवता' है। 'साहित्य-देवता' में भाषा और अनुभूति गङ्गा की धारा जैसी है, जिसमें अवगाहन करने से जीवन में पावनता और स्फूर्ति प्राप्त होती है। इनकी भाषा में मानवता की छटा है। संस्कृत और उर्दू की स्नेहमयी मित्रता में, एकता में मानों भरी हुई मानवता जी उठी है, बोल उठी है। प्रफुल्ल फूलों की खिलखिलाती, मुस्कराती हुई पंखुड़ियों की भाँति 'साहित्य-देवता', में भाषा भी कलाकार के मनोभावों को अभिव्यक्त कर रही है। भाषा-शिल्पी और शब्द-शिल्पी में पं० माखनलालजी चतुर्वेदी बेजोड़ कलाकार हैं। यही कारण है कि इनकी भाषा और शैली पर किसी साहित्यकार का प्रभाव नहीं है। खिले गुलाब की पंखुड़ियों की तरह 'साहित्य-देवता' में सौरभ-मयी भाषा और शैली अपनी विशिष्ट विशेषता लिए खिलखिला रही है, विहँस रही है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अहमदाबाद के वार्षिकोत्सव पर सभापति के आसन से बोलते हुए महाकवि दिनकर ने एक भाषा की आवश्यकता बताते हुए देश की भिन्नता मिटाने के उद्योगों का जिक्र किया था। आपने कहा—"मगर, यह भी ध्यान देने की बात है कि इन तमाम भेदों को समेट कर सारे देश को एक करने का स्वप्न हमारे इतिहास की सबसे बड़ी शिक्षा है। पहाड़ों और समुद्रों से घिरे हुए इस विशाल देश में जो एक मौलिक एकता का भाव है, उसने कभी भी विश्राम नहीं लिया और वह हमारे राजनीतिक इतिहास पर बराबर अपना रंग फेंकता रहा है। वाल्मीकि की कल्पना इस देश की एकता के निमित्त थी; महाराज युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ भारत को एक बनाने के लिए किया गया था; चन्द्रगुप्त और अशोक ने देश की इसी आन्तरिक एकता के लिए प्रयत्न किये; भारत के अन्य दिग्विजयी सम्राटों के सामने भी यही उद्देश्य था कि किसी न किसी तरह सारा देश एक आन्तरिक सत्ता के आधीन रखा जाय। पठानों और मोगलों ने भी इस एकता के लिए कम कोशिश नहीं की। मगर, सफलता, शायद, केवल अङ्गरेजों को मिली और उससे भी बड़ी सफलता का श्रेय कांग्रेस को है जिसने स्वाधीनता आन्दोलन के सिलसिले में सारे भारत को विदेशी सलतनत के खिलाफ भिड़ा कर उसे मन से भी बहुत कुछ एक कर दिया और जिसके बलिष्ठ नेता, प्रातःस्मरणीय सरदार बल्लभ भाई पटेल ने भारत के उन भागों को भी दिल्ली के अधीन कर दिया जो अङ्गरेजों के जमाने में देश से अलग रहने का स्वाँग भरते थे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास और शेक्सपीयर

प्रो० दामोदर झा एम० ए०

तुलसीदास और शेक्सपीयर की तुलनात्मक समीक्षा का उद्देश्य समालोचना-जगत् में एक नवीन विवाद खड़ा करना नहीं है। इस प्रयास का एक मात्र उद्देश्य हिन्दी और अँगरेजी के सर्वश्रेष्ठ कवियों की काव्य प्रतिभा का विश्लेषण एवं उनके काव्यों के समान स्थलों की व्याख्या प्रस्तुत करना है। तुलसी और शेक्सपीयर के तुलनात्मक अध्ययन में बहुत सी कठिनाइयाँ हैं। पहली कठिनाई तो यह है कि शेक्सपीयर युरोप के पुनर्जागरण युग का कवि है और तुलसी भारत के धर्मप्रधान मध्य-युग का भक्त कवि। प्रत्येक जाति की अपनी अपनी विशिष्टताएँ होती हैं; विभिन्न संस्कृति होती हैं और उन संस्कृतियों को व्यक्त करने वाली काव्य परम्पराएँ भी अलग-अलग होती हैं। उपमाओं और प्रतीकों में भी देश और काल के अनुसार विनोद रहता है। तुलसी की काव्य-धारा का मूल-स्रोत संस्कृत काव्य है और शेक्सपीयर के काव्य का आधार ग्रीस और रोम की साहित्य-परम्परा है। अतः तुलसी और शेक्सपीयर के तुलनात्मक अध्ययन करते समय दोनों देशों की काव्य-परम्पराओं पर ध्यान देना आवश्यक है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि साहित्य अपने देश-काल और संस्कृति से आबद्ध रहता है। अमर कलाकार, युग की बिखरी अनुभूतियों को सन्तुलित कर, उन्हें सार्वकालिक में परिणत कर, देश और काल की सीमा से परे हो जाता है। शेक्सपीयर के शब्दों में 'कवि की दृष्टि स्वर्ग से भूलोक और भूलोक से स्वर्ग तक' विचरती रहती महाकवि तुलसी ने इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है—

"श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥"
....
"सूझहिं रामचरित मनि मानिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥"

इन दोनों महाकवियों की उक्तियों में उतना ही अन्तर है जितना कि युरोप की काव्य-परम्परा और भारत की काव्य-परम्परा में। फिर इन उक्तियों से इन महाकवियों का काव्य-दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। अतः महान कवि देश और काल की परिधि से परे होता है, केवल उसकी वाणी का प्रस्फुटन तात्कालिक परम्परा और प्रतीकों के द्वारा होता है।

दूसरी कठिनाई यह है कि तुलसी महाकाव्य के रचयिता के रूप में ही प्रसिद्ध हैं, यद्यपि उनके गीत भी उच्चकोटि की कलाकृतियाँ हैं। शेक्सपीयर के सोनेट का स्थान अँगरेजी गेय-काव्य में ऊँचा है, फिर भी उनकी अमर-कृतियाँ विश्वविख्यात नाटक ही हैं।

यह सच है कि नाटककारों अथवा महाकाव्यकारों की तुलनात्मक समीक्षा का आधार स्पष्ट है और एक नाट्य कवि और प्रबन्ध-कवि की तुलना कठिनाइयों से भरी हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नाट्य कवि और प्रबन्ध-कवि की तुलना का आधार ही नहीं है। भारतीय साहित्य पद्धति में नाटक का अस्तित्व अलग नहीं है, यह दृश्य काव्य के अन्तर्गत माना जाता है। अतः तुलसी और शेक्सपीयर की तुलनात्मक समीक्षा भारतीय साहित्य पद्धति के अनुकूल है। इस प्रश्न का एक दूसरा पहलू भी है। शेक्सपीयर के कतिपय नाटक इतनी ऊँचाई पर हैं कि उनमें महाकाव्यत्व का आभास मिलता है और तुलसी के कथा-काव्य में अनेक घटना-स्थल ऐसे हैं, जिन्हें नाटकीय कहा जाता है। कथा-काव्य के अन्तर्गत 'ड्रामेटिक' घटना-स्थल रहते हैं, इसमें तो किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता। शेक्सपीयर के नाटकों में महाकाव्य की चेतना के सम्बन्ध में अँग्रेजी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक 'एमिली लौगुई' का निम्नलिखित कथन विचारणीय है।

'A profound difference between Shakepeare's work and that of his contemporaries consists in the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

greater truth, the more serious and substantial character, which fundamentally belongs to his plays in the mass. Their matter and their's alone, is epical as much as romantic.'

'शेक्सपीयर' की कृति और समकालीन कृतियों में एक महत्वपूर्ण विभेद यह है कि शेक्सपीयर के नाटकों में महत्तर सत्य, अधिक गम्भीर और यथार्थवादी चरित्र हैं। उन कृतियों और एक मात्र उन कृतियों के विषय ही महाकाव्य और रोमांटिक दोनों लक्षणों से युक्त हैं।' यहाँ पर 'एक मात्र' पर ध्यान देना आवश्यक है। अँगरेजी नाटककारों में एकमात्र शेक्सपीयर के नाटकों में ही महाकाव्य की चेतना होती है। अतः तुलसी और शेक्सपीयर की तुलना बादरायण सम्बन्ध नहीं कही जा सकती। यह भारतीय साहित्य पद्धति और काव्य-दृष्टिकोण के अनुकूल है।

तुलसीदास और शेक्सपीयर की तुलनात्मक समीक्षा दो दृष्टिकोणों से हो सकती है—(क) ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टिकोण (ख) व्याख्यात्मक प्रणाली।

तुलसी और शेक्सपीयर दोनों समकालीन थे। शेक्सपीयर का समय तो निश्चित है। इनका जन्म १५६६ ई० में और इनकी मृत्यु १६१६ ई० में हुई थी। तुलसी के जन्म-सवत् को लेकर विवाद है। डा० ग्रियर्सन ने इनका जन्म वि० संवत् १५८९ माना है। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में जनश्रुति है।

"संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर॥

इसे आधार मान कर तुलसी काल वि० संवत् १५७९–१६७० हुआ। ई० सन् के अनुसार इनका समय १५३८–१६२३ ई० होता है। इससे पता चलता है कि तुलसी का जन्म शेक्सपीयर के जन्म से ३२ वर्ष पूर्व और इनकी मृत्यु शेक्सपीयर की मृत्यु के ७ वर्ष पश्चात् हुई। इनके जीवन-चरित में एक और समानता है। इन दोनों महाकवियों का जीवन-वृत्तान्त जनश्रुतियों के आधार पर ही अवलम्बित है। यह सच है कि शेक्सपीयर के जीवन-सम्बन्धी अनेक पुस्तकें हैं और नित नई पुस्तकों का प्रकाशन हो रहा है। फिर भी निश्चयात्मक रूप से बहुत थोड़ी जानकारी हमें उपलब्ध है। भारत में जीवन-चरित लिखने की परिपाटी ही नहीं रही है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार कलाकार का जीवन उसकी कलाकृति में निहित है। संस्कृत के अग्रगण्य कवि कालिदास का अभी तक समय ही निर्धारित न हो सका है; लेकिन ऐतिहासिक समीक्षा का भी अपना महत्त्व है। तुलसी के जीवन-वृत्तान्तों की छानबीन की आवश्यकता है।

दूसरा प्रश्न इन महाकवियों के पाण्डित्य का है। इस प्रश्न पर विचार करना इसलिये आवश्यक है कि कवि के सम्बन्ध में एक भ्रामक धारणा फैली हुई है। साधारण पाठकों और अधिकांश समीक्षकों की भी यह धारणा है कि कवि में जन्म जात प्रतिभा होती है, उसमें पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं। कवि में जन्म-जात प्रतिभा होती है, इससे तो कोई इनकार नहीं कर सकता। पर इसका अर्थ कदापि नहीं कि प्रतिभा ही सब कुछ है, पाण्डित्य कुछ नहीं। शेक्सपीयर के सम्बन्ध में यह धारणा चली आ रही है कि उनकी प्रतिभा आश्चर्यजनक है, चूँकि उनमें पाण्डित्य का अभाव है। इस धारणा का आधार शेक्सपीयर के समकालीन नाटककार बेन जॉनसन की यह उक्ति है—"Thou hast small Latine and less Greek"। बहुत दिनों तक बेन जॉनसन की इस उक्ति का दुरुपयोग 'अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा' के रूप में होता रहा। फिर इसकी प्रतिक्रिया हुई। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह प्रवृत्ति चली कि शेक्सपीयर का ज्ञान अपरिमित था। किसी ने यह साबित करना चाहा कि शेक्सपीयर औषध-विज्ञान का पण्डित था तो दूसरे ने उसे कानून का पण्डित सिद्ध करने की चेष्टा की। २० वीं शताब्दी में शेक्सपीयर के पाण्डित्य सम्बन्धी कुछ नवीन तथ्यों की जानकारी हुई है, जिनमें विश्वास करने के कारण भी हैं। १९०४ ई० में जे० चर्टन कालिन्स की 'शेक्सपीयर का अध्ययन' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के अध्ययन से पता चलता है कि शेक्सपीयर को ग्रीक नाटकों का ज्ञान (अनुवाद में नहीं) था। उसी साल दूसरी पुस्तक एच० आर० डी० एन्डर्स की 'शेक्सपीयर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें' प्रकाशित हुईं। इससे पता चलता है कि शेक्सपियर को कवि-ओविड का ज्ञान था, शेक्सपीयर के नाटकों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उसे यूनानी और रोमन-साहित्य का ज्ञान रहा होगा। इतना तो स्पष्ट है कि वह यूनानी और रोमन-साहित्य का पण्डित नहीं था। यहाँ पर इस बात को स्पष्ट कर देना उचित होगा कि १६ वीं शताब्दी में यूरोप के साहित्य में यूनानी और रोमन-साहित्य का वही स्थान है, जो भारतीय-साहित्य में संस्कृत का है। पाण्डित्य की दृष्टि से तुलसीदास शेक्सपीयर की कोटि में नहीं, वरन् मिल्टन, ब्राउनिंग, आरनाल्ड, स्वेनबर्न प्रभृति कवियों की कोटि में आते हैं। तुलसी ने अपने पाण्डित्य के विषय में रामचरितमानस में स्वयं संकेत किया है—

"नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्,
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।

तुलसी को वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, इतिहास, पुराण, काव्य शास्त्र आदि का गहरा ज्ञान था। तुलसी की कल्पना में प्रतिभा और ज्ञान का मनमोहक सम्मिश्रण है। अपेक्षाकृत शेक्सपीयर में पाण्डित्य का अभाव है, पर पर्याप्त है। शेक्सपीयर और तुलसी सम्बन्धी जितने भी जीवन-वृत्तान्त प्राप्त हैं, उनके अध्ययन से एक और बात का परिचय होता है, जिससे इन महाकवियों की उदार मनोवृत्ति समझ में आती है। यह सर्वविदित है कि शेक्सपीयर स्वयं एक अभिनेता था और पीछे चलकर नाटक कम्पनी का मालिक हो गया। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में वह नाटक-कम्पनियों के साथ घूमा करता था। इस यात्रा में शेक्सपीयर को जीवन की अनेकता और विभिन्नता को समझने का अवसर मिला होगा। यही कारण है कि शेक्सपीयर के नाटकों में 'रीयलिज्म' और 'रोमान्टिसज्म' का सुन्दर सम्मिश्रण मिलता है। इसी तरह तुलसी का पुस्तक ज्ञान जीवन-यात्रा की अनुभूतियों से पूर्ण हो गया। 'तुलसी-चरित' और 'गोसाईं चरित्र' से पता चलता है कि तुलसी ने सम्पूर्ण भारत की यात्रा की थी। जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारिका, बदरीकाश्रम, कैलाश और मानसरोवर आदि तीर्थों की यात्रा की थी। रामेश्वर-यात्रा करते समय इन्होंने शैवों और वैष्णवों के वैमनस्य को, जो कि दक्षिण भारत में चरम सीमा पर पहुँच चुका था, अवश्य लक्ष्य किया होगा। यही कारण है कि तुलसी और शेक्सपीयर दोनों में ही जीवन-अनुभूति, पाण्डित्य और कला का समन्वय कुछ कम या अधिक अनुपात में पाते हैं।

तुलसी और शेक्सपीयर दोनों ही पुनरुत्थान युग की देन हैं। १६ वीं शताब्दी का विश्व इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इङ्गलैण्ड और भारत दोनों ही देशों में इसका महत्व सांस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टिकोणों से है। यूरोप के इतिहास में मध्य-युग 'अन्धकार-युग' के नाम से पुकारा जाता है। १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक नवीन सांस्कृतिक चेतना का प्रादुर्भाव होता है, जिसे इतिहासकारों ने 'पुनरुत्थान-युग' कहा है। इस युग की प्रमुख विशिष्टताएँ हैं—सांस्कृतिक चेतना, नूतन गवेषणाओं की ओर अभिरुचि और ज्ञान-वर्धन की तीव्र आकांक्षा। इस सांस्कृतिक आन्दोलन के साथ ही, दो नवीन धाराओं का सङ्गम होता है 'जातीयता की भावना' और 'धार्मिक सुधार की लहर'। इस त्रिवेणी के सङ्गम से अमर कलाकार शेक्सपीयर का आविर्भाव हुआ। अमर कलाकार युग की देन होता है साथ ही युग स्रष्टा भी। उसकी कला-कृतियों में युग की क्रियाओं की छाप रहती है, पर वह युग की असन्तुलित चेतना को मूर्त्तरूप प्रदान कर, ऐक्य की स्थापना कर, अपनी प्रतिभा से 'सर्वदेशीय' और 'सर्व-युगीन' हो जाता है। शेक्सपीयर पुनरुत्थान युग का कलाकार है। उसके नाटकों में एलिजाबेथ युग की चेतना मुखरित हो उठी है। संस्कृत-साहित्य का अमर कवि कालिदास भारतीय इतिहास के उन्नत युग 'गुप्त-काल' की उपज हैं। जर्मनी में सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना के पश्चात् अमर कवि गेटे का प्रादुर्भाव होता है।

तुलसी की अवतारणा भारत के मध्य-युगीन पुनरुत्थान-युग में होती है। पठानों के समय में देश में अराजकता फैली हुई थी। मुगल बादशाहों ने देश में शान्ति और व्यवस्था कायम की। राजनीतिक व्यवस्था का सबसे सुन्दर उदाहरण राजनीति विशारद अकबर के राजत्व-काल में मिलता है। जिस तरह इङ्गलैंड में रानी एलिजाबेथ ने रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायों को देश भक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाम पर ऐक्य-सूत्र में बाँध दिया, उसी तरह बादशाह अकबर ने हिन्दुओं और मुसलमानों में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की। एलिजाबेथ की उदार राजनीति की अभिव्यक्ति शेक्सपीयर के नाटकों में हुई। अकबर की उदार नीति के फलस्वरूप तुलसी का आविर्भाव हुआ। उस समय भारत में भी, अन्य देशों की भाँति, धार्मिक विचारों में क्रान्ति मची हुई थी। भारत का पुनर्जागरण युग धर्म-सुधार का युग ही रहा है। भारत में धर्म और समाज में गहरा सम्बन्ध है। भारत में भी शङ्कर के एकेश्वर और निर्गुणवाद ने बौद्धों को उखाड़ फेंका था, लेकिन धार्मिक भावनाओं का सन्तुलित ऐक्य न हो सका था। जनता पौराणिक धर्म की ओर प्रवृत्त हो रही थी। जनता का ध्यान सगुणोपासना की ओर हो गया था। दक्षिण भारत में शैवों और वैष्णवों का झगड़ा चरम सीमा पर पहुँच रहा था। कबीर निर्गुणवाद की रहस्यमयी वाणी सुना रहे थे। इस सांस्कृतिक विशृङ्खलता के युग में तुलसी का जन्म हुआ। इङ्गलैंड में शेक्सपीयर के 'रीनासेन्स' के समस्त चेतनाओं का समीकरण अपने नाटकों में किया और तुलसी ने भारतीय रीनासेन्स की बिखरी हुई धाराओं का समन्वय रामचरित-मानस में किया।

सामाजिक अवस्था के अध्ययन अनुसार शेक्सपीयर और तुलसी के प्रति लोगों का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं है। शेक्सपीयर के सम्बन्ध में १९ वीं शताब्दी तक अँगरेजी के प्रसिद्ध समालोचकों—कालरिज, हैजलिट, लैंब, कार-लाइल का यही दृष्टिकोण रहा कि—'Shakespeare was not of an age, but for all time." 'शेक्सपीयर किसी एक युग का कवि नहीं था, वरन् प्रत्येक युग का'। अतएव इन लोगों ने शेक्सपीयर के नाटकों का अध्ययन तत्कालीन सामाजिक अवस्थाओं के दृष्टिकोण से नहीं किया। यत्र-तत्र संकेत मात्र ही किया। २० वीं शताब्दी के समालोचकों का ध्यान शेक्सपीयर के समय के सामाजिक, राजनीतिक अवस्थाओं की ओर गया है। इस दृष्टिकोण से लिखित उनका समालोचना-साहित्य बहुत अधिक है और दिन-ब-दिन बढ़ ही रहा है। इनमें ई० ई० स्टॉल, एच० मानगीले बारकर, जी० वी० हैरीसन की पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध हुई हैं। अभी तक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तुलसी-साहित्य का अध्ययन नहीं के बराबर हुआ है। यह सच है कि महाकाव्य में सामाजिक अवस्थाओं के चित्रण का अवसर उतना अधिक नहीं मिलता, जितना कि नाटककारों को। फिर भी तुलसी के रामचरितमानस और विनय-पत्रिका आदि काव्यों में तत्कालीन सामाजिक अवस्था का चित्रण मिलता है। सामाजिक दृष्टिकोण से तुलसी-साहित्य के विशद अध्ययन की अत्यावश्यकता है। सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक अवस्थाओं की ओर संकेत करने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि तुलसी और शेक्सपीयर दोनों ही महाकवियों ने अपने-अपने युग और समाज से प्रेरणा ग्रहण कर, युग-धर्म और शाश्वत-धर्म का समन्वय किया है।

"हिन्दी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को खरीदकर पढ़ने की आदत डालिये! माँगकर पढ़ना हिन्दी के मार्ग में रोड़े अटकाना है!"

निवेदक

राहुल सांकृत्यायन, (भू. पू. स. हिंदी सा. सं.) चन्द्रबली पाण्डेय, (भू. पू. स. हिंदी सा. सं.) बाबूराव विष्णु पराड़कर, (सम्पादक 'आज' काशी) शिवपूजन सहाय (सं., 'साहित्य' पटना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

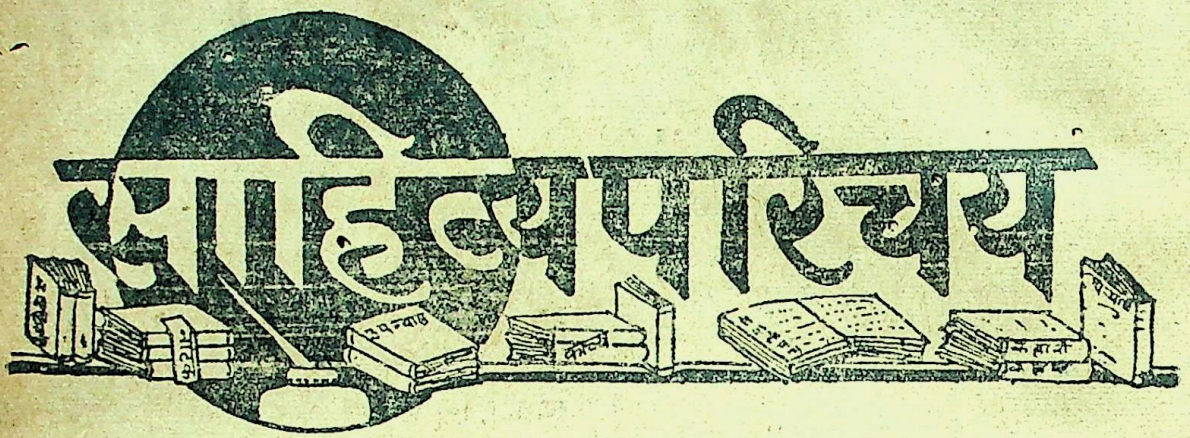

आलोचना

मध्यकालीन धर्मसाधना—लेखक–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक–साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद। पृ० २३८, मूल्य ३)

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के गम्भीर अध्ययन और विद्वत्ता से सभी परिचित हैं। यह पुस्तक उनके ३७ निबन्धों का संग्रह है। जिन्हें एक क्रम से बैठाकर एक ग्रन्थ का रूप देने की सफल चेष्टा की गयी है। मध्यकाल की परिभाषा पहले ही अध्याय में देदी गयी है, जिससे विषय का क्षेत्र स्पष्ट हो जाता है। उसके बाद आरम्भ से इस काल के विविध धर्मों का परिचय है जैसे तान्त्रिक, पांचरात्र तथा वैष्णव मत, पांशुपत मत तथा शैवागम कापालिक मत, जैनयात्री, सहज और नाथसिद्ध धर्म और निरंजन मत, कबीर मत में धार्मिकता आदि। उसके उपरान्त सामाजिक अवस्था विषयक ५–६ निबन्ध हैं। २३ वें निबन्ध से ३० वें निबन्ध तक अधिकांश कृष्ण और राधा के विषय पर विचार हैं। ३० से ३७ तक अन्य विषयों की चर्चा है। प्रत्येक पंक्ति में लेखक के विशद अध्ययन और प्रामाणिक वाणी का परिचय मिलता है जिसमें मौलिकता भी है और नयी शोध भी। शैव, वैष्णव, जैन आदि की चर्चा है, किन्तु शाक्त अथवा देवी सम्प्रदाय की उन्होंने चर्चा नहीं की। इस युग में इसकी भी प्रबलता थी। वल्लभाचार्यजी को तो विशेषतः इसी सम्प्रदाय को स्थान-स्थान पर परास्त करना पड़ा था। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। छपाई सफाई और गेट अप भी आकर्षक है।

कबीर साहित्य का अध्ययन—ले०–पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव एम० ए०, प्रकाशक–साहित्य रत्न माला कार्यालय, २० धर्मकूप बनारस। पृ० ३६७, मूल्य सजिल्द ४॥) अजिल्द ४)

पुस्तक में नौ अध्याय हैं जिनमें क्रमशः अध्ययन का प्रयोजन और पद्धति, अध्ययन का संक्षिप्त इतिहास, कबीर साहित्य का परिचय, कबीर की भाषा और शुद्ध पाठ, उनके सिद्धान्त और साधना पद्धति, श्रेयमार्ग, कठिन पदों का अर्थ, कबीर की कविता तथा जीवन वृत्त आदि विषयों पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। ३५३ पृष्ठ से उपसंहार आरम्भ होता है और तदनन्तर ५ परिशिष्ट हैं, जिनमें कबीर के रहस्यवाद, साम्यवाद तथा कठिन शब्दों के अर्थ ही नहीं समझाये गये, ग्रंथ सूची, संकेत सूची तथा अनुक्रमणिका भी हैं।

प्रयोजन में लेखक ने लिखा है कि कबीर का काव्य ही नहीं, उनकी भाषा, उनकी जीवन-दृष्टि, उनकी उपासना-पद्धति, उनकी विचार-परम्परा सभी विचित्र पहेली बनी हुई हैं। लेखक इन्हें सुलझाने में प्रवृत्त हुआ है। उसने प्रत्येक विषय पर काफी विस्तार से विचार करने की चेष्टा की है, मूल ग्रन्थों से यथावश्यक प्रमाण दिये हैं। और अन्य विद्वानों की रचनाओं का भी उपयोग किया है। फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अध्ययन न तो कोई नयी व्याख्या प्रस्तुत करता है, न अध्ययन को ही पूर्ण करता है। अधिकांशतः लेखक ने पं० रामचन्द्र शुक्ल के मतों की ही पुष्टि की है। बहुत कुछ सामग्री ऐसी तो अवश्य है जिससे कुछ अन्य बातों का परिचय मिलता है, पर वे प्रकृत विषय से सीधा सम्बन्ध नहीं रखतीं। इस पुस्तक को ज्ञान-कोष बनाने के लोभ का संवरण कर सकते तो पुस्तक विशेष उपयोगी सिद्ध होती। जैसे 'भारतीय' श्रेयमार्ग और उससे आगे लगभग ३० पृष्ठ ऐसे ही माने जा सकते हैं। कबीर की भाषा को लेखक ने सधुक्कड़ी बताते हुए भी उसे प्रचलित भाषा माना है। यह भाषा कबीर को नाथ-पन्थ से मिली थी। यह दखिनी हिन्दी का पूर्व रूप है। कबीर पर इस्लामी प्रभाव था या नहीं, इस विषय पर चन्द्रवली पांडेयजी ने जिन्द-कबीर में जो तर्क प्रस्तुत किये हैं उन पर भी विचार होना चाहिए था। पाण्डेयजी के कबीर विषयक निबन्धों का लेखक ने अध्ययन नहीं किया। पुस्तक में कुछ अव्यवस्था भी प्रतीत होती है—कठिन पदों के अर्थ तथा कुछ शब्दों के अर्थ पास-पास रहते और वह भी पुस्तक के अन्त में, तो व्यवस्था ठीक रहती।

यह सब होते हुए भी पुस्तक में प्रामाणिकता लाने की चेष्टा की गयी है, और प्रत्येक विषय को युक्ति-तर्क से सिद्ध किया गया है। कुछेक को छोड़कर कबीर पर प्राप्त समस्त सामग्री का ब्यौरा भी दे दिया गया है। पुस्तक अवश्य ही पठनीय और संग्रहणीय है। —सत्येन्द्र

हिन्दी कवियों की काव्य-साधना—लेखक—पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र 'पारिजात', प्रस्तावना लेखक—डा० भगीरथप्रसाद मिश्र, प्रकाशक—नवयुग ग्रन्थागार, लखनऊ। पृ० सं० ३१०, मूल्य ४॥)

'हिन्दी कवियों की काव्य-साधना' पुस्तक में मिश्रजी ने वीरगाथा-काल, भक्ति-काल, रीति-काल और आधुनिक-काल के २६ प्रमुख कवियों के जीवन-वृत्त, शैली, काव्य-सौन्दर्य एवं प्रगीत-ग्रन्थों का परिचय दिया है। हिन्दी साहित्य के सभी कालों के प्रतिनिधि काव्यकारों को इस पुस्तक में स्थान मिला है, किन्तु आधुनिक काल के कवियों का परिचय अधिक संक्षिप्त हो गया है। फिर भी यह पुस्तक साहित्य-रत्न, प्रभाकर और माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों के लिए उपयोगी है। विद्यार्थी-वर्ग को कवियों के परिचय और आलोचना के लिए प्रस्तुत पुस्तक में एकत्रित सामग्री मिल जाती है और उन्हें इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता। पुस्तक की भाषा संयत और प्रांजल है।

ब्रज-भाषा की विभूतियाँ—लेखक—देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास बाँकीपुर, पटना। पृ० २५१, मूल्य ३॥)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने ब्रज-भाषा के अमर काव्य-निर्माता सूरदास से लेकर आधुनिक-काल के उदीयमान नक्षत्र सत्यनारायण तक आठ कवियों के काव्य का विवेचन किया है। काव्यकारों की शैली और मूल सिद्धान्तों की व्याख्या के साथ-साथ उनके जीवनवृत्त पर भी संक्षेप रूपेण प्रकाश डाला है। आमुख रूप में ब्रज-भाषा के विकास का दिग्दर्शन करते हुए कृष्ण-काव्य की पृष्ठ भूमि और अष्टछाप के कवियों का भी परिचय देदिया है। ब्रज-भाषा के प्रेमी और जिज्ञासु पाठकों के लिये यह पुस्तक बहुत सुन्दर है। इस पुस्तक में जहाँ बिहारी, घनानन्द और हरिश्चन्द्र को स्थान मिला है वहाँ देव और मतिराम जैसे ब्रज भाषा के महाकवियों के प्रति लेखक की उपेक्षा खटकती है। ब्रज-भाषा का यह विभूति भाण्डार इन दो रत्नों के बिना कुछ सूना-सा लगता है। आशा है आगामी संस्करण में इस अभाव की पूर्ति हो सकेगी। लेखक की शैली सरल, सुबोध और आकर्षक है। —डा० किरणकुमारी गुप्ता एम० ए०

कथानिका : एक अध्ययन—लेखक—प्रो० वासुदेव, एम० ए०, प्रकाशक—भारती भवन, पटना। पृष्ठ संख्या १०५, मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक में 'कथानिका' नामक कहानी-संग्रह को लेकर विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कथा-निका बिहार के आधुनिक हिन्दी कहानीकारों का प्रथम कहानी संग्रह है जिसमें किसी एक प्रान्त के कहानीकारों को एक साथ रखने का प्रयत्न किया गया है।

'कथानिका: एक अध्ययन' के प्रकाशन में आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कहानी के विकास का संक्षेप में परिचय दिया गया है। इसके बाद कथानिका के प्रत्येक कहानीकार का संक्षिप्त जीवन-वृत्त दिया गया है। 'कथानिका' में संगृहीत प्रत्येक कहानी की सक्षिप्त कथा, उसकी समीक्षा, भाषा-शैली तथा कहानी-कला की दृष्टि से विचार किया गया है।

हुङ्कार : एक समीक्षा—लेखक और प्रकाशक—वही; पृष्ठ संख्या ९०, मूल्य १)

हिन्दी के यशस्वी कवि दिनकर की कृतियों में 'हुँकार' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रो० वासुदेव ने प्रस्तुत पुस्तक में 'हुङ्कार' की सर्वाङ्गपूर्ण समीक्षा प्रस्तुत करके छात्रों के लिए एक अत्यन्त उपयोगी कार्य किया है। प्रारम्भ में दिनकर का सामान्य परिचय देते हुए हिन्दी काव्य में उनका स्थान निर्धारित किया गया है।

प्रो० वासुदेव ने दिनकर की क्रान्ति भावना, राष्ट्रीयता, प्रकृति-चित्रण, युगाभिव्यक्ति, काव्य-कला, भाषा-शैली आदि सभी पर 'हुँकार' को लेकर अच्छी विवेचना प्रस्तुत की है।

पुस्तक के अन्त में कुछ महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ और प्रश्न भी दे दिये गये हैं, जिनसे पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। —कन्हैयालाल सहल एम० ए०

कविता

अपलक—ले०—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'। प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ १०७, मूल्य ३॥)

यह हिन्दी के विद्रोही और मस्त कवि श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के गीतों का संग्रह है। इन गीतों का स्वर प्रेम का है, जो लौकिक की सीमाओं में बद्ध होते हुए भी अलौकिक का स्पर्श देने में समर्थ है। गीतों में से अधिकांश का जन्म उन्नाव या बरेली जेल में हुआ है, जहाँ कवि जोरी नौकरशाही का महमान रहा था। कुछ गीत गणेश कुटीर कानपुर में लिखे हैं और कुछ रेल यात्रा में। इन गीतो में प्रिय की स्मृति ने सबसे अधिक प्रेरणा दी है। स्मृति के कारण गीतों में करुणा और कसक के साथ कवि की परिस्थिति-जन्य बेचैनी का बड़ा ही सजीव चित्रण है। विरह-वेदना के चित्र देने में कवि को विशेष सफलता मिली है। कभी-कभी जब प्रिय से अचानक, बहुत दिनों बाद, मिलन हुआ है या मिलन के बाद प्रियतम से बिछोह हुआ है, कवि का हृदय भाव-राशि लिए प्रिय के चरणों में लोटने लगा है। मनुहार करने में कवि को बड़ा सन्तोष मिलता जान पड़ता है। इस अनिकेतन कवि को एकाकी बड़ा लम्बा पथ पार करना पड़ा है। इसलिए वह अपने प्रिय से निवेदन करता है:—

पाँव थके, हिय थका, जिय थका,
लोचन थके, थके अँग अँग।
आशा थकी, प्रतीक्षा हारी,
थकी कल्पना, थकी उड़ान।
हम तो बहुत थक गये प्राण॥

× × ×

बदन मलिन, तन छीन हो चला,
मैं नवीन प्राचीन हो चला।
फिर भी हिय में है इक उलझन,
कुछ लहराती-सी कुछ उन्मन॥
एक अजब गन्नाटा-सा है,
इस हस्ती के अपने पन में
समा गई मादकता मन में।

लेकिन कवि का वास्तविक उद्देश्य यह नहीं है। उसका वास्तविक उद्देश्य स्व-पर की भावना से ऊपर उठना है—

जैसे अपने तन में मुझको,
भासित होता है अपनापन।
जैसे अपनों को पाकर के,
यह हिय कर उठता है झन-झन।
वैसे ही मैं देख सकूँ इस,
निखिल विश्व के सब जड़-चेतन।
अपने और पराये के अब,
कट जाने दो ये सब बन्धन।
प्रिय! त्वम-मम करदो मम तन-मन॥

प्रियतम से! मेरे प्रिय अलख-झलक, अपलक चख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमक भरो। मेरे अन्तरतर में लोचन-मग से उतरो ५' की वाणी में प्रार्थना करने वाले इस कवि की अभिव्यक्ति बड़ी हार्दिक है। इसीलिए ब्रजभाषा का पुट ही नहीं कई कविताएँ भी ब्रजभाषा में हैं। 'गप्पाटा', 'अलग-थलग' जैसे शब्द भी प्रयोग किये हैं। 'ध्यान तुम्हारा धरा करें हैं' और 'तुम जानो हो' जैसे वाक्यांश भी हैं। स्वर, ताल के साथ गाये जाने वाले गीत इनमें अनेक हैं। भाषा का बड़ा सफल प्रयोग है। इन सफल गीतों के लिए आरम्भ में एक भूमिका कवि ने स्वयं लिखी है, जिससे उसके दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिलती है।

जवानी और जमाना—लेखक–श्री श्यामनन्दन 'किशोर', प्रकाशक–भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। पृष्ठ ५७, मूल्य १॥)

इस पुस्तक की भूमिका में दिनकरजी ने लिखा है—मैं किशोरजी की प्रगति को आरम्भ से ही बड़े प्रेम से देखता रहा हूँ। उनकी मस्ती और ताजगी बड़ी लुभावनी चीज है। हर पीढ़ी के साथ आने वाली यह मस्ती और ताजगी हमारी काव्य-वाटिका की हरियाली को कायम रखती है। किशोरजी की वाणी में यह हरियाली खूब निखर रही है। वे अच्छे स्वप्न देखते हैं और उन स्वप्नों को ऐसी भाषा में देखते हैं और व्यक्त करते हैं कि वे स्वप्न श्रोताओं को सहज ही ग्राह्य हो जाते हैं।" पूरी पुस्तक को पढ़कर हमने यह अनुभव किया है कि 'जवानी और जमाना' के कवि वास्तव में सरस्वती के कृपा पात्र हैं। 'जवानी और जमाना' कविता तो हिन्दी की श्रेष्ठ कविताओं में रखी जा सकती है। अन्य कविताओं में हमें 'झोंपड़ी और दीपक', 'पनघट' और 'मरघट', 'राही और मंजिल', 'परदेशी और प्रियतम' विशेष अच्छी लगी। कवि का भविष्य निश्चय उज्ज्वल है।

संघर्षों के राही—लेखक–श्री रामगोपालशर्मा 'दिनेश'। प्रकाशक–विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा। मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक में दिनेशजी ने २५ राष्ट्रीय गीतों का संग्रह किया है। सभी गीत संघर्षशील मानव को प्रेरणा और स्फूर्ति देने वाले हैं। अनुभूति की सचाई और अभिव्यक्ति का सारल्य इनकी विशेषताएँ हैं। वर्तमान समाज की विषमता और पूँजीवाद के अभिशाप का पर्दाफाश करने वाली इन कविताओं का प्रत्येक युवक के हाथ में पहुँचना आवश्यक है क्योंकि इनका स्वर उन्हीं की आत्मा की ऊष्मा के आलोक से जगमगाता और नए मानव का पथ प्रदर्शन करता है।

संकल्प—लेखक–श्री सत्यनारायण द्विवेदी, प्रकाशक–ए० वी० वर्मा, शारदा प्रेस, कटरा रोड, इलाहाबाद। मूल्य १)

श्री सत्यनारायणजी द्विवेदी की इन कविताओं में युग की सजीव झाँकी है। कवि अपने अनल मय गानों द्वारा विश्व में परिवर्तन लाने का निश्चय कर चुका है और उस परिवर्तन के लिए वह यह आवश्यक समझता है कि किसान और मजदूरों की स्थिति बदले। किसान और मजदूरों की स्थिति तब तक नहीं बदल सकती जब तक कि उनकी दशा का यथार्थ ज्ञान उनको और उनके प्रति सहानुभूति रखने वालों को न हो। यही सोचकर द्विवेदीजी ने इस पीड़ित वर्ग की स्थिति का यथा तथ्य चित्र खींचा है।

ठण्डा लोहा तथा अन्य कविताएँ—लेखक–श्री धर्मवीर भारती, प्रकाशक–साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद। पृष्ठ ९५, मूल्य ३)

श्री धर्मवीर भारती नई पीढ़ी के लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी कविताएँ भी लोकप्रिय हुई हैं। प्रस्तुत संग्रह में उनकी जो चुनी हुई कविताएँ हैं, उनमें विषय वस्तु की अपेक्षा अभिव्यक्ति के प्रकार का आकर्षण है। नई कल्पनाएँ, नई उपमाएँ, नए भाव, नई शब्दावली, नए छन्द बरबस पाठक का मन खींच लेते हैं। भाषा में उर्दू के पुट से रस और बढ़ गया है। प्रेयसी द्वारा प्रेमी के भाल के चुम्बन का चित्र और उसका प्रभाव देखिए—

आज माथे पर, नजर में बादलों को साधकर,
रख दिए तुमने सरल सङ्गीत से निर्मित अधर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरती के दीपकों की झिलमिलाती छाँह में,
बाँसुरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठपर।

कलङ्क-सुरक्षित यौवन का समर्थन करते हुए कवि कहता है—

गुनाहों से कभी मैली हुई बेदाग तरुणाई,
सितारों की जलन से बादलों पर आँच कब आई।
न चन्दा की कभी व्यापी अमा की घोर कजराही,
बड़ा मासूम होता है गुनाहों का समर्पण भी।
हमेशा आदमी मजबूर होकर लौट आता है,
जहाँ हर मुक्ति के, हर त्याग के, हर साधना के बाद।

'कविता की मौत', 'निराला के प्रति' 'यज्ञ का निवेदन' आदि बड़ी शक्ति पूर्ण कविताएँ हैं। 'निवेदन' में कवि ने कहा है कि उसे इन कथा, कहानी, उपन्यास, कविताओं में न खोना जाय क्योंकि ये गलियाँ थीं, जिनसे होकर कवि गुजर चुका है। कवि की दृष्टि में 'मैं' और 'कला' की कोई अहमियत नहीं क्योंकि वह इन दोनों से ज्यादा विराट और सत्य की खोज में है। —कमलेश

विहग-गीत—ले०—वारणासि राममूर्ति 'रेणु', प्रकाशक—लक्ष्मी हिन्दी विद्यालय, चिलकलूरिपेट, जिला-गुण्टूर, मद्रास। मूल्य १।)

प्रस्तुत पुस्तक के कवि दक्षिण भारत के हैं और इसमें उनकी चुनी हुई तेरह कविताएँ संग्रहीत हैं। अहिन्दी भाषा भाषी प्रान्त के होते हुए भी रेणुजी की हिन्दी की इन कविताओं में हृदय की भावनाएँ सुन्दर रूप में व्यक्त हुई हैं। काव्योचित गुणों का समावेश प्रायः सभी कविताओं में है। एकाध जगहों पर हृदय की भावनाएँ छन्द रूपी प्याली से बाहर आती सी ज्ञात होती हैं। पुस्तक के अन्त में एक परिशिष्ट है जिसमें वर्ण्य कविता के प्रेरक उपकरणों के वर्णन दिये गये हैं जिनसे कविता को समझने में आसानी होती है।

नव-निर्माण—ले०—श्री प्रेमप्रकाश गौतम। प्रकाशक—विद्यार्थी पुस्तक भवन, फुव्वारा, आगरा। मूल्य १)

३१ स्फुट कविताओं के इस संग्रह में मुख्यतः राष्ट्रीय भावनाओं को काव्य की भाषा में व्यक्त करने का प्रयास कवि ने किया है। कविताएँ हृदय-प्रसूत ज्ञात होती हैं और नव निर्माण के लिए युवकोचित उत्साह प्रायः सर्वत्र देखने को मिलता है। ऐसा लगता है कि कवि ने यदि अपना प्रयास जारी रक्खा तो इनकी रचनाएँ चाव से पढ़ी जा सकती हैं।

झिमझिम—ले०—श्री निरंकारदेव सेवक। प्रकाशक—सेवासदन सेंदपुरिया स्ट्रीट, बरेली। मूल्य १)

हिन्दी में स्वस्थ बाल-साहित्य का अभाव खटकने की बात है। प्रस्तुत काव्य-पुस्तिका से न केवल कोमलमति बालकों का मनोरञ्जन होगा अपितु कविता की ओर उनकी अभिरुचि भी बढ़ेगी। साधारण विषयों को कविता में बाँधने का जो सहज प्रयास इसमें किया गया है उनसे बच्चे अत्यन्त लाभान्वित होंगे।

पग-ध्वनि—ले०—श्रीमती चित्रा, प्रकाशक—सरल साहित्य, अजमेर। मूल्य १॥)

कवियित्री के सरस तीस स्फुट गीत इसमें संग्रहीत हैं। ऐसा लगता है कि कवियित्री ने अधिकांश गीतों में हृदय की वेगवती-धारा को बाँध दिया है और जैसे छन्दों की कारा में बन्द किये बिना ये नहीं रह सकती हों। सुकुमार एवं माधुर्य-भाव में निष्णात कविताओं की पंक्तियाँ किसी बाद विशेष से प्रभावित होकर नहीं रची गयी सी लगती हैं। —शिवप्रसाद लोहानी

उपन्यास

पूर्णिमा—लेखक—अनन्त गोपाल शेवड़े एम० ए०, प्रकाशक—साहित्य रत्नाकर, ग्वालियर। पृष्ठ सं० २५०, मूल्य ३॥।)

यह प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक शेवड़ेजी की नवीन कृति है जो उनके 'मृगजल' जैसी मोहक और आकर्षक तो नहीं पर आधुनिक कालेज-जीवन की झाँकी इसमें सटीक उतरी है। यथार्थ की आधार-शिला पर स्थित यह आदर्श की ओर संकेत करता है। पूर्णिमा-मा के अभाव में धनी पिता की विशेष लाड़ली यह कालेज की लड़की सब तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ऐश आराम में पली है, अच्छी गायिका है। यथा नाम तथा गुण, विलास की तरफ यह आकृष्ट है। उच्छृंखला विनय भी पूर्णिमा में रुचि रखने लगा है पर पूर्णिमा विलास-प्रिय होने के नाते विलास के ही चक्कर में फँस कर गर्भिणी होती है। लड़की की मा बन कर ही वह विनय को समझ पाती है। विलास तो बेखबर विलायत पहुँच जाते हैं। विनय के कारण ही पूर्णिमा जिन्दा रहती है—अन्त में उन्हीं के मिलन में उपन्यास की परिणति हुई है। घटनाओं की अन्विति तथा चरित्र-चित्रण एवं भाषा की दृष्टि से भी उपन्यास श्रेष्ठ है। आजकल के विद्यार्थियों की हवा का इसमें साङ्गोपाङ्ग विश्लेषण हुआ है जो पठनीय है।

पुनर्मिलन—लेखक—रामानन्द शर्मा, प्रकाशक—विद्या-भवन, पामरू, कृष्णा (आन्ध्र देश) पृ० २७२, मूल्य ३)

इस उपन्यास के लेखक हैं उत्साही श्री रामानन्दजी जिन्होंने मद्रास में हिन्दी प्रचार का बीड़ा उठाया है। इस उपन्यास की शैली भी मद्रासियों को दृष्टि में रखने के कारण ही शायद बहुत कुछ कृत्रिम सी होगई है। घटनाओं में भी अनिवार्य स्वाभाविकता के दर्शन नहीं होते। सुब्रह्मण्यम का लक्ष्मी के साथ अनमेल विवाह होता है। बहिन की लड़की से यह विवाह क्यों हुआ तथा उनका वैवाहिक सम्बन्ध इतना दूरस्थ ही क्यों बना रहता है यह सब पहेली ही रह गई है। आञ्जनेय लक्ष्मी को हथियाना चाहता है। उसी के प्रयत्न से सुब्रह्मण्यम लक्ष्मी को छोड़-कर दूसरा विवाह कर लेता है। लक्ष्मी स्वतन्त्र संस्था चलाने लगती है। दूसरी स्त्री से उत्पन्न सुब्रह्मण्यम का लड़का अपनी बड़ी मा लक्ष्मी के लिए जिद करने लगता है—केवल लक्ष्मी का चित्र देख कर। उसी के कारण सुब्रह्मण्यम की दूसरी स्त्री की मृत्यु के उपरान्त लक्ष्मी-सुब्रह्मण्यम का पुनर्मिलन होता है। आञ्जनेय अपने प्रणय-प्रयास में विफल हो सीधे रास्ते आता है। घटना और चरित्र का अन्योन्य सम्बन्ध अत्यन्त क्षीण है। घटनाओं का प्रवाह मनमाना तथा अस्वाभाविक है। चरित्र-चित्रण व विकास शिथिल है।

डाक्टर मोरो का द्वीप—मू० ले०—एच० जी० वेल्स, अनु० द्वपनारायण पाण्डेय, प्रकाशक—साहित्य-रत्नाकर, ग्वालियर। पृ० सं० २००, मू० ३॥)

इस उपन्यास में वैज्ञानिकों की अजीब दुनिया का कुछ भयावह सा इतिहास है। जहाज डूबने पर एक व्यक्ति कैसे अपने आपको बचाकर डाक्टर मोरो के द्वीप में पहुँचता है जहाँ पशुओं को चीर फाड़कर मनुष्य बनाने के प्रयोग चल रहे हैं। इन प्रयोगों की आंशिक सफलता इसमें दिखाई गई है पर वे अपना पशुत्व बिल्कुल छोड़ दें यह मुश्किल दिखाया गया है। डाक्टर मोरो तथा उनके साथी मांट-गोमरी इन्हीं पशु मनुष्यों के शिकार होते हैं। विज्ञान क्या नहीं कर सकेगा इसका इसमें मार्मिक संकेत है। विज्ञान की अमित संभावनाओं का दिग्दर्शन है। अनुवाद अत्यन्त सफल हुआ है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासों के ऐसे सफल हिन्दी अनुवादों की बड़ी आवश्यकता है।

—नागरमल सहल एम० ए०

राजनीति

नागरिक अधिकार—ले० श्री उमाशङ्कर, प्रकाशक—नया हिन्दुस्तान पब्लिकेशन्स, लंगरटोली, पटना ४। मूल्य १)

हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकृत होने के बाद इस बात की अत्यन्त आवश्यकता समझी जा रही है कि इसमें उपयोगी साहित्य की सर्जना और उसका प्रकाशन हो। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने प्रेस की स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, वाणी की स्वतन्त्रता एवं राज्याधीन नौकरी-प्राप्ति की स्वतन्त्रता जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर सुन्दर ढङ्ग से प्रकाश डाला है। यह पुस्तक पुस्तकालयों में रहने योग्य है। छपाई, सफाई और गेटअप सुन्दर है।

राजनीतिक विचारधाराएँ—लेखक व प्रकाशक उपर्युक्त। मूल्य २)

सम्प्रतिवादों का विवाद इतना बढ़ गया है कि वादों के स्वरूप को जाने बिना कोई भी व्यक्ति अपना काम ठीक से नहीं चला सकता। इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने आदर्श-वाद, उपयोगितावाद, अराजकतावाद, व्यक्तिवाद, प्रजातन्त्र वाद, साम्यवाद, सर्वोदयवाद, फासिस्टवाद एवं रूसी साम्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद पर विभिन्न विचारकों के मत एवं अपनी बात सुलझे रूप में रखने का प्रयास किया है। पुस्तक पठनीय तथा संग्रहणीय है।

—शिवप्रसाद लोहानी

कहानी

दूर की कौड़ी—लेखक—श्री मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—चेतना प्रकाशन लिमिटेड, हैदराबाद। पृष्ठ १२१, मूल्य २॥)

दूर की कौड़ी में लेखक की ६ कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में लेखक ने कल्पना का रङ्ग चढ़ा काँग्रेस के इतिहास से सम्बन्धित अपनी जीवनी के सत्य को प्रकाश में लाने का सफल प्रयास किया है। इस संग्रह की तीन कहानियाँ 'राजनीति', 'सोख्ते' और 'देशभक्त' का अन्त कला और टेकनीक की दृष्टि से सुन्दर है। जीवन की व्यग्रता और घोर विभीषिका से अच्छादित मत का प्रपीड़न आवेग इन कहानियों में संप्रहीत है। कहानी 'देशभक्त' में जीवन की दौड़ का एक गति चित्र धूमिल छाया की तरह कहानी के सभी पात्रों के पीछे-पीछे दौड़ता हुआ दृष्टि गोचर होता है।

दूर की कौड़ी की अधिकांश कहानियाँ वातावरण प्रधान होने के कारण सामयिक सत्य लिए हुए चलती हैं, जिनमें कथानक गौण हो जाता है और पात्र वातावरण से घिरा होने के कारण मूल कथा से भी कहीं दूर दिखाई पड़ता है। फिर भी कथा का तारतम्य नहीं टूटता है।

—गङ्गाप्रसाद कमठान

(पृष्ठ ६२ का शेष)

अतः माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों ने उन्हें जन्म के साथ ही छोड़ दिया था :—

'मातु-पिता जग जाय तज्यो।' (कवितावली)

'जननि जनक तज्यो जनमि।' (विनय पत्रिका)

जनश्रुतियाँ अन्य कारण भी बताती हैं, किन्तु तब तक उनके मान्य होने में कठिनाई है जब तक कि उनकी सत्यता का वैज्ञानिक आधार नहीं मिल जाता। यह अभागा बालक "छाछी को ललात" तथा "चारि ही चमक को" के लिये दांत दिखाता द्वार-द्वार पर ठोकर खाता-फिरता पर किसी ने बात तक नहीं की।"

सूर-तुलसी, जो हिन्दी गगन के सूर्य-चन्द्र माने जाते रहे हैं, जिन पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है, और जिन्हें घोर प्रगतिवादी भी आदर के साथ स्मरण करते हैं, उनके सम्बन्ध में उक्त सम्पादकीय शब्द निश्चय ही ठेस पहुँचाते हैं। विदित नहीं इन पंक्तियों के लेखक का मूल अभिप्राय क्या है? इतना तो स्पष्ट है कि उन्होंने तुलसीदास की पंक्तियों का अर्थ नहीं समझा, जो अर्थ उन्होंने किया है, वह वस्तुतः अनर्थ है। लेखक को तुलसी के जन्म के सम्बन्ध की अन्य जन-श्रुतियाँ मान्य नहीं, क्योंकि उनकी सत्यता का वैज्ञानिक आधार नहीं। किन्तु आश्चर्य है कि अपने किये अर्थ में उन्हें इतना पक्का विश्वास हो गया है कि उसके लिए 'अनर्थ' को भी बिना वैज्ञानिक कसौटी पर कसे स्वीकार कर लिया है। बंगीय हिन्दी परिषद ने ऐसे अनर्थ के प्रति आवाज उठायी है। हिन्दी-जगत को उससे अवश्य सहयोग करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

यहां है

हमने साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को हर महीने पौने मूल्य में पुस्तकें देने की योजना पिछले दिसम्बर मास से निकाली थी और अब तक हमारे ग्राहक उससे लाभ उठाते रहे।

अब डाकखाने के नये कानूनों के अनुसार हम जवाबी कार्ड को साहित्य-सन्देश के अङ्क में नहीं रख सकते। अतः हम उस कार्ड को इसी पृष्ठ पर नीचे छाप रहे हैं, आप लाइन पर से काट कर उसे हमारे पास भेजदें। इस पर आपको टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं। जो ग्राहक किसी भी कारण से पुस्तकों को वी० पी० वापस कर देंगे तो पोस्टेज के खर्चे के वे जिम्मेदार होंगे।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

---(यहाँ से काटिये)---

——यहाँ से काटिये——

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

.....

.....

.....

.....

प्रेमचन्द (गोदान स्कीचा)—प्रेमनारायण शुक्ल १।।।)
—सिंधी गीतावली—गुलाबराय १।)
—रामचरित मानस धार्मिक १।)
—बली तस्वीरें—नरेन्द्रनारायणलाल कहानी १।।।=)
—न की लहर—रामशरण विद्यार्थी ,, ।।)
—हारतीय वस्तु विज्ञान—विन्ध्येश्वरी प्रसाद विज्ञान ३।)
—अखंड भारत—विद्यालङ्कार राजनीति १)
—हारजीत—सेवक कविता २)
—पात—मयङ्कर ,, १)
—मुक्तिगान—श्रीकृष्ण सरल ,, १।।)
—भाषा विज्ञान गाइड—गौतम परीक्षा सम्बन्धी २।।)
—मध्यमा निबन्धावली—मिश्र ,, ३)
—जयशङ्कर प्रसाद (विशेष कवि)—प्रश्नोत्तर २।।)
—अपना कौन—अभिनन्द पाण्डेय उपन्यास २।।)
—अभिलाषा—कपिलदेव श्रीवास्तव ३)
—विवाह और प्रेम—गोपेशकुमार ओझा छीपयो० २।।)
—शिक्षा सरोवर— बालोपयोगी ।—)
—भारतीय खेल =)

जो पुस्तक आप न लेना चाहें इसे काट दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sahitya Sandesh, Agra. REGD. No. A. 263.
SEPTEMBER. 1952.
License No. 16.
Licensed to post without prepayment.

साहित्य सन्देश आगरा की

सन् १९५१-५२ की फाइल तैयार है

साहित्य सन्देश के गत वर्ष की पूरी फाइल आलोचना विशेषांक सहित सजिल्द तैयार हैं, फाइलों के शीघ्र समाप्त होने की आशा है। मूल्य ५) पोस्टेज ।।।=)

फाइल की सूची मुफ्त मँगायें

साहित्य सन्देश कार्यालय:
४, गांधी रोड, आगरा।

Postage will be Paid by Addressee

BUSINESS REPLY CARD

AGRA G. P. O. Permit No 1136

Book Post

No Postage Stamp necessary if Posted in India

To.
श्री सञ्चालक,
साहित्य-सन्देश,
साहित्य-रत्न-भण्डार,
४, गांधी मार्ग,
आगरा

अन्तिम ता० ३१—९—५२, तक २—एक रु० से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायगी।
हो जाऊँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १४] आगरा—अक्टूबर १९५२ [अङ्क ४

सम्पादक

गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम. ए., पी-एच. डी.
महेन्द्र

*

प्रकाशक

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक

साहित्य प्रेस, आगरा।

*

वार्षिक मूल्य ४), एक अङ्क का ।=)

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचार धारा—	सम्पादक
२—नवीन समीक्षा-प्रणाली के तत्व	श्री कृष्णबल्लभ जोशी
३—'वात्सल्य' रस की कसौटी पर	श्री अङ्गदप्रसाद राव एम० ए०
४—सेनापति का प्रकृति-चित्रण	श्री मिथिलेशजी एम० ए०, सा० र०
५—गोस्वामी तुलसीदास की भावुकता	प्रो० शिवबालक शुक्ल एम० ए०
६—नियतिवाद और कामायनी	प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०
७—लोकवार्ता और साहित्य	श्री गोवर्द्धन शर्मा एम० ए०
८—मीरा की प्रेम साधना	श्री मथुराप्रसाद अग्रवाल 'पतिङ्ग' एम० ए० (फा०)
९—"स्वैर विचार" और माडखोलकर	श्री अनिलकुमार
१०—साहित्य परिचय	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य सन्देश प्रत्येक माह के द्वितीय सप्ताह में निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जबाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : सितम्बर, १९५२

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं

आलोचना

मृगनयनी समीक्षा—डा० लक्ष्मीनारायण टंडन १।।।)
मृगनयनी एक आलोचनात्मक अध्ययन—
शान्तिस्वरूप गौड़ १।।।)
साहित्य सर्वस्व—
पं० हरिराम तिवारी ए० ३।।)
साहित्य विवेचन—क्षेमचन्द्र सुमन ७)

कविता

सूर रामायण—प्रेमनारायण टंडन एम० ए० १।)

कहानी

पड़ोस की कहानियाँ—सद्गुरुशरण अवस्थी ३।।)
चित्र का शीर्षक—यशपाल २)
देखा सोचा समझा—,, २।।)
उत्तराधिकारी— ,, २)
पराया—रवीन्द्रनाथ ठाकुर २।।)
जिन्दगी के थपेड़े—विष्णु प्रभाकर ३।।)
नवद्वीप—अलख मुरारी हजेला १।।)

उपन्यास

दोन के किनारे—रामबृक्ष बेनीपुरी ४)
पिंजर—अमृता प्रीतम ५)

नाटक

नशे-नशे की बात—यशपाल ३।।)
सुभद्रा परिणय—वीरेन्द्रकुमार गुप्त २)
नये एकाङ्की—अज्ञेय १।)

राजनीति

रामराज्य की कथा—यशपाल २)
सिंहावलोकन भाग १—,, ४।।)
,, भाग २—,, ५।।)

इतिहास

पूर्व आधुनिक राजस्थान—डा० रघुवीरसिंह ७)

बालोपयोगी

बाल फुलवारी—विनोद ।।।)

यात्रा वर्णन

वो दुनियाँ—भगवतशरण उपाध्याय ४)

स्फुट

विद्रोही आत्माएँ—सुदर्शन २।।।)
जन्म से पहिले— ,, १।।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

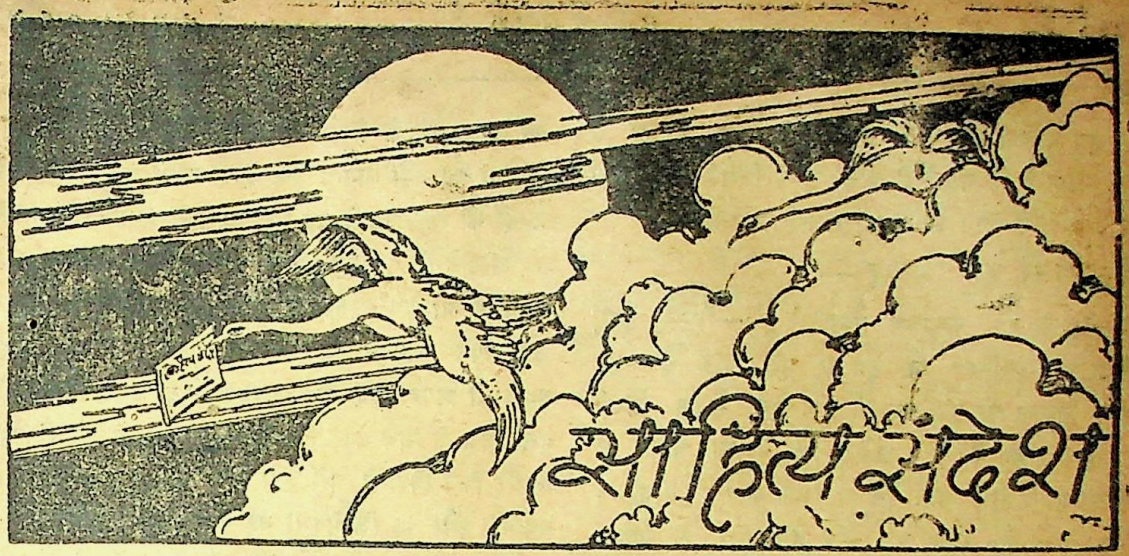

वर्ष १४] आगरा—अक्टूबर १९५२ [अङ्क ४

हमारी विचार-धारा

श्रद्धाञ्जलि—

बिहार के विख्यात हिन्दी सेवक वयोवृद्ध पं० सकल-नारायण शर्मा के निधन का समाचार अभी-अभी एक पत्र में पढ़ कर हमें बड़ा दुःख हुआ। शर्माजी पुराने खेवे के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान और लेखक थे। उनके निधन से हिन्दी का एक वृद्ध तपस्वी उठ गया। हम उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए उनकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थी हैं।

अवांछनीय—

श्री विनयमोहन शर्मा (नागपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रधान) ने हमें लिखा है—

"साहित्य-सन्देश" के सितम्बर १९५२ के अङ्क में मैंने श्री रामवरणसिंह "सारथी" का "साहित्य देवता" शीर्षक समीक्षात्मक लेख पढ़ा। मुझे दुःख है कि लेखक ने इस लेख को मेरी 'दृष्टिकोण' नामक पुस्तक को सन्मुख रखकर लिख लिया है और कहीं भी उसका उल्लेख नहीं किया! इधर-उधर शब्दों को परिवर्तित करने से "उधारी" छिपती नहीं! इसी तरह कुछ महीने पूर्व मैंने साहित्य-भवन लिमिटेड प्रयाग से प्रकाशित 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' पुस्तक में भी इसी मनोवृत्ति के दर्शन किये। उसके लेखक श्री नामवरसिंह ने 'अवधी' पर जो लिखा है वह मेरे 'कल्पना' (हैदराबाद) में प्रकाशित 'अवधी और कृष्णायन की भाषा' लेख से चुपचाप उतार लिया है। उन्होंने तो रामवरणसिंहजी के समान कई स्थानों पर मेरे शब्दों के पर्याय भी खोजने का श्रम नहीं उठाया! नवयुवक लेखकों की यह प्रवृत्ति अशोभनीय है, विशेषकर उनकी जो 'आलोचना' क्षेत्र में आगे आने की महत्वाकांक्षा रखते हैं।"

वैज्ञानिक विश्वकोश—

प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना कानपुर के ही नहीं उत्तर-प्रदेश के विख्यात शिक्षा शास्त्री और हिन्दी के बड़े हिमायती हैं। आज-कल आप प्रयाग की विज्ञान परिषद के सभापति हैं। खन्नाजी के एक पत्र से हमें यह जानकर हर्ष हुआ कि वे हिन्दी में विज्ञान का एक बृहद् विश्व-कोश बनाने की योजना कर रहे हैं। वैज्ञानिक विश्वकोश की आवश्यकता को कौन नहीं मानेगा। वह जो जितनी जल्दी पूरा हो सके, अच्छा है। और खन्नाजी उस कार्य में लग गए हैं तो उसमें पूरा होने में हमें कोई सन्देह भी नहीं होता। उनकी योग्यता, कार्यपटुता, संगठन-शीलता प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हम योजना की पूर्ण सफलता के प्रबल इच्छुक हैं और आशा है कि वह ऐसी चीज होगी जिसके अध्ययन से अन्य प्रान्तों के लोग भी पूरा-पूरा लाभ उठा सकेंगे।

वैज्ञानिकों का विद्रोह—

देश के १५ सम्मान्य वैज्ञानिकों ने—जिनकी सेवा, प्रतिभा और व्यक्तित्व को हम पर पूरी धाक है—एक वक्तव्य निकाल कर इस बात पर जोर दिया है कि हिन्दी को प्रमुख स्थान देने और अंग्रेजी की महत्ता घटाने से देश की हानि होगी अतः ऐसा न किया जाय। इस वक्तव्य में डा० सी० वी० रमन, डा० भाबे जैसे चोटी के विद्वान वैज्ञानिक हैं। अतः उनकी बात को उपेक्षा की दृष्टि से तो नहीं देखा जाना चाहिए। क्योंकि उन्होंने जो बात कही है वह तर्क की तुला पर भारी भी बैठेगी। परन्तु हम उनकी सेवा में बड़ी नम्रता पूर्वक यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि स्वतन्त्र-भारत में हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाकर उसकी महत्ता न बढ़ाई जायगी तो हम राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत पीछे रह जायेंगे। अंग्रेजी की महत्ता घटाने की बात अवश्य विचारणीय है क्योंकि हमें विश्व के साहित्य से अभी बहुत कुछ लेना है। जब तक हमारी भाषा सर्व सम्पन्न न हो जायगी तब तक अँग्रेजी का तो प्रभुत्व रहेगा ही किन्तु हमको हिन्दी को सम्पन्न बनाने के प्रयत्नों से भयभीत न होना चाहिए। हम प्रयत्न ही करना छोड़ देंगे तो उसके सर्व सम्पन्न होने की अवधि में भी उसको उचित स्थान न दे सकेंगे। उसके सर्व सम्पन्न बनजाने पर भी अँग्रेजी का मान कम से कम उतना अवश्य बना रहेगा जितना कि आज इङ्गलिस्तान में फ्रेंच और जर्मन भाषाओं का है।

हमारे स्वर की पुष्टि—

'साहित्य-सन्देश' सदा ही अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में इस बात का उल्लेख अपने ढङ्ग से और अपनी युक्तियों से करता रहा है कि हिन्दी के साहित्यकार को दक्षिण की भाषाएँ सीखनी चाहिए। हम अपनी उक्तियों को यहाँ नहीं दुहराना चाहते। पर हमारे इस स्वर की पुष्टि दिनकरजी के इन शब्दों से होती है—

"राष्ट्र की भाषा के प्रश्न को अपेक्षा राष्ट्रीय एकता का विषय होने वाला है, इसलिए नहीं कि उसे बहाना बना कर हम प्रान्तों के बीच की खाई को और भी चौड़ा कर दें।

मैं यह नहीं मानता कि हिन्दी वालों के आन्दोलन ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन किया है। इस पद पर आसीन तो वह इसलिए हुई कि उसके भीतर राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता मौजूद थी और सारे देश ने ठोक-बजाकर उसे अपने व्यवहार के लिए चुन लिया। लेकिन, हिन्दी वालों को अगर हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर नाज हो, तो इसी नाज के साथ एक जिम्मेदारी भी आती है जिसका निर्वाह किये बिना वे विरोधियों की जुबान बन्द नहीं कर सकेंगे। और वह जिम्मेदारी यह है कि अगर वे हिन्दी का मार्ग निष्कण्टक करना चाहते हैं तो उन्हें भी हिन्दी के प्रति अपने प्रेम की कीमत चुकाने के लिए दक्षिण की कोई न कोई भाषा अवश्य सीखनी चाहिए, जिससे दक्षिण की जनता यह समझ सके कि उत्तर के लोग केवल गङ्गा-यमुना को ही दक्षिण की ओर भेजने को लालायित नहीं हैं, प्रत्युत, वे कृष्णा और कावेरी के जल को भी उत्तर की ओर ले जाने को उतने ही बेकरार हैं।"

बात ठीक है, पर उत्तर को दक्षिण ले जाने और दक्षिण को उत्तर लाने की बात उतनी नहीं है जितनी राष्ट्र-भाषा के द्वारा उत्तर और दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम के इस विभेद में अभेद का सूत्र पिरो देने की है तथा हिन्दी के माध्यम से दक्षिण-उत्तर, पश्चिम-पूरब में व्याप्त यथार्थ राष्ट्रीय मानव का स्वरूप अनुसन्धान करके खड़ा करने की है।

खरीद कर ही पढ़ो—

साहित्य सेवा तथा साहित्य का सृजन व्यवसाय की भूमि पर तो नहीं हो सका, पर यदि व्यवसाय साहित्य और और साहित्यिक को भुला देगा तो देश को भोजन तो सम्भवतः मिल जायगा, पर जीवन नहीं मिल पायेगा, जीवन में भी उन्नत स्तर नहीं पाया जा सकेगा, उस उन्नत-स्तर में भी जीवन का रस नहीं व्याप्त हो सकेगा। अतः आवश्यक है कि साहित्य को निरादृत नहीं किया जाय। साहित्य और साहित्यकार का मूल्य चुकाया नहीं जा सकता। पुस्तकों-पत्रों का बाजारू मूल्य प्रतियोगिता का मूल्य है, और लिखाई-छपाई का मूल्य है, उस देन का मूल्य नहीं जो उनमें से पाठक के पास पहुँचती है—फिर भी यह अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है कि भारत का प्रत्येक जन यह गाँठ बाँध ले कि वह एक भी शब्द और एक भी पंक्ति बिना कुछ भेंट दिये नहीं पढ़ेगा। देश हमारा दरिद्र है, यहाँ के पाठक अत्यंत दरिद्र हैं, उन्हें एक छाक भर पेट भोजन भी कठिनाई से मिलता है—फिर वे पत्र या पुस्तकें कैसे खरीदें ? किन्तु वास्तविक प्रश्न पुस्तकें खरीदने का नहीं, जितना इस बात का है कि हमारा मानसिक भाव बदले। जो पढ़ जानते हैं, और पुस्तकें-पत्र खरीद सकते हैं, वे भी माँगकर पढ़ना पसन्द करते हैं। वास्तविक बात यह है कि हमें माँग कर पढ़ने में कोई मानसिक वेदना या क्लेश या ग्लानि नहीं होती। आज हमें अपने संस्कार ऐसे बनाने होंगे कि हमें यथार्थ में माँग कर पढ़ने में वेदना और ग्लानि हो। विवशता की बात दूसरी है, उसमें तो भले और ऊँचे दर्जे के मनुष्यों को भी कभी-कभी हाथ पसारना पड़ता है, जूठन पर भी सन्तोष करना पड़ता है, पर कौन भला आदमी ऐसा कार्य बिना मानसिक वेदना और ग्लानि के कर सकता है—उसे तुरन्त तुलसी की यह अर्द्धाली स्मरण हो आती है —

तुलसी वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जायँ'

पर आश्चर्य यह है कि पुस्तक अथवा पत्र की भीख माँगने में हमें लज्जा नहीं अनुभव होती, इसीसे हमारा मानसिक भोजन स्वास्थ्यकर नहीं रह जाता है।

पुरस्कार या भिक्षा—

प्राचीन भारतीय राज्य-परिपाटी में कवियों को आश्रय देना और उन्हें पुरस्कार देना एक नियम था। स्वतन्त्र-भारत की सरकारें भी अपने लेखकों को पुरस्कार और प्रोत्साहन देना चाहते हैं। यह सत्य है कि आज कोई एक दो कवि और लेखक नहीं, अतः ऐसे पुरस्कार भी संख्या में बहुत हो सकते हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि पुरस्कृत किसे किया जा रहा है, कवि को ? या पुस्तक को ? अभी राष्ट्र के महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की तीन काव्य रचनाओं पर उत्तर-प्रदेश की सरकार ने ५००) का पुरस्कार दिया। यह पुरस्कार उन पुस्तकों की योग्यता सिद्ध करता है या महाकवि का सम्मान ? सरकार द्वारा जो पुरस्कार दिये गये उनमें यह ५००) का पुरस्कार ही कोई सर्वोच्च पुरस्कार नहीं था। सर्वोच्च पुरस्कार संभवतः १२००) का था ? तो इस महाकवि के एक दृष्टान्त से क्या सिद्ध होता है ? पुरस्कारों का कैसा रूप सामने आता है ?

एक साहित्यिक से किसी मनचले ने पूछा—'क्या आपने अपनी पुस्तकें पुरस्कार के लिए नहीं भेजीं' ? उत्तर दृढ़ शब्दों में दिया गया था—"नहीं, न आगे कभी भेजूँगा।" आखिर क्यों इस साहित्यिक ने ऐसा कहा ?

मूल प्रश्न यह है कि आखिर ये पुरस्कार दिये किस लिए जाते हैं ? क्या सम्मानार्थ ? निश्चय ही नहीं। महाकवि की ये छोटी तीन रचनाएँ भी ५००) रु० से सम्मानित होने की अपेक्षा अपमानित ही हुईं। क्या प्रोत्साहनार्थ ?—निश्चय ही नहीं। महाकवि को ५००) की थैली से क्या प्रोत्साहन इस अवस्था में मिल सकता था ? क्या पोषणार्थ ? महाकवि को, और उन्हीं के समान अन्य सम्पन्न साहित्यकारों को, जिनके पास लाखों की सम्पत्ति है, प्रेस है, दूकान है, महल हैं क्या पोषण की आवश्यकता है ? ये पुरस्कार गरीब लेखकों की सहायतार्थ भी नहीं विदित होते।

तब क्या यह प्रश्न नहीं उठता—फिर क्या यह भिक्षा है जो सरकार हाथ पसारने वाले की झोली में डाल देती है।

यह प्रश्न तो और भी जटिल है कि वे सलाहकार कौन हैं जो साहित्यकारों के सम्बन्ध में, उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में, और उनको दी जाने वाली पुरस्कार की धनराशि के परिमाण का निश्चय करने के सम्बन्ध में अपना निर्णय देते हैं ? और उनके निर्णय की कसौटी क्या होती है ? इन सब बातों के अतिरिक्त जिस रूप में पुरस्कार दिया जाता है उसके प्रदान में किसी प्रकार की वैयक्तिक सम्मान भावना नहीं प्रदर्शित होती। न रोरी न चन्दन न फूल-माला। इस कार्य में आत्मभाव के बिलकुल दर्शन नहीं होते। आशा है सरकार इस प्रदान पद्धति में कुछ सुधार करेगी।

हैदराबाद विश्वविद्यालय : हिन्दी विश्वविद्यालय

भारत सरकार ने कुछ काल पूर्व यह घोषित किया था वह हैदराबाद विश्वविद्यालय को अपने प्रबन्ध में लेकर उसे हिन्दी विश्वविद्यालय बनायेगी। इस प्रसङ्ग को लेकर बहुत चर्चा चली, और अनेकों भ्रमपूर्ण बातें कही गयीं। अभी प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने हैदराबाद में ही भाषण देते हुए स्थिति का और अधिक स्पष्टीकरण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम समझते हैं उससे समस्त मिथ्यावाद शान्त हो जाना चाहिए। हैदराबाद राज्य का हिन्दी से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस सम्बन्ध में डा० बाबूराम सक्सेना के 'दक्खिनी हिन्दी' नामक पुस्तक के कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं जिन्हें हमने आगे उद्धृत किया है। इस दृष्टि से हैदराबाद विश्वविद्यालय को हिन्दी विश्वविद्यालय में परिणत करना इतिहास की परम्परा में है। पर इससे आज एक और महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो सकता है। प्रधान मन्त्री ने इसका भी अपने भाषण में उल्लेख किया है। यह विश्वविद्यालय इस हिन्दी के द्वारा एकता का एक महान कार्य सिद्ध कर सकता है। हैदराबाद उत्तर और दक्षिण की सीमा का प्रान्त है। इसमें मराठी-गुजराती हिन्दी जैसी उत्तरी प्रान्त की भाषाओं के साथ दाक्षिणात्य, तामिल, कन्नड़, तेलगू आदि भाषायें प्रचलित हैं। हैदराबाद विभिन्न भाषाओं का सङ्गम स्थल है। बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में भी इन्हीं भाषाओं के सङ्गम स्थल में हिन्दी, हिन्दवी या दक्खिनी पनपी थी। आज भी वह भूमि भारत के ऐक्य को दृढ़ बनाने में सहायक हो सकती है। आवश्यकता यथार्थ में इस बात की है कि इस विश्वविद्यालय में हिन्दी के ही मनस्वी स्थान पायें और हिन्दी से भारतीय सरकार का भी अर्थ वही हो जो वस्तुतः 'हिन्दी' शब्द से अभिप्रेत है, और जो न हिन्दुस्तानी है, न उर्दू। हमारे कहने का अभिप्राय यही है कि वहाँ पर जो शिक्षा का माध्यम रहे उसमें वर्तमान उर्दू की परम्परा की छाया न रहे। जो प्रयत्न हो एक नये रूप से हो और ऐसा हो जो कि बङ्गाल, गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिण के प्रान्तों में सर्व-मान्य हो सके।

दक्खिनी नाम क्यों पड़ा ?—

डा० बाबूराम सक्सेना रचित 'दक्खिनी हिन्दी' नाम की एक पुस्तक की आलोचना इसी अङ्क में अन्यत्र मिलेगी। इस पुस्तक में सप्रमाण साबित किया गया है कि जिस भाषा का नाम आज हिन्दी है उसे पहले 'दक्खिनी' नाम से पुकारते थे। उसके निम्न वाक्य हम यहाँ इसलिए उद्धृत कर रहे हैं जिससे दक्खिन के भाई यह समझ लें कि हिन्दी एक नई भाषा के रूप में उन पर लादी नहीं जा रही है—वरन वह वही भाषा है जिसका नाम पहले दक्खिनी था।

"इस तरह इस भाषा के तीन ही नाम मिलते हैं, हिन्दवी, हिन्दी और दक्खिनी।

आगे चलकर इस भाषा के ब्यौरेवार विवेचन से मालूम होगा कि इस भाषा का किसी भी दक्खिनी आर्य या द्राविड़ी भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है; बल्कि परिवार-सम्बन्ध से यह उत्तर भारत की आर्यभाषाओं में की है। तब फिर इसे दक्खिनी क्यों कहा गया? इसका जवाब उस समय के इतिहास से मिलता है। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सैनिकों ने १२९७ ई० में गुजरात जीता, और उसी के सेनापति मलिक काफूर ने १३०४ ई० में महाराष्ट्र पर, १३०७ ई० में आन्ध्र पर और १३०८ में कर्नाटक पर विजय पाई। ये सभी राज्य दिल्ली के सूबे समझे जाने लगे। यह कब्जा कुछ ही साल कायम रह सका। दक्खिन को इतना महत्त्व दिया गया कि मुहम्मद तुगलक ने दौलताबाद को राजधानी बनाया (१३२७ ई०)। फीरोज तुगलक के राज्यकाल में दक्खिन स्वतन्त्र हो गया, और हसन गंगो बहमनी ने (१३४७ ई० में) गुलबर्गा में बहमनी राज्य स्थापित कर दिया। बहमनी राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर, बीजापुर में आदिलशाही (१४९० ई०), गोलकुण्डा में कुतुबशाही (१५१२ ई०), बीदर में बरीदशाही (१४८७ ई०) और बरार में इमादशाही तथा अहमदनगर में निजामशाही (१४९० ई०) सल्तनतें बनीं और बहुधा लड़ती झगड़ती रहीं, पर उत्तर भारत के राजनीतिक पंजे से अर्से तक बची रहीं।

ये राज दक्खिनी हिन्दी के कवियों और ग्रन्थकारों को बराबर आश्रय देते रहे और इनकी संरक्षा में १५वीं, १६वीं और १७वीं ई० सदियों में अच्छे साहित्य का निर्माण हुआ। जब १७ वीं सदी के मध्य में औरङ्गजेब ने दक्खिन की ओर जाकर इन सल्तनतों को मटियामेट कर दिया तब कुछ काल तक दक्खिनी के साहित्यकार निराश्रय होकर तितर-बितर हो गए, पर रचनाएँ होती रहीं। वर्तमान निजाम राज्य के आदि पुरुष निजामुल्मुल्क आसफजाह १७२३-४ ई० में स्थायीरूप से दक्खिन के सूबेदार होकर आ गए। तब से आज तक निजामराज्य हैदराबाद में कायम चला आ रहा है। इस खानदान के सभी रईसों ने प्राचीन दक्खिनी सुल्तानों की तरह बराबर दक्खिनी भाषा के साहित्यकारों को आश्रय और प्रोत्साहन दिया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन समीक्षा-प्रणाली के अपेक्षित तत्व

श्री कृष्णवल्लभ जोशी

आज कला, साहित्य, विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि तमाम क्षेत्रों में एक बुनियादी परिवर्तन हो रहा है और उनके आज तक के विकास की उनके समय के धुँए से आवरित इतिहास को परखने और उसका सही विश्लेषण करने की वैज्ञानिक विधि का सृजन किया जा रहा है। आज हमारे पास भी नए और प्राचीन दोनों प्रकार के साहित्य को मापने के—उनके सही मूल्यों को जानने के कुछ मोटे तत्व हैं जिनका आधार लेकर हर प्रकार के साहित्य का मूल्याङ्कन किया जा सकता है। वस्तुतः समीक्षा के ये सुनिर्दिष्ट मान हिन्दी के पास एक लम्बे विकास के बाद आए हैं और इस दौरान में उसने जाने कितनी ओर देखा है।

आज का समीक्षक रचनाकार से सर्वप्रथम अपेक्षा करता है कि उसके कृतित्व का मूल उत्प्रेरक वस्तु-जगत से परे कोई साहित्य नहीं, कोई कला नहीं—और अगर होगी भी तो वह छल है, भुलावा है। जैसा कि हम देखते हैं किसी भी काल का साहित्य अपने युग की युगीन परिस्थितियों से भिन्न नहीं देखा जा सकता, वह तद्युगीन समस्त स्थितियों और परिस्थितियों से आच्छन्न ही होगा। चूँकि समाज के आर्थिक परिवर्तन, उससे प्रभावित राजनीति; इस प्रकार के वस्तु-तथ्य मनुष्य की चेतना को अभिनिर्मित करते हैं। वस्तुतः चेतना, जैसा कि हम देखते हैं, और कुछ नहीं, इन्हीं वास्तविक परिस्थितियों और वस्तु-तथ्यों की उपज मात्र है। मार्क्स ने चेतना की इस वस्तु-परकता का उद्घाटन करते हुए लिखा है—

Matter is not a product of consciousness, but consciousness itself is merely the highest product of matter.

मार्क्स, इस प्रकार सभी तरह के विचारों और चिन्ताओं को भी वस्तु तथ्य से अलग नहीं मानते और उसे ही सभी परिवर्तनों के मूल में मानते हैं—

It is impossible to seperate thought from matter that thinks matter is the subject of all changes.

इस भाँति हम देखते हैं कि किसी भी प्रकार की संस्कृति, किसी भी प्रकार का साहित्य इस वस्तु जगत से दूर नहीं देखा जा सकता। उसके कारण हमें इसी धरती पर खोजने पड़ेंगे—समाज ही हर प्रकार के कृतित्व का मूल उत्स होगा। इस वस्तु-तथ्य की अभिव्यक्ति साहित्य में युग-परिस्थितियों के रूप में ही होगी। जागरूक रचनाकार को यह सब देखना है कि उस युग की अपनी विशेषता क्या है?—वह अपने साथ ऐसा कौनसा तत्व लेकर आया है जो इस युग में और परवर्ती युग में एक विभाजन रेखा खींच रहा है जिन सबके द्वारा मनुष्य की चिन्तन-पद्धति में गत युग की अपेक्षा एक अलग मोड़ आगया है। आज के साहित्यकार को यह सब देखना है। लेनिन ने साहित्य के इस उपर्युक्त तत्व के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—

An artist truely great must have reflected his work ot least some essential aspect of the revolution.

इस तरह युग-परिस्थितियों के चित्रण के साथ-साथ लेखक के लिए युग-चेतना का आँकलन भी अनिवार्य हो जाता है। यह 'युग-चेतना' विविध कालों में अलग-अलग हुआ करती है। समाज के उषा-काल में मनुष्य ने प्रकृति के गीत गाए हैं, आँधी, भूकम्प आदि को कोसा है और वरुण, वायु, उषा रात्रि आदि को सराहा है। उस समय वर्ग संघर्ष का हमारे सामने कोई सवाल नहीं था। एन्जिल्स इस सम्बन्ध में लिखते हैं:—In all the earlier stages of society production was essentially in common. There was not a class, a catagory of workers and

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

another class.. The consumption of the goods produced by men was also in common. That is primitive-Communism.

यह आदिम अवस्था थी जिसमें वर्ग का प्रश्न ही नहीं उठता था। जो कुछ थोड़ी आवश्यकताएँ थीं उनका हल सामूहिक रूप से हो जाया करता था—क्योंकि उपज भी सामूहिक रूप से की जाती थी। किन्तु बाद में आर्थिक परिवर्तनों ने तथा अर्थ-व्यवस्था के परिणाम-स्वरूप दो श्रेणियाँ अस्तित्व में आईं। एक थी शोषक और दूसरी थी शोषित। इन वर्गों का विकास एन्जिलस के अनुसार इस प्रकार है—

The transition first from guild handicrafts to manufacture and then from manufacture to large scale industry with steam and mechanical power, had caused the development of the two classes.

आधुनिक मशीन-युग ने हमारे सामने आज वर्ग-सङ्घर्ष का रूप स्पष्ट कर दिया है और वह क्षिप्रतर होता जा रहा है। मजदूर के श्रम का एक बहुत थोड़ा, महज उसके जीने के लिए उसे दे दिया जाता है और शेष सारा का सारा बहुत थोड़ों की तिजोरियों में बन्द होकर सड़ा करता है। आज बुर्जुवा वर्ग के आन्तरिक विरोध ही इतने बढ़ गये हैं कि उनका संध्या-काल निकट-सा जान पड़ रहा है। केवल थोड़ा और जग जाने की जरूरत है।

यह वर्ग-संघर्ष परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से हमारे साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होता आरहा है। सुप्रसिद्ध बौद्ध प्रवर दिङ्नाग, कर्णपा, सरहपा आदि मनीषियों ने ब्राह्मणों की अनुचित श्रेष्ठता को चुनौती दी थी और एक ने तो यहाँ तक कहा था जब ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा होते थे तब होते थे पर आज तो ब्राह्मण भी वहीं से पैदा होता है जहाँ से हम सब। कबीर ने अपने साहित्य में अपनी तेज और तीखी भाषा में एक सामूहिक स्वर लेकर समाज में प्रचलित पुरोहितवाद और मुल्लावाद का विरोध किया था। तुलसी में अपने युग और संस्कारों की कितनी ही असङ्गतियाँ होने पर भी वे युग सत्य से निगाह नहीं हटा सके। अपने युग की अल्पसंख्यकों की विलासिता को चुनौती देते हुए वे जन-साधारण के बारे में कहते हुए युग-परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं—

'खेती न किसान को भिखारी को न भीख है।'

इस तरह हम देखते हैं कि इन युग-स्रष्टा कवियों ने तथा हमारे भारतीय संस्कृति के अमर प्रहरियों ने अपने कृतित्व में युग-चेतना का आभास दिया। युग के इन जीवित तत्वों के स्पर्शन से उनकी कला में एक ओज आया, एक मार्जन और प्रौढ़ता आई।

वर्ग संघर्ष पर सोचते हुए हमें कुछ इसी सम्बन्ध दिये गए हमारे सुप्रसिद्ध साहित्य मर्मज्ञ श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के तर्कों पर भी विचार कर लेना है। वाजपेयीजी ने नवीन-समीक्षा प्रणाली पर लिखते हुए कहा है—"(मार्क्सवादी समझते हैं) समाजवाद की प्रतिष्ठा के पूर्व का सम्पूर्ण साहित्य वर्गवादी या पूँजीवादी साहित्य है अतएव वह मूलतः दूषित है। केवल वह साहित्य श्रेष्ठ और स्वागत योग्य है जिस पर पूँजीवादी साहित्य की छाया नहीं पड़ी।" (आधुनिक साहित्य पृ० सं० ३०६)

मार्क्सवादी साहित्यकार केवल इसलिए किसी साहित्य को हेय नहीं कहता कि वह पूँजीवादी युग में लिखा गया है। पूँजीवादी युग में ही नहीं अपितु सामन्त और दास युग में एक प्रगतिशील कला रहती है जो युग के हजारों-लाखों शोषित और दमित लोगों की आवाजों को प्रतिध्वनित करती है। जैसा मैंने ऊपर कहा है—साहित्यकार युग-चेतना को पहचाने, उससे आँख मूँदे नहीं हम उसका स्वागत करेंगे। किन्तु अगर इसके विपरीत युग-चेतना और युगीन परिस्थितियों से आँख मूँदता और उनके स्थानों पर वह व्यक्ति की कुण्ठा-मय प्रवृत्तियों का या केवल कामोद्दीपन के सूत्रों का ही चित्रण करता है तो निश्चय हम उसे हेय कहेंगे फिर वह किसी युग में लिखे। हम कबीर, सूर, तुलसी आदि का आदर करते हैं, उन्हें श्रेष्ठ कवि मानते हैं।

वास्तव में युग का प्रतिनिधि साहित्य तो वह होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो पूँजीपति और सर्वहारा की कशमकश के दौरान में लिखा गया हो। लेनिन ने इस सत्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा है:—Proleterian culture must be a regulated development of those stores of knowledge where man-kind has produced under the opression of capitalist society, the society of private ownership of land, bureaucratic society.

सर्वहारा-वर्ग के साहित्य का विकास तो नौकरशाही, सामन्तीय और पूँजीवादी शोषण के खिलाफ किए गये सङ्घर्षों में होगा। उसका साहित्य युग की टीस, पीड़ा और दर्द को वाणी देगा और ऐसे ही साहित्य को मार्क्सवादी समीक्षक निर्दोष मानेगा। फिर भले ही वाजपेयीजी मतिराम, देव, बिहारी, पद्माकर के नायिका भेद और नख-शिख वर्णन को ही श्रेष्ठ माने।

मार्क्सवादी समीक्षक किसी युग की कला सर्वथा इसलिए दूषित नहीं ठहराता कि वह पूँजीवादी युग की उपज है। उसकी कसौटी तो साफ है—उसकी कला ने युग चेतना को प्रश्रय दिया है अथवा नहीं—उसकी कला युग की पतनोन्मुखी दकियानूसी ताक़तों को तो बल नहीं पहुँचा रही है जो समाज में और भी रूढ़ि और भी शोषण लाने की तदवीरें करती है—ऐसी तो नहीं है।

हर एक मार्क्सवादी, पूँजीवादी युग की ही नहीं वरन् किसी भी दास अथवा सामन्त युग में निर्माण हुई ऐसी कला का स्वागत करेगा।

वाजपेयीजी का इसी सम्बन्ध में दिया गया दूसरा तर्क भी उचित नहीं प्रतीत होता है जिससे ऐसा लगता है वाजपेयीजी ने मार्क्सवाद पढ़ा नहीं—सुन रखा है। मार्क्सवादी समीक्षक के बारे में वे कहते हैं:—"वे (मार्क्सवादी) कवि कलाकार अथवा साहित्य की व्यक्तिगत स्थिति और मनोभावना का आधार लेकर यह देखना चाहते हैं कि कौनसा कवि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था, उच्च वर्ग का था और कौनसा कवि विपन्न और दरिद्र था। जो कवि दरिद्र और निम्न वर्ग का रहा हो वही प्रगतिशील और सम्मुन्नत माना जायगा। यह कसौटी भी अनोखी है।"

(आधुनिक साहित्य, पृ० सं० ३१०)

अच्छा तो तब होता वाजपेयीजी कोई उद्धरण पेश कर देते। मेरा दावा है मार्क्सवादी किसी आलोचक ने ऐसी पंक्तियाँ नहीं लिखीं। इसी उपर्युक्त तर्क को लेकर वाजपेयीजी ने बतलाया है कि मार्क्सवादी लेखक वाल्मीकि, तुलसी, शेक्सपियर, रवीन्द्र, टालस्टाय आदि की (सहज इसलिए कि ये उच्च वर्ग के थे) महत्ता की उपेक्षा करते हैं। बेहतर हो वाजपेयीजी डा० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह, प्रकाशचन्द्र गुप्त तथा रूसी आलोचक लेनिन और बी० केमेनोव के तत्सम्बन्धी लेख पढ़ें और फिर बतलाएँ क्या उनमें इन मनीषियों की उपेक्षा की गई है?

रूसी आलोचकों ने बराबर पुश्किन और टालस्टाय जो कि सम्भ्रान्त कुल के थे दोनों का समान रूप से विश्लेषण किया है और बतलाया है कि दोनों ने किस तरह रूसी क्राँति के रथ को आगे बढ़ाया था। लेनिन ने टालस्टाय की मृत्यु पर कहा था:—The works of Tolstoy will always be read and appreciated by the masses when having thrown off the yoke of the land owners and the capitalists. They will have created for themselves human condition.

(Literature and Marxism.)

इसी तरह सुप्रसिद्ध रूसी आलोचक बी० केमेनोव ने शेक्सपियर की विविधता और उसके ठोस राजनैतिक उद्देश्यों का जिक्र करते हुए लिखा है—

Shakespeare, the militant artist of his time, who with the power of his art serve definit political ends, who gave to his class an encyclopaedia, as it were on all questions of life and struggle.

(Literature and Marxism. P. 16)

इस प्रकार के कितने ही उद्धरण मार्क्सवाद के चोटी के लेखकों के उद्धृत किये जा सकते हैं जो वास्तव में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के मूल में सामाजिकता लेकर चलते हैं और किसी न किसी भाँति अपने साहित्य में उस वर्ग का जो कि उठ रहा है प्रतिनिधित्व करते हैं। मार्क्सवादी तो कभी भी 'व्यक्तिगत स्थिति और मनोभाव' को लेकर नहीं चलता है, वह तो साफ कहता है—Art and literature are a reflection of external reality a mirror of objective all sided human practice.

(Literature and Marxism. P. 3)

जैसा कि हमने देखा मार्क्सवादी समीक्षक साहित्य को सामाजिक अभिव्यक्ति मानता है। साहित्य और संस्कृति का जनक और कोई नहीं वरन यही जन-समाज है; केवल फर्क यही है प्रगतिशील आलोचक उस साहित्य को सहारा देता है, उसे समुन्नत और श्रेष्ठ-कोटि का बतलाता है जो अग्रगामी ताकतों को बल पहुँचाये और पतनोन्मुखी, दकियानूसी ताकतों को बढ़ावा देने से रोके।

इन उपर्युक्त अपेक्षित तत्वों के साथ-साथ आज के समीक्षक के सामने काव्य समीक्षा का एक और बहुत बड़ा तत्व आता है और वह है अनुभूति की गहराई। काव्य-शैली और उसका शिल्प भी इस तत्व का अनुगामी होकर चलता है। मार्क्सवादी समीक्षक कभी भी इस तत्व की अवहेलना नहीं करता। वह बराबर देखता है कि अमुक रचना में कृतिकार का कितना रागात्मक लगाव है। हिन्दी के धुरन्धर आलोचक डाक्टर रामविलास ने अपने एक लेख में इसी रागात्मकता का जिक्र करते हुए साफ लिखा है कि संवेदना के अभाव में कोई भी साहित्य, साहित्य नहीं हो सकता भले ही वह प्रगतिशील हो। इस तरह हम देखते हैं कि मार्क्सवादी समीक्षक संवेदना के इस जीवन्त तत्व को भी काफी अच्छी तरह ग्रहण करते हैं।

साहित्यकार तो अपनी संवेदन-शक्ति लेकर समूचे मानव-समाज के अन्तराल में पैठता है और अपने अतल-ग्राही हृदय से युग के शत-शत पीड़ितों, दलितों, और निस्सहायों के दुःखों और कष्टों को वाणी देता है और इसके साथ-साथ उस युग-चेतना की भी अभिव्यक्ति करता है जो उसके साहित्य का मूल स्रोत हुआ करती है। इस प्रकार प्रत्येक रचना की मूल कसौटी—उसकी श्रेष्ठता इसी संवेदना पर आधारित है जिसके अन्तर्गत उपर्युक्त कथित-साहित्य के अन्य मानों का भी समावेश हो जाता है। कला और शिल्प का सहज और स्वभाव-गत उन्मेष भी इसी अनुभूति की गहराई पर आधारित है; रचना के इस ऊपरी चोले का निर्माण कृतिकार की संवेदन-शक्ति पर ही आधारित रहेगा, ऐसे काव्य में प्रयोगवादियों जैसे किताबी और दिमागी प्रतीकों, उपमानों और रूपकों की योजना नहीं की जाएगी; उसमें तो जीवन की सहजता के स्वर होंगे, उसमें तो जीवन को अधिक स्वस्थ बनाने की माँग होगी जिसके लिए कला भी मनुष्य के देखे हुए—पहचाने हुए रोजमर्रा के तत्वों से ली जाएगी—ऊँची-ऊँची उड़ानें भरने की तथा ऋगवेद, फास्ट आदि के उपमानों और प्रतीकों को छाँटने की जरूरत नहीं।

कला और संस्कृति का विकास मनुष्य की आवश्यकताओं और उनकी प्राप्ति में किए गए संघर्षों के समानान्तर में ही हुआ है और भिन्न-भिन्न युग में जैसा अथवा जो कुछ रूप इन संघर्षों का रहा है उन्हीं के अनुकूल कला ढलती गई है—उसका सृजन होता गया है। एतदर्थ, आज हमारे साहित्यकारों को इस प्रकार दूर बड़े पुरातन ग्रन्थों में न झाँकते हुए जनता के हृदय में झाँकना है और उससे कला ग्रहण करनी है। किन्तु इन सबसे मेरा यह तात्पर्य सर्वथा नहीं कि हम हमारे पुरातन गौरवशाली ग्रन्थों का मनन करना छोड़ दें। वह तो हमारी एक ऐसी विरासत है जो हमारे आज तक के विकास की कहानी कह रही है। वास्तव में कल तक की सारी भव्य और महान् परम्परा को आत्मसात् करने के बाद ही तथा आज के उठते हुए आदमी की आवाज को खुले हृदय से परखने पर और उसकी अभिव्यक्ति करने पर ही तो आज की कला का जन्म होगा—वही तो आज की नई कला होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वात्सल्य' रस की कसौटी पर

श्री अङ्गदप्रसाद राय एम० ए०

साहित्य-शास्त्र में अभी भी रस की संख्या निश्चित नहीं हो पाई है। साधारणतः रस की संख्या नौ ही मानी गई है। आदि रस 'शृङ्गार' और अन्तिम रस 'शान्त' माना गया है। 'वात्सल्य' की गणना रस में हो, इसके पक्ष और विपक्ष दोनों में लोग हैं। निबन्ध के प्रस्तुत विषय वात्सल्य भाव की जाँच रस की कसौटी पर करने के पूर्व रस की सैद्धान्तिक व्याख्या आवश्यक है।

साहित्य शास्त्रज्ञों ने 'रस' को ब्रह्मानन्द सहोदर माना है। उनका कहना है 'रसौ वै सः' आचार्यों ने उसे काव्य की आत्मा की संज्ञा दी है। नाटककारों ने रस को नाटक का प्राण ही स्वीकार किया है। रस का उद्देश्य, इसका उपयोग सभी शास्त्रियों ने एक ही ठहराया है। विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव ही रस-सामग्रियाँ हैं। रति आदि स्थायी भाव ही रस पदार्थ हैं। महामुनि भरत ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्य-शास्त्र में कहा है—

'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्ति'

इस सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या करें। विभाव रस का कारण, अनुभाव कार्य और सञ्चारी सहकारी माना गया है। अब हमें देखना है इस सिद्धान्त पर 'वात्सल्य' कहाँ तक रस की गणना में टिक सकता है। इसमें रस कहलाने की क्षमता कहाँ तक है।

वात्सल्य शब्द का साधारण अर्थ 'वत्स' सम्बन्धी प्यार होता है। यहाँ पर भाव का लक्षण बतलाना भी अपेक्षणीय है। साहित्य शास्त्रियों के अनुसार, देव आदि विषयक रति, सामग्री के अभाव में उद्बुध मात्र अपुष्ट रति आदि स्थायी और प्रधानता से व्यञ्जित निर्वेदादि सञ्चारियों को भाव कहते हैं। यहाँ कुछ उदाहरणों को उपस्थित कर देखें उनमें 'वात्सल्य' सिर्फ स्थायी भाव है या सञ्चारी भाव है या रस सामग्रियों से पुष्ट है।—वात्सल्य के उदाहरण सूर की रचनाओं में प्रचुर मात्रा में हैं। उनके सूरसागर में बालकृष्ण की अनुपम झाँकी है। बालकृष्ण की चेष्टाओं में स्पर्धा, प्रतियोगिता, उद्वेग, स्वाभाविकता आदि बालक की विशेषताओं का वित्रण है। अतः पहले सूर की ही कुछ पंक्तियाँ बानगी स्वरूप ली जाती हैं—

आँगन फिरत घुटरुवन धाये।
नील जलद तनु सुभग स्याम मुख,
निरख जननि दोउ निकट बुलाये॥
बंधुक सुमन असन पर पङ्कज,
अंकुस ध्वजमुख चिह्न बन आये—
नूपुर कलरव मनों सुत- हंसन,
रचै नीड़ दै बाँह बसाये।
कटि किंकिनि बर हार ग्रीव पर,
रुचिर बाहु भूषण पहिराये॥

× × ×

सूरदास सों क्यों करि बरनै,
जो छबि निगम नेति कर गाये।

उपर्युक्त पंक्तियों में कृष्ण और बलराम की शोभा का वर्णन है। जननि यशोदा अपने लाल को देख मुग्ध हो जाती हैं। उसके हृदय में दोनों बच्चों के प्रति अगाध प्रेम की उत्पत्ति होती है। और वह प्यार बच्चों के प्रति सामान्य प्रेम का रूप धारण करता है। यशोदा के हृदय का यही प्यार, वत्सलता स्थायी भाव है। बलराम और कृष्ण आलम्बन हैं। उनका घुटरुओं पर दौड़ना, सुन्दर वेश, बन्धुक सुमन असन पद पङ्कज, आदि उद्दीपन हैं। जननि का उन्हें निकट बुलाना अनुभाव है। हर्ष, रोमाञ्च आदि सञ्चारी भाव हैं। इस प्रकार रस की सारी सामग्रियाँ एकत्रित हैं।

अब तुलसी का एक पद लीजिये। कवि सीता के अपने पिता के गृह से पति-गृह के लिए प्रस्थान का वर्णन कर रहा है। जनक का घर एक उमड़ता हुआ वात्सल्य का सागर हो जाता है। माताएँ, सखियाँ, नगर निवासी और जनक के साथ-साथ पशु पक्षी भी द्रवीभूत हो जाते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनि धीरज धरि कुँअरि हमारी।
बार-बार भेंटहिं महतारी॥
पहुँचावहिं फिर मिलहिं बहोरी।
बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥

× × ×

सुक सारिका जानकी ज्याये।
कनक पींजरनि राखि पढ़ाये॥
महा विकल खग मृग एहि भाँती।
मनुज दशा कैसे कहि जाती॥

सीता के प्रति वत्सलता स्थायी भाव है। सीता आलम्बन है। सीता के गुण ही उद्दीपन है। बार-बार पहुँचाना और मिलना अनुभाव है। इस प्रकार पूरी सामग्रियों द्वारा वात्सल्य की व्यञ्जना इन पंक्तियों में हुई है। तुलसी की कवितावली और गीतावली तो वात्सल्य रस के भण्डार ही हैं। वहाँ इसके अनेकों उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। कवितावली में बच्चे की एक मधुर बोली पर प्रान न्यौछावर करने के लिए कवि प्रस्तुत हो जाता है।

गीतावली का एक पद देखिये।

'सुभग सेज सोभित कौशल्या रुचिर राम सिसु गोद लिये।
बार-बार विधु बरन विलोकति लोचन चारु चकोर किये।
कबहुँ पौढ़ि पय पान करावति, कबहुँ राखति लाइ हिये।

× × ×

तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न पिये।

वात्सल्य के इस रस-सागर में ब्रह्मा महेश आदि सभी डुबकी लगाने लगते हैं। कैसा अनिर्वचनीय आनन्द है।

लोग कहेंगे, कृष्ण, राम और सीता तो मनुष्य नहीं देव स्वरूप हैं। इनके प्रति वात्सल्य की भावना कैसी? परन्तु जब रस स्वयं ब्रह्म स्वरूप है तो क्या, यदि उसके आलम्बन देव स्वरूप हुए तो हर्ज ही क्या। कृष्ण और राम का वात्सल्य का आलम्बन होना सामान्य बच्चों के प्रति प्यार की भावना उत्पन्न करता है।

आधुनिक काल में भी गुप्तजी की 'यशोधरा' में वात्सल्य के छींटे भरे पड़े हैं। पति के दारुण विरह में भी राहुल उसकी जीवन-ज्योति को जलाये रखता है। दोनों के सुमधुर संभाषण में वात्सल्य का भाव भरा है। 'प्रिय प्रवास' में हरिऔध ने भी वात्सल्य का चित्रण किया है। सुभद्रा, कुमारी चौहान ने भी 'बालिका का परिचय' 'शीर्षक कविता में वात्सल्य की झाँकी दी है। 'स्वप्न' कविता में कविवर पन्त ने सोये बालक की मुद्राओं के स्वरूप वर्णन में वात्सल्य रस भरा है।

इस प्रकार हम देखते हैं 'वात्सल्य' की धारा सुदूर प्राचीनकाल से प्रवाहित हो आज भी सूखी नहीं। बालकों में स्वर्गीय आत्माओं का निवास है। बालक पवित्र, शुद्ध एवं स्निग्ध है। उसके प्रति प्यार का भाव रस रूप में न परिणत हो यह अन्याय है। आप कहेंगे इस प्रकार रसों की संख्या बढ़ती चले तो फिर जितने संचारी और सात्विक भाव हैं उन्हें क्यों न रस श्रेणी में रख लिया जाय। परन्तु वत्सलता की भावना और भावों के ही समान नहीं है। इसमें अपनी विशेषता है। इसमें रस के सभी अंगों का समावेश है। अन्त में यही कहा जायगा कि वात्सल्य सिर्फ भाव-मात्र नहीं बल्कि वह पुष्ट रस है और इसकी गणना रस के अन्तर्गत होनी चाहिये।

सहायक या स्थायी ग्राहक—आप १००) भेज सकते हैं तो क्यों नहीं अपना शुभ नाम साहित्य-सन्देश के सहायकों या स्थायी ग्राहकों में लिखवा लेते। इससे आपको प्रति वर्ष ४) मूल्य नहीं देना पड़ेगा।

—सञ्चालक साहित्य-सन्देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनापति का प्रकृति चित्रण

श्री मिथिलेशजी एम० ए०, साहित्य रत्न

रीतिकाल में प्रकृति चित्रण का स्वरूप—रीतिकाल तक आते-आते हिन्दी कविता अत्यधिक रूढ़िवादी तथा संकुचित हो गई थी। रस में शृङ्गार का सर्वोपरि स्थान था। इसके अतिरिक्त यदि किसी अन्य रस ने कवियों को आकृष्ट किया था तो वह वीर और शान्त रस था। शृङ्गार रस की बराबरी में यह दोनों मिलकर भी सम्मानित न हुए। शृङ्गार रस की उत्पत्ति आलम्बन के द्वारा होती है। यह (आलम्बन) हृदय में किसी भाव विशेष को जागृत करते हैं। इस भाव को उत्तेजित करने का काम उद्दीपन विभाव का होता है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत कुछ ऐसी बातें आती हैं जो पात्र गत होती हैं—नायक नायिका के अंग प्रत्यङ्ग, उनकी मनमोहक चेष्टाएँ, वेश भूषा आदि; और कुछ ऐसी होती हैं जो पात्रों से बहिर्गत रहती हैं। आचार्यों ने इस दूसरे वर्ग में प्रकृति के विशाल सौन्दर्य में से वन, उपवन, सरोवर, षट्ऋतु आदि कुछ प्रमुख रूपों को स्थान दिया है। इस संकुचित दृष्टिकोण के कारण रस-निरूपण पद्धति में प्रकृति के उन स्वतन्त्र वर्णनों का समावेश नहीं हो पाया जिनमें वे स्वयं आलम्बन रूप में थे। प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित करने की यह चाल रीतिकाल में अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। प्रकृति के स्वतन्त्र क्षेत्र की ओर आँख उठाकर देखने की न तो कवियों को फुरसत ही थी और न इच्छा ही। कामनी के क्रिया कलापों की कोमलता; उनके सौन्दर्य की बेसुध करने वाली मादकता को तीव्रता देना ही प्रकृति का काम रह गया था और इसी दृष्टिकोण से अधिकांश कवियों ने प्रकृति का चित्रण किया है। यदि वर्षा आती है तो वह विरहिणी पर शस्पात करने के लिए, यदि चन्द्रोदय होता है तो वह शीतलता की जगह अग्नि बरसाने के लिए और यदि कोयल कूकती है तो प्रिय की हूक जगाने के लिए। इस प्रकार प्रकृति एक अत्यन्त संकुचित परिधि में आकर जकड़ गई। रीतिकाल में प्रकृति वर्णन का यही सच्चा स्वरूप है और इससे कोई कवि बच नहीं सका।

सेनापति का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण—सेनापति का प्रकृति चित्रण भी उद्दीपन के रूप में ही मुख्यतः है। यह वर्णन ऋतु परम्परा के अन्तर्गत आता है। कहीं-कहीं इन्होंने प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण किया है किन्तु डा० रघुवंश के अनुसार ये वर्णन भी नितान्त स्वतन्त्र नहीं हैं। इनमें उद्दीपन के संकेत छिपे हैं। यह अवश्य सत्य है कि इनके ऋतु वर्णन की सीमा यथेष्ठ विस्तृत है। इन्होंने सामूहिक आयोजनाओं का भी वर्णन किया है, किन्तु वस्तुतः इनकी समस्त भाव-धारा का आधार शृङ्गार है—केवल उसके आलम्बन तथा आश्रय कहीं प्रत्यक्ष और कहीं परोक्ष हैं। सेनापति इस सीमा में ही रहे हैं। इनके वर्णनों में जो स्वतन्त्र चित्र लगते हैं उनमें शृङ्गार की भावना का आधार बहुत हल्का है और कुछ में आलम्बन तथा आश्रय परोक्ष में है।

सेनापति में कवि प्रतिभा के साथ स्वतन्त्र निरीक्षण भी रीतिकालीन अन्य कवियों से बहुत अधिक है। यह स्वतन्त्र निरीक्षण प्रकृति के क्षेत्र में है जिसके कारण उनके काव्य में प्रकृति के परम्परा पोषित रूप न मिल कर सजीव रूप मिलते हैं। फिर भी यह न भुलाना चाहिए कि सेनापति मुख्यतः अलङ्कारवादी कवि हैं - कविता का चरम वे उक्ति-वैचित्र्य मानते थे। डा० रघुवंश का कथन है कि इनके कुछ चित्रों की रमणीयता का कारण यही है कि इन स्थलों पर उक्ति से यथार्थ तथा कला का सामञ्जस्य हो गया है। इसी प्रवृत्ति के कारण सेनापति में प्रकृति के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं है, इनकी प्रकृति में भाव-व्यञ्जना के स्थल भी बहुत कम हैं। इस क्षेत्र में रीति परम्परा के कवि इनसे आगे हैं। इन्होंने ऋतु वर्णन में श्लेष का निर्वाह किया है और ऐश्वर्यशालियों के ऋतु-सम्बन्धी आयोजनों तथा आमोद प्रमोद का वर्णन किया है। यह सब इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। डा० रघुवंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के इस मत के विरुद्ध प्रो० उमाशङ्कर शुक्ल का कहना है:—"उनकी ऋतु सम्बन्धी रचना को भली भाँति देखने से यह विदित होता है कि प्रकृति के प्रति इनके हृदय में पर्याप्त अनुराग था, यद्यपि परम्परा तथा साहित्यिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण वह बहुत सङ्कुचित दिखलाई पड़ता है।" (कवित्त रत्नाकर भूमिका पृ० २६) दो विद्वानों के इन विरोधी मतों के होते हुये भी यथार्थ रूप में डा० रघुवंश का कथन अधिक समीचीन प्रतीत होता है। सेनापति में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण है तथा हृदय में उसके प्रति उनकी सहानुभूति भी कुछ न कुछ अवश्य होगी, किन्तु हमें उनमें प्रकृति का वह रूप नहीं मिलता जो कि उनका प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध जोड़ सके—प्रकृति के एक एक अङ्ग—घास की हरियाली, गुलाब की ललाई तथा चाँद की जुन्हाई देख कर आनन्द विभोर हो उठे। उनके यथार्थ चित्र जो हैं उनमें प्रकृति से उनका रागात्मक सम्बन्ध नहीं झलकता। फिर भी हिन्दी काव्य में सेनापति इस क्षेत्र में अकेले हैं। उन्होंने प्रकृति को उसके यथार्थ रूप में देखा है और उसके कुछ कलापूर्ण चित्र दिये हैं।

प्रकृति के यथार्थ चित्र—सेनापति ने यथार्थ चित्र दो प्रकार से उपस्थित किये हैं। (१) एक प्रकार के चित्रों में प्रकृति सम्बन्धी रङ्ग रूप को अधिक व्यक्त किया है; (२) दूसरे प्रकार में प्रकृति की प्रभावशीलता को अधिक भाव गम्य बनाया गया है। क्वार के बादलों का चित्रण पहले प्रकार का है:—

खंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
सेनापति मानों सुङ्ग फटिक पहार के।
अंबर अडंबर सौं उमड़ि घुमड़ि, छिन
छिछकें छछारे छिति अधिक उछार के॥
सलिल सहल मानों सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गमन घन क्वार के॥
(तीसरी तरङ्ग, छन्द ३८ कवित्त रत्नाकर)

यहाँ क्वार की वर्षा का चित्र कवि ने कुछ संकेतों के आधार पर खड़ा कर दिया है—जैसे क्वार के बादल सफेद, छोटे-छोटे होते हैं। वर्षा थोड़ी होती है। रुई की भाँति आकाश में मडराया करते हैं तथा पछुँवा हवा के कारण पूरब को भागते से लगते हैं।

(२) इसमें प्रकृति की प्रभावशीलता को अधिक भाव-गम्य बनाया जाता है। वर्षा के चित्र भी जिनमें घने बादल घिर आते हैं इसी के अन्तर्गत आएँगे। ग्रीष्म का यह स्वाभाविक वर्णन कल्पना के पुट से अत्यन्त व्यञ्जक कर दिखलाया गया है:—

वृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥
सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत, होत
धमका विषम, ज्यौं न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौ पकरि कौनौं,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है॥
(तीसरी तरङ्ग, छन्द ११)

कलात्मक चित्रण:—इनमें प्रकृति के रूप को अधिक बिंबात्मक करने के लिए अलङ्कारों का आश्रय लिया गया है। शरद् तथा वर्षा के कुछ वर्णन ऐसे ही हैं:—

सेनापति उनए नए जलद सावन के,
चारि हू दिसान घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति,
आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै॥
घन सो गगन छयौ, तिमिरि सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रबि गयौ खोइ कै।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि
मेरे जान याही तें रहत हरि सोइ कै॥
(तीसरी तरंग, छन्द ३१)

अलङ्कार वैचित्र्य:—सेनापति की अलङ्कार प्रवृत्ति उनके ऋतु वर्णनों में यों तो सभी स्थलों पर मिलती है, किन्तु अनेक स्थल पर यह केवल चमत्कार के रूप में प्रयुक्त हुई है। उदाहरण के लिए रवि के छोटे होने का एक वर्णन है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीत तैं सहस कर सहस चरन ह्वै कै,
ऐसे जानि भाजि तम आवत हैं गिरि कै।
जौलौं कोक कोकी कौं मिलत तौलौं होति राति
कोक आध बीच ही तैं आवत है फिरि कै॥
(तीसरी तरङ्ग, छन्द ५१)

यह अलङ्कार प्रवृत्ति ही सेनापति की प्रमुख प्रवृत्ति है।

भाव व्यञ्जना:—अपनी इसी (अलङ्कार) भावना के कारण सेनापति प्रकृति से निकट संपर्क नहीं स्थापित कर पाए हैं। प्रकृति या तो उनके लिए वर्णन का विषय है या उद्दीपन की प्रेरक। ऐसे स्थल भी कम हैं जहाँ कवि ने प्रकृति के माध्यम से भाव-साम्य की व्यञ्जना की हो। केवल एक आध स्थल पर ही प्रकृति की भाव सम्पन्नता मानवीय सुख की व्यञ्जक हो उठी है। सेनापति ने अधिकतर सामन्ती ऐश्वर्य-पूर्ण वातावरण ही प्रस्तुत किया है, इस कारण इनके काव्य में मानव और प्रकृति दोनों ही के सम्बन्ध में उन्मुक्त वातावरण का निर्माण नहीं हो सका है। साथ ही ऋतु वर्णनों में आमोद प्रमोद का वर्णन विस्तार करने का भी अवसर मिला है। एक स्थल पर इन्होंने साधारण जीवन का बड़ा स्वाभाविक चित्रण किया है:—

सीत कौं प्रबल सेनापति कोपि चढ़्यौ दल,
निबल अनल, गयौ सूर सियराइ कै।
हिम के समीर, तेई बरसै विषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन में जाइ कै॥
धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिए सौं लगाइ रहैं नैंक सुलगाइ कै।
मानौ भीत जानि, महा सीत तैं पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै॥
(तरङ्ग ३, छन्द ४५)

उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण:—जब प्रकृति प्रत्यक्ष आलम्बन रहती है और उस पर आश्रय की भाव स्थिति का आरोप अदृश्य रूप से रहता है तब यह प्रकृति का आलम्बन रूप होता है; और जब प्रकृति किसी प्रत्यक्ष (स्मृति या परोक्ष में भी) आलंबन के माध्यम को लेकर भाव स्थिति से सम्बन्ध स्थापित करती है तब उसका उद्दीपन रूप होता है।

इस उद्दीपन रूप के दो भेद किए जा सकते हैं:—(१) प्रकृति की प्रमुखता तथा (२) भावों की प्रमुखता। दूसरे में प्रकृति गौण रहती है। उसका मानवीकरण होता है। रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्ति इसी ओर थी यद्यपि प्रथम रूप भी इसमें घुला मिला रहता था।

प्रकृति का उद्दीपन रूप वह है जिसमें प्रकृति मानवीय जीवन की दुःख-सुखमयी स्थितियों तथा भावनाओं के समानान्तर उपस्थित होती है। और इस निकट की स्थिति से वह विरोध, संयोग, स्मृति के द्वारा भावों की व्यञ्जनात्मक रीति से उद्दीप्त करती है। एक अन्य रूप है जिसमें प्रकृति में भावात्मक क्रियाओं आदि से भाव-व्यञ्जना का रूप उपस्थित किया जाता है। इन प्रकृति रूपों का उल्लेख विभिन्न काव्य रूपों के अन्तर्गत किया जा सकता है:—

चमत्कृत तथा प्रेरक रूप—इसमें प्रकृति का प्रभावोत्पादक रूप प्रस्तुत किया जाता है। यह चमत्कार वृत्ति के कारण अधिकतर ऊहात्मक होता है:—

गगन गरद धूँधि, दसौ दिसा रही रूँधि,
मानौं नभ भार की भसम बरसत है।
बरनि बताई, छिति व्योम की ततई जेठ,
आयौ आततई पुट-पाक सौं करत है॥
(तरङ्ग ३, छन्द १५)

स्वाभाविक वर्णन—

धायौ हिम दल, हिम भूधर तैं सेनापति,
अंग-अंग जग, थिर जंगम ठिरत है।
पैयै न बताई भाजि गई है ततई, सीत,
आयौ आततई, छिति अंबर घिरत है॥
(तरङ्ग ३, छन्द ५४)

भाव का आधार—इस रूप में केवल व्यापक भावना के प्रत्यक्ष होने पर प्रकृति का चित्र उपस्थित होता है जिसमें उद्दीपन व्यञ्जना उसी पर ग्रहण की जाती है:—

बरसत घन, गरजत सघन, दामिनि दिपै अकास।
× × ×
उमगि चले नद-नदी, सलिल पूरन सर बरसत॥
(तरङ्ग ३, छन्द ३५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यक्ष स्मृति—इसमें भाव का व्यक्त आलम्बन सामने आता है—

आयौ सखी सावन मदन सर सावन,
लग्यौ है बरसावन सलिल चहुँ ओर तें ॥
(तरङ्ग ३, छन्द २६)

उत्तेजक प्रकृति—चमत्कारी प्रकृति का यह प्रभाव है। इसमें अस्वाभाविकता भी आ जाती है :—

काम धरे बाढ़ तरवारि, तीर, जय डाढ़,
आवत असाढ़ परी गाढ़ विरहीन कौं ॥
(तरङ्ग ३, छन्द २१)

प्रकृति भावों की पृष्ठ-भूमि में—प्रकृति का उपयोग भावों की पृष्ठ-भूमि रूप में भी हुआ है। यहाँ प्रकृति का उल्लेख रहता है पर भावों की व्यञ्जना ही मुख्य रहती है। इसमें (१) भावों को अनुभाव तथा अन्य स्थूल आधारों पर व्यक्त किया जाता है। (२) कष्ट तथा आनन्द का अतिरेक दिखाया जाता है। (३) राजा-रईस का ऐश्वर्य वर्णन रहता है। अक्सर तीनों रूप एक दूसरे में घुले-मिले रहते हैं।

व्यथा उल्लास—

राति न सिराति विथा बीतत न विरह की,
मदन अरति जोर जोबन करत है।
(तरङ्ग ३, छन्द ४८)

देव का 'साँसन ही सो समीर गयौ' भी इसी के अन्तर्गत आएगा।

विलास ऐश्वर्य—

जेठ नजिकाने सुघरत खसखाने, तल,
ताख तहकाने के सुधारि झारियत हैं।

× × ×

प्रीषम के बासर बराइबे कौं सीरे सब
राजभोग काज साज यौं सम्हारियत हैं ॥
(तरङ्ग ३, छन्द १०)

प्रकृति का आरोप—इसमें चमत्कार प्रधान होता है। उपमा उत्प्रेक्षा का आश्रय लिया जाता है :—

परे तैं तुसार, भयौ झार पतझार, रही,
पीरी सब डार, सो वियोग सरसति है।
बोलत न पिक, सोई मौन है रही है, आस-
पास निरजास, नैंन नीर बरसति है ॥
(तरङ्ग ३, छन्द ५६)

उपमाओं की योजना में प्रकृति—सेनापति ने परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है। यथार्थ में वे श्लेष के फेर में पड़ गये हैं। इस क्षेत्र में उन्होंने कोई विशेष नवीनता नहीं दिखलाई है।

इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि सेनापति ने प्रकृति के क्षेत्र का यथेष्ट तथा विविध रूप में चित्रण किया है। यथार्थ चित्रण में तो वह सबसे बढ़े हुए हैं ही।

आलोचना की प्रगति—आलोचना के क्षेत्र में इस वर्ष विशेष गतिशीलता लक्षित हुई और गम्भीर अध्ययन-मनन एवं तर्कपूर्ण विवेचन-विश्लेषण से समन्वित अनेक उच्चकोटि के आलोचना-ग्रन्थ देखने में आये। इनमें हिन्दी के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य के विभिन्न विषयों की मीमांसा जिस शास्त्रीय पद्धति पर की गई उससे हिन्दी का आलोचना-साहित्य निस्सन्देह यथेष्ट उन्नत हुआ। आलोचना-शास्त्र सम्बन्धी कृतियाँ विशेषतः पत्र-पत्रिकाओं में दिखाई देती रहीं जिनमें उसके सद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों की विचारपूर्ण मीमांसा की गई। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की संक्षिप्त समीक्षाएँ भी प्रशंसात्मक विज्ञापन की कोटि से ऊपर उठी हैं और उनमें समीक्ष्य कृति का यथातथ्य मूल्याङ्कन और उनकी स्थापनाओं, मान्यताओं तथा उनके प्रत्यक्ष और संभाव्य प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण करने पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है।

—काशी नागरी प्रचारिणी सभा के उनसठवें वार्षिक विवरण से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास की भावुकता

प्रो० शिव बालक शुक्ल एम० ए०

भावुक जन से ही महत् कार्य होते हैं,
ज्ञानी संसार असार मान रोते हैं।

—गुप्तजी

प्रातः स्मरणीय ऋषिकल्प तुलसीदास भावुक थे। भावुकता उनके जीवन में परासीमा को पहुँची हुई थी। पत्नी-प्रेम के कारण उन्हें जो विगर्हणा, आत्म-क्षोभ मिला उसने प्रतिक्रिया रूप में उन्हें राम-चरण-चञ्चरीक बना दिया। तुलसी—प्रातिभ विवेक सम्पन्न तुलसी—को जीवन के मार्मिक स्थलों की सम्यक् पहचान थी। विश्व की अनुभूति ही उनकी अपनी अनुभूति थी। भावुकता में वे आपाद् मस्तक निमग्न थे। मार्मिक प्रसङ्ग के छिड़ते ही कवि ने हृदय चीरकर रख दिया है। वस्तुतः तुलसी की भावुकता एक पुस्तक का विषय है। परन्तु स्थान की सङ्कुचित सीमा में आबद्ध व्यक्ति स्थाली पुलाकन्याय का ही प्रश्रय लेगा।

राम और लक्ष्मण विदेह-वाटिका में सुमन-सञ्चयन करते हुए इतस्ततः भ्रमण भी कर रहे हैं। सखियों सहित सीता भी गौरी पूजन के हेतु आई हुई हैं। पुरातन-प्रीति की कोई क्या जानें? सीता पार्वती-प्रतिमा के समक्ष बोल उठीं—

अन्तर-जामिनि भवभामिनि स्वामिनि सों हौं,
कही चाहौं बात, मात, अन्त तौ हौं लरिकै!

(गीता०)

क्या बात कह रही थीं? तुलसी की अपनी मौन भाषा में ही भाव मुखर है। हाँ तो सामान्यनिष्ठ भावनाओं को पृष्ठाधार मानकर सीता की हृदय-पुस्तक का अभीष्ट पृष्ठ पलटते हुए एक 'सयानी आलि' ने अर्थ-गर्भित व्यंग्य किया—बहुरि गौरिकर ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू।

कवि की भावनायें सार्वभौम एवं सार्वकालिक होती हैं। सखी ने कहा होगा 'अजी सीता! तुम भी खूब हो। अरी बहना! गौरी-पूजन के लिए तो दिन पड़ा है, जीवन पड़ा है। इन सुकुमार राजकुमारों को देख क्यों नहीं लेतीं। हम समझती हैं तुम्हारी शङ्करी-पूजा की इस लगन को।' 'किन' शब्द व्यंग्य के भार से दबा जा रहा है। आधुनिकाओं की हँसी आप हम सभी उड़ाते हैं किन्तु Courtship निरूपण की इस शैली और नारी हृदय की अभिव्यक्ति को देखकर तुलसी के संवेदन-शांत हृदय की अतल गहराई का कुछ अनुमान तो लगाइए।

कठोर धनुष, और राम की सुकुमारता, कितना वैषम्य है? कोई करे क्या? सब चिन्ता-ग्रस्त और शङ्का संत्रस्त हैं। इस परिस्थिति का चित्र चार चौपाइयों के छोटे से पत्रक पर बड़ा सुन्दर उतरा है। हम इसे सामान्य प्रतिच्छवि (Photo) न कहकर एक्सरे कहेंगे।

सिय कर सोच जनक पछितावा।
रानिन कर दारुन दुख दावा॥

आदि आशापूर्ण हृदयों को गीतावली में देख लीजिए—लेत फिरत कन सुई सगुन सुभ, बूझत गनक बोलाइ कै

स्त्रियाँ गोबर की गौरी-मूर्ति को छलनी में फेंककर शुभाशुभ शकुन विचार में अनुरत हैं और पुरुष ज्योतिषियों से शकुन पूछते हैं।

आगे देखिए। धनुष टूट गया और बाल्मीकि के परशुराम के विपरीत (विवाहोपरान्त मार्ग में वर-यात्रियों को मिले थे न) तुलसी के जामदग्नि अग्नि बरसाते हुए आ धमके और इधर शेषावतार लक्ष्मण की फेनोच्छ्वसित फूत्कार फूट पड़ी। घाव ताजा था। तुलसी ने इस समय परशुराम को मञ्च पर लाकर भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है। विरोधी पक्षों के आघात-प्रतिघात देखते ही बनते हैं। चिढ़ने वाले को और चिढ़ाया जाता है। अमर्ष सञ्चारी द्वारा भृगुराज की स्थिति नीमारूढ करेले की कड़ुवाहट से कम नहीं है।

तनिक 'जड़ता' सञ्चारी की चाषनी को चख लीजिए यहाँ—राम को रूप निहारति सीय सुकंकन के नग की परछाहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताते सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही कर टारति नाहीं।

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक-त्रय ने तुलसी को बड़े घरों के स्त्री समाज से अपरिचित बताया है। हो सकता है लखनऊ के विशिष्ट समाज में उनकी कल्पना प्रवेश न पा सकी हो, किन्तु रागात्मक वृत्ति की पुनीत-भाव-भूमि पर उन्होंने निवास अवश्य किया था। सीता जैसी नव-बधू के हाथ न हटाने, प्रिय को निर्निमेष नेत्रों से निहारने का कार्य सदा सम्पादित होता रहा है। (गहरी गङ्गा में डुबकियाँ लगाकर आज भी सुपतिवरणेच्छुका मनौती मनाते हुए देखी गई हैं।) किन्तु लोकलाज और नैतिक मर्यादा भङ्ग के भय से इसे कोई मानने क्यों लगा ?

'नारि-चरित' को तुलसी ने मनोयोग पूर्वक पढ़ा था। अयोध्या के अन्तःपुर में मन्थरा और कैकेयी का वार्तालाप पढ़कर विशेष प्रकार के रस की अनुभूति होती है।

'घर फोरी' नाम से चिढ़ने वाली मन्थरा ने कहा—

हमहु कहब अब ठकुर सोहाती। नाहित मौन रहब दिनराती॥

यह कैकेयी द्वारा विगर्हिता मंथरा की उदासीनता का भाव है। परन्तु मन्थरा ने कोदों देकर नहीं पढ़ा था। सुर-प्रार्थिता शारदा उसकी जिह्वा पर विराजमान थीं। कैकेयी की भर्त्सना सूखती रह गयी। उसका जादू काम कर गया। 'नीति-निपुन' दशरथ 'नारि चरित जलनिधि अवगाहू' में डूबने से बच न सके।

सीता को सहयात्रा का पासपोर्ट मिल गया। लक्ष्मण उधेड़-बुन में पड़े। प्रार्थना पत्र का मसौदा तैयार करने के पूर्व हीन भावना के कारण एक बार सिहर गये। स्वामी के समक्ष पहुँच हृदय में अनेक भरी छूँछी आने लगीं—

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा,
रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा।

राम ने बहुत समझाया बुझाया परन्तु थोड़ी देर मौन रह कर लक्ष्मण के हृदय ने सफाई दी (देखिए अयोध्या-काण्ड दोहा ७१ के उपरान्त की चौपाइयाँ, मानस गी० प्रे०)

राम से तो आज्ञा मिल गई परन्तु एक विघ्न और मुँह बाये खड़ा था। वह था सुमित्रा का वात्सल्य जन्य मोह। एक बार फिर सौमित्र का मन, मोह एवं ममतामयी माता को देखकर संदेह-दोल पर डोलने लगा।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू,
एहि सनेह बस करब अकाजू।
माँगत बिदा समय सकुचाहीं,
जाइ संग बिधि बहिहि कि नाहीं॥

आइए ! दशरथ की दशा देखिए। सत्यसंध दशरथ ने रोष्टाविष्ट 'बरोरू' कैकेयी से कहा—

भूठहुँ हमहिं दोषु जनि देहू।
दुइ कै चारि माँगि किन लेहू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहिं पर बचन न जाई॥

इसे क्या कहा जाय, नीति निपुणता ? बेचारे दशरथ को क्या पता कि कैकेयी उनके प्राण लेने पर ही (राम का १४ वर्ष का बनवास) उतारू है। चट कह दिया। परन्तु तीनों से वियुक्त होते समय सुमन्त से बोले—

× × ×

लै रथु संग सखा तुम जाहू॥
सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनक सुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गये दिन चारि॥

क्या यह दशरथ की दुर्बलता थी ? यदि हाँ तो मैं राम-प्रेम में प्राणार्पण करने वाले को वीराग्रणी कहूँगा। यही सच्ची भावुकता है। द्वापर में उद्धव का ज्ञान गोपियों के समक्ष समाप्त हो गया था। यहाँ प्रण की सुध-बुध है ही नहीं।

न तद् दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते

विचारणीय यह है कि यह दान नहीं, वरदान है, जिससे जीविका नहीं, जीव जा रहा है। इसीसे तो 'फिरेहु गये दिन चारि' की बात कही गई है। बन देखना ही बनवास हो गया है। अपत्य प्रेमी माता पिता जिनकी सन्तानें होते ही, या कुछ दिन जी कर, दिवंगत हो जाती हैं प्रायः दूसरी स्त्रियों के हाथ सन्तान बेचकर (बदले में कुछ लेकर) इस भाव से कि, यह मेरे नहीं दूसरे के ही सुत या सुता हो कर जीवित रहें, मन को समझा लेते हैं। हिन्दुओं में माताबदल और बेंचेलाल जैसे नाम इस बात के प्रमाण हैं। बस दशरथ की यही परिस्थिति है। क्या दशरथ कैकेयी से असत्य बोले थे ? जी हाँ, क्या बुरा किया था ! श्रुति के आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्राचार्यजी बलि को समझाते हुए कहते हैं—

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राण सङ्कटे।
गो ब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥

(श्री मद्भागवत ८। १८। ४३)

मेरी समझ में ज्ञानी से भावुक का प्रेम मार्ग कम झीना नहीं है।

अच्छा इधर देखिए कठोर पृथ्वी पर पग न देने वाली सीता की क्या दशा है—

झलकीं भरि भाल कनीं जल की पुट सूखि गये मधुराधर वै।

राम से सीता प्रतिश्रुता थीं 'नाथ आपके साथ कुछ कष्ट न होगा'। कहतीं क्या ? आज के न्यायालयों में तो सीता पर अभियोग चल ही सकता है और स्यात् अभिभावकों की वाक्यपटुता दण्डभोगिनी होने से भी उन्हें बचा ले। किन्तु हृदय के न्यायालय में नैतिकता का न्यायाधीश सामान्य भूल पर भी कालेपानी से कम दण्ड न देता था। अतः सीता ने डरते-डरते पर्णकुटी के बारे में पूछते हुए श्रम-परिहार-रीति की ओर सशङ्क संकेत किया—

जल को गये लक्खन हैं लरिका
परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े

'अरे भई ! आप बढ़ते ही जा रहे हैं। सोचिए तो सही यह निर्जन वन है। झाड़ झङ्झाड़ खड़े हैं। बालुकामय प्रदेश अटपटी पगडण्डियाँ। और भय्या लक्खन (कितना प्यारा नाम है घर के मुन्नन, टुन्नन, रामू, श्यामू की भाँति) अभी कौन सयाने हैं, पानी लेने गये हैं। 'देहली पार परदेस' कहीं उन्हें दिग्भ्रम न हो जाय ! क्यों न प्रतीक्षा कर लीजिए थोड़ी देर तक। फिर तुलसी के भावुक हृदय ने 'पिहित' के प्रयोग से जीवन का मार्मिक रहस्य निमीलित (मैं उन्मीलित और मीलित दोनों से भिन्न अर्थ में इसे प्रयोग कर रहा हूँ) किया। अलङ्कार, रस, ध्वनि सभी के प्रेमी अपना प्राप्तव्य ले सकते हैं।

तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै
बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े

अपने पैरों के ही काँटे निकालने में जान बूझकर देर (डा० सूर्यकान्त शास्त्री क्षमा करें सीता के पैरों के काँटे नहीं) लगाई। धन्य हो गोस्वामीजी !

दूर से दो पुरुषों के बीच एक सुकुमारी आती हुई दिखायी दी। ग्रामवधूटियाँ एकत्र हो गईं। एक ने कहा—

बिलोकहु री सखि मोहि सी ह्वै।

भाव की दुहरी लपेट तो देखिए। किसी सुन्दरी ने कहा होगा, 'अरी ओ श्यामा बहन वह देखो कितनी सुन्दर तीन मूर्तियाँ इधर चली आ रही हैं। 'मुझे नहीं दीखतीं, कहाँ हैं वे ?' दूसरी ने कहा—

'वाह भई (अरे मुझ जैसे भाव तो हृदय में पहले भरो) तुम्हें नहीं दीखतीं। इधर आओ मेरी स्थिति में खड़ी तो हो मेरी उँगली की ओर तो देखो।

निकट पहुँचने पर एक ने पूछा—

'साँवरे से सखि रावरे को हैं ?'

यह सुन कर सीता मन ही मन मुसकाईं। आन्तरिक उल्लास का यह हाव भा कितना स्पृहणीय है। हाँ तो लक्ष्मण की उपस्थिति में सीता राम से अपना सम्बन्ध बतातीं तो कैसे ? हुआ क्या ?

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी।
दुहुँ सङ्कोच सकुचति बर बरनी ॥

आ० शुक्ल ने 'बिलोकति धरनी' की स्वाभाविक मुद्रा की प्रशंसा की है। 'दुहुँ सङ्कोच' में सीता के हृदय की कोमलता और अभिमान शून्यता की बात कही है। एक निवेदन अपनी ओर से और करदूँ। उनकी ओर देख कर उत्तर देना कर्त्तव्य समझ लिया और फिर सोचा कि इन्हीं महाशय को परिणाम पूर्व अपलक नयनों से देखते समय मिथिला में प्र-प्र-प्रपितामह निमि ने तो सङ्कोच से स्थानान्तरण कर लिया था पर यहाँ तो माताजी सुतराम् साथ चल रही हैं। सचमुच—

दरमियाने कहरे दरिया तख्तह बदम् कर दई।
बाज मी गोई कि दामन तर मकुन होशियार बाश।

मैं तो 'बिलोकति धरनी' और 'दुहुँ सङ्कोच' को इस प्रकार व्यक्त करना अधिक उचित समझता हूँ। आज के इस प्रश्न पर साम्प्रतिका का उत्तर होगा—(Do not you know ! He is Mr. Ram, my husband. परन्तु सीता की आँखें वाणी का काम कर रही थीं माधुरी मुकुलित यह अल्प व्यञ्जना सर्वथा श्लाघ्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवेदना के हेत्वाभास की बानगी भी लीजिए। सीता-विरहित राम प्राकृतिक-उपस्करों से प्रश्न करते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी।

वियोग की परिस्थिति जड़ को चेतन और चेतन को जड़ बना देती है। नागमती भौंरा और काग से विरह निवेदन करती थी और गोपियाँ मधुबन की हरीतिमा पर उसे खरी खोटी सुनाती थीं।

कवितावली में 'ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी' द्वारा तुलसी ने मुनियों की प्रसन्नता का परिहास मय चित्र अङ्कित किया है। गीतावली में विश्वामित्रजी ने जनक, गौतम और शतानन्द को व्यंग्य की एक लपेट में कस लिया है—

सिला छोर छुवत अहिल्या भई दिव्य देह,
गुन पेखे पारस के पङ्कहह पाय के।
राम के प्रसाद गुरू गौतम खसम भये,
रावरे सतानन्द पूत भये माय के॥

गौतम का खसम होना तथा 'रावरे सतानन्द' में रावरे शब्द की अर्थ निगूढ़ता विचारणीय है। जनकजी आपके यहाँ की परिस्थिति सुधर जायगी। यह पंक्तियाँ 'काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब' जैसी पंक्तियों के लेखक ने लिखी हैं। 'रावरे सतानन्द पूत भये माय के' और आप? (किसी के श्वशुर)।

चित्रकूट में वीतरागी महात्मा भरत और मर्यादा-पुरुषोत्तम का मिलन देखते ही बनता है। भरत को आते देख निषादराज और लक्ष्मण के हृदय में उठने वाले संशय सर्वथा स्वाभाविक हैं। इधर भरत के पहुँचने पर राम-हृदय का उत्साह औत्सुक्य से सञ्चारित होकर जटा मुकुट और धनुष बाण की सुध-बुध खो देता है। राम और भरत के बीच का संवाद दोनों भाइयों की स्पष्ट अस्पष्ट भाव रेखाओं को व्यक्त करता है। भरत की भक्ति तो देखिए। आजकल के प्रेमी प्रिय के 'सर की' कसम खाते हैं। भरत बोले—

प्रभु पद-पदुम पराग दोहाई,
और— सो करि कहहुँ हिए अपने की।
अम्या सम न सुसाहिब सेवा।
सो प्रसाद जनु पावै देवा॥

इसका प्रभाव क्या पड़ा—

सभा, राउ, गुरु, महिसुर मन्त्री।
भरत भगति सबकै गति जन्त्री॥

भरत ने अवधि पार करने का एक अवलम्बन माँगा। फिर क्या था। अग्रजानुराग रञ्जित भरत की क्या दशा थी—

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नामु जप लोचन नीरू॥
लखन राम सिय कानन बसहीं।
भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥

अग्रजद्रोही सुग्रीव और विभीषण राम-भक्ति धन के चोर रूप में पकड़े ही तो गये—

सधन चोर मग मुदित मन, धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव विभीषनहिं, भई भरत की भेंट॥

लङ्काकाण्ड के दो एक मार्मिक प्रसङ्गों पर दृष्टि-निक्षेप कीजिए। रावण द्वारा अपहृता 'केशव' की सीता ने अपने को 'लंकेश' वश बताया था। तुलसी ने देश काल और परिस्थिति का पूर्ण ध्यान रखते हुए राक्षसी मंदोदरी का रूप सुढङ्ग से चित्रित किया है। वह अपने सभी पुत्रों को कोसती हुई मेघनाद पर बुरी तरह बरस पड़ी—

बन्दर को, 'निपट निडर देखि कोई न लख्यौ बिसेखि

× × × ×

छोटे औ बड़े रे मेरे पूतअ अनेरे सब,
साँपिनि सों खेलैं मेलैं गरे छुराधार सों।
तुलसी मंदोवै रोइ रोइ कै बिगोवै आपु,
बार बार कह्यौ मैं पुकार दाढ़ीजार सों।

नीच और अभद्र जाति की स्त्रियाँ प्रायः आज भी पुत्रों को निःसङ्कोच ऐसी ही गाली देती हैं।

लक्ष्मण के शक्ति लगी हुई है। हनुमान सुषेन द्वारा निर्दिष्ट औषध-आनयन कार्य सम्पादनार्थ गये हुए हैं और राम अनुज की गति देख कर विकल हैं। राम की इस दशा का अङ्कन शङ्का, चिन्ता, मोह सञ्चारियों की भाव-शबलता के साथ हुआ है। राम के शब्द हैं—

सुत बित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
किन्तु— सिलइ न जगत सहोदर भ्राता।

राम—वे राम जो सीता वियोग में विकल होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे अपना दुःख निवेदन कर रहे थे, वे राम जिन्होंने सीता को प्रेम-सन्देश दिया था—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन बसति सदा तुम पाहीं।
जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं॥

नारी को भी 'होहिं जाहिं' बता देते हैं। हृदय की इस सफाई को मुझ जैसे अकिंचन् लेखक की कलमुही कलम क्या आँक सकेगी?

उनका तो सारा पुरुषार्थ थका हुआ है। पति-शव के समीप रुदन्ती विधवा से भी उनका क्रन्दन मर्मस्पर्शी है—

जैहउँ अवध कवन मुँहु लाई।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाँई॥

और फिर—

उतरु काह दैहउँ तेहि जाई॥

× × ×

उठि किन मोहि सिखावन देहू?

राम पर तो आपत्तियों के पहाड़ टूट रहे थे। हनुमान भरत-शर-संविद्ध हुए। देर कैसे न होती? इधर भरत परिवार के अन्य सदस्यों पर पड़ी हुई विपत्ति का मूल कारण अपने को मानते हैं। बेचारे भरत कहते हैं—

जेहिं विधि राम विमुख मोहिं कीन्हा।
तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीना॥

भरत ने कैकेयी से भी कहा था—

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यौ री?

आत्मग्लानि और पछितानि (रघुवंश के राज्य-सिंहासन सम्बन्धी नियम) सम्बन्धी राम और भरत की विविध परिस्थितियाँ कितनी प्यारी हैं?

श्रद्धालु के प्रति श्रद्धेय अपने ही श्रद्धा-भाव का सबमें प्रसार चाहता है। श्रद्धा यदि संक्रामक हो तो उसका (श्रद्धेय का) सौमनस्य संवर्धित होता है। विभीषण विरथ राम और रथी रावण को देखकर इसीलिए तो विकल हो उठा था।

मन्दोदरी आदि का विलाप रावण-वध के अवसर पर कितना करुण है—

पति गति देखि ते करहिं पुकारा।
छूटे कच नहिं वपुष सम्हारा॥

बहुत दिन तक साथ रह कर पशुओं में भी ऐसा प्रेम हो जाता है कि वियुक्त होकर वे दुःखाधिक्य के कारण रोते हैं, खाते-पीते भी नहीं। सुग्रीव, हनुमान आदि राम से अलग रहें कैसे सम्भव है? यह चित्र तुलसी की तूलिका ने हलके गहरे यथेष्ट रँगों से चित्रित किया है।

राम-कथा का एक अति मार्मिक प्रसङ्ग 'तुलसी ने मानस में नहीं रखा। गीतावली इसीलिए मानस की पूरक है। उसमें वैदेही बनवास की कथा है और कालिदास तथा भवभूति की सीता जैसी परिस्थिति विद्यमान है।

अहल्या-उद्धार में हास्य का पुट मिलता है। नारद-मोह भी वैसा ही प्रसङ्ग है। परन्तु 'नहछू' में परिहास की एक झाँकी देख ही लीजिए। यह नहछू चाहे साकेत में चाहे मिथिला में सम्पन्न हुआ हो, यहाँ इस पर कुछ नहीं कहना है। नाइन गा उठी—

काहे राम जिउ साँवर लछिमन गोर हो,
की दहुँ रानी कौसिलहि परिगो भोर हो।

मैंने इस भाव को अपने गाँव की एक वर्षीयसी से से इस प्रकार सुना था—

काहे लखन भये गोर राम भये साँवरे,
कोर वा कौशल्या रानी भूलीं राम भये साँवरे।

भोर का अर्थ भ्रम है। कोरवा का अर्थ जघन स्थल (जंघा नहीं) के बीच का भाग। बच्चों के पैरों को प्रायः बड़े-बूढ़े कोर में डालकर सोते हैं। कितनी चटकीली गाली है यह? केशव की 'जनकपुर की गाली' के समान ही।

पार्वती-मङ्गल में पार्वती माता की नारी सुलभ परिस्थिति और बरवै रामायण के शुभ दृष्टि वाले दिन के 'सिय रघुबर के उनींदे नैन' हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेते हैं। विनय पत्रिका में जिसका पर्यवसान शान्तरस में हुआ है, दैन्य, आत्मग्लानि, आत्म-विगर्हणा और मनोराज्य आदि सप्त भूमिकाओं में हम तुलसी को विहार करते हुए देखते हैं।

संक्षेप में तुलसी ने मानव-प्रकृति विश्लेषणा, अन्तर्भेदिनी दृष्टि तथा सार-ग्राहिणी प्रतिभा के मार्मिक स्थलों के ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं कि सहृदय पाठक मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियतिवाद और कामायनी

प्रो० कन्हैयालाल सहल, एम० ए०

वैज्ञानिक अध्ययन और प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप अब यह तथ्य अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि यह विश्व कुछ ऐसे नियमों द्वारा संचालित है जो अकाट्य और अनुल्लङ्घनीय है। इस विचार-धारा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति विश्व-शृङ्खला की एक कड़ी मात्र है और सच्चे अर्थ में 'प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है।' संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रन्थों में नियति के स्वरूप की विवेचना की गई है। उदाहरणार्थ योगु-वाशिष्ठ के निम्नलिखित श्लोकों को लीजिये:—

यथास्थितं ब्रह्मतत्त्वं सत्ता नियतिरुच्यते।
सा विनेतुर्विनेतृत्वं सा विनेय विनेयता॥
(प्रकरण २, सर्ग १०, श्लोक १)

आदिसर्गे हि नियतिर्भावैर्वैचित्र्यमञ्चयम्।
अनेनेत्थं सदा भाव्यमिति संपद्यते परम्॥
(प्रकरण ३, सर्ग ६२, श्लोक ६)

महासत्तेति कथिता महाचितिरिति स्मृता।
महाशक्तिरिति ख्याता महादृष्टिरिति स्थिता॥ १०॥
महाक्रियेति गदिता महोद्भव इति स्मृता
महास्पन्द इति प्रौढा महाप्लैकतयोदिता॥ ११॥
तृणानीव जगंत्येवमिति दैत्याः सुरा इति।
इति नागा इति नगा इत्याकल्पं कृता स्थितिः॥१२॥

अर्थात् सर्वत्र सम-रूप से स्थित जो व्यापक ब्रह्म की सत्ता है, उसी का नाम नियति है। वही कार्य-कारण के नियम्य और नियामक रूप से स्थित है। कारण होने पर कार्य अवश्य होता है और कार्य होने पर उसका कोई कारण अवश्य होता है। इसी नियम का नाम नियति है; वही कारण आदि की नियामकता है और वही कार्य आदि की नियम्यता भी है।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही अग्नि आदि की उष्णता और ऊर्ध्व-ज्वलन नियति के कारण है; पर ब्रह्म स्वयं अपने संकल्प से पदार्थों की विचित्रता सहित अक्षय नियति का रूप धारण कर लेता है। वही नियति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की स्थिति, विस्तार, सामर्थ्य, विवेक रचना, जन्म और अर्थ क्रियाकारितादि की हेतुता से महा-सत्ता, महा-चिति, महा-शक्ति, महा-दृष्टि, महा-क्रिया, महा-ध्रुव और महा-स्पन्द-गति इत्यादि नामों से कही गई है। तृणों के समान सब जगत् का परिवर्तन करती हुई दैत्य इस प्रकार के क्रूर हैं, देवता इस प्रकार शान्त हैं, नाग ऐसे हैं, पर्वत ऐसे जड़ हैं इत्यादि रूप से कल्प पर्यन्त नियति अपने रूप में स्थित रहती है।

× × ×

न शक्यते लङ्घयितुमपि रुद्रादिबुद्धिभिः। (तृ०, ६२, २६)
सर्वज्ञोऽपि बहुज्ञोऽपि माधवोऽपि हरोऽपि च॥
अन्यथा नियतिं कर्तुं न शक्तः कश्चिदेव हि। (पं०, ८६, २६)
सर्गादौ या यथा रूढा संवित्कचनसंततिः॥
साऽद्याप्यचलिताऽन्येन स्थिता नियतिरुच्यते। (तृ०, ५४, २२)
आमहारुद्रपर्यन्तमिदमित्थमिति स्थितेः।
आतृणाप्पद्मजस्पन्दं नियमान्नियतिः स्मृता॥ (प०, ३७, २१)

अर्थात् रुद्रादि देवता भी नियति का उल्लङ्घन नहीं कर सकते। माधव और हर के समान सर्वज्ञ और बहुज्ञ होने पर भी नियति के नियमों का कोई व्यतिक्रम नहीं कर सकता। वर्तमान विश्व के प्रारम्भ में नियति की जैसी कल्पना की गई थी, उसी रूप में वह आज भी अचल-भाव से स्थित है। रुद्र से लेकर छोटे से छोटे तृण पर्यन्त नियति का ही नियमन-व्यापार सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। इस नियमन के कारण ही इसे नियति कहा गया है।

योग वाशिष्ठ में विश्व की नियामिका शक्ति के रूप में नियति की जो विराट् कल्पना की गई है, उसी से मिलती-जुलती कल्पना प्रसादजी की कामायनी में भी हुई है। तुलना के लिए 'कामायनी' के निम्नलिखित छन्दों को लीजिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कर्म-चक्र सा घूम रहा है, यह गोलक, बन नियति प्रेरणा;
सब के पीछे लगी हुई है, कोई व्याकुल सयी एषणा।
नियति चलाती कर्म चक्र यह, तृष्णा जनित ममत्व-वासना;
पाणि-पादमय पञ्चभूत की, यहाँ हो रही है उपासना॥"
(रहस्य सर्ग)

ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट है कि कामायनी में जिस नियति का उल्लेख हुआ है, वह भाग्य अथवा प्रारब्ध का पर्याय नहीं है। 'कामायनी' की नियति कर्म-चक्र का सञ्चालन करती है और उसी की प्रेरणा से यह गोलक कर्म-चक्र-सा घूम रहा है।

इसी सम्बन्ध में 'कामायनी' की निम्नलिखित पंक्तियों पर भी विचार कीजिये—

"इस नियति नटी के अति भीषण,
अभिनय की छाया नाच रही।
खोखली शून्यता में प्रतिपद,
असफलता अधिक कुलाँच रही॥"
(इड़ा सर्ग)

योग-वाशिष्ठ में भी नियति के सम्बन्ध में कहा गया है—

नियतिर्नित्यसुद्वेगवर्जिता परिमार्जिता।
एषा नृत्यति वै नृत्यं जगज्जालकनाटकम्॥
(प्रकरण ६, सर्ग ३७, श्लोक २३)

अर्थात् यह नियति नित्य उद्वेग रहित आत्मज्ञान पर्यन्त जगज्जाल रूप नाटक करती रहती है। नियति-नटी के नृत्य का पूरा रूपक योगवाशिष्ठकार ने यहाँ बाँधा है। इतना ही नहीं, इस सर्ग का नाम ही 'नियति-नृत्य' रखा गया है। इस विराट् नृत्य का पूरा विवरण पाठक 'योग-वाशिष्ठ' में ही पढ़ेंगे।

'आशा' सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियों में भी नियति के एकान्त शासन और मनु की विवशता को स्वीकार किया गया है—

"उस एकान्त नियति शासन में,
चले विवश धीरे धीरे।
एक शान्त स्पन्दन लहरों का,
होता ज्यों सागर तीरे॥"

'Rational Mysticism' के लेखक भी नियति के प्रभुत्व का साक्ष्य भर रहे हैं :—

"Individual man can modify the course of Nature on the Earth in many minor ways, but he cannot alter the course of Nature as a whole : that is to say those cosmic happenings which are determined by a higher power, or higher powers."
(Kingsland: Rational Mysticism, P. 354)

अर्थात् बहुत से छोटे-मोटे रूपों में तो व्यक्ति प्रकृति के कार्य-व्यापार में रूपान्तर उपस्थित कर सकता है किन्तु कुल मिलाकर वह प्रकृति की पद्धति को बदल नहीं सकता। अर्थात् विश्व की जो घटनाएँ किसी उच्चतर शक्ति अथवा उच्चतर शक्तियों द्वारा नियत कर दी जाती हैं उनमें परिवर्तन उपस्थित करना व्यक्ति के वश का रोग नहीं।

नियति वस्तुतः विश्व की नियामिका शक्ति है जिसके अनुशासन अखिल भुवन तथा चर और अचर सभी स्वीकार करते हैं। एक छोटी सी सभा के सञ्चालन के लिए भी जब नियम बनाये जाते हैं तब इस इतने बड़े विश्व के लिए नियमों की कितनी अधिक आवश्यकता है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। नियमों के अभाव में सर्वत्र धाँधली और अव्यवस्था फैल जायगी। वेदों में भी इस प्रकार के नियम को 'ऋत' के नाम से अभिहित किया गया है और वरुण को ऋत के देवता के रूप में प्रतिष्ठा की गई है।

यहाँ पर यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि नियतिवाद के उक्त सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने के बाद मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का क्या कोई महत्त्व नहीं रह जाता? एक बार श्रीनेहरूजी ने नियतिवाद (Determinism) और स्वतन्त्र-इच्छा-शक्ति (Free will) का परस्पर तारतम्य बतलाते हुए कहीं लिखा था—"इस विश्व में नियतिवाद और स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति दोनों के लिए स्थान है। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। ब्रिज के खेल में प्रत्येक खिलाड़ी को जो ताश के पत्ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलते हैं उसमें खिलाड़ी की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का कोई हाथ नहीं रहता; इसे नियतिवाद समझिये किन्तु पत्तों की सहायता से अपने अनुभव और बुद्धि-कौशल द्वारा चतुर खिलाड़ी जो खेल खेलता है, उसमें उसकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का पूरा पूरा योग है। योगवाशिष्ठकार ने भी इस प्रश्न पर विचार किया है। वाशिष्ठ के मतानुसार विश्व का मूल कारण है विश्व-मन (Cosmic mind) जिसे उन्होंने ब्रह्मा का नाम दिया है। "कल्पना कीजिये कि किसी विश्व का विश्व-मन है। A जो अपनी सर्जनात्मक कल्पना की शक्ति के द्वारा a बन जाता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अब A नहीं रह गया। a का निर्माण अवश्य ही A द्वारा नियत हुआ किन्तु अब यदि a चाहे तो वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति के द्वारा

a_1, a_2, a_3 आदि कोई रूप यथेच्छ धारण कर सकता है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये। पिता को नियत करने में पुत्र का कोई हाथ नहीं रहता किन्तु पुत्र-रूप में अवतरित व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति द्वारा अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास कर सकता है।" (Philosophy of योगवाशिष्ठ by Dr. B. L. Atreya) जिस नियतिवाद में स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का कोई स्थान न हो, वह नियतिवाद व्यक्ति को निष्क्रियता और नैराश्य की ओर ले जा सकता है। प्रसाद का नियतिवाद, विशेषतः 'कामायनी' का नियतिवाद, किसी को भी निष्क्रियता और नैराश्य की ओर उन्मुख नहीं करता।

प्रसाद के नियतिवाद का अभी सम्यक् अध्ययन नहीं हुआ है किन्तु इस लेख में जो कुछ कहा गया है, उसके आधार पर भी हम इतना तो निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि 'कामायनी' में नियति को कर्म-चक्र की सञ्चालिका के रूप में चित्रित किया गया है, वह विश्व की प्रबल नियामिका शक्ति है और ऐसी नर्तकी (नटी) है जिसका विराट् रूप हमें योगवाशिष्ठकार ने दिखाया है। इस प्रकार का नियतिवाद न भाग्यवाद अथवा दैववाद है और न किसी प्रकार के पलायन का प्रकार ही।

'रमणीय, रसवती कला को आप कला का नाम न दे कर मानसिक ऐयाशी' ही कह लीजिए, उसकी अपेक्षा सदा रही है और सदा रहेगी। जिस समाज के कलाकार कला के पक्ष की अवहेलना करें, उसका नैतिक और बौद्धिक स्तर अवश्य गिर जायगा। हमारे कलाकार आज विभिन्न 'वादों' के तथा समाज, जनता और सर्वहारा वर्ग के झमेले में पड़ कर, अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे हैं, अपनी प्रतिभा को निष्क्रिय बना बैठे हैं। प्रगति, जागृति, चेतना और क्रान्ति के शोर में वे व्यक्ति के हृदय की पुकार नहीं सुन पाते। वे भूले जा रहे हैं कि 'रस-वितरण' उनका प्रधान कर्म है; कि वे एक फूल या पत्ती के, एक शिशु या रमणी के, वर्षा आँधी और वसन्त के, प्रेम, विरह और वेदना के रसमय वर्णन द्वारा भी मानव-हृदय को समुन्नत कर के लोक-कल्याण कर सकते हैं; कि केवल "उठो, उठो हे देश-वासियो!" या "लाल सितारा चमक उठा है!" कहते रहने से अन्ततोगत्वा लोक का अकल्याण होगा, क्योंकि प्यासा मानव-हृदय इस तरह की कृतियों में रस का एक कण भी न पा कर "हाय, मेरी उठती जवानी!" का गन्दा पानी पीने लगेगा और रोगी हो कर मर जाएगा! कालिदास का "आषाढस्य प्रथमदिवसे" और वर्ड्सवर्थ का "Behold her, single in the field" वस्तुतः लोक-कल्याण करता है, क्योंकि वह रमणीय है, रसमय है, इस तथ्य को हमारे कलाकार आज फिर से समझें। आधुनिक आलोचक उन पर एकांगिता का अथवा बूर्जुआ मनोवृत्ति का लाञ्छन लगाएँ तो लगाएँ, उन्हें अपनी प्रतिभा को कुण्ठित और अवरुद्ध नहीं होने देना चाहिए। उनका कर्तव्य है कि वे रसमयी कृतियों से जन-मन को आप्लावित करें, उसे पार्थिवता से ऊपर उठाएँ। कला में जो सुन्दर है, और असुन्दर का पर्याप्त अंशिव है, यह कलाकारों का महा-मन्त्र होना चाहिए। आज के संघर्षमय जीवन में व्यक्ति को रस की पिपासा है। यह मानसिक 'ऐयाशी' नहीं, मानसिक 'आवश्यकता' है। कलाकार इस आवश्यकता की पूर्ति करें, व्यक्ति के हृदय को तृप्त कर के समाज का हित करें, समाज के नाम पर व्यक्ति को प्यासा न रखें।

—'कल्पना' सितम्बर ५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक वार्ता और साहित्य

श्री गोवर्द्धन शर्मा

वर्तमान समय में साहित्य शब्द बहुत कुछ रूढ़ि हो गया है और हिन्दी में उसका प्रयोग उसी भाँति होता है जैसे अँग्रेजी Literature शब्द का। यह साहित्य लिखित रूप में होता है। और शास्त्रीय विवेचन करने पर अधिकांश उपयुक्त ठहरता है, किन्तु 'लोक-वार्ता' शब्द विशद अर्थ रखता है। इसके अन्तर्गत वह समस्त आचार-विचार की सम्पत्ति आ जाती है, जिसमें मानव का परम्परित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और जिसके श्रोता लोकमानस होते हैं, वे लोकमानस जिनमें परिमार्जन अथवा संस्कार की चेतना काम नहीं करती होती। लौकिक-धार्मिक विश्वास, धर्मगाथाएँ तथा कथायें, कहावतें, पहेलियाँ आदि सभी लोक वार्ता के अंग हैं। लोकवार्ता को अँग्रेजी में 'फोक्लोर' कहते हैं। फोक्लोर का प्रचलित अर्थ है, जनता का साहित्य, ग्रामीणगीत, कथा, कहानी आदि। यदि लोकवार्ता को व्यापक रूप में लें तो प्रत्येक प्रकार का साहित्य उससे प्रभावित ही नहीं अपितु उससे उत्पन्न भी है। किन्तु प्रस्तुत रचना में हम 'लोक-साहित्य' को एक विशिष्ट अर्थ में लेंगे और देखेंगे कि लोक साहित्य से हमारा शास्त्रीय साहित्य किस प्रकार प्रभावित हुआ। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जन साहित्य की हमारे लिखित साहित्य को क्या देन है?

यदि हम विश्लेषण कर देखें तो स्पष्ट ही ज्ञात होगा कि दोनों में परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। हम अपने मत की पुष्टि में हिन्दी साहित्य के विकास को लेंगे और देखेंगे कि वह किस प्रकार इस अलिखित साहित्य से प्रभावित हुआ है। यही नहीं, हम इसी सिलसिले में संस्कृत साहित्य पर भी दृष्टिपात करेंगे।

पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान आधुनिक काल में लोक साहित्य की ओर आकर्षित हुआ है। उसके फलस्वरूप रूस, जर्मनी, फ्रांस, इङ्गलैण्ड और अमेरिका आदि देशों ने लोक साहित्य पर्याप्त मात्रा में एकत्रित एवं प्रकाशित किया है। किन्तु यह लिखना अनुचित नहीं होगा कि भारतवर्ष ने बहुत प्राचीनकाल में ही इस विषय पर ध्यान दिया था और जिसके फलस्वरूप प्राचीनकाल का महत्वपूर्ण एवं विस्तृत लोक साहित्य आज वेदों, पुराणों, उपनिषदों आदि के रूप में प्रस्तुत है। इस मान्यता में कुछ तथ्य नजर आता है। 'ऋग्वेद में हमें वे बीज, बिन्दु और किसी सीमा तक उसका विकास मिलता है जो संसार की लोकवार्ता और लोककहानी के एक विशद भाग का मूलाधार है। अनेकों लोक कहानियों का मूल, वेदों के द्वारा और देवताओं में पाया जा सकता है और पाया भी गया है।' विश्व में इसलिए प्राचीनतम लोकसाहित्य संग्रह वेद माने जाने चाहिए। वेद ईश्वर द्वारा बनाये गये' ऐसा प्रसिद्ध है। इससे यही तात्पर्य कि इनकी रचना किसी एक अथवा किन्हीं विशेष व्यक्तियों द्वारा नहीं हुई वरन् ये अपने समय के जनसमाज की लोकसाहित्य उत्पादनी शक्ति के फलस्वरूप निर्मित हुए। महाभारत के लेखन का सारा श्रेय भी वेदव्यासजी (जो इसके सम्पादक मात्र माने जाने चाहिए) ने श्री गणेशजी को दिया है। बात यह हो सकती है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् इस विषय के कितने ही वीरगीत समाज में प्रचलित हो गये हों जिनका संग्रह कालान्तर में श्री गणेश ने किया हो। इसी प्रकार अन्य पुराण, उपनिषद आदि भी लोकसाहित्य के रूप में प्रचलित थे। अस्तु कुछ भी हो, यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि प्राचीन साहित्य और लोकसाहित्य में बहुत कुछ आदान-प्रदान हुआ है।

वैदिक साहित्य पूर्णतया लोक साहित्य ही है। कुछ पण्डितों की राय में अथर्ववेद में ऐसे बहुत तरह के लोक प्रचलित टोटकों का संग्रह है जो आश्चर्यजनक रूप से जर्मनी और पोलैण्ड में प्रचलित प्राचीन युग के टोटकों से मिल जाते हैं। विण्टर नित्ज का निश्चित मत है कि अनेक सूत्र (यथा कल्पसूत्र, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र) मानों प्राचीन 'फोक्लोर जनेल' हैं।

'रामायण' वाल्मीकि द्वारा रचित ग्रन्थ माना जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत के आदि कवि भी बाल्मीकि ही ठहरते हैं। लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि यह 'रामायण' भी लोक साहित्य के प्रभाव से अपने को मुक्त नहीं रख सकी। एक यूरोपीय पण्डित ने कहा है, भारतीय साहित्य के इतिहास में यह अद्भुत विरोधाभास है कि रामायण महाभारत से प्राचीन है और महाभारत रामायण से प्राचीन। असल में महाभारत के अनेक उपाख्यान निश्चय ही रामायण से पूर्ववर्ती हैं जैसे नल-सावित्री आदि के उपाख्यान जिनका उल्लेख रामायण में भी है। प्रोफेसर विण्टर नित्ज के अनुसार महाभारत सन् ई० पूर्व की चौथी शताब्दी से लेकर ईसवी सन् बाद की चौथी शताब्दी तक महाभारत बनता और संगृहीत होता रहा।

बहुत से पण्डितों का विश्वास है कि प्राकृत और उससे होकर संस्कृत में जो यह ऐहिकतापरक सरल रचनायें आईं, उसका कारण आभीरों का संसर्ग था। फुटकर कविताएँ, अहीरों की प्रेम-कथायें और उनके गृह-चरित्र लोक-साहित्य में अत्यधिक लोक-प्रिय हो गये थे और उनकी शक्ति और सरसता पण्डितों से छिपी नहीं रही। उसने प्रत्यक्ष रूप में प्राकृत और संस्कृत के साहित्य को प्रभावित किया। यही नहीं, परवर्ती काल की अपभ्रंश रचनाओं से अनुमान होता है कि दो तरह की रचनायें इस भाषा में शुरू-शुरू में हो रही होंगी:—

१—ऐहिकतापरक फुटकर पद्य।

२—लोक प्रचलित कहानियों के गीत।

संसार के समस्त लोक-साहित्य में ये दो ही प्रकार हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रायः अधिकांश प्राकृत व अपभ्रंश साहित्य लोक-वार्ता से प्रेरणा व सामग्री पाता रहा। इस दृष्टि से, साहित्य लोकवार्ता का सदा ऋणी रहेगा।

लोक साहित्य की प्रबलता हम देख ही चुके हैं। लोक-साहित्य जनता का अपना साहित्य है, उसके सुख, दुख और वेदना और संवेगों का मूर्तरूप है इसीलिये उसका एक विशिष्ट प्रभाव है। इस लोक-साहित्य ने वैदिक काल से आज तक साहित्य को प्रभावित किया है। हिन्दी-साहित्य तो लोक-साहित्य का बड़ा ऋणी है। कारण यह है कि हिन्दी-भाषा जन्म से लोक भाषा रही है और संस्कृत भाषा के उत्तराधिकार से भी अधिक उसे लोक-मेधा का अधिकार मिल रहा है। हिन्दी ने इसीलिये अपने साहित्य के लिये प्रेरणायें प्राप्त कीं। वे अधिकांशतः लोक सम्पर्क से ही की हैं। 'हिन्दी-साहित्य के आरंभिक युग में स्वयंभू की रामायण का पता चलता है। स्वयंभू जैन थे। लोक-साहित्य रामायण के मूल रूप में संशोधन कर, उसे दो रूपों में विभक्त कर दिया, जो जैनियों में प्रचलित हो गये।' यही क्यों रामायण का चौदहवीं शताब्दी के बाद के साहित्य में बहुत प्रभाव विद्यमान है।

'वीर गाथाकालीन नाना प्रकार की लोक चिन्ताओं का अध्ययन करने के लिए वीर गाथाओं और प्रेम गाथाओं से अधिक स्फूर्तिदायक, सरल और लोक जीवन को समझने में सहायक कोई अन्य साहित्य हो ही नहीं सकता। इस के साहित्य पर प्रत्यक्ष ही लोकवार्ता का प्रभाव है।' रासोकाल में पृथ्वीराज रासो पर दृष्टि डालें तो 'पद्मावती समय' लोक साहित्य का एक अच्छा उदाहरण है। नर-पति-नाल्ह रचित बीसलदेव रासो गीत प्रणाली की हिन्दी की प्रथम रचना है, जो कालान्तर में अनेक वीर गीतों को प्रभावित कर सकी होगी, इसमें सन्देह की गुञ्जाइश नहीं। आज भी इसी परम्परा में अनेक वीर-गीत, जो अनपढ़ जनता की बहुत बड़ी थाती बनी है, खोजे जा सकते हैं। जायसी के प्रसिद्ध पद्मावत का, तथा अन्य सूफी कवियों की रचनाओं का आधार, वे लोक कहानियाँ हैं, जो सब हिन्दुओं के घर में बहुत दिनों से चली आ रही थीं, जिनमें उन्होंने आवश्यतानुसार कुछ हेरफेर किया है। 'पद्मावत' से ही पता चलता है कि उस समय सपनावती, मुग्धावती, मिरगावती, मधुमालती, प्रेमवती आदि की कथायें लोक में प्रचलित थीं.....ऐसी और अनेक कहानियाँ भी लोक में प्रचलित रही होंगी और उन पर ग्रन्थ भी लिखे गये होंगे। कम से कम उनको आश्रय करके बनाई हुई गीतियों से ग्रामीण जनता अवकाश के समय मनोरञ्जन करती रही होगी।' परन्तु उनमें का अधिकांश अब लुप्त हो गया है। पद्मावत में हीरामन तोते का उपयोग प्रेमगाथा की मूल लोक कथा की ओर संकेत करता है। आल्हा तो इतिहास के कुछ तन्तुओं पर लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के ताने बाने से बुना हुआ है। इस गीत में पद-पद पर लोक वार्ता का उपयोग हुआ है। इसमें उड़ने वाले घोड़े, जादू के चमत्कार, देवी देवताओं की शक्ति का उपयोग, आश्चर्यकारक घटनायें, विविध लोक विश्वास, सभी समाविष्ट है। जार्ज ग्रियर्सन ने भी लिखा है प्रसिद्ध बुन्देल-खण्डी शूरवीर आल्हा और ऊदल के इतिहास के चारों ओर लोक गाथाओं का एक बृहत् चक्र सङ्कलित हो गया है।

ज्ञानवादी कबीर व उसके अनुयायी पूर्णतः लोक-साहित्यकार बन गये हैं। सूर और तुलसी भी लोकवार्त्ता के प्रभाव से बच नहीं पाये हैं। सूर ने भागवत के प्रसङ्गों के अतिरिक्त जो प्रसङ्ग अपने सूरसागर में ग्रहण किये हैं, वे मात्र उनकी कल्पना से उद्भूत नहीं। लोकवार्ता ने उन्हें उसके बीज दिये हैं। तुलसी का 'रामचरित मानस' साहित्यिक परिमार्जन से युक्त लोक प्रचलित वार्ता ही तो है। तुलसी ने तो लोक छन्दों और गीतों को भी अपनाया। 'रामलला नहछू' छन्द का तुलसी ने आविष्कार नहीं किया था। 'नहछू' के अवसर पर इसी शैली का गीत गाया जाता था, तुलसी ने उसी गीत में रामचरित वर्णन करके उसे घर-घर पहुँचा दिया। 'पार्वती मङ्गल' भी एक ऐसा ही छन्द है। अतः हम कह सकते हैं कि तुलसी ने लोक-साहित्य से केवल वस्तु ही नहीं, रूप भी लिया है। विद्यापति, चरणदास और सूरदास की रचनाओं में जो लोक-भाषा में लिखित हैं, राधा, कृष्ण और गोपियों की प्रेम-लीलायें संपूर्ण विकसित रूप में पाई जाती हैं। इसके पूर्व निश्चय ही लोकमुख में ऐसी अनेक गीतियाँ काफी प्रचलित रही होंगी। वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ ही साथ लोक-गीतियाँ शास्त्र-सिद्ध आचार्यों द्वारा परिष्कृत की गई होंगी।

मध्य-युग में जब नये सिरे से हिन्दी कविता सिर उठाने लगी, तो उसमें सब शास्त्रीय बातें नहीं थीं। उसमें शास्त्राभ्यास का स्थान गौण था, पर शीघ्र ही शास्त्राभ्यास ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया और बाद की कविताएँ जीवन से विच्छिन्न हो गईं। साथ ही कुछ कवि नीति को विषय बनाकर 'सतसई' लिखने लगे जो प्रत्यक्ष लोक-साहित्य का रूपान्तरमात्र है। लोकोक्तियों और कहावतों से इन दोहों पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। सर मौनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत कोष की भूमिका में ठीक ही लिखा है कि अपने नीति-शास्त्र की चतुरता में भारतवासी संसार में अद्वितीय रहे हैं। हिन्दी एवं प्रान्तीय भाषाओं के ऐसे मुक्तक इन कहावतों व लोकोक्तियों की विरासत में हैं।

इन्शा अल्लाखाँ, लल्लूलाल तथा हमारे प्रारम्भिक लेखकों पर लोकवार्ता का प्रभाव स्पष्टतः दीख पड़ता है। 'भारतेन्दु' का 'अन्धेर नगरी' प्रहसन लोकवार्त्ता का शुद्ध उदाहरण है। भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों का ध्यान इस ओर गया था। 'कजरी', 'चूरन का लटका' आदि लोक-छन्दों का उदाहरण है। आज भी अनेक नये लोक-गीत गढ़े जा रहे हैं। लोकमनसा उन्हें ढाल रही है। इस प्रभाव और परस्पर लेन देन, आदान प्रदान का यदि विश्लेषण किया जाय, गम्भीर विवेचन में प्रवृत्त हुआ जाय, तो एक अच्छा खासा ग्रन्थ तैयार किया जा सकता है।

(पृष्ठ १५६ का शेष)

राजस्थानी, ब्रज-भाषा और गुजराती तीनों की खिचड़ी है। उसकी कविता में भाषा, व्याकरण, अलङ्कार आदि का सौन्दर्य नहीं किन्तु भाव, भक्ति तथा माधुर्य की त्रिवेणी है। उसके द्वारा की हुई गीतों की अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि है। किसी ने ठीक कहा है कि—

"मीरां के काव्य में पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं, उसके पद तो उसके भावावेश से प्रसूत प्रेमोन्माद के स्पष्ट चित्र हैं। जिनके चित्रण में रङ्ग और तूलिका की सहायता नहीं ली गई है चित्र तो आँसुओं की टेढ़ी सीधी रेखाओं द्वारा ही सहज रूप से बन गये हैं। उस कातर वियोगिनी को क्या पता था कि एक दिन उसके विकल उद्गारों की गणना उच्चकोटि के काव्य में की जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीराँ की प्रेम-साधना

श्री मथुर प्रसाद अग्रवाल 'पतिंग' एम० ए० (उत्तरार्द्ध)

मन रे परसि हरि के चरण।
सुयग शीतल कमल-कोमल,
त्रिविध ज्वाला हरण॥
—मीरां

भारतीय क्षितिज पर अनेक दीप्तिमान नक्षत्रों ने उदित होकर अपनी प्रकाश किरणें भारत भूमि पर विकीर्ण की हैं। इनमें से अनेक नक्षत्र लुप्त हो गये, काल के अनन्त गर्भ में समा गये परन्तु उनका आलोक आज तक भारतीयों को पथ प्रदर्शन करा रहा है। कृष्ण प्रिया मीरा भारतीय इतिहास के ऐसे ही ज्योतिष्मान् नक्षत्रों में से एक है।

निर्गुण और सगुण—हमारे भक्त कवियों ने जिस देवोपम वाणी को नवजीवन दिया वह दो प्रकार की थी—(१) सगुण उपासना—जिन्होंने ईश्वर या ब्रह्म को एक मूर्त रूप देकर उसके ध्यान ज्ञान का प्रचार किया। (२) निर्गुण उपासना—जिसमें ईश्वर को अमूर्त मानकर उसके सर्व-घट-घट-व्यापी अस्तित्व का अनुगमन किया गया। हमारे यहाँ सगुणोपासकों की दो शाखायें हैं—(१) राम भक्ति शाखा (२) कृष्ण भक्ति शाखा—राम भक्ति शाखा में तुलसी तथा कृष्ण भक्ति शाखा में सूर, मीरा आदि आते हैं। मीरां की उपासना में जो तन्मयता है वह कृष्ण भक्ति शाखा के किसी भी कवि में नहीं। सूर में मीरा की अपेक्षा कवित्व अधिक है। सूर भाव में ही तन्मय हो गये हैं, भाव उनमें तन्मय नहीं हो गया है। भाव तो तन्मय हो गया है मीरा में। वह पगली अपने प्रेम विह्वल हाथों में करताल लेकर, भाव निरत चरणों से ताल देकर, नृत्य करती हुई, गाती है—

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल,
मोहनी मूरत साँवरी सूरत।
नैना बने बिसाल,
बसो मेरे नैनन में नन्दलाल॥

अथवा—

मैं गिरधर रंगराती सैय्याँ, मैं गिरधर रंगराती,
पंचरंग चूनरि पहन सखी मैं झुरमुट खेलन जाती।
ओहि झुरमुट माँ मिल्यो सांवरो, खोल मिली तन गाती,
जिनका पिया परदेस बसत है लिख लिख भेजें पाती।
मोरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहुँ आती जाती,
मैं गिरधर रंगराती सैय्याँ, मैं गिरधर रंगराती।

वह अपने सङ्गीत की तन्मयता से, आकाश पाताल दोनों को एक साथ ही झनकारपूर्ण कर देती है। वह मानो ऊपर नीचे सर्वत्र, स्वरों में ही अपने सांवलिया को ही साकार कर देना चाहती है। मीरा के रूप में स्वयं उपासना ही इस धरा पर आई प्रतीत होती है।

मीरा के चित्त की वृत्तियाँ बचपन से ही भगवान की ओर झुकी हुई थीं। एक बार घर पर आये हुए साधु द्वारा दी हुई भगवान् की सुन्दर मूर्त्ति को ही नहलाने, चन्दन पुष्प चढ़ाने, भोग लगाने और आरती उतारने आदि में ही सारा दिन व्यतीत होने लगा। धीरे-धीरे वह स्वयं पद रचना भी करने लगी और स्वरचित्त पदों को मधुरवाणी में भगवान् के सम्मुख गाने लगी। दिन एक दूसरे से उलझते गये, और महीने सरक-सरक कर वर्ष बनाने लगे। मीरा विवाह योग्य हुई और उसका विवाह चितौड़ के सीसोदिया वंश में महाराणा सांगा के ज्येष्ठकुमार भोजराज के साथ सम्पन्न हुआ। मीरा ने इस अवसर पर अपने श्याम गिरधर लाल को पहले ही मण्डप में विराजमान कर लिया और भोजराज के साथ फेरा लेते समय श्री गिरधर-गोपालजी के साथ भी फेरे ले लिये। माता के पूछने पर मीरा ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—

माई म्हांने सुपने बरी गोपाल,
राती पीती चुनड़ी ओढ़ी, मेहदी हाथ रसाल,
कांई ओर को बरू भांवरी, म्हाँ के जग जंजाल।

सखियों के पूछने पर भी मीरा ने यही कहा कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे वर को के बहू जो जनमे और मर जाय।
वर बरिये गोपालजी, म्हारो चुड़लो अमर हो जाय॥

विवाह में बहुत सी धन राशि दिये जाने पर भी मीरा अप्रसन्न हुई माता ने जब मीरा से पूछा तो मीरा ने यही कहा कि—

दे री माई अब म्हाँ को गिरधरलाल,
प्यारे चरण की आन कहति हौं, और न दे मणिमाल,
नातो सगो परिवारो सारो, सुने लगे मानों काल,
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, छवि लखि भई निहाल॥

मीरा के सुसराल पहुँचने पर कुल के नियमानुसार गौरी पूजन करने को कहा गया लेकिन मीरा ने साफ इनकार कर दिया। सास और ननद ने मीरा को बहुत समझाया परन्तु वह नहीं मानी। उसने कहा—

ना म्हे पूजाँ गौर ज्याजी, ना पूजाँ अन्देव,
म्हे पूजाँ रणछोड़जी सासु थे कई जाणों भेव।

उसका सुहाग तो अचल था, उसे अपने सुहाग को बनाये रखने के लिए किसी भी प्रकार के गौरी पूजन की आवश्यकता नहीं थी।

मीरा की इस भक्तिभावना को देखकर पहले तो भोजराज भी अप्रसन्न हुए पर अन्त में उन्हें भी इसका मर्म मालूम हुआ और उन्होंने मीरा के लिए अलग रणछोड़जी का मन्दिर बनवा दिया। भोजराज मीरा का पद रचना से अति प्रसन्न होने लगे, मीरा भी पति को नये-नये पदों की रचना कर सुनाती, कुमार का हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता।

मीरा अपना सारा समय भजन कीर्तन में ही बिताती थी। वह कभी विरह से व्याकुल होकर रोने लगती, कभी ध्यान में साक्षात्कार कर हँसने लगती, कभी प्रेम से नृत्य करती, खाने पीने की सुध नहीं रहती, कई दिन बिना खाये पीये ही प्रेम समाधि में पड़ी रहती; क्योंकि मीरा से तो हरि के बिना रहा नहीं जाता था—

"हेली म्हाँ स्यूँ हरि बिना रह्यो न जाय।
सासू लड़े, ननद म्हारी खीजे, देवर रहया रिसाय॥
चौकी मेलो म्हारे सजनी, जाला थौ न जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीति म्हारी, कैसे रहे लुकाय॥
मीरा के प्रभु गिरधर के बिन दूजो न आवे दाय।"

कोई समझाने आता तो उससे भी कृष्ण प्रेम की ही बातें करती। शरीर दुर्बल हो गया। घरवालों ने समझा, बीमार हो गई है। वैद्य बुलाये गये पर मीरा ने यही कहा—

हे री मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणै कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोणा होय॥
गगन मण्डल पर सेज पिया की, किस बिध मिलणा होय।
मीरां की प्रभु पीर मिटे जब, बैद साँमलिया होय॥

इस अलौकिक प्रेम की दवा इन वैद्यों के पास नहीं थीं। विरह कातरा मीरा ने श्याम वियोग में कहा—

काढ़ कलेजो मैं धरू रे, कागा तू ले जाय।
जिण देसां म्हारो पीव बसे रे, उण देखत तू खाय॥

कैसा उन्माद है, कितनी उत्कण्ठा है, कितनी सुन्दर व्यञ्जना है, भगवन् इसी प्रकार भक्तों के हाथ बिक जाते हैं और मीरा ने इसी मूल्य पर इनको खरीदा था तभी तो—

माँई री म्हे तो लियो गोविन्दो मोल।
कोई कहे छाने, कोई कहे चोड़े, लियो री बाजंता ढोल॥
कोई कहे मूंगो, कोई कहे सूंघो, लियो री तराजू तोल॥
मीरा के प्रभु रदसण दी ज्यो, पुरब जनम रो कोल॥

कालान्तर में कुमार भोजराज का देहान्त होने पर विक्रमादित्य सिंहासन पर आसीन हुए। मीरां भगवत्प्रेम के कारण वैधव्य के दुख से दुखित नहीं हुई। साधु महात्माओं का सङ्ग बढ़ता गया, मीरा की भक्ति का प्रवाह प्रबल हो गया। यह सब विक्रमादित्य को बहुत अखरा, मीरा की इस कार्य प्रणाली को देख कर वे क्रोधित हुए। मीरा को कार्य बन्द कर देने की चेतावनी दी गई पर उसका मन तो पूर्ण रूप से कृष्ण पर आसक्त होगया था। अन्त में अत्यन्त क्रुद्ध होकर मीरा को मारने के लिए राणा ने उसके पास विष का प्याला भेजा परन्तु भगवत्कृपा से उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। वह तो हरि के गुण गाने में ही मग्न रही—

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दिया जाय॥
न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, इमरत दिया बनाय॥
न्हाय धोय जब पीवन लागी, होगई अमर अंचाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूली सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय ॥
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय ॥

मीरा का प्रेम तो अनन्य होता गया, उसकी प्रेम-साधना में सरसता, स्वाभाविकता एवं हृदयग्राहिता है। मीरा की अभिव्यक्ति कोमल, मधुर तथा प्रसाद-गुण-युक्त है। इसी कारण उसकी प्रेमवाणी कलाविहीन होने पर भी प्रेमियों के हृदय पर जादू का सा प्रभाव डालती है।

मीरा की विरहवाणी में वासनात्मक झलक नहीं आई है उसमें प्रेमोद्गार का निर्मल स्रोत है। मीरा के विरह की पीर में कितनी मार्मिकता है देखिए—

परम सनेही राम की नित औलूँ रे आवै।
राम हमारे हम हैं राम के हरि बिन कछू न सुहावै ॥
आवण कह गये अजहुँ न आये जिवड़ो अति उकलावै।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै ॥

वह क्षण-क्षण में सिसक-सिसक कर रोया करती और भावोन्मत्त हो कर गाने लगती—

दरस बिन दूखण लागे नैन।
सब्द सुनत मेरी छतियाँ काँपै मीठे लागै बैण।
एक टकटकी पथ निहारूँ, भई छमासी रैण।
मीरां के प्रभु कबरे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण।

और भी—

आऊँ आऊँ कह गया जी, कर गया कौल अनेक।
गिणताँ गिणताँ घिस गई जी, म्हाँरी आँगलिया री रेख ॥

अथवा—

राम नाम बिन नहीं आवड़ै, हिवड़ो गोला खाय।
भोजनिया नहीं भावै म्हाँने, नींदड़ली नहिं आय।

मीरा के पदों में उसकी आत्मा की भाषा है, जो आँसुओं से गीली है, उससे आँसुओं से सींच-सींच कर ही प्रेम की बेल बोई है—और आँसुओं के जल से ही सींच सींच कर उसे बड़ा भी किया है—"अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम बेलि बोई, अब तो बेलि फैल गई, आनन्द फल होई।" मीरा के इस प्रकार विरह में—

हरि गयो मनमोहन फाँसी।
आंबा की डालि कोइल इक बोलै,
मेरी मरण अरु जग केरी हाँसी।

अथवा—

पिया बिन रह्यौ न जाई।
निस दिन जोऊँ बाट पिया की, कबर मिलोगे आई।

भक्त भगवान को वाध्य कर लेते हैं। मीरा के निकट वाध्य हो कर अन्त में भगवान को आना पड़ा। उस मनोहर छवि को निरख मीरा मोहित होगई, नाच नाच कर गाने लगी—

आज मैं देख्यौ गिरधारी।
सुन्दर बदन मदन की शोभा चितवन अनियारी।
माधुरी मूरति वह प्यारी,
बसि रहे निसदिन हिरदै बिच टरै नहीं टारी ॥
बाहि पर तन मन है वारी ॥

उस रूपराशि को देखकर वह प्रसन्न हो गई और गाती फिरती रही—

मेरे तो गिरधर गुपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ॥

मीरा के पदों में एक ही भाव की बार बार पुनरुक्ति मिलती है, जिन्हें केवल काव्य की दृष्टि से देखने पर तबियत ऊब सी जाती है पर यह मानना चाहिए कि वह उपासिका पहले है कवियित्री बाद में। अपनी उपासना की धुन में, अपनी अर्चना के एक-एक शब्द में, अपने हृदय को बार बार रस मग्न कर देना चाहती थी इसलिए उसको बार-बार एक-एक भाव को दुहरा कर भी उसके हृदय और श्रवण को तृप्ति नहीं होती थी।

वह राजपूताने की मरुस्थल में स्रोतस्विनी के रूप में प्रकट हुई थी जिसने एक ओर तो मरुप्रदेश को अपनी प्रेम-धारा से सजल-सरस कर दिया और दूसरी ओर अखिल देश के नारी हृदय का भगवान के चरण कमलों में अनन्य प्रतिनिधित्व किया।

मीरां की कविता प्रमुखतः राजस्थानी भाषा में है, राजस्थानी के साथ-साथ उसमें ब्रज-भाषा तथा गुजराती भाषा का भी पर्याप्त पुट है। इस प्रकार मीरां की भाषा

(शेष पृष्ठ १५३ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"स्वैरविचार" और माडखोलकर

श्री अनिल कुमार

[विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं के साहित्य से हिन्दी वालों का परिचय बढ़ता जाय इस उद्देश्य से अब हम प्रायः प्रत्येक अङ्क में कम से कम एक लेख किसी दूसरी भाषा से सम्बन्धित छापने का निश्चय कर चुके हैं। प्रस्तुत लेख मराठी भाषा की एक प्रसिद्ध पुस्तक के सम्बन्ध में है। इसके लेखक श्री माडखोलकर मराठी के विख्यात लेखक हैं। 'स्वैर-विचार' की महत्ता समझ कर ही इसे कितनी ही परीक्षाओं में स्थान मिला है। प्रस्तुत लेख में उसका संक्षिप्त परिचय मिलेगा।]

—सम्पादक

"स्वैर-विचार" में मराठी साहित्य के उपन्यासकार एवं समालोचक गजानन त्र्यंबक माडखोलकर के फुटकर निबन्धों, लेखों तथा पत्रों का संग्रह है। पुस्तक के आरम्भ में उद्धृत—'असती हे स्वैर-विचार की तरह उक्त पुस्तक में लेखक ने विषय-चयन में भी 'स्वैर' अर्थात् स्वच्छन्द वृत्ति से काम लिया है। विषय किसी एक धारा को लेकर नहीं चुने हैं न एक विशेष क्रम का ही इसमें निर्वाह गोचर होता है; तब भी इस विविधता में लेखक की लेखन शैली का एकात्म रूप देख पड़ता है। कथन-पद्धति, तर्क-संगति एवं विवेचन-शैली की एकता विविधता में भी स्पष्ट देखी जाती है। लेखक ने ऐसे निबन्धों को संकलित किया है कि, जिससे उसके साहित्यिक विचार, उसकी साहित्यिक भूमिका तथा रुचिविशेष का इनके अन्तर्गत सन्निवेश हो गया है। आधुनिक मराठी नाटककार श्री रांगणेकर ने मराठी के ख्यातिप्राप्त साहित्यकों की जानकारी प्राप्त कराने वाली पुस्तक तैयार कराने के विचार से एक सर्व सामान्य प्रश्नमाला तैयार की थी। इसी प्रश्न माला को दिये गये उत्तरों से पुस्तक का प्रारम्भ हुआ है। लेखक अपने सम्बन्ध बड़ी निर्भयता से कह सकता है—"लेखक हों या पेंढ्यां न्हाव्याचा, धोब्याचा, खासावल वाल्या चा किंवा इतर कोणताही धंदा मनुष्या ने करावा। पण, स्वतःच्या महत्वा विषयीं भलत्याच कल्पना डोक्यात उत्पन्न करणारा हा प्रतिष्ठित पण वांझोटा धन्दा मात्र मुलींच करू नये।..... उदरनिर्वाहाचें दुसरें कोणते ही साधन उपलब्ध नसल्यासुलेंच खरोखरी मी या वंशांत पडलों।" सन् १९२८ में लेखक ने इन उद्गारों में अपनी तत्कालीन परिस्थिति जन्य विचार धारा व्यक्त की है।

हम पुस्तक के लेखों में इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—

१—अपने सम्बन्ध में।

२—राजनीति और नेतागण।

३—सामाजिक लेख।

४—साहित्य और साहित्य के विविध अङ्ग।

५—देश दर्शन (अन्तिम ५ पत्र)।

अपने बारे में लेखक ने दो प्रकार से लिखा है। अपनी रचनाओं के बारे में तथा मराठी साहित्य के सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत विचार इस क्षेत्र के लेखों का विषय है। 'माझे कादम्बरी लेखन, मी आणि माझे लेखन, माझे आवडते लेखक, मी न वाचलेले काही, ग्रन्थकार आदि लेख प्रत्यक्ष रूप से लेखक के साहित्य, जीवन और विचारों पर प्रकाश डालते हैं। अपने प्रथम लेख के आरम्भ में माडखोलकर ने लिखा है—"कवि, कथा लेखक किंवा नाटककार या पैकी मी कांहींच नाहीं। मी फक्त टीका करणारा, मराठे वाङ्मय आणि वाचक वर्ग यांची गाँठ घालून देणारा मधलोषा (मध्यस्थ) आहे!"

लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि वह केवल साहित्य समीक्षक है। यद्यपि साहित्य क्षेत्र में उपन्यासकार के रूप में लेखक ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है और केवल ख्याति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं, उसने उपन्यासों में एक विशेष प्रवृत्ति और विषय का अभिनिवेश भी किया है किन्तु यदि लेखक की समस्त साहित्यिक शैली का विश्लेषण किया जाय तो हमें उसकी गहराई में विवेचक या समालोचक की आत्मा के ही सर्वत्र दर्शन होंगे। केवल (एक मात्र) भावना का अतिरेक, निराधारा कल्पना, या बौद्धिक अतिरेक और रूक्ष तर्कजाल का उसकी रचना में अभाव है। सौम्य एवं स्वाभाविक परिमाण में लेखक में उपर्युक्त गुणों में से दो से अधिक उसकी प्रत्येक रचना में हम पाते हैं। कभी लेखक अपने विचारों का प्रभाव भाषा और तर्क के समन्वय से पाठक पर डालता है पर भावना की आर्द्रता के कारण ही वह पाठक के मर्म को स्पर्श भी कर सकता है। बौद्धिक और रूक्ष विषय लेखक ने सबल तर्कों तथा विवेकपूर्ण भावुकता से सरस और मर्मस्पर्शी बना दिये हैं जैसे—लैंगिकनीति सम्बन्धी तीन लेख। इसी तरह रसातिरेक के निर्माण में संवेदन-सुलभ विषय, बौद्धिक-तारतम्य और समीक्षण सन्तुलन से पठनीय एवं मनन के योग्य बन सके हैं जैसे—नयन चुम्बन, ओष्ठ चुम्बन, अङ्गराज और अनुराग आदि। लेखक व्यक्तिगत लेखों में पूर्ण भावुक कभी नहीं हुआ है यहीं उसके आलोचक की आत्मा का आभास होता है।

अपने राजनीतिक विचारों में, लेखक के उक्त विषय के निबन्धों से एक विशेष दृष्टिकोण का भास होता है। तिलक और सावरकर इन दो महाराष्ट्रीय देश के प्रभावी नेताओं के सम्बन्ध में तथा साम्यवादी क्रान्ति के बारे में लेखक ने अपने निजी विचारों और तर्कों को अधिक महत्व दिया है। विषय की अभिव्यक्ति में यद्यपि लेखक सफल है पर यह महसूस हुए बिना नहीं रहता कि लेखक दूसरे पक्ष के सत्य को ढाँकता जा रहा है। ऐसी स्थिति में लेखक विपक्ष की निर्बलता को चुन-चुन कर उन पर प्रहार करता है उसके सबल अङ्गों को सर्वथा भुला देता है। साम्यवादी और समाजवादी विचारधारा पर लेखक ने जहाँ भी अपने विचार व्यक्त किये हैं, उसकी यह वृत्ति स्पष्ट देख पड़ती है।

'लौङ्गिक नीति' के विवेचन में लेखक भारत को सामने रख कर सोचता रहा इसी से उक्त निबन्ध में वह देश, काल के अनुकूल निर्णय देते हुये विषय का उपयुक्त समारोप कर सका। संकीर्ण, साम्प्रदायिक या रूढ़िग्रस्त भावनाओं का वह तिरस्कार करता है। समाज के इस विषय पर जिसमें नारी और उसे प्राप्त करने का सामाजिक साधन 'विवाह' पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है—लेखक ने संतुलित चर्चा की है। इसी सन्तुलन का परिणाम है कि विषय वीभत्स होने की अपेक्षा शास्त्रीय हो सका है।

उर्वशी से साहित्य विषयक निबन्धों का क्रम आरम्भ हो जाता है। उर्वशी की प्राचीन कथा के साथ ही इस पात्र का साहित्यक क्रमिक विकास मनोरम भाषा में लिखा है। उसके करुण जीवन को मर्मस्पर्शी व्यङ्ग्यों द्वारा श्रद्धा एवं करुणा का विषय बना दिया है।

चुम्बन सम्बन्धी दोनों लेखों का मूल आधार लेखक की रचनाओं में उक्त विषय का प्रादुर्भाव है। अपने पक्ष में माडखोलकर ने अनेक प्राचीन लेखकों की शरण ली है। नेत्र चुम्बन को लेखक साहित्यिक और ओष्ठ चुम्बन को व्यक्तिगत महत्व का पर्यायवाची मानता है। पश्चिमी साहित्य के उद्धरणों द्वारा लेखक अपने विचारों को पुष्ट करता है, यही नहीं अपनी विवेचित सत्य मनवाता भी है। 'अङ्गराग आदि अनुराग' में अलक-सौन्दर्य पर भावुक दृष्टिकोण से एक सरस निबन्ध लिखा गया है। अभिजात, प्रतिभा आदि लेख साहित्य-क्षेत्र में विशेष प्रचलित शब्दों की चर्चा मात्र हैं। ये लेख दो प्रकार के विरोधी विचारों का सार मात्र हैं।

'भाव-वाणी' के सम्बन्ध रूप में लेखक ने प्रत्येक भाषा के साहित्य में प्रतिष्ठा प्राप्त मर्मस्पर्शी उन कवियों पर प्रकाश डाला है, जो जन भाषा से साहित्य में सर्वकालीन जीवन की शक्ति सञ्चित करते हैं। मराठी-सन्त सगुणवादी तुकाराम और निर्गुणवादी ज्ञानेश्वर भाषा के मर्मी कवि थे। (हमारे यहाँ कबीर और तुलसीदास ने उत्तर भारत की जनता को यही मर्म की वाणी सुनाने का कार्य किया था।)

कलाहीच कसोटी, वाङ्मय आणि नीति, वाङ्मयांतील प्रतिबिम्बे और सौन्दर्य सुखद की दुःखद इन लेखों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य में विद्यमान विचार-धारा, मत-मतान्तर, रूढ़ि और परम्पराओं पर व्यंग्य के कोड़े फटकारे हैं। कला पक्ष के साथ लेखक की सहानुभूति है। वह प्रत्येक रचना का मूल्य कला की कसौटी पर ही निर्धारित करना योग्य मानता है। यही बात नीति और सौंदर्य सम्बन्धी विचारों की भी है। नीति का बन्धन, आलोचक ललित साहित्य की समीक्षा करते हुए विशेष रूप से स्वीकार करता है। बल्कि नीति को प्रधान स्थान देकर ही भारत में आलोचक वर्ग लेखक की विवेचना करता है। इस वर्ग को अनेक तर्कों एवं उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए लेखक ने फटकारा है। परम्परा से परिवर्तित नैतिक कल्पना और देश काल के अनुसार विभिन्न नैतिक मापदण्डों की विविधता और साहित्य का देश काल को लाँघने वाला स्थैर्य दोनों का परस्पर सम्बन्ध कैसे हो सकता है? नीति युगों के बाद अपना रूप और आवरण नया धारण करती है जब कि साहित्य का स्रोत चिरन्तन और उसकी मर्यादा सर्वकालीन स्थैर्य प्राप्त करने वाली होती है। तब नीति की गाड़ी पर लदा हुआ साहित्य कैसे विकासशील होगा? जीवन के आसपास मँडराने वाले पात्रों को वर्ग विशेष का प्रतिनिधि मान कर ललित साहित्य में लेखक उन्हें चित्रित करता है, व्यक्ति विशेष की आलोचना या निन्दा करने के उद्देश्य से वह ऐसा कदापि नहीं करता। लेखक ने अपने इसी मत का विवेचन 'वाङ्मयांतील प्रतिबिम्बे' नामक लेख में किया है।

अन्त में अपनी नागपुर से जगन्नाथपुरी तथा जगन्नाथपुरी से कलकत्ता यात्रा का भौगोलिक, धार्मिक और सांस्कृतिक वर्णन इन पत्रों में हुआ है। लेखक ने पुरी का मन्दिर और कलकत्ता का दक्षिणेश्वर, काली मन्दिर और विवेकानन्द के आश्रम आदि स्थान देखने के लिए ही इन प्रदेशों की यात्रा की थी। हमारी धार्मिक व्यवस्था के उदात्त और विकृत स्वरूप का वर्णन सरल और सरस भाषा में इन पत्रों में हुआ है।

सर्वत्र लेखक की भाषा में स्वाभाविक प्रवाह, कल्पना, माधुर्य, तर्क और विषय-संगत उद्धरणों का संयोग उचित परिमाण में हुआ है। विषय का मण्डन लेखक शास्त्रीय और साहित्यिक (पंडिताऊ) भाषा में करता है पर किसी तर्क, विषय या परम्परा के खण्डन में वह सीधे प्रचलित लोक-भाषा पर उतर आता है, तथा बोलचाल में प्रचलित सामान्य पर तीक्ष्ण शब्दों के प्रयोग से वह व्यङ्ग को मार्मिक बना देता है। विषय का मण्डन समाप्त करते हुए स्वीकारात्मक प्रश्न-वाक्य लिखने की लेखक को आदत पड़ गई है। कहीं-कहीं इसका अतिरेक विशोभनीय और नीरस भी लगता है पर लेखक की यह निजी आदत सी मालूम होती है। ऐसे वाक्य वास्तव में नकारात्मक होते हैं पर अन्तिम शब्द जो प्रश्नवाचक होता है, वाक्य को स्वीकारात्मक बना देता है। जैसे—"टिलक आज हयात असते तर ते फासिस्ट झाले असते, असे म्हणणें अन्यायाचें होणार नाहीं का यो" अथवा—"नव्या नीतीला स्वैराचार ठर विण्याची घाई करणाऱ्या उतावलया टीकाकारांना एलिसच्या या मार्मिक उद्गारापासून काहींच बोध होता येणार नाहीं काय? कई बार विषय के बारे में निश्चित निर्णित बात कहीं शिथिल या पक्की न होने पर भी ऐसे वाक्यों से लेखक समारोप करता है। जैसे—"....."मग त्यांची स्तुति एरवी किती कां कलापूर्ण असेना, असम्भावित पणाचा आरोप हो तो। हा न्याय म्हणावा कि अन्याय?" या "....."मग तिची दैवी शक्ति गणना कशी करावी?" यद्यपि इन दोनों प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक ही है पर यह लेखक की विषय की समाप्ति करने की एक विशेष पद्धति मात्र है।

अपने ग्राहकों से—

साहित्य-सन्देश के ग्राहक महानुभावों से निवेदन है कि कार्यालय से किसी प्रकार की भी लिखा-पढ़ी करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें। —व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

ज्योति-विहग—लेखक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन। पृ० ४५८, मूल्य ५)

पण्डित शान्तिप्रिय द्विवेदी साहित्य के शान्त और एकान्त आराधक हैं। उन्होंने अँग्रेजी के मायाजाल में पड़े बिना स्वयं अपने ही चिन्तन के आधार पर अपनी एक आलोचना शैली का निर्माण किया है जिसमें तथ्य कथन के साथ कवित्व भी है। इन दोनों में किस की मात्रा अधिक है यह कहना कठिन है। ज्योति-विहग उनकी नवीनतम कृति है। ज्योति-विहग एक कवित्वपूर्ण प्रतीकात्मक शीर्षक है जो हिन्दी के 'सुकुमार कवि' पन्तजी के लिए ठीक बैठता। उनकी कविता में ज्योति (ज्ञान और अन्तर्दर्शन) के साथ विहग का सा स्वच्छन्दतामय वायवी सौन्दर्य भी है जो छायावाद की विशेषता है।

जैसा कि लेखक ने कहा है उसने व्यक्ति को नहीं देखा है कवि को देखा है। पुस्तक में लेखक का ध्यान पन्तजी के कवित्व पर ही रहा है किन्तु वास्तव में सच्चे कवि के व्यक्तित्व में (विशेषकर पन्तजी में) और कवित्व में कोई अन्तर नहीं रहता है। द्विवेदीजी ने आधुनिक काव्य को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रख कर देखा है और बतलाया है कि छायावाद में व्रजभाषा की कोमलता है यद्यपि द्विवेदी युग के खड़ी बोली के समर्थकों तथा व्रजभाषा-भाषियों दोनों ने ही छायावाद का विरोध किया था। छायावाद में व्रजभाषा की कोमलता अवश्य है किन्तु रूढ़िबद्धता नहीं है।

लेखक ने अपने आलोच्य कवि का विकास-क्रम सुन्दरं शिवं और सत्यं का रखा है। यह बात किसी अंश में तो ठीक है पल्लव की कविताएँ सुन्दरं की द्योतक हैं, ग्राम्या आदि प्रगतिवाद से प्रभावित कविताएँ शिवं की प्रतीक हैं और वर्त्तमान स्वर्ण साहित्य सत्यं का प्रचारक है किन्तु जैसा आलोचक ने स्वयं भी स्वीकार किया है इन तीनों में कोई भेद नहीं है। रहस्यवाद का केवल सत्य के साथ तादात्म्य करना उसको विज्ञान और दर्शन के धरातल पर ले आना है। पन्तजी का सत्य और शिव दोनों ही सुन्दरम् के आकार में रखे गये हैं।

पुस्तक में बड़ी सहृदयता के साथ कवि का अध्ययन किया गया है, व्यापक रूप से भी उनकी अन्तर्दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है और विशेष-विशेष कृतियों का भावात्मक और कलात्मक दोनों ही दृष्टियों से अध्ययन किया है और इस अध्ययन में अपने मत को कवि की कृतियों से पर्याप्त उदाहरण देकर पुष्ट किया है। कवि के जीवन लक्ष्य को उन्होंने कवि के ही शब्दों में ठीक ही व्यक्त किया है।

भू पर जन सत्य हो विकसित,
अन्तर्जीवन से सम्बन्धित।
शिल्पी सी चेतना जागरित,
करे नव्य मानव मन निर्मित।

पन्तजी के अध्ययन के लिए यह पुस्तक विशेषरूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

—गुलाबराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यकालीन प्रेम-साधना—ले०—परशुराम चतुर्वेदी एम० ए०, एल० एल० बी०, प्रकाशक—साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद। पृष्ठ २००, मूल्य ३)

यह पुस्तक परशुराम चतुर्वेदीजी के दस निबन्धों का संग्रह है: १ तमिल प्रान्त के आड्वार भक्त कवि, २ वैष्णवों का सहजिया सम्प्रदाय, ३ बादलों की प्रेम साधना, ४ मीराँबाई की प्रेम-साधना, ५ मीराँबाई की भक्ति का स्वरूप, ६ जायसी और प्रेमतत्व, ७ हित हरिवंश के 'हित चौरासी' पद, ८ बन्हदास की रूप मञ्जरी, ९ प्रेमी भक्त 'रसखान', और १० मध्यकालीन प्रेम-साधना। यह तो स्पष्ट ही है कि प्रेम-साधना का सम्बन्ध प्रेमा-भक्ति से है, जो मध्यकाल में वैष्णव सम्प्रदाय का मुख्य आधार थी। इन निबन्धों में इसी प्रेमाभक्ति के विविध रूपों का विविध सम्प्रदायों की दृष्टि से स्पष्टीकरण किया है। इसके लिए उन्होंने कुछ विशिष्ट भक्त महाकवियों को चुनकर उनमें प्रेमाभक्ति का दिग्दर्शन कराया है। अन्तिम निबन्ध में प्रेम-साधना की परम्परा का ऐतिहासिक दिग्दर्शन कराया गया है। पुस्तक विशेषतः विवरणात्मक और व्याख्यात्मक है। लेखक ने विषय का तन्मयता से प्रतिपादन किया है, किन्तु विद्वता भी रमी हुई है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य—ले०—डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट्०, अध्यापक प्रयाग विश्व विद्यालय, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ १७४, मूल्य २॥)

इस पुस्तक में नाम के अनुकूल दो भाग हैं। पहले में भारत की भाषाएँ तथा हिन्दी का वृत्त है, संक्षिप्त और प्रायः सम्पूर्ण। इसमें लिपि का भी एक पृष्ठ में ऐतिहासिक विवरण दिया गया है। दूसरे भाग में 'हिन्दी साहित्य' का इतिहास है, इसे चार कालों में विभाजित किया गया है। वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिककाल। आधुनिककाल के दो भाग किये गये हैं एक गद्य सम्बन्धी, दूसरा पद्य सम्बन्धी। पुस्तक बहुत संक्षेप में हिन्दी भाषा और साहित्य का एक व्यवस्थित विहंगावलोकन प्रस्तुत करती है। इसमें संक्षेप में हिन्दी-साहित्य के इतिहास का आज तक का अध्ययन लेखक ने दिया है।

दक्खिनी हिन्दी—लेखक—डा० बाबूराम सक्सेना, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर-प्रदेश, इलाहाबाद। पृष्ठ ११२ + ३३, मूल्य ३)

आज जिसे 'हिन्दी' कहते हैं, और जो मूल में खड़ी-बोली है, उसका आरम्भ में एक रूप 'दखिनी हिन्दी' था। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में इसके तीन नाम थे। हिन्दवी, हिन्दी और दाक्खिनी। यह हिन्दी इसलिए दक्खिनी कहलायी कि इसे दक्खिन के नवाबों ने बहुत पाला-पोसा। दक्खिनी हिन्दी की इस समृद्धि में मुसलमानों का ही विशेष योग था, और इनकी पुस्तकें प्रायः फारसी लिपि में लिखी हुई हैं। दक्खिनी के पहले ग्रन्थकार ख्वाजा बकातबाज गेसूदराज मुहम्मद हुसैनी (१३१८-१४२२ ई०) हैं। कई शताब्दियों तक दक्षिण के मुसलमान साहित्यिक हिन्दी के सेवा में प्रवृत्त रहे और पर्याप्त-मात्रा में विशद साहित्य इन्होंने प्रस्तुत किया। प्रसिद्ध विद्वान डा० सक्सेना ने इसी भाषा और इसके साहित्य का विद्वत्तापूर्ण संक्षिप्त परिचय इस पुस्तक के द्वारा प्रस्तुत किया है। ये व्याख्यानों के रूप में प्रस्तुत हुआ, जिसे पुस्तक का रूप दे दिया गया है। पहला व्याख्यान प्रवेशक है—इसमें दक्खिनी हिन्दी की परिभाषा प्रस्तुत की गयी हैं। दक्खिनी हिन्दी की पृष्ठ-भूमि और इतिहास भी दिया गया है। दूसरे अध्याय में आधुनिक खड़ी बोली से तुलना करते हुए दखिनी का व्याकरण परक स्वरूप निर्धारित किया गया है। तीसरे में शैली तथा साहित्य पर विचार किया गया है। इसमें शब्दावली पर विशद विवेचन है। कवि परम्पराओं के आधार पर लेखक ने बताया है कि वली तक दखिनी हिन्दी काव्य भारतीय परम्परा का था, किन्तु जब वली दिल्ली जाकर लौटे तो उन पर भी उत्तर भारत की दूषित फारसी परम्परा का प्रभाव पड़ा—और दखिनी हिन्दी का रूप उर्दू की ओर अग्रसर होने लगा। अन्त में साहित्य के गद्य-पद्य के नमूने परिशेष में दिये गये हैं। और अनुक्रमणी भी है। पुस्तक बहुत उपयोगी है। —सत्येन्द्र

मृगनयनी (समीक्षा)—लेखक डा० लक्ष्मीनारायण टंडन एम० ए०। प्रकाशक—हिन्दी साहित्य भंडार लखनऊ। पृष्ठ १२८, मूल्य १॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगनयनी (अध्ययन)—लेखक–श्री शान्ति-स्वरूप गौड़, प्रकाशक–रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा। पृष्ठ १४०, मूल्य १॥)

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास 'मृगनयनी' कई परीक्षाओं में पाठ्य ग्रथ हो गया है। इसलिए उस पर आलोचना और अध्ययन की कई पुस्तकें निकल गई हैं और शायद अभी दो चार और निकलें। इन दोनों पुस्तकों में विषय वर्णन प्रायः एक-सा है—पहली में विषय कुछ अधिक है। परन्तु लिखने की शैली में दोनों में काफी भिन्नता है। श्री टंडन ने वस्तु का विवेचन करने में जहाँ लाघव का प्रयोग किया है वहाँ श्री गौड़ ने कुछ विस्तार से काम लिया है। उदाहरण दोनों ने दिये हैं। इस पुस्तक पर अभी एक और अच्छी आलोचना पुस्तक की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

अच्छी हिन्दी—ले०–श्री किशोरीदास बाजपेयी शास्त्री, प्रकाशक–हिमालय एजेन्सी कनखल। पृष्ठ १५७, मूल्य २॥)

बाजपेयीजी ने हिन्दी के व्याकरण पर शुद्ध और अच्छी हिन्दी लिखने पर बहुत जोर दिया है और कई पुस्तकें लिख कर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। उनकी कुछ बातें आलोचना और विवाद का विषय भी बनी हैं—पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके प्रयास से हिन्दी को सच-मुच लाभ हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने सैकड़ों उदाहरण दे कर हिन्दी के विद्यार्थियों को अच्छी हिन्दी लिखने की शिक्षा दी है। आशा है विद्यार्थीगण, विशेष रूप से अहिन्दी प्रान्तवासी हिन्दी भक्त इस पुस्तक से पर्याप्त लाभ उठावेंगे।

नाटक

रजत-रश्मि—लेखक–डा० रामकुमार वर्मा, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस। पृ० १७५, मूल्य २॥)

यह डा० रामकुमार वर्मा के पाँच एकांङ्कियों का संग्रह है। पाँचों ऐतिहासिक एकांकी हैं। 'प्रतिशोध' का सम्बन्ध संस्कृत के महाकवि 'भारवि' से है। वात्सल्य और कर्तव्य के संघर्ष की अन्तर्भावना से यह जगमगा रहा है। भारवि पिता की भर्त्सना से विकल पितृवध के लिए सन्नद्ध अन्त में श्रद्धा से पिता के समक्ष नत हुआ और अपने अपराध का दण्ड माँगा। 'तैमूर की हार' वात्सल्य और वीरता के भावों की उदात्त कहानी है। एक बालक बलकरन ने कैसी निर्भीकता से तैमूरलङ्ग का सामना किया, उसे युद्ध के लिए ललकारा, और अन्त में तैमूर के हृदय में कोमलभाव जगे, उसने उस बालक की आज्ञा मान कर उसके गाँव की लूट-मार नहीं की। 'दुर्गावती' में गढ़ामांडला की महारानी दुर्गावती उनके पुत्र वीरनारायण और दीवान धारासिंह के शौर्य और कौशल का चित्रण है। महेन्द्रमत के बहाने नबाब आसफखाँ के दूत हैदरअली ने जो षडयन्त्र रचा उसका भण्डाफोड़ और देश की रक्षा का भाव इसमें चित्रित है। 'औरङ्गजेब की आखिरी रात' करुणा से पूर्ण है, औरङ्गजेब को मरते समय जो पश्चाताप हुआ और उसे जो प्रकाश मिला, उसका सजीव चित्रण है। उन पत्रों का भी उल्लेख है जो उसने अपने पुत्रों को लिखाये थे। 'कलङ्क रेखा' में उदयपुर के महाराणा की पुत्री कृष्णकुमारी को विष देने की विषादपूर्ण कहानी एकाङ्की के रूप में प्रस्तुत की गयी है। डा० वर्मा के एकाङ्की 'कला' के जड़े हुए नगीने होते हैं और उसमें उदार उदात्त भावनाओं की जगमगाहट होती है। प्रत्येक एकाङ्की ऊँची मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत है पर सभी की पृष्ठ-भूमि भारतीय संस्कृति है। ये सभी नाटक 'आकाशवाणी' पर उतारे जा चुके हैं, अतः ध्वनि-नाटकों के भी श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

युग सन्देश (सामाजिक नाटक)—लेखक–श्री मेदिनी प्रसाद 'आर्य'। प्रकाशक–श्री मेदिनी प्रसाद 'आर्य आनन्द भवन, जिनेदपुर, पो० चाँदपुरा (बाया बेगूसराय) जिला मुंगेर। पृष्ठ ९०, मूल्य १)

युग संदेश में नाटककार ने एक दुर्वृत्त राजा को सुमार्ग पर लाने की यथावस्तु की कल्पना की है। वस्तु में अस्वाभाविकता और शैथिल्य है। नाटककार को ऊँचे कलात्मक नाटकों और उनकी कला का अध्ययन करके अपनी कला को और परिमार्जित करने की अपेक्षा है।

कोणार्क—लेखक–श्री जगदीशचन्द्र माथुर, प्रकाशक तथा विक्रेता–भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। पृष्ठ १७१, मूल्य ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोणार्क श्री जगदीशचन्द्र माथुर की नवीन नाटक-कृति है। माथुरजी के नाटकों की ओजस्विनी कला से हिन्दी के पाठक सभी परिचित हैं। उनकी इस नवीन कृति में पहली दृष्टि में ही तीन विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। एक तो रङ्गमञ्च के निर्देश सचित्र हैं, चित्र द्वारा रङ्गमञ्च का पूर्ण विधान स्पष्ट किया गया है। दूसरे दो परिशिष्ट हैं, जिनमें से पहले में निर्देशक और अभिनेताओं के लिए संकेत हैं, दूसरे में हिन्दी रङ्गमञ्च और नाटक पर नाटककार ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। तीसरी विशेषता है 'उपक्रम' और 'उपसंहार' का प्रयोग।

"उपक्रम और उपसंहार मेरे नये प्रयोग हैं", लेखक ने बताया है "जिनमें आप संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना और पाश्चात्य नाटकों के 'प्रोलौग' और 'एपिलौग' एवं कोरस की झलक पायेंगे।"

इस दृष्टि से 'उपक्रम' में कोणार्क नाटक के पूर्व की कथा का संक्षिप्त निर्देश है—कोणार्क का सूर्य मंदिर उड़ीसा प्रदेश के परम पराक्रमी महाराज नरसिंहदेव के मुख्य स्थापित महाशिल्पी विशु ने बना दिया, सूर्य प्रतिमा उसमें अधर स्थापित है, केवल शिखर बनना शेष है। इससे आगे नाटक आरम्भ होता है। नाटक तीन अङ्कों में है—पहले अङ्क में कोणार्क के शिखर का निर्माण, और उस मन्दिर की कला की मूल प्रेरणा तथा धर्मपद नाम के नये शिल्पी का आगमन, नरसिंहदेव के महामात्य का शिल्पियों पर अत्याचार, महाराज नरसिंहदेव के विरुद्ध षड्यन्त्र का आरम्भ। दूसरे अङ्क में नरसिंहदेव का आगमन, शिल्पियों को आश्वासन और पुरस्कार, महामात्य के विद्रोह और आक्रमण की सूचना, कोणार्क मन्दिर दुर्ग में परिणत, धर्मपद दुर्गपति, शिल्पियों द्वारा महामात्य के विद्रोह का सामना करने की घोषणा और योजना। तीसरे अङ्क में प्रधानस्थापित विशु को विदित होता है कि धर्मपद उसकी प्रियतमा का ही उसका पुत्र है, महामात्य के सैनिक गुप्त रूप से मंदिर में प्रवेश पा लेते हैं। आहत धर्मपद फिर भी रक्षार्थ आगे बढ़ जाता है, विशु ठीक उस समय जब महामात्य राज-राज चालुक्य मन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश करता है, विशु चुम्बक को तोड़कर सूर्य की मूर्ति को गिरा देता है, जिससे मन्दिर ही उन सब पर गिर पड़ता है।

इस करुण किन्तु विजय कथा के एक ओर सौन्दर्य और प्रेम की प्रेरणा का प्रवाह है, दूसरी ओर वात्सल्य का सञ्चार, तीसरी ओर शिल्प और सौन्दर्य का अभिनिवेश, कला और पुरुषार्थ का संयोग तथा जन-शक्ति की राजनीति का प्रदर्शन। धर्मपद ने चालुक्य सेना को इतने समय तक रोका है कि प्रजावत्सल नरसिंह देव नौका में बैठकर सुरक्षित स्थान पर पहुँच सके, फिर विशु के मन्दिर को ऐसे अवसर पर गिराया कि उसके प्रजावत्सल राजा नरसिंह देव का शत्रु चालुक्य उसके नीचे स्वयं दब कर नष्ट हो गया। कलाकारों ने कला भी प्रस्तुत की और प्रजावत्सल राजा को निष्कण्टक भी किया। उनकी कला ही महान नहीं थी, उनका बलिदान भी महान था। इस समस्त वस्तु को ओजस्वी ढङ्ग से इस नाटककार ने प्रस्तुत किया है। परिशिष्ट में दिये हुये विचार भी पठनीय हैं। यह नाटक सर्वथा अभिनेय और अभिनन्दनीय है, एक भी स्त्री पात्र न होने पर भी इसमें नारी की महत्ता, उसके प्रेम और मातृत्व का महत् प्रतिपादन भी इसमें विद्यमान है।

—सत्येन्द्र

कहानी

जातकट्ठकथा भाग १—ले०—श्री वासुदेव शरण अग्रवाल। (ज्ञानपीठ मूर्ति देवी पालिग्रन्थमाला) सम्पादक—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु-धर्म रक्षित। प्रकाशक—भारतीय ज्ञान पीठ, काशी। पृष्ठ संख्या ३८०, रायलसाइज, मूल्य ९)

भारतीय ज्ञान पीठ काशी एक महान् संस्था है। उसने अब तक प्राचीन साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं जैसे जिनसेन का महापुराण मूल और अनुवाद सहित दो बड़ी जिल्दों में। किन्तु जिस ग्रन्थ का परिचय यहां दिया जा रहा है वह भारतीय सांस्कृतिक प्रकाशनों के क्षेत्र में अतिशय महत्त्व रखता है। यह ऐसा आयोजन है जिसकी आवश्यकता पिछले पचास वर्षों से थी और यदि भारतीय ज्ञान पीठ ने इस प्रयत्न को आगे बढ़ाया तो इस संस्था के द्वारा एक राष्ट्रीय महत्व का कार्य सम्पन्न हो जायगा।

संस्कृत, पाली और प्राकृत ये तीन बड़े साहित्य भारतीय ज्ञान की निधि हैं। इनमें से संस्कृत और जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृत साहित्य का प्रकाशन तो अपने देश में हुआ किन्तु पाली साहित्य के ग्रन्थों का देवनागरी अक्षरों में प्रायः अभाव ही है। यह विशाल-साहित्य लन्दन की पालिटैक्स्ट सोसाइटी के दीर्घकालीन प्रयत्न से सैकड़ों जिल्दों में रोमन अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। आज वह दुर्लभ हो गया है। वैसे भी रोमन लिपि में उसे पढ़ने में भारतीयों को सदा कठिनता ही होती है। बौद्ध-धर्म का नवाभ्युत्थान या सांस्कृतिक संदेश तब तक सम्भव न होगा जब तक मूल पाली का त्रिपिटक साहित्य सुन्दर देवनागरी लिपि में सुलभ मूल्य में भारतीयों के लिये प्रकाशित नहीं होता। सिंहल में, बर्मा में और स्याम देश में पाली त्रिपिटक के तीन संस्करण वहाँ की लिपियों में छपे हैं। वे भी एक प्रकार से दुर्लभ ही हैं। और भारतीयों के लिये तो किसी प्रकार सुगम नहीं कहे जा सकते। स्याम-देश में जब नए सम्राट का राज्याभिषेक होता है तब पाली त्रिपिटक का नवीन संस्करण स्यामी-लिपि में प्रकाशित करके वहाँ के मठ-मन्दिर, विद्यालय और विद्वानों में वितरित किया जाता है। अतएव मूल्य से वह इच्छानुसार सुलभ नहीं रहता। सुनने में आया था कि बर्मा की सरकार कई लाख रुपया लगाकर त्रिपिटक का देवनागरी लिपि में एक संस्करण प्रकाशित करने का विचार कर रही थी किन्तु वह प्रस्ताव भी अभी तक कार्यान्वित नहीं हुआ। इस देश में गत बीस वर्षों से बौद्ध धर्म की पुनः चर्चा जोर से सुन पड़ने लगी है। किन्तु उस दिशा में कुछ ठोस प्रगति तब तक नहीं हो सकती जब तक बौद्ध-साहित्य जनता के लिये सुलभ न बनाया जायगा। यह विशेष शुभ लक्षण है कि भारतीय ज्ञान पीठ के प्रतिभा-शाली संयोजकों ने इस महत्वपूर्ण कार्य को हाथ में ले लिया है। यदि यह प्रथम ग्रन्थ आगामी कार्य की बानगी है तो निस्सन्देह मूल बौद्ध-साहित्य को देवनागरी लिपि में प्रकाशित देखने की बहुत दिन की इच्छा पूरी हो सकेगी।

पाली-साहित्य में ५४७ जातक कहानियों का बहुत बड़ा संग्रह है जो छः जिल्दों (लगभग तीन सहस्र पृष्ठों) में लन्दन से रोमन-लिपि में छपा था। उसका अँग्रेजी अनुवाद भी वहीं से प्रकाशित हुआ था। आज वे दोनों ग्रन्थ नितान्त अलभ्य हैं कदाचित् कोई प्रति आ जाती है तो पाँच-सात सौ रुपये तक विक्रेता माँगते हैं। ऐसी स्थिति में मूल जातकों की पहली जिल्द का प्रकाशन हर्ष का विषय है। ग्रन्थ के पहले ६७ पृष्ठों में निदान-कथा है जो बुद्ध का जीवन-चरित है। पृ० ६८ से ३७० तक मूल जातक कथाएँ हैं जिनकी संख्या १५० है। ५४७ पाली जातक कथाएँ २२ भागों में विभक्त हैं। प्रत्येक विभाग एक निपात कहलाता है। पहला निपात एक निपात कहलाता है क्योंकि उसके प्रत्येक जातक में एक-एक गाथा है। ये गाथा ही प्राचीन श्लोक थे जिनके आधार पर गद्य कहानी का ठाठ रचा गया था। एक एक निपात में १५ वग्ग (= वर्ग) और १०—१० कहानियों के तीन पचासे (पण्णासक) हैं। इस प्रकार एक एक निपात की १५० कहानियों का प्राचीन विभाग चला आता है जिसका इस ग्रन्थ में अनुसरण किया गया है। किन्तु आधुनिक सम्पादकों ने कुल ५४७ जातकों की क्रम-संख्या भी देदी है। प्रायः आजकल के सब ग्रन्थों में जातकों के उद्धरण उन्हीं क्रम-संख्याओं से पहचाने जाते हैं। खेद है कि प्रस्तुत संस्करण में अन्य सब गुण होते हुए भी जातक क्रम संख्या देने से छूट गई है। किन्तु इस स्वल्प असुविधा के होते हुए भी देवनागरी लिपि में मूल पाली कथाओं को प्राप्त करके समस्त भारतीय पाठक प्रकाशकों के प्रति अपनी भूरि कृतज्ञता प्रकाशित किए बिना न रहेंगे। जातकों का यह संस्करण भारत के अन्य प्रान्तों एवं विदेशों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगा। भविष्य में आशा है इसके शेष भाग भी शीघ्र प्रकाशित होंगे। सौभाग्य से हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने जातकों के हिन्दी अनुवाद की तीन जिल्दें प्रकाशित की हैं। मूल और अनुवाद को अब साथ मिलाकर पढ़ने से हिन्दी पाठकों को न केवल पाली भाषा का ज्ञान सुलभ होगा किन्तु भारतीय संस्कृति के उन अनेक प्राचीन शब्दों से परिचय भी प्राप्त होगा जो अनुवाद में प्रायः खो जाते हैं।

जातकों में भारतवर्ष की प्राचीनतम लोक-कहानियों का सबसे बड़ा संग्रह है। संसार के कहानी साहित्य पर जातक कथाओं का प्रभाव पड़ा है। अनेक कहानियाँ भारतीय जनपदों में व उनकी बोलियों में आज भी प्रचलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक ... जाय
NOT TO BE ISSUED

हैं। आगे आने वाली पीढ़ी को यह शोधकार्य सँभालना होगा। उसमें भी इस संस्करण से सहायता मिलेगी। प्राचीन भारतीय लोक जीवन के विस्तृत परिचय के लिये जातक साहित्य का अक्षय भण्डार हमारे लिए सुलभ बच गया है यह बड़े सौभाग्य की बात है। जातकों का साहित्य भारतीय दण्डक वन के उस महाकान्तार के समान है जिसकी वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी और पुष्प-फल सम्पत्ति का अन्त नहीं है। यहाँ भी प्राचीन संस्थाओं और जीवन के विविध अङ्गों की अमित सम्पत्ति कथा द्वार से हमारे लिये सुलभ है जिसका रस बार बार पढ़ने पर भी नहीं छीजता।

—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

एकान्त साधना—लेखिका—शालती दिंदा, प्रकाशक—चेतना प्रकाशन लिमिटेड, हैदराबाद। पृष्ठ ५४, मूल्य ॥≈)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखिका की आठ कहानियों का संग्रह है। समाज के विभिन्न पहलुओं पर इन कहानियों में तीखा प्रकाश डाला गया है। हिन्दू समाज की जराजीर्ण रूढ़ियों और परम्पराओं से सामाजिक जीवन में जो घुटन पैदा होगई है और झूँठी प्रतिष्ठा के लिए मनुष्य धरती पर घूमता फिरता है—उसकी मानसिक भावनाओं का चित्रण लेखिका ने किया है। कहानी 'चूड़ीवाला' बंगला के प्रसिद्ध कहानीकार चारुचन्द्र बन्दोपाध्याय की 'चूड़ीवाला' कहानी की छाया को लिए हुए चली है। ये कहानियाँ हमारे जीवन की आलोचना लेकर चलीं हैं जिनमें भावों का अच्छा समावेश है।

—गङ्गाप्रसाद कमठान बी० ए०

जीवनी-संस्मरण

मैं इनसे मिला—ले०—श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ २००, सजिल्द, मूल्य २॥)

'इन्टरव्यू' एक कला है। इस क्षेत्र में हिन्दी में बहुत ही कम काम हुआ है। 'इम्प्रेशन' के रूप में 'संस्मरण' तो बहुत छपे हैं और शुद्ध संस्मरण उससे भी अधिक, पर 'इन्टरव्यू' बहुत कम, नहीं के बराबर। संस्मरण के लिखने वाले पर उस पर पड़ा हुआ प्रभाव विदित होता है जो कभी कभी गलत भी हो जाता है, इन्टरव्यू से अन्तर्दर्शन होते हैं जिसमें भ्रम या भूल होने की सम्भावना कम ही रहती है। बातचीत के द्वारा मनुष्य के हृदय की बात निकाल लेना और भी कठिन काम है। हर्ष है कि प्रस्तुत पुस्तक के लेखक इस कठिन कार्य में भी बहुत अंश में सफल हुए हैं।

इस पुस्तक में लेखक ने हिन्दी के एक दर्जन विद्वानों से बातचीत कर के उनकी बातचीत प्रश्नोत्तर के रूप में प्रकाशित की है। बातचीत अधिकतर उनके साहित्यिक-जीवन से सम्बन्ध रखती है और कुछ को छोड़ कर शेष में एक ही शैली और प्रश्न हैं। पर उसमें रोचकता और आकर्षण की कमी नहीं है। साहित्यिक रुचि वालों के लिए तो यह पुस्तक उपन्यास से भी अधिक मोहक प्रतीत होगी। इस पुस्तक से लेखकों के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है और उनकी अभिरुचियों के सम्बन्ध में जानकारी बढ़ती है। इन बातों से उनकी कृतियों के समझने में ही प्रकाश नहीं पड़ता वरन् यह भी मालूम पड़ता है कि ऊपर से शुष्क दिखाई देने वाले लोगों में कितना कला प्रेम कितनी सरसता और मानवता है। ऐसी सुन्दर और अपने ढङ्ग की नवीन पुस्तक लिखने के लिए लेखक हिन्दी संसार की ओर से बधाई का पात्र है।

—म

विज्ञान

विकासवाद—लेखक—श्री दयानन्द पन्त, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद। पृष्ठ ११९, मूल्य २।)

विकासवाद का महत्व केवल भौतिक क्षेत्र में ही नहीं है वरन् सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्रों में भी है। उसके सिद्धान्त सभी जगह लागू होते हैं। विकासवाद ने आजकल की सारी वैज्ञानिक विचारधारा को विशेषकर वनस्पतिशास्त्र को मौलिक रूप से प्रभावित किया है। इस दृष्टि से विकासवाद पर एक प्रामाणिक पुस्तक का लिखा जाना हिन्दी के लिए एक शुभ लक्षण है। इस पुस्तक में विकासवाद के प्रायः सभी सिद्धान्तों पर जैसे कोश विज्ञान, वंशानुक्रमिकता, सन्तानोत्पत्ति, विभिन्नता (Variation) उपयुक्ततम का निर्वाचन एवं वंशक्रम के प्रकार, डार्विन और विकासवाद सम्बन्धी आधुनिक (नवीनतम खोजों तक हक्सले, लाइसेंको आदि के) सिद्धान्तों को देकर अयतन ज्ञान प्रस्तुत

NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का प्रयत्न किया है। विद्वान लेखक ने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि विभिन्न प्रतिद्वन्द्वी वादों में किस प्रकार समझौता होता जा रहा है। अन्त में अँग्रेजी से हिन्दी और हिन्दी से अँग्रेजी शब्दकोश देकर पुस्तक की उपयोगिता बढ़ा दी गई है। संक्षिप्तता जहाँ पण्डितों के लिए गुण होता है अल्पज्ञों के लिए अभिशाप बन जाता है। इस पुस्तक में कहीं-कहीं इस प्रकार की वैज्ञानिक संक्षिप्तता आगई है। पंडित मोहिनी विद्या के साथ मूर्खमोहिनी विद्या भी आवश्यक है। —गुलाबराय

ज्वाला मुखी—ले०—श्री जगपति चतुर्वेदी, प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद। पृष्ठ २१६, मूल्य २)

वैज्ञानिक पुस्तकों का हिन्दी में अभी तक प्रायः अभाव सा ही है। अब जरूर अच्छी पुस्तकें निकलने लगी हैं। आशा है अगले १०-५ साल में हमारा यह साहित्य समृद्ध हो जायगा। प्रस्तुत पुस्तक में ज्वालामुखी पर्वत का वैज्ञानिक विवेचन कर के संसार के सभी ज्वालामुखियों का परिचय दिया गया है। भूगोल के विद्यार्थियों को ही नहीं जन साधारण की जानकारी बढ़ाने के लिए ऐसी पुस्तकें बड़ी उपादेय हैं। लेखक ने पुस्तक को उपयोगी और आकर्षक बनाने में कोई कमी नहीं रक्खी है। इसे पढ़ कर भूमि सम्बन्धी बहुत सी बातें जिन्हें जानने की इच्छा रहती है—स्वयं मालूम हो जाती हैं, जैसे भूमि क्यों हिलती है आदि। इस पुस्तक से भूगोल और साधारण विज्ञान के विद्यार्थी भी लाभ उठा सकते हैं।

विज्ञान मन्दिर—लेखक—श्री कान्तिलाल छगनलाल पांड्या। प्रकाशक—एम० एल० त्रिपाठी, लि० प्रिंस स्ट्रीट, बम्बई नं० २। पृष्ठ ४५६, मूल्य ४)

पांड्या साहब गुजराती के प्रसिद्ध लेखक हैं साथ ही विज्ञान के अनुभवी अध्यापक भी। आपने प्रस्तुत गुजराती पुस्तक में कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और विज्ञान सम्बन्धी कुछ प्रमुख विषयों की चर्चा की है। यह चर्चा बड़ी रोचक और ज्ञानवर्द्धक है। हिन्दी में ऐसी उपयोगी पुस्तक का अनुवाद होना चाहिए। —म

राजनीति

सत्ता और व्यक्ति—लेखक—बर्ट्रेन्ड रसल, अनु०—श्री मोहनलाल एम० ए०, प्रकाशक—रूपजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स लि०, दिल्ली। पृष्ठ १७५, सजिल्द, मू० ३)

रसल अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक हैं। रीथ व्याख्यानमाला में दिये हुये उनके भाषणों का इसमें संग्रह है। भाषणों के विषय और उनकी विचार-धारा बहुत गंभीर और विद्वत्तापूर्ण है। अनुवाद भी पुस्तक के अनुरूप ही सुन्दर हुआ है। राजनीति और समाज शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तक है।

धार्मिक और सामाजिक

मानवता की ओर (भाग १ और २)—पहले भाग के सम्पादक—पं० मुनि श्री नेमीचन्द्रजी महाराज, प्रकाशक—सुखसाधन ग्रन्थमाला ब्यावर। पृ० १३२, मूल्य १) भाग दो के सम्पादक मुन्शी मोतीलाल रांका, प्रकाशक—सुख साधन ग्रन्थमाला, मूल्य २)

इन पुस्तकों में जीवन को मानवता के उच्च स्तर पर पहुँचाने के साधक अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है। ये पुस्तकें जैन और वैष्णव धर्म तथा गाँधीवाद के उच्च आदर्शों से प्रभावित हैं। विविध लेखकों के लेखों का संग्रह है। संग्रह धार्मिक बुद्धि से किया गया है और नैतिक शिक्षा के लिए ये दोनों पुस्तकें उपादेय हैं।

गांधी शिक्षा—प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। तीन भाग, पृष्ठ ४०, ४०, ५४, मूल्य ।), ।-), ।=)

सस्ता साहित्य मण्डल ने विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा देने के लिए यह तीन बड़ी ही उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनमें नीति और सदाचार के मोटे-मोटे सिद्धान्त अलग अलग पाठों में सुन्दर ढंग से संग्रह कर दिए हैं। पुस्तक बच्चों के लिए सचमुच उपादेय है।

स्फुट

वार्षिकी—सम्पादक डा० महादेव साहा, प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद। पृष्ठ ४३२, मूल्य १।।)

१९५२ की वार्षिकी का यह प्रथम संस्करण है। इसमें लगभग १५० विषयों का सङ्कलन है और उन सब विषयों का जिनमें राजनीति, अर्थशास्त्र, भूगोल आदि सभी प्रकार के विषय हैं, आधुनिकतम संग्रह हैं। उदाहरणार्थ भारतीय काल का इतिहास, आधुनिक झगड़ों का वर्णन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकालों को रोकने के लिए सरकार क्या करती है उन सबका वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। संसार में जो बड़े-बड़े अकाल पड़े हैं उनकी भी चर्चा है। भारत की वैदेशिक नीति के शीर्षक में इस विषय की सम्पूर्ण जानकारी संक्षेप में दी गई है। केन्द्र में और राज्य में जो अधिकारीगण हैं उनका भी परिचय दिया गया है। भारत के सम्बन्ध में इतिहास की प्रमुख घटनाओं का वर्णन ऐतिहासिक क्रम से अब तक का किया गया है। १९५० और ५१ के विषय में तो यह वर्णन तारीखवार दिया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक सामान्य ज्ञान देने वाली हिन्दी में अपूर्व है और हर्ष की बात यह है कि इसका मूल्य बहुत ही कम रक्खा गया है। आशा है हिन्दी के पाठक इससे पूरा लाभ उठायेंगे।

मलयालम स्वयं शिक्षक—लेखक श्री भारती विद्यार्थी, प्रकाशक-द०भा० हिन्दी प्रचार सभा मदरास। पृष्ठ १५१, मूल्य १॥)

हिन्दी के जानने वाले दक्षिण भारत की मलयालम भाषा को बिना अध्यापक के सीख सकें—इसके लिए यह पुस्तक निकाली गई है। आज दक्षिण के लोग तो हिन्दी को तेजी के साथ सीख रहे हैं—पर हिन्दी वाले इन प्रान्तों की भाषाओं को सीखने में इतनी दिलचस्पी नहीं दिखा रहे हैं। यह पुस्तक इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए निकाली गई है।

हिन्दी तेलुगु स्वयं बोधिनी—ले०-श्री रामुलु गुप्त, प्रकाशक-लोकमान्य हिन्दी मन्दिर, विजय वाड़ा। पृष्ट २१६, मूल्य १॥)

मलयालम की तरह यह पुस्तक हिन्दी वालों को तेलुगु सीखने के लिए लिखी गई है। अल्प काल में ही इसका द्वितीय संस्करण होना—इसकी उपयोगिता का प्रमाण है। हिन्दी वालों को इन पुस्तकों से लाभ उठाना चाहिए।

राज-भाषा बोधिनी—ले०-श्री देवव्रत विद्यार्थी, प्रकाशक-अ० भा० हिन्दी परिषद, नई दिल्ली। पृष्ठ २५७, मूल्य २)

अँग्रेजी जानने वालों को हिन्दी का ज्ञान कराने के उद्देश्य से इस पुस्तक का निर्माण हुआ है और इस उद्देश्य में लेखक को पूरी सफलता मिली है। पुस्तक बहुत उपयोगी है।

प्राप्ति स्वीकार

हमारा कर्त्तव्य—ले०-पं० रामेश्वरप्रसाद शास्त्री, प्रकाशक-बाँगड़ शिक्षा-विभाग डीडवाना (राजस्थान)। पृष्ठ १८, बिना मूल्य। दैनिक कर्तव्य बताने वाली पुस्तक है।

नारी—ले०-पं० रघुनाथप्रसाद शास्त्री, प्रकाशक-कुमार प्रकाशन, मुरादाबाद। पृष्ठ १६, मूल्य ।-)

'साधना' महाकाव्य का एक सर्ग।

मधुगान—ले०-श्री सुरेन्द्र मोहन मिश्र, प्रकाशक-काव्य कुटीर, चन्दौसी। पृष्ठ ६४, मूल्य ।॥)

युवक लेखक की ३७ प्रेम सम्बन्धी कविताओं का संग्रह।

एकान्त साधना—ले०-श्री मालती डिंडा, प्रकाशक चेतना प्रकाशन लि०, हैदराबाद। पृष्ठ ५४, मूल्य ॥-)

समाज और गार्हस्थ जीवन का वर्णन करने वाली छोटी परन्तु आकर्षक ८ कहानियाँ।

नव दीप—ले०-श्री अलखमुरारी हजेला एम० ए०, प्रकाशक-ज्ञानमन्दिर, कानपुर। पृष्ठ ८०, मूल्य १॥)

लेखक की ९ कहानियों का संकलन जिनमें 'रनिया' भी एक है जिस पर अ० भा० कहानी प्रतियोगिता पुरस्कार मिल चुका है। सचमुच यह कहानी है भी सुन्दर। अन्य कहानियाँ भी रोचक और प्रभावोत्पादक हैं।

सूर-रामायण—सम्पादक श्री प्रेमनारायण टण्डन, प्रकाशक-विद्या-मन्दिर, लखनऊ। पृष्ठ ११२, मूल्य १॥) रामकथा सम्बन्धी सूरकृत १५७ गेय पदों का सटिप्पणी सङ्कलन।

शुद्ध हिन्दी—ले०-श्री शिवप्रसाद अग्रवाल एम० ए० तथा श्री राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी एम० ए०, प्रकाशक-आगरा बुक स्टोर, आगरा। पृष्ठ ११०, मूल्य १)

विद्यार्थियों को शुद्ध हिन्दी सिखाने वाली यह छोटी किन्तु उपयोगी पुस्तक। इसमें शुद्ध प्रयोगों के साथ अशुद्ध प्रयोगों की ओर भी संकेत किया गया है।

ध्रुव चरित्र—ले०-श्री राधेश्याम शर्मा, प्रकाशक-हरिश्चन्द्र शर्मा, हतकोली, मथुरा। पृष्ठ ४८, मूल्य ।-)

कविता में भक्त ध्रुव का आदर्श चरित्र वर्णित है।

विद्यापति का अमर काव्य—ले०-श्री गुणानन्द जुगाल एम० ए०, प्रकाशक-साहित्य निकेतन, कानपुर। पृष्ठ ७५, मूल्य २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यापति की पदावली पर छोटी किन्तु उपयोगी पुस्तक।

हिन्दी साहित्य का इतिहास—ले०-प्रो० संत धर्मचन्द्र; प्रकाशक-ओरिएन्टल बुक डिपो, दिल्ली। पृष्ठ २५, मूल्य १), परीक्षार्थियों के हितार्थ लिखी गई है।

तुलसी : व्यक्तित्व और विचार—ले०-श्री हरिकृष्ण अवस्थी एम० ए०, प्रकाशक-हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ। पृष्ठ ६७, मूल्य १), इसमें गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन आदि की चर्चा है।

राजघाट की सन्निधि में—ले०-श्री विनोबा भावे, प्रका०-सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ ८०, मूल्य ॥≈)

आचार्य विनोबा के उन्नत विचारों का सुन्दर संग्रह। गत वर्ष दिल्ली में दिए गए उनके ११-१२ भाषणों का सार जिनमें अनेक वर्त्तमान समस्याओं पर विनोबाजी के विचार हैं।

चन्द्र किरणें—लेखक-श्री चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र' प्रकाशक-लोकोदय प्रकाशन, वर्धा। पृष्ठ ४७, मूल्य ॥)

स्त्रियोपयोगी विभिन्न विषयों की चर्चा।

सरल कहानियाँ—लेखक श्री भैरूलाल व्यास, प्रका०-हिन्दी साहित्य समिति प्रकाशन, बेलागाँव। पृष्ठ ५३, मूल्य ॥)

दक्षिण की लोक-कथाएँ—लेखक-श्री रामचन्द्र नाठणोड़ा। प्रकाशक-उपर्युक्त। पृष्ठ ४३, मूल्य ॥)

उपर्युक्त दोनों पुस्तकें दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेम की परिचायक हैं।

प्रणवीर प्रताप का समीक्षात्मक विवेचन—लेखक-प्रो० विनयकुमार गुप्त एम० ए०, प्रकाशक-कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग। पृष्ठ ४८, मूल्य ॥)

'प्रणवीर प्रताप' पर परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तक। विवेचन युक्तिपूर्ण और विषय को स्पष्ट करने वाली।

संस्कृति समस्या—लेखक-स्वामी सत्यभक्त, प्रकाशक-सत्याश्रम वर्धा। पृष्ठ १५०, मूल्य १॥)

संस्कृति सम्बन्धी विषयों पर विचार और तर्कपूर्ण निबन्ध।

राजनीति समस्या—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त। पृष्ठ ६३, मूल्य ॥≈)

इसमें लेखक के राजनीति सम्बन्धी विचार हैं। विचार प्रौढ़ परन्तु विचारणीय हैं।

रूप रागिनी—लेखक-मंजुल मयंक। प्रकाशक-कालिन्दी प्रकाशन, हमीरपुर। पृष्ठ ६४, मूल्य १।)

लेखक की फुटकर कविताओं का सरस संकलन।

ज्ञान कण—लेखक-आचार्य कि० श्र० चौधरी। प्रकाशक- शि० प्र० मण्डल, सोगनी (पूर्व खानदेश)

अश्रुकण—लेखक-श्री गणेशप्रसाद कुँवर, प्रकाशक-निकुञ्ज निकेत झंडापुर (भागलपुर)। पृष्ठ ८०, मू०=१)

१६ कहानियों का संग्रह जिनमें उत्साही लेखक ने वर्तमान समस्याओं की चर्चा प्रगतिशील दृष्टिकोण से की है।

वर्द्धमान महावीर—ले०-श्री यशवन्त राज वैद्य, प्रका०-ज्ञान शिष्ट मण्डल, पटना नगर। पृ० २५, मूल्य ।)

भगवान महावीर के जीवन और उनके उपदेशों का परिचय।

हमारे सहायक

साहित्य-सन्देश के प्रचार में सहायता देने वाले निम्न महानुभावों के हम आभारी हैं :—

१—प्रो० विनयकुमार गुप्त एम० ए०, जौनपुर।
२—प्रो० भारत भूषण 'सरोज', एम० ए०, दिल्ली।
३—श्री बालकृष्णजी एम० ए०, सांगरूर।
४—श्रीमती सरोज कुलश्रेष्ठ, एम० ए०, मेरठ।
५—प्रो० अयोध्यानाथ शर्मा, एम० ए०, कानपुर।
६—प्रो० शङ्कर राजू नाडू एम० ए०, मदरास।
७—श्री आ० दा० कारदमेकर, सांगली (द० सतारा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

यहां है

हमने साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को हर महीने पौने मूल्य में पुस्तकें देने की योजना पिछले दिसम्बर मास से निकाली थी और अब तक हमारे ग्राहक उससे लाभ उठाते रहे।

अब डाकखाने के नये कानूनों के अनुसार हम जवाबी कार्ड को साहित्य-सन्देश के अङ्क में नहीं रख सकते। अतः हम उस कार्ड को इसी पृष्ठ पर नीचे छाप रहे हैं, आप लाइन पर से काट कर उसे हमारे पास भेजदें। इस पर आपको टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं। जो ग्राहक किसी भी कारण से पुस्तकों की वी० पी० वापस कर देंगे तो पोस्टेज के खर्चे के वे जिम्मेदार होंगे।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

(यहाँ से काटिये)

यहाँ से काटिये

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

.....

.....

.....

क सं० .....

आलोचना के पथ पर—कन्हैयालाल सहल आलो० ४)

मृगनयनी समीक्षा—लक्ष्मीनारायण टंडन ,, १।।।)

वत्सराज एक अध्ययन— ,, ,, ,, ।।).

काव्य की परिभाषा—

प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' ,, १।।)

साहित्य सर्जना—इलाचन्द्र जोशी ,, १।।)

नारी हृदय की अभिव्यक्ति—गिरवरचन्द ,, ।।।)

काव्य रश्मि—धर्मेन्द्र एम० ए० ,, १।।।)

तुलसी गीतावली—गुलाबराय ,, १।)

शुभ्रा—रामप्रसाद विद्यार्थी गद्य-काव्य ।।)

विश्व-ज्योति—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' कविता १।।)

नैवेद्य—हरिश्चन्द्र देव 'चातक' ,, १।।)

दूब के आँसू—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ,, २)

सं० रामचरित मानस धार्मिक १।)

अपना कौन—सच्चिदानन्द पाण्डेय उपन्यास २।।)

मुक्ताहार—श्री बैजनाथ राय कहानी २)

तुलसीदास नाटक—बद्रीनाथ भट्ट १।।)

राजस्व—भगवानदास केला अर्थशास्त्र १।।)

तत्त्व विज्ञान— स्फुट ४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sahitya Sandesh, Agra.
OCTOBER. 1952.

REGD. No. A. 265.
License No. 16.
Licensed to post without prepayment.

साहित्य सन्देश आगरा की

सन् १९५१-५२ की फाइल तैयार है

साहित्य सन्देश के गत वर्ष की पूरी फाइल आलोचना विशेषांक सहित सजिल्द तैयार हैं, फाइलों के शीघ्र समाप्त होने की आशा है। मूल्य ५) पोस्टेज ॥।=)

फाइल की सूची मुफ्त मँगाइयें

साहित्य सन्देश कार्यालय.
४, गांधी रोड, आगरा।

अन्तिम ता० ३१—१२—५२, तक एक ६० से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

Postage will be Paid by Addressee

BUSINESS REPLY CARD

No Postage Stamp necessary if Posted in India

AGRA G. P. O.
Permit No 1136

Book Post

To.

श्री सञ्चालिक,
साहित्य-सन्देश,
साहित्य-रत्न-भण्डार,
आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १४] आगरा—नवम्बर १९५२ [अङ्क ५

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम. ए., पी-एच. डी.
महेन्द्र

*

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक
साहित्य प्रेस, आगरा।

*

वार्षिक मूल्य ४), एक अङ्क का ।=)

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचार धारा	सम्पादक
२—यथार्थ क्या है	डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
३—साहित्य में लोक-हित की भावना	श्री अयोध्याप्रसाद ज्योतिषी विशारद
४—गीत काव्य	श्री सद्गुणशरण अवस्थी एम० ए०
५—हिन्दी कविता का दिशान्तर	श्री बुद्धसेन शर्मा एम० ए०, एल० टी०
६—भारतेन्दु का व्यक्तित्व	प्रो० चन्द्रप्रकाश वर्मा एम० ए०
७—प्राचीन हिन्दी साहित्य में हास्यरस	श्री गङ्गाप्रसाद कमठान बी० ए०
८—महादेवी और मीरा	प्रो० धर्मपाल एम० ए०, विद्यालङ्कार, साहित्य-रत्न
९—गान्धीवाद के आवेगशील कवि : श्री माखनलाल चतुर्वेदी	प्रो० राजनारायण मिश्र एम. ए., सा. र.
१०—चिरहँटा और छरहटा का रहस्य	श्री चन्द्रवली पाण्डे
११—दिनकरजी की नई कृति : रश्मिरथी	
१२—साहित्य परिचय	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य सन्देश प्रत्येक मांह के द्वितीय सप्ताह में निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है

हिन्दी का नया प्रकाशन : अक्टूबर, १९५२

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं

आलोचना

हिन्दी-काव्य धारा में प्रेम-प्रवाह—परशुराम चतुर्वेदी ३।।)
काव्य और कल्पना—रामखेलावन पान्डेय ३।।)
हिन्दी-भाषा तथा साहित्य—उदयनारायण तिवारी २।।)
भारतीय संस्कृति—प्रो० शिवदत्त ज्ञानी एम. ए. ५)
प्रगतिवाद—सौमित्र ।।)
आलोचक रामचन्द्र शुक्ल—गुलाबराय ब्रजेन्द्र स्नातक ६)
तुलसीदास—भारत भूषण सरोज २।।)
पन्त आधुनिक कवि—फूलचन्द्र पाण्डेय ३।।)

काव्य

सन्त-काव्य—परशुराम चतुर्वेदी ६)
रावण महाकाव्य—हरदयालु सिंह ५)
धरांगजा—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय १।)
चिता की लहर-श्यामनारायण प्रसाद बी. ए. १।।)

कहानी

आकाश के तारे धरती के फूल—कन्हैयालाल प्रभाकर मिश्र २)
कारावास—श्री यश १।।)

उपन्यास

बलचनमा—नागार्जुन ३)

जीवनी

संस्मरण—बनारसीदास चतुर्वेदी २)
जीवन स्मृतियाँ—क्षेमचन्द्र सुमन ३)

स्फुट

ज्वाला मुखी—जगपति चतुर्वेदी २)
वार्षिकी—डा० महादेव साहा १।।)
महावीर डायरी—सं० बनारसीदास चतुर्वेदी १।)
भारत में जल यातायात— ।=)

अर्थ-शास्त्र

भारत का औद्योगीकरण—डी. एस. नाग. एम. ए. २।।)

राजनीति

सचित्र संविधान—इन्द्र एम. ए. १।।)

शिक्षा

पश्चिमी शिक्षा का इतिहास—सीताराम जायसवाल ७।।)
शिशु शिक्षण—श्रीमती हेमांगिनी जोशी १।।)

ग्रामोपयोगी

ग्राम-साहित्य—रामनरेश त्रिपाठी ६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

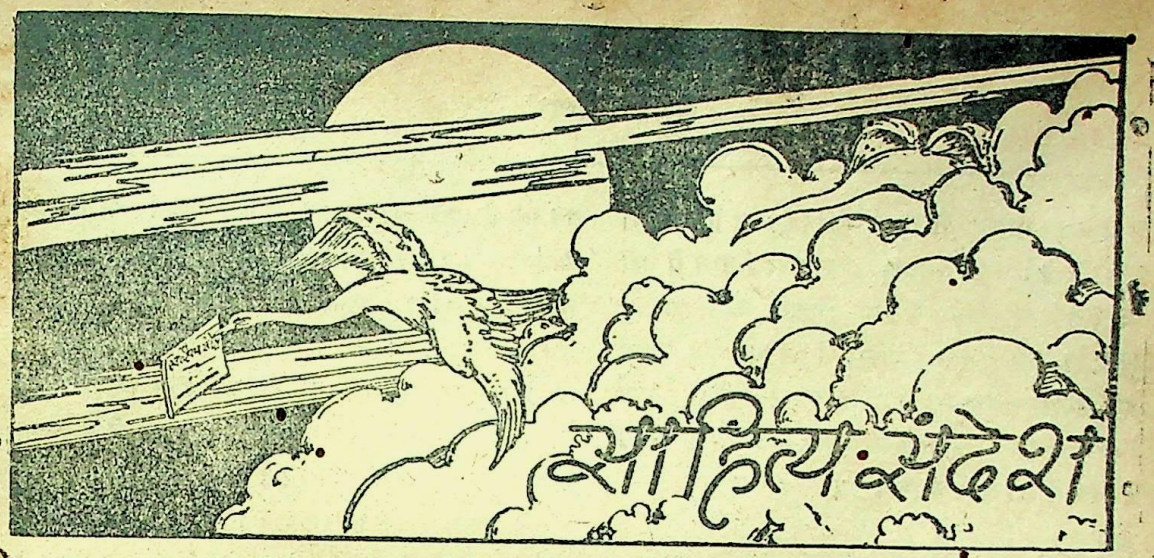

वर्ष १४] आगरा—नवम्बर १९५२ [अङ्क ५

हमारी विचार-धारा

राष्ट्रभाषा में संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन—

राष्ट्रभाषा की अन्य कमियों में एक कमी यह भी है कि संस्कृत के सुसम्पादित टिप्पणी सहित ग्रन्थों का अभाव है। बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रम में जो पाठ्य पुस्तकें हैं उनके अच्छे संस्करण अँग्रेजी की टीकाओं के साथ हैं। ...ले आदि के संस्करणों जैसे संस्करण हिन्दी भाषी विद्वान कर सकते हैं और प्रकाशकों की अनुमति लेकर उनके हिन्दी अनुवाद भी हो सकते हैं। यह आवश्यकता इसलिए और भी बढ़ गई है कि संस्कृत के प्रश्न पत्रों का उत्तर अब हिन्दी में दिया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की यह भी है कि हिन्दी के अध्ययन के लिए संस्कृत की उपेक्षा नहीं की जा सकती। संस्कृत के अध्ययन के लिए हिन्दी में संस्कृत के प्रामाणिक कोश की भी आवश्यकता है। आजकल तो संस्कृत के, अँग्रेजी आप्टे आदि के कोश भी अप्राप्य हैं। दुष्प्राप्य पुस्तकों के मूल्य बहुत ही बढ़े-चढ़े बतलाये जाते हैं। एक व्यक्ति के पत्र लिखने पर आप्टे के ११५) बतलाये गये। ऐसी कीमत साधारण स्थिति के लोगों की पहुँच से बाहर है। आशा है कि केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार संस्कृत के प्रामाणिक कोश की ओर भी ध्यान देगी।

साहित्य निर्माण की केन्द्रीय योजना—

सरकार द्वारा राष्ट्रभाषा के उत्थान के सम्बन्ध में जो स्फुट प्रयत्न किये जाते हैं उनकी चर्चा कभी-कभी अखबारों में आजाती है। दिल्ली में अन्तर प्रान्तीय भाषा और साहित्य सम्बन्धी सहयोग के लिए कुछ अनुकूल वातावरण भी उपस्थित किया जा रहा है। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण का भी उद्योग हो रहा है किन्तु केवल पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण हो जाने से राष्ट्र भाषा की समस्या हल नहीं हो जाती है। पारिभाषिक शब्दावली का उपस्थित हो जाना (यदि वह हो जाय तो) इतना ही महत्व रखती है जितना कि एक भवन निर्माण से पूर्व ईंटों का संग्रह कर लेना। भवन-निर्माण के लिए एक विशेष रचनात्मक कला की आवश्यकता रहती है। हमको आज चाहिए—विविध-विषयों के प्रामाणिक ग्रन्थ जो माध्यमिक शिक्षा तथा उच्चतर शिक्षा के लिए उपयोगी हैं।

हमारे देश में अधिकारी विद्वानों की कमी नहीं है। केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि विभिन्न विज्ञानों की ऐसी समितियाँ बनवायें जो प्रामाणिक पुस्तकों के निर्माण का काम अपने हाथ में ले। विषय की पूर्णता के लिए यदि आवश्यक हो तो अहिन्दी भाषी विद्वानों का भी सहयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया जाय। सरकार जो कुछ सुविधाएँ इन विद्वानों को दे सकती है दे। यदि प्रकाशन का कार्य स्वयं हाथ में नहीं ले तो पुस्तकों के लिखने के लिए विद्वानों को नियुक्त कर प्रकाशन का कार्य प्रतिष्ठित प्रकाशकों को बाँट दें। हिन्दी के उच्च साहित्य विशेष कर वैज्ञानिक साहित्य का कार्य मन्द गति से चलता है। केन्द्र में जो हमारे प्रतिनिधि हैं उनको चाहिए कि वे इस कार्य को गति दें।

केन्द्रीय सरकार के पुरस्कार—

हर्ष की बात है कि केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रभाषा के साहित्य की समृद्धि के लिए कई हजार रुपये के पुरस्कार घोषित किये हैं। उनमें सबसे बड़ा पुरस्कार ३०००) रु० का है। यह मौलिक और अनूदित दोनों ही प्रकार के ग्रन्थों पर है। इस आयोजना का स्वागत करते हुए हम यह सुझाव देना चाहते हैं कि सरकार को मौलिक ग्रन्थों के लिए कुछ विशेष विषय घोषित कर देना चाहिए जिससे कि एक ही विषय के ग्रन्थों की तुलना में सहायता मिले और निर्णायकों के चुनाव में सुविधा हो। जो विषय घोषित किये जायँ उनके विशेषज्ञ ही निर्णायक रक्खे जायँ। इसी प्रकार अनुवाद ग्रन्थों की भी सूची बना दी जाय या कम से कम ऐसे लेखकों के नाम घोषित कर दिये जायँ जिनके ग्रन्थ के अनुवादित होने की आवश्यकता है। आशा है कि इन पुरस्कारों से राष्ट्रभाषा को पूरा पूरा लाभ देने के लिए एक सुविज्ञ लोगों की उपसमिति बनाई जायगी जो कि निर्णायकों आदि का चुनाव कर सके।

ग्रन्थ पहले या पारिभाषिक शब्द पहले—

एक रोज मैं अपने कुछ सहयोगियों से हिन्दी के माध्यम द्वारा अध्यापन की बात कर रहा था। वे इस सम्बन्ध में बड़े निराशावादी थे। वे हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों की कमी को अपने मानसिक आलस्य का कवल बनाना चाहते थे। उनका कहना है कि जब तक पारिभाषिक शब्दावली न बन जाय तब तक हिन्दी में पढ़ाने का साहस न करना चाहिए। पारिभाषिक शब्दावली का पहले से निर्माण करना सहज कार्य नहीं है। शब्दों का गढ़ना, उनकी छाँट-छटाई और स्वाद व्यवहार और प्रयोग में ही होती है। जो पारिभाषिक शब्द बन गये हैं उनके आधार पर काम आरम्भ कर देने की आवश्यकता है और नये शब्दों को भी आवश्यकतानुकूल गढ़ते रहना चाहिए। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। आजकल के अँग्रेजी विद्य अध्यापक हिन्दी में पढ़ाने की आवश्यकता की प्रतीति के दुर्दिन को दूर रखना चाहते हैं। जितना हम इस कठिनाई से दूर रहना चाहते हैं उतना ही उस को और जटिल बना रहे हैं। यह पलायनवाद साहित्य के पलायनवाद से भी शोचनीय है।

जब से हिन्दी का माध्यम हुआ है तब से हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की सृष्टि पर्याप्त मात्रा में होने लगी है। मनोविज्ञान में ही दस-ग्यारह पुस्तकें निकल चुकी हैं। उनकी शब्दावली कुछ तो एक सी ही है और कुछ में अपनी-अपनी ढपली और अपने-अपने राग की बात है। इस से निराश होने की बात नहीं है। कुछ दिन तो हमको प्रयोग के लिए देना ही चाहिए। जो लोग इस सम्बन्ध में अति शीघ्रता चाहते हैं वे भूल जाते हैं कि अँग्रेजी शब्दावली विज्ञान की उन्नति के साथ उन्नत हुई है। हिन्दी भाषा को कम से कम तीन सौ या चार सौ वर्ष की उन्नति का एक साथ सामना करना पड़ रहा है। फिर भी हमने जो उन्नति की है वह सन्तोषजनक नहीं तो निराशाजनक भी नहीं है।

प्रयोग तो चलते ही जाना चाहिए किन्तु हमारा ध्यान शब्दावली के एकीकरण और प्रामाणीकरण की ओर भी जाना चाहिए। इसके लिए सरकार या किसी देश व्यापी संस्था की सुदृढ़ छाप की भी आवश्यकता है। आशा है हमारे विद्वान इस ओर ध्यान देंगे।

अखिल भारतीय हिन्दी महाविद्यालय—

आधुनिक हिन्दी के निर्माण में आगरा का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। राजा लक्ष्मणसिंह तथा नजीर जैसे महानुभावों की साहित्यिक रचनाएँ हिन्दी के स्वरूप निर्माण की ठोस नींव हैं। 'हिन्दी परिषद' ने अखिल भारतीय हिन्दी महाविद्यालय के लिए आगरा को चुना है, इससे परिषद कार्यकर्ताओं की स्वस्थ दृष्टि ही विदित होती है। इस महाविद्यालय में समस्त भारत के अहिन्दी प्रान्तों के विद्यार्थी हिन्दी-परिषद की 'भारती' परीक्षा के लिए अध्ययन करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निमित्त एकत्र हुए हैं। यहाँ उनके निवास भोजन और अध्ययन का प्रबन्ध किया गया है। श्री नागरी प्रचारिणी सभा ने इस विद्यालय को समस्त सुविधायें प्रदान की हैं। समस्त वातावरण ही साहित्यिक है। इन अहिन्दी प्रदेशों के विद्यार्थियों को इस विद्यालय में केवल पारंगत के पाठ्यक्रम की ही शिक्षा नहीं दी जाती, विविध सांस्कारिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों, स्थलों और प्रवृत्तियों का भी प्रत्यक्ष परिचय कराया जाता है। इससे शिक्षा को जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध करके प्रस्तुत किया जा रहा है। विद्यालय की साहित्य गोष्ठी इन विद्यार्थियों की सृजन-शक्ति को प्रेरित और परिमार्जित करती है। उच्चकोटि के हिन्दी के विद्वानों के विशेष व्याख्यान प्रति सप्ताह होते हैं। ये विद्यार्थी अपने-अपने प्रदेशों की साहित्यिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का भी विशेष अवसर पर परिचय कराते हैं। हम इस उद्योग को विशेष श्लाघ्य समझते हैं। यह बीज भविष्य में विशाल और एकताबद्ध भारत की कल्पना को साक्षात कर दिखायेगा—ऐसी आशा है।

हिन्दी-उर्दू—

हिन्दी के विरोध में उर्दू की आवाज फिर बुलन्द की जाने लगी है। यों उर्दू आज ठीक उस रूप में विरोधी बन कर नहीं आ रही, जिस रूप में वह स्वतन्त्र होने से पूर्व थी, आज वह उत्तर प्रदेश में अपने लिए प्रादेशिक भाषा की मान्यता चाहती है। भारतीय संविधान में उर्दू को यह मान्यता नहीं दी गयी, केवल हिन्दी को ही उत्तर प्रदेश की भाषा माना गया है। अतः आज जब उर्दू प्रादेशिक भाषा बनने के लिए खड़ी हो रही है तो निश्चय ही वह दूसरे रूप में हिन्दी के विरोध में आ रही है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उर्दू का हिन्दी से कोई पृथक अस्तित्व ही नहीं, वह केवल शैली भेद से ही हिन्दी से भिन्न है। और इस कारण आरम्भ से अन्त तक कभी हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उठना ही नहीं चाहिए था, किन्तु भारत का दुर्भाग्य कि यह प्रश्न उठा और इसने भारत के इतिहास को कलुषित कर दिया। राजनीति और उसके सम्प्रदायिक रूप से इस उर्दू ने बहुत गहरा गठबन्धन कर लिया—अतः उर्दू पर कितने ही गहरे आक्षेप रहे हैं—

१—इसने साम्राज्यवादियों से सम्बन्ध रख के हिन्दी की राष्ट्रीयता को क्षुब्ध किया।

२—क्षुद्र साम्प्रदायिकता का इसने साथ दिया, यह प्रतिक्रियावादिनी रही।

३—दो राष्ट्र का सिद्धान्त इसी के बल बूते पर पनपा।

४—पाकिस्तान उर्दू के कारण बना है।

५—इसका स्वभाव भारतीयता विरोधी रहा है क्योंकि यह उसी के आधार पर अपनी स्वतन्त्र सत्ता सि कर सकती है।

क्या उर्दू फारसी लिपि का परित्याग कर सकती है फारसी लिपि आज प्रत्येक राजनीतिक दृष्टि से विदेशी लि है, भारत की उत्तर से दक्षिण की समस्त भाषाओं लिपियों के विपरीत इसका विकास भारत से बाहर हुआ क्या उर्दू अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग बाहुल्य को कर सकती है? अरबी-फारसी शब्द भारतीय भूमि सम्बन्धित नहीं। क्या उर्दू अरबी-फारसी की साहित्यि मान्यताओं को त्याग सकती है—नहीं तो वह भारतीय मानी जा सकती है।

६—पाकिस्तान के अलग राष्ट्र के पड़ोस में रहने उसके उर्दू को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने से, उर्दू की प्रे सदा वहाँ से आयेगी।

भारत की वर्त्तमान विषम राजनीतिक स्थिति बहुत सावधानी की आवश्यकता है। इतिहास को दे उससे भी शिक्षा लेने की आवश्यकता है। अपने ही मियों ने भारत को सदा मूर्ख बनाया है और उसे के गर्त में धकेला है। भारत का ही प्रगतिशील सङ्घ उर्दू का पक्ष-समर्थन कर रहा है। प्रगतिशील सङ्घ के विश्वासों और आन्तरिक राजनीतिक रहस्यों पर हमें नहीं कहना। हिन्दी के राष्ट्रभाषा हो जाने पर भी भारत ही है जहाँ उसका विरोध किसी न किसी रू क्रिया ही जा रहा है। इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी बातें, बड़ी-बड़ी अद्भुत योजनायें, अद्भुत तर्क और भय तथा आशंकायें प्रकट की जा रही हैं। उर्दू भी प्रकार अब नयी और अद्भुत बातों के साथ सामने आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में उर्दू किसी क्षेत्र की भाषा नहीं। फलतः उसको प्रादेशिक भाषा की ता का आन्दोलन निराधार और व्यर्थ है, यही नहीं यह के लिए खतरे से भी खाली नहीं। जिस वर्ग विशेष का से निकट सम्बन्ध है, वह भारत-राष्ट्र में निर्विघ्न इस की सेवा और समृद्धि में रत रह सकता है, उसमें बाधा न पड़ी है, न आगे पड़ सकती है, किन्तु ी की उपेक्षा वह भी नहीं कर सकेगा, जैसे दूसरे नहीं सकेंगे। हिन्दी की उपेक्षा का अर्थ आत्मघात है।

ारा आगामी विशेषाङ्क—

'साहित्य-सन्देश' का आगामी विशेषाङ्क जनवरी १९५२ निकाला जायगा। यह कहानी विषयक होगा। कई वर्ष हमने 'उपन्यास अङ्क' निकाला था जिसकी बड़ी धूम थी और जिसे लोगों ने बड़ा पसन्द किया था। नी अङ्क' को भी वैसा ही उपयोगी और आकर्षक बनाने चेष्टा की जा रही है। परन्तु उसकी सफलता हमारे सम्मान्य लेखकों के सहयोग पर ही आश्रित है। हम उनसे अनुरोध करेंगे कि वे निम्न विषयों अपनी रुचि का विषय छाँट कर उस पर लेख हमें यथासंभव शीघ्र ही भेजने की कृपा करें। हमें नवम्बर के अन्त तक मिल जाने चाहिए :—

—कहानी का उद्गम स्थल—भारत
—लोक कहानियाँ
—कहानी के तत्व और उसकी परिभाषा—कहानी के सम्बन्ध में विविध आचार्यों का मत
—कहानी और उपन्यास तथा अन्य साहित्यिक विधाएँ
—कहानी की विविध शैलियाँ
—हिन्दी कहानी का विकास
—हिन्दी कहानी पर विदेशी प्रभाव
—हिन्दी के प्रमुख कहानीकार
—विविध प्रान्तीय भाषाओं का कहानी-साहित्य
—हिन्दी की ऐतिहासिक कहानियाँ
—हिन्दी की सामाजिक कहानियाँ
—हिन्दी की हास्य कहानियाँ आदि-आदि

एक समाधान

'साहित्य-सन्देश' के जून १९५२ के अङ्क में 'मीरां बृहत्-पद-संग्रह' पर श्री कन्हैयालालजी सहल द्वारा लिखित आलोचना प्रकाशित हुई है। तदर्थ मुझको कुछ कहना है।

अपनी आलोचना में श्री सहलजी ने मेरे द्वारा दिए गये कुछ शब्दों के अर्थ पर आपत्ति की है। पृष्ठ १३ पर 'भाभो मीरां हो! लाजैं सैंस मेवाड़' में प्रयुक्त 'सैंस' शब्द का अर्थ मैंने 'सौ' लिखा है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से श्री सहलजी के अनुसार यह शब्द 'सहस्र' का अपभ्रंश सिद्ध हो सकता है परन्तु बोलचाल की राजस्थानी भाषा में उपर्युक्त शब्द 'सौ' के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।

पृष्ठ ८ पर 'कामण कलस सँवारि पिय म्हांरो गिर-धारी' में प्रयुक्त 'कामिण' शब्द के अर्थ पर भी श्री सहल जी को आपत्ति है। उनका कहना है कि 'कामिण' शब्द हिन्दी के 'कामिनी' शब्द का ही अपभ्रंश है। सत्य है कि दोनों शब्दों में गहरा ध्वनि-साम्य है परन्तु मात्र इसी आधार पर दोनों को एक दूसरे का पर्यायवाची या अपभ्रंश नहीं सिद्ध किया जा सकता। राजस्थानी में 'कामिण' या 'कांरू कामिण' शब्द नौकर के अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। इन नौकरों में भी विशेषतः माली, नाई आदि का ही अर्थ लिया जाता है। राजस्थान की प्रचलित प्रथाएँ भी मेरे कथन का समर्थन करती हैं। शादी-विवाह और बहू या बेटी की बिदाई के अवसर पर जल भरे 'कलस' का 'सगुन' दिया जाता है और उपर्युक्त कर्म घर के नौकर, नाई या माली ही करते हैं। विवाह के अवसर बारात आने के पूर्व कन्या-पक्ष के सब लोग इकट्ठे हो कर वर-पक्ष के यहाँ जाते हैं जिसको 'कोरथ' देना कहते हैं। 'कोरथ' के इस अवसर पर दो जल से भरे 'कलस' लेकर नाई ही सबके आगे चलता है। वर पक्ष के यहाँ पहुँच कर ये दोनों 'कलस' दरवाजे पर रख दिये जाते हैं तब अन्य रस्में की जाती हैं। आजकल बड़े शहरों में रहने वाले मारवाड़ी भाई नाई या माली के एवज में उपर्युक्त कार्य घर में रहने वाले नौकरों द्वारा ही करा लेते हैं। अस्तु, मेरे विचार से मात्र ध्वनि-साम्य के कारण दोनों शब्दों को एक दूसरे का पर्यायवाची या अपभ्रंश न मानना ही युक्ति सङ्गत प्रतीत होता है।

—मनोहर शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ क्या है ?

डॉ० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व बहुत पुराना है। विचारक तथा कलाकार अपने-अपने विशेष दृष्टिकोण से इनको ग्रहण करता आया है, इनके लिए लड़ता-झगड़ता आया है। आज भी यह प्रश्न बना हुआ है, और आज यह एकदम ही स्पष्ट विदित हो रहा है कि पलड़ा यथार्थ का भारी है। इसका कारण यह नहीं कि यथार्थ में कोई ठोस आन्तरिक योग्यता है, पर कारण यह है कि मनुष्य ने अपनी विशाल सत्यान्वेषणा को संकुचित करके मात्र बुद्धिवाद का आश्रय ग्रहण कर लिया है। वह एकांगी बुद्धिवादी है, और उन चार अंधों में से एक है जो हाथी को अलग-अलग दिशाओं से स्पर्श कर के अपने सत्य के लिए झगड़ते हैं। सत्य का आंशिक ज्ञान असत्य से भी अधिक भयङ्कर है। आज के यथार्थ की परिभाषा यथार्थ से बहुत दूर और अयथार्थ है। हमारा साहित्यकार 'मानव' अथवा 'मनुष्य' का सहारा लेकर चलता है—और जो 'मानव' है उसे अपनी कला का विषय बनाना चाहता है—उसकी कसौटी है कि जो साहित्य अथवा कला 'मानव' के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करती है वह 'यथार्थवादिनी' है।

मानव का यह 'यथार्थ' क्या है ? एक एकाङ्गी कहता है—मानव का यथार्थ उसका राग-तत्व है। विश्व के महान साहित्यकारों ने इन्हीं राग-तत्वों को अपनी कृतियों में जितनी गहराई और शक्ति के साथ उतार पाया है, उतनी ही उनकी रचनाएँ महान हुई हैं। दूसरा एकाङ्गी कहता है—नहीं, मानव का यथार्थ उसका 'मनस्तत्व' है। जो साहित्यकार जितनी योग्यता से मानव मन की प्रवृत्ति और प्रेरणाओं को चित्रित कर सका है, वह उतना ही महान हुआ है। इससे झगड़ने वाला यह एकाङ्गी इस मानव को, मनस्तत्वी मानव को भ्रम और अयथार्थ बताता हुआ अवचेतन की ओर इङ्गित करता है। वह है वह यथार्थ मानव। उसके स्वरूप को देखो, उसको अपनी कला कृतियों में अवतीर्ण करो। पर इसे कौन माने यह प्रति नये कदम को ही यथार्थ मानता हुआ, प्रत्येक पिछले कदम और उसकी भूमि को त्यागने वाला एकाङ्गी इसे धक्का देता हुआ घोषणा करता है—"परिवर्तन ही शाश्वत सत्य है····हिंसा और बलपूर्वक अपने को स्थायी और चिरन्तन बनाये रखने के बर्बर प्रयत्नों के बावजूद जो शक्तियाँ इतिहास-मञ्च पर अपनी भूमिका समाप्त कर के विलीन हो रही हैं, वे जीवन-वास्तव के असत्य की प्रतिनिधि होती हैं, और भीषण दमन, संघर्ष और अवरोधों के बावजूद जो शक्तियाँ इतिहास-मञ्च पर नये युग की भूमिका का आरम्भ करती हुई आगे बढ़ती आती हैं, वे ही युग-सत्य की प्रतिनिधि हैं; क्योंकि जो अपनी उपयोगिता समाप्त करके मिट रहा है, वह असत्य है और जो उभर रहा है वही सत्य है। सत्य की यही सरलतम व्याख्या है। नैतिकता की भी यही कसौटी है, क्योंकि नैतिकता के मान-दण्ड सत्य से ही बनते हैं।"—सत्य की इस कसौटी से आज का यथार्थ ब्लैक मार्केटिङ्ग है, इतिहास के मञ्च पर इसे कुचलने की सदा चेष्टा की गयी है। आज यह उभरा है, अतः सत्य है। इसे कुचलने वाली शक्ति अपनी उपयोगिता समाप्त करके असत्य हो गयी है। आज का यथार्थ रिश्वत लेना है—कालिदास के समय से पूर्व से भी सम्भवतः इसे कुचला जाता रहा है, और आज यह उभर रहा है। आज का यथार्थ युद्ध है, सदा से इसे रोकने और कुचलने की चेष्टा रही है, और सदा यह उभरा है, और आज तो इसका उभार बड़ा प्रबल प्रतीत होता है।

इसी प्रकार और भी एकानेक यथार्थ को देखने वाली एकाङ्गी हैं—इनका विवाद प्रबल है, जिसे तुलसी के शब्दों से ही रोका जा सकता है—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

पर प्रभु यानी राम यानी हाथी क्या है ? यानी मानव या उसका यथार्थ या उसका सत्य क्या है ? वह किस बुद्धिवाद से सिद्ध होता है कि मानव जड़ है चेतन नहीं। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस यथार्थ की परिभाषा में है मानव केवल खाता है, बोलता, सोचता और चलता नहीं। यह किस वास्तविकता से जाना जा सकता है कि आदि युगीन मानव समस्त परिवर्तनों और विकासों में होता हुआ भी मानव नहीं। यह किस शास्त्र ने बताया है कि मैं जिसका नाम 'रमेश', मेरे माता-पिता ने रखा, जन्म से आज तक अनेक परिवर्तनशील सत्यों में से होता हुआ वृद्ध और मरणासन्न हूँ—वह नहीं जो पैदा होते समय था। बिचारा अध्यात्मवादी तो चुप ही हो बैठा है—नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुने? वह भली प्रकार जानता है कि प्रत्येक युग के प्रगतिवादी ने उसको किस प्रकार से विकृत किया है, और उसका गला घोंटा है, उसका दुरुपयोग किया है? आज के साहित्यकार को उचित है कि वह यथार्थ की भली प्रकार शोध करे—वह शोध करे कि मेघदूत क्यों अमर है, शकुन्तला क्यों महान है? नल-दमयन्ती की कथा क्यों शाश्वत है? क्यों वह आज भी अनेक रूपों में जीवित है, और क्यों आज का बुद्धिवादी भी अपनी सारी जीवन यात्रा को नल-दमयन्ती के साँचे में ढलता देखता है? वह शोध करे कि राम-कथा का मर्म क्यों जनता की रोटी की समस्या हल करता था और है कि वह आज भी हमारा पिंड नहीं छोड़ती? कृष्ण-कथा किस राजनीति, अर्थ अथवा इतिहास के परिवर्तन के बलबूते पर, हमारे साथ चिपकी हुई है? युग-युग में से आते हुये इस युग-मानव का यथार्थ मानव कौन है और कहाँ है, जो परिवर्त्तनों से बदला भी नहीं, परिस्थितियों की चक्की में जो पिस नहीं सका, युग के दमनों से कुचला नहीं जा सका, युग-युगों की लम्बी यात्रा से जो थका नहीं—और जो आज भी भविष्य को देखता हुआ आगे बढ़ने के लिए सन्नद्ध है—और बढ़ा चला जा रहा है। जो अपनी इस महान् यात्रा में इन समस्त परिवर्तनों को और परिवर्तनशील सत्यों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, जिनमें वह उलझ कर यहीं रुक नहीं गया, अथवा जिनसे परास्त होकर वह मर नहीं गया—मानव का और कलाकार तथा साहित्यकार का यदि कोई यथार्थ होगा तो वह ऐसे ही मानव को पहिचान कर शोध या विषय बनाने से स्पष्ट हो सकेगा। मानव को 'फुटबाल' से अधिक महत्व न देने वाले जीवन शिल्प के मर्मियों से प्रार्थना है कि वे मर्म का उद्घाटन करें।

(पृष्ठ १७८ का शेष)

ही लिए अपनाये रह सकता है। बस गीत की लम्बाई भी उतनी ही होनी चाहिये जितनी उसकी रमण-उपयोगिता है।

गीतों में इधर दार्शनिक चिंतना का समावेश अधिकाधिक हो रहा है। जहाँ एक ओर विचार के किरकिरे अन्तराय आ जाने से संगीत रस कुछ धीमा पड़ जाता है वहाँ दूसरी ओर केवल संगीत के सहारे चलने वाले गीतों से अलग हट कर नये प्रकार के गीतों का श्री गणेश हिन्दी में शुभ लक्षण है। चिंतना काव्य से सोहागिल भी हो जाती है और उसे बिगाड़ भी देती है। यदि कोई विचार खण्ड कवि को आत्मसाद नहीं हुआ है, यदि कोई मानसिक प्रत्यय कवि में भावमय होकर घुल-मिल नहीं गया है तो ऐसे चित्र सामने नहीं आ सकते जिनमें घुलावट हो। वह केवल गद्यमय तुकबन्दी सामने रख सकेगा। भावुकता में डूबी हुई चिन्तना ही किसी गीत का विषय हो सकती है। इसके लिए समय की अपेक्षा होती है। जिस प्रकार युगों के साथी होने के कारण, चाँदनी, झरने, हरी-हरी वनस्थली, चन्द, सूर्य और अग्नि अनेकार्थी भावुकता के साथ मानव हमारे पुराने साथी हैं और हम इनका रागमय वर्णन सामने रख सकते हैं उस प्रकार और उस घुलावट के साथ हम आज के बिजली का पंखा, रफ्रीजरेटर, फाउन्टेन पेन, अटैची केस, बाईसिकल इत्यादि इत्यादि के अपर्याप्त सहवास से यथेष्ट भावमयता के अभाव में उत्तम चित्र सामने नहीं रख सकते। जो बात रूप व्यापारों की है वही बात चिन्तना के प्रत्ययों की है। पर्याप्त समय के अभाव में वे भाव जगत में घुल मिल नहीं पाते अतएव किसी गीत को वे कच्चे विचार-काव्य नहीं बना सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य में लोक-हित की भावना

श्री अयोध्याप्रसाद ज्योतिषी 'विशारद'

वर्सफोल्ड नामक समालोचक का कथन है कि:—"Literature is the brain of humanity" अर्थात् साहित्य मानव समाज का मस्तिष्क है। उसमें मानव जाति के समस्त अनुभवों और विचारों का भण्डार सुरक्षित रहता है। जिन पुस्तकों का सम्बन्ध मानव के ज्ञान भाव से हुआ करता है वे साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकतीं। इसके अन्दर उन्हीं कृतियों का समावेश होता है जिनमें मानव जीवन के दुःख तथा सङ्कटों को क्षण भर भुलाने की तथा भावनाओं के सुन्दर लोक में भ्रमण कराने की शक्ति रहती है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। साहित्य के द्वारा समाज को अनुपम शक्ति मिलती है और समाज द्वारा साहित्य का भण्डार सदैव रत्नों और मणियों से जगमगाता रहता है तथा उसका विस्तार नित्य प्रति बढ़ता जाता है। अतः साहित्य में लोकहित की भावना होना नितान्त वांछनीय है। जो साहित्यकार लोकहित की भावना से दूर हट कर केवल कल्पना लोक ही में विचरण करते रहते हैं वे सफल कलाकार नहीं बन पाते। इसका केवल कारण यही है कि उनकी भावना जनसाधारण से दूर जा पड़ती है और इसलिये जो साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहता है, टूट जाता है। साहित्य का चरम उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है, इस विशिष्ट गुण से मानव समाज वञ्चित सा रह जाता है।

यह मान लेने पर कि कला में लोक-हित की भावना रहना नितान्त आवश्यक है, स्वभावतः तब यह प्रश्न उठता है कि क्या कलाकार अपनी रचनाओं को उपदेशों की पिटारी बनादे; क्या वह लोक-हित में इतना रम जावे कि अपनी कलाकृतियों को नीरस, बोझीली बनाये ?.यह हमारी आज की समस्या है। समस्या का हल मध्यम मार्ग अपनाने से हो सकता है। साहित्यकार न अपने पैर पृथ्वी से उखाड़ दे और न आकाश के उस पार से अपनी दृष्टि फेरले। लोक-हित त्यागने की भावना का निर्वाह 'कला के लिए कला' के समर्थक पश्चिमी साहित्यकार तक भी नहीं कर सके हैं।

हमारा हिन्दी साहित्य लोक-हित की भावना को ही लेकर अङ्कुरित हुआ है। वीर गाथा काल में कवि ऐसी उत्साह वर्धक, कटकटाती हुई वीर रसात्मक कविताएँ लिखते थे जो मुर्दों में भी वीररस का सञ्चार कर देती थीं। इस काल के कवि लेखनी के साथ ही साथ तलवार चलाना भी जानते थे। पृथ्वीराज को भारत का अन्तिम सम्राट बना देनेवाला चन्दवरदाई कवि ही था। यह काल मुसलमान और हिन्दू संस्कृति के युद्ध का काल था। देश में क्रान्ति हो रही थी, इसलिये इस युग में जो साहित्य लिखा गया है वह भी क्रान्तिकारी साहित्य है।

भक्तिकाल की रचनाएं तो लोकहित की भावना पर ही खड़ी की गई हैं। सूर, तुलसी, मीरा, कबीर ने समाज के शुष्क नैराश्यपूर्ण जीवन में जो सरसता, धैर्य, जीवन के प्रति मोह, ईश्वर के प्रति भक्ति, श्रद्धा तथा विश्वास का सञ्चार किया है, असंदिग्ध है।

यह हृदय खोलकर कहा जा सकता है कि रीतिकालीन काव्य में वासना-पूर्ण शृङ्गार की ही प्रधानता है। केवल 'भूषण' ही की कविताओं में लोक-हित की भावना प्रचुर-मात्रा में रही है। प्रायः सम्पूर्ण कवि लक्षण ग्रन्थों की अपूर्णता और सङ्कुचित विषयों पर ही कविता का पिष्ट-पेषण करते रहे हैं और इस कारण इनके द्वारा साहित्य उत्कर्ष की ओर अग्रसर न हो सका।

हमारा आधुनिक काल भारतेन्दु से आरम्भ होता है। वह राष्ट्रीय संग्राम की जागरण बेला थी, अतः जहाँ एक ओर इस भारतेन्दु मण्डल के कवियों में रीतिकालीन कवियों की रचनाओं की प्रतिध्वनि मात्र है वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत शंखनाद। इस समय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाओं में जन-भावना को छूती हुई जो सादगी और आग थी वह छायावाद और रहस्यवाद के समय में आकर कम हो गई, ठंडी हो गई। भारतेन्दु मण्डल के कवि कैसे ठोस समाज सुधारक थे यह प्रतापनारायण मिश्र के 'होली' लेख पढ़ने से ही विदित हो जाता है।

छायावादी तथा रहस्यवादी कवि 'प्रसाद', 'पन्त', 'निराला' आदि हमारे सामने आते हैं। इनमें लोक-हित की भावना कला का आवरण ही डाल कर रह गई। हाँ, हमारे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का सम्पूर्ण साहित्य इसी लोक-हित पर खड़ा है। भारती के मन्दिर का यह पुजारी राष्ट्र-प्रेम में रंग गया है। इन्हीं के साथ चलती हुई 'भारतीय आत्मा' की रचनायें भी राष्ट्रीय गीतों में अपना विशेष स्थान रखती हैं। 'दिनकर', सुभद्राकुमारी चौहान, भगवतीचरण वर्मा आदि भी लोक-हित की भावना को लेकर चले हैं। 'निराला' और महादेवी वर्मा में भी यह कम नहीं पर वे दूसरे रूप में हमारे सामने आती हैं।

अन्त में हमारे प्रगतिवादी कवि तथा लेखक आज इसी लोक-हित की भावना को आधार मान कर खेतों, खलिहानों के गीत सरल, स्पष्ट भाषा में गा रहे हैं। इन कवियों की रचनाएँ लोक-हित पर खड़ी हुई हैं पर वे सौंदर्य से, कला से खाली नहीं हैं। प्रगतिवाद आज के युग का पौधा है जो मानवता के लिये दानवी-शक्तियों के विरुद्ध एक सांस्कृतिक मोर्चा तैयार कर रहा है। इस प्रगतिवाद ने हमारे समाज को एक नई चेतना दी है। प्रगतिवाद 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के समन्वय का साहित्य चाहता है। वह ऐसे साहित्य का पक्षपाती है जो स्वस्थ, स्पष्ट, विवेकशील, कल्याणकर और सुन्दर हो। वह जटिलता और रहस्यवाद की गहरी खाइयों में नहीं जाना चाहता।

आज धीरे-धीरे साहित्य में लोक-हित की भावना बलवती तथा वेगवती होती जा रही है। लेकिन इस लोक-हित की भावना को जिस रूप में व्यक्त किया जा रहा है उसका रूप जन-जन के लिये बोधगम्य होने की अपेक्षा बौद्धिक होता जा रहा है। बौद्धिकता हमारे लिए गौरव की बात है पर बहुजनहिताय के लिए जिस रूप और सत्य की आवश्यकता है, वैसा साहित्य का निर्माण नहीं हो रहा है। किसी के शब्दों में 'जीवन की दृष्टि में प्रगतिवाद आजकल की सबसे ऊँची मञ्जिल है। और उसकी विशेषता इसी में है कि उसमें जीवन अधिक पूर्णरूप में ग्रहण किया गया है। अतः अब साहित्यकार को निष्क्रिय नहीं सक्रिय होना चाहिये। उसे ऐसे काव्यों की रचना करनी चाहिये जिससे मानव जाति सौन्दर्य पर मुग्ध हो, महत्व पर श्रद्धा करे, विपत्ति में धैर्य धारण करे, कठिन कर्म में उत्साहित हो, आदि।

इस प्रकार की कृतियों का सृजन करने ही पर साहित्यकार सच्चा साहित्यकार हो सकता है तथा उसकी कृतियाँ भी मङ्गलमय हो सकती हैं।

(पृष्ठ १८७ का शेष)

आलंबन 'खटमल' को लेकर की। उन्होंने 'खटमल बाईसा' नाम का ग्रन्थ रचा, उसका ही यह उदाहरण है :—

"जगत के कारन करन चारौ वेदनि के,
कमल में बसे वे सुजान ज्ञान धरि कै।
पोखिन अवनि, दुख सोसनि तिलोकन के,
सागर में बसे जाय सोए सेस सेज करि कै।
मदन जरायो जो संहारौ दृष्टि ही में सृष्टि,
बसे है बाहर बेअ भाजि हरि बरि कै।
विधि हरि हर, और बिनते न कोऊ तेऊ,
खाट पै न सोवैं खटमलनि के डरि कै।"

इस प्रकार प्राचीन साहित्य वाटिका में हास्य की सुन्दर-सुन्दर क्यारियाँ मन को खिला देने वाली पुष्पों से सुसज्जित दृष्टिगोचर होती हैं। ये रचनाएँ अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होती, इसका कारण यही था कि साहित्यिक वर्ग ने इस प्रकार की रचनाओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा, इसलिए लिखित रूप में संग्रहीत नहीं की गयी। यजमानों को सुनाने के लिए कवियों के मानस मोती कल कण्ठ से निसृत हो महाशून्य में विलीन होगए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत काव्य

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०

पाश्चात्य समीक्षकों ने गीतों के सम्बन्ध में बड़ी मीमांसा की है। किसी परिस्थिति, किसी भाव, किसी प्राण सम्पन्न विचार, किसी रूप-व्यापार पर कुछ ऐसी गेय पंक्तियाँ जो निज में पूर्ण और कवि के व्यक्तित्व में सनी रहती हैं—गीत कहलाती हैं। उसका प्रथम और मूल तत्व संगीत है। समीक्षकों का यह भी निष्कर्ष है कि जब कवि बाह्यार्थों से हट कर आभ्यन्तर की अनुभूतियों का गान गाने लगता है। तब गीतों की सृष्टि होती है। इस कविता को उन्होंने स्वानुभूति निरूपिणी (Subjective) कहा है और अन्य को बाह्यार्थ निरूपिणी (Objective) कहा गया है। उनके कथनानुसार समस्त गीतकाव्य स्वानुभूति निरूपक होता है। अँग्रेज समीक्षक बहुधा नाम की सृष्टि करके उसके चारों ओर अपनी व्याख्या पहनाने का प्रयत्न बहुत करता है। उस नाम का चलन कुछ समय तक रहता है और बाद का समीक्षक उसका खण्डन-मण्डन करता रहता है।

काव्य को बाह्यार्थ निरूपक और स्वानुभूति निरूपक दो वर्गों में बाँट देना स्थूल बुद्धि का काम है। कविता फोटो की भाँति बाह्यार्थों को अथवा दृश्य जगत के रूप व्यापारों को बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से सामने नहीं रखती। अन्यथा वह ललित कला न रह जायगी। बाह्यार्थों और बाह्यरूप व्यापारों की जो अनुभूतियाँ कलाकार के रागात्मक मन में अङ्कित होती रहती हैं उन्हें वह सामने रखता है। अतएव कविता प्रबन्ध के रूप में अथवा मुक्तक के रूप में हो वह तो स्वानुभूति निरूपिणी होगी ही। यह दूसरी बात है कि कवि स्वयं प्रथम पुरुष का रूप देकर अदृश्य रहे अथवा उत्तम पुरुष का रूप देकर सामने आवे। यह तो केवल लिखने की मौज है। इसका गीतकाव्य से कोई प्रयोजन नहीं है। गोस्वामीजी ने 'विनयपत्रिका' भी लिखी है जिसका कवि उत्तम पुरुष में है और 'रामगीतावली', 'कृष्णगीतावली' भी लिखी है जिसका कवि अन्य पुरुष में अदृश्य है। 'साकेत' के नवें सर्ग में उर्मिला के जो गीत हैं और 'द्वापर' में भी गीत हैं। परन्तु उनमें उत्तम पुरुष वाली शैली नहीं है। 'भारत भारती' में अन्यपुरुष का अदृश्य रूप नहीं है।

वास्तव में; पूर्ण रूप से अदृश्य, कवि तभी रह सकता है जब वह या तो नाटक लिखे या कोई प्रबन्ध काव्य लिखे। परन्तु बड़े-बड़े प्रबन्ध काव्यों के भीतर भी बीच-बीच की पंक्तियों में वह घुस जाता है; नाटकों के पात्रों में भी उसका लगाव सामने आ जाता है। यह उसकी कला की दुर्बलता भले ही कही जा सके परन्तु बड़ी-बड़ी सम्मान्य कृतियों में भी यह असावधानी उपस्थित है। अपनी अनुभूतियों पर आधारित अपने बलवान मन्तव्यों से अपनी पंक्तियों को बचाये रखना बड़े संयम की बात है। मन्तव्यों और मान्यताओं की ओर परोक्ष भाव से, तटस्थरूपेण, वस्तु को मोड़ना एक ऊँची कला अवश्य है। अन्यथा कवि के देन का मौलिक मूल्य ही कुछ न रह जायगा। इस ऊहापोह को केवल इसलिए किया गया है कि स्वानुभूति और बाह्यार्थ विभेद मौलिक नहीं है उन्हें केवल स्थूल भेद समझना चाहिए।

पाश्चात्य समीक्षकों ने एक बात और कही है। वे कहते हैं कि कवि के विकसित रूप, परिपक्व रूप, पूर्णरूप की देन 'गीत' हुआ करते हैं। अनुभूतियों का संग्रहालय जब इतना पूर्ण हो जाता है कि वह कवि में अट नहीं पाता तो वह गीतों में छलक पड़ता है। अनुभूतियों की यह कोष वृद्धि आयु के उतार के साथ ही सम्भव है। अतएव गीतों की सृष्टि भी कवि के अन्तिम युग की देन होती है। आरम्भ प्रबन्ध काव्य अथवा अन्य प्रकार के काव्यों से होता है और अन्त गीतों से किया जाता है। कवि किसी आकार-प्रकार के बन्धन से बँधा नहीं समझता। उन्मुक्त होकर उत्तम पुरुष की उन्मत शैली में गाने लगता है। यह कवि-जीवन का इतिहास है।

यह सच है कि अनुभूतियों की अमीरी आयु के विस्तार के साथ आती है और यह भी सच है कि कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने परिपक्व जीवन में आकार बोधिनी सीमाओं की परवाह नहीं करता। उसी प्रकार यह भी सत्य है कि गीत तत्व प्रौढ़ जीवन में अधिक अधिकार कर लेता है। परन्तु यह सत्य नहीं है कि प्रौढ़ जीवन में ही गीत लिखे जाते हैं अथवा प्रौढ़ जीवन में गीत लिखने का केवल यही कारण है, अथवा सभी कलाकार गीत ही अन्त में लिखते हैं, प्रबन्ध नहीं लिखते। यह भी पूर्ण रूप से सत्य नहीं कि अनुभूतियों की बाढ़ के कारण हमेशा प्रबन्ध काव्य से आरम्भ करके कवि गीतों से अन्त करता है। अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, जर्मन इत्यादि सभी भाषाओं के इतिहास से पता चलता है कि बहुत से ऐसे ऊँचे कलाकार हैं जिन्होंने कभी गीत लिखे ही नहीं और बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने गीतों के अतिरिक्त कुछ नहीं लिखा। संस्कृत भाषा में तो प्रबन्धों की इतनी भरमार है कि गीतों का साहित्य में कोई विशेष मूल्य ही नहीं है। सारे चोटी पर के कलाकारों ने प्रबन्ध ही लिखे हैं। हिन्दी में भी केवल गीत लिखने वाले अथवा केवल प्रबन्ध लिखने वाले अथवा दोनों लिखने वाले जिनके लेखन इतिहास का क्रम पहले प्रबन्ध और फिर गीत नहीं है बहुत मिल जायँगे। कविवर मैथिलीशरणजी ने 'भारत-भारती' कदाचित अपने सब प्रबन्ध काव्यों से पहले लिखी है। 'वैदेही बनवास' हरिऔधजी ने बहुत से गीतों के बाद लिखा है।

फिर भी पाश्चात्य समीक्षकों के निष्कर्ष में आंशिक सत्य अवश्य है। परन्तु उसका कारण कहीं और है। विश्व की समस्त भाषाओं में जिन कृतियों का सार्वभौमिक और सर्वकालीन आदर है और जिन्हें उदात्त साहित्य (Classic Literature) कहते हैं, वे प्रबन्ध के रूप में ही अधिक हैं। प्रबन्धों में वर्णन द्वारा जो विश्व की महान् योजना उपस्थित की जाती है उसकी विशालता, सङ्कुलता, प्रभविष्णुता, अनेकार्थता तथा उदात्त कामना का प्रभाव बड़ा व्यापक और गहन पड़ता है। परन्तु महाकाव्य की महान योजना और वर्णन-चातुर्य के लम्बे तनाव को साधना सरल नहीं है। उसके लिये अनुभूतियों की अनेकरूपता और भावना की गहनता तो चाहिये ही, बुद्धि और कल्पना का विस्तृत प्रयोग भी चाहिये जिससे कथा वस्तु का विस्तार, घटनाचक्र की सजावट, चरित्र निर्माण-कार्य, घात-प्रति घात और अन्तर द्वन्द्व के सहारे एक महान पृष्ठ भूमि के भीतर विभिन्न और अनेकार्थी रसों के नाना रङ्गों में चमक सके। कलाकार का निर्माण कार्य इतना वृहद हो जाता है कि उसको बड़ा चौकस और सतत जागरूक रहना पड़ता है। उसके ताने-बाने का प्रत्येक सूत्र उसके समक्ष रहता है और कहीं कोई भी उलझने नहीं पाता। यह समस्त कार्य बड़े अध्यवसाय, परिश्रम और जागरूकता की अपेक्षा करता है जो आयु के उतार में शिथिल चेतना कर नहीं पाती अथवा ऐहिक थकावट के कारण करना भी नहीं चाहती। अतएव अपनी देन को छोटे-छोटे टुकड़ों में सामने रखती है। ये गीत का रूप ग्रहण करते हैं। गीतों के जीवन के अवसान काल में प्रकट होने का सबसे महान् कारण यही है। साहित्यिक जीवन का मेरा भी यही अनुभव है। मैंने गीत नहीं लिखे परन्तु मुझे अपनी बात और अपने अनुभवों को एक लम्बे तनाव के भीतर किसी बड़े आकार प्रकार में सामने रखने में श्लथ और कातरता मालूम होती है। आयु के उतार में तत्परता और चौकन्नापन के लिये बुद्धि जल्दी से प्रस्तुत नहीं होती यद्यपि उसकी अनिवार्य आवश्यकता एक महान काव्य में पड़ती है।

कुछ लोगों का यह भ्रम है कि गीतों का कार्य अत्यन्त संक्षेप रूप में किसी तथ्य को सामने रखना है। गीतों में गेय तत्व की ही प्रधानता होनी चाहिये। उसमें संक्षिप्त करने की कला अपेक्षित नहीं है। तथ्य के आकार का छोटा होना दूसरी बात है और बड़े तथ्य को छोटे करने का प्रयास करना दूसरी बात है। गीत लम्बे और बड़े भी हो सकते हैं। वर्तमान कवियों के बड़े लम्बे लम्बे गीत देखे गये हैं। परन्तु गीत एक सीमा से बड़े नहीं हो सकते। संगीत के अङ्क में बँधा हुआ तथ्य उतने ही काल तक मन पर प्रभाव डाले रह सकता है जितने समय तक श्रोता संगीतमय रह सकें और तथ्य उचट न जाय। गीत में एक तथ्य के साथ-साथ एक ही निवेदन, एक ही रस, एक ही परिपाटी होती है। उसका प्रवेश भी एक ही प्रकार का होता है। अतएव वह मन को केवल कुछ समय तक के

(शेष पृष्ठ १७४ पर देखिये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कविता का दिशान्तर

श्री बुद्धसैन शर्मा एम० ए०, एल० टी०

भारतीय साहित्य-क्षेत्र में अभी कुछ दिन पहले तक पर्याप्त उथल-पुथल और अव्यवस्था रही है। संक्रमण-काल की ओट में व्यक्तिवाद की दुहाई देकर न जाने कितनी अनर्गल धारणायें और कितने बे सिर पैर के सिद्धान्त सहसा प्रचलित हो गये जिनसे साहित्यिक वातावरण इतना फेनिल हो गया कि यह ज्ञात करना अत्यन्त कठिन हो गया कि हम लोग किधर जा रहे हैं। यह वह समय था जबकि अच्छे-अच्छे साहित्य-सहारथी भी सन्तुलन खो बैठे थे। द्विवेदीकाल की घोर इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता के प्रति जो प्रतिक्रिया आरम्भ हुई उसके अपनाने में रूढ़िग्रस्त बुद्धिजीवियों ने घोर विरोध किया किन्तु वे समय की आवश्यकताओं की अवज्ञा न कर सके। क्रान्ति होकर ही रही परन्तु इस क्रान्ति के अभिप्राय को समझने में नवोत्थित कवियों ने अवश्य भूल की। वे यह तो न समझ सके कि युग बदल गया है, उसकी समस्यायें बदल गई हैं और उसके नैतिक धार्मिक और राजनीतिक विश्वास बदल गये हैं और फलतः साहित्य का उत्तरदायित्व और क्रान्तिकारी महत्व भी बदल गये हैं परन्तु हमें यह दुःख के साथ स्पष्ट करना पड़ता है कि वे भूल से यह समझ बैठे कि अब कविता करना आसान हो गया है और अस्वस्थ प्रेम, वेदना और अतृप्त वासना के गीत गाने सरल हो गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस विकृति का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व उस समय की हमारी अप्रबुद्ध सामाजिक चेतना और निराश जीवन की भीषणता पर है, परन्तु यह तो सत्य ही है कि तब का मनुष्य जीवन का विश्वास खो चुका था। 'रोजी का अभाव, रुपये की कमी और बेकारी से जन्मी हुई निराशा संसार के विराग का रूप ले रही थी और दैनिक जीवन की कठिनाइयों से घबराया हुआ कवि 'उस पार' चल देने के लिये और नहीं तो एक भग्न तरी ही खोज रहा था।' इसी युग का नाम छायावाद युग है जिसे बहुधा "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह" कहा जाता है। कुछ भी हो यह कविता का वैराग्य युग था और कवि युग की समस्याओं का समाधान खोजते खोजते मार्ग भटक गया अथवा यों कहिये कि कवि अपना उद्देश्य भूलकर मार्ग की फूल पत्तियों से खिलवाड़ करने लगा।

छायावाद जीवन की वास्तविकताओं से भागना ही सिखा पाया। उसमें वह दृढ़ता और काठिन्य नहीं था जो जीवन पर स्वस्थ प्रभाव डालता और उसे सब प्रकार से पुष्ट और मांसल बनाता। इसका स्वरूप भी सन्ध्या के रंगीन मेघ खण्डों की भाँति अनिश्चित ही रहा। एक बायवी, धूमिल सौन्दर्य का कुहासा चारों ओर छा गया और एक अतीन्द्रिय तरलता, भावों की कोमलता के रूप में विह्वलता सी बन कर फैल गई। दिनकर के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "छायावादी कवियों का प्रवास कर्त्तव्यनिष्ठ गृहस्थ का प्रवास नहीं प्रत्युत उस बालक का पलायन था जो अपने आस-पास मन के अनुकूल वातावरण नहीं पाकर घर से भाग निकलता है।"

छायावाद की सीमायें अवश्य थीं परन्तु छायावाद की देन भी हमारे लिये नहीं है। यदि कुछ सहृदयता से विचार किया जाय तो हम इस परिणाम पर शीघ्र ही पहुँच जाते हैं कि छायावाद ने पूर्ववर्त्ती संकुचित सीमाओं को तोड़ अनेक नये क्षेत्रों का अनुसन्धान किया था। कवि की कल्पना अब बीरी से लेकर कुंजर तक और पृथ्वी से लेकर आकाश तक अवकाश प्राप्त कर चुकी थी। कहने के अनेक टेढ़े सीधे ढङ्ग और विषय प्रतिपादन की अनेक नवीन सुन्दर और चमत्कार पूर्ण शैलियाँ निकल आईं। छन्दों के क्षेत्र में तो जो क्रान्ति इस काल में हुई वह हमारे साहित्य की कदाचित सबसे महत्वपूर्ण घटना है। यह एक प्रकार से वैयक्तिकता का युग था। इस काल का कवि अपने व्यक्तित्व के प्रति अधिक जागरूक था। "पिछले दो हजार वर्षों का भारतीय साहित्य कवि के व्यक्तित्व को खोता आया है। कवि जनसाधारण के दुखों से हटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही द्वारा निर्मित बन्धनों में बँधता आया है, वैयक्तिकता की स्वाधीनता को छोड़कर वह 'टाइप' रचना की पराधीनता को स्वीकार करता आया है।" यह मेरे शब्द नहीं बल्कि साहित्य महारथी श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के हैं। छायावाद वास्तव में ही कवि के व्यक्तित्व की छाप का अधिक आग्रह लिये हुए था। उसमें रूढ़िवाद के प्रति एक भयानक विद्रोह था। इस विद्रोह की उष्णता से रूढ़िवाद बुरी तरह झुलस गया। शताब्दियों से अटल माने जाने विश्वासों की जड़ें टूट गईं और अन्धविश्वासों की रीढ़ चूर हो गई। उस निराशा और वेदना मिश्रित तितिक्षा के युग में भी जीवन भीतर से शुद्ध होने लगा, उसकी आन्तरिक सफाई अवश्य होने लगी। प्रकृति के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण अपनाया गया। इसका किंचित आभास देने के लिये मैं श्री 'नेपाली' जी की निम्न पंक्तियों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता:—

"जितने भी हैं उसमें कोटर,
सब पंछी गिलहरियों के घर।
सन्ध्या को दिन जाता ढल,
सूरज चलते हैं अस्ताचल।
कर में समेट किरणें उज्ज्वल;
हो जाता है सुनसान लोक,
चल पड़ते घर को चील बोक।
भर जाता है कोटर कोटर,
बस जाते हैं पत्तों के घर;
घर घर में आती नींद उतर।"

इस परिवर्तित दृष्टिकोण का एक बड़ा ही स्वस्थ प्रभाव पड़ा और वह यह कि इस काल के कवि अपने लिये प्रकृति से अपार मानसिक खाद प्राप्त कर सके। छायावाद का प्रकृति चित्रण अवश्य अपने विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। इस युग ने हमें कुछ विशिष्ट विभूतियाँ दीं और इस पर कदाचित् ही दो मत हो सकें कि भक्तिकाल के पश्चात् हिन्दी साहित्य का यदि कोई महान् और महत्व-पूर्ण समय आया तो वह यही युग हो सकता है (मैं आज तक ही की बातें कर रहा हूँ क्योंकि आज की प्रयोगवादी कविता भी अपने में अनन्त शक्ति सम्भावनाओं को छिपाये हुए है) छायावाद की यही विशेषता है और यही उसकी सीमा। अस्तु।

छायावाद के दोनों पक्षों पर विचार करने के पश्चात् भी निष्कर्ष यही निकलता है कि वह जीवन के वास्तविक सुखों से दूर अपने एक मधुर कल्पना लोक में विचरण कर रही थी। वह पृथ्वी को हेय और आकाश को श्रेष्ठ समझती थी। जीवन की कठोर वास्तविकता का समाधान उसके पास नहीं था। सन् ३५ के लगभग से ही हिन्दी के कवियों में छायावाद के भावतत्व और रूप आकार के प्रति एक असन्तोष उत्पन्न होगया था, और धीरे-धीरे यह धारणा दृढ़ होती जा रही थी कि छायावाद की अपनी भाववस्तु और उसके अनुरूप अत्यन्त बारीक तथा सीमित काव्य सामग्री एवं शैली-शिल्प आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति करने में सफल नहीं हो सकते। छायावाद में आत्मा की क्षीण पुकार थी। उसमें जीवन को स्पन्दनशील करने की भीषणता नहीं। उसमें एक विशेष कीकापन था, ठोसपन नहीं। वह एक सीमा पर आकर जीवन का घुन बन गई थी और ऐसी शक्ति को एक अंग्रेजी विद्वान् ने इस प्रकार कहा है:—"All that brings drowsiness and makes us shut our eyes to reality around on the mastery of which alone life depends is a message of decay and death."

वे सभी वस्तुएँ जो हमें जीवन की वास्तविकताओं से विमुख करती हैं वे हमें विनाश का सन्देश देती हैं क्योंकि बिना अपने वातावरण पर विजय प्राप्त किये जीवन का विकास सम्भव नहीं, इस प्रकार समाज को जगाने के स्थान पर उसे बेहोशी के डोज दिये गये। छायावाद उस फूहड़ माँ की भाँति था जो अपने बच्चों को इसलिए अफीम खिला देती है कि वह रोकर उसके गृहकार्य में बाधा डालता है। बच्चों के स्वास्थ्य का ध्यान वह नहीं रखती। छायावाद ने भी समाज के प्रति इस क्षेत्र में लगभग ऐसी ही क्रिया।

हम अधिक दिनों तक छायावाद की सुखद छाया में नहीं बैठ सके, क्योंकि भीड़ की भीड़ समस्यायें हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं। हमें खोखले जीवन का आनन्द फीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगने लगा और छायावाद का रुग्ण सौन्दर्य, प्रेमतत्व बिलकुल नीरस प्रतीत होने लगे। इकबाल के शब्दों में हम सुप्त साहित्यिकों को जगाने लगे:—

"इश्कों मस्ती का जनाजा है तखैयुल इनका,
इनके अन्देशये तारीक में कौमों के मजार।
चश्मये आदम से छिपाते हैं मौका पाते बुलन्द,
करते हैं रूह को सादीदा बदन को बेदार।
हिन्द के शायरो! सूतगरो अफसाना नबीस,
आह बेजारों के आसाब पै औरत है सवार।"

हमारे कवि अपनी संकुचित सीमा से बाहर आये और आकर उन्होंने जो पतन देखा तो उनकी आँख खुल गईं। उस दिन से····रूठा कवि फिर अपने छायालोक को नहीं लौटा। आज वह दीनों का हिमायती है, कायरों का काल है और वीरों का भाई है। आज उसमें जीवन के प्रति एक नयी आस्था उत्पन्न हो गई है। उसमें आज वह शक्ति आगई है कि उसे भी यह विश्वास होने लगा कि वह निर्जीवों में जीवन फूँक सकता है, सोतों को जगा सकता है, कायरों को कर्मठ बना सकता है और जीवन की दौड़ में हारे हुए प्राणियों को नवीन उत्साह और आशा से मण्डित कर सकता है। अब वह भी समझने लगा है कि:—

"सितारों से आगे जहाँ और भी हैं,
अभी इश्क के इम्तहाँ और भी हैं।
तू शाही है परवाज है काम तेरा,
तेरे सामने आसमाँ और भी हैं।"

परन्तु यह ध्यान में अवश्य रखना चाहिए कि जिस प्रकार छायावाद का प्रारम्भ एक अस्पष्ट लक्ष्यहीनता को लेकर हुआ था उसी प्रकार प्रयोगवादी कविता भी कुछ दिनों तक अपना स्वरूप निश्चित न कर सकी और उसने भी छायावाद की सूक्ष्मता की वह अवांछनीय और भद्दी प्रतिक्रिया प्रदर्शित की कि जिसे देख कर स्तम्भित रह जाना पड़ता है। कुछ दिनों तो इस प्रतिक्रिया ने चारों ओर एक कुरुचि फैलादी और कवि यों ही कविता के विषय ढूँढने लगे। जो भी कवि कविता करता था वह 'मजदूर, भिखारी, कृषक और शोषितों' को काव्य कौशल की कसौटी बनाने लगा।

हम इसी प्रकार की निरंकुश और भद्दी रुचि को ही सबसे अधिक खतरनाक समझते हैं क्योंकि वह तो नवीनता और वास्तविकता की झोंक में वाणी के पवित्र मन्दिर अपवित्र करता है। सब जानते हैं कि साहित्य हमारी समस्त अदिम वृत्तियों के परिमार्जन का साधन है। यदि हमारी रुचियों का परिष्कार इसके द्वारा न हो सका तो सब व्यर्थ है।

यह स्थिति कुछ ही दिनों तक रह पाई और कुछ ही दिन की साहित्यिक स्थिरता के पश्चात् हमारे कवियों ने बुद्धिमानी पूर्वक यह निश्चय कर लिया कि जिस समाज के दाने पानी से उनकी रचना और विकास हुआ है उसके प्रति भी उनका कुछ कर्तव्य है। उनका ध्यान ईश्वर से हटकर मनुष्य की ओर गया। उसका दृष्टिकोण अधिक बौद्धिक हो गया और उसे मनुष्य की श्रेष्ठता का अनुभव होने लगा:—

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

जीवन में मनुष्य के इस महत्व की प्रतिष्ठा करने के पश्चात् उसे मृत्यु से अधिक लगाव न रह गया और वह ताज को देख वेदना से फूट पड़ा—

हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन।
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन॥
मानव! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति।
आत्मा का अपमान प्रेम और छाया से रति॥

इससे पहिले कि आधुनिक कविता की विशेषाओं और मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों का संक्षेप में उल्लेख किया जाय यह बताना आवश्यक हो जाता है कि प्रगतिवादी कविता करने वाले कवियों की साधना के दो मार्ग हो जाते हैं। एक तो कवियों का मार्ग है जो ध्वंस में विश्वास करते हैं। इस श्रेणी में दिनकर, अञ्चल, भगवतीचरण वर्मा आदि आते हैं और दूसरे मार्ग के अनुयायी निर्माण को उद्देश्य मानकर चले हैं। इनके मार्ग प्रदर्शक पन्तजी हैं। स्वयं पन्तजी कहीं-कहीं अवास्तव सामाजिक और नैतिक रूढ़ियों को तोड़ने के पक्षपाती हैं। पन्तजी की हम निम्न लिखित पंक्तियों को पढ़ते हैं तो हमें ज्ञात होता है किस प्रकार उनका वस्तु परक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण नुकीला होगया है और साथ-साथ उनपर पड़ा हुआ फ्राइड युग आदि का प्रभाव लक्षित होता है।

धिक रे मनुष्य, तुम स्वच्छ, स्वस्थ, चिरछल चुम्बन।
अङ्कित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर॥

× × ×

क्या क्षुधा काम तृष्णा औ स्वप्न जागरण सा सुन्दर।
है नहीं काम भी नैसर्गिक जीवन द्योतक॥

हमें विश्वास है कि पन्तजी ने समाज के लिये यह एक चुनौती दी है परन्तु इसे स्वीकार करने का समय अभी नहीं आया। अभी हम लोग उस वैज्ञानिक दृष्टि को प्राप्त ही नहीं कर सके हैं जो आजकल के भयङ्कर विश्रृङ्खल जीवन को सन्तुलन और सामञ्जस्य प्रदान करे, एक दूसरे स्थान पर पन्तजी ने शताब्दियों की इन नैतिक कड़ियों को तोड़ डाला है—

मन से होते मनुज अपावन,
रज की देह सदा से कलुषित।
प्रेम पतित पतित पावन है,
तुमको रहने दूँगा मैं न कलङ्कित॥

और:—

पत्नि पत्नी का सदाचार भी नहीं-
मात्र परिणय से पावन।"

इसके अतिरिक्त डाक्टर देवराज ने नीचे लिखी पंक्तियों की बड़ी प्रशंसा की है:—

हट्टी कट्टी काठी चौड़ी
इस खण्डहर में बिजली सी उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी!

फिर:—

'अन्धकार सी गुहा सरीखी इन,
आँखों से डरता है मन।"

यह पन्त और उनकी सृजनात्मक प्रगतिशील कला है। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है एक शाखा ऐसे भी कवियों की है जो प्राचीन का ध्वंस और नवीन का निर्माण करना चाहते हैं। मैं तो इस क्षेत्र में दिनकर को अग्रगण्य समझता हूँ परन्तु एक विद्वान ने अभी यह निश्चय किया है कि दिनकर के विस्फोट में इतनी शक्ति नहीं जो उन्हें प्रगतिवाद की नवीनतम चेतनाओं के साथ-साथ ले चले।

'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' के अनुसार मैं ऐसा नहीं मानता। इसके कई एक कारण हैं। दिनकर में जीने की अदम्य लालसा है और वह सूर्य की प्रखरता से प्रकाशोद्घोषित है। जब तक जीवन है तब तक ऐसा विस्फोट कभी भी महत्व हीन नहीं हो सकता। बानगी के तौर उनकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं—

सिन्धु नहीं सर कहो उसे चञ्चल जो नहीं तरङ्गों से।
मुर्दा कहो उसे जिसका दिल व्याकुल नहीं उमङ्गों से॥
मिट्टी का यह घर सँभालो बनकर कर्मठ सन्यासी।
पा सकता कुछ नहीं मनुज बन केवल व्योम प्रवासी॥

दिनकर के अतिरिक्त और भी कवियों ने ध्वंस का राग गाया है। कोकिल से पावक-कण बरसाने का अनुरोध किया है और जीर्णशीर्ण पुरातन का ध्वंस कराया है।

अन्त में हम इतना ही कह सकते हैं कि प्रगतिवादी कविता के क्षेत्र में जो कुछ भी हुआ है यद्यपि वह सन्तोषजनक नहीं परन्तु आशाजनक अवश्य है। यह कविता जिस दिन पृथ्वी और आकाश के मिलन बिन्दुपर आकर सामञ्जस्य का राग अलापेगी वह हिन्दी संसार के लिए कितना शुभ दिन होगा।

परीक्षार्थी प्रबोध भाग १, २, ३

तैयार हैं। यह सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा, व साहित्य रत्न तथा हिन्दी की एम० ए० की परीक्षाओं के लिये एक अनोखी पुस्तक है। मूल्य प्रत्येक का ३) ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेगी।

प्राप्तिस्थान—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु का व्यक्तित्व

प्रो० चन्द्रप्रकाश वर्मा एम० ए०

आज से एक शताब्दी पूर्व हिन्दी साहित्य के धूमिल क्षितिज पर एक चन्द्रमा का उदय हुआ था। चन्द्रमा, जिसे उदय मिला था पर अस्त नहीं। चन्द्रमा यदि नष्ट भी हो जावे तो संसार में चन्द्र का नाम नष्ट न होगा। उस भारतेन्दु की किरणों ने भी अमृत पिया था। इसलिए वे किरणें विस्मरण के विष से काली न बन सकीं। वह प्रकाश और उस प्रकाश की स्मृति—दोनों ही आज हमारे बीच हैं। जिस भाँति देह से नाम जुड़ा है उसी भाँति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—यह नाम हिन्दी-साहित्य से सम्बद्ध है।

मैं जब किसी हिन्दी-साहित्यकार के सम्बन्ध में विचार करता हूँ तो उसका मानव-पक्ष मुझे सर्वाधिक प्रिय लगता है। यह पक्ष मुझे प्रभावित करता है। कलाकार की कला यदि जीवन से न फूटे तो उसे शब्द, मूर्ति तथा झंकार में खोजना व्यर्थ है। हृदय का धनी ही साहित्य का धनी हो सकेगा। भारतेन्दु हृदय के धनी थे। एक ऐसा हृदय विधाता की भूल से उन्हें मिल गया था जिसके सम्मुख सम्भवतः समस्त विश्व-याचना सनाथ हो सकती थी। रजत-खण्डों का लोभी मानव-सर की रत्नावलियों का दान किस प्रकार कर सकेगा? भारतेन्दु की प्रथम विशेषता चरम आसक्ति के बीच उनकी अनासक्ति ही थी।

धन-कुबेर सेठ अमीचन्द का वंशज धन का लोभी न हो, भला विश्वास की बात है? पर थे ऐसा ही। भारतेन्दु ने रजत-कञ्चन को मिट्टी मान लिया था। मिट्टी से मोह कैसा! धन की ऐसी उपेक्षा क्यों? मैं सोचता हूँ कि वस्तु का प्राचुर्य ही उसकी महत्ता कम कर देता है। मूल्य अभाव में है और उपलब्धि में संभवतः अनादर। भारतेन्दु के जीवन का प्रारम्भ परिपूर्णता का काल था। संभवतः इस कारण ही कवि के हृदय में धन के प्रति एक सहज उपेक्षा का भाव आ गया था। साधना सदा दुर्लभ की होती है। सुलभ तो अपनी नवीनता नष्ट कर सदा साधारण बन जाता है। धन का प्राचुर्य और उसका पूर्ण उपभोग सम्भवतः धन की महत्ता को धूल धूसरित कर देता है। भारतेन्दु ने दोनों हाथ धन उलीचना आरम्भ किया। महाराज काशीराज ने उन्हें समझाया। भारतेन्दु का उत्तर था—'इस धन ने मेरे पूर्वजों को खा डाला, मैं अब इसे खा डालूँगा।'

प्रेम-तत्त्व की साधना भारतेन्दु की दूसरी विशेषता है। वे प्रेमी थे और प्रेम के चन्दन तथा प्रेम की ज्वाला दोनों से परिचित थे। दोनों से उन्हें समान अनुराग था। इस प्रेम को कैसी स्पष्ट मान्यता उनके द्वारा मिली। उनका कथन था—'एक प्रेम है, एकहि प्रन है, हमरो एकहि बानो।' यह प्रेम का तत्त्व उनकी कृतियों में विभिन्न स्वरूप लेकर बिखर गया है। प्रिय-प्रेम, ईश-प्रेम, देश-प्रेम, भाषा-प्रेम—इसके अनेक रूप हैं। चन्द्रावली नाटिका तो प्रेम-देवता की प्राण-पुष्पों द्वारा पवित्र पूजा ही है। इसमें प्रेम की धारा सहस्रमुखी होकर भावना के भूमि-क्षेत्र में प्रवाहित हुई है। इन शब्दों में कृष्ण की कठोरता और चन्द्रावली की मनोव्यथा कितनी मार्मिकता से प्रकट हुई है—'भामिनी तें भौड़ी करी, मानिनी तें मौड़ी करी, कौड़ी करी हीरा तें, कनौड़ी करी कुल तें।'

यह प्रेम का तत्त्व भारतेन्दु के साहित्य में क्यों, कैसे और कहाँ से आया? मैं लिख चुका हूँ कि वस्तु का प्राचुर्य ही वस्तु के प्रति हमें उदासीन बनाने में समर्थ है और वस्तु का अभाव उसके संचय के प्रति हमें प्रयत्नशील बनाता है। जो है उसकी चाह नहीं रहती और जो नहीं है उसकी खोज में मानव व्यग्र हो उठता है। भारतेन्दु के जीवन-वृत्त में धन का व्यय और प्रेम का संचय—दोनों ही बातें परिस्थिति वश प्रमुखता पा सकीं। जीवन के प्रभात में बालक को स्नेह-सिक्त बनाने वाली प्रबल वात्सल्य-भावना का उद्गम माता-पिता का हृदय ही होता है। जो कभी माता-पिता के हृदय का यह सहज स्नेह नहीं पा सके हैं उनका हृदय सदा ही इस जीवन-रस का भूखा रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्भाग्य की काली छाया भारतेन्दु पर पड़ कर ही रही। शैशव में ही वे माता-पिता के स्नेह से बंचित हो गए। उनके हृदय की समस्त कोमल वृत्तियाँ सहसा ही अनाथ हो गईं। उस क्षण प्रेम के लोक में उनके समान रंक और कौन होगा। जिस तत्व के अभाव की प्रथम अनुभूति उन्हें जीवन में हुई, उसी प्रेम-तत्त्व की साधना में वे संलग्न हो गए। अभाव सदय का प्रेरक है। परिणाम स्वाभाविक था। उनकी कृतियों में प्रेम का रत्नाकर तरंगित हो उठा। भारतेन्दु और उस प्रेम-रत्नाकर के बीच ऐसा ही सहज सम्बन्ध था जो पूर्णिमा के दिन पूर्ण-चन्द्र और सिन्धु के बीच होता है। ये प्रेम की किरणें जीवन के बहुरङ्गी शीश-महल पर पड़ीं और वह प्रेम बहुरङ्गी बन गया।

भारतेन्दु के व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता उनका विनोद है। उनका हास आज भी हमें हँसाता है और हमारी आंखों के आंसू आंखों में न उमड़ने की शपथ भी खा लेते हैं। पर फिर भी वे उमड़ते ही हैं। क्योंकि भारतेन्दु की लेखनी हमें सदा विवश बनाकर ही हँसाती-रुलाती है। भारतेन्दु के हास की अर्थमयी मधुर ध्वनियां आज भी एक सम्पूर्ण शताब्दी के शीश पर नृत्य करती हुई, हम तक आ गई हैं। मैं भारतेन्दु के विनोद को बड़ा रहस्यमय मानता हूँ। वह साधारण परिहास न था। वह किसी विदूषक की कौतुकमयी विडम्बना नहीं है। वह एक दार्शनिक का हास है जो जग-जीवन की अनित्यता और मानव-अभिलाषाओं की निस्सारता पर मुस्करा उठता है। मन के वेदना प्रवाह को जब पलकों के बांध रोक नहीं पाते तो वह आंसू के अतिरिक्त अधरों के बँधे तट फोड़ उदास मुसकानों के रूप में भी झर जाती है। अंधेर नगरी के अंतर्गत कुँजड़िन की यह पुकार—लो हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर—यह साधारण विनोद मात्र नहीं किन्तु रुदन की सिसकियां भरते भरते हँस पड़ना ही है। ये वाक्य भी मेरे कथन का समर्थन करेंगे—'वेद, धर्म, कुल मरजादा, सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल, ले टके सेर।' प्रेम-जोगिनी नाटिका के अंतर्गत परदेशी का कथन कि देखी तुमरी काशी, लोगों देखी तुमरी काशी—भारतेन्दु में इसी विनोद-व्यथा की संधि है।

अंत में इस महान व्यक्तित्व की विशेषताओं के संबंध में एक बात और कहनी है। नगर-निवासी भारतेन्दु ने प्रकृति के निकटतम सम्पर्क में आने का प्रयत्न कभी नहीं किया। जो प्रकृति उनके पथ में आ गई उसका तो उन्होंने अभिनन्दन किया परन्तु आराधना के लिए उसका अनुसंधान उन्होंने नहीं किया। वे स्वभाव से नागर थे तथा नगरों के प्रेमी थे। भव्य प्रासादों और अट्टालिकाओं के बीच ही उन्होंने ऋतुओं के परिवर्तन देखे। वसन्त उनके सभा-भवन का सेवक था। पावस को उन्होंने गृह-उपवनों में मंद-गति से चलते हुए फुहारों में देख लिया था। सावन की घिरी घटायें छवि की अलकों के अंधकार में छिप गई थीं। ग्रीष्म की उष्णता विभव-विलास का उन्माद बन चुकी थी और शीतकाल का कम्प सुखों के रोमाँच में लीन था। मानव-सौन्दर्य और मानव कार्य-कलापों पर मुग्ध होने वाला उनका मन अंत तक प्रकृति से अभिन्न न बन सका। 'सत्य हरिश्चन्द्र' की गंगा और 'चंद्रावली' की जमुना भी मानव-जीवन की चित्रावलियों को अपनी-अपनी तरंगों पर सजाए हैं। प्रकृति के सहज सौन्दर्य को देखने की बेला संभवतः उन्होंने जीवन की किसी अन्य अवधि को दे रखी थी किन्तु दुर्भाग्य से वह बेला, वह अवधि, उन्हें छल गई। वह कभी न आई और उनकी जीवन-कथा सहसा समाप्त हो गई। अब तो भारतेन्दु के ही शब्दों में वह कहना भर शेष रह गया है—

कहैंगे सबै ही, नैनन नीर भरि-भरि पाछै—
प्यारे हरिचंद की कहानी रह जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन हिन्दी साहित्य में हास्य रस

श्री गङ्गाप्रसाद कम्मठान, बी० ए०

हिन्दी के प्राचीन साहित्य में शृंगार, वीर, करुण आदि रसों का आंशिक आविर्भाव तो प्रचुरता से प्राप्त होता है किन्तु हास्य रस की न्यूनता ही सर्वत्र होती है। इससे यह अभिप्राय नहीं कि हिन्दी के प्राचीन महारथी हास्य रस की शैवालिनी साहित्य में प्रवाहित करना नहीं जानते थे। अथवा उनमें 'जिन्दादिली' न थी। अपितु इसका कारण अन्य ही है। भारतीय साहित्य परंपरा में हास्य को शृंगार रस का सहयोगी ही स्वीकृत किया गया है। भरत मुनि ने प्रधान रस केवल चार ही माने—शृङ्गार, वीर, वीभत्स और रौद्र परन्तु हास्य को शृंगार का ही अंग माना और अंग अंगी से कभी अलग नहीं हो सकता। अतः परिणाम स्वरूप हास्य रस की स्वतंत्र रचना स्वतः कम हुई तथा जिन कवियों ने केवल हास्य को वर्ण्य विषय बनाया उनका साहित्य अशिष्टता की कोटि का भागी बना।

कवि की स्वतंत्र पथ गामिनी जन्म-जात प्रतिज्ञा कभी रूढ़ियों की शृङ्खलाओं में आबद्ध नहीं रह सकी है, वह अपनी उठी हुई अनुभूति को कैसे दबा सकता है—

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई॥

—प्रसाद

मानस मन में जब जैसी भावना उदित होती हैं, कवि उसकी वैसी ही अभिव्यक्ति कर देता है चाहे वह हास्य की हो अथवा रुदन की—

दियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

—पंत

अतः परिस्थिति जन्य हो समय समय पर उद्भूत हास्य की भावना भी प्रत्येक कवि की रचना में अपने चरण-चिह्न छोड़ती हुई देखी गई है।

अपने पराए परिधान, वचन अथवा क्रिया कलापों से उत्पन्न हास का परिपुष्ट होना हास्य रस कहलाता है।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार हास्य के दो भेद माने गए हैं, आत्मस्थ और परस्थ। आलम्बन को विकृत अवस्था में देखने से जो हास स्वतः प्रस्फुटित होता है वह आत्मस्थ कहलाता है। और जो दूसरों को हँसते देखने से हास उत्पन्न होता है वह परस्थ कहलाता है। प्राचीन हिन्दी साहित्य में दोनों प्रकार का हास्य उपलब्ध होता है। आत्मस्थ हास्य के वर्णन में कवियों ने अत्युक्ति से अधिक काम लिया है।

सर्व प्रथम अमीर खुसरो की रचना में हास्य रस के दर्शन होते हैं। खुसरो फारसी के उद्भट विद्वान् थे, इस हेतु इनकी कृतियों पर फारसी के चुलबुलेपन का प्रभाव पूर्णरूप से पड़ा। इन्होंने हास को स्वतन्त्र सत्ता के रूप में ग्रहण किया, अन्य रस का सहयोगी मान कर नहीं। यहीं वह भारतीय रस सिद्धान्त से दूर खड़े दीख पड़े हैं और इन्होंने एक नये मार्ग का शोधन किया। इनकी रचनाओं में विनोद की अति ही सुन्दर भावना अन्तर्निहित है जो पाठकों के पेट में बल डाल देती है।

१—श्याम बरन और दाँत अनेक लचकत जैसे नारी।
दोनों हाथ से खुसरो खींचे और कहे तू आरी॥

२—जब मेरे मन्दिर में आवे सोते मुझको आन जगावे।
पढ़त फिरत वह विरह के अच्छर ऐ सखि साजन,
ना सखि मच्छर।

३—वह आवे तो शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय,
मीठे लागें बाके बोल, ऐ सखि साजन, ना सखि ढोल।

उदाहरण नं० (२) और (३) में कवि ने मुकरियों का ऐसा प्रसंग बाँधा है कि उन्हें पढ़ते समय यह आशा होती है कि प्रसङ्गानुकूल इनका उत्तर 'साजन' ही होगा किन्तु उसके विपरीत जब उत्तर में मच्छर और ढोल पड़ते हैं तो सहसा आनन्दातिरेक की भावना सीमा की बाँध तोड़ देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग परम्परा है कि, युग-पुरुष प्रचलित मिथ्याडम्बरों पर कटूक्तियाँ सुनाता है, तो वे कभी-कभी हमारे हास्य का साधन बन जाती हैं। कबीर, एक निर्भीक वक्ता थे। सामाजिक कुरीतियों पर ली हुई उनकी चुटकियाँ हास्य रस में डूबी हुई हैं—

'मूँड मुड़ाए हरि मिलें, तो मुड़वाते सौ बार,
छूटे महीना भेड़ मुड़ति है कब अमरापुर जाय।'

कबीर की उलटबासियाँ भी ऐसी ही हैं, मुल्ला के जोर-जोर से चिल्लाने से खुदा को बहरा बताना कितना सुन्दर व्यंग्य है—

'मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे क्या साहब तेरा बहरा है।'

ब्रज-भाषा के आदि कवि ने वात्सल्य और शृङ्गार को ही अपने वर्णन का क्षेत्र बनाया किन्तु फिर भी कहीं-कहीं हास्य को सञ्चारी भाव के रूप में प्रस्तुत करके अपनी विनोदमयी प्रकृति का आभास दे दिया। कृष्ण की बाल-लीला ऐसे अनेक दृश्यों से परिपूर्ण है जहाँ ब्रजराज की अनेक चेष्टाओं और क्रीड़ाओं के अन्तर्गत हास्य की आविर्भूति हुई है। कृष्ण किसी गोपिका के घर में चोरी—चोरी भी माखन की करते हुए पकड़े जाते हैं। किन्तु किस सीना जोरी के साथ भोले भाव से कह जाते हैं :—

मैं जान्यो यह घर अपनो है या धोके में आयौ।
देखतु हौं गोरस की चींटी काढ़न कों कर नायौ॥

× × ×

मैया मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मुख लपटायो॥

'सूर विनोदी रे मधुबिनियाँ' सूरदास विनोदी थे इस बात का प्रमाण स्थान-स्थान पर मिलता है। गोपी-विरह भी ऐसे अनेकों व्यंग से भरा-पूरा मिलता है:—

आयौ घोष बड़ो व्यौपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आइ उतारी॥

श्री रामचन्द्रजी के शान्त, गम्भीर और मर्यादित जीवन को आंकने वाले, कोटि-कोटि भारतीयों के कण्ठ के हार गोस्वामी तुलसीदास यद्यपि स्वयं बड़े गम्भीर थे, फिर भी हास्य की क्षीण रेखा दीपक की ज्योति के सदृश्य उनके हृदय सागर का मन्थन कर स्वतः साहित्य की सत् सर्जना में भाग ले उठी। मानस में शिव-विवाह और नारद मोह कवि की हास्यमयी प्रकृति को सहसा प्रकाश में ले आता है। नारदजी का मर्कट-मुख और कामांधता की अवस्था, तथा परम स्वरूपा राजकुमारी की ओर बार-बार उठ कर देखना कितनी विनोदमयी प्रकृति को लिए हुए है :—

पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाई।
देख दशा हर गन मुसकाई

हिन्दी महाकवि ने कवितावली में भी एक स्थान पर सुन्दर व्यङ्गमयी हास्य उपस्थित किया है। तुलसी कहते हैं, भगवान! तुमने बड़ा अनुग्रह किया जो बन में आकर पधारे। तुम्हारे चरण-कमलों के स्पर्श से कानन की समस्त शिलाएँ अहिल्या की भाँति सुन्दरियों में परिवर्तित हो जावेंगीं। बेचारे विन्धवासी उदासी तपस्वी गण जो बिना नारियों के महादुखी हैं, इस प्रकार चन्द्रमुखियाँ पाकर परम प्रसन्न हो उठेंगे:—

"विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे॥
ह्वै है सिला सब चन्द्रमुखी, परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायक जू करुणा करि कानन को पगु धारे॥

रहीम ने तो स्वयं भगवान और लक्ष्मी को ही आलम्बन मानकर हास्य प्रस्तुत किया है:—"पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चञ्चला होय" भगवान आदि पुरुष होने के कारण वृद्ध हैं और उनकी पत्नी चञ्चल है तरुण है। अतः वृद्ध की स्त्री का चञ्चल होना स्वाभाविक है।

रीतिकाल में हास्य रस की वर्णन प्रणाली कई रूप में दृष्टिगोचर होती है। नायक नायिकाओं की हास-विलासात्मक क्रीड़ाएँ परस्थ हास्य की कोटि में रखी जा सकती हैं। एक दूसरे प्रकार की प्रणाली और मिलती है जो निम्नलिखित कारण के द्वारा उत्पन्न हुई।

रीतिकालीन अधिकांश कविगण राजाश्रयी थे। पुरस्कार अर्थात्—उचित पुरस्कार प्राप्त न करने पर वे अपने हृदय से निन्दा की निर्झरिणी प्रवाहित कर उठते हैं। एक सांस में यजमान की सात पुस्तों तक को भली बुरी सुना उठते हैं। ऐसी कविताओं में अत्युक्ति की ही प्रधानता पाई जाती है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबहुँ न भँडुआ रन चढ़े, कबहुँ न बाजी बंब।
सकल सभाहि प्रनाम करि बिदा होत कवि गङ्ग॥

किसी कवि को औरङ्गजेब ने एक बूढ़ी हथिनी उपहार स्वरूप दी—कवि ने जी खोल कर बादशाह की सात पीढ़ियों की निन्दा प्रशस्ति करदी:—

तिमिरलङ्ग लई मोल चली बाबर के हलके।
रही हुँमायू सङ्ग, फेरि अकबर के दलके॥
जहाँगीर जस लियो पीठ कौ भार हटायो।
साहजहाँ करि न्याव ताहि पुनि माँड चटायो॥
बल रहित भयी, पौरष थक्यो-
भगी फिरत बन स्यार डर।
औरङ्गजेब करनी सोई लै दीन्ही कविराज कर॥

पद्माकर कृत शिव-विवाह तो हास का एक दंगा लिए खड़ा हुआ दृष्टिगोचर होता है:—

हँसि-हँसि भाजैं देखि दूलह दिगम्बर को,
× × × ×
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में॥

संस्कृत काव्य में आदि कवि बाल्मीक के 'पवनदूत' और कालिदास के 'मेघदूत' की सृष्टि तो हुई थी किन्तु हिन्दी के प्राचीन काव्य में घनानंद ने 'रेल दूत' की सृष्टि कर एक अपूर्व हास्य रस की पिचकारी चलाई:—

"पर काजहि देह को धारि फिरौ
परजन्य जथारथ है दरसौ।
× × ×
घनानंद जीवन दायक हौ
कुछ मेरियौ पीर हिए परसौ॥"

कवि 'सैनापति' के राम ने हेम की लंका विभीषण को दान दे, एक ढेले में दो पंछी मार दिये, प्रथम बिभीषण को लंका सहज ही प्राप्त होगई, राम के दान पर विराम लग गया, द्वितीय रावण को विभीषण की चिन्ता होगई। उसके जीते जी उसका भाई लंकाधीश बन गया और उसे यह फिक्र बढ़ गई कि अब उसे विभीषण से भी युद्ध करना है।

लंका दसकंधर की दीनी है विभीषन कों,
संकाऊ विभीषन की दीनी दशकंध कौं॥

मैथिल-कोकिल विद्यापति का हृदय जो कि शृंगार के गम्भीर गर्त में डूबा हुआ था वह भी अपनी हास मयी प्रकृति को कुंठित न कर सके और कविता अनजान उनसे उनसे बन पड़ी:—

"पिया मोर बालक हम तरुनी
कौन तप चुकलौंह भेलौंह जननी
पिया लेली गोंद के चललि बजार
हटिया के लोग पूछे के लागु तोहार
नहि मोर देवर कि नहि छोट भाइ
पुरब लिखल छल बालमु हमार"

रीतिकाल के महाकवि केशव और बिहारी जिनकी कविता कामिनी का शृंगार केवल शृङ्गार रस की सृष्टि के लिए ही हुआ था वे भी अपने काव्य को हास्य रस की भीनी-भीनी फुआर से कदापि न रोक सके।

बिहारी ने निम्नलिखित दोहे में हास्य की कितनी कलापूर्ण अभिव्यंजना की है:—

बहुधन लै अहिसान कै पारौ देत सराहि
वैद बधू हंसि भेद सो रही नाह मुख चाहि

अर्थात्—एक वैद्यजी महाराज स्वयं तो नपुंषक थे, परन्तु एक रोगी को पारे की भस्म यह सराहना करते हुए दी कि इस भस्म से तेरा पुरुषत्व जाग उठेगा। वैद्यजी की बधू इस प्रशंसा को सुनकर हँसने लगी क्योंकि दी हुई औषधि यदि इतनी ही गुणकारी थी तो वे ही क्यों अब तक नपुंषक बने रहे।

सर्वत्र वीर रस में डूबी हुई भूषण की कविता भी हास्य की आभा से रंग गई। वीर वाणी हास्य रस का पुट पा और भी सुन्दर भाव और भङ्गिभाओं से अनुरञ्जित हो उठी! मुगल स्त्रियों की हंसी उड़ाते हुए कवि की वाणी किस अपूर्वता से बोल उठती है:—

"कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं ते वै बीन बेर खाती हैं॥"

अब तक जिस हास्य का वर्णन किया गया वह परंपरा-भुक्त था। किन्तु आगरा निवासी अली मुहिबखाँ 'प्रीतम' ने काव्य को एक नई दिशा की ओर मोड़, हास्य रस का

(शेष पृष्ठ १७६ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवी और मीरा

प्रो० धर्मपाल एम० ए०, विद्यालंकार, साहित्यरत्न

सूली ऊपर सेज हमारी, सोवणा किस विधि होय।
गगन मण्डल पै सेज पिया की, किस विध मिलना होय॥

मीरां अपने प्रिय के जिस 'पलँग' पर 'पौंढ़ना' चाहती है वह 'गगन मँडल' में बिछी हुई सेज है। 'प्रेम भगति को पैंड ही न्यारो' होता है और वह जितना आकर्षक दीख पड़ता है, उतना सरल नहीं, उतना सीधा नहीं, उतना सुगम पथ नहीं। जैसे कहावत है—'पर्वताः हि दूरतो रम्याः' वैसे ही—

ऊंची नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराई।
सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाई॥
ऊँचा नीचा महल पिया का, हमसे चढ्या न जाई।
पिया दूर पंथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोरा खाई॥

यह भक्ति का मार्ग है। चिरकाल से असीम इस रूप-सीमा के निमित्त और इस अरूप के लिए व्याकुल है। यही विश्वव्यापी रोदन है, क्रन्दन। इसी रूप-वैचित्र्य में उस एक रस को ढूँढना सभी के बस की बात तो नहीं।

भक्त के हृदय में दो स्पष्ट धाराएँ निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं, एक का रूप विषादमय है तो दूसरी अनुरागमय। सहज साधना या भक्ति निश्चित रूप से उपरोक्त दोनों धाराओं से मिलकर बनती हैं जैसे धूपछाँही वस्त्र में दो रंगों के तार अपनी-अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रंगों से भिन्न एक तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं। भक्त की विचारधारा संसार से निराली होती है, जिस अगोचर मन्दिर में भाव-सौन्दर्य का अमृत निस्पन्दित होता है, उसके दर्शन से तृप्त हो भक्त का मन चातक की तरह अपना ध्यान ऊपर से हटाना नहीं चाहता। वह पपीहे की भाँति एकटक हो पुकार उठता है—

एखन कि शेष हयेछे प्राणेश, जा किछु आछित मोर?
जत शोभा, जत गान, जत प्राण, जागरण घूमघोर?
शिथिल हयेछे बाहु-बन्धन?
मदिरा-विहीन मम चुम्बन?
जीवन-कुञ्जे अभिसार-निशा आजि के हयेछे भोर?
भइ दाओ तवे आजिकार सभा
आनो नव रूप, आनो नवशोभा
नूतन करिया लहो आमार चिर-पुरातन मोरे।
नूतन विवाहे बाँधिबे आमाये नवीन जीवन-डोरे॥"

'हे मेरे प्राण प्यारे! आज क्या मेरे जीवन में सभी कुछ रिक्त हो चला है? जितनी शोभा थी, जितना गान था, जितनी प्राण-शक्ति थी और नींद भरी जो रातें थीं क्या वे सब नष्टप्राय हो गईं? मेरा बाहु-बन्धन क्या शिथिल होगया है? मेरा चुम्बन क्या आज मादकता रहित हो चला है? मेरे जीवन की अभिसार-निशा क्या आज नवप्रभात के प्रकाश में विलीन हो गई है? अच्छी बात है तब आज की सभा भङ्ग कर दो और नया रूप और नई शोभा लाकर मुझे अलंकृत करो। मुझ चिरपुरातन को एक बार नये रूप में ग्रहण करो और नये जीवन सूत्र से उसे नये विवाह के बन्धन में बाँध लो।"

उपरोक्त पद्य कवि रवीन्द्र की 'जीवन देवता' शीर्षक कविता से उद्धृत है। जब यह साधना प्रेमरस से पूर्ण हो जाती है और भक्त नारी रूप में उस 'विचित्र लोक के रसिक' को पति रूप में मानने लगता है तो उस का नाम सन्तों ने 'मधुर रस की उपासना' पुकारा है। उसे पति या सर्वस्व रूप में देखना आत्मसमर्पण की पूर्ण परिणति है। कहते हैं—"जो आर्त्ति या गूढ़ प्रेम एक युवती के हृदय में, किसी युवक को देख कर जाग उठता है वह अन्यत्र दुर्लभ है; इसी कारण भक्त लोग श्री भगवान् कृष्ण को स्थिर चित्त के साथ पतीभाव से मना करते हैं। (गोविन्ददासेर कड़चा।)"

पुरुष के प्रति नारी के स्वाभाविक आकर्षण या रति का जो भाव है उससे शृङ्गार रस की उत्पत्ति मानी जाती है अतएव मधुर रस के भाव, विभाव और अनुभाव वे ही होते हैं जो शृङ्गार रस में आलम्बन रूप हैं। परन्तु वल्लभाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार शृङ्गार का विषय संसार के प्राणी होने से अलौकिक व स्वयं लीलामय भगवान् को आलम्बन मानने वाले माधुर्यभाव से भिन्न है। एक लिंग या शरीर से चेष्टित है तो दूसरा आत्मा से अनुभाव्य और इन्द्रियातीत। शृङ्गार रस मधुर रस में परिणत हो सकता है। फिर भी यहाँ इतना स्मरण रखना चाहिए कि पुरुषों ने जिस माधुर्य-भाव को अपनाया है वह कवि-कौशल और परानुभव पर आश्रित है, उसमें रमणी-हृदय की वह सच्ची वृत्ति नहीं पाई जाती जिसका निर्माण विधाता द्वारा हृदय-तत्व द्वारा होता है।

मीरा और महादेवी दोनों महीयसी महिला हैं जो अपने 'नागर' और 'प्रियतम' पर पूरी तरह से रीझ चुकी हैं। दोनों के जीवन में एक ही भाव है, एक ही रङ्ग है, एक ही रस है; इसके अतिरिक्त उनको संसार में कुछ भी लक्षित नहीं होता और न ही वे कुछ जानना और समझना चाहती हैं। अपना उद्देश्य उनको हस्तामलक है तभी दृढ़ता से उस ओर बढ़ा पग पीछे हटता नहीं:—

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी।
नाचि नाचि पियरसिक रिझाऊँ, प्रेमीजन कूँ जाचूँगी।
प्रेमप्रीत की बाँधि घूँघरू, सुरत की कछनी काछूँगी॥
लोकलाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी।
पिव के पलंगा जा पौढ़ूंगी, मीरा हरि रंग राचूँगी॥

मीरा अपने हृदय में उस 'नागर नन्दकिशोर' को लेकर मस्त हैं तो महादेवी उनको प्रकृति के प्रत्येक कण में देखती हैं—

उजियारी अवगुण्ठन में
विधु ने रजनी को देखा,
तब से मैं ढूँढ़ रही हूँ
उनके चरणों की रेखा;
मैं फूलों में रोती, वे
बालारुण में मुस्काते,
मैं पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ में उड़ जाते;

यदि इन दोनों के जीवन को देखा जाये तो यह ज्ञात होता है कि दोनों को एकाकी-जीवन भोगना पड़ा है। यहीं से 'चिर-विरह' का प्रारम्भ होता है। जहाँ तक दुःख, कसक और त्याग का सम्बन्ध है मीरा और महादेवी में कोई गूढ़ अन्तर नहीं। दोनों में उच्चकोटि का विरह पाया जाता है। शृङ्गार के दोनों रूपों—संभोग और विप्रलम्भ—में विप्रलम्भ का ही कवियों ने अधिक वर्णन किया है। क्रौञ्चवध से आदिकवि को प्रथम छन्द की स्वतः स्फूर्त्ति हो गई थी, विरही हृदय की सुन्दर परिकल्पना यक्ष द्वारा मेघ को दूत बना कालिदास ने अपने ही भावों की रङ्गीन दुनिया का चित्र खींचा था। 'एकोऽहं बहु स्याम्' वाले वैदिक ऋषि के अनुसार ब्रह्म अपने (अनहद) सङ्गीत द्वारा रूप और सीमा के वैचित्र्य में आता है; जितने रंग और रूप हैं सब उसी के विस्तार हैं। विधाता की शक्ति प्रेम द्वारा ही व्यक्त होती है। स्थूल दृष्टि से यह संसार 'कागद की पुड़िया' है जो 'बूँद पड़े घुल' सकती है, परन्तु उस अद्भुत शिल्पी की एक साकार कल्पना है जिसमें उसकी अपनी तृष्णा छिपी है।

परन्तु इस आनन्द को जो स्वीकार करना चाहते हैं उन्हें इसका महान् मूल्य चुकाना पड़ता है। तभी तो कवि-कल्पना में चारों ओर विरह की ध्वनि सुनाई पड़ती है। आनन्द की छाया पकड़ने में ही आनन्द है, साधक की यह विरह-ज्वाला नित्य नये सङ्गीत के द्वारा प्रकट होती है। भवभूति ने तो करुणारस को इतना विस्तार दिया कि 'एको रस करुण एव निमित्तभेदात्' लिख दिया। वस्तुतः शैली के ये वाक्य स्मर्त्तव्य हैं "Our sweetest songs are those which tellest our saddest thoughts." जायसी विरह को कुछ ऐसा ही महत्व देते हैं, 'पद्मावत' जैसा विरह अन्यत्र दुर्लभ है—

'प्रेमहिं माँह विरह सरसा। मैन के घर अमृत बसा॥'

अर्थात् 'जिस प्रकार मोम के घर या मधुकोष में अमृत-रूपी मधु सिंचित रहता है, उसी प्रकार प्रेम के अन्तर्गत विरह भी निवास करता है।' सच्चे प्रेम की प्रतीति विरह में ही होती है। विरह प्रेम का सार है। यह संसार उस सनातन पुरुष का लीलाक्षेत्र है और यह लीला शतशत रोदनों, क्रन्दनों, अतृप्तियों और दुखों में नित्य अभिनव रूप में प्रकट हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीरा की कविता एक भुक्तभोगिनी के हृदय की सच्ची चार्ता है जिसकी भावनाएँ मुख्यतः स्वानुभवाश्रित होने से निश्चयतः आकर्षण वाली हैं। उसमें सच्ची राजपूत महिलाओं से स्वातन्त्र्य-भाव और निर्भयता के भाव कूट-कूट कर भरे हैं। अपनी दृष्टि में वे 'गिरिधर नागर' की स्वकीया थीं, चाहे लोक परकीया नारी समझ कर उनकी कठोर उपेक्षा करता रहा। हृदय के अन्तस्तल से निकले दुःख के वे भाव उनकी कविता को विरहिणी की व्यापक वेदना से भरपूर किए हैं—

हेरी मैं तो दरद दिवाणी, मेरा दरद न जाणै कोय।
घाइल की गति घाइल जानै कि जिण लाई होय।
जौहरि की गति जौहरी जानै, कि जिन जौहर होय।

× × ×

दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोय।
मीराँ की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सांवल्या होय॥

महादेवी की कविता भावुकता के ताने बाने की कविता नहीं, सर्वत्र कल्पना का उन्मेष होने पर भी वे एक सच्चे हृदय की सच्ची अनुभूति है। प्रकृति के प्रति उसमें सर्वत्र विस्मय का भाव है जिसमें प्रिय की अङ्कित छाया को कवि-कल्पना टटोल लेती है। मीराँ के समान वे लोक लाज को छोड़ नहीं सकी हैं, फिर भी उनके सारे काव्य की भित्ति विरह पर आधारित है :—

मेरे छोटे से जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें
भरती आँसू के सागर,

× × ×

तुम हो प्रभात की चितवन,
मैं विधुर निशा बन आऊँ,
काटूँ वियोग-पल रोते
संयोग-समय छिप जाऊँ;

दोनों में अपने प्रियतम को रिझाने के सभी प्रयत्न हैं, दोनों में पूर्ण आत्म समर्पण है, सर्वस्व लुटाकर उसे पाने का साध है, प्रियतम से खुलकर खेलने की इच्छा और रिझने-रिझाने की प्रबल उमङ्ग—

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हाँरो साँचो प्रियतम, देखत प्रीत लुभाऊँ।
रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।
रैण-दिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ ज्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सो पहिरूँ, जो दै सोई खाऊँ।
मेरी उनकी प्रीत पुरानी, उण विन पल न रहा ऊँ।
जहाँ बैठावे तितहि बैठूँ, बेचै तो बिक• जाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ।

महादेवी की कविता पीड़ा में अवश्य बोरी गई है, परन्तु छायावादी युगकालीन प्रेरणा के वशीभूत हो उनके हृदय में अदृश्य लोक के अमूर्त सौन्दर्य से जो अतृप्त रहने की आकांक्षा है उसके फलस्वरूप वर्तमान काल के संसार में उनकी वृत्ति रमती नहीं; इसी से तो प्रचलित व्यवस्थाओं से ऊब कर वे एक काल्पनिक जगत की ओर अभिमुख हो, स्वप्न-लोक में विचरण करती हैं। उपमाओं की बहुलता और भावों की न्यूनाधिक अस्पष्टता के कारण माधुर्य की उतनी प्रतीति नहीं होती क्योंकि कविता पठित-समाज की शोभा ही बन जाती है। पुनश्च अभिव्यञ्जना-शैली में प्रतीकों का प्रयोग होने से वह कविता मीरा की तरह सर्वजन-सुलभ नहीं—

सुना था मैंने इसके पार
बसा है सोने का संसार,
जहाँ के हँसते विहग ललाम
मृत्यु-छाया का सुन कर नाम
धरा का है अनन्त शृङ्गार
कौन पहुँचा देगा उस पार?
जहाँ के निर्झर नीरव गान
सुना करते अमरत्व प्रदान;
सुनाता नभ अनन्त झङ्कार
बजा देता उरके सब तार;
भरा जिसमें असीम सा प्यार
कौन पहुँचा देगा उस पार?

निपुण कलाकार जिस प्रकार अपनी तूलिका से रेखाओं में किसी भावपूर्ति को अङ्कित कर देता है, वैसे ही अधिक चिन्तनशील होने के कारण अपने भावों के विश्लेषण और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक दृश्य-चित्रण के चित्रण करने की उमङ्ग पर कल्पना-बाहुल्य और शब्दातिरेक उनके काव्य को भाराक्रान्त कर देता है। प्रियतम के अनन्त-पथ में अभिसार की मात्रा इतनी दुरूह है कि उस गतिशील सौन्दर्य की ओर मुँह करने की इच्छा भर नहीं होती। 'नीहाञ्जलि' की कविताओं में भी ऐसी दुरूहता है। हम स्वीकार करते हैं, रवीन्द्र में रहस्य-वाद नाम की जो वस्तु मिलती है हिन्दी में यदि कोई कवि उसी भाव को योग्यता और समर्थता से आँक सका है तो एक ही नाम है, महादेवी! कवि अपने समय से प्रभावित होता है तभी उनकी कविता काव्य की उच्चकोटि में परि-गणित होकर उन्हें मीरावत् लोक-प्रिय न बना सका। यद्यपि उनमें गहरी सहानुभूति की वेदना है, अतृप्त चाह का उन्माद है, अपूर्णता के प्रति पूर्ण मोह है।

यदि मीरां की कविता सच्चे हृदय की अनुभूति है, तो उनकी कविता सुरुचिपूर्ण पाठकों के हृदय-भवन को सजाने की वस्तु। यद्यपि उनकी वृत्ति मीरां से अधिक अन्त-र्मुखी है, उनकी भाषा किसी भी उच्चकोटि के कवि से टक्कर ले सकती है, परन्तु मीरां जैसा उद्दाम प्रेम-प्रवाह वहाँ नहीं मिलता। मीरां ने मस्त कबीर की तरह जो देखा, जो सुना, जो अनुभव किया, उसे सरल रूप से सीधे शब्दों में बिना कुछ छिपाए कृष्णार्पण कर दिया:—

मैं गिरधर रंग राती।
पंचरंग चोला पहिर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती।
ओ झिरमिट माँ मिल्यो सांवरो, खोल मिली तन गाती।
जिनका पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हिय बसत है, ना कहूँ आती जाती।

अपने पति से नारी किसी बात का गोपन क्यों करे?

परन्तु 'दीर्घकालीन वासनोन्मुख सौन्दर्य' कहीं पाठक के चित्त के सौन्दर्य को दूषित न करे (जैसा कि रीति-काल के साहित्य में मिलता है), छायावाद के सौन्दर्यद्रष्टा की दृष्टि कुण्ठित यथार्थ पर नहीं पहुँच सकी। एक स्थान पर महा-देवीजी ने लिखा है "हमारा अन्तः शाक्त भी एक रहस्य से पूर्ण है और बाह्य जगत का विकास-क्रम भी; अतः जीवन में ऐसे अनेक क्षण आते रहते हैं जिसमें हम इस रहस्य के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इस रहस्य का आभास या अनुभूति मनुष्य के लिए स्वाभाविक रही है अन्यथा हम सभी देशों के समृद्ध काव्य-साहित्य में किसी न किसी रूप में इस रहस्य-भावना का परिचय न पाते। न वही काव्य हेय है जो अपनी साकारता के लिये केवल स्थूल और व्यक्त जगद् पर आश्रित हैं और न वही जो अपनी सप्राणता के लिए रहस्यानुभूति पर। वास्तव में दोनों ही मनुष्य के मानसिक जगद् की मूर्त और बाह्य जगद् की अमूर्त भावनाओं की कलात्मक सृष्टि है।" (आधुनिक कवि)

और यही कारण है कि उनका काव्य साहित्यिक आलोचना की कसौटी पर खरा उतरता है। उसमें नारी-हृदय की वेदना का स्पष्ट और सफल चित्रण है परन्तु एक भाव निश्चित है कि मीरा जैसा निर्ज्ञेपन वहाँ नहीं मिलता, जिसमें स्पष्ट हृदय झाँक रहा हो। हम नहीं जानते कि स्वार्थ के सम्बन्ध से परे एक ऐसा निष्काम प्रेम का सम्बन्ध है, जहाँ मनुष्य के बनाए हुए सब तरह के भेद दूर हो जाते हैं, उस प्रेम जगत में प्रभु भी अपना प्रभुत्व छोड़ देते हैं। उस प्रेम नदी के तीर पर मीरां सिर्फ अपने कृष्ण को ही नहीं पाती; बल्कि अपनी और सखियों को भी सच्चे रूप में पाती है, पहिचानती है और प्रेम करती है।

महादेवी के काव्य में अपनी अनुभूति आंकी गई है, परन्तु अस्पष्टता के कारण वह एकदम मानसगम्य नहीं, कम से कम कोई प्रेरणा की आशा करना आकाशकुसुम का चयन करना है—

मैं मिटी निस्सीम प्रिय में
वह बँध गया लघु हृदय में
अब विरह की रात को तू
चिर-मिलन का प्रात रे कह॥

× × ×

ताप जर्जर विश्व-उर पर
तूल से घन छा गए भर
दुख से तप हो मृदुलतर
उमड़ता करुणा भरा उर
सजनी! मैं उतनी सजल, जितनी सजल बरसात!

मीरा सगुण की उपासिका हैं, वे वैष्णव-भक्तों की परम्परा में थीं। यद्यपि उन्होंने 'हरि-अविनासी' जैसे शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग किया है और अपने साहिब को 'त्रिकुटी-महल' में बने हुए झरोखे से झाँकी लगाकर देखने 'पुन्न महल' में सुरत जमाने जैसे भाव प्रकट किए हैं और—'पाटी पारों ज्ञान की, मति माँग सँवारे हों' लिखा है, परन्तु उसकी वृत्ति इसमें रमती नहीं। मीरा की कविता में 'भृकुटि', 'नाद', 'ज्ञानदीपक', 'सुन्न महल', 'अगम देश' की चर्चा होने पर भी रहस्य भावना गौण है क्योंकि वे तो 'ब्रज की डगर' तथा 'साँवरे की बाँकी चितवन की मन्द मुस्कान' में उलझ गई थीं। सूर की गोपियाँ परकीया हैं और वे कृष्ण से विनोद और विरह के मौके पर उपालम्भ देने से भी नहीं चूकीं, परन्तु मीरा अपने को कृष्ण की स्वकीया मानती हैं (और लोक श्रुति इस गवाही को पुष्ट करती है) तो उसमें रहस्य भावना कैसे हो। इतिहास प्रमाण है कि उनका प्रेम रूपासक्ति से प्रारम्भ हुआ था और एक प्रकार के साहचर्य की अनुभूति से उसकी पुष्टि भी हुई थी। उनके काव्य में कृष्ण के प्रति उपालम्भ तो है ही नहीं और कदाचित् उनका जीवन गम्भीर था अतः सूर जैसी विनोदप्रियता के दर्शन भी वहाँ नहीं होते। लोकलाज का उन्हें भय नहीं—साँवलिया वरपाणा' तो समाज से डरना क्यों।

त्याग की महत्ता भारत में सभी महामानवों ने गाई है, यह त्याग अपने जीवन को रिक्त करने के लिए नहीं किया जाता, अपितु उसकी उपलब्धि के लिए। प्रेम की चरम सीमा त्याग में है। विन्दु अपने विन्दुत्व को छोड़ सागर में परिणत होता है। महादेवी का देवता निर्गुण और रहस्यमय है, परन्तु वे अपने प्राणों को उस पर लुटाती हैं, सीधी तरह नहीं विरह के अमूर्त पङ्खों से उस अरूप को छूना चाहती हैं—

शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।

परन्तु महादेवी में यह अस्पष्टता भावों की चित्र-छाया से सुस्पष्ट हो जाती है और कलात्मकता द्वारा उसे शुद्ध किया गया है। उन्होंने जब लिखा था "आज के कवि को अपने लिए अनागरिक होकर भी संसार के लिए गृही, अपने प्रति वीतराग होकर भी सबके प्रति अनुरागी और अपने लिए संन्यासी होकर भी सबके लिए कर्मयोगी होना होगा। क्योंकि आज उसे अपने आपको खोकर पाना है।' उनका स्पष्ट दृष्टिकोण है कि काव्य जीवन की अनुभूति से दूर कल्पनालोक की वस्तु न हो। 'अतीत के चल चित्र' नामक दृश्यदर्शचित्र उनके इन विचारों का पूर्ण समर्थन करते हैं। उनके काव्य में अस्पष्टता है क्योंकि वहाँ प्रतीकों का अभिव्यञ्जना का प्रयोग है; परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उन्होंने अपने अभावों को छिपाया है। उनका विश्वास है कि कामनाओं की चिरतृप्ति जीवन को निष्प्रयोजन करती है।

"पूर्णता यही भरने की ढुलकर, देना सूने घन।
सुख की चिर तृप्ति यही है उस मधु से फिर जावे मन॥"

वे अभावों में देख सकी हैं—

कितनी बीतीं पतझारें
कितने मधु के दिन आए,
मेरी मधुमय पीड़ा को
कोई पर ढूँढ़ न पाए।

हिन्दी साहित्याकाश में ये दोनों कवयित्रियाँ दो स्पष्ट तारिकाओं के समान चमक रही हैं। जिस प्रकार मातृभूमि मर्त्यलोक में अपने उत्सुक आलिङ्गन से दीन दुखियों को कोमल वक्ष में लेने के लिए सदा ही आतुर रहती हैं, उसी प्रकार दुःख, करुणा और समवेदना के स्नेहमय प्रकाश से ज्योतित इनकी अमरवाणियाँ मानव-लोक के प्राणियों के व्यथित प्राणों में पुलक का सञ्चार करती रहेंगी। महादेवी की कविता प्रकृति के उस सुन्दर खण्ड के समान है जहाँ सुख, शान्ति और तृप्ति मिल सकती है—

सिहर सिहर उठता सरिता उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनि!
सिहरती आ बसन्त-रजनी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीवाद के आवेगशील कवि : श्री माखनलाल चतुर्वेदी

प्रो० राजनारायण मिश्र, एम० ए०, 'साहित्य-रत्न'

आधुनिक हिन्दी साहिय के 'राष्ट्र-कवि' श्री माखनलाल चतुर्वेदी का सम्पूर्ण जीवन त्याग, देशानुराग, स्वाभिमान, वीरत्व, आत्म-सम्मान और बलिदान का अमर प्रतीक है। कवि ने अपने वीरोचित काव्य द्वारा न केवल स्वातन्त्र्य-संग्राम के सेनानियों को ही नव-जीवन प्रदान किया है, अपितु वह स्वयं उसका कर्णधार भी है। इस प्रकार कवि-जीवन में एक साथ ही उसके क्रियात्मक और कलात्मक पक्षों का समन्वय है। आत्माभिव्यक्ति के लिए इन दोनों सम्यक् सन्तुलन के साथ ही भावावेश और आवेग परमावश्यक हैं क्योंकि इसी से काव्य में प्रेषणीयता आती है। इन दोनों पोषक तत्वों के साथ ही पराधीनता की परवशता की कराह और स्वाधीन विचार-धाराओं का प्रवाह काव्य की भाव-भूमि पर स्थान-स्थान पर निखर उठे हैं। यही कारण है कि एक से तो छायावाद की पुष्टि और दूसरे से प्रगतिवाद की तुष्टि होती रही है और कवि को इन दोनों के सन्धि-युग की कड़ी माना गया है। किन्तु आचार्य शुक्ल ने इनको 'स्वच्छन्द धारा' का कवि माना है क्योंकि कवि के जीवन में सत्यानुभूतियाँ अधिक हैं, कल्पना का छाया-चित्र उसके पीछे पड़ गया है। आलोचक प्रवर श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने इनको आधुनिक साहित्य के गाँधी-वादी विचार-धारा के आवेगशील कवियों में शीर्ष स्थान दिया है। श्री दिनकर, अञ्चल तथा अन्य प्रगतिशील कवि उसी काव्य-धारा में आते हैं। आचार्य द्विवेदी के गाद्यिक विकास के रूप में—भाषा के क्षेत्र में—इन्होंने उनका प्रतिनिधित्व किया है तथा कविता में उसी शैली का एक अभिनव प्रयोग भी इन्होंने किया है। यथा:—

"तुम रहो न मेरे गीतों में तो गीत रहें किनमें बोलो,
तुम रहो न मेरे प्राणों में तो प्राण कहें कैसे बोलो।
मेरी कसकों में कसक कसक मेरी खातिर वनवास करो,
मेरे गीतों के राजा तुम मेरे गीतों में वास करो।"

'कसक' और 'खातिर' शब्दों के प्रयोग से भाषा में एक प्रकार की व्यावहारिकता और प्रवाह आगया है।

यदि हम श्री चतुर्वेदीजी की 'हिमतरङ्गिनी' तथा 'हिम-किरीटिनी' पर दृष्टिपात करें तो हमें अनुभव होगा कि वास्तव में कवि के रग-रग में देश-प्रेम का भाव व्याप्त है, जिसका प्रत्यक्षीकरण ही उसका काव्य है। 'एक फूल की चाह' में कवि के जीवन का मुख्य सत्य ही बोल उठा है जो उसके काव्य का मुख्य तत्त्व है। यदि एक ओर पराधीन राष्ट्र का चीत्कार ही उसके हृदय का भीषण हाहाकर बन गया है तो दूसरी ओर उसमें नैराश्य, ममत्व, आनन्द, उल्लास, प्रेम और देश-भक्ति के स्वरों का भी उभार है। वह अपने आराध्य को पूर्ण तन्मयता के साथ देखना चाहता है। भावावेश में कवि का हृदय ही बोल उठा है:—

"अरे अशेष! शेष की गोदी तेरी बने बिछौना सा।
आ मेरे आराध्य! खिलालूँ मैं भी तुझे खिलौना सा॥"

उसे उसके घर के प्रति भी सन्देह हो गया है कि वह उसी का है, या किसी अन्य का है। वह कहता है—

'जिसके रवि ऊगें जेलों में,
सन्ध्या होवे वीराने में
उसके कानों में क्या कहने
आते हो? यह घर मेरा है?

इस प्रकार यह पहले देश सेवक, फिर पत्रकार और अन्त में कवि हैं। राष्ट्रीयता तथा देश-प्रेम कवि के जीवन के अभिन्न तत्व हैं। एक सफल वक्ता और देश-सेवक होने के कारण कवि जीवन की वाह्य प्रेरणाओं से ही प्रभावित है, उसमें कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं है, छायावाद की आन्तरिकता का अभाव है। आधुनिक कविता के दो पार्श्व विन्दु श्री प्रसाद और गुप्तजी हैं, जिनके परिपार्श्व में श्री चतुर्वेदीजी आते हैं। हिन्दी के भावनाशील कवि के रूप में भी चतुर्वेदीजी सदैव अपने हृदय को साथ लिए रहते हैं। यज्ञारिक आराधना और राजनीतिक चेतना ही इनकी कला का प्राण है। इनकी कविता की मुख्य दिशा—देशभक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रेमाराधन है। राष्ट्रीय आत्माहुति के कारण इनकी रचनाओं में भास्वरता (दीप्ति) भी है।

काव्य-गत विशेषताएँ—कवि में वीर काव्य, कृष्ण-काव्य और उर्दू काव्य की मुक्तक समष्टि है। उनकी कविता में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों का भी समावेश है। काव्य का माधुर्य केवल कोमल कान्त-पदावली तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु वह मानस-वीणा के तारों पर भी अपनी कलात्मक अँगुलियाँ फेरा करता है। कवि के मार्मिक और तीखे व्यंग्य कभी-कभी हृदय पर गहरी चोट कर देते हैं, जिससे देश-प्रेम के भाव-उत्स अपने आप फूट पड़ते हैं। उसकी अभिव्यञ्जनायें सुस्पष्ट, कोमल एवं रहस्य पूर्ण हैं। उसकी सूझ बहुत ही निराली है और उसकी पकड़ बहुत ही चुस्त है। काव्य में विराट प्रकृति के साथ मनुष्य का सीधा सम्बन्ध भी स्थान-स्थान पर जोड़ा गया है जिसके मध्य से रस-धारा स्वतः फूट निकली है। कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में राष्ट्रवाद और त्याग की झलक है। किन्तु उत्तर कालीन रचनाओं में भावावेश और मादकता की ही प्रधानता है। प्रेमानुभूति विशुद्ध और वासना रहित है, यद्यपि वह वासना के ही भीतर से निःसृत होती है। देखिए:—

"किन बिगड़ी घड़ियों में झाँका, तुझे झाँकना पाप हुआ!
आग लगे वरदान निगोड़ा, आकर मुझ पर शाप हुआ॥"

प्रेमावेश के कारण कवि अपने 'अमर तारुण्य' का दान 'कुरबान' हो जाना समझता है तथा वह अपने 'तारुण्य का नीलाम', 'नाश के गोदाम' में करना चाहता है। 'नयनों के पानी' के रूप में कवि की प्रगति स्वयं प्रवाहित हो पड़ी है और 'वह' स्वयम् अपने से ही डरने लगी है। कवि के सरल व्यक्तित्व और उसकी मृदुता का भी उसके काव्य पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। कवि की लोकप्रियता एक सत्याग्रही के रूप में—जीवन की बाजी लगा देने में ही थी। यही कारण है कि कहीं-कहीं कवि का 'अहं' अत्यन्त सशक्त, प्रौढ़ एवं प्रखर हो उठा है।

इनकी कविताओं के वर्गीकरण के तीन ठोस आधार हैं—

(१) देश-प्रेम सम्बन्धिनी रचनाएँ

(२) प्रेमात्मक रचनायें

(३) नवीन काव्य-धाराओं से सम्बन्धित रचनायें

गांधीवादी विचार-धारा का सर्वाधिक प्रभाव कवि की देश प्रेम सम्बन्धिनी रचनाओं पर पड़ा है। ये कवितायें नवजागरण का सन्देश लेकर ऊर्ज्वस्विता, तेजस्विता और कर्मठता का पाठ पढ़ाने वाली हैं। स्वतन्त्रता-संग्राम के 'एक सिपाही' का दैन्य तभी दूर हो सकता है, जब पुनः 'त्रेता युग' पृथ्वी पर उतर आवे! वह कहता है:—

"खींचो रामराज्य लाने को भू-मण्डल पर त्रेता!
बनने दो आकाश छेदकर उसको राष्ट्र—विजेता!!"

वह 'गुमराही' को पूजने के लिए तैयार नहीं है। वेदना और दुःख का सामञ्जस्य उसकी कविता की पंक्ति-पंक्ति में है। 'कैदी और कोकिला' नामक कविता प्रेरणात्मक है। उनके 'वेदना गीत' गगन को भी चुनौती दी है—

"अन्तस्तल के अतल-वितल को, क्यों न वेध जाते हो?
अरे वेदना गीत, गगन को, क्यों न छेद जाते हो?"

'प्रेम' के अमरगायक के रूप में कवि की अपनी एक नवीन ही दिशा है। किन्तु उसका वह प्रेम सजीव में ही नहीं निर्जीव में भी है। कवि का प्रेम त्याग-मूलक है—उसका आधार उत्सर्ग है। यथा—

"मानों यमुना के दोनों तट,
ले लेकर लहरों की बाहें—
मिलने में असफल कल-कल में
रोये ले मधुर-मलय आहें!
क्या मिलन-सुख को, बिछुड़न की,
बानी समझाने आये हो?
खोने को पाने आये हो।"

रहस्यवादियों की रहस्य भावना का उभार, छायावादियों की विराट् प्रकृति, तथा प्रगतिवादियों का वस्तु-वाद—तीनों का समन्वित रूप ही कवि की विचार-पीठिका है। किन्तु उन सबके ऊपर कवि के देश-प्रेम का स्वर है। 'झरने' के वर्णन में कवि की भाव शाब्दलता तथा कल्पना के सुन्दर सौन्दर्य का चित्रण है। देखिए :—

"किस निर्झरिनी के घन हो?
पथ भूले हो किस घर का?

(शेष पृष्ठ २०० पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरहँटा और छरहटा का रहस्य

श्री चन्द्रबली पाँडे

उत्तर प्रदेश की हिन्दुस्तानी एकेडेमी से सजधज के साथ अभी एक कृति का प्रकाशन हुआ है जिसका नाम है 'जायसी-ग्रन्थावली'। ग्रन्थावली का प्रकाशन कैसा भी हुआ, होगया, यही क्या कम है? इससे कुछ तो अध्ययन का काम आगे बढ़ा। फिर इसके स्वागत में हमारा विरोध क्या? हम भी सहर्ष इसका स्वागत करते हैं। किन्तु साथ ही सबको सावधान भी कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि इसका पाठ आँख खोल कर करें और 'प्रामाणिक तथा अधिकारी' सम्पादक की प्रतिभा को परख कर ही उसकी स्तुति में लीन हों अन्यथा इससे घोर अपकार की सम्भावना है। अनर्थ तो उसमें है ही, प्रच्छन्न चेष्टा भी उसमें कुछ कम नहीं, तनिक धीरज धर कर देखिए न। शास्त्रीय सम्पादकजी बतलाते हैं:—

"(१) ३६-५ निर्धारित पाठ हैं: 'कतहुँ छरहटा पेखन लावा'। शुक्लजी का कहना है कि 'छरहटा' के स्थान पर 'चिरहँटा' और 'पेखन' के स्थान पर 'पंखिन्ह' होना चाहिए। किन्तु शुक्लजी का बताया हुआ यह पाठ न प्रियर्सन की किसी हस्तलिखित प्रति में मिला था और न मुझे मिला है। शुक्लजी को, यद्यपि उन्होंने कहा नहीं है, यह पाठ नवलकिशोर प्रेस वाले उस संस्करण में मिला था, जिसकी पाठ-भ्रष्टता की स्वतः उन्होंने निन्दा की है। और 'चिरहँटा' का अर्थ उन्होंने 'बहेलिया' किया है। यह अर्थ भी उन्होंने किस प्रमाण पर किया है, यह अज्ञात है। न लोक-भाषा में यह अर्थ मिलता है, और न जायसी ने ही अन्यत्र कहीं इस अर्थ में शब्द का प्रयोग किया है। 'बहेलिया' के अर्थ में जायसी ने 'चिरिहार' शब्द का प्रयोग किया है:—

कत चिरिहार ढुकत लेइ लासा। (७०-४)
सुनि हम्हन बिनवा चिरिहारू। (७८-१)

यदि 'बहेलिया' अर्थ के लिए जायसी को कोई शब्द रखना होता तो वे 'चिरहँटे' के स्थान पर कदाचित् 'चिरिहरा' रखते:—

कतहुँ 'चिरिहरा' पंखिन्ह लावा।

किन्तु लिपि की सम्भावनाओं के ध्यान से 'चिरिहरा' का 'चिरहँटा' या 'छरहटा' नहीं हो सकता, इसलिए 'चिरिहरा' पाठ भी मान्य नहीं हो सकता।"

(भूमिका, पृ० १०३-१०)

श्री माताप्रसाद गुप्त ने 'प्रियर्सन', 'शुक्लजी' एवं 'जायसी' के घट की एक ही भटके में जान ली, किन्तु वे अभी तक न जान सके कि 'चिरहँटा' का अर्थ होता क्या है। दूर जाने की बात नहीं। 'प्रियर्सन' के नाते अंग्रेजी के 'हंट' और 'हंटर' को ले लें और देखें यह कि 'हँटा' की व्याप्ति कितनी है। 'चिरेहरा' और 'चिरहँटा' में 'हरा' और 'हँटा' का ही तो द्वन्द्व है? तो कहीं को यात्रा क्यों करें!? यहीं अपने प्रधान डा० धीरेन्द्र वर्माजी से पूछ देखें कि यह वस्तुतः 'हृ' और 'हन' धातुओं का द्वन्द्व तो नहीं है। 'हन्ता' को कभी देखा वा सुना है वा नहीं?

हाँ, 'लोक-भाषा' में न सही, लोक में तो कभी आपने 'किलहँटा' वा 'किलहँट' को अवश्य देखा होगा। उसका अर्थ क्या है? 'चिरहँटा' का 'हँटा' ही तो आपको खल रहा है? सो यहाँ भी है ही। इसी को अँगरेजी के 'हंट' के साथ देखिए और समझ लीजिए कि आप किस की आलोचना में क्या लिख रहे हैं?

अच्छा, आप यह भी लिखते हैं—

"अर्थ की दृष्टि से भी 'छरहटा पेखन लावा' विचारणीय है। 'छरहट' शब्द यद्यपि 'पद्मावत' के मूल पाठ के छन्दों में नहीं मिलता है, एक प्रक्षिप्त छन्द में मिलता है, जिसे प्रियर्सन और शुक्लजी—दोनों ने अपने-अपने संस्करणों में मूल पाठ में सम्मिलित कर लिया है। प्रियर्सन में वहाँ पाठ है:—

खिन इक महँ 'छरहट' होई बीता।
दर महँ छपहि रहै सो जीता॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शुक्लजी में है :—

खिन इक महँ 'झुरमुट' होइ बीता।
दर महँ चढ़ि जो रहै सो जीता॥

इस प्रसंग में उक्त नवलकिशोर प्रेस तथा कानपुर वाले संस्करणों का पाठ भी द्रष्टव्य है। नवलकिशोर प्रेस में है—

खिन इक महँ 'झुरमुट' हो बीता।
दर महँ चढ़ै जो रहै सो जीता॥

कानपुर में है:—

खिन इक महँ झुरमुट हो बीता।
दर महँ चढ़ें जो रहै सो जीता॥

ऐसा ज्ञात होता है कि प्रतियों का बहुमत और शब्द की सार्थकता देख कर शुक्लजी ने 'छरहँट' के स्थान पर 'झुरमुट' पाठ को ही ग्रहण किया। 'झुरमुट' का अर्थ शुक्लजी ने किया है 'अँधेरा'। अँधेरा-सन्ध्या का विरल अंधकार 'झुटपुटा' कहलाता है, 'झुरमुट' नहीं, 'झुरमुट' शब्द 'छोटी झाड़ी' के अर्थ में और प्रायः 'झाड़ी' के साथ प्रयुक्त होता है। किन्तु यहाँ पर न 'अँधेरा' का कोई प्रसङ्ग है, और न 'झाड़ी' का। और एक क्षण में 'अंधकार' हो कर समाप्त भी नहीं हो जाता, जैसा 'होइ बीता' से नितान्त स्पष्ट है, प्रसङ्ग 'छरहट' का ही है। और 'छरहट' की व्युत्पत्ति है 'छल + हट्ट'। 'छल' = इन्द्रजाल की 'हट्ट' = 'हाट'। वहाँ पर अङ्गद और हनुमान के पराक्रम के जो दृश्य आते हैं, महेश के घण्टे और विष्णु के शङ्ख के जो नाद सुनाई पड़ते हैं, समस्त दानव, राक्षस, 'अहुठौबज्र' जो जुटे हुए दिखाई पड़ते हैं, वे सब इस 'छलहट्ट' के ही अङ्ग हैं। यही 'छरहट' या 'छलहट्ट' वहाँ सिंघल-वर्णन में भी आया है।" (वही, पृष्ठ ११०-११) हमारा गुप्तजी से प्रश्न है कि किस 'कोश' में 'झुरमुट' का अर्थ 'छोटी झाड़ी' दिया गया है और किस 'अभिधान' में 'छल' का अर्थ है 'इन्द्रजाल'। 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में तो दिया गया है—

"झुरमुट-पुं० [सं० झुंट = झाड़ी] १—पास-पास उगे हुए कई झाड़ या जुप। २—बहुत-से लोगों का समूह। गरोह। ३—कपड़े से शरीर को चारों ओर से ढक लेने की क्रिया।

छल-पुं० [सं०] १—कपट का व्यवहार। धोखा। २—मिस। बहाना। ३—धूर्तता। ४—कपट।"

रही 'शुक्लजी' की बात, सो उन्होंने प्रत्यक्ष ही इसे 'लक्षणा' के रूप में लिया है कुछ 'अभिधा' के रूप में नहीं। हम इसे यहीं छोड़ गुप्तजी के मूल पाठ को देखना ठीक समझते हैं, और चोपक में उनके उलझ जाने का अर्थ शुक्ल भर्त्सना समझते हैं।

डाक्टर माताप्रसाद गुप्तजी का यह भी कथन है—

'पेखन' शब्द के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। 'पेखना' = 'देखना' तो जायसी में बराबर आया ही है, तुलसीदास में 'पेखन' शब्द का भी 'तमाशे' या 'दृश्य' के अर्थ में सुन्दर प्रयोग हुआ है:—

जग पेखन तुम्ह देखन हारे।
विधि हरि संभु नचावन हारे॥

शुक्लजी 'पेखन' और उसके अर्थ से कदाचित् परिचित रहे होंगे, और उनके पास के कानपुर के संस्करण में 'पेखन' पाठ के साथ ही 'तमाशा' उसका अर्थ भी दिया हुआ था। इन अर्थों को ध्यान में रखते हुए यदि पंक्ति का अर्थ दिया जावे, तो होगा:—कहीं 'छल की हाट' और 'खेल तमाशे' लोगों ने लगा रक्खे हैं।

और दूसरे चरण के 'कतहुँ पखंडी नाच नचावा' के प्रसंग में यही अर्थ विशेष संगत भी ज्ञात होता।"

(भूमिका, पृष्ठ १११)

'कतहुँ छरहटा पेखन लावा' का गुप्तजी ने अर्थ किया है—

"कहीं 'छल की हाट' और 'खेल तमाशे' लोगों ने लगा रक्खे हैं।"

किन्तु क्या बड़ी विनम्रता से पूछा जा सकता है कि 'छरहटा' 'लावा' का कर्त्ता क्यों नहीं। 'छल + हट्ट' से 'छरहाट' बनेगा न? तो फिर यह 'छरहटा' क्या? ध्यान से देखिए। कहीं 'छलहट्टक' का परिणाम न हो। जो आपका निर्धारित पाठ है:—

कतहुँ छरहटा पेखन लावा। कतहूँ पाखँड काठ नचावा॥

जायसी ने [३७] में कहा था—

पुनि देखिअ सिंघल की हाटा।
नवौ निद्धि लछिमी सब बाटा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनक हाट सब कुँहकुँह लीपी ।
बैठ महाजन सिंघल दीपी ॥

और कहा था [३८] में—

पुनि सिंगार हाट धनि देसा ।
कइ सिंगार तहँ बैठी बेसा ॥

तो फिर आपकी इस 'छल की हाट' की स्थिति क्या है ? क्या यह भी 'कनक हाट' और 'सिंगार हाट' की भाँति ही कोई हाट है ? जायसी का कहना है:—

लै लै बैठ फूल फुलहारी । पान अपूरब धरे सँवारी ॥
सोंधा सबै बेटु लै गाँधी । बहुल कपूर खिरौरी बाँधी ॥
कतहूँ पंडित पढ़हिं पुरानू । धरम पंथ कर करहिं बखानू ॥
कतहूँ कथा कहैं कछु कोई । कतहूँ नाच कोउ भलि होई ॥
कतहूँ छरहटा पेखन लावा । कतहूँ पाखँड काठ नचावा ॥
कतहूँ नाद सबद होइ भला । कतहूँ नाटक चेटक कला ॥
कतहुँ काहुँ ठग विद्या लाई । कतहुँ लेहिं मानुस बौराई ॥
चरपट चोर धूत गँठिछोरा मिले रहहि सेहि नाँच ।
जो तेहि नाँच सजग भा अगुमन गथ ता कर पै बाँच ॥

कहिए न, किस 'हाट' की यह लीला है ? 'सिङ्गारहाट' की ही न ? नहीं तो आप कर नहीं सकते । कारण कि 'लै लै बैठ' का पाठान्तर भी है:—

"१. प्र० २, द्वि० ६, तृ० २ बैठ सिङ्गार हाट ।"

निदान कहना ही पड़ता है कि किसी भी दृष्टि से 'छरहटा' का अर्थ 'छल की हाट' करना ठीक नहीं । और

कतहूँ पाखण्ड काठ नचावा

को तो आपने न जाने किस पुण्य प्रेरणा से 'भूमिका' में कर दिया है—

कतहुँ पखण्डी काठ नचावा ।

क्या 'कतहूँ पाखण्ड काठ नचावा' का अर्थ करना आपके लिए सुगम न था ? हाँ—

कतहूँ नाटक चेटक कला

का अर्थ आपने क्या समझा ? कारण यह कि 'चेटक' का अर्थ होता है—

१. दास । २. दूत । ३. जादू । माया

और आपने 'छरहट की व्युत्पत्ति' दी है—

'छल + हट्ट' 'छल' = इन्द्रजाल की 'हट्ट' = हाट ।

'इन्द्रजाल' का सम्बन्ध 'जादू' वा 'माया' से है न ? तो फिर आप का पक्ष क्या ? रही 'शुक्लजी' की बात । सो प्रत्यक्ष ही उनका पाठ है—

कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा । कतहुँ पखण्डी काठ नचावा ॥
कतहूँ नाद सबद होइ भला । कतहूँ नाटक चेटक-कला ॥
(सिंहलद्वीप-वर्णन खण्ड : १५)

जी यही 'कतहुँ पखडी काठ नचावा' पाठ आपकी लेखिनी से कागद पर भी उतर आया और वह छप गया आपकी उसी सुसिद्ध 'भूमिका' में जिसमें 'शुक्लजी' के पाठ की खिल्ली उड़ाई गई है । शुक्लजी के पाठ का अर्थ स्पष्ट है । प्रेम का 'पक्षी' से भी कुछ नाता है, इसे कौन नहीं जानता ? तो फिर उस सिङ्गार हाट' में यदि कहीं पक्षियों का आना भी हो गया तो कौनसी ऐसी बात हो गई कि आपको 'मूल' को छोड़ 'चोपक' की शरण लेनी पड़ी और 'भुरमुट' को 'झुटपुटा' समझना पड़ा ।

'शुक्लजी' का विनय है—

"इतनी बड़ी बड़ी कठिनाइयों को बिना धोखा खाए पार करना मेरे ऐसे अल्पज्ञ और आलसी के लिए असम्भव ही समझिए । अतः न जाने कितनी भूलें मुझसे इस कार्य में हुई होंगी, जिनके सम्बन्ध में सिवाय इसके कि मैं क्षमा माँगू और उदार पाठक क्षमा करें, और हो ही क्या सकता है ?" (वक्तव्य, पृष्ठ १०)

और आप अपने अभिमान को अपने 'वक्तव्य' में देखिए । पाठकों को उसके चक्कर में पड़ने की आवश्यकता नहीं, पकड़ के लिए इतना ही पर्याप्त है । हाँ, मूल ग्रन्थ का पाठ करें तो अच्छा ही है । कारण, इतने पाठान्तर अन्यत्र कहाँ ? श्रम की सराहना तो होनी ही चाहिए ।

नोट—श्रद्धेय पांडेजी की भाषा में यत्र-तत्र हमने कुछ परिवर्तन किया है जिसके लिए हम उनसे क्षमा याचना करते हैं । विषय की उपयोगिता देख कर ही हमने इसे छापा है, अन्यथा ऐसा लेख हम 'साहित्य-सन्देश' में प्रायः नहीं देते ।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनकरजी की नई कृति : रश्मिरथी

—१—

रश्मिरथी की युद्ध भावना

'रश्मि रथी' श्री दिनकरजी की एक आग्नेय कृति है। इसमें स्थान-स्थान पर उनके ज्वलन्त पौरुष का दीप्तिमय उद्‌गार व्यक्त हुआ है। यद्यपि कथा-भूमि प्राचीन है, फिर भी कवि ने मौके पर समय और समाज के प्रति अपने विचार प्रकाशित किए हैं। यों तो मूलतया दिनकर की कविता में भावोत्तेजना ही पायी जाती है, विचारणा नहीं, किन्तु कुरुक्षेत्र के रचना-काल से ही उसमें विचारों की रीढ़ आ गयी है। हाँ, वह विचार या चिन्तन निष्कर्षात्मक नहीं, समस्यामूलक है, चूँकि 'कवि का शङ्काकुल हृदय ही मस्तिष्क के स्तर पर चढ़ कर बोला है।' यहाँ तो हमारा वर्ण्य विषय 'रश्मि रथी में युद्ध-भावना' है फिर भी कुरुक्षेत्र की पृष्ठभूमि में जाना आवश्यक है क्योंकि कवि ने पूर्व ही इस कृति में युद्ध-समस्या पर पर्याप्त विचार किया है।

श्री दिनकर युग की गति के साथ चलने वाले सत् कवि हैं। इनकी सामयिक जागरूकता श्लाघ्यनीय है। इसलिए इनकी कृति में आज की युद्ध-समस्या पर पूरी रोशनी पाने की उम्मीद की जा सकती है। युद्ध और शान्ति की समस्या के समाधान-हेतु आज प्रत्येक विचारक के हृदय और मस्तिष्क, एक साथ, आन्दोलित हैं। समस्या यह है कि क्या अब भी, जब कि मानव-मस्तिष्क का परिधि-बन्ध अतीव विस्तृत हो चुका है' रण की अहिंसा—भावना हिडिंबा की तरह मनुजता की छाती पर उल्लंग लास करती रहेगी? युग की गति विधियों को परख कर कवि भी चीख उठता है—

एक ही गोद के लाल, कोख के भाई,
सत्य ही लड़ेंगे हो दो और लड़ाई?

कवि के सामने पहला प्रश्न उठता है कि युद्ध है क्या? क्या यह अनिवार्य्य है? क्या हिंसा मनुष्य की चिरन्तन समीपी भावना है! कवि ने कुरुक्षेत्र में भीष्म से कहलाया था कि युद्ध 'प्राकृतिक विकारों का विस्फोट' है और युद्ध की भावना संक्रामक है। कवि ने 'शर ही में विनय की दीप्ति' पायी थी, युद्ध के अन्तराल में न्यायोचित अधिकार की गूँज पायी थी। और, उसने माना था कि रण न्याय के हेतु होता है, अतः वरेण्य है। किन्तु, रश्मि रथी में कवि कुछ अधिक पते की बात बोलता है—

रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हों, मानी हों,
और प्रजाएँ मिलें उन्हें, वे और अधिक अभिमानी हों।

आधुनिक शासन-प्रणाली के प्रशंसक यह खण्डन कर सकते हैं कि आज तो राजे नहीं हैं। हाँ, राजे तो नहीं, किन्तु राजसत्ता अब भी है। भले ही, अब गुलाबों की लड़ाई अथवा कुरुक्षेत्र की तरह व्यष्टि-केन्द्रित लड़ाई न हो, पर लड़ाई होगी। आज के युद्ध में अन्तर यह है कि व्यक्ति के आसन पर 'वाद' आसीन हो गया है। प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध बाजार जीतने के लिए हुए थे; तृतीय विश्व युद्ध में साम्राज्यवाद और साम्यवाद भिड़ेंगे—डालर और रूबेल वज्रदंष्ट्री बनकर लड़ेंगे। ठीक, जिस तरह युद्ध के साध्य में क्षीण और कृत्रिम रूपान्तर हुआ, उसी तरह युद्ध के साधन में भी। अगर कुरुक्षेत्र का घटोत्कच अपने प्रतिभट पर शिलाखण्ड फेंकता था तो आज का विज्ञान-वादी घटोत्कच वायुयानों पर बैठ कर बम-गोले फेंकता है। यह साध्य तथा साधन का रूपान्तर तथा परिष्कार है, लेकिन युद्ध की भावना ज्यों की त्यों बनी हुई है। श्री दिनकर जी अपनी पहली सांस में कहते हैं :—

अनगढ़ पत्थर से लड़ो, लड़ो किटकिटा नखों से दाँतों से,
या लड़ो ऋक्ष के रोम गुच्छ पूरित वज्रोकृत हाथों से,
या चढ़ विमान पर नर्म मुट्ठियों से गोलों की वृष्टि करो।

ये तो साधन के भेद किन्तु, भावों में तत्त्व नया क्या है?

झर गई पूँछ रोमान्त झरे, पशुता का झरना बाकी है।
बाहर-बाहर तन सँवर चुका, मन अभी सँवरना बाकी है।

यानी, कवि युद्ध को एक पाशविक प्रवृत्ति मानता है।

दूसरा प्रश्न उठता है कि यदि युद्ध स्वाभाविक है, तो वह नैतिक या अनैतिक—धार्मिक है या अधार्मिक? कुरुक्षेत्र में कवि ने युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए बतलाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि ज्वलन्त प्रतिशोध की भावना से प्रबुद्ध जीवन्त जाति-सङ्घर्ष ही धर्म युद्ध है। इस तरह कवि ने युद्ध को धर्म-विहित माना है। संक्षेप में, अनय और अत्याचार के विरुद्ध न्याय-संस्थापन के लिए तलवार उठाना नैतिक और धर्म-समर्थित है। किन्तु, रश्मिरथी में कवि की भावना ने दूसरी मोड़ ली है। इसमें युद्ध की प्रलयकारिता और संहार से कवि अधिक भीत और त्रस्त दिखाई पड़ता है। उसका परिवर्तित दृष्टिकोण बोल उठता है—

है वृथा धर्म का किसी समय करना विग्रह के साथ प्रथन;
करुणा से कढ़ता धर्म विमल, है मलिन पुत्र हिंसा का रण।

इतना ही नहीं, वह उन धार्मिकों से भी अड़ जाता है (जिनमें रश्मि रथी के पूर्व वह स्वयं भी एक था) जो न्याय और नीति के नाम पर युद्ध को धर्मयुद्ध कह कर गौरवान्वित करते हैं। कवि उन धर्मध्वजियों से प्रश्न करता है:—

हो जिसे धर्म से प्रेम कभी वह कुत्सित कर्म करेगा क्या ?
बर्बर कराल दंष्ट्री बनकर मारेगा और मरेगा क्या ?

तीसरा प्रश्न है कि वस्तुतः शूर धर्म क्या है ? हिंसा का तामस पूजन या अहिंसा का सात्विक अर्चन ? कुरुक्षेत्र में कवि ने शूर-धर्म की इस प्रकार व्याख्या की थी:—

शूर धर्म है अभय दहकते,
अंगारों पर चलना।
शूर धर्म है शोणित असि पर,
धर कर पाँव मचलना।

किन्तु, कुरुक्षेत्र के प्रणयन के उपरान्त कवि सोचता है कि अगर शोणित असि पर पाँव धर कर मचलना 'शूर धर्म' है तो निडर होकर शोणित असि की चोट अपनी गर्दन पर सह लेना महान (!) 'शूरधर्म' है। इसलिए रश्मिरथी में वह प्रश्न करता है—

पर हाय, वीरता का सम्बल रह जायेगा धनु ही केवल ?
या शान्ति-हेतु शीतल शुचि श्रम भी कभी करेंगे वीर परम ?

वस्तुतः अहिंसा का सात्विक अर्चन, हिंसा के तामस पूजन की अपेक्षा अधिक कष्ट साध्य और श्रेयस्कर है। गाँधीजी ने भी अपनी अहिंसा की व्याख्या करते हुए कहा था कि जो मनुष्य आत्मा से लूला और पंगु है, वह अहिंसा के पथ का पांथ नहीं बन सकता। अस्तु, यहाँ पर हिंसक शूरधर्म का प्रशस्ति गायक कवि अहिंसा से प्रभावित दीख पड़ता है। और, हम कह सकते हैं कि रश्मिरथी में हम हिंसा तथा रण से अहिंसा और शान्ति की ओर एक महान एवं सात्विक प्रयाण पाते हैं। मनुष्य स्वभाव से ही शान्ति प्रिय जीव है। आवेश के क्षणों में कुछ समय तक वह शारीरिक और मानसिक विकारों से पराभूत होकर हिंसक बन जाता है। अर्थात् हिंसा मनुष्य का स्वभाव सिद्ध गुण नहीं, उसका क्षणिक आवेश-मन्थन है।

अहिंसा पर विचार करते समय कवि ने कुरुक्षेत्र में एक गूढ़ प्रश्न उपस्थित किया था—

क्षमा शोभती उस भुजङ्ग को
जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दन्तहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो ?

तात्पर्य यह कि अहिंसा तो कायरों और पौरुषहीनों का कवच कहला सकती है। अहिंसा तब कारगर और पूत हो सकती है, जब वह शक्तिवानों का आभूषण हो। इस विस्तार में उत्तर देना बेकार है, चूँकि गांधी के नेतृत्व का एक युग ही इसका जीवन्त प्रमाण है कि सत्य और न्य पर आधारित अहिंसा में स्वयं एक अलौकिक और दुर्द शक्ति है, जिसके लिए साधक की ठोस साधना अपेक्षित उसकी पूर्व अर्जित भौतिक शक्ति नहीं।

अबतक के अध्ययन और विश्लेषण से यह सिद्ध हो चुका है कि रश्मिरथी का कवि युद्ध से ऊब चुका है कल्पना की आँखों से वह कुरुक्षेत्र को लोहित कीच देख विस्मय से बोल उठता है—

बह चली मनुज के शोणित की धारा पशुओं के पग धोक

युद्ध-विमुखता का अर्थ शान्ति-संस्थापन है। अ हमें यह देखना है कि कवि ने शान्ति-संस्थापन का रास्ता बतलाया है। तृतीय विश्वयुद्ध की सम्भावना ताड़ित प्रत्येक चिन्तनशील व्यक्ति उससे यह प्रश्न पूछ चाहेगा। किन्तु, इसके उत्तर के लिए हमें हताश हो पड़ता है। उत्तर की जगह पुस्तक के अन्त में कवि अप समस्या को पुनः दुहरा कर देता है—

मनुज मनुजत्व से कब तक लड़ेगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य का अन्त भी समस्यामूलक है, जिससे हमारे जिज्ञासु हृदय को परितोष नहीं मिलता। यद्यपि कवि अपनी सीमित कथा-भूमि के क्षेत्र में आबद्ध था, फिर भी उससे कुछ अधिक आशा की जाती थी। रश्मिरथी के कवि की दशा गलत अङ्कगणित के उस विद्यार्थी से मिलती-जुलती है, जो सूचे प्रश्न को समझ कर भी उत्तर नहीं लिख पाता।

—विमली बी० ए०

—२—

रश्मिरथी में क्या है ?

श्री दिनकर कुरुक्षेत्र के बाद प्रबन्ध-काव्यों की ओर मुड़े हैं। प्रस्तुतः काव्य-ग्रन्थ उसी का परिणाम है। इसमें महावीर कर्ण का उज्ज्वल चरित्र बड़ी ओजपूर्ण शैली में चित्रित किया गया है। पूरी पुस्तक में सात सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में कर्ण के युद्ध कौशल, पाण्डवों से तनातनी और गुरु आचार्य की चिन्ता का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में परशुराम द्वारा कर्ण का तिरस्कार, ब्रह्मास्त्र की शक्ति के शाप द्वारा ऐंठत करना और ब्राह्मण समझ कर ज्ञान देने तथा शूद्र समझकर उसे हर लेना वर्णित है। तृतीय सर्ग में कृष्ण द्वारा कर्ण को अपनी ओर मिलाने, कर्ण का मित्र दुर्योधन से विश्वासघात न करने के निर्णय तथा क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए डटकर चले जाने का उल्लेख है। चतुर्थ सर्ग में इन्द्र का विप्र रूप में कर्ण से कवच कुण्डल माँगना दिखाया है। पञ्चम-सर्ग में कुन्ती का कर्ण को उसकी उत्पत्ति का ठीक तत्त्व बताकर अपनी ओर करने और कर्ण के अपने निश्चय पर दृढ़ रहने का वर्णन है। षष्ठ सर्ग में कर्ण के युद्ध में जयी होने का वर्णन है और सप्तम सर्ग में कर्ण के युद्ध में ही हत होने का वर्णन है। पूरे काव्य में इस बात का प्रतिपादन है कि मनुष्य जन्म से बड़ा नहीं होता, मानवीय गुणों से बड़ा होता है। कर्ण ने अपने तप-संयम और चरित्र की उच्चता से विश्व के महापुरुषों में स्थान प्राप्त किया और प्राण देकर भी अपने युग की रक्षा की। उसका निश्चय देखिए—

प्रवंचित हूँ नियति की दृष्टि में दोषी बड़ा हूँ
विधाता से किए विद्रोह जीवन में खड़ा हूँ
स्वयं भगवान मेरे शत्रु को ले चल रहे हैं
अनेकों भाँति से गोविन्द मुझको छल रहे हैं
मगर राधेय का स्यन्दन नहीं तब भी रुकेगा
नहीं गोविन्द को भी युद्ध में मस्तिक झुकेगा
बताऊँगा उन्हें मैं आज नर का धर्म क्या है
समर कहते किसे हैं और जग का मर्म क्या है।

जाति-पाँति का विरोध करते हुए वह कहता है—

जाति-जाति रटते जिनकी पूँजी केवल पाखण्ड।
मैं क्या जानूँ जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड॥

बाहुबल का अभिमानी कर्ण अपने चरित्र से आधुनिक युग की ऊँच-नीच की समस्या का समाधान कर देता है। हमारा विश्वास है कि यह काव्य हिन्दी में अपने ढङ्ग का अकेला है। दिनकरजी की भाषा-शैली की प्रशंसा करना ही व्यर्थ है। भाषा का ऐसा सरल और भाव-गाम्भीर्य युक्त प्रयोग हिन्दी में किसी दूसरे कवि में नहीं है। अनेक स्थलों पर कवि की प्रतिभा की धाक स्वीकार करनी पड़ती है। काव्य-ग्रन्थ संग्रहणीय और पठनीय है।*

—कमलेश एम० ए०

* रश्मिरथी—रचयिता—श्री दिनकर, प्रकाशक—अजन्ता प्रेस लिमिटेड, नया टोला, पटना। पृष्ठ १८५, मूल्य ५)

(पृष्ठ १९४ का शेष)

है कौन वेदना ? बोलो !
कारण क्या करुणा स्वर का ?"

इस प्रकार चतुर्वेदीजी देशानुराग का गीत गाते हुए प्रेमात्मक एवं रहस्यात्मक रचनायें लिखने वाले हिन्दी प्रथम कवि हैं। इनकी कला-कृतियों का आधार जलन, टीस, कसक एवं ओज है। इनकी कवितायें युवकों को छूट-पटाने वाली तथा भावों में आत्म-सात् कर देने वाली हैं। कविता के क्षेत्र में ये सच्चे युवक-हृदय सम्राट् तथा राष्ट्र-कवि हैं। कविता का कलाकार कभी-कभी कारागारों के भीतर से झाँकता है और कभी वह युवकों को नव-जागरण का सन्देश देता हुआ बलिदान और आत्मोत्सर्ग का पाठ पढ़ाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

प्रसाद की नाट्य-कला एवं स्कन्द-गुप्त समीक्षा—लेखक–श्री रामप्रकाश अग्रवाल एम० ए०, प्रकाशक–श्री त्रिभुवन प्रकाश अग्रवाल, ३०१, बाउंड्री रोड, मेरठ। पृष्ठ २०५, मूल्य २।)

इस पुस्तक में लेखक ने ६ अध्याय बनाये हैं—किन्तु वस्तुतः तीन ही भाग हैं। लेखक ने पहले तो साधारणतः नाट्य-शास्त्र की चर्चा की है, फिर प्रसाद के नाट्य-साहित्य की और अन्त में स्कन्द गुप्त की। प्रत्येक अध्याय लेखक ने अध्ययन और विचार के उपरान्त लिखा है, यह स्पष्ट विदित होता है। स्कन्दगुप्त पर तो बहुत विस्तृत विचार किया गया है, नाट्य-शास्त्र का उल्लेख भी 'स्कन्दगुप्त' के माध्यम से ही हुआ है। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों को ठीक-ठीक हृदयंगम करने के लिए तत्कालीन भौगोलिक स्थिति का ज्ञान भी अनिवार्य है। इस लेखक ने स्कन्दगुप्त-कालीन भारतीय चित्र देकर सोने में सुगन्ध भर दी है। पुस्तक प्रसाद के और विशेषतः स्कन्दगुप्त के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

साहित्य-विवेचन—लेखक–श्री क्षेमचन्द्र सुमन तथा योगेन्द्र कुमार मल्लिक, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड-संस, काश्मीरी गेट दिल्ली ६। पृष्ठ ३६८, मूल्य ७)

इस पुस्तक में साहित्य, कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, गद्य-गीत, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखा चित्र, स्केच, रिपोर्ताज, समालोचना शीर्षकों से ग्यारह अध्यायों में वर्तमान साहित्य के रूपों पर विचार किया गया है। प्रत्येक अध्याय में विचार का एक क्रम विदित होता है। पहले लेखक ने परिभाषा पर विचार किया है, इसमें प्राच्य और पाश्चात्य दोनों दृष्टियों का उल्लेख हुआ है, और इसमें संस्कृत-अंग्रेजी के प्रभूत उद्धरणों को देने में कोई सङ्कोच नहीं दिखाया गया। हिन्दी के प्रामाणिक लेखकों के मतों का भी समावेश किया गया है। इस परिभाषा और उसके विवेचन तथा वर्गीकरण के उपरान्त, हिन्दी-साहित्य के इतिहास से उसकी पुष्टि दिखायी गयी है तथा प्रगति भी। इसमें आधुनिक युग के साहित्य को प्रधानता दी गयी है। इस प्रकार आलोचना-शास्त्र के साथ लेखकों ने हिन्दी इतिहास के साथ वर्तमान साहित्य के स्वरूप का भी ज्ञान कराने की चेष्टा की है। पुस्तक कलेवर और बाह्य शोभा के कारण आलमारी में भी शोभा बढ़ायेगी, पढ़ने में तो उपयोगी है ही।

—सत्येन्द्र

उपन्यास सिद्धान्त—ले०–श्री श्याम जोशी, प्रकाशक–मोहन न्यूज एजेन्सी, कोटा। पृष्ठ ६८, मूल्य ।॥)

यह पुस्तक झाँसी की रानी-एक दृष्टि की भूमिका का एक अङ्ग है। सिद्धान्त सभी उपन्यासों पर लागू होते हैं और इस दृष्टि से इसका स्वतन्त्र अस्तित्व भी न्याय सङ्गत है। इस पुस्तक में उपन्यास की रचना और सङ्गठन के सिद्धान्तों के अतिरिक्त संक्षिप्त विकास-क्रम भी दिया हुआ है।

साहित्य-सर्वस्व—लेखक–श्री हरीराम तिवारी, प्रकाशक–संस्कृत सदन, कोटा। पृष्ठ ३२१, मूल्य ३॥)

श्री हरीरामजी तिवारी ने एक अध्यापक के नाते विद्यार्थियों को साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन और उनका विविध काव्यांगों में आलोचनात्मक निरूपण किया है। इसमें रस, अलङ्कार, छन्द, शब्दशक्तियाँ, काव्य के दोषों आदि के विवरण के साथ साहित्य के विविध वादों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रमुख कवियों की कृतियों की आलोचना दी है। एक प्रकार से यह सब निबन्ध, स्फुट रूप से लिखे गये हैं उनमें कोई पारस्परिक तारतम्य नहीं है तथापि ये विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इसमें आलोचक की दृष्टि सन्तुलित और न्यायपूर्ण है। —गुलाबराय

पथिक : एक सरल अध्ययन—लेखक-बेसानि श्री रामजु गुप्त; प्रकाशक-लक्ष्मी हिन्दी विद्यालय, चिलकलूरिपेट। पृष्ठ संख्या ५२ + १०१ = १५३, मूल्य १॥)

'पथिक' श्री रामनरेश त्रिपाठी का सुप्रसिद्ध खण्ड-काव्य है जिसकी रचना गान्धीवादी आदर्शों को लक्ष्य में रख कर की गई थी। सच तो यह है कि इस काव्य के पथिक स्वयं बापूजी थे जिन्होंने इस कृति को समय निकाल कर न केवल स्वयं पढ़ा बल्कि सर लल्लू भाई साँवलदास को स्वयं पढ़ कर सुनाया भी था। 'पथिक' में कवि ने बापू और भारत के भविष्य की कल्पना की थी। यह काव्य उत्तर और दक्षिण भारत की कई परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में नियत है। लेखक ने इस पुस्तक पर टीका लिख कर स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने वाले परीक्षार्थियों के लिए भी मार्ग खोल दिया है। टीका के प्रारम्भ में ५२ पृष्ठों की भूमिका है जिसमें पथिक के प्रणेता का परिचय, कथा-सार, चरित्र-चित्रण, प्रश्नोत्तर, 'पथिक' शीर्षक की उपयुक्तता, प्रकृति-वर्णन तथा पथिक में गांधीवाद पर विशद विवेचन है।

राज्य श्री : एक समीक्षा—प्रो० वासुदेव एम० ए०, प्रकाशक-भारती भवन, बाँकीपुर, पटना। पृष्ठ संख्या १६१, मूल्य १।)

प्रस्तुत समीक्षात्मक कृति में लेखक ने सभी दृष्टियों से 'राज्य श्री' नामक नाटक पर विचार किया है। अन्त में कुछ महत्त्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या तथा प्रश्न भी दे दिये गये हैं। प्रसाद के नियतिवाद का विवेचन करते हुए लेखक ने लिखा है—"अंग्रेजी में जिसे हम Fate कहते हैं, वही नियति है" किन्तु वस्तुतः देखा जाय तो प्रसाद का नियतिवाद भाग्यवाद नहीं है। ८ जून १९५१ के पत्र में श्री रायकृष्णदास ने मुझे सूचित किया था कि "प्रसादजी का नियतिवाद न प्रारब्धवाद है और न शैवागमों का शास्त्रीयवाद विशेष। वह प्रसाद साहित्य की एक अनूठी देन है। उसे समझने के लिए पश्चिमी नाटककारों की 'डेस्टिनी' और शैवागमों की 'नियति' दोनों का स्वरूप ध्यान में रखना पड़ता है। प्रसाद का लीलामय आनन्द और आधुनिक युग का विजयवाद 'आप्टीमिज्म' भी व्याख्या करने में सहायता देते हैं। अध्ययन की दृष्टि से प्रसादजी का नियतिवाद आधुनिक युग की साहित्यिक आवश्यकता है। उस पर विश्व-साहित्य और भारतीय परम्परा दोनों का प्रभाव है। उसमें अध्यात्म और इह-लोकवाद दोनों का समन्वय है। वह शास्त्र से ली हुई विचार-धारा नहीं है; उसमें कवि की शुद्ध अनुभूति है। वह प्रसादजी की अपनी विलक्षण वस्तु है जिसने आनन्द-वाद और कर्मयोग को पुष्ट किया है। तुलनात्मक अध्ययन से ही नियति की व्याख्या स्पष्ट हो सकती है। पश्चिम में प्रायः नियति क्रूर देख पड़ती है पर प्रसादजी की नियति पूर्ण लीलामयी है। वह करुणा और दया की मूर्ति है।" आशा है विद्वान आलोचक इस व्यापक दृष्टिकोण से भी नियतिवाद पर विचार करेंगे।

कुल मिलाकर पुस्तक प्रसाद-साहित्य के अध्येताओं तथा विशेषतः छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

माध्यमिक हिन्दी रचना—ले०-प्रो० वासुदेव-नन्दन प्रसाद, प्रकाशक-भारती-भवन, बाँकीपुर, पटना। पृष्ठ संख्या १२५, मूल्य १॥)

प्रस्तुत पुस्तक पटना विश्वविद्यालय के आई० ए०, आई० एस-सी० तथा आई० कौम० के विद्यार्थियों को लक्ष्य में रख कर लिखी गई हैं जिसमें व्याकरण, निबन्ध, अनुवाद आदि सभी उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है। किन्तु स्थान-स्थान पर विद्वान् लेखक से कुछ प्रमाद हो गये हैं जिनकी ओर निर्देश करना आवश्यक है। 'अहर्निश' में विद्वान् प्रोफेसर कर्मधारय समास मानते हैं किन्तु इस पद में द्वन्द्व है। 'पङ्कज' में भी बहुव्रीहि नहीं, तत्पुरुष समास है। इसी प्रकार 'दही बड़ा' में द्वन्द्व नहीं, मध्यमपदलोपी (तत्पुरुष समास) है। 'सशङ्क' शब्द को अशुद्ध और 'सशङ्कित' को लेखक शुद्ध मानते हैं किन्तु वस्तुतः देखा जाय तो 'सशङ्क' और 'शङ्कित' एकार्थक हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सशङ्कित' अशुद्ध है। 'राष्ट्रिय' संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है, हिन्दी में 'राष्ट्रीय' ही अधिकतर प्रयुक्त होता है। 'पौर्वात्य' के स्थान पर 'पौरस्त्य' शुद्ध प्रयोग है। पुस्तक में और भी बहुत सी अशुद्धियाँ रह गई हैं जिनको दूसरे संस्करण में सुधार होना चाहिए।

कवि आरसी की काव्य-साधना—ले०—श्री प्रताप साहित्यालङ्कार, प्रकाशक—तारामण्डल, ४७ जकरिया स्ट्रीट, कलकत्ता। पृ० सं० १५१, मूल्य २॥)

श्री आरसीप्रसादसिंह बिहार के प्रसिद्ध कवियों में से हैं। उन्हीं की काव्य-साधना का विवेचन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। प्रारम्भ में कवि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिस देख कर लगता है जैसे किसी फार्म की खानापूरी कर दी गई हो। काव्य-प्रवृत्ति, विचार-सौन्दर्य और कला नैपुण्य—इस पुस्तक के महत्त्वपूर्ण अध्याय हैं। आलोचक आचार्य शुक्ल की समीक्षा-शैली से प्रभावित है। पुस्तक की साज-सज्जा नयनाभिराम है।

पथिक : एक समीक्षा—ले०—प्रो० वासुदेव एम० ए०, प्रकाशक—भारती-भवन, बाँकीपुर, पटना। पृ० सं० १००, मूल्य १)

परीक्षार्थी छात्रों के उपयोग के लिए प्रोफेसर वासुदेव ने जो पुस्तिकाएँ लिखी हैं, उन्हीं में से यह भी एक है। इसमें श्री रामनरेश त्रिपाठी के सुप्रसिद्ध खण्ड-काव्य 'पथिक' की सभी दृष्टियों से समीक्षा की गई है। अन्त में प्रत्येक सर्ग के महत्त्वपूर्ण पदों की व्याख्या की गई है तथा कुछ प्रश्न दिये गये हैं जिनके साथ उत्तरों के संकेत भी हैं।

—कन्हैयालाल सहल

निबंध

विचार वल्लरी—सम्पादक—श्री जैनेन्द्रकुमार, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली। पृष्ठ २००, मूल्य २॥)

पुस्तक में २३ निबंध हैं जो भारत की कई महान् आत्माओं तथा विचारशील लेखकों द्वारा लिखे गये हैं। लेखों के चयन में सम्पादक का विशेष दृष्टिकोण रहा है। वे चाहे मुंशी प्रेमचन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, डा० सम्पूर्णानन्द, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्री माखनलाल चतुर्वेदी और स्वयं जैनेन्द्र जी आदि हिन्दी लेखकों और विद्वानों के लेख हों, और चाहे गांधी जी, स्वा० विवेकानन्द, बंकिम, विनोबा, कालेलकर आदि हिन्दी से इतर भाषा भाषी महानपुरुषों के अनूदित लेख हों, 'विचार वल्लरी' के रूप में वह एक जीवन-साहित्य है। महात्मा गांधी जी का 'नीतिधर्म', डा० भगवानदास का 'सर्वधर्म समन्वय', आचार्य विनोबाभावे—जीवन और शिक्षण, बंकिमचन्द्र—मनुष्यत्व क्या है, विवेकानन्द—कर्तव्य क्या है, डा० सम्पूर्णानन्द—सुख की खोज—आदि निबंध नीति धर्म आचार,' 'शिक्षा की परम सार्थकता' एवं 'जीवनानुभूति की सहज स्फुरणा' के परिचय हैं, वहीं इसी पंक्ति में विराजमान श्री बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रामकृष्णदास, ई० सत्येन्द्र, श्री चन्द्रमौलि शुक्ल आदि हिन्दी लेखकों के क्रमशः मन की दृढ़ता, धोखा, करुणा, धीर, कल्पना, चेतना प्रवाह—शीर्षक लेख पठनीय, मननीय और अनुकरणीय हैं। 'सामाजिक भूमिका' में आचार्य काका कालेलकर की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में भारतीय संस्कृति की व्याख्या तथा 'धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्' में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का भारतीय सभ्यता के तत्वों का विवेचन पठनीय है। अन्य लेख भी इसी कोटि में महत्व के हैं, जो बौद्धिक चमत्कार के परिचय से अधिक आत्मिक और सामाजिक विकास की भावना से परिपूर्ण हैं।

—रमेश वर्मा

कविता

ज्वाला—लेखक—श्री रामकुमार गुप्त, प्रकाशक—शिवशर्मा प्रकाशन मन्दिर, सम्भल। पृ० ६८, मूल्य १॥)

लेखक ने इस संग्रह की कविताओं में अपने क्रान्तिकारी विचार व्यक्त किये हैं। पुस्तक के नामानुकूल ही इसके भाव हैं। जीवन के अभावों ने इस ज्वाला को और भी तीव्र और उग्र कर दिया है और विषमताओं से कवि पीड़ित हो उठा है। कवि ने जीवन की काली छाया ही देखी है इसीसे उसको ईश्वर में विश्वास नहीं है। जीवन में धूप और छाँह दोनों ही हैं। केवल छाँह पर ही बल देना एकान्तिता का पोषण है। फिर भी छाँह भी सत्य का एक अङ्ग है। उस अङ्ग के व्यक्त करने में कवि ने कौशल से काम लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कविता में प्रवाह है। इन पर निरालाजी की शैली का प्रभाव प्रदर्शित होता है।

अतिन्मज्योति—लेखक-श्री तख्तसिंह भटनागर, प्रकाशक-श्री एन० पी० भटनागर, उदयपुर। पृष्ठ १३२, मूल्य ॥≋)

इस छोटी सी पुस्तक में महात्मा गाँधी के निधन और स्वर्गारोहण का काव्यात्मक वर्णन है। जहाँ तक स्तवन का प्रश्न है वहाँ तक ठीक है वह एक पूजा के अधिकारी के प्रति है किन्तु इसमें जो अलौकिक तत्व है उसको लेखक के हृदयोल्लास का ही द्योतक समझना चाहिए। हम लेखक की सुन्दर भावनाओं की सराहना करते हैं। —गुलाबराय

उपवन—ले०-श्री कुञ्जबिहारीलाल पाण्डेय और प्रकाश उपाल, प्रकाशक-मध्यभारत साहित्यकार संसद, इन्दौर। पृष्ठ ३८, मूल्य १।)

यह काव्य संग्रह मालवे के दो प्रमुख कवियों की कविताओं को लेकर बना है। पाण्डेयजी प्रौढ़ हैं और उपल जी तरुण। एक में हास्य का निर्झर है और दूसरे में करुणा की अतुल जल राशि, जिसमें आशावाद के मोती और बड़वानल की सी झलक खिलती है। पाण्डेयजी के हास्य में शिष्टता और व्यंग्य अभूतपूर्व सम्मिलित है और उनकी रचनाएँ गुदगुदी पैदा करने के साथ-साथ समाज की बुराइयों का भी पर्दाफास करती हैं। उपलजी की अभिव्यक्ति बड़ी सरल और मार्मिकता लिए हुए है और उनके उज्ज्वल भविष्य की परिचायक है।

प्रगति—ले०-श्री दुर्गाप्रसाद रस्तोगी, प्रकाशक-आदर्श प्रकाशन मन्दिर, दारागंज, प्रयाग। पृष्ठ २००, मूल्य ७)

प्रस्तुत पुस्तक में कवि की ५१ कविताओं का संग्रह है। ५२ वीं एक 'प्रगतिकहानी' नामक लम्बी कविता है। इन कविताओं में आरम्भ की लगभग आधी कविताएँ प्रकृति से सम्बन्धित हैं और शेष मानव जीवन के ऊपर प्रकाश डालती हैं। कविताएँ साधारण हैं और कोई नवीनता—न शैली की न भाव की—नहीं है। इतिवृत्तात्मकता के आधिक्य के कारण कविताओं में सरसता उतनी नहीं आ पाई, जितनी कि अपेक्षित थी। आरम्भ में कवि ने भूमिका में प्रगतिवाद के विषय में जो विचार प्रकट किए हैं, वे कुछ भ्रामक हैं। अच्छा होता वे कवि तक ही सीमित रहते। इतना होने पर भी पुस्तक की छपाई-सफाई और गेटअप के कारण वह पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा सकती है साथ ही कुछ पाठकों का मनोरञ्जन भी कर सकती है।

गुनगुन—ले०-श्री राधेश्याम द्विवेदी, प्रकाशक-युगवाणी प्रकाशन, नयाबाजार, ग्वालियर। मूल्य २)

'गुनगुन' की कविताएँ विभिन्न विषयों पर हैं। कभी कवि किसान मजदूरों की दुर्दशा का चित्रण करता है, कभी देश के गौरव के गीत गाता है और कभी प्रेम पर अपने विचार प्रकट करता है। वैसे कवि का ध्यान जनता के दुख दर्द की ओर ही अधिक है, जो समय का प्रभाव है। कला-पक्ष भले ही इन कविताओं का कमजोर हो, कवि की भावानुभूति सबल है। कुछ कविताएँ जैसे ५४-५५ हलकी हैं। ऐसी कविताएँ न रख कर चुनी हुई कविताएँ रखी जातीं तो यह संग्रह अच्छा हो जाता परन्तु लेखक सब प्रकार की बानगी देने के पक्ष में होने से ही ऐसा करने को विवश हुआ जान पड़ता है।

मेघगीत—श्री रमेशचन्द्र झा, प्रकाशक-भारती प्रकाशन, सुगौली चम्पारन, बिहार। पृष्ठ ६४, मूल्य १।)

कवि ने मेघ सम्बन्धी ३१ रचनाओं के इस छोटे से काव्य संग्रह को मेघगीत नाम दिया है। बादल, चातक, मयूर, बिजली का रूप आसाढ़, सावन और भादों के महीनों में वर्षा द्वारा प्रकृति की वृद्धिगत सुन्दरता और इस मस्त वातावरण में प्रिय के प्रति अपनी अन्तर की भावना का निवेदन इतनी कुशलता के साथ चित्रित हुए हैं कि कवि की अद्भुत कल्पना की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। सभी कविताओं में नई-नई उद्भावनाएँ और माधुर्य गुण से पूर्ण भाषा का सुन्दर रूप देखते ही बनता है। श्री रामदयाल पाण्डेय की भूमिका ने पुस्तक को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है। —कमलेश एम० ए०

उपन्यास

वीरबल—लेखक-श्री रामचन्द्र ठाकुर एम० ए० अनुवादक श्री दाऊदयाल लाद 'दर्शन', प्रकाशक-बोरा एण्ड कं० पब्लिशर्स लि०, बम्बई। पृष्ठ २७२ मूल्य ४॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर और बीरबल के विनोद को लेकर देश में सस्ते साहित्य की तो धूम है लेकिन उस साहित्य को जो 'सोमचेदजी' की तरह बिकता है एक भिन्न अभिरुचि की बात मानकर हमारा शिक्षित समाज उपेक्षा करता रहा है, यद्यपि राजा बीरबल और अकबर उनके भी विनोद की सामग्री तो हैं ही।

श्री ठाकुर की यह कृति उस उपेक्षा को दूर ही नहीं करती वरन 'बीरबल' को सुरुचि और सुपठन की सामग्री बनाकर सभ्य समाज में प्रवेश कराती है। सम्पूर्ण पुस्तक आदि से अन्त तक राजा बीरबल तथा शाहन्शाह अकबर के जीवन चरित्रों पर एक सुन्दर प्रकाश डालती है और उस जमाने की धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति का सुन्दर अवलोकन भी करा देती है। पुस्तक के कितने ही अंश तो इतने रोचक हैं कि बार-बार पढ़ने को जी चाहता है। 'बीरबल' की रोचकता जहाँ उसकी हाजिर जवाबी में है उसकी बुद्धिमत्ता और ज्ञान उसके चार चाँद लगा देती है। वास्तव में हिन्दी जगत में ऐसी पुस्तक की जो एक महान् एतिहासिक चरित्र के प्रति फैले हुए भ्रम को ही दूर न करे वरन् उसको लोक-प्रिय भी बना दे अत्यन्त आवश्यकता थी और इस मूल जैसे अनुवाद ने उस कमी को दूर कर दिया है। —बाबूलाल सिंघल

चलते चलते—लेखक—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, प्रकाशक—गौतम बुकडिपो, दिल्ली। पृष्ठ १२५, मूल्य ६)

यह उपन्यास है, आत्मकथात्मक उपन्यास। मुख्य पात्र है राजेन्द्र, मुख्य इसलिये कि आत्मकथा उसी की है, और 'पात्र' भी वह है, क्योंकि उपन्यास के समस्त सूत्रों को वह ग्रहण भी भली प्रकार करता है। राजेन्द्र की मुख्य कहानी तो इतनी है कि अपनी बहिन के विवाह में उसने उसकी छोटी भाभी—मौसेरे बड़े भाई वंशीधर की दूसरी छोटी पत्नी का मन उलझ गया, और धीरे धीरे परिपक्व होकर वह प्रेम में परिणत होगया, वंशीधर के आत्मघात के उपरांत इस राजेन्द्र को वंशीधर की संपत्ति भी मिली। और छोटी भाभी भी उसकी विवाहिता पत्नी हो गयी। इस सूत्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है वंशीधर, उनकी बड़ी पत्नी और छोटी पत्नी की कहानी है। वह अत्यन्त संक्षेप में यह है—वंशीधर की बड़ी पत्नी का विवाह तो वंशीधर से होगया, पर इसे इसकी सगी बुआ का लड़का रामलाल बहुत प्रेम करता था, और इन दोनों का यह सम्बन्ध विवाह के उपरांत भी बना रहा, गुप्त रूप में अवश्य रहा। बड़ी पत्नी ने इसी पाप को पाले रहने के लिये अपने पति वंशीधर का दूसरा विवाह किया था। वंशीधरजी को भी यह विदित हो गया था, और उन्हें यह भी विश्वास हो गया था कि उनकी बड़ी पत्नी का भावी पुत्र भी रामलाल का था, उनका नहीं। वे यह भी भली प्रकार जान गये थे कि उनकी छोटी पत्नी राजेन्द्र से प्रेम करने लगी है, इसीलिए उन्होंने आत्मघात कर लिया। उनकी संतान लाली से उत्पन्न हुई जिसे वे इधर अपने अंत से कुछ पूर्व प्रेम करने लगे थे—वह प्रेम समाज से आँखें छिपा कर ही किया गया था। राजेन्द्र से ही घनिष्ट सम्बन्ध उसके पिता की कहानी से है। इसके पिता राजेन्द्र की माता से असंतुष्ट होकर एक पड़ोसिन से प्रेम करने लगे थे। वह भी उन्हें बहुत प्रेम करती थी। उसके दो लड़के थे—सोनेलाल और उपेन्द्र, लाली नाम की लड़की थी। पिता की मृत्यु हुई, किन्तु मार्ग में उनकी लाश गायब होगयी। अत्यन्त वर्षा के कारण वे जीवित हो उठे थे और फिर वे दिल्ली में लाली की माँ के साथ ही होटल के मालिक बन कर रहने लगे थे। राजेन्द्र को पिता के इस रहस्य का पता बहुत बाद में लगा था, अन्त में वह पिता को ले ही आया था। इन कथाओं के साथ एक वृत्त तो मुरली बाबू और अर्चना का है—ये भी रिश्ते में भाई-बहिन थे, पर फिर बिना विवाह किये ही पति-पत्नी बनकर रहने लगे थे—मुरली बाबू उर्फ राजहंस अत्यन्त मलिन वृत्त है, कई युवतियों पर जाल फैंके, पर लाला सांवरे की लड़की जमना जो रामचन्द्र नाथ की पत्नी थी, इनके चंगुल में फंस कर विशेष परेशान हुई। यहां तक कि इनकी अनुचित चेष्टा से क्षुभित हो उस साध्वी ने मुरली बाबू को चलती रेल से फेंक दिया और स्वयं आवेग में पागल होगयी। राजेन्द्र के सहयोग से जमना और चन्द्रभाव मिले, दोनों का इलाज हुआ और दोनों ठीक हो गये। राजेन्द्र की बहिन माधवी की ससुराल के चित्रों में वैशाली का ही चित्र आकर्षक है। उपन्यास प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियों से ही परिपूर्ण है। राजेन्द्र के प्रेम की पावनता और उसना ने अब समस्त प्रेम कहानियों की विकृति का परिष्कृत प्रस्तुत कर दिया है, जिससे उपन्यास में चांचल्य और हलकापन नहीं आ पाता। इन प्रेम की रोमांसों में से जीवन के व्यापक स्वरूप पर गंभीर विचार उपन्यासकार ने देने की चेष्टा की है। सभी पात्रों में एक विशेष प्रकार की स्वच्छता और ईमानदारी है। समाज की आज के युग में जर्जरता भारतीय विवाह प्रथा की तीव्र भर्त्सना इस उपन्यास में ध्वनित हैं, और 'तलाक' की आन्तरिक पुष्टि भी है। उपन्यासकार ने दृष्टि सदा पात्रों के मर्म और परिस्थितियों की प्रेरणा पर रखी है जिससे न तो उपन्यास में कहीं अश्लीलता आ पायी है, न उत्तेजना ही। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पात्र अपनी परिस्थितियों से सजीव सम्बन्ध रखते प्रतीत होते हैं—स्थल अथवा देश पात्र के साथ अपनी पूर्ण सत्ता के साथ विद्यमान है। उपन्यासकार ने भावों को महान पात्रों में उतारने की पूरी चेष्टा की है। उपन्यास भव्य है और सर्वथा पठनीय है।

लोक-साहित्य

मालवी कहावतें (भाग १)—संपादक श्री रतनलाल मेहता, प्रकाशक—राजस्थान विश्व विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर। पृष्ठ २२२, मूल्य २)

कहावतों का जीवन से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। यह निर्विवाद है। पर इनमें ज्ञान-सामग्री और भाव सम्पन्नता भी होती है। इस पुस्तक के प्राक्कथन में पं० रामनरेश त्रिपाठीजी ने कहावतों का ऐतिहासिक तथा साहित्यिक विकास और उनका मूल्य स्पष्ट कर दिया है। यह प्राक्कथन इस पुस्तक की शोभा है। पुस्तक में अकारादिक्रम से ६३५ कहावतों का संकलन है। प्रत्येक कहावत का अर्थ पर्याप्त विस्तार सहित स्पष्ट कर दिया गया है। अन्त में जनपदीय शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं। इस प्रकार सम्पादक तथा प्रकाशक दोनों ने पुस्तक को पूर्णतः उपयोगी बनाने की चेष्टा की है। लोक-साहित्य की ओर इधर विद्वानों की रुचि हुई है। यह अच्छे लक्षण हैं, इससे हिन्दी का भण्डार परिपूर्ण होगा। इन कहावतों में अधिकांश तो उच्चारण शब्द भेद से वही कहावतें हैं जो हिन्दी में प्रचलित हैं, किन्तु कुछ ऐसी हैं जो स्थानीय होते हुए भी बहुत मार्मिक हैं, उन्हें लेकर साहित्य की शक्ति बढ़ेगी ही।

भारतीय संस्कृति—लेखक—प्रो० शिवदत्तज्ञानी, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ ३७१, मूल्य ५)

स्वदेशानुराग के साथ स्वदेश की संस्कृति का भी अध्ययन बढ़ता जाता है। इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति के व्यापक और विस्तृत विषय को पौने चारसौ पृष्ठों में बाँधने का प्रयत्न किया गया है। विद्वान लेखक ने संस्कृति के सब अङ्गों को एक ऐतिहासिक और भौगोलिक चौखटे में बिठाकर उनका व्यवस्था पूर्ण वर्णन किया है। लेखक ने भारतीय साहित्य (धार्मिक और लौकिक दोनों ही) विज्ञान और कला का एक संक्षिप्त कर अङ्गरेजी पढ़े विद्यार्थियों के दृष्टिकोण को जो अधिकांश में विदेशी साहित्य और संस्कृति में सीमाबद्ध रहता है विस्तार देने का सराहनीय प्रयत्न किया है। पुस्तक की एक बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने अङ्गरेज विद्वानों द्वारा स्थापित ऐतिहासिक रूढ़ियों का (जैसे आर्य बाहर से आये सिन्धु सभ्यता पूर्व आर्य सभ्यता है) दूसरा पक्ष देने का भी साहस किया है। पुस्तक इतिहास और संस्कृति के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। —गुलाबराय

नाटक

शाक्य-मुनि—नाटककार श्री हरिशङ्करलाल सिनहा, प्रकाशक—लेखक स्वयं। पृष्ठ १२८, मूल्य १॥)

यह नाटक भगवान बुद्ध के चरित्र के कथानक पर निर्मित है। भाव और भाषा के सौन्दर्य को सँवारते हुए भी लेखक नाटक में सफल नहीं हुआ। कई स्थानों पर वह रङ्गमञ्च को विस्मृत कर गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक लिखते लिखते कहानी या उपन्यास लिखने लगा है। इसी प्रकार न तो वह इसे विकास का नाटक बना सका है, बीज तथा फलागम का रूप नहीं उभरा, न संघर्ष का ही बना सका है—आत्म-संघर्ष तो कहीं है ही नहीं। देवदत्त का प्रतिनायकत्व भी अत्यन्त दुर्बल है। मृगनयन की कल्पना लेखक ने स्वयं की है, इस कल्पना से नाटक की श्री हतप्रभ ही होती है। छपाई-सफाई बहुत आकर्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भाव-सौष्ठव की दृष्टि से नाटक पठनीय माना जा सकता है।

हास्य व्यङ्ग

फूल और पत्थर—लेखक-श्री कृष्णचन्द्र, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ १५०, मू० २॥)

पुस्तक में ६ व्यंग्यात्मक रेखा चित्र हैं। 'अखबारी ज्योतिषी' में एक पत्रकार की किरकिरी का मजा है, जिसने सरकारी दफ्तर की क्लर्की छोड़ कर 'देश भक्त' अखबार में ज्योतिष स्तम्भ का सम्पादन भार ग्रहण किया। 'हमारा स्कूल' प्रहसन में अध्यापक और छात्रों के सवाल जबाब हैं—मनोरञ्जक और चटपटे। जम्मन शहीद की तसवीर भी महान नेताओं के चित्रों की पंक्ति में स्कूल के कमरे में टँगने की अधिकारिणी है, इस व्यंग्य चित्र में यह प्रगतिशीलता है। 'मेरा दोस्त' में मित्रों की कलई खोली गई है। लेखक की बहुज्ञता का परिचय मिलता है किन्तु इससे बड़ी बात है अपनी बहुज्ञता को कला का जामा पहिनाकर उसे हास्य रूप में पाठक दर्शकों के सामने प्रस्तुत करना। 'अखिल-भारतीय हीरोइन्स कान्फ्रेंस' में 'हमारा स्कूल' की तरह ही प्लाट की कोई नई कल्पना तो नहीं है, पर उसका हास्य फबता हुआ और तीखा है। 'मुस्कराहट' में ऐसा आकर्षण था जैसा भारत सरकार के लिए अमरीकन कर्जे में होता है', इसी प्रकार 'हाल की तेज़ रोशनी में उसकी श्वेत, शीतल, रेशमी त्वचा इस तरह चमक रही थी जैसी रेफ्रिजरेटर में रखी हुई दूध की बोतल'। आगे 'सेठ जी', 'जन तन्त्र दिवस', 'साहब', 'मूँग की दाल', 'हिन्दी का नया कायदा' शीर्षक व्यंग्य चित्र हैं। लेखनी-चित्र के साथ यथास्थान व्यंग्य फोटो पुस्तक के प्रति आकर्षण बढ़ा देते हैं। भाषा विषय के अनुसार वर्षाकालीन प्रवाह की तरह है, जिसमें वेग है, जल का गुण है, भले ही वह शरदकालीन धारा की तरह निर्मल न हो।

—मेश वर्मा

विज्ञान

सरल मनोविज्ञान—लेखक-श्री हंसराज भाटिया, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन। पृ० सं० २४२, मूल्य ३॥)

आजकल व्यावहारिक जीवन में मनोविज्ञान का प्रचार बढ़ता जा रहा है, और वह केवल दार्शनिक ऊहा-पोह का विषय मात्र न रह कर एक व्यावहारिक विज्ञान की कोटि में आता जाता है। भाटियाजी ने यह छोटी पुस्तक इसी दृष्टि से लिखी है कि साधारण पाठक को भी वह रुचिकर हो और वे व्यवहार में उससे लाभ उठा सकें इसी के साथ विद्यार्थियों का भी उस विषय में प्रवेश हो जाय।

लेखक ने मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को सरल भाषा में व्यक्त करके उसके व्यावहारिक पहलू पर भी प्रकाश डाला है। वैज्ञानिकता के आडम्बर बिना लेखक का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। आपने आत्मचिन्तनवादी तथा व्यवहारवादी दोनों ही दृष्टिकोणों को अपनाया है। मनुष्य की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में भी लेखक का दृष्टिकोण समन्वयवादी है। वह मनुष्य को न तो मशीन के पुर्जे की भाँति परतन्त्र मानता है और न पूर्णतया स्वतन्त्र। पारिभाषिक शब्दावली का यथासम्भव कम प्रयोग किया गया है और साधारण जीवन से उदाहरण लेकर तथ्यों को समझाया है। इस पुस्तक में बुद्धि के माप का एक व्यावहारिक और उपयोगी अध्याय भी है।

—गुलाबराय

धार्मिक और सामाजिक

अद्भुत क्रान्ति—लेखक-आचार्य हरिशङ्कर जोशी एम० ए०, प्रकाशक-श्री देवीप्रसाद जोशी, नैनीताल। पृष्ठ २३८, मूल्य २॥)

यह पुस्तक आजकल के बुद्धिवाद से प्रभावित है। इसमें प्राचीन मान्यताओं की एक नई व्याख्या की गई है। हमारे देवी देवता या प्राकृतिक शक्तियाँ ज्योतिर्पिंडों, प्रतीकों और हमारे अवतार वीर पुरुषों के रूप में देखे गये हैं। लेखक ने सामाजिक आचार विचार का भी खोखलापन दिखाया है। जाति-पाँति के बन्धनों को न मानने तक गनीमत थी ब्रह्मचर्य को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। पूर्व जन्म को भी इसी जीवन का पूर्व भाग माना है। सन्तानोत्पत्ति में ही पुनर्जन्म माना है। जन्म से ही जो जीवन में विषमताएँ आती हैं उनकी कोई सन्तोष जनक व्याख्या नहीं की गई है। इस पुस्तक में प्राचीन ग्रन्थों का सहारा अवश्य लिया गया है किन्तु जहाँ तक वे जोशीजी के तर्कों से मेल खाते हैं। सामाजिक रूढ़ियों को दूर करने के लिए कभी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी कटु सत्य कहना पड़ता है किन्तु हमें सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि भुसी के साथ गेहूँ भी न फटक दें।

आध गीता—संशोधक–डा० आनन्द चैतन्य, प्रकाशक–डा० श्री० देवाई विज्ञान नौका कार्यालय, लश्कर गवालियर। पृष्ठ संख्या ४४१, मूल्य ७॥)

इस ग्रन्थ में डा० आनन्द चैतन्य द्वारा की हुई श्रीमद्भगवद्गीता के ७ पाठ सम्बन्धी शोध का फल है। इस शोध का आधार भीष्मपर्व का निम्नोल्लिखित श्लोक है—

षट् शतानि सविंशानि श्लोकान्यां प्राह केशवः।
अर्जुनः सप्तपंचाशत सप्तषष्टिं तु संजयः।
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते॥
भीष्म पर्व ४३। ४

इस गीता मान के हिसाब से श्रीमद्भगवद्गीता में ७१२ अध्याय हैं और उनमें ७४५ श्लोक हैं।

अन्त में गीता का समश्लोकी हिन्दी अनुवाद भी है। अध्यायों के पुनर्संगठन में कुछ खींचतान अवश्य दिखाई पड़ती है। क्षेपक और मूल की कसौटी में भी मतभेद हो सकता है। जैसे पाण्डवानां धनञ्जयः (१०। ३७) इस श्लोक को लेखक क्षेपक मानते हैं कि जब अर्जुन पास ही था तब उससे स्वं क्यों नहीं कहा, इसको तृतीय पुरुष के रूप में क्यों कहा? ऐसी ही बातों का पुनर्विचार की बात है। इस सम्बन्ध में मैं आपसे को लोग कभी कभी तृतीय पुरुष में कहते हैं। किसी सभा की कार्यवाही सुनाते हुए सभा मन्त्री कहता है कि देवदत्त या अमुक नाम का व्यक्ति मन्त्री चुना गया अर्जुन और कृष्ण के दो-दो व्यक्तित्व एक श्रोता और वक्ता का और एक निजी व्यक्तित्व।

यात्रा

पैरों में पङ्ख बाँध कर—ले०–श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशक–लोक सेवक प्रकाशन, बनारस। पृ० २००, मूल्य ४॥), पुस्तक सचित्र है।

श्री रामवृक्षजी बेनीपुरी ब्रिटिश इन्फो मेशन सर्विसेज के निमन्त्रण पर पाँच अन्य भारतीय पत्रकारों के साथ विलायत की सैर को पैरों से पर लगा कर उड़े थे। न्यायशास्त्र के कर्ता भगवान अक्षपाद गौतम के पैरों से आँखें थीं। बेनीपुरीजी भी तो बिहार के हैं। ये पैरों में पर बाँध कर और नेत्रों के लिए वाणी का वरदान लेकर यात्रा को निकले थे। इनके लिए 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' की बात थी। एक कुशल यात्री के लिए बालकों की सी स्फूर्ति, साहस, सहृदयता, सरलता, कौतूहल वृत्ति, पैनी दृष्टि, और अपने प्रभावों को अभिव्यक्त करने की कला जो कुछ गुण अपेक्षित है उन सबका लेखक ने परिचय दिया है। लेखक ने ६ सप्ताह में ब्रिटिशों की चुस्ती, फुर्ती, सफाई, उद्यान और फूलों का प्रेम, अपने राजा के प्रति निस्वार्थ प्रेम और गर्व-भावना, भोजन और पोशाक की जेल की सी पाबन्दियाँ, शोर-गुल का अभाव, नियम और व्यवस्था के वर्णन के साथ पेरिस की कला, सड़कों और भवनों की विशालता, नैश नृत्य और हास-विलास तथा स्वट्जरलैण्ड की प्राकृतिक सुषमा का भी चित्रण किया है। आप इङ्गलैण्ड और यूरोप की संस्थाओं से इतने प्रभावित हुए हैं कि यदि ब्रिटिश इन्फारमेशन सर्विस वाले इस पुस्तक को पढ़ें तो वे भारतीय पत्रकारों पर हुए खर्च को पूर्णतया सार्थक समझेंगे। पुस्तक यद्यपि वर्णनात्मक अधिक है तथापि विचारक के लिए विचार सामग्री भी उपस्थित की गई है। इंगलैण्ड में वे जितने भी तर्कों से मिले हैं उसको देखते हुए भारतीयों को वह देश आकर्षित नहीं लगेगा। विलायत में रहने का खर्चा भी अधिक नहीं बताते, २५० रुपया मासिक में साधारण विद्यार्थी का काम चल सकता है।

विलायत में प्राचीनता का संरक्षण बहुत है। वहाँ की संस्थाएँ भी बहुत पुरानी हैं। इण्डिया हाउस की अभारतीयता से लेखक बड़े क्षुब्ध हैं। वहाँ सिवाय गांधी जी के चित्र के कोई वस्तु भारतीय नहीं और न आदमियों के बोलने का ढङ्ग भारतीय है।

विलास वर्णन में लेखक ने कुछ अधिक सरसता से काम लिया है। अश्लीलता पर जो आवरण है वह कबीर की झीनी बीनी चदरिया की भाँति ही झीना है। पाश्चात्य देशों की तुलना में हमारा देश पिछड़ा तो अवश्य ही है किन्तु इस पिछड़ेपन को निराशावादी रंग सा दिया गया है। तुलना में भारत की कुछ खूबियाँ भी आजातीं तो मन में अधिक प्रफुल्लता आ जाती। वैसे पुस्तक देश प्रेम से ओत-प्रोत है।

—गुलाबराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति स्वीकार

अशोक प्रभाकर गाइड—सम्पादक-एक पाठक, प्रकाशक-अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ ७५३, मू० १०)

पंजाब की प्रभाकर परीक्षा को पास कराने वाली यह सहायक पुस्तक है। सम्पादन ठीक हुआ है।

ध्रुवस्वामिनी समीक्षा—लेखक-श्री गणेशप्रसाद गुप्त तथा श्री लक्ष्मीनारायण सिंह, प्रकाशक-एजूकेशनल बुकडिपो, महाल रोड नागपुर। पृष्ठ ६४, मूल्य ॥।)

प्रसादजी के अन्तिम नाटक का यह आलोचनात्मक अध्ययन है। परीक्षार्थियों के काम का है।

आधुनिक हिन्दी पद्य परिचय—सम्पादक-श्री पृथ्वीनाथ पुष्प, प्रकाशक-कपूर ब्रादर्स श्रीनगर (काश्मीर) पृष्ठ १७५, मूल्य लिखा नहीं।

हिन्दी के ३८ आधुनिक कवियों का परिचय देने वाली यह पुस्तक पाठ्य-पुस्तक के रूप में निकली है। इसमें प्रत्येक कवि का संक्षिप्त परिचय और उसकी कृति का उदाहरण दिया गया है।

सूर पञ्चरत्न की टीका—टीकाकार श्री लक्ष्मीनारायण टंडन तथा श्री रामखेलावन चौधरी, प्रकाशक-हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ। पृष्ठ १५३, मूल्य २)

इसमें सूर पञ्च-रत्न के बाल कृष्ण और भँवरगीत की टीका है। पुस्तक परीक्षार्थियों के लिए छापी गई है। उपयोगी है।

प्रगतिवाद—लेखक-श्री सौमित्र, प्रकाशक-लोकायन पुस्तक सदन, रतलाम। पृष्ठ ४८, मूल्य ॥)

प्रगतिवाद पर लेखक का विवेचनात्मक निबन्ध।

बापू की बातें—लेखक-श्री रामेश्वरदयाल दुबे। प्रकाशक—महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पूना। पृष्ठ ५८, मूल्य ॥।)

विश्ववंद्य महात्मा गान्धी के जीवन सम्बन्धी १०-११ बातों को लेकर इस उपयोगी पुस्तक की रचना की गई है। बातें सभी प्रभावोत्पादक और जीवन को उन्नत करने वाली हैं। सभी उससे लाभ उठा सकते हैं।

मातृत्व और शिशुपालन—लेखिका-श्रीमती पार्वती निवासन, प्रकाशक-हिन्दी प्रचार पुस्तक मन्दिर त्यागराय नगर, मद्रास। पृष्ठ १४८, मूल्य ३)

विषय नाम से स्पष्ट है, वर्णन की शैली सरल और हृदयग्राही है। चित्रों ने पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है। महिलाओं के लिए पुस्तक सब तरह उपादेय है।

विधवा—लेखक-श्री रामाचार्य पाण्डेय, प्रकाशक-नागरी निकेतन श्रीनगर, कानपुर। पृष्ठ ४८, मू० ॥।)

यह छोटी-सी काव्य-पुस्तक है।

महावीर डायरी—सम्पादक-पं० बनारसीदास चतुर्वेदी आदि, प्रकाशक-महावीर प्रकाशन मन्दिर बनारस। पृष्ठ ३८४, मूल्य १।)

भगवान् महावीर के जीवन और उनके उपदेशों से विभूषित यह महत्वपूर्ण डायरी अभी निकली है। मजबूत जिल्द होने पर भी मूल्य १।) है। उपयोगी है।

दुर्गा सप्तशती—लेखक-श्री रामाचार्य पाण्डेय, प्रकाशक-नागरी निकेतन श्रीनगर, कानपुर। पृष्ठ १००, मूल्य १॥)

कविता में माँ दुर्गा की अर्चना की गई है।

हमारे सहायक

साहित्य-सन्देश के प्रचार में सहायता देने वाले निम्न महानुभावों के हम आभारी हैं :—

१—श्री दत्तविद्या वाचस्पति, अध्यक्ष, भारतीय विद्या भवन, कोटा।

२—प्रो० सुदामाप्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी विभाग—बागला कालेज, हाथरस (यू० पी०)

३—प्रो० विजेन्द्र स्नातक, रामजस कालेज, दिल्ली।

४—श्री प्रधान अध्यापक, डी० ए० मि० स्कूल, सीवान सारण।

५—श्री आई० दास जोशी, प्रधान हिन्दी अध्यापक, दरबार हाई स्कूल, बालोतरा।

६—श्रीमती नारायणी राम 'अपूर्ण', रामबाग पुलेस, जयपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए

परीक्षार्थी प्रबोध खण्ड १ की विषय-सूची

१—काव्य-परिभाषा का विकास—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
२—साधारणीकरण का शास्त्रीय विवेचन—श्री कन्हैयालाल एम० ए०
३—हिन्दी साहित्य में प्रबन्ध काव्य का विकास—श्री हरनारायण वर्मा साहित्य-रत्न
४—आधुनिक हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान—श्री इलाचन्द्र जोशी
५—पृथ्वीराज रासो—श्री पं० दशरथ शर्मा
६—सन्त साहित्य में योग-साधना—और वृह्मानुभूति—श्री बैजनाथ खेतान
७—हिन्दी साहित्य में विद्यापति—श्री गुलाबराय एम० ए०
८—नन्ददास का भँवर गीत— ,, ,,
९—भ्रमर गीत में सूरदासजी— ,, ,,
१०—केशव की अलङ्कार योजना— ,, ,,
११—बिहारी का काइयाँपन—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
१२—देव का काव्यत्व तथा आचार्यत्व—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
१३—सेनापति का प्रकृति चित्रण—श्री गुलाबराय एम० ए०
१४—हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद का विकास—श्री शिवनन्दन प्रसाद बी० ए०
१५—हिन्दी कविता की नवीनतम प्रगति—डा० नगेन्द्र एम० ए०
१६—कबीरदासजी के दार्शनिक सिद्धान्त—श्री गुलाबराय एम० ए०
१७—'यशोधरा' एक सिंहावलोकन—श्री प्रो० बी० बी० योहन एम० ए०, बी० ए० (आनर्स)
१८—सिद्धराज पर एक दृष्टि—श्री भगवतस्वरूप मिश्र एम० ए०
१९—चित्रलेखा—श्रीमती ऊषादेवी मित्रा
२०—श्री रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों की रूप रेखा—श्री नर्मदाप्रसाद खरे
२१—सिन्दूर की होली में समस्या चित्रण—श्री कुमारी शकुन्तला सक्सेना एम० ए०, विशारद
२२—'गरुड़ध्वज' पर एक दृष्टि—श्री ओंकरप्रकाश एम० ए०, एल० एल० बी०, रिसर्च स्कालर
२३—हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार—श्री मोहनलाल चेजारा
२४—कुछ पर कुछ—श्री भगवतस्वरूप मिश्र एम० ए०
२५—हिमकिरीटनी पर एक दृष्टि—श्री चन्द्रभानजी राधे राधे
२६—महादेवी की रहस्य साधना—श्री विश्वम्भरदयाल एम० ए०
२७—चन्दा : एक आलोचनात्मक परिचय—श्री अनिलकुमार सा० रत्न
२८—उद्धवशतक में भक्तिकाल और रीतिकाल के सम्मिलित प्रभाव—श्री गुलाबराय एम० ए०
२९—युग कवि 'निराला'जी—श्री हरिशङ्कर उपा० विशारद
३०—लज्जा—डा० सत्येन्द्र एम० ए०

पृष्ठ संख्या लगभग ३००, मूल्य ३)

(साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) में)

पता—साहित्य सन्देश कार्यालय, ४ महात्मा गाँधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए

परीक्षार्थी प्रबोध खण्ड २ की विषय-सूची

१—चन्द और पृथ्वीराज रासो—श्री शर्मनलाल अग्रवाल एम० ए०, साहित्य रत्न
२—कबीर और सृष्टि विज्ञान—प्रो० कैलाशचन्द्र मिश्र एम० ए०
३—जायसी का प्रेम काव्य—श्री शिवनन्दनप्रसाद बी० ए०
४—सूर का वियोग शृङ्गार—श्री चिरंजीलाल 'एकाकी'
५—तुलसीदासजी का दार्शनिक व धार्मिक दृष्टि कोण—श्री ब्रजमोहन गुप्त एम० ए०
६—केशव की काव्यकला—श्री प्रकाशचन्द्र जैन
७—सेनापति का कवित्त-रत्नाकर—प्रो० अम्बिकाचरण एम० ए०
८—कामायनी—प्रो० विशम्भरदयाल 'मानव' एम० ए०
९—साकेत पर एक दृष्टि—श्री भारतभूषण अग्रवाल एम० ए०
१०—प्रसादजी का चन्द्रगुप्त—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
११—सेवा सदन—प्रो० मुंशीराम शर्मा 'सोम' एम० ए०
१२—प्रेमचन्द और गोदान—श्री ओमप्रकाश शर्मा एम० ए०
१३—रस और दोष—श्री गुलाबराय एम० ए
१४—काव्य और दोष—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०
१५—भारतवर्ष की आधुनिक भाषाएँ—प्रो० राममूर्ति महरोत्रा एम० ए०
१६—पृथ्वीराज रासो और उसकी प्रामाणिकता—प्रो० नरोत्तम स्वामी एम० ए०
१७—तुलसी की काव्य सुषमा—प्रो० जगन्नाथ प्रसाद तिवारी एम० ए०
१८—हिन्दी के प्रमुख कहानीकार—श्री बरसानेलाल चतुर्वेदी बी० ए०
१९—त्रिवेणी-अवगाहन—श्री मथुराप्रसाद दुबे श्री ओमप्रकाश माथुर बी० ए०
२०—जायसी और उसका प्रेम काव्य—श्री चिरंजीलाल 'एकाकी' बी० ए०
२१—प्रसादजी का अजातशत्रु—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
२२—हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार—श्री मोहनलाल एम० ए०
२३—नरोत्तमदास कृत 'सुदामाचरित्र'—प्रो० शम्भूप्रसाद बहुगुना एम० ए०
२४—कबीर का साधना पक्ष—श्री गुलाबराय एम० ए०
२५—'स्कन्दगुप्त' के प्रमुख पात्र—प्रो० मोहनलाल एम० ए०
२६—साकेत पर एक दृष्टि—श्रीमती ब्रजरानी बालूपुरी बी० ए०
२७—प्रगतिवाद—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
२८—विनय पत्रिका—संक्षिप्त अध्ययन—श्री गुलाबराय एम० ए०
२९—शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध— " "
३०—प्रसादजी के उपन्यास—श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़

पृष्ठ संख्या लगभग ३००, मूल्य ३)

(साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २५ में)

पता:—साहित्य सन्देश कार्यालय, ४ महात्मा गाँधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थी प्रबोध भाग ३ की विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
१—आलोचना और मनोविश्लेषण—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०			१
२—शेखर : एक जीवनी—डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट०	....	....	१२
३—कुरुक्षेत्र में कवि दिनकर—श्री जितेन्द्रनाथ बी० ए० ऑनर्स	....	....	२३
४—साहित्य का अध्ययन—बाबू गुलाबराय एम० ए०	....	....	३१
५—हिन्दी कविता में अलङ्कार विधान—कु० सूर्यबलीसिंह एम० ए०	....	....	४३
६—भाषा की उत्पत्ति—डा० सत्येन्द्र	....	....	५६
७—भाषा विज्ञान का उद्देश्य—श्री महेशचन्द्र अग्रवाल एम० ए०	....	....	६८
८—भारत में नाटकों का विकास—डा० सत्येन्द्र	....	....	७४
९—घनानन्द का काव्य सौष्ठव—श्री शिवबालक शुक्ल एम० ए०	....	....	८२
१०—उन्नीसवीं शताब्दी का हिन्दी गद्य साहित्य—डा० गुलाबराय एम० ए०			१०३
११—हिन्दी में वीर रस तथा राष्ट्रीय भावना—डा० गुलाबराय एम० ए०	....	....	११६
१२—द्विवेदीजी की देन : शैली—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	....	....	१२६
१३—जगन्नाथदास रत्नाकर—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०	....	....	१३१
१४—कर्मभूमि की चारित्र्य सृष्टि—प्रो० मोहन एम० ए०	....	....	१५१
१५—प्रिय-प्रवास के वियोग वर्णन का एक रूप—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०			१५१
१६—पञ्चवटी—श्री राधाशरण शास्त्री	....	....	१५६
१७—छायावाद—प्रो० रघुवीरशरण मित्र	....	....	१६६
१८—इन्शा की—रानी केतकी की कहानी—श्री अनिलकुमार सा० रत्न		....	१७८
१९—अभिज्ञान शाकुन्तल—श्री दयाप्रकाश एम० ए०, सा० रत्न		....	१८२
२०—विश्वमित्र और दो भाव नाट्य—श्री प्रतापचन्द्र जैसवाल सा० रत्न		....	१९०
२१—पिपासा परिचय—श्री कुमारी सावित्री विशारद		....	२०१
२२—कविता में "रहस्यवाद"—डा० सुधीन्द्र एम० ए०		....	२०८
२३—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई : एक अध्ययन—प्रो० विनयकुमार ए० ए०			२२७
२४—चिन्तामणि—बा० गुलाबराय ए० ए०	....	....	२४२
२५—मुद्राराक्षस एक परिचय—डा० सत्येन्द्र	....	....	२५४
२६—चन्द्रावली नाटिका : एक परिचय—विश्म्भरनाथ बी० ए०		....	२७१
२७—हिन्दी कहानी 'मधुकरी"—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त		....	२८०
२८—निराला का तुलसीदास—डा० नगेन्द्र	....	....	२८३
२९—मुक्ति का रहस्य एक परिचय—डा० सत्येन्द्र	....	....	२९१
३०—सोहनलाल द्विवेदी और कुणाल—श्री श्याम भटनागर बी० ए०		....	२९९

पृष्ठ संख्या लगभग ३००, मूल्य ३)

(साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) में)

पता :—साहित्य सन्देश कार्यालय, ४ महात्मा गांधी रोड, आगरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

यहां है

हमने साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को हर महीने पौने मूल्य में पुस्तकें देने की योजना पिछले दिसम्बर मास से निकाली थी और अब तक हमारे ग्राहक उससे लाभ उठाते रहे।

अब डाकखाने के नये कानूनों के अनुसार हम जवाबी कार्ड को साहित्य-सन्देश के अङ्क में नहीं रख सकते। अतः हम उस कार्ड को इसी पृष्ठ पर नीचे छाप रहे हैं, आप लाइन पर से काट कर उसे हमारे पास भेजदें। इस पर आपको टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं। जो ग्राहक किसी भी कारण से पुस्तकों की वी० पी० वापस कर देंगे तो पोस्टेज के खर्चे के वे जिम्मेदार होंगे।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

(यहाँ से काटिये)

—— यहाँ से काटिये ——

ने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

.....

.....

सं० .....

लसी गीतावली—गुलाबराय आलोचना १।)
त्तमा के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन— २)
साहित्य शुषमा—लक्ष्मीधर वाजपेई २)
हिन्दी साहित्य का विकास—ब्रह्मदत्त तिवारी २॥)
सूरजहाँ की टीका—रामखेलावन चौधरी २।)
अजातशत्रु एक अध्ययन—प्रेमनरायण टंडन १॥)
ोदान एक अध्ययन— ,, ,, १॥।)
मारे अमर नायक— ,, ,, ॥।)
मुकुल मधुवी—जटा० सा० भूषण कविता ।)
रती—त्रिलोचन शास्त्री ,, ३)
देश दर्शन—बैजनाथ प्रसाद सिन्हा ,, ॥।)
सारस की जोड़ी—गोविन्दवल्लभ त्रिपाठी ,, ॥।)
रोजा लुक्जेम्बुर्ग—रामवृक्ष बेनीपुरी राजनीति ३।)
जापान की राजनीतिक प्रगति—
पं० लक्ष्मणनरायण राव 'गर्दे' ४॥)
वलिया में क्रान्ति और दमन—उपाध्याय ३॥)
उपजाऊ पत्थर—रावी कहानी १॥=)
एकादशी—तेजरानी पाठक ,, १॥)
सं० रामचरित मानस— धार्मिक १।)

—जो पुस्तक आप न लेना चाहें उसे काट दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sahitya Sandesh, Agra.
NOVEMBER. 1952.

REGD. No. A. 263.
License No. 16.
Licensed to post without prepayment.

गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन पर लिखा गया एक अभिनव महाकाव्य

देवार्चन

रचयिता श्री 'करील'

सुन्दर छन्दों में, अत्यन्त परिमार्जित भाषा और हृदय-स्पर्शी भावनाओं का भण्डार, यह सत्रह सर्गों का वृहत महाकाव्य आपके सन्मुख गोस्वामी तुलसीदासजी का सांस्कृतिक नेतृत्व समूर्त कर देगा। इस महाकाव्य को पढ़कर आपका भावना-विभोर हृदय राष्ट्रीयता की उच्च भावनाओं और विश्व संस्कृति के आनेवचनीय प्रभाव से स्पन्दित हो उठेगा। हिन्दी में देववाणी संस्कृत के सामर्थ्यवान महाकाव्यों की पद्धति के चमत्कारिक साक्षात्कार से आपका मन और मस्तिष्क पुलकित हो उठेगा। तुलसीदासजी की महाप्राणा सहधर्मिणी रत्ना का जीवन वृत्त, तथा उनके पुत्र तारक का अवाञ्छनीय निधन आप को करुणार्द्र कर देगा। उनके गुरु शेष-सनातन के प्रवचनों से आपकी कर्तव्य भावना प्रबुद्ध हो जायगी; और स्वतः तुलसीदासजी के महान राम-राज्य की दिव्य ज्योति आपके नेत्रों को निहाल कर देगी।

शृङ्गार, वीर, शान्त, अद्भुत और करुण रसों का ज्वार, तथा हिन्दी और संस्कृत के विभिन्न छन्दों का ओज, प्रसाद और माधुर्य आपको अवश्य आन्दोलित कर देगा।

चार सौ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ५), कृपया अपनी प्रति आज ही आर्डर भेजकर सुरक्षित करा लीजिये जिससे बाइन्डिंग होते ही भेजदी जाय।

साहित्य-रत्न-भण्डार, ४ गान्धी मार्ग, आगरा।

अन्तिम ता० ३१—१२—५२, तक ५० से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

Postage will be Paid by Addressee

BUSINESS REPLY CARD

No Postage Stamp necessary If Posted in India

AGRA G. P. O. Permit No 1136

Book Post

To.

श्री सञ्चालक,

साहित्य-सन्देश,

साहित्य-रत्न-भण्डार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष १४] आगरा—दिसम्बर १९५२ [अङ्क ६

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम. ए., पी-एच. डी.
महेन्द्र

*

प्रकाशक
हित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक
साहित्य प्रेस, आगरा।

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचारधारा
२—रहस्यवाद की भारतीय परम्परा — प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०
३—विद्यापति की साहित्यिक-शैलियाँ — प्रो० कृष्णकान्त चौधरी एम० ए०
४—सेनापति : शृङ्गारी या भक्त-कवि — प्रो० शिवबालक शुक्ल एम० ए०
५—भ्रमरगीत की परम्परा में 'उद्धव शतक' का स्थान — श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए०
६—शुक्लजी की मध्यम कोटि की रसानुभूति — प्रो० वृन्दावनबिहारी अग्निहोत्री एम० ए०
७—हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन की आधारभूत प्रवृत्तियाँ — प्रो० कृष्णनन्दनप्रसाद 'अभिलाषी' एम. ए
८—मार्क्सीय सौन्दर्यशास्त्र के भारतीय व्याख्याता डा० रामविलास शर्मा — डा० रामेश्वर शर्मा
९—साहित्य समीक्षा के भाव — श्री भालचन्द्र गोस्वामी साहित्यालंकार
१०—कृपाल के भाव — श्री लोचन पाण्डे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य सन्देश प्रत्येक माह की १५ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापस कर दिए जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : नवम्बर, १९५२

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं

आलोचना

हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति—
विजयेन्द्र स्नातक ३)
महाकवि सूरदास—नन्ददुलारे वाजपेई ४)
हिन्दी भाषा तथा साहित्य—उदयनारायण २॥)
अरिओध और उनका प्रियप्रवास—
कृष्णकुमार सिन्हा ३॥—)

कहानी

जीवन के मोड़—महावीर अधिकारी ३)
षड्तन्त्र—डा० मोतीचन्द्र ५॥)
देवताओं की मूर्तियाँ—राजेन्द्र यादव २)

उपन्यास

नए मोड़—उदयशंकर भट्ट ३॥)
अपराजिता—चतुरसेन शास्त्री २)
विद्रूप—पृथ्वीनाथ शर्मा ३)

नाटक

एकांकी समुच्चय—जयनाथ नलिन ३)
पगध्वनि—चतुरसेन शास्त्री १॥)
हर्षवर्धन—वैकुण्ठनाथ मुदगल १।)
मानव प्रताप—देवराज दिनेश २)
शक्तिपूजा—बी० मुखर्जी १।)
विद्रोहिणी अम्बा—उदयशंकर भट्ट १॥)

राजनीति

सभा शास्त्र—न० वि० गाडगिल ६)

जीवनी

जीने के लिए—जगरति चतुर्वेदी २)
रेखा-चित्र—लीलावती मुन्शी ३)

इतिहास

साम्राज्यों का उत्थान—भगवतशरण उपा० २॥)
भारतीय संस्कृति—प्रो० शिवदत्त ज्ञानी एम. ए. ५)
विश्व के इतिहास और सभ्यता का परिचय—
प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप ५)

अर्थ-शास्त्र

भारत का औद्योगीकरण—डी. एस. नाग एम. ए. २॥)
आर्थिक नियोजन—मधुकर शटे एम. ए. १॥)
सर्वोदय राज क्यों और कैसे—केला ॥—)

मनोविज्ञान

सामान्य मनोविज्ञान—प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप ४)

विविध

फूल और पत्थर (प्रहसन)—कृष्णचन्द्र २॥)
जीवन कण—डा० रघुवीरसिंह ३)
रूस में पचीस मास (यात्रा)—राहुल सांकृत्यायन ८)
विजया पीछे—भगवतशरण उपाध्याय ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालयों और पुस्तक प्रेमियों को सुविधा

बिना मूल्य और आधे मूल्य में मूल्यवान पुस्तकें

नई, किन्तु रक्खे रक्खे बिगड़ी

पुस्तकों की निकासी

हमारे भंडार (साहित्य-रत्न-भण्डार) में पुस्तकों का संग्रह इतना अधिक है कि कभी-कभी उसे सँभालना भी कठिन हो जाता है। इस बार विशेष सँभाल करने पर हमने कुछ पुस्तकें स्टाक में रक्खे-रक्खे खराब हो जाने के कारण अलग करदी हैं। यह पुस्तकें हम उन पुस्तकालयों को मुफ्त देंगे जो हमारे स्थायी ग्राहक हैं। साधारणतः नियम यह हैं—

१—जो पुस्तकालय हमसे १००) की पुस्तकें मँगावेंगे उन्हें इस सूची की ५०) की पुस्तकें बिना मूल्य भेंट दी जावेंगी। दोनों तरह के आर्डर अलग-अलग आने चाहिए।

२—जो पुस्तकालय और पाठक केवल इस सूची की पुस्तकें मँगावेंगे, उन्हें सभी पुस्तकें छपे मूल्य से आधे पर भेजी जायेंगी। खर्च ग्राहकों का होगा।

३—सूची की आधे मूल्य में मिलने वाली अधिकांश पुस्तकें संख्या में एक-दो-तीन से अधिक नहीं हैं, अतः जल्दी ही समाप्त हो जायेंगी। ऐसी दशा में जो पुस्तकालय १० की पुस्तकें खरीदना चाहते हैं वे अपना आर्डर २०)-३०) की पुस्तकों का देकर यह लिख दें कि पुस्तकें कुल १०) की भेजी जायें। जो पुस्तकें मौजूद होंगी वे भेज दी जायेंगी।

आलोचना

सूर पंच रत्न की टीका—गुलाबराय एम० ए० ।।।)
रसज्ञ रंजन—महावीर प्रसाद द्विवेदी ।।।)
गंगावतरण दीपिका—रामचन्द्र श्रीवास्तव १।)
प्रेमचन्द और उनकी कहानी कला—सत्येन्द्र ३)
प्रताप समीक्षा—प्रेमनारायण टण्डन ।।।)
नाट्य-कला एवं साहित्य की रूप रेखा—शिखरचन्द्र जैन ।।-)
हिन्दी-गीति-काव्य—श्री ओमप्रकाश अग्रवाल ३)
कालिदास और उनका रघुवंश—रामप्रसाद सारस्वत १।)
प्रसादजी की कला—गुलाबराय एम० ए० ३)
साहित्य-वातायन—शिवनन्दनप्रसाद १।)
हिन्दी के तीन प्रमुख नाटककार—शिखरचन्द्र जैन १=)
चन्द्रगुप्त एवं प्रसाद के नाटकीय पात्र—शिखरचन्द जैन ।।।)
गुप्तजी की कला—सत्येन्द्र १।।)
समीक्षाञ्जलि भाग १—कन्हैयालाल सहल १)
प्रबन्ध-पारिजात—पारसनाथ त्रिपाठी ।।-)
सुमित्रानन्दन पन्त—प्रो० नगेन्द्र १)
साकेत एक अध्ययन—प्रो० नगेन्द्र २।।)
आधुनिक-हिन्दी-नाटक—नगेन्द्र १।।।)
नाट्य कला एवं साहित्य की रूपरेखा—शिखरचन्द्र जैन ।।।)

कविता

प्रतिच्छाया—होमवती ।=)
हिन्दी पद्य पीयूष—चारुदेव शास्त्री १।।=)
मेघदूत—राजा लक्ष्मणसिंह ।।।)
भग्न वीणा—रामदेवी तिवारी 'द्विजदेनी' १।।)
ज्योतिर्मयी—श्री अनिरुद्ध ।।=)
सञ्जीवनी—लेखक सुकवि समुदाय ।-)
अन्योक्ति कल्पद्रुम—ब्रह्मदत्त शास्त्री १)
गांधी गौरव—गोकुलचन्द्र शर्मा ।।।)

प्राप्ति-स्थान—साहित्य रत्न-भण्डार १ [illegible] आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्योक्ति कल्पद्रुम—लाला भगवानदीन
मोहनवल्लभ पन्त १॥)
सिद्धराज—मैथिलीशरण गुप्त १)
राष्ट्रीय मन्त्र—श्रीयुत त्रिशूल ॥)
दर्शनकथा— ॥)
मन्दाकिनी—श्रीमती शान्ता राठी १॥।)
कवितावली-टीकाकार पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा १॥)
यामिनी—जयनाथ 'नलिन' १)
रस सागर—भगवतदीन 'शिशु' २)
कदम्ब—जगमोहन नाथ अवस्थी ३)
यह पथ अनन्त—ले० मधुप २)
वैकाली—श्री हितैषी १॥)
छन्दोर्णवपिंगल—भिखारीदास ॥)
अक्षत—सुन्दर श्याम मुकुट ॥)
नित्य पूजा विधान—सूरजभान वकील =)॥
अन्योक्ति तरंगिणि—ईश्वरीप्रसाद शर्मा ।)
रक्त चन्दन—नरेन्द्र शर्मा २)
बांसुरी—पं० सोहनलाल द्विवेदी १)
काव्य निर्णय—भिखारीदास १।)
पाञ्चजन्य—श्री आरसीप्रसाद सिंह २)
कविता कुसुम—श्री गिरधर शर्मा नवरत्न ।=)

उपन्यास

आनन्दमठ—श्रीयुत मोहन १॥)
अवतार—प्रेमचन्द ॥)
पाप का अन्त—कुँवर व्रजेन्द्रसिंह ॥=)
मल्लिकादेवी—किशोरीलाल गोस्वामी ।॥)
सुन्दरी—कुन्तीदेवी १।)
अमरपुरी—श्रीकृष्णदत्त पालीवाल २)
खूनी औरत का सात खून—
किशोरीलाल गोस्वामी १॥)
सीधे पण्डित—ठा० प्रसिद्ध नारायणसिंह १॥)
जय यात्रा—श्री मनमथनाथ गुप्त १।)
तरुण तपस्वनी—श्री किशोरीलाल गोस्वामी ॥)
तार— ,, ,, ॥=)
हृदय हारिणी— ,, ,, ॥=)
माधवी माधव— ,, ,, १।)
कनक कुसुम—श्री किशोरीलाल गोस्वामी ।=)
सुखशर्वरी— ,, ,, ।–)
चपला— ,, ,, ॥)
प्रेममयी— ,, ,, ।)
चद्रावली— ,, ,, =)
चन्द्रिका— ,, ,, =)
लावण्यमयी— ,, ,, =)
प्रणयिनी परिणय— ,, ,, =)
इन्दुमती— ,, ,, =)
जिन्दे की लाश— ,, ,, =)

कहानी

शास्त्री साहब—बद्रीनरायण शुक्ल ।॥)
वितानी वीर रुस्तमे दुनिया—
पं० भगवानदास अवस्थी एम० ए० ।–)
आधुनिक कहानियाँ— १॥)
धरोहर—होमवती १॥।)
गाँव की कहानियाँ—रमेश वर्मा ॥)
अर्जुनमाली—धीरजलाल –)
युद्ध की कहानियाँ—शिवनारायण मिश्र (? ।)
हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ—नन्ददुलारे वाजपेयी २॥)
इन्द्रधनुष—नारायणश्यामरूप चिताम्बरे ॥=)
पौराणिक कहानियाँ—श्रीहरिप्रसाद द्विवेदी १)
दसलक्षणी कथा संग्रह— –)

नाटक

आनन्दविजयाविधान—श्री भुवनेश्वरसिंह
'भुवन' ॥)
अन्धेर नगरी—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र =)
कमल किशोर—सुरेन्द्रचन्द्र जैन 'वीर' ।=)
बागवान—श्री गिरधर शर्मा १)
तुलसीदास नाटक—बद्रीनाथ भट्ट १॥)
सत्य हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र =)
चतुष्पथ—सेठ गोविन्ददास ॥)
मेघदूत—केशवप्रसाद मिश्र ।)
शकुन्तला नाटक—अनुवादक
राजा लक्ष्मणसिंह १॥)
जया जयत—गिरधर शर्मा १।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चुङ्गी की उम्मेदवारी—बद्रीनाथ भट्ट ।=)
चिड़िया घर—पं० हरिशङ्कर शर्मा १)
मुक्ति यज्ञ—सत्येन्द्र एम० ए० १)

विविध

भारतीय-सृष्टि-क्रम विचार—श्री सम्पूर्णानन्द ।=)
संस्कृत पाठ्य पुस्तक दीपिका—
महीपदत्त उपाध्याय ।)
मेरी कैलाश यात्रा—सत्यदेव ।।।)
रविव्रतकथा—छगनगल, बाकलीलाल –)।।
सुदामा चरित—बद्रीप्रसाद सारस्वत ।।=)
गीता संदेश—गुलाबराय एम० ए० ।।)
साहित्य लतिका भाग ४—रामप्रसाद त्रिपाठी ।।)
गान्धी गौरव—गोकुलचन्द्र शर्मा ।।।)
कुञ्जी संस्कृत पाठ्य पुस्तक भाग १—घनश्यामदास ।)
नारु रोग—रामजीवन त्रिपाठी ।)
संस्कृत शिक्षा भाग २—शारदाप्रसाद भट्टाचार्य ।–)
मनोरंजन,—पं० बद्रीनाथ भट्ट ।–)
हिन्दी ज्ञान मंजरी— ।।)
गाँव का जीवन—रमेशवर्मा ।।)
रजतकण—हरीहरनाथ टण्डन १।)
सुखमय जीवन—बाबूलाल गोयल ।)
अमरीका के विद्यार्थी—सत्यदेव ।)
विश्वधाय—भगवानदास वर्मा ।।)
घरेलू इलाज—रमेश वर्मा, ।=)
मातृ भाषा—लक्ष्मीसहाय माथुर ।।)
महात्मा गाँधीजी के निजी पत्र—
पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी ।–)
विवाह का उद्देश्य—जुगलकिशोर मुख्तार =)
हमारा भीषण हास—पं० मन्नन द्विवेदी ।)
शिक्षा का आदर्श—सत्यदेव ।–)
इतिहास समुच्चय—हरिश्चन्द्र ३)
भारतीय साधक—श्री शरतकुमार राय ।।।)
राम की उपासना ।)
जलियान वाला बाग—दी न्याय प्रेमी १।)
साहित्य प्रसून भाग १ व ३—श्री महेन्द्रजी ।–)
मनुष्य के अधिकार—सत्यदेव ।–)

स्वराज्य की मांग—श्रीराम बेरी १।।)
जैन धर्म की प्राचीनता—दीनदयाल जैन =)
दस रुपकम्—धनञ्जय ।।।=)
साहित्य सोपान भाग ३—रमाकान्त त्रिपाठी ।।–)
सामान्य विज्ञान और बागवानी भाग १ ।)
देशबन्धु चित्तरञ्जनदास—सम्पूर्णानन्द ।।)
झांसी की रानी—सीतानाथ शर्मा =)
पशु वध कैसे रुके—सुरेन्द्रनाथ जैन =)।।
हमारे इतिहास निर्माता—अवध बिहारी १)
प्रोत्साहन—छबिनाथ पाण्डेय ।।–)
ढोरों का इलाज—रमेश वर्मा ।=)
निःश्वास—इन्द्र ब्रह्मचारी ।=)
गाँव की बोली—रमेश वर्मा ।=)
महिला सुधार—कन्नोगत एम० ए० ।=)
स्वदेशी पर महात्मा गांधी ।।)
खेल—रमाशंकर सक्सैना १।।)
स्वामी रामतीर्थ ।।।)
अकालियों का आदर्श सत्याग्रह—सम्पूर्णानंद ।।)
प्रेम पुष्प,—साधु शरण ।।)
भारतीय आत्म त्याग—
कुँवर नारायनसिंह बी० ए० १।)
संस्कृत पाठ पुस्तक भाग ३—घनश्यामलाल १)
बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा ।।)
महात्मा गांधी ≡)
अध्यापकीय कर्तव्य—
राजाबहादुर कुशलपालसिंह –)।
मेरी उत्तरा खण्ड की यात्रा—
लाला रामनरायण वैश्य ।।।)
गृह देवी—सूरजभान वकील ।=)
संगीत सुलभ या संगीत शास्त्र प्रवेश (भाग १)
रामचन्द्रराव, दामोदरशरन ।।)
भारतीय भोजन—हरिनारायण शर्मा वैद्य ।।।)
विधवा कर्तव्य—सूरजभान वकील ।।)
महाभारत के पात्र भाग १ ।।)
शुभ्रा—रामप्रसाद विद्यार्थी— ।।)
स्नेह—कामपति त्रिपाठी १)
भाषा प्रदीप भाग ३—ठा० शिवकुमारसिंह ।।।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों की स्वाधीनता-विश्वम्भरनाथ जिज्जा ।।।)
क्या आर्यसमाजी वेदानुयायी हैं—
राजेन्द्रकुमार जैन =)
काव्य कल्पतरु-श्री सन्याचीन एम ए. बी.टी. १।।)
वन बाला—श्री नगेन्द्र एम० ए० ।।)
हितषी गायन—भूरामल मुशरफ =)
गाँव के गीत—रमेश वर्मा ।।)
तुलसी गीतावली—गुलाबराय १।)
हृदय तरङ्ग—अयोध्याप्रसाद पाठक १)
पत्र पुष्प— ।)
राष्ट्रीय गीत—श्रीकृष्णदत्त पालीवाल —)
आनन्द सरोज—सुवर्णसिंह आनन्द ।)
अज्ञातवास—रामसहाय शर्मा ।।।)
कुसुम कुञ्ज—गुरुभक्तसिंह ।=)
शील कथा— ।।।)
पद्य प्रवेशिका—सुवर्णसिंह आनन्द ।।)
संयोगिनी का डोला—रमेश वर्मा ।।)
हिन्दी सन्देश—रामवचन द्विवेदी =)
हिन्दी माघ—गिरधर शर्मा ।।)
तपस्वी तिलक—गोकुलचन्द्र शर्मा २)
सँवरी—रामस्वरूप शर्मा 'रसकेन्दु' ।)
संक्षिप्त गीतावली—तुलसीदास ।।)
ठाकुर ठसक—लाला भगवानदीन ।=)
अवकाश के क्षण—श्रीमती शकुन्तला सक्सेना ।।।)
ओस के बूँद—भगवतीप्रसाद वाजपेयी १।।)
सूरदास की विनयपत्रिका—सं० वियोगीहरि =)
प्रेम पुष्प मञ्जरी—ठाकुर भीकमसिंह ।।)
जैनपद संग्रह— ।)
प्रकाश पथ पर—ले० जटा साहित्य भूषण ।)
वीर वधू—नाथूराम माहोर १)
बञ्जरी—मुरलीधर श्रीवास्तव शेखर १।)
नवेद्य—हरिश्चन्द्र देववर्मा चातक १)
रघुवंश—रामप्रसाद सारस्वत १।।)
वाल्मीकीय रामायण—सं० रवीन्द्रनाथ ठाकुर १)
ढाई छतरी—श्रीयुत 'अरुण' बि०ए ।।।)
हृदयध्वनि—सद्गुरुशरण अवस्थी १।।)

संस्कृत शिक्षा भाग १ व २—
सारदाप्रसाद भट्टाचार्य ।=)
साहित्य मीमांसा—किशोरीदास वाजपेयी ।)
आयुर्वेदीय औषधि उपचार पद्धति भाग १—
वैद्य भास्कर बांकेलाल गुप्त ।।)
फोटोग्राफी शिक्षा—पं० क्षेत्रपाल शर्मा १)
दरिद्र कथा—चन्द्रशेखर शास्त्री ।।)
जर्मनी और तुर्की में ४४ मास—
लाला हरदयाल एम० ए० ।।=)
बात बात में बात—यशपाल २।।)
साहित्य सरोवर तीसरा भाग—
देवकीनन्दन शर्मा ।।=)
साधन समर वा देवी महात्म्य प्रथम खण्ड
अनुवादक—शिवनरायण शर्मा २)
औपसर्गिक सन्निपात—राधावल्लभजी ।)
नीतिदर्शन दूसरा खण्ड—राधामोहन ।।।)
राज पथ का पथिक—कृष्णलाल वर्मा ।—)
आदर्श साधु—मुनि विद्या विजयजी १।)
बाल मनुस्मृति—पं० शिव शर्मा ।—)
A hand book of English History—
(Stuart period) Galab Ram Dave ।।)
मुद्राराक्षस नाटक की तालिका—
श्री रामेश्वर भट्ट ।।)
श्रद्धाञ्जिल—भगवानदास केला ।।।=)
समझौता क्यों नहीं हुआ—
अनुवादक रामचन्द्र वर्मा =)
हिन्दी साहित्य संग्रह भाग २—गङ्गादत्त पांडे ।।)
अमेरिका की स्वाधीनता का इतिहास—
देवकीनन्दन विभव ३)
महात्मा गांधी का विश्व व्यापी प्रभाव—
केशवकुमार ठाकुर ।=)
देश का दुखी अंग—रामनरेश त्रिपाठी =)
हिन्दी व्याकरण शिक्षा-भागीरथप्रसाद दीक्षित ।।)
स्वास्थ्य शिक्षा—दयाशङ्कर पाठक मेडलिस्ट १)
योरोप के दो सिपाही—ले० रा० र०
खाडिलकर व रामकृष्ण शर्मा ।।=)

प्राप्ति स्थान—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव की सेहत—रमेश वर्मा ॥)
हिन्दी काव्यालङ्कार प्रवेशिका—
अनूपलाल मण्डल ॥–)
दवाओं से बचो—गङ्गाप्रसाद गौड़ १)
जीवन वेद—अ० रायसाहब बच्चूनारायः ।=)
हिन्दी साहित्य सङ्कलन—देवकीनन्दन शर्मा १)
हिन्दी बङ्गला शिक्षा भाग १—हरिदाजजी वैद्य १।)
विदेशी दैनिक पत्र—विनोदशङ्कर व्यास ।)
पौधों की दुनियाँ—नरायणप्रसाद अरोडा १)
श्रीहर्ष – आत्मारामजी ॥)
छन्द शिक्षा–पं० श्री परमेश्वरानन्द शर्मा १॥।–)
लिपि विकास—राममूर्ति महरोत्रा ।॥)
भर्तृहरि शतक—प्रभञ्जनलाला गुप्ता १॥)
माध्यमिक व्याकरण—अध्यापक रामरत्न ॥)
वीरांगना—ज्ञानचन्द्र ।=)
आचार्य के सदुपदेश—गुरादित्ता खन्ना –)
जच्चा और बच्चा—श्री जगन्नाथ कपूर १)
टैंक युद्ध—डा० सत्यनारायण पी-एच० डी० ॥=)
Notes on priya privas—गौरीशङ्कर ।॥)
पूर्व की राष्ट्रीय जाग्रति–शङ्कर सहाय सक्सैना १।)
संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ—
पं० जनार्दन भट्ट ।=)
जेबुन्निसा के आँसू—ओमप्रकाश भार्गव,
ईश्वरीप्रसाद माथुर १।)
गीतावली गुञ्जन—विश्वनाथप्रसाद मिश्र ॥)
मन्दिर भाग २—सं० प्रेमचन्द ॥)
पर्वोत्सव विवरण—सुदर्शनसिंह चक्र ॥।=)
भारतीय भाषायें—सं० रामनारायण मिश्र १)
श्रीकृष्ण चरित—ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा ।=)
मसालों की खेती—चारुचन्द्र खान्याल ।–)
नवीन भारतीय शासन विधान (दो भाग)—
रामनारायण यादवेन्दु २)
बैजामिन फ्रेंकलिन का जीवन चरित्र—
लक्ष्मीसहाय माथुर २॥)
किसान—सं० एस० डी० दीक्षित १।)
अहार—सं० यशपाल जैन ।=)
धातु दौर्बल्य—ले० डा० एलविन० ई० इस्माल—
प्रकाशक–बांकेलाल वैद्य ।॥)
मेरे गुरुजन—नरायणप्रसाद अरोडा १)
शुद्धि व्यवस्था—स्वामी सच्चिदानन्द सन्यासी ।)
जीवन यात्रा–हनुमानप्रसाद शर्मा वैद्य शास्त्री ।॥)
भारतीय नागरिकता और आसन—
व्रजमोहन शर्मा ४)
शिक्षा की एक योजना—छेदी मिश्र
हिन्दी-स्तर संग्रह भाग २—कालीदास कपूर ।॥)
मोहनी—भैयालालजी जैन ॥)
नारी-शिक्षा-दर्श—उग्रसेन जैन एम० ए० ॥)
राष्ट्र सभापति गौरवम्—लक्ष्मीनारायण ।)
अमरीका दिग्दर्शन—स्वामी सत्यदेव
परिव्राजक ॥।)
राजर्षि भीष्म पितामह—सत्यदेव परिव्राजक ।)
अष्टाङ्ग—योग ईश्वरानन्द =)
भारतीय तन्तु मिल मजदूर–का० न० रामन्ना ॥)
जातीयता—नरेन्द्र देव ।=)
नागरिक जीवन—ले० कृष्णानन्द गुप्त १।)
सन्तान-सुधार—बाबू प्रभूदयालजी वर्मा १)
आर्य समाज की डबल गप्पाष्टक—
पं० अजितकुमार शास्त्री –)॥
स्टाक एक्स चैंज—जी० एस० पथिक १॥)
असहयोग दर्शन—पं० हरिभाऊ उपाध्याय १।)
राम की उपासना—स्वामी रामतीर्थ ।)
पाश्चात्य संसार और भारतवर्ष—
देवकीनन्दन विभव १॥)
शास्त्रार्थ पानीपत भाग २—चम्पावती जैन ॥।)
पद्मावत प्रकाशिका—गुलाबराय १॥)
ग्राम-सुधार प्रवेशिका–ई० बी० एस० मनीअस ॥)
मूल उद्योग कातना—विनोबा भावे ।=)
सेवा-धर्म और सेवा-मार्ग—श्रीकृष्णदत्त
पालीवाल १॥)
वनस्पति शास्त्र—केशव अनन्त पट-वर्धन
एम० एस० सी ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असहयोग—स्वामी श्री सत्यदेव परिव्राजक =)
सुधांशु—रायकृष्णदास ।।।)
भाषा-भूषण—गुलाबराय ।।=)
विचार-दर्शन-रायबहादुर श्री कालीप्रसन्न घोष १।)
निहिलिष्ट रहस्य भाग १—रामचन्द्र शर्मा १)
श्री भद्यानन्द परिचय—श्री स्वामी कर्मानन्दजी सरस्वती =)
हिन्दी-साहित्य का सुबोध इतिहास-गुलाबराय २)
सम्पति का राजमार्ग—दास और रावी ।।।)
पूजा—रामप्रसाद विद्यार्थी १)
पार्वती-मङ्गल—रामचन्द्र श्रीवास्तव ।=)
शिक्षा-भूषण—ईश्वरीप्रसाद शर्मा =)॥
कुमर साहब— -)
जैसवाल जैन— -)
अलङ्कार प्रवेशिका—गौरीशङ्कर चतुर्वेदी ।)
अलङ्कार मञ्जरी—आनन्द-स्वरूप त्रिपाठी ॥)
हमारी सर्दियों की गुलामी कारण—सत्यदेव =)
सीमेन्ट—ले० बांकेलाल अख्तर ।=)
टीका हरिश्चन्द्र—राजेन्द्रसिंह गौड ॥)
एक श्लोकी गीता—गणेशानन्द गीतार्थी ॥)
पत्र पुष्प—नरदेव-शास्त्री १॥)
वैद्य कमात—शान्त स्वामी अनुभवानन्द ।)
महाराजा जरासंध का जीवन चरित्र—मगर प्रसादसिंह ।)
स्वर्ग से स्वामी—(रामतीर्थ के उपदेश) ।)
आर्य समाज भ्रमो उन्मूलन—अजितकुमारजी जैन =)
ब्रज-लोक संस्कृति—सत्येन्द्र ४)
हिन्दी का सन्देश—सत्यदेव =)।
हिन्दी वाक्य विश्लेषण—पं० चन्द्रहंस शर्मा ।-)
हमारा स्वर मधुर कैसे हो-श्रीराम रत्ना चार्य ।-)
पद्य परीक्षा—नारायणप्रसाद बेताब ।।=)
न नर न नारी—रावी ।।।)
वेद मीमांसा—पं० पुसूलाल जैन ।)
रोग परिचय—हरिनारायण शर्मा ॥)
सत्याग्रह की मीमांसा— ।)
निद्रा-विज्ञान—प्रभुनरायण त्रिपाठी ॥-)
भारतीय जेल—महतावसिंह ॥)
कविता विनोद—सं० श्यामसुन्दरदास ॥=)
मादक-द्रव्य गद्य निषेध या शैशव—चन्द्रसेन २॥)
सनातन धर्म दर्शन— १॥)
मूलरामायण—प्रो० हरिदत्त शास्त्री एम० ए० ।=)
साहित्य वाटिका भाग दो—अध्यापक रामरत्न व चन्द्रहंस शर्मा ।।।)
हिन्दी साहित्य शिरोमणि— ॥)
खोजना और पथप्रदर्शन-रमाशङ्कर सक्सैना ॥=)
जापान के गाँधी कागावा-बनारसीदास चतुर्वेदी-)
प्रारम्भिक रसायन—अमीचन्द्र विद्यालङ्कार १॥)
निबन्धमालादर्श—हिन्दी अनुवाद गङ्गाप्रसादजी अग्निहोत्री ।।।)
महिला धर्म दीपिका—श्रीरतनलालजी जोशी सैलाना =)
चार यात्री—शौकत उस्मानी ॥)
हिन्दी काव्यालङ्कार—जगन्नाथ प्रसाद ।।।)
लेखमाला—भुवनेश्वरसिंह 'भुवन' ॥)
हृदयध्वनि—सद्गुण शरण अवस्थी १।)
खेती और घरेलू धन्धे—रमेश वर्मा ॥)
भारत में रेल पथ—रामनिवास पोद्दार २॥)
नारीसमाज—श्री सुरेन्द्र शर्मा १)
मेवाड़ की विभूतियाँ भाग १—मोतीलाल मेनारिया ॥)
सतीसुभद्रा—रतनलालाजी जोशी ।)
पृथ्वी की अद्भुत रोगनाशक शक्ति—युगलकिशोर चौधरी =)
राज सत्ता—हीरालाल जालोरी ॥)
हाकी—वंशीधरसिंह ।-)
छन्दप्रभाकर—जगन्नाथ प्रसाद भानु २॥)
दुर्गा सप्तसती— ॥)
बुद्धिपरीक्षा भाग १—राममूर्त्ति महरोत्रा ।=)
मिल की माया—रामदास गौड =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-रत्न, विशारद तथा एम० ए० के परीक्षार्थियों

के लिए हमारी अद्वितीय देन

साहित्य-सन्देश की सन् १९५०-५१

की

फायल

उपर्युक्त परीक्षाओं में निर्धारित प्रायः सभी पाठ्य पुस्तकों—कामायनी, कुरुक्षेत्र, प्रिय प्रवास, साकेत, विनयपत्रिका, उद्धव शतक, क्षुद्रा राक्षस, चिन्तामणि, मृगनयनी, कवितावली, यशोधरा, पिपासा आदि—पर परीक्षोपयोगी लेख, विशेष कवियों व लेखकों—कबीर, सूर, तुलसी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, केशव, जयशङ्करप्रसाद, आचार्य शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि—पर अधिकारी व्यक्तियों द्वारा लिखे हुए आलोचनात्मक निबन्ध तथा द्वितीय खण्ड के तृतीय प्रश्न पत्र के लिए उपादेय सामग्री उक्त फायल में मिलेगी जिसकी थोड़ी ही प्रतियाँ शेष बची हैं। मूल्य ५), रजि० डाक व्यय ।।।)

सन् ५१-५२ की फायल भी तैयार है

इसमें भी आपको अनेकों परीक्षोपयोगी लेख मिलेंगे।

मूल्य ५) रजिस्ट्री डाक व्यय ।।।=)

साहित्य-सन्देश कार्यालय, ४, गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर लिखा गया

एक अभिनव महाकाव्य

देवार्चन

रचयिता—श्री 'करील'

मूल्य में 'साहित्य सन्देश' के ग्राहकों को

भारी कमी

उक्त पुस्तक का विज्ञापन इसी अङ्क में अन्यत्र देखिए।

पुस्तक छप कर तैयार है और अभी बाइन्डिङ्ग में है। इस मास के अन्तिम सप्ताह में सम्पूर्ण तैयार हो जायगी। मूल्य ५) है।

३० दिसम्बर तक आर्डर मिलने पर पुस्तक पौने मूल्य में भेजी जायगी। पोस्टेज ।।।) पृथक होंगे।

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करालें।

इतना ही नहीं जो सज्जन ३।।।) मनीआडर द्वारा पेशगी भेज देंगे उन्हें पोस्टेज भी नहीं देना पड़ेगा।

आर्डर रुपया भेजने का स्थान—

साहित्य-रत्न-भण्डार, ४, गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

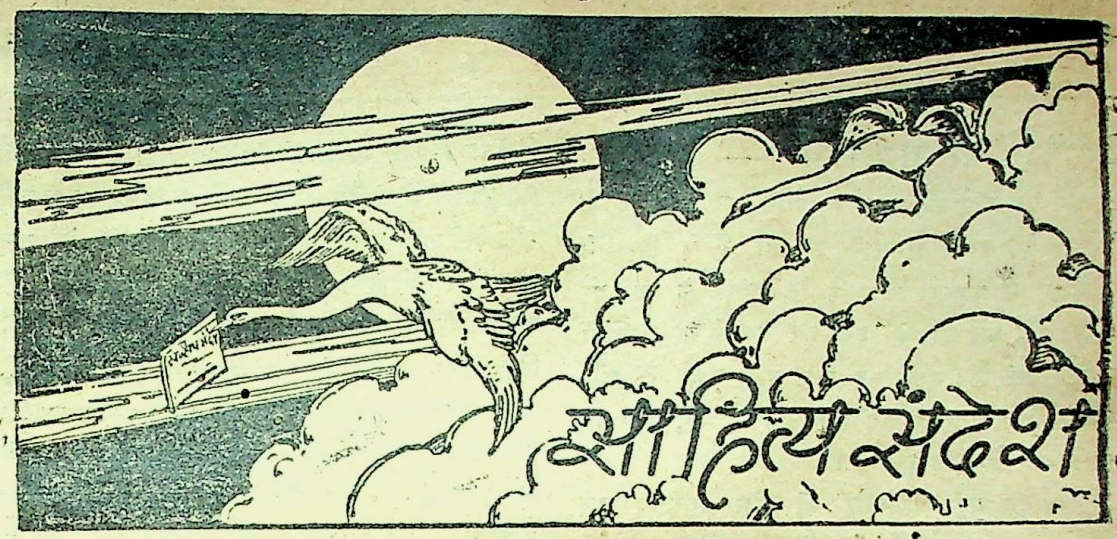

वर्ष १४] आगरा—दिसम्बर १९५२ [अङ्क ६

हमारी विचार-धारा

पं० रामदहिन मिश्र का निधन—

अभी कुछ दिन हुए बिहार के एक वयोवृद्ध साहित्य सेवी पंडित सकल नारायण शर्मा का देहान्त हुआ था, अब समाचार मिला है कि वहीं के एक और वृद्ध हिन्दी तपस्वी का निधन हो गया।

पण्डित रामदहिन मिश्र द्विवेदी युग के लेखक थे। आपने आलोचना के क्षेत्र में प्रशंसनीय और स्मरणीय काम किया है। आपकी पुस्तकें—काव्य दर्पण, काव्यालोक, काव्य में अप्रस्तुत योजना, काव्य शास्त्र की भूमिका—स्थायी साहित्य में स्थान रखती हैं और सभी ने उनकी सराहना की है।

गत एक वर्ष से आप रुग्ण थे। ६९ वर्ष की अवस्था में आपका निधन हो गया। हम आपकी आत्मा को शान्ति लाभ की प्रार्थना करते हुए आपके परिवार के साथ संवेदना प्रकट करते हैं। आपकी साहित्य सेवा की चर्चा हम साहित्य सन्देश के अगले किसी अङ्क में करेंगे जिसके लिए लेखों की प्रार्थना हम अभी से कर रहे हैं।

दो जयन्तियाँ—

हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने की जहाँ आवश्यकता और अनिवार्यता पर हम जोर देते हैं, वहाँ हम इस बात की भी आवश्यकता समझते हैं कि हिन्दी वाले देश की दूसरी भाषाओं और उनके साहित्य से परिचित हों। जरूरत है कि हिन्दी वाले कम-से-कम एक ऐसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करें। साहित्य-सन्देश के पाठकों को विदित है कि आगरा में अ० भा० हिन्दी परिषद की ओर से एक ऐसे भारतीय हिन्दी विद्यालय का सञ्चालन हो रहा है जिसमें सभी अहिन्दी प्रान्तों के छात्राध्यापक हिन्दी का विशेष अध्ययन करने के लिए आए हुए हैं। यह विद्यालय स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा में है और आगरा के सभी विद्वान साहित्यिकों का सहयोग इसे प्राप्त है।

इस विद्यालय द्वारा दो विशिष्ट कवियों की जयन्ती मनाई गई। एक मलय-प्रदेश के : यालम भाषा विद् श्री वल्लतोल की और दूसरे तमिल भाषी श्री सुब्रह्मण्यम् भारती की। दोनों ही अपनी-अपनी भाषा के मूर्धन्य कवि हैं। इनकी ख्याति राष्ट्र-व्यापी है। इन जयन्तियों के मनाने से हिन्दी वालों को मलयालम और तमिल के इन कवियों का ही परिचय नहीं मिला, इन भाषाओं के लालित्य का भी उन्हें कुछ ज्ञान हुआ। ऐसे उत्सवों का होना राष्ट्रीयता के लिए सचमुच बहुत शुभ है, अतएव हम उनका अभिनन्दन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलीप्रिंटरों पर नागरी लिपि—

हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि तार विभाग हिन्दी को प्रश्रय देने का प्रयत्न बराबर कर रहा है। हिन्दी में तार भेजने की प्रणाली का आविर्भाव आगरा के तार घर में हुआ और अब देश के ३०–३५ स्थानों से हिन्दी में तार भेजे जाते हैं। यद्यपि यह प्रगति बहुत धीमी है और उससे लाभ भी बहुत ही कम लोग उठा रहे हैं, फिर भी कुछ हो रहा है—यह खुशी है।

अब एक नए आविष्कार की ओर भारतीय तार विशेषज्ञों का ध्यान गया है। टेली प्रिण्टर मशीन से तार द्वारा जो संवाद भेजा जाता है वह प्रेषित स्थान पर टायप रायटर द्वारा स्वयं टायप होता जाता है। यह अब तक अंग्रेजी में ही होता था। अब यह प्रयत्न हो रहा है कि हिन्दी में जो समाचार भेजा जाय वह समाचार पत्र के कार्यालय में टायप मशीन द्वारा स्वयं टाइप होता जाय। आशा है इस प्रयोग से शीघ्र ही सफलता मिलेगी और तब हिन्दी के पत्रों की भी बड़ी भारी बाधा दूर हो जायगी, वे अंग्रेजी पत्रों से स्पर्धा कर सकेंगे।

पारिभाषिक शब्दावली और विद्यार्थी—

जब से बोर्ड ने इंटरमीजिएट के लिए हिन्दी में उत्तर देने का माध्यम घोषित कर दिया है तब से विभिन्न विषयों की पुस्तकें हिन्दी में निकलना प्रारम्भ हो गयी हैं। यह हिन्दी के लिए शुभ लक्षण है, किन्तु हर एक पुस्तक में शब्दावली के सम्बन्ध में अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग लोकोक्ति चरितार्थ होती है। जब तक शब्दावली का एकीकरण और प्रामाणिकरण नहीं होता तब तक विचारे विद्यार्थियों को घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। यदि वे अँग्रेजी के शब्द लिखते हैं तो आधा तीतर और आधा बटेर की बात सार्थक होती है और हिन्दी भी लिखते हैं तो परीक्षक के मन की न होने की सम्भावना में नम्बर कटने का भय रहता है। काम तो यह केन्द्रीय सरकार का है किन्तु केन्द्रीय सरकार द्वारा उस कार्य के होने में देरी होने की सम्भावना है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए बोर्ड को चाहिए कि अपना सिलेबस हिन्दी में ही छापें और सिलेबस में जिस शब्दावली का प्रयोग हो उसी शब्दावली का विद्यार्थी भी प्रयोग करें। बोर्ड को चाहिए कि शीघ्रातिशीघ्र ऐसी उपसमितियाँ बना दे जो भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित प्रश्न पत्रों के सिलेबस का हिन्दी अनुवाद कर दें। उसी समिति में सरकारी मेम्बरों के अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग नियुक्त किए जायँ जिन्होंने उन विषयों पर पुस्तकें लिखी हों। बोर्ड तथा उप समितियों के सदस्य डाक्टर रघुवीर आदि की पारिभाषिक शब्दावली का कुछ हेर फेर के साथ उपयोग कर सकते हैं। केन्द्रीय सरकार भी जो पीछे से शब्दावली तैयार करे—वह इन शब्दावलियों से लाभ उठा सकती है।

हिन्दी एम० ए० में मौखिक परीक्षा—

आगरा विश्व-विद्यालय में अँग्रेजी के एम० ए० में मौखिक परीक्षा होती है किन्तु हिन्दी को इस गौरव से मुक्त रखा गया है। प्रयाग आदि विश्व विद्यालयों में हिन्दी एम० ए० की मौखिक परीक्षा को उतना ही महत्व दिया जाता है जितना कि उसे अँग्रेजी के एम० ए० में। मौखिक परीक्षा में परीक्षार्थी के सामान्य ज्ञान के साथ उसकी भाषा पर अधिकार की भी परीक्षा हो जाती है। हिन्दी हमारी मातृभाषा है। उसके ज्ञान का मान दण्ड और भी ऊँचा होना चाहिए। हमारे परीक्षार्थी ही भावी अध्यापक बनते हैं। यदि हमको अच्छे अध्यापक चाहिए तो परीक्षा का मान भी ऊँचा उठाना चाहिए। आशा है कि आगरा विश्वविद्यालय के अधिकारीगण एम० ए० परीक्षाओं की इस कमी की ओर ध्यान देंगे।

प्रान्तीयता का विष—

विश्व-भारती के अवकाशप्राप्त आचार्य क्षितिमोहन सेन ने हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा के पदवी दान समारम्भ पर दीक्षान्त भाषण देते हुए जो शब्द कहे हैं वे बड़े महत्व पूर्ण हैं। अपने पाठकों की जानकारी के लिए हम उन्हें यहाँ उद्धृत करते हैं—

"कुछ लोग समझते हैं हिन्दी दक्षिण पर जबर्दस्ती लादी जारही है। यह एक व्यर्थ की बात है। आज से शदियों पहले दक्षिण भारत से भक्ति का प्रचार उत्तर भारत में हुआ। भक्ति का जन्म स्थान दक्षिण देश ही है। दक्षिण में केवल शङ्कर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार्य और रामानुज ही नहीं हुए बल्कि रामानन्द और बल्लभाचार्य भी दक्षिण से ही उत्तर आए थे। रामानन्द का कबीर पर और बल्लभाचार्य का सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों पर कितना प्रभाव पड़ा था यह बताने की आवश्यकता नहीं। दक्षिण के इन सन्तों ने ज्ञान-गङ्गा उत्तर में बहाई, उसी पर हिन्दी भाषा का पोषण हुआ है। यहाँ के सन्तों के भाव हिन्दी के माध्यम से अब आप तक लौट रहे हैं। क्या भाषा ही सब कुछ है और भाव कुछ नहीं है? भाव आपके हैं और भाषा उत्तर की है। आप लोग उसे अपना ही समझें, पराया नहीं।"

आचार्यजी ने आगे चलकर कहा "आज देश में प्रादेशिक एकता की बड़ी आवश्यकता है, फूट की आवश्यकता नहीं है। हिन्दी उस एकता को स्थापित कर सकती है।"

"हमारी प्रादेशिक विभिन्नता इसी युग की उपज है। इससे पहले यहाँ कभी प्रान्तीयता का विष नहीं था। एक प्रान्त की प्रतिभा को दूसरा प्रान्त इसी तरह अपनाता था जैसे वह उसी की हो। बङ्गाल के लोग दक्षिण के ज्ञान को अपनाते थे और दक्षिण के लोग उत्तर की आराधना से कृतकृत्य होते थे। चैतन्य देव ब्राह्मण थे और अपने समय के बहुत बड़े विद्वान थे, किन्तु उन्होंने अपनी समस्त पुस्तकों को जल-समाधि दे दी थी। वह इस दक्षिण में आये थे और यहाँ की निष्ठा से प्रभावित हुए थे। आज प्रान्तीयता का विष फैल रहा है, किन्तु कला, सङ्गीत और साहित्य देश तथा काल की परिधि से बाहर हैं। इन चीजों को प्रान्तीयता में बाँधना अहितकर होगा।"

देश की समन्वय वृत्ति की चर्चा करते हुए आचार्य सेन ने कहा—"हमारे देश में आदिकाल से विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों का समन्वय होता रहा है। सबसे पहले यहाँ आर्य और आर्य-पूर्व संस्कृति का सङ्गम हुआ। इसके बाद यूनानी आये। ईसा की पहली शदी में यहाँ ईसा के मानने वाले पहुँच गए थे। मुसलमान साधु मुस्लिम विजेताओं से पहले ही पहुँचे। गुजरात की निरुपमा देवी ने तब मुसलमानों के लिए पचीस मस्जिदें बनाई थीं। बौद्ध तथा जैनधर्म तो यहीं उत्पन्न हुए थे। हमारे देश की संस्कृति तथा धर्म ने अन्य संस्कृतियों तथा धर्मों को नष्ट करने की अपेक्षा उनकी अच्छाइयों को अपने में आत्मसात् कर लिया। इससे हमारी संस्कृति और हमारा दृष्टिकोण सङ्कीर्ण नहीं है। आप लोग इसी परम्परा को समाप्त न होने दें।"

उर्दू की मांग अनुचित—

हाल ही में काशी में उत्तर प्रदेशीय राजनैतिक सम्मेलन में राज्य भाषा के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव हुआ है। हम उसे यहां अविकल रूप से दे रहे हैं:—

सन् १९४७ में उत्तर प्रदेश की सरकार ने हिन्दी को राज्य की भाषा स्वीकार किया था। उसी वर्ष ८ अक्तूबर को इस निर्णय के अनुसार काम करने के लिए सरकार की ओर से आज्ञा निकाली गई थी।

उसके बाद सन् १९४९ में भारतीय संविधान द्वारा हिन्दी देश-भर की राष्ट्रभाषा मानी गई। सन् १९५० में उत्तरप्रदेश के विधान मण्डल द्वारा 'उत्तर प्रदेश भाषा अधिनियम' पारित हुआ और राज्यपाल द्वारा स्वीकृत हुआ। फिर १९५१ में उत्तरप्रदेश विधानमण्डल ने 'उत्तर-प्रदेश राजभाषा अधिनियम' बनाया जो १३ नवम्बर १९५१ को लागू हुआ।

इन अवसरों पर विधानमण्डल की बैठकों में इस विषय पर बहुत बहस हुई कि इस प्रदेश की जनता की भाषा क्या है, उर्दू की इस प्रदेश में क्या स्थिति है और प्रदेश की उन्नति और उसके ऐक्य की दृष्टि से देवनागरी लिपि का ही प्रयोग हो या फारसी लिपि भी उर्दू के लिए स्वीकार की जाय। सम्पूर्ण प्रश्नों पर विचार कर उत्तरप्रदेश की सरकार और विधान-मण्डल ने हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के पक्ष में अपना निर्णय किया।

धीरे-धीरे सरकार का यत्न बराबर होता रहा है कि सरकारी कामों में अंग्रेजी का स्थान हिन्दी लेती जाय। ४ सितम्बर १९५२ को विधान सभा में मुख्य मंत्री ने घोषणा की कि अब सरकारी काम, जहां तक सम्भव होगा, हिन्दी में ही होगा। हाल में २९ अक्तूबर को सरकार ने अपनी विशेष आज्ञा द्वारा 'देवनागरी में लिखित हिन्दी को उत्तर प्रदेश की राजभाषा के रूप में चलाने की व्यवस्था' प्रकाशित की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी उत्तर प्रदेश सरकार के इन प्रयत्नों का स्वागत करती है, उसको बधाई देती है और उससे अनुरोध करती है कि १९४७ से, जब हिन्दी को उसने राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था, अब तक १ वर्ष से ऊपर होगए, अब अंगरेजी का स्थान पूर्णतः हिन्दी को देने में अधिक प्रगति की आवश्यकता है

इस बीच कुछ लोगों ने यह आन्दोलन चलाया है कि उत्तर-प्रदेश में उर्दू भी क्षेत्रीय भाषा मानी जाय। उर्दू को क्षेत्रीय भाषा बनाने की माँग में फारसी लिपि का चलन निहित है। जहाँ तक उर्दू के पठन-पाठन का सम्बन्ध है उसके लिए सुविधाएँ प्रदान करना उचित है परन्तु इस कमेटी का दृढ़ मत है कि उत्तर प्रदेश में दो क्षेत्रीय भाषाएँ जिनकी अलग-अलग लिपि है, मानने से प्रदेश की एकता टूटेगी और सब विभागों के प्रशासन में बड़ी कठिनाइयाँ होंगी और प्रदेश की उन्नति में गहरी बाधा पड़ेगी। अतः उर्दू को हिन्दी के साथ क्षेत्रीय भाषा बनाने की माँग सर्वथा अनुचित है।

अब इस बदले हुए समय में इस प्रकार के आन्दोलन को चलाकर हम प्रदेश में उस प्रेम और सहयोगिता का परिचय नहीं देंगे जिसका रहना देश की एकता और उन्नति के लिए सर्वथा अनिवार्य है।

यह कमेटी उन लोगों से जो इस आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे हैं, अनुरोध करती है कि देश-हित में उन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन न दें जिनसे पृथकता और साम्प्रदायिकता की भावना को उत्तेजना मिलती है।

यह कमेटी केन्द्रीय और राज्य की सरकारों से अनुरोध करती है कि वे इस प्रदेश में हिन्दी के अतिरिक्त और दूसरी क्षेत्रीय भाषा बनाने के आन्दोलन के हानिकर परिणाम पर ध्यान देंगी और उससे विचलित न होकर हिन्दी की प्रगति को तीव्र करने में सहायक होंगी।

काश्मीर साहित्य पर प्रकाश—

काश्मीर के जन कवि श्री दीनानाथ नादिम ने भारतीय साहित्य कला संसद (दिल्ली) की साहित्य परिषद की बैठक में "काश्मीर साहित्य" पर एक भाषण दिया। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी सभापति थे।

भाषण का कुछ अंश हम यहाँ दैनिक हिन्दुस्तान से उद्धृत कर रहे हैं।

अपने भाषण में श्री नादिम ने 'काश्मीरी साहित्य' के ऐतिहासिक आदिकाल का वर्णन करते हुए कहा, "१६ वीं शताब्दी में श्री लल्लेश्वरी, नूरउद्दीन (नुन्द ऋषि) के वाक्यों की काश्मीरी रचना विकसित रूप में उपलब्ध होने से हमें अनुमान होता है कि इससे पूर्व काश्मीरी भाषा में साहित्य अवश्य बना होगा क्योंकि इतना विकास अकस्मात सम्भव नहीं है। इससे दो-चार शताब्दी पूर्व का काश्मीरी भाषा एवं साहित्य मानना पड़ता है। वैसे इतिहास के गर्भ में यह रहस्य इतना गुप्त है कि खोज होने पर भी अभी अनावृत नहीं हुआ। यद्यपि धुँधले रूप में 'राजतरंगिनी' में एक जगह 'रंगस होल ध्यनु' शब्द आता है। पर इससे मात्र यह प्रतीत होता है कि काश्मीरी भाषा थी अवश्य—साहित्य भी था, यह पता नहीं लगता।"

अपना भाषण जारी रखते हुए आपने फिर काश्मीरी कविता के विभिन्न कालों का परिचय देते हुए कहा, "काश्मीरी काव्य का आदिम-युग शैवमत से प्रेरित सूफीवाद का रहा है। लल्लेश्वरी इस युग की सबसे पहली और लोकप्रिय कवयित्री हुई हैं। काश्मीर का हर बूढ़ा, जवान, स्त्री-पुरुष गली-गली और घर-घर में—चरखा कातते और चक्की पीसते हुए उनके "वाक्यों" को गाता है। कारण कि वे जनता के अपने गाने हैं। उनमें जन साधारण के उसी दुःख-दर्द को व्यक्त किया गया है जो उसे सदा-सर्वदा अभिभूत करते रहते हैं। इसके बाद दूसरा युग शुरू होने से पहले काश्मीरी लोकगीतों में हिन्दू घरानों में "वचुन" की परम्परा का विकास होता है। ये 'वचुन' संस्कारों पर विशेषतः उपनयन संस्कार के मौके पर महिलाएँ गाती हैं। इनकी स्वर ताल का आधार सामवेद की गायन-शैली है। मैंने चीन में भी इसको आज प्रचलित देखा है।

दूसरे युग का श्रीगणेश भी हब्बा खातून—काश्मीर के तात्कालिक शासक श्री यसुफ शाह चक की महिषी के वियोगपूर्ण गीतों से होता है। इसी काल में गीत बने और आज तक वे विकसित होते आये। इस युग के चरम विकास

(शेष पृष्ठ २५० पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्यवाद की भारतीय परम्परा

प्रो० कन्हैयालाल सहल, एम० ए०

स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सेमेटिक धर्म-भावना में रहस्यवाद का मूल उद्गम मान कर रहस्यवाद को भारत के लिए बाहर की वस्तु ठहराया था किन्तु प्रसादजी इस सिद्धान्त के विरोधी थे। वे वर्तमान रहस्यवाद की धारा को असंदिग्ध रूप से भारत की निजी सम्पत्ति मानते थे। अद्वैतवाद का दार्शनिक सिद्धान्त जब भाव क्षेत्र में प्रवेश करता है तब रहस्यवाद की सृष्टि होती है किन्तु सेमेटिक धर्म-भावना तो अद्वैत के विरुद्ध पड़ती है। "सेमेटिक धर्म में मनुष्य की ईश्वर से समता करना अपराध समझा गया है। क्राइस्ट ने ईश्वर का पुत्र होने की घोषणा की थी, परंतु मनुष्य का ईश्वर से यह सम्बन्ध जिहोवा (यहूदियों के ईश्वर) के उपासकों ने सहन नहीं किया और उसे सूली पर चढ़वा दिया। पिछले काल में यहूदियों के अनुयायी मुसलमानों ने भी 'अनलहक' कहने पर मंसूर को उसी पथ का पथिक बनाया। सरमद का भी सर काटा गया। सेमेटिक धर्म-भावना के विरुद्ध चलने वाले ईसा, मंसूर और सरमद आर्य अद्वैत धर्म-भावना से अधिक परिचित थे।" *

भारतीय रहस्यवाद की परम्परा वैदिक काल से ही अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। वैदिक काल में एकेश्वरवाद और आत्मवाद की दो धाराएँ साथ-साथ चल रही थीं। "इन दोनों धाराओं के दो प्रतीक थे। एकेश्वरवाद के वरुण और आत्मवाद के इन्द्र प्रतिनिधि माने गये। वरुण न्यायपति राजा और विवेक पक्ष के आदर्श थे। महावीर इन्द्र आत्मवाद और आनन्द के प्रचारक थे। वरुण को देवताओं के अधिपति पद से हटना पड़ा, इन्द्र के आत्मवाद की प्रेरणा ने आर्यों में आनन्द की विचारधारा उत्पन्न की। फिर तो इन्द्र ही देवराज पद पर प्रतिष्ठित हुए। वैदिक साहित्य में आत्मवाद के प्रचारक इन्द्र की जैसी चर्चा है, उर्वशी आदि अप्सराओं का जो प्रसङ्ग है, वह उनके आनन्द के अनुकूल ही है। सप्तसिन्धु के प्रबुद्ध तरुण आर्यों ने इस आनन्दवाली धारा का अधिक आदर किया क्योंकि वे स्वत्व के उपासक थे। और वरुण यद्यपि आर्यों की उपासना में गौण रूप से सम्मिलित थे, तथापि उनकी प्रतिष्ठा असुर के रूप में असीरिया आदि अन्य देशों में हुई। आत्मा में आनन्द भोग का भारतीय आर्यों ने अधिक आदर किया। उधर असुर के अनुयायी आर्य एकेश्वरवाद और विवेक के प्रतिष्ठापक हुए। भारत के आर्यों ने कर्मकाण्ड और बड़े-बड़े यज्ञों में उल्लासपूर्ण आनन्द का ही दृश्य देखना आरम्भ किया और आत्मवाद के प्रतिष्ठापक इन्द्र के उद्देश्य से बड़े-बड़े यज्ञों की कल्पनाएँ हुईं। किन्तु इस आत्मवाद और यज्ञ वाली विचार धारा की वैदिक आर्यों में प्रधानता हो जाने पर भी, कुछ आर्य लोग अपने को उस आर्य सङ्घ में दीक्षित नहीं कर सके। वे व्रात्य कहे जाने लगे। वैदिक धर्म की प्रधान धारा में, जिसके अन्तर में आत्मवाद था और बाहर याज्ञिक क्रियाओं का उल्लास था, व्रात्यों के लिए स्थान नहीं रहा। उन व्रात्यों ने दार्शनिक दृष्टि से विवेक के आधार पर नये-नये तर्कों की उद्भावना की। इन्हीं लोगों के उत्तराधिकारी वे तीर्थङ्कर लोग थे जिन्होंने ईसा से हजारों वर्ष पहले मगध में बौद्धिक विवेचना के आधार पर दुःखवाद के दर्शन की प्रतिष्ठा की। उधर संहिता के बाद श्रुति-परम्परा में आरण्यक स्वाध्याय-मण्डलों में आनन्द का सिद्धान्त प्रचलित रहा। तैत्तिरीय में एक कथा है कि भृगु जब अपने पिता अथवा गुरु वरुण के पास आत्मोपदेश के लिए गये तो उन्होंने बार-बार तप करने की ही शिक्षा दी और बार-बार तप करके भी भृगु सन्तुष्ट न हुए और फिर आनन्द सिद्धान्त को उपलब्धि करके ही उन्हें परितोष हुआ। विवेक और विज्ञान से भी आनन्द को अधिक महत्व देने वाले भारतीय ऋषि अपने सिद्धान्त का परम्परा में प्रचार करते ही रहे। उपनिषद् में आनन्द की प्रतिष्ठा के साथ प्रेम और प्रमोद की भी कल्पना

* काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गयी थी, जो आनन्दसिद्धान्त के लिए आवश्यक है। इस तरह जहाँ एक ओर भारतीय आर्य व्रात्यों में तर्क के आधार पर विकल्पात्मक बुद्धिवाद का प्रचार हो रहा था वहाँ प्रधान वैदिक धारा के अनुयायी आर्यों में आनन्द का सिद्धान्त भी प्रचारित हो रहा था। किन्तु साथ ही साथ व्रात्य संघों के बाह्य आदर्शवाद से, विवेक और बुद्धिवाद से भारतीय हृदय बहुत कुछ अभिभूत हो रहा था; इसलिए इन आनन्दवादियों की साधना-प्रणाली कुछ-कुछ गुप्त और रहस्यात्मक होती थी।

'श्वेताश्वेतर' की निम्नलिखित पंक्तियों को लीजिए—

"वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः॥

इससे स्पष्ट है कि वेदान्त में जो परम गुह्य है, उसे अप्रशान्त, अपुत्र और आशिष्य को देने का निषेध किया गया है।

वेदों और उपनिषदों का काल समाप्त होने पर ऋषियों के उत्तराधिकारियों ने आगमों की अवतारणा की जिनमें भी आनन्दवाद का अनुसरण किया गया। आगमवादियों के शब्दों में—

"आनन्दोच्छालिता शक्तिः सृजत्यात्मानमात्मना।"

अर्थात् आनन्द के द्वारा उच्छालित शक्ति ही अपने द्वारा अपनी सृष्टि करती है। आगम के अनुयायी सिद्धों ने अर्वाचीन आनन्द-मार्ग को अद्वैत की प्रतिष्ठा के साथ अपनी साधना पद्धति में प्रचलित रक्खा और इसे वे रहस्य सम्प्रदाय कहते थे। शिवसूत्र विमर्शिनी की प्रस्तावना में क्षेमराज ने लिखा है—

"जीवलोके रहस्यसम्प्रदायो मा विच्छेदि।"

जो लोग 'रहस्य' शब्द के प्रयोग को अत्यन्त आधुनिक समझते हैं, उन्हें उक्त उद्धरण पर ध्यान देना चाहिए।

शैवागमों के अद्वैतवाद के अनुसार संसार को मिथ्या मान कर असंभव कल्पना के पीछे भटकना नहीं पड़ता था। दुःखवाद से उत्पन्न संन्यास और संसार से विराग की आवश्यकता भी न थी। अद्वैतमूलक रहस्यवाद के व्यावहारिक रूप में विश्व को आत्मा का अभिन्न अङ्ग शैवागमों में मान लिया गया था। शांकर अद्वैतवादियों की तरह शैवाद्वैतवादी संसार को मिथ्या मान कर नहीं चलते थे। उनकी दृष्टि में जब यह समस्त विश्व उसी का रूप है तब यह मिथ्या कैसे हो सकता है? इस विचार धारा का अनुसरण करने से फिर तो सहज आनन्द की कल्पना भी इन लोगों ने की। इन आनन्द के उपासकों ने मन के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कह डाला—

यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयं तत्रैव चिन्तयेत्।
चलित्वा यास्यते कुत्र सर्वं शिवमयं यतः॥

मन भी आखिर चल कर जायगा कहाँ? बाहर-भीतर आनन्दघन शिव के अतिरिक्त दूसरा स्थान है ही कहाँ?

विवेकवादी धारा कर्मवादी बौद्धों के हीनयान संप्रदाय के रूप में तथा आत्मवादी धारा आनन्दवादी रहस्य-संप्रदाय के रूप में प्रकट हुई। इसके अनन्तर मिश्र विचार-धाराओं की सृष्टि होने लगी। कालान्तर में हीनयान महायान के रूप में बदल गया जिसमें कर्मकाण्डात्मक उपासना और देवताओं की पूजा भी सम्मिलित हो चली थी। श्रीकृष्ण के पूर्णावतार में बुद्धिवाद और आनन्द का समन्वय हुआ। गीता का पक्ष जैसा बुद्धिवादी था, वैसा ही ब्रजलीला और द्वारका का ऐश्वर्य-भोग आनन्द से संबद्ध था।

आगम के बाद सिद्धों ने रहस्यवाद की धारा अपनी प्रचलित भाषा में, जिसे वे सन्ध्या-भाषा कहते थे, अविच्छिन्न रक्खी और सहज आनन्द के उपासक बने रहे। "रहस्यमार्गियों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार ये लोग अपनी बानी को ऐसी पहेली के रूप में भी रखते थे जिसे कोई बिरला ही बूझ सकता है। अपनी बानियों के सांकेतिक दूसरे अर्थ भी ये बताया करते थे, जैसे—

काआ तरुवर पंच बिडाल

पंच बिड़ाल = बौद्ध शास्त्रों में निरूपित पंच प्रतिबन्ध—आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह। ध्यान देने की बात यह है कि विकारों की यही पाँच संख्या निर्गुण धारा के सन्तों और हिन्दी के सूफी कवियों ने ली। हिन्दू शास्त्रों में विकारों की बँधी संख्या ६ है।

गंगा जउँना माझे बहइ रे नाई।

(इस पिंगला के बीच सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से शून्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की ओर यात्रा) †"

हिन्दी के इन आदि रहस्यवादियों के पश्चात बुद्धिवादी निर्गुण सन्तों का युग आया जिसके सबसे बड़े कवि कबीर हैं। 'साधो सहज समाधि भली' में कबीर सिद्धों की सहज भावना को ही दोहराते हैं। कवित्व की दृष्टि से भी उन पर सिद्धों की कविता की छाया है। उन पर कुछ मुसलमानी प्रभाव भी पड़ा अवश्य है; परन्तु शामी पैगम्बरों से अधिक उनके समीप थे वैदिक ऋषि, तीर्थङ्कर, नाथ और सिद्ध। मीरां की भी 'सूली ऊपर सेज पिया की, किस बिध मिलणो होय' जैसी पंक्तियों में रहस्यवादी भावना स्पष्ट है।

वर्तमान हिन्दी साहित्य में विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप 'अहं का इदम्' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक युग से लेकर आज तक इस देश में रहस्यवाद की अविच्छिन्न गति से बहती चली आई है। उक्त प्रमाणों के होते हुए भारतीय रहस्यवाद को 'विदेशी पौध' कहना उचित नहीं।*

† हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल) पृष्ठ ११-१२।

* स्व० प्रसादजी के 'रहस्यवाद' शीर्षक निबन्ध के आधार पर प्रायः उन्हीं के शब्दों में लिखित।

(पृष्ठ २२० का शेष)

पुन मति सूतलि पियतम कोर।
विधि बस देवे वाम मेल मोर॥"

अनुप्रास की छटा आपको सर्वत्र मिलेगी। वेदना की टीस भी आप सर्वत्र अनुभव करेंगे। इसलिए शैली गंभीर और करुण हो गई है। भावना का उल्लास तो शैली में आपको ठौर-ठौर मिलेगा। खासकर विरह के पदों में वेदना के भार से शैली भी मधुर और साथ-साथ करुण हो गई है। 'रे' शब्द के प्रयोग ने माधुर्य का सृजन बहुत ज्यादा कर दिया है। कहीं-कहीं इस शैली की छाया आप 'पन्त' जी के 'गुञ्जन' में पायेंगे। 'रे' के मधुर प्रयोग ने भी विद्यापति को ज्यादा आकर्षित किया है। कविता है:—

"लोचन धाय फें धाएल हरि नहीं आयल रे।
सिव-सिव जिवओ न जाए आस अरु भाएल रे॥२॥
मन करे तहाँ उड़ि जाइअ जहाँ हरि पाइअ रे।
पेम-परस मनि जानि आनि उर लाइअ रे॥४॥"

'रे' और 'हे' शब्द के व्यवहार के कारण शैली की चारुता, मनोमुग्धता और हृदय-ग्राहिता की शक्ति बढ़ गई है। वसन्त वर्णन का एक अंश और उद्धृत कर विद्यापति की शैली की समीक्षा यहाँ समाप्त की जायगी। रूपक के सहारे कवि ने बसन्त का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह अनोखा है। जयदेव को छोड़ हिन्दी और संस्कृत साहित्य में ऐसा वर्णन पाना मुश्किल है। जितनी अलङ्कारों की शोभा मिलेगी, उतनी ही वर्णन की सरसता और उससे भी ज्यादा शब्दों का चमत्कार जो हीरे में जड़े नग का काम करता है। पंक्ति हैं—

"आएल रितु पति राज बसन्त।
धाओल अलिकुल माधवि पन्थ॥२॥
दिनकर-किरण भेल पौगंड।
केसर कुसुम धएल हेम दंड॥४॥
नृप आसन नव पोठल पात।
कांचन कुसुम छत्र धरु माथ॥६॥
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताय।
समुखहि कोकिल पंचम गाय॥८॥
सिखिकुल बाचत अलिकुल यन्त्र।
द्विजकुल आन पढ़ आसिस मन्त्र॥१०॥
चन्द्रातप उड़े कुसुम पराग।
मलय पवन सह भेल अनुराग॥१२॥

इस पद गत शैली का गुणगान करना सूर्य को दीपक दिखाना है। यहाँ तो कवि जयदेव के समकक्ष हैं। 'अभिनव-जयदेव' तो इनकी उपाधि भी है। अस्तु, मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि इनकी शैली विश्व-साहित्य में बेजोड़, अनूठी और अनुपम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यापति की साहित्यिक शैलियाँ

प्रो० कृष्णकान्त चौधरी, एम० ए०

विद्यापति का आविर्भाव काल सन्त युग का आरम्भ है। कबीर के पूर्व ये मिथिला में वर्तमान थे। अतः इनकी शैली-समीक्षा के पश्चात ही प्रेम-काव्य शैली की विवेचना की जायगी। विद्यापति के पूर्व भी अगर जयदेव कवि की शैली का वर्णन उपस्थित किया जाय तो कोई विषयान्तर नहीं होगा; क्योंकि हिन्दी कवियों की गीतात्मक शैली जयदेव कवि की शैली से प्रभावित मालूम पड़ती है। जयदेव कवि के शैली-विवेचन से आनेवाली शैली-समीक्षा में मदद मिलेगी। हिन्दी के कवियों की शैली समझने में ज्यादा परेशानी नहीं होगी।

जयदेव मधुर भावों के प्रणेता हैं। हिन्दी में उनकी रचना है या नहीं यह प्रश्न संदिग्ध है। संस्कृत में उनका काव्य 'गीत-गोविन्द' है। गीतगोविन्द की ही शैलीगत विशेषता का ही कुछ आभास यहाँ दिया जावेगा। गीत-गोविन्द की रचना यद्यपि संस्कृत भाषा में हुई है तो भी उसकी शैली इतनी सरल और सुरुचिपूर्ण है कि वह हिन्दी का ही काव्य मालूम पड़ता है। अगर यह कहा जाय कि 'प्रिय प्रवास' की वर्णन-शैली गीत गोविन्द की वर्णन-शैली की अपेक्षा दुखद है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। गीत-गोविन्द की शैली इतनी सरल है कि अपढ़ लोग भी इसे समझते और गाते हैं। देहातों में जहाँ नाच-गान होता है, वहाँ गीतगोविन्द का पद अवश्य ही सुनने को मिलेगा। आप देखेंगे कि हर कोने से फरमाइश होगी ऐसे नाच और गान में कि गीत-गोविन्द के पद गाये जायँ। और मधुर लय और स्वरों में जब यह गीत उद्घोषित होता है तो श्रोता रस से सराबोर हो झूमने लगते हैं, वाह-वाह के शब्द हर दिशा में गूँजने लगते हैं। सूर के शब्दों में इस शैली के विषय में कह सकते हैं, 'ज्यों गूँगे रस मीठे फल कै अन्तर गत ही भावै।' इस शैली में माधुर्य गुण का विकास इस-लिए हुआ है कि यह काव्य कृष्ण-लीला काव्य है। कृष्ण की मधुर लीलाओं का वर्णन ही आप इसमें पायेंगे। फल-स्वरूप भी इसकी शैली मधुर, सरस, मर्मस्पर्शी, गेय, भावुक और सुरुचिपूर्ण हो सकी। शब्दों का चयन, छन्दों का प्रयोग, भावों एवं विभावों का चित्र इतना सुन्दर है कि शैली विश्व साहित्य में अनूठी हो गई है। विशेषणों का संयोग ऐसा है मानो मणिकांचन संयोग हो। देखिए:—

"ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजति कुञ्ज कुटीरे॥
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते।
नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरही जनस्य दुरन्ते॥
उन्मद मदन मनोरथ पथिक बधूजन जनित विलापे।
अलिकुल संकुल कुसुम समूह निराकुल वकुल कलापे॥
मृगमद सौरभ रभस वशं वदन बदल मलि तमाले।
युवजन हृदय विदारण मनसिज नखरुचि किंशुक जाले॥
मदन महीपति कनक दण्ड रुचि केसर कुसुम विकासे।
मिलित शिलीमुख पाटलि पटल कृतस्मर तूणं विलासे॥"

संस्कृत साहित्य के गीत काव्य में 'गीत गोविन्द' अमर है। यमक और अनुप्रास अलङ्कार से जिस प्रकार भाव-व्यञ्जना की गई है वह किसी भी साहित्य में दुर्लभ है। अलङ्कारों के कारण अभिव्यक्ति रोचक और चमत्कारपूर्ण हो गई है। शृङ्गार-रस में शैली की ऐसी अभिव्यञ्जना असम्भव है। जितना ही भाषा में माधुर्य है उतना ही भाव में सौन्दर्य और शैली में रस है। प्रेम का और वसन्त के प्रथम आगमन का ऐसा कोमल, दिव्य और मादकता-पूर्ण वर्णन अन्यत्र कठिन है। ये कोमल शब्द बसन्त के ही नव अरुण किसलय हैं। इन नवीन अरुण किसलयों की अरुणता शैली का सौन्दर्य है और रस का आन्तरिक रस और विकास भावों की सरसता है। वसन्त की प्रतिच्छाया, प्रतिरूप ही तो यह पद्य है।

गीत गोविन्द में आदि से अन्त तक आप ऐसी ही शैली का निरूपण पाएँगे। शैली के जितने प्रभावोत्पादक गुण हैं उन सबों का समावेश इस काव्य ग्रन्थ में हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या अलङ्कार, क्या शब्द, क्या लक्षणा, क्या रस, क्या भावुकता और क्या कला सभी दृष्टियों से यह काव्य सरस और मधुर है। शृङ्गार की रस-धारा में आप जितनी ही डुबकियाँ लगाते जाइए आपको उतनी ही नवीनता मिलती जायगी। साहित्य और सङ्गीत जहाँ दोनों कलाएँ मिलती हैं, वहाँ कला की पराकाष्ठा होती है। गीत गोविन्द में भी दोनों का गांगी-यमुनी मेल हुआ है। यही कारण है कि शैलियों का इतना निखरा रूप आपको यहाँ मिलेगा।

विद्यापति की शैलियों के बारे में भी इतना ही कहा जा सकता है। जयदेव के बहुत समीप आप हैं, समकक्ष भी कहा जा सकता है। वही साहित्य और सङ्गीत का मेल अलङ्कारों की विद्युच्छटा, शब्दों की चमत्कारिता और भावों की सरसता परिलक्षित होगी। एक तो मैथिली भाषा ही मधुर भाषा है और दूसरे विद्यापति की भावुकता और सरसता ने अपार सौन्दर्य की सर्जना करदी है। इनके गीतों का आख्यान भी राधाकृष्ण का प्रेम है। विरह, मिलन, मान, अभिसार आदि के कलापूर्ण चित्रों ने तो शैली को जैसे चित्रमयता ही प्रदान की है। विविध शैली चित्रों का दर्शन आपको विभिन्न गीतों में होगा।

विद्यापति मानव के कवि हैं। मानवीय सौन्दर्य का जो वर्णन कवि ने अपने गीतों में किया है, वह अद्वितीय है। लौकिक सौन्दर्य ही इन्हें श्रेय रहा है। इस सौन्दर्य को इन्होंने अलङ्कारों से ऐसा सजाया है कि देखते ही बनता है। कालिदास के साथ जो उक्ति सत्य है वह कवि के लिए भी फिट है।

"उपमा कालिदासस्य भावैर अर्थ गौरवम्।
दंडिनः पदलालित्यं माघे सन्तित्रयोः गुणाः॥"

विद्यापति कवि के लिए तीनों सत्य हैं। क्या उपमा, क्या अर्थ और क्या पद-लालित्य सब कमाल के हैं। उपमा का जो दृश्य विद्यापति ने उपस्थित किया है वह अन्यत्र हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है। मैथिली की कोमल कान्त पदावली में इन्होंने संगीत की जो सृष्टि की है वह अपूर्व और हृदय-स्पर्शी है। उपनयन, विवाह या अन्य मांगलिक समारोह के अवसर पर जब मिथिला की कल-कण्ठ कामिनी इन पदों को गाती हैं तो अमृत की वर्षा होने लगती है। रस की सरिता चारों ओर प्रवाहित होने लगती है। एक तो पदों की शैली ही संगीतमयी है और दूसरे कामिनियों के मधुर कल-कलाप। दोनों मिल कर पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं वर्षा ऋतु की रिम-झिम में जब मिथिला की अमराइयों में कदम्ब की डाल पर झूले पर बैठी मधुर स्वर सम्पन्न युवतियाँ चौमासे और बारहमासे गाती हैं तो स्वर्ग का आनन्द भी फीका पड़ जाता है, मात हो जाता है। इस तरह कवि ने विविध शैलियों में अपने गीतों का प्रणयन किया है। इनके पदों पर मुग्ध हो रवीन्द्र कवीन्द्र भी रोज इन्हें गाया करते थे। इनका प्यारा पद था— जिसे गा-गाकर ये आनन्द विभोर हो जाते थे—

"सखि हे हमर दुखक नहीं ओर।
दू भर बादर माह भादर सून मंदिर मोर॥२॥
झंपि घन गरजंति संतत भुवन भरि बरसंतिया।
कन्त पाहुन काम दारुण सघन खर सर हंतिया॥४॥
कुलित कत सत पात मुदित मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहक फाटि जायत छातिया॥६॥
तिमिर दिग भरि घोर यामिनी अथिर बिजुरिक पाँतिया।
विद्यापति कह कइसे गमाओब हरि बिना दिन रातिया॥८॥"

वर्षा का रूपक बाँधकर कवि ने विरहिणी नारी का चित्र खींचा है। साथ-साथ उद्दीपन विभाव का प्रयोग कर कवि ने नायिका के दुःख को और घना कर दिया है, संगीत के लयों में इसे प्रणीत कर और मधुर बना दिया है। इसीलिए शैली इतनी तीव्र और स्निग्ध हो गई है कि हृदय में बिना चुभे रहती ही नहीं है।

कवि की शैली का समीक्षात्मक रूप उपस्थित करने के लिए कवि का क्रमिक शैली-विकास ही देखना श्रेयस्कर होगा। कवि ने शुरू में कुछ विनय के पद ही कहे हैं। कुछ नाचारी, बारहमासा और चौमासा में भी इनके पद हैं। इनके सभी पद संगीत के सुर और लयों से बँधे हैं। पढ़ कर बिना विमुग्ध हुए नहीं रह सकता है कोई। नमूना के लिए देखिए, जितना मधुर कृष्ण का रूप है उतनी ही मधुर और विमुग्धकारी इसकी शैली है। पद है:—

"नन्दक नन्दन कदम्बक तरुतर
धिरे-धिरे मुरलि बजाव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय सँकेत निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव ॥२॥
सामरि, तोरा लागि
अनुखन बिकल मुरारि ॥३॥

और अन्त में है—

"मनई विद्यापति सुनु बरजौवति
बन्दह नन्द किसोरा ॥७॥"

शिव सम्बन्धी नाचारी पद भी हैं। कुछ ऐसे पद हैं जो शिवसिंह सरोज के राज्याभिषेक और युद्ध आदि पर लिखे गये हैं। इन पदों में शैली भावात्मक नहीं होकर वर्णनात्मक हो गई है। कवि ने सीधे शिव के रूप का वर्णन ही उपस्थित किया है। उदाहरण लीजिए:—

"हम नहिं आज रहब यहि आँगन
जो बुढ़ होएत, जमाई, गे भाई।
एक त बइरि भेला बीध विधाता
दोसरे धिया कर बाप।
तेसरे बइरि भेल नारद बामन
जेठे बूढ़ आनल जमाई, गे भाई॥
पहिलुक बाजन डामरु तोरब
दोसरे तोरब रुंड माला
बरद हाँकि बरिआत बोलाइब
धिआ ले जाएब पराई, गे भाई॥
धोती लोटा पतरा पोथी
एहो सब लबन्हि छिनाई।
जौं किछु बजता नारद बामन
दाढ़ी धए घिसि आएब, गे भाई॥"

कितनी सरस यह नचारी है। डमरू पर गाते-गाते शिव के भक्त मस्त हो जाते हैं। यहाँ तक कि दिहातों में भी लोग जो खास कर अपढ़ हैं इन पदों को गाते सुने जाते हैं। शिवरात्रि के अवसर पर कामर धुएँ जब झुरुड में चलते हैं तो इन नचारी के पदों को गाते हुए अपने दुर्गम मार्ग को पार कर लेते हैं। नचारी की इन शैलियों को सुनकर लोग समझ जाते हैं कि कामर धुँए जा रहे हैं।

नचारी के इन्हीं पदों में आपको प्रगतिवादी शैली का भी रूप मिलेगा। इस शैली में रूपक के द्वारा गरीब किसान-मजदूरों की गरीबी का अच्छा दिग्दर्शन हो सका है। पद हैं—

"नाहि करब वर हर निर मोहिया।
वित्ता भरि तन वसन न तिन्ह का
बघ छल काँख तर रहिया ॥२॥
बन-बन फिरथि मसान जगावथि
घर आँगन ऊ बनौलनि कहिया।
सासु ससुर नहीं ननद जेठौनी
जाए बैसति धिया के करा ठहिया ॥४॥
बूढ़ बड़द ढक-पोल गोल एक
सम्पति माँगक झोरिया।
भनइ विद्यापति सुनु हे मनाइन
सिव सन दानी जगत के कहिया ॥६॥

इस पद में शिव का रूपक बाँध कर कवि ने युग की गरीबी का चित्र आँका है। अतः प्रगतिवादी शैली का आभास विद्यापति के पदों में सर्व-प्रथम ही देखने को मिलता है। और भी नचारी के बहुत से ऐसे पद हैं जो लोगों द्वारा गाये जाते हैं, पर उनका अभी तक संग्रह नहीं हो सका है। इनकी शैली में जन-साधारण की भाषा का उपयोग बड़े ही सरल ढङ्ग में हुआ है। यही कारण है कि विद्यापति के पद जन-जन के कंठहार बने हुए हैं। इनके पदों की शैली इतनी विख्यात और लोक-रुचि के अनुरूप है कि आप कहीं भी इन्हें गायें लोग समझ जायेंगे कि विद्यापति के पद गाये जा रहे हैं। हर ऋतु में आपको विद्यापति के पद सुनने को आयेंगे। क्या बसन्त और क्या बरसात। वर्षा में बारहमासे और चौमासे पाये जाते हैं। देखिए इन शैलियों को भी। पद है:—

"मोर पिया सखि गेल दुर देस।
जौवन दए गेल साल सनेस ॥१॥
भादव मास बरस घनघोर।
सब दिसि कुहुकए दादुल मोर॥
चहुँकि चहुँकि पिया कोर समाय।
गुनमति सूतलि अङ्क लगाय ॥४॥
माघ मास घन पड़ए तुसार।
झिलमिल केचुआँ उनत थनहार॥

(शेष पृष्ठ २१७ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनापति : शृङ्गारी या भक्त कवि

प्रो० शिवबालक शुक्ल बी० ए० आनर्स, एम० ए०

किसी कवि को वर्ग विशेष अथवा सम्प्रदाय से सम्बद्ध घोषित करना एक समस्या है। और तब, जब कि इसके हेतु परम्परागत मान्यता या कोई सर्वमान्य प्रतिमान न प्राप्त हो, यह प्रश्न और दुरूह हो जाता है। वह कौन सी तुला है जिस पर सेनापति की शृङ्गारिकता और भक्ति का सन्तुलन किया जाय। कालिदास तथा विद्यापति की भी यही दो प्रवृत्तियाँ साहित्य के चिन्तनशील विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट करती रही हैं। इस प्रकार के प्रश्नों से, यदि हमारा दुराग्रह अङ्गद-पादारोपण न हो जाय, न अंक-प्रदायक पद्धति का पुनर्प्रचार एवं प्रतिष्ठा की जाय, किसी स्वस्थ परिणाम पर भी पहुँचा जा सकता है।

महर्षि शाण्डिल्य ने भक्तिसूत्र में 'भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे' कहा है। ईश्वर अप्रत्यक्ष है अतः वैधी भक्ति के विधानानुसार 'देवोभूत्वा देवम् भजेत्' पर बल दिया गया है। अँगरेजी में कहा है :—

Devotion wafts the mind above,
And Heaven itself descends in love.

देवोभूत्वा सच्चे साधक ही 'सर्ववेदिनमनादिमास्थितम् देहिनामनुजिघृक्षयावपुः' * भगवान् का दर्शन कर पाते हैं। भक्त भगवान् के अनन्त शील, असीम शक्ति और अनुपम शाश्वत सौन्दर्य से आह्लादित होता है। उसे संसार आराध्यमय दीखता है। भक्ति भाव से प्रेरित सूर, मीरा तथा तुलसी ने कृष्ण और राम के अतिरिक्त प्राकृत जन का यश-गान नहीं किया। मीरा की पति-अवहेलना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। भक्त सदा निवृत्ति से प्रभावित होता है। चित्त की शोधक वृत्तियाँ मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा उसका अन्तर्मन आन्दोलित करती रहती हैं। भक्त-कवि की रचना में सन्त-श्लाघा, विश्व-विरक्ति तथा परमार्थ-चिन्तन प्रभृत्ति विषयों के प्राधान्य से आनुषङ्गिक अन्य रसों का पर्यवसान अन्ततोगत्वा शान्त रस में ही होता दीखता है।

महाकवि देव ने अपनी 'प्रेमचन्द्रिका' में कहा है—

बानी वो सार बखान्यो सिँगार,
सिँगार को सार किसोर किसोरी

शृङ्गारी कवि इसीलिए व्याल विनिन्दक कौशेय कुन्तलों की मसृणता, नेत्रों की सहज स्नेह-मेदुरता, गुलाब के नवल-दल सी मुख-प्रफुल्लता, सिंहिनी सदृश कटि एवं मृणाल नाल सी उँगलियों की प्रतनुता में उलझ जाता है। निकल न सकने पर गजब की सफाई देता है—

आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

—दास

भक्त कवि सृष्टि के सौन्दर्य में अपने आराध्य की कला और तन्मयता का अनुभव करता है। समग्र सृष्टि में—स्वर्गिक विभूति के इस आकलन और आहरण में—उसका हृदय आनन्द-सुधा स्पन्दिनी धारा से अभिषिक्त हो जाता है। वह इस सौन्दर्य का उपभोग और आत्मसात् न करके, उसकी उपासना और नीराजना करता है।

इस लम्बे विषयान्तर-प्रकरण के हेतु क्षमा किया जाऊँ। घनानन्द जैसे किसी ही किसी कृती कलाकार को उसके कवित्त बनाते हैं। प्रायः कवि संस्कार और वातावरण से प्रभावित होते हैं। एतिहासिक परिस्थिति और युग की माँग सेनापति को भक्त नहीं शृङ्गारी बनाने के लिए तुली हुई थी। वैभव विलास और श्री-समृद्ध की चपल चितवन से बचना कठिन था।* रीतिकाल के प्रायः प्रत्येक कवि ने किसी न किसी रूप में आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के हेतु प्राकृत जन गुणगान किया है। 'समानशील-व्यसनेषु सख्यम्' के अधुसार सेनापति उन्हीं के साथ पैर से पैर और कन्धे से कन्धा मिलाते हुए चले हैं और इसीलिए

* देखिए शिशुपाल वध, सर्ग १४, श्लोक ६२

* देखिये साहित्य सन्देश अप्रैल १९५० में मेरे लेख 'रीतिकालीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ' का प्रारम्भिक अंश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सूर कली' को कृष्ण के सदृश बताते हैं। (क० रत्ना० तरङ्ग १ छं० ५६)

मानव शरीर के विविध रोगों की भाँति सेनापति में भी अन्य प्रवृत्तियों के साथ भक्ति-भावना विद्यमान थी। किसी व्यक्ति के शरीर में रोग विशेष के कीटाणु उस रोग को उभारने में समर्थ होते हैं, यद्यपि वे कीटाणु सभी के शरीर में न्यूनाधिक रूप में विद्यमान रहते हैं। जराजर्जर सेनापति की भावना उसी प्रकार की प्रतीत होती है।

चातुर्वैदिग्ध्य और चमत्कार के चक्कर में पड़ कर किसी भी शृङ्गारी कवि की भाँति सेनापति ने कहा था—

संख्या करि लीजै अलङ्कार हैं अधिक यामैं,
राखौ मति अधिक उदार सरस ऐसे साज कौं।
सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की,
ताते सेनापति कहै तजि करि ब्याज कौं।
लीजिए बचाइ ज्यौं चुरावै नाहिं कोई,
सौंपी वित्त की सी थाती मैं कवित्तन के राज कौं।

यहाँ पर दण्डी तथा भामह के सम्प्रदाय में दीक्षित सेनापति अपने पाण्डित्य का—कहने भर को स्वाभिमान का—निर्वहण करते हैं—डींग मारते हैं। भक्तों की रचनाओं में कुछ है पर वे 'कोरे कागद लिख कर' शपथ खाते हैं कि वे कुछ नहीं जानते। भक्त अपने भावों का सुतरां संक्रमण चाहता है। श्रद्धेय के प्रति सबको श्रद्धालु पाकर वह उल्लसित होता है। तुलसी ने कहा है—

मनि मानिक मुकुता छवि जैसी,
अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई,
लहहिं सकल सोभा अधिकाई।
तैसेहिं सुकवि कवित बुध कहहीं,
उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं।*

सेनापति को डर है कि कोई उनके कवित्त-वित्त को चुरा न ले जाय अतः कवित्तन के राज को यह थाती संन्यस्त कर दी। नाम, रूप, गुण, शक्ति, विभूत, और ध्यान परा भूमिकाओं पर विहार करने वाला भक्त ऐसे बातें स्वप्न में भी सोच सकता है—ऐसा विश्वास नहीं होता। भक्त को भगवत् कृपा का बल होता है उसे प्रदर्शन से क्या प्रयोजन? 'सरस अनूप रस रूप धुनि' हुआ करे। कविता तीछन अमल बुद्धिवाले को सुगम और मूढ़न को अगम हो स्यात् भक्त ऐसा नहीं चाहता।

तुलसी ने 'भनिति' को सुरसरि सम और शृङ्गारी देव ने 'बानी पुनीत ज्यों देवधुनी', 'सील सखी सक्ति-छवित्ता कविता' कहा है। सेनापति में प्रकृत शालीनता नहीं, शृङ्गारी कवियों जैसा स्वाभिमान (जिसमें दर्पाधिक्य है) और कबीर जैसा अक्खड़पन दृष्टिगोचर होता है। देव ने—

साहेब अन्ध, मुसाहेब मूक,
सभा बहिरी, रँग रीझ को माच्यौ

और घनानन्द ने—

पूँछ बिसान बिना पसु जे सु कहा घन आनन्द बानी बखानै

कहा था। ठाकुर को तलवार ही निकालनी पड़ी थी। इन सभी कवियों ने यत्र-तत्र भक्ति परक रचना की है। पर क्या वे भक्त कवियों की श्रेणी में आते हैं? सेनापति की रचना में देव, बिहारी, मतिराम, श्रीपति, कालिदास, त्रिवेदी और पद्माकर जैसे कवियों के से शृङ्गारी भाव विद्यमान हैं। और इन सब में प्रेम के पाँचों प्रकारों (सानुराग, सौहार्द, भक्ति, वात्सल्य और कार्पण्य) का यत्र-तत्र दर्शन होता है। शृङ्गार और भक्ति अङ्गी और अङ्ग रूप में इन सभी में विद्यमान है फिर इसी वक्ता के एक कवि को अलग कैसे किया जाय? सेनापति को भक्त कवि सिद्ध करने वाले महानुभाव कह सकते हैं कि सेनापति ने प्रथम तरङ्ग ही में गणेश

मेरे विचार।

मेरी वाणी क्या तुझे चाहिए अलङ्कार —पन्त

*—Drive my dead thoughts over
the universe
× × ×
Scatter, as from an unextinguished hearth
Ashes and sparks, my words
among mankind
—Shelley

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्दना में कहा है—

तुम ही बताई कछू कीनी कविताई तामें,
होइ जोगताई, दुचिताई के सुभाइ कै।
बुद्धि के बिनाइकै, गुसाईं कवि नाइकै,
सु लीजिए बनाइ कै कहत सिर नाइकै।

इस प्रकार के मङ्गलाचरण और बन्दनायें अन्य कवियों ने भी की हैं परन्तु भक्त कवि क्या स्त्री और उसके अङ्गों को लेकर इतना तमाशा खड़ा करेगा ? यहाँ पर मैं कवि सेनापति की उत्कृष्ट कविता की बुराई नहीं कर रहा हूँ अपितु उनके काव्य में उनके भक्त कवि को खोजने का प्रयास कर रहा हूँ। और मैं सम्य गर्व के साथ शृङ्गारी वायरन के आलोचक न्यूमैन, रोचेस्टर के हैजलिट की भाँति कहूँ कि सेनापति का काव्य-सौन्दर्य प्रशंसनीय है उसका प्रभाव चाहे जो कुछ हो।

माना सेनापति ने रामायण के कुछ अंशों को कवित्त-बद्ध किया है, पर उसमें किसी भावुक भक्त जैसी वह तन्मयता नहीं दीखती, जो अपने आराध्य का प्रसङ्ग छिड़ते ही दूसरों को आनन्द निमग्न कर देती है। 'सूर-रामायण' और 'कृष्ण गीतावली' ने 'स्याम सखा' सूर और 'दासी दास' 'तुलसी' को क्रमशः राम और कृष्ण भक्त नहीं बनाया। तब फिर सेनापति ही क्यों गङ्गा शिव कृष्ण आदि के भक्त हो गये। उनकी इस भक्ति का रूप क्या था उसे आगे निवेदन करूँगा।

सेनापति ने आराध्य के प्रति अपनी भक्ति-विह्वलता और आत्म-विस्मरण का परिचय नहीं दिया है। रामायण के ऐसे प्रसङ्गों का सञ्चयन न कर वीरोत्साह प्रधान प्रसङ्ग लिये हैं। समुद्र-दशा का विशद-वर्णन किया है।

बूँद ज्यों तए की तची, कमठ की पीठ पर,
छार भयो जात छीर सिन्धु छननाइ कै॥
× × ×
दीन महा मीन, जीव हीन जलचर चुरैं,
बरुन मलीन कर मींड़ैं पछितात हैं।

यहाँ सहृदय पाठक को एक चित्र भयङ्कर उत्ताप का अवश्य मिलेगा पर भक्ति उपेत कविता नहीं। मुझे तो 'अनीस' और 'दबीर' जैसी वर्णनशैली ही मिली, सुनिए—

मिस्ले तनवर गर्म था पानी का हर हुबाब।
होती थीं सीख मौज पै, मुर्गाबियाँ कबाब॥—अनीस
पानी था आग गर्मियें रोजे हिसाब थी।
माही जो सीख मौज पै आई कबाब थी॥—दबीर

उर्दू शायरों ने मुर्गाबी और माही तथा सेनापति ने महामीन और जलचर चुराने की चर्चा की है।

'कवित्त-रत्नाकर' की तरङ्ग ४ और ५ में उनकी भक्ति-भावना मुखर है। विभिन्न देवों के प्रति उनकी यह प्रणति उन्हें उस समय भक्तों की पंक्ति में प्रविष्ट करा देती है। वहाँ पर विनय की सप्त भूमिकाएँ भी जहाँ तहाँ मिल ही जाती हैं। यथा—

दिए न भगति जातैं होत सुभ गति, —दीनता
तन तीरथ चलत मन ती रथ चलत है।—भयदर्शना
मानौं कै ना मानौं करौ सोई जोई जिय जानौं,
हम तौ पुकार एक तोही सौं करत हैं। —मानमर्षण
अब तू जरा में परयौ मोह पींजरा में,
सेनापति भजु रामै जो हरैया पर पीर के।—भर्त्सना
ऐसौ अवगुनी ताके सेइबे को तरसत,
जानिये न कौन सेनापति के समान है। —आश्वासन
प्रभु के उतरिन की गूदरीयौ चीरन की,
भाल, भुज, कण्ठ, उर, छाप्न कौं लसिबौ।
सेनापति चाहत हैं सकल जनम भरि,
वृन्दाबन सीमा तैं न बाहर निकसिबौ। —मनोराज्य

और—

दृगन सों देखै विस्वरूप है अनूप जाकौ
बुद्धि सौं बिचारै निराकार निरधार है।
× × ×
कर न संदेहरे कही मैं चित देहरे,
कहा है बीच देहरै कहा है बीच देहरे। —विचारणा

जहाँ तक सेनापति के मानव का प्रश्न है यह सब ठीक है। किन्तु यहाँ उनके कवि के रूप (शृङ्गारी अथवा भक्त) का परीक्षण ही अभीष्ट है।

रामायण और रामरसायन वर्णन में राम, कृष्ण, शिव, गङ्गा आदि से सम्बद्ध छन्दों में कथन की करामात अधिक, आलम्बन का आराध्य का माहात्म्य अङ्कन कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उदाहरण के लिए गायक महाशय के स्वर भरने पर मित्रद्वय का सुर में सुर मिलाना हुआ कि वे बोले उठे—

....सुर न दीजै प्रवीन, हौं अलापिहौ अकेलौ....

किन्तु गायक के मुख से धोखे से निसृत शब्द जब मित्रों के कानों में पड़े तो गायक और सुहृद देव लोक नायक हो गये।

धोखे सुर नदी जै के कहत, सुनत, भये,
तीनों तीनि देव, तीनि लोकनके नाइकै।
गाइन गरुड़ केतु, भयौ, द्वै सखाऊ भये,
त्राता महादेव बैठे देवलोक जाइ कै॥

परन्तु सरकार! आपको बड़ी सरकार का समझकर सवाल करते जरा डर लगता है। विष्णु यदा कदा पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, ब्रह्मा का भी विनाश होता हुआ सुना है पर शङ्कर अविकल, अक्षय, अनादि और अनन्त ही रहते हैं। यदि उन तीनों में से एक को हम शङ्कर ही मान लें तो भी काम नहीं चलता क्योंकि गङ्गा का उद्भव बाद ही का है। तब तो आपके इस छन्द में सभङ्ग श्लेष और अक्रमातिशयोक्ति का चमत्कार ही प्रधान रहा, गङ्गा भक्ति नहीं, सुर नदी माहात्म्य नहीं। अजामिल ने नारायण का—अपने पुत्र का—स्मरण स्नेह सावल्य और मोहातिरेक वश किया था यहाँ धोखे से ही सब मामला बन जाता है। किस युग में यह चार सौ बीसी हुई थी? आपकी यह उद्भावना श्लाघ्य है।

भक्त समग्र सृष्टि को आराध्य मय देखता है। सेनापति को सारा जगत् नारीमय प्रतीत होता है। क्या उन्होंने उपासना की थी? कदापि नहीं। वे तो—

जुगुति विचारि सेनापति है विचारि कहै,
बर नर नारि दोऊ एक ही बचन में।

सेनापति को नारी में बाटिका, स्वर्ण मोहर, तलवार, मेंहदी, पाग रागमाला, शमादान, माला, कमल, इन्द्रपुरी, चौपड़, सुनार, नौका, वृद्धा वस्त्र समूह (रजाई, दुशाला, तनसुख) नवग्रह, महाभारत सैन्य, लौंग, सागर, नाड़ी, हरिणी, ग्रीष्म-ऋतु और अप्रिय अनभाक्ती स्त्री दृष्टिगोचर होती हैं। स्त्री के मान, तिल, नेत्र, तोड़ा, बोल, अञ्जन आदि क्रमशः बाण, तिल्ली नट, नायक, ईख, गंगा इत्यादि पदार्थ प्रतीत होते हैं। आधुनिक युग में उन्हें नारी बिजली की कतार ही नहीं, बेतार का तार, मशीनगन, वायुयान, टारपीडो, मृत्युकिरण और आटम बम्ब के रूप में दिखाई देती। गनीमत यह हुई कि आप अट्ठारहवीं शताब्दी में हुए अन्यथा कोई आधुनिका आप से कह उठती:—

छन्द रचती हैं हम ध्यान रहे अब आप,
रूप वर्णन में न यहँ भूल जायेंगे।
आप यदि केशों की हमारे कहेंगे कथा,
भर पेट दाढ़ी मूँछ की प्रशंसा पायेंगे।
आप यदि हमको कहेंगे कञ्ज लतिका सी,
मधुपूर्ण महुआ से आप कहलायेंगे।
आप यदि हमको कहेंगे मृग-लोचनी तो,
आप भैंसा लोचन अवश्य बन जायेंगे॥*

मैंने ऊपर भक्त को नारी-सौन्दर्य की उपासना करने वाला बताया है। सीता के प्रति तुलसी का यही भाव था। कालिदास ने कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में जगतः पितरौ शिव पार्वती का संयोग शृङ्गार वर्णन किया है। सेनापति ने नारी को वस्त्रसमूह बताते हुए घोर शृङ्गारिकता का परिचय दिया है।

सोये संग सब राती सीरक परति छाती,
पैयत रजाई नेंकु आलिङ्गन कीने ते।
उर सौं उरोज लागि होत है दुसाल तेई,
× × ×
तन सुख रासि जाके तन के तनकौ छुवैं,
—तरंग १, छंद ३० और तरंग ३, छंद ५८

पर इस छन्द की शृङ्गार वर्णना 'आन्ध्रीपयोधर इवातितराम् प्रकाशः' है।

पं० उमाशङ्कर शुक्ल ने लिखा है, 'भगवान के जिस स्वरूप को लेकर सेनापति चले हैं उसके प्रति उनके हृदय में सच्चा अनुराग था और वे उसकी अभिव्यक्ति करने में पूर्ण सफल हुये हैं। × × × जब मनुष्य को यह अनुमान होने लगता है कि जीवन एक क्षणिक घटना है

* सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा की एक उत्तर पुस्तक से उद्धृत। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और थोड़े ही समय में सारा खेल समाप्त होने वाला है तब उसको परमार्थ की चिन्ता होती है—

लेह देह करि कै पुनीत करि लेह देह,
जीभैं अवलेह देह सुरसरि नीर कौ।

शुक्लजी मुझे क्षमा करें। सच्चा अनुराग और खेल समाप्त होने के समय का परमार्थ चिन्तन विचारणीय है। यह वदतोव्याघात ही मेरे मत की पुष्टि करता है। यहाँ किसी भक्त जैसी न राम नाम की लूट हो रही है न कबीर की 'पैंठ' उठी जाती है और न तुलसी की डासते ही डासते निशा बीत रही है। देह को लेह देह (आनन-फानन में) शुद्ध करने की बात इसलिए प्रतीत होती है कि अब उनसे कुछ करते धरते नहीं बनता। रपटने या फिसलने वाले की हरगङ्गा से लगन और निष्ठा कुछ विशेष है बस। उर्दू शायर के—

जाता रहा शबाब रहा गम शबाब का,
बेचैन दिल व शोख तबीयत नहीं रही

की भाँति उनके आन्तरिक उद्गार तो देखिए—

आवत बिराम, बैस बीती अभिराम तातैं,
करि बिसराम, भजि रामै किन लेत है।

और × × ×

आधी तैं सरस गई बीति कै बरस.....

आधी से कई बरस सरस (अधिक) आयु—अभिराम बैस-बीत गई। दैन्य, विवशता, पश्चातापपूर्ण यह तिलमिलाहट बड़ी प्यारी है। मनोविज्ञान के इस उन्नत युग में साहित्य के कोरे विद्यार्थी को जो इन्हीं छन्दों के बल पर सेनापति को भक्त सिद्ध करना चाहते हैं कवि की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन और मस्तिष्क की प्रमेय शक्ति का प्रश्रय परमावश्यक होगा।

जो जिन्दगी भर इश्क के बुतां (नारी सौन्दर्य प्रेम) से जूझता रहा उसके भक्ति भाव पूर्ण ये उद्गार 'मोमिन' के शब्दों में आखिरी वक्त की मुसलमानी नहीं तो और क्या है—

उम्र तो सारी कटी इश्के बुतां में 'मोमिन',
आखिरी वक्त में क्या खाक मुसलमां होंगे।

उनके उक्त कथनों तथा 'अब तू जरा मैं परयौ मोह पींजरा मैं, सेनापति भजु रामै से' उनका आवसरिक कौशल प्रकट होता है। कारण कि—

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धंत्यजति पण्डितः,
अर्धेनैव कुरुते कार्यम् सर्वनाशो हि दुःस्सह।

सेनापति की वृद्धावस्था की भक्ति पुराकृत शृङ्गार साधना की प्रायश्चितपूर्ण प्रतिक्रिया सी प्रतीत होती है। उनकी इस आत्मकेन्द्रित भक्ति में आत्म सन्तोष अवश्य है परन्तु उससे सर्व साधारण के 'जीवन में शक्ति, सरसता, प्रफुल्लता, पवित्रता सब कुछ प्राप्त हो सकती है' इसमें सन्देह है। 'आध्यात्मिक रंग के सस्ते चश्मे' लगानेवाले महानुभाव कहेंगे, 'All is well that ends well' मुझे उनके इस सिद्धान्त पर आपत्ति नहीं है। परन्तु इस उदार दृष्टिकोण से यदि कवियों के मानस का अध्ययन किया जाय तो रीतियुग के सभी कवि तथा आज के तथाकथित छायावादी कवि भक्तों की श्रेणी में परिगणित होंगे। किन्तु आजकल के इण्टरव्यूज में पिछले सर्टीफिकेट और सनदें देख कर मूल्य-निर्धारण होता है, अतएव निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि सेनापति का कवि शृङ्गारी पहले और भक्त बाद में है।

साहित्य-सन्देश का अगला अङ्क

कहानी विशेषाङ्क

होगा

जो ग्राहक अब हैं अथवा नये बनेंगे उन्हें यह अङ्क उनके ग्राहक शुल्क में ही दिया जायगा।

—व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रमरगीत की परम्परा में 'उद्धवशतक' का स्थान

श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, एम० ए०, सा० र०

व्यास के हृदय में जो गोपी रोती थी वह रोती रही। सूर, नन्द, रहीम, तुलसी, मतिराम, देव, बिहारी, भारतेन्दु, रत्नाकर, सत्यनारायण, मैथिलीशरण गुप्त और रसाल तक आते-आते उसके अश्रु न थमें, स्यात् प्रलेय जल के रूप में वही अश्रु परिवर्तित हो जायें।

कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत को इतना महत्व मिला। क्यों? अपनी मनोवैज्ञानिकता के कारण, वह क्या है? जो स्थल अधिक से अधिक मनोविकारों को झकझोर सकता है, काव्य के लिये वह उतना ही उपयुक्त माना जाता है। रसराज शृंगार की परम्परा में, विप्रलम्भ की महिमा रही है, वैष्णव कवियों में ज्ञान के ऊपर भक्ति व प्रेम की विजय दिखलाना एक मुख्य प्रवृत्ति ही बन गई थी, सपत्नीभाव के अभिशाप का वर्णन तथा पुरुषों की मधुवृत्ति रीतिकाल में प्रधान रही और इस प्रकार प्रत्येक युग ने अपने अनुकूल भ्रमर-गीत को ढाला किन्तु जहाँ तक आत्म-विभोरता, वियोग जनित तन्मयता या केवल संवेदना के ग्रहण का प्रश्न था वह प्रत्येक युग में सहृदय कवियों ने ग्रहण किया, भ्रमर-गीत इसीलिये कोरा वितण्डावाद नहीं बन पाया और यह साहित्य का सौभाग्य था।

सम्पूर्ण भ्रमरगीत-साहित्य को मानसिक पटल पर चित्रित कर लेने पर ही हम 'रत्नाकर' के उद्धवशतक का महत्व समझ सकते हैं क्योंकि इस लेख के विषय वही हैं। जो सूत्र भागवत से प्रारम्भ हुआ सूर ने उसे पकड़ा और विरह-काव्य का सृजन कर उस महाकवि ने इस क्षेत्र में भी प्रायः कोई कोना अछूता न छोड़ा। सूर ने ज्ञान व प्रेम दोनों पक्षों को पुष्ट किया किन्तु विरहोन्माद एवम् अश्रु सिक्त उपालम्भों द्वारा उन्होंने नारी की सुलभ-सहृदयता की शिला पर ज्ञान के गर्व को अस्वाभाविक सिद्ध किया, तत्कालीन गोरख पन्थी योगियों व गर्वोन्मत्त अद्वैतवादी दण्डी साधुओं का प्रतीक, उद्धव के रूप में खड़ा कर सूर ने प्रेम का वह अलेय प्रवाह व्रज से प्रवाहित किया कि तथाकथित तांत्रिक योग व अव्यावहारिक जटिल ज्ञान पर प्रमाभक्ति का आधिपत्य स्थापित हो गया। आगे के कवियों के लिये यही एक परम्परा बन गई किन्तु इस परम्परा-पालन के साथ-साथ सूर द्वारा स्पर्श न किये जाने वाले सूत्रों को भी कवियों ने पकड़ा इसे हम यों देख सकते हैं।

(१) सूर के कृष्ण विरह-विदग्ध अवश्य हैं परन्तु दुःख की व्याधि गोपियों के भाग में ही अधिक आई।

(२) उद्धव मौन हैं, भागवत के उद्धव के समान वे विजयी उद्धव के समान निष्काम कर्म का उपदेश नहीं देते अपितु गोरख पन्थी योग का पातंजल के योग-शास्त्र के आधार पर उपदेश देते हैं और गोपियाँ मुख्यतया इसी का खण्डन करती हैं।

(३) साहित्यिक चमत्कार की प्रवृत्ति कम, विरह-ज्वाला शवलित हृदय की करुण अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति अधिक है।

उक्त सूत्रों को आगे के कवियों ने पहचाना।

नन्ददास ने उद्धव को मौन न रख गोपी उद्धव संवाद कराया। किन्तु गोपियों की करुणा का अजस्र प्रवाह भी काव्य में अभिव्यक्त किया। फिर भी तर्क-वितर्क की दृष्टि से नन्ददास अधिक रोचक रहे, गोपी का 'रोदति वदति' रूप तो आया ही साथ ही भक्तिकाल के तर्क-शास्त्र का रूप भी उनमें मुखर हो उठा।

'गोस्वामीजी के मन में जगज्जननी सीता का निवास था अतः उनके व्यक्तित्व की छाया उनकी गोपियों पर क्यों न पड़ती। तुलसीदास की यह प्रवृत्ति गोपियों के सरल, स्निग्ध व्यक्तित्व में प्रकट हुई, न ईर्ष्या में वहाँ कर्दम है न उपालम्भों की वह प्रहारिणी शक्ति। विरह की यह कविता इसीलिये फूट कर न रो पाई और मार्मिकता का भी उसी सीमा तक अभाव रहा। किन्तु 'मर्यादा पुरुषोत्तम' का भक्त तुलसी यदि गोपी को भी मर्यादा का रूप न देता तो और कौन देता। एक स्थविर-शोति हम तभी तुलसी की गोपी में पाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहीम को विरह-विह्वल हृदय मिला था। अतः वेदना की पुञ्जीभूत ज्वाल हम रहीम की गोपी में पाते हैं। आलङ्कारिकों के चमत्कार के स्थान पर 'रहीम' ने तीव्र विरहानुभूति में गलाकर अपने प्रसिद्ध वरवै लिखे—

घेर रह्यो दिन रतियाँ-विरह बलाय।
मोहन की यह बतियाँ, ऊधौ हाय॥

'अश्रुपूर्ण तुतलाहट• रहीम ने दी।

आलङ्कारिक कवियों में हमें मतिराम, देव, बिहारी, आदि के भ्रमरगीत सम्बन्धी पद प्राप्त होते हैं। मतिराम में उनके स्वभावानुकूल अधिक सरसता है तथापि सूर व रहीम का विरह सम्बन्धी दिग्दाह यहाँ नहीं, अलङ्कारों की धूम अवश्य है, वाक् चातुर्य द्वारा अनन्त वज्रपात भी कराया गया है किन्तु न तो वस्तु की दृष्टि से कोई नवीनता है न अभिव्यक्ति की दृष्टि से। हाँ असूया भाव के लिये 'कुब्जा' जैसा पात्र प्राप्त हो जाने के कारण उपालम्भों, व्यंग्यों, कटूक्तियों के विशाल झाड़-झंखाड़ अवश्य काव्य बन में उग आते हैं। मतिराम व देव में अपेक्षाकृत सरसता है—

मनु मनिका है हरि हीका गाँठ बाँध्यो हम—
तिन्हैं तुम बनिज बतावत हौ कौड़ी को।

कूबरी सों अति सूधी बधू को—
मिल्यो वर देव जू स्याम सो सूधौ।
'देव'

पद्माकर को इस प्रसङ्ग में केवल उद्दीपन वर्णन करने की सामग्री दिखाई पड़ी। 'कुब्जा जनित ईर्ष्या' पर उनका काव्य अरण्य-रोदन करता रहा। सेनापति को श्लेष की सामग्री प्राप्त हो गई। 'दास' को अलङ्कारों के उदाहरण देने का बहाना मिला। रीतिकाल के अन्य कवियों ने भी इस प्रसङ्ग पर उन्होंने 'चावल' छोड़कर 'फटकन' को ग्रहण किया, भावछोड़ कर चमत्कार का चाव उन्हें एक ओर बहा ले गया, अस्तु।

युग के नव उन्मेष-क्षितिज पर भारतेन्दु ने अपनी कला किरण से इस करुण-प्रसङ्ग को भी रञ्जित किया—

एक जो होय तो ज्ञान सिखाइये—
कूप ही में यहाँ भाँग परी है।

सूर की विरहानुभूति-परम्परा में रीतिकाल के पश्चात भारतेन्दु ही चमके, भागवत की परास्त गोपी, सूर की रुदन्ती गोपी जैसे रीतिकाल में रोना भूल कर केवल कुब्जा विषयक ईर्ष्या के गरल में मग्न रही थी, वह दरबारी कवियों के हाथ में पड़कर जैसे 'ऊहा' के ऊहापोह में कृष्ण को भूलकर कुब्जा को गाली देने लगी थी।

भारतेन्दु में उसका प्रकट रूप पुनः प्रतिष्ठित हुआ परन्तु उसके पद 'सूर' के पदों के आगे अपना व्यक्तित्व खो बैठे। कवित्तों व सवैयों में अभिव्यक्ति की भिन्नता के कारण उसका रूप कुछ स्थिर दिखाई पड़ता है—

लोक परलोक छाँड़ि, लाज सों बदन मोरि
उघरि नची हौं तुजि संक तात मात की।

'सत्यनारायण कविरत्न' ने अब तक सूर की परम्परा को एक दूसरी दिशा में प्रवाहित कर दिया। ज्ञान व प्रेम का प्रतिद्वन्द्व, योग और भक्ति का प्रतिद्वन्द्व, गोपी व कृष्ण का प्रतिद्वन्द्व, व्रजभूमि तथा मथुरा का प्रतिद्वन्द्व जैसे विस्मृत होकर पराधीन-भारत के विकृत समाज की अभिव्यक्ति का साधन भ्रमरगीत बन कर आया। सुधार वादी भ्रम में यह स्वाभाविक था। परन्तु परम्परा से कवि सहसा हट न सका। कृष्ण के रूप में भ्रमर का प्रवेश कराना, यशोदा का विरह आदि इसके प्रमाण हैं। कवि वर्तमान की ठोकर से आहत होकर आर्तनाद कर उठा—

जदपि सकल विधि ये सहत, दारुन अत्याचार।
पै नहिं कछु मुख सों कहत, कोरे बने गँवार
कोउ अगुआ नहीं।

या—

अब की गोपी मदभरी—अधर चलें इतराय।
चार दिना की छोकरी—गई ऐसी गरबाय—

जहाँ देखो तहाँ हरिऔध के 'सूर' व 'सत्यनारायण' दोनों प्रवृत्तियों को लेकर चले। किंतु वर्तमान समय पर विचार प्रकट न कर उद्धव का आदर्श रूप रक्खा, राधा के मुख से ज्ञान की चर्चा सुन कर उद्धव राधा-पद वंदन करते हैं।

चुप हुईं इतना कह मुग्ध हो—व्रजविभूति-विभूषण राधिके।
चरण की रज ले हरिबंधु भी— परम शांति समेत विदा हुये॥

उक्त हरिऔध के उद्धव तथा भागवत के विनयी उद्धव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तुलना करिये ! कितना महान अंतर है !

गुप्तजी हरिऔध के समान आगे न बढ़कर पीछे लौटे। 'द्वापर' में गुप्तजी के उद्धव एक व्यवहार कुशल व्यक्ति के रूप में दिखाये गये हैं। यहाँ उद्धव गोपियों की प्रशंसा भी करते हैं। किंतु ज्ञान का मोह उन्हें बना हुआ है—

राधा हरि बन गई, हाय यदि हरि राधा बन जाते।
तो उद्धव, मधुवन से उलटे, तुम मधुपुर ही जाते।

'नंददास' का आधुनिक संस्करण गुप्तजी की गोपियाँ हैं, वाग्विदग्ध ! मुखर ! राधा को अवश्य गुप्तजी ने नवीन महानता दी है, सीता जैसी।

'रत्नाकर' के उद्धव शतक के पूर्व उपर्लिखित साहित्य कवि के सम्मुख था। किंतु कवि पर रीतिकाल का प्रभाव होने के कारण उसने इस प्रसंग को मौलिक रूप में लिया। सत्यनारायण, हरिऔध या गुप्त जी की तरह उसमें आनुषंगिक रूप से भी परिवर्तन नहीं किया किंतु फिर भी कवि ने नवीनता दी—

(१) कृष्ण का वियोग-वर्णन रत्नाकर ने सबसे अधिक किया। भागवतकार, सूर, नंद, आदि किसी कवि ने तुल्यानुराग पर दृष्टि न डाली थी, यों कृष्ण विरह से प्रभावित अवश्य थे परन्तु रत्नाकर के कृष्ण, गोपियों के समान ही विरह बाढ़व से पा । यमुना स्नान के समय कमल को देखकर उन्हें राधा का विस्मरण हो आ रहा है और वे मूर्च्छित हो जाते हैं। काव्य का यह उद्घाटन भी नवीन और मौलिक है। और आगे प्रायः १२ छंदों में उन्होंने कृष्ण की विरह-वेदना व्यञ्जित की है।

(२) रत्नाकर की दूसरी विशेषता है प्रबन्ध एवम् मुक्तक का सामञ्जस्य। सूर व नंद में भी केवल मुक्तक कविता है किंतु इस प्रसंग में कृष्ण का कमल को देखकर मूर्च्छित होना, उद्धव द्वारा समझाया जाना, पुनः उद्धव का ब्रज में भेजा जाना, वार्तालाप के पश्चात् पुनः उनका प्रस्थान करना आदि वर्णनों द्वारा कवि ने घटना की गम्भीरता द्वारा मनोवेगों के उद्वेलन के लिये सुगमता उत्पन्न करदी है। यही कारण है कि इस शतक में चित्रोपमता अधिक है।

(३) कवि की तीसरी विशेषता है राधा, यशोदा को गोपी-उद्धव-संवाद से दूर रखना। केवल मौन राधा बाँसुरी की भेंट उद्धव को अवश्य देती है किंतु जिह्वा नहीं खोलती। राधा व यशोदा के मन के भूकम्प को कवि ने 'घुमड़न' के रूप में ही रखा है। हम उन्हें देखते हैं और देखते ही रह जाते हैं। व्यथा का यह चित्र अनूठा है। "ता लालच न धुवावत सारी" का जो चित्र सूर ने दिया है उससे रत्नाकर का यह मौन अधिक स्पृहणीय है।

(४) हरिऔध ने कृष्ण को लोक संग्रह की धुन में— "हृदय जल रहा किंतु मुस्कराते अधर" के रूप में दिखाया है। रत्नाकर के कृष्ण त्रैलोक का राज्य छोड़ देने को प्रस्तुत हैं—'भू भार हरण' को भी ताक में रख देते हैं।

गोपी ग्वाल बालनि कौ झोंक विरहानल में—
हरी सुर बृन्द की बलाइ करि हैं कहा।

रत्नाकर के कृष्ण में 'खुमार' अधिक है 'सुधार' कम। वे "मतंग लौ मताये" हुये मध्य युग के रंगीन ईश्वर हैं।

(५) रत्नाकर की एक विशेषता है सङ्कलन बुद्धि की। कवि पर रीतिकाल का प्रभाव अधिक है, परन्तु भक्ति का आवेश उसकी रीतिकालीनता के आवरण में "जल चादर के दीप" के समान झलमलाहट छोड़ रहा है। उसमें सूर का प्रवाह, आवेग, तन्मयता, नन्ददास का तर्क और और बिहारी-पद्माकर का वाग्वैचित्र्य एवम् अलंकरण की प्रवृत्ति है, अतः उसके "काव्य कमाँच" में अलंकृति व भावुकता के दुहरे धागे हैं जिनको हम कुछ छंदों में अवश्य अलग-अलग देख सकते हैं किन्तु अधिक छन्दों में उनका सामञ्जस्य ही मिलता है। जैसे काव्य धनुष की दो कोटियाँ हों एक में भक्तिकाल की ऊब-डूब और दूसरा में रीतिकाल की शब्द मैत्री, फड़क, रूपक-श्लेषमयी अभिव्यञ्जना, बहुज्ञता, श्रमसाध्य काव्य-की पच्चीकारी एवम् वक्रोक्ति हों; और ये दो कोटियाँ मिलकर रत्नाकर के हाथ में एक होगई हों। जैसे हाथ ढीला कर देने पर दोनों कोटियाँ बड़े वेग से अलग-अलग हो जाती हैं उसी प्रकार रत्नाकर के कवित्त के विश्लेषण करने पर भक्ति व रीतिकाल दोनों अलग-अलग मुस्कराते हुये दृष्टिगोचर हो जाते हैं। जिस प्रकार धनुष की दोनों कोटियों को एक साथ पकड़ना कठिन है उसी प्रकार रत्नाकर के कवित्तों का निर्माण दुःसाध्य है। उच्च-

(शेष पृष्ठ २३१ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लजी की 'मध्यम कोटि की रसानुभूति'

प्रो० वृन्दावन विहारी अग्निहोत्री, एम० ए०

शुक्लजी के प्रमुख आलोचनात्मक निबन्धों में 'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद' नामक एक निबन्ध भी है। यह 'चिन्तामणि' के पहले भाग में है, और श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्रजी द्वारा संकलित, 'रस मीमांसा' में भी पढ़ा जा सकता है। इस लेख में जो अवतरण आदि दिये जावेंगे उनका हवाला अनुच्छेदों (पैराग्राफ) के क्रम से दिया जावेगा।

साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद पर शुक्लजी के जो प्रमुख विचार हैं उनकी परीक्षा आदि करना इस लेख का ध्येय नहीं है। परन्तु इस निबन्ध में शुक्लजी ने रसानुभूति के दो भेद माने हैं। एक को पुराना बतलाया है और दूसरे को नया और निज की ऊहापोह के फलस्वरूप प्राप्त बतलाया है। इसी रसानुभूति भेद की परीक्षा हमारा ध्येय है।

शुक्लजी का कहना है (अनुच्छेद ७) कि यदि किसी काव्यकृति में (उदाहरणतः) एक साधु एक दुष्ट की भर्त्सना करता है, तो पाठक का साधु के साथ तादात्म्य हो जाता है, अर्थात् साधु के साथ उसकी सहानुभूति बराबर चलती है। चूँकि यहाँ पाठक का तादात्म्य साधु के साथ हो जाता है इसलिए इस रसानुभूति को शुक्लजी प्रथम कोटि की रसानुभूति कहते हैं।

परन्तु यदि काव्य-कृति में एक दुष्ट मनुष्य एक साधु की निन्दा-भर्त्सना आदि करता है, तो पाठक का हृदय इस निन्दा में योग नहीं देता, उसका तादात्म्य दुष्ट के साथ नहीं होता, पाठक अपना व्यक्तित्व अलग सँभाले रहता रहता है। इस रस दशा को, जिसमें पाठक का तादात्म्य किसी भाव प्रकट करने वाले आश्रय के साथ नहीं होता, शुक्लजी एक भिन्न और मध्यम कोटि की रसानुभूति मानते हैं।

सारांश यह कि रसानुभूति की इन दो कोटियों की भिन्नता पाठक और आश्रय के सम्बन्ध पर आधारित है।

प्रस्तुत लेखक की समझ में इन दो रसानुभूतियों में प्रकार का अन्तर तो है पर इनमें से एक को, पाठक आश्रय-तादात्म्य के आधार पर, उच्च कोटि और दूसरी को मध्यम कोटि का कहना युक्तिसंगत नहीं है। इस दृष्टिकोण के कारण नीचे दिये जाते हैं।

शुक्लजी स्वयं उन आलोचकों में थे जो वास्तविक जीवन की रसानुभूति में और काव्योत्पन्न रसानुभूति में (साधारणीकरण के अतिरिक्त) कोई मौलिक भेद नहीं मानते। इसलिए उनके इस निष्कर्ष को वास्तविक जीवन की कसौटी पर कसना अन्याय न होगा।

मान लीजिये आप वास्तविक जीवन में देखते हैं कि एक साधु एक दुष्ट की भर्त्सना कर रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आपकी सहानुभूति साधु के साथ रहेगी। अब यह होता है कि वह दुष्ट साधु को गालियाँ देने लगता है। यहाँ भी स्पष्ट है कि हमारी सहानुभूति उसके साथ नहीं होगी। पहले उदाहरण में हमारे भाव होंगे—'ठीक ही तो कहता है'—इत्यादि। दूसरे उदाहरण में हमारे भाव होंगे—'क्या बेहूदा बकता है!'—इत्यादि। इन भावों को नाम देना हो तो अनुमोदन और क्रोध कह लीजिये। अब स्वयं सोच लीजिये कि क्या आप इस अनुमोदन को इस क्रोध से 'उच्च' भावना कह सकते हैं? दोनों भिन्न भावनाएँ हैं अवश्य, पर उत्तम मध्यम का निर्णय असंगत ही है।

इन दोनों भावों का साधारणीकरण कर डालिये, अर्थात् वास्तविक जीवन के बदले काव्य रख दीजिये—भाव के बदले रस—और फिर वही प्रश्न कीजिये। राम के उद्गारों के प्रति अनुमोदन और रावण के उद्गारों के प्रति क्रोध— इनमें से किसी एक को आप 'उच्च' कहेंगे तो किस मानदण्ड के जोर पर?

नैतिकता का मानदण्ड शायद किसी रस दशा को ऊँचा या नीचा मान सकता है, पर शुक्लजी इस मानदण्ड का प्रयोग नहीं कर रहे हैं। उनका कहना है कि यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठक और आश्रय का तादात्म्य हुआ तो प्रथम कोटि की रसदशा हुई और नहीं हुआ तो मध्यम कोटि की।

आशा है लेखक का दृष्टिकोण अब तक स्पष्ट हो गया होगा।

यदि शुक्लजी अपने निष्कर्ष में प्रमाद कर गये तो इसका कारण क्या था? मेरी समझ में कारण था—आश्रय को स्वतन्त्र सत्ता दे देना। यह 'आश्रय' का प्रपञ्च संस्कृत के आचार्यों का रचा हुआ है हालांकि आश्रय के रहने न रहने से रस निष्पत्ति का कुछ बनता बिगड़ता नहीं। पाठक रसानुभूति करता है पूरी परिस्थिति को अवगत करके। बिना किसी आश्रय के भी रसनिष्पत्ति होती है यह शुक्लजी जानते और मानते हैं (अनुच्छेद ८—उत्तरार्ध—'कवि ही आश्रय के रूप में रहता है'।) यदि आश्रय काव्य में नहीं होता तो कवि (और इसलिए पाठक भी) अन्त में आश्रय बन जाता है। सारांश यह कि रसनिष्पत्ति में आश्रय का होना आवश्यक नहीं है। आश्रय केवल एक साधन होता है जिसके द्वारा लेखक अपना इच्छित प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। पाठक आश्रय पर दृष्टि गड़ाकर रसानुभूति नहीं करता। वह पूरी परिस्थिति को देखता है, आश्रय जिसका एक अंग है। आश्रय में परिवर्तन होने से रसानुभूति बदलेगी, ठीक वैसे ही जैसे परिस्थिति के किसी दूसरे अंग के बदलने पर।

उदाहरण के तौर पर रोहिताश्व की मृत्यु को लीजिये। लेखक को करुण रस की सृष्टि करना है। वह चाहे तो स्वयं कह सकता है 'हा रोहिताश्व! जिस माता ने तुम्हारा मुँह जलने के डर से कभी गरम दूध नहीं पिलाया वह आज तुम्हें चिता पर कैसे रखेगी?' यहाँ प्रस्तुत आश्रय नहीं है। या शैव्या कह सकती है, 'हा पुत्र! मैंने कभी तुम्हें मुँह जलने के डर से गरम दूध नहीं पिलाया'—इत्यादि। यहाँ शैव्या आश्रय है। पाठक देखेंगे दोनों उदाहरणों की रसानुभूति में विशेष अन्तर नहीं होता। नाटक में लेखक स्वयं कुछ कह नहीं सकता इसलिए उसे यह शैव्या के मुँह से कहलवाना पड़ता है या और किसी पात्र के मुख से। पर कृति के रूप से रस में भेद नहीं होता। अस्तु।

अ-तादात्म्य का एक उदाहरण देते हुए शुक्लजी ने कहा है (अनुच्छेद २) कि यदि कोई पात्र किसी कुरूप स्त्री पर प्रेम करता है तो उस कुरूप स्त्री के वर्णन से शृङ्गार रस का आलम्बन नहीं खड़ा हो सकता। बात ठीक है, पर मैं इसे मध्यम कोटि की रसानुभूति न कहूँगा। यहाँ शृंगार रस की निष्पत्ति चाहता ही कौन है। लेखक स्पष्ट ही वीभत्स या हास्य आदि की सृष्टि करना चाहता है। इसीलिए उसने इस परिस्थिति का निर्माण किया है। 'यहाँ पर अमुक रस नहीं है, इसलिए मध्यम कोटि की रसानुभूति हुई,'—यह कहना जबर्दस्ती का ठेंगा है। और ऐसा कहना (अनुच्छेद २) कि 'ऐसा काव्य केवल भाव प्रदर्शक हो सकता है, भाव-विधायक नहीं'—यह भूल जाना है कि यह काव्य यदि शृङ्गार-विभाग का विधान नहीं कर रहा है तो हास्य या वीभत्स आदि के विभाव का विधान कर रहा है और शायद खूब कर रहा है।

आगे चल कर शुक्लजी इसी सम्बन्ध में 'अपरितोष' का प्रसङ्ग उठाते हैं (अनुच्छेद ८) 'आश्रय कि जिस भाव व्यञ्जना को श्रोता या पाठक कुछ भी अपना न सकेगा उसका ग्रहण केवल शील वैचित्र्य के रूप में होगा और उसके द्वारा घृणा, विरक्ति, अश्रद्धा, क्रोध, आश्चर्य, कुतूहल इत्यादि में से कोई भाव उत्पन्न हो कर अपरितुष्ट दशा में रह जायगा।' विवेचन बिलकुल ठीक है, पर इस वाक्य से ध्वनि यह निकलती है कि भावों का उत्पन्न होकर परितुष्ट होना काव्य की सफलता के लिए आवश्यक है। यहाँ पर मुझे दुःखान्त कृतियों की ओर ध्यान आकर्षित करना है। इस विषय में अभी अधिक न लिख कर केवल यह निवेदन करना चाहता हूँ कि दुःखान्त काव्य (जो अनेक विज्ञ जनों द्वारा काव्य का उत्कृष्ट रूप माना गया है) का ध्येय यही होता है कि भय, करुणा, आदि भावनाओं को उभार कर अपरितुष्ट दशा में छोड़ दिया जाय। इसीलिए दुःखान्त नाटक में अन्याय आदि की विजय होती है। तात्पर्य यह कि लेखक की इच्छा पर है कि वह उभरी भावनाओं का परितोष करे या न करे।

प्रस्तुत लेख का दृष्टिकोण शुक्लजी की दृष्टि से बिलकुल छूट गया हो यह बात नहीं। उन जैसे आलोचक से ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो नहीं सकता था। वे स्वयं कहते हैं (अनुच्छेद ८) इस दशा में भी एक प्रकार तादात्म्य और साधारणीकरण होता है। तादात्म्य कवि के उस अव्यक्त भाव के साथ होता है जिसके अनुरूप वह पात्र का स्वरूप संघटित करता है'— इत्यादि। मेरा निवेदन है कि यही साधारणीकरण और तादात्म्य काव्यानुभव की मुख्य वस्तु है। यही लेखक और पाठक का ध्येय रहती है। यही काव्यानुभव की अन्तिम सीढ़ी रहती है। यहीं पर रस निष्पत्ति होती है। इसके पहले की सीढ़ियों पर तादात्म्य न हुआ तो इसका अर्थ है कि लेखक का इच्छित प्रभाव अभी आया नहीं, उसके साधन जुटाये जा रहे हैं। पर शुक्लजी इस अन्तिम सीढ़ी को गौणत्व दे देते हैं। आठवां अनुच्छेद पढ़कर देखिये— 'थोड़ा बहुत', 'एक प्रकार का' आदि वाक्यांशों का क्या प्रयोजन है यह समझना मुश्किल है।

निष्कर्ष यह है कि चूंकि आश्रय काव्य का केवल एक अङ्ग ही है, इसलिए उसके और पाठक के तादात्म्य के आधार पर, काव्यानुभव की अन्तिम दशा रस निष्पत्ति— (कवि-आश्रय और पाठक का तादात्म्य) आने के पहले ही, रस दशा का वर्गीकरण करने लगना, संचारीभाव को स्थायीभावी मान कर आलोचना करने के बराबर है। जब कवि का आशय पूरा प्रकट नहीं हो पाया तभी उसकी श्रेणी की चिन्ता करना ठीक नहीं।

(पृष्ठ २२८ का शेष)

कोटि की साधना से ही बाह्य कला का इतना उत्कर्ष आ सकता है। सूर के समान वह केवल भाव-तरङ्गों की अभिव्यक्ति नहीं हैं अपितु उसमें एक सजग कलाकार के श्रम की भी करामात है।

उद्धवशतक भ्रमरगीत-साहित्य का रत्न है। इसमें मुक्तक में प्रबन्ध और प्रबन्ध में मुक्तक है। ब्रजभाषा का अत्यन्त साहित्यिक रूप उसमें दर्शित है। सांग रूपकों का वहाँ चमत्कार है; गोपियों के तर्कों व चेष्टाओं में बिहारी की वाग्विदग्धता एवम् अनुभव योजना भी नत हो जाती है, पदावली के प्रयोग में पद्माकर व देव विस्मृत से लगने लगते हैं। बुद्धिवादिता की दृष्टि से कई प्रयोग नवीन हुये हैं यद्यपि 'स्प्रिट' प्राचीन है और सब के अन्तर-स्थित भाव की वह अविच्छिन्न धारा है जिसमें डुबकी लगा लेने पर प्रत्येक अलङ्कार, प्रत्येक चमत्कारमयी युक्ति, प्रत्येक व्यञ्जना हमें शतशत संवेदनों को लपेट में बद्ध कर देती है। काव्य पुरुष के समान ही 'उद्धवशतक' की आत्मा रस है, शरीर शब्द और अर्थ, तथा अलङ्कार आभूषण। भागवत का विन्दु जो सूर ने सागर में परिवर्तित कर दिया था और जो रीतिकाल में शुष्क हो गया था, 'भारतेन्दु' की ज्योत्सना में रत्नाकर के रूप में पुनः लहरा उठा है।

(पृष्ठ २३७ का शेषांश)

करने की इजाजत है, उतनी या उससे कुछ ज्यादा रांगेय-राघव ने की है। अगर पं० सोहनलाल द्विवेदी के लिए गौतम बुद्ध का जन्मस्थान पाटलिपुत्र हो सकता है, तो रांगेय राघव के लिए करुणा का सन्देश सुनकर फासिस्टों के हाथ से हथियार छूटना क्यों नामुमकिन है।

२—रांगेय राघव की रचना उद्धृत कर वे लिखते हैं— "छन्द रचना की यह माचवे शैली है। श्री प्रभाकर माचवे ने इस शैली में सबसे ज्यादा रचना की हैं फुटे से नापकर मानों हाँसिए खींच दिए गए हों। पँक्तियाँ लड़खड़ाती हुई चलती हैं और एक बार उनसे आगे निकल जाने पर पाठक का मन यह नहीं करता कि उन्हें फिर अपने पास फटकने दे।

साहित्य के सम्बन्ध में उनका सबसे बड़ा आग्रह उसके साहित्य होने का है। प्रगति और परम्परा में प्रगतिशील साहित्य पर अमृत द्वारा उठाए गए ७ प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने प्रगतिशील साहित्य को पहिले साहित्य होने की माँग की है। पन्त की समीक्षा में उन्होंने पन्त के परवर्त्ती काव्य की कलाहीनता पर विशेष प्रकाश डाला है। रांगेय राघव तथा माचवे प्रभृति कवियों द्वारा मुक्तछन्द की खींच-

(शेष पृष्ठ २३५ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन का आधारभूत प्रवृत्तियाँ

प्रा० कृष्णनन्दन प्रसाद 'आंभलाषा' एम० ए०

साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है और जीवन संस्कृति और परिस्थितियों की सूक्ष्म प्रतिक्रिया। जीवन-धारा को मोड़ने वाली ये परिस्थितियां अनेक हैं। इनमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ प्रधान हैं। साहित्य निर्माण के मूल में इन पस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ रहता है। ये ही जैन रुचि को परिवर्तित और परिवर्द्धित करती रहती हैं। अतएव जिस कालखंड में जिस परिस्थिति विशेष की प्रबलता और प्रचुरता रहती है—उस कालखंड में उसी प्रकृति के साहित्य का निर्माण होता है। हिन्दी साहित्य के प्रमुख इतिहासकारों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन प्रधानतः इसी तथ्य को ध्यान में रखकर किया है। इनमें मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास, आचार्य शुक्ल तथा रामकुमार वर्मा अति प्रसिद्ध हैं।

इनके कुछ अपने अलग सिद्धान्त भी हैं जिनके कारण कालखंडों की संख्या, उनके नामकरण तथा काल-निर्णय में स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। यही कारण है कि जहाँ श्यामसुन्दरदास तथा आचार्य शुक्ल के इतिहास में हमें प्रधानतः चार खंड—वीर गाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल देखने को मिलते हैं, वहाँ रामकुमार वर्मा के इतिहास में 'संधि-काल' से युक्त पाँच खंड दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि शुक्लजी के इतिहास में इस नाम का कोई काल खंड नहीं है, परन्तु उनका 'अपभ्रंश काल' वही काम करता है जो 'संधि काल' करता है। मिश्रबन्धुओं को पाँच से सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए इसकी संख्या उन्होंने पाँच से नौ कर दी। किन्तु बाद में जब उन्हें ध्यान आया तब प्रथम तीन भागों को 'आदि प्रकरण' के अन्तर्गत रख कर उसकी संख्या उन्होंने सात कर दी। 'वीर गाथा काल' इसी में समाविष्ट हो गया। पर यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो उसके 'पूर्वालंकृतकाल' और 'उत्तरालंकृत काल' को बिना किसी अनौचित्य के रीतिकाल के भीतर रख सकते हैं; और तब उसकी संख्या एक और घटकर छः रह जायगी। इनमें दो नवीन तथा अनावश्यक खंड हैं एक का नाम है 'अज्ञात-काल' और दूसरे का 'परिवर्तन काल'। 'अज्ञात काल' के विषय में ये स्वयं लिखते हैं 'अज्ञात-प्रकरण' इतिहास ग्रन्थों में होता ही नहीं और हमारे यहाँ भी नहीं होना चाहिए था, परन्तु हिन्दी में चरित्र-वर्णन की कमी से बहुतेरे लेखकों का पता नहीं चलता। यदि केवल इतिहास-ग्रन्थ लिखते होते तो हम इस प्रकरण को नहीं लिखते, परन्तु हमारा विचार तथा साहस कुल प्राचीन कवियों के नाम लिखने का है; इसलिए अज्ञात समय वाले रचयिताओं का भी कथन कर दिया गया है। इसी प्रकार 'परिवर्तनकाल' के विषय में लिखते हैं—

'परिवर्तन-प्रकरण' में ३ अध्यायों द्वारा उस समय का हाल कहा गया है जबकि यूरोपीय संघर्ष से उत्पन्न नवीन विचार हिन्दी में स्थान पाने का प्रयत्न कर रहे थे।" शेष दो काल के नाम हैं 'प्रौढ़ माध्यमिक काल' (भक्ति काल) और 'वर्तमान काल'।

इसी प्रकार काल-निर्णय में भी विभिन्नता देखने को मिलती है। जहां रामकुमार वर्मा का 'संधि काल' संवत् ७५० से आरंभ होकर संवत् १००० में समाप्त होता है। वहाँ 'मिश्रबन्धु-विनोद' का 'आदि प्रकरण' संवत् ७०० से संवत् १४६० तक चलता है। शुक्लजी का 'अपभ्रंशकाल' समय के बन्धन से मुक्त है, और श्यामसुन्दरदास ने तो अपनी पुस्तक को ही इस प्रकरण से मुक्त रक्खा है। 'वीर गाथा काल' का समय वर्माजी के ग्रन्थ मे संवत् १००० से से सवत् १३७५ तक, शुक्लजी के इतिहास में संवत् १०५० से संवत् १३७५ तक और श्यामसुन्दरदास की पुस्तक में संवत् १०५० से संवत् १४०० तक माना गया है। भक्तिकाल वर्माजी और शुक्लजी दोनों के मतानुसार संवत् १३७५ से आरंभ होकर संवत् १७०० में समाप्त होता है। किन्तु श्यामसुन्दरदास के ग्रन्थ में इसका समय संवत् १४०० से १७०० तक दिया है। और मिश्र बन्धुओं का 'प्रौढ़ माध्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिक काल' संवत् १५६१ से संवत् १६२० तक चलता है। रीतिकाल के विषय में रामकुमार वर्मा, श्यामसुन्दरदास तथा आचार्य शुक्ल तीनों एक दूसरे से सहमत हैं। उनके अनुसार यह काल खंड संवत् १७०० में आरंभ होकर संवत् १९०० में समाप्त होता है। किन्तु मिश्रबन्धु विनोद में इसका समय संवत् १६२१ से १८८९ तक लिखा है। 'आधुनिक काल' का आरंभ उपरोक्त तीनों विद्वान् संवत् १९०० से मानते हैं। परन्तु मिश्रबन्धुओं के मतानुसार इसका श्रीगणेश संवत् १८९० में ही हो जाता है।

यहाँ तक तो काल-वैचित्र्य पर विचार किया गया, अब थोड़ा काल विभाजन के सिद्धान्त पर भी विचार किया जाय। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास का काल-विभाजन दो सिद्धान्तों के आधार पर किया है। उन्हीं के शब्दों में वे इस प्रकार हैं—

'जिस काल खंड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखायी पड़ी है वह एक अलग काल मान लिया गया है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया गया है·····किसी एक ढंग की रचना की प्रचुरता से अभिप्राय यह है कि शेष दूसरे ढंग की रचनाओं में से चाहे किसी (एक) ढंग की रचना को लें वह परिमाण में प्रथम के बराबर न होगी; यह नहीं कि और सब ढंग की रचनाएँ मिलकर भी उनके बराबर न होंगी।····· दूसरी बात है ग्रन्थों की प्रसिद्धि। किसी काल के भीतर जिस एक ही ढंग के बहुत अधिक ग्रन्थ प्रसिद्ध चले आते हैं उस ढंग की रचना उस काल के लक्षण के अंतर्गत मानी जायगी, चाहे और दूसरे ढग की अप्रसिद्ध और साधारण कोटि की बहुत-सी पुस्तकें भी इधर-उधर कोनों में पड़ी मिल जाया करें।' भक्तिकाल की ओर संकेत करते हुए वे आगे लिखते हैं—'एक ही काल और एक ही कोटि की रचना के भीतर जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की परम्पराएँ चली हुई पाई गई हैं वहाँ अलग शाखाएँ करके सामग्री का विभाग किया गया है'—वक्तव्य से।

काल विभाजन के सम्बन्ध मे रामकुमार वर्मा और श्यामसुन्दरदास के सिद्धान्त बहुत कुछ एक से हैं। इन्होंने काल-विशेष की परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप किसी विशेष लक्षण या प्रकृति को अपनाकर उस काल खंड का नामकरण किया है। इस विषय में वर्माजी की दृष्टि राजनैतिक परिवर्तन की ओर अधिक रही है। आदि काल का नाम जो उन्होंने 'संधिकाल' रक्खा है उसके मूल में तत्कालीन सांस्कृतिक एवं धार्मिक-स्थिति का सम्मिश्रण है। संधि का अर्थ है संयोग अथवा मिलन या जोड़। वह युग दो धर्म (वैदिक और बौद्ध धर्म) और दो भाषाओं (अपभ्रंश) और प्राचीन हिन्दी का संधि युग था। अतः इसका नामकरण यथार्थ और तर्कपूर्ण है।

इस दृष्टि से जब हम 'मिश्रबन्धु विनोद' पर विचार करते हैं तब इसका काल विभाजन दोषपूर्ण जान पड़ता है। इसका प्रधान कारण यह है कि इसके लिखने का उद्देश्य केवल प्राचीन कवियों की 'नामावली' तैयार करना था, इतिहास लिखना नहीं। परन्तु 'हिन्दी साहित्य का विवेचन करने में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि किसी विशेष समय में लोगों में रुचि विशेष का संचार और पोषण किधर से और किस प्रकार हुआ।'—आचार्य शुक्ल। प्रस्तुत पुस्तक में इन बातों पर ध्यान नहीं दिया गया है। 'विनोद' में इन तथ्यों का समावेश कैसे संभव था। रीतिकाल का विभाजन कितना दोषपूर्ण है, इसकी ओर संकेत करते हुए शुक्लजी लिखते हैं—

'रीतिकाल के भीतर रीतिबद्ध रचना की जो परंपरा चली है उसका उपभोग करने का कोई संगत आधार मुझे नहीं मिला। रचना के स्वरूप आदि में से स्पष्ट भेद निरूपित किए बिना विभाग कैसे किया जा सकता है? किसी काल विस्तार को लेकर यों ही पूर्व और उत्तर नाम देकर दो हिस्से कर डालना ऐतिहासिक विभाग नहीं कहला सकता ····· इस काल से कवियों के परिचयात्मक वृत्तों की छानबीन में मैं अधिक नहीं प्रवृत्त हुआ हूँ, क्योंकि मेरा उद्देश्य अपने साहित्य के इतिहास का एक पक्का और व्यवस्थित ढाँचा खड़ा करना था, न कि कवि-कीर्तन करना'—वक्तव्य पृ. ५।

एक बात और है। 'मिश्रबन्धु-विनोद' में जिसे शुक्लजी इतिहास न कहकर 'कवि-कृत संग्रह' कहते हैं—जहां परिस्थिति और प्रवृत्ति के आधार पर कालखण्डों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामकरण हुआ है, वहाँ कवि-विशेष के नाम पर भी कुछ कालखंडों का नामकरण हुआ है। उदाहरण के लिए सेनापतिकाल, बिहारीकाल, भूषणकाल, देव-काल आदि लिये जा सकते हैं। इतना ही नहीं, वरन् प्रत्येक कवि काल के भीतर उस प्रवृत्ति के कई कवि रखे गये हैं; जैसे सेनापति-काल (संवत् १६८१ से १७०६) के भीतर ध्रुवदास, चतुर्भुजदास, सदानन्द, तोष, आदि के नाम गिनाये गये हैं। इसी प्रकार बिहारी काल (संवत् १७०७-१७२०) में नरहरिदास, प्राणनाथ, मतिराम आदि समाविष्ट हैं।

काल विभाजन के सिद्धान्तों के विवेचन के पश्चात् उसकी दो महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक है। इनमें पहली बात यह है कि काल-विभाग से 'हमारा यह आशय नहीं कि एक काल के समाप्त होते ही काव्य-धारा दूसरे दिन से ही दूसरी दिशा में बहने लगी ··· ऐसा समझना तो मानो साहित्य को गणितशास्त्र की श्रेणी में मान लेना होगा' (श्यामसुन्दरदास : पृ० १६३)। दूसरी बात की ओर संकेत करते हुए शुक्लजी लिखते हैं—'यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष-प्रकृति के अनुसार ही इनका नामकरण किया गया है, परन्तु यह न समझना चाहिए किसी काल में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थी। जैसे भक्तिकाल या रीतिकाल को लें तो उसमें वीर रस के अनेक काव्य मिलेंगे जिनमें वीर राजाओं की प्रशंसा उसी ढङ्ग की होगी जिस ढङ्ग की गाथा-काल में हुआ करती थी'। पृ० ३

इस सिद्धान्त की तीव्र आलोचना करते हुए डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने पहली जुलाई सन् १९५१ के 'आर्यावर्त्त' में प्रकाशित अपने लेख—'हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा' में लिखा है—

"तुलनात्मक प्रक्रिया के अभाव के कारण अभी तक हम रामचन्द्र शुक्ल के राज में 'आदिकाल', 'भक्तिकाल', 'रीतिकाल' आदि की लकीर पीटा करते हैं·····भारतीय साहित्य के आदि युग से अब तक कोई भी ऐसा काल नहीं रहा है और उसमें कोई भी ऐसी भाषा नहीं रही है जिसमें भक्ति रस का साहित्य नहीं निर्मित हुआ। दक्षिण में ईस्वी सदी के प्रारम्भ में ही अन्याल आदि ने भक्ति के सुन्दर पद रचे हैं और फिर ८ वीं ९ वीं शताब्दी में जब शंकर और कुमारिल ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक को अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की स्वर-लहरी से स्पन्दित-प्रति-स्पन्दित कर दिया तो क्या उस युग को भक्तियुग नहीं कहेंगे ? और तथाकथित रीतिकाल में, जो दादू, मलूक, तुलसी, साहब आदि ने निर्गुण भक्ति की शत-सहस्र रचनाएँ कीं, क्या उनको देख कर हम शुतुर्मुर्ग के समान आँखें बन्द कर लें ! और फिर जब तुलसी और सूर अपनी भक्ति के पद गा रहे थे तब क्या मुगल दरबारों में शृङ्गार की नग्न शायरी नहीं हो रही थी।'

इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि यदि ब्रह्मचारी जी शुक्लजी की उपरोक्त पंक्तियों को पढ़े होते तो शायद ऐसा लिखने का साहस नहीं करते।

यहाँ तक तो हिन्दी साहित्य के इतिहास का विभाजन कैसे हुआ—इसकी चर्चा हुई। अब थोड़ा इस पर भी विचार कर लेना चाहिए कि इसका विभाजन कैसे होना चाहिए और कैसे हो सकता है। इसके कई रूप हो सकते हैं। तुलनात्मक दृष्टिकोण भी उनमें एक है जिसकी ओर ब्रह्मचारीजी ने संकेत किया है। देश और विदेश की विभिन्न भाषाओं के विभिन्न साहित्य के विकास क्रम से तुलना करते हुए हिन्दी साहित्य का विकास क्रम दिखाया जा सकता है। जो वास्तव में सुन्दर और लाभदायक होगा।

दूसरा दृष्टिकोण भाषागत हो सकता है। जिस काव्य-खण्ड में जिस भाषा की प्रधानता रही है—उस काव्य-खण्ड को उसी नाम से पुकार सकते हैं। उदाहरण स्वरूप आदि युग या संधि-काल में अपभ्रंश भाषा से मिश्रित पुरानी हिन्दी में साहित्य का निर्माण हुआ है। इस काव्य को हम 'प्राचीन हिन्दी काल' कह सकते हैं। इसी तरह 'वीर-गाथा काल' को 'डिंगल साहित्य काल'; भक्ति काल को 'सधुक्कड़ी साहित्य काल', 'ब्रज-साहित्य काल', अवधी साहित्य काल; रीति-काल को ब्रज तथा खड़ी बोली का साहित्य काल तथा वर्तमान काल को 'खड़ी बोली का साहित्य काल' कह सकते हैं।

अँगरेजी साहित्य का विभाजन कभी राजा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधानता पर हुआ है और कभी व्यक्ति की प्रधानता पर। उदाहरण-स्वरूप उस साहित्य में जहाँ हमें 'विक्टोरियन ऐज' (Victorian Age) देखने को मिलता है, वहीं 'शेक्सपीयरिन ऐज' (Shakespearian Age) भी दृष्टिगत होता है। हमारे साहित्य में व्यक्ति की प्रधानता तो देखने में आती है—पर राजाओं की प्रधानता नजर नहीं आती। यही कारण है कि जहाँ 'भारतेन्दु-युग' 'द्विवेदी-युग' आदि का निर्माण हुआ है—वहाँ किसी राजा के नाम पर कोई काव्य-खण्ड नहीं बना।

साहित्यिक वादों के आधार पर भी साहित्य के इतिहास का विभाजन होता है। अँगरेजी साहित्य के 'क्लासिकल ऐज' (Classical Age) तथा 'रोमांटिक ऐज' (Romantic Age) इसके प्रमाण हैं। हिन्दी साहित्य में भी वादों की भरमार है जिनके आधार पर उसके इतिहास का विभाजन सहज ही संभव है।

साहित्यिक रूपों (Forms) के आधार पर भी किसी साहित्य का विकास क्रम बताया जा सकता है। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, निबन्ध आदि इसके अनेक रूप हैं। इनमें से यदि प्रत्येक को अलग अलग लेकर उनका उत्थान और पतन, उद्भव और विकास दिखाया जाय तो उस साहित्य का पूरा-पूरा ज्ञान सहज ही में उपलब्ध हो सकता है। अतः हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों की दृष्टि इस ओर जाना नितान्त आवश्यक है।

साहित्यिक-प्रवृत्तियाँ भी साहित्य के इतिहास के विभाजन का आधार बन सकती हैं। ये प्रवृत्तियाँ ही, जैसा कि आरम्भ में ही लिखा जा चुका है, साहित्य के मूल में निहित हैं। अतः उनके आधार पर उसका विभाजन उचित ही है। मानव प्रवृत्तियाँ भी अनेक हैं जिनमें शृङ्गार, भक्ति, वीर आदि प्रसिद्ध हैं। इनके आधार पर शृङ्गार-परक साहित्य अथवा धर्म परक साहित्य का इतिहास तैयार किया जा सकता है, जिससे किसी विशेष भावना का समुचित ज्ञान प्राप्त होगा। उदाहरण के लिए राम-काव्य को लें। इस राम-काव्य के मूल में निहित राम के प्रति प्रेम और श्रद्धा की भावना का आरम्भ कब, कैसे और क्यों हुआ, तथा उसका विकास क्रम किन कठिन परिस्थितियों से होड़ लेता हुआ आगे बढ़ा। इसी प्रकार रीतिकालीन शृङ्गारिक कविताओं के इतिहास के लिए हमें साहित्य के आदि युग में छान-बीन करनी होगी जहाँ सिद्ध-साहित्य में इसका बीज छिपा है।

सौभाग्यवश हमारा साहित्य नित्य-प्रति बड़े तीव्र वेग से आगे बढ़ता जा रहा है। अतः शीघ्र ही इसका लेखा-जोखा रख लेना आवश्यक है नहीं तो समय बीत जाने पर सम्भव है—बातें धुँधली पड़ जायँ।

(पृष्ठ २३१ का शेषांश)

तान कर कविता की चीरफाड़ करने की प्रवृत्ति की उन्होंने भर्त्सना की है।

परन्तु रामविलास भी इस कलात्मक ह्रास का कारण सामाजिक ही मानते हैं और उसका उत्तरदायित्व लेखक अविकसित चेतना का मानते हैं।

परन्तु एक सिद्धान्तप्रिय और ईमानदार आलोचक के नाते यह बात रामविलासजी के विचारों से मेल नहीं खाती। वे इस प्रवृत्ति को साहित्य और समाज के लिए घातक पतनकारी मानते हैं—और इसके कट्टर विरोधी हैं इसीलिए अपनी आलोचना का आधार वे मार्क्सवाद के उस महान् जीवन-दर्शन को मानते हैं जो मानवता की प्रगति का महान मन्त्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्क्सीय सौन्दर्यशास्त्र के भारतीय व्याख्याता डा० रामविलास शर्मा

श्री रामेश्वर शर्मा

हिन्दी के सुधी समीक्षकों में आज डा० रामविलास जी का क्या स्थान है—यह कहने की आवश्यकता साहित्य के अध्येताओं तथा मर्मी-विद्वानों के सन्मुख नहीं रही है। हिन्दी के युग-प्रवर्त्तक कला समीक्षक के रूप में आज न केवल हिन्दी जगत वरन् बाहर के देश भी उनसे परिचित हैं।

रामविलासजी की आलोचना का मानदण्ड मार्क्सवादी आलोचना का है। मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्र कला के वर्गीय रूप की व्याख्या करता है—और उसे जीवन की द्वन्द्वात्मक उद्भूति मानता है। प्रगति विरोधियों की ओर से इस समीक्षा प्रणाली पर यह आरोप किया जाता है कि वह एक साथ पाश्चात्य सिद्धान्तों को कला पर लागू करती है तथा वह साहित्य में वस्तु पक्ष पर अधिक तथा काव्य के बहिरङ्ग पक्ष को कम महत्व देती है। इस सम्बन्ध में रामविलास जी के समीक्षा ग्रंथ सभी तर्कों के उत्तर हैं। हिन्दी में मार्क्सीय कला समीक्षा का कौनसा रूप प्रस्तुत हुआ है—यह मानने के लिए डा० रामविलास के ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक तथा अनिवार्य है। उन्होंने मार्क्सीय आलोचना प्रणाली का भारतीय रूप अपनी व्यवहारिक आलोचनाओं में प्रस्तुत किया है। वे मार्क्सीय सौन्दर्य शास्त्र के भारतीय व्याख्याता हैं। रामविलास जी जातीय जीवन की चेतना को कला का प्राण मानते हैं। प्रतापनारायण मिश्र और आधुनिक कवियों की भाषा की तुलना करते हुए वे लिखते हैं—"प्रतापनारायण मिश्र जैसे लेखक धड़ल्ले से ग्रामीण प्रयोगों को अपनाते थे""उनकी भाषा मालुम होता है, बैसवाड़े की धूलि में खेली है; आज के लेखकों की भाषा मालुम होता है मुँह में क्रीम लगा कर आई है।" उन्हें भारत की, अवध की मिट्टी से अपार स्नेह है। धूलि में लेटी हुई भाषा ही हमारे सही जीवन के निकट है।

वे साहित्य को एक महान सामूहिक चेतना मानते हैं। उनका मत है कि साहित्य एक विराट सामूहिक प्रयत्न है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि हमारे प्राचीन आचार्यों ने साहित्य की आलोचना के लिए जिन सिद्धान्तों की स्थापना की थी वे आज के साहित्य का मूल्यांकन करने में सक्षम नहीं हैं। साहित्य आगे बढ़ता है—क्योंकि परिवर्तन-शीलता जीवन का महान नियम है।

कुछ विचारकों का मत है कि मार्क्सीय कला-समीक्षा के साथ फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र का सम्बन्ध जोड़ा जाए—ताकि एक अत्यन्त पूर्ण, सन्तुलित तथा व्यापक दृष्टि वाली समीक्षा पद्धति का निर्माण हो सके। उनके विचार से मार्क्सवाद मनुष्य के केवल सामूहिक रूप का विश्लेषण करता है और मनोविश्लेषण शास्त्र उसके अंतर्मन का। दोनों ही एक सूत्र के दो छोर हैं। ऐसे विचारक 'नीम हकीम खतरे जान' की तरह का एक ऊपरी नुक्शा बता कर अपने को विशेष सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। रामविलासजी इस नए गठबन्धन के विरोधी हैं और ऐसा किसी संकीर्णता के कारण नहीं; वरन् वे इस प्रकार के गठबन्धन को मौलिक रूप से असंगत मानते हैं। इस प्रकार के मेल को वे दर्शन-शास्त्र में ठगविद्या मिलाने की बात मानते हैं। फ्रायडियन मनोविज्ञान आज विगतयुग की वस्तु हो गया है—आधुनिक मनोविज्ञान के निष्कर्ष उसके थोथेपन को अच्छी तरह सिद्ध कर चुके हैं। गलती तो लोग यह करते हैं कि मनोविश्लेषण शास्त्र को ही मनोविज्ञान समझने लगते हैं। मार्क्सवाद को मनोविश्लेषण शास्त्र से असंपृक्त मानना मनोविज्ञान का निषेध नहीं है। वरन् मार्क्सवाद के सर्वहारा-दर्शन को पूँजीपतियों के नकली मनोविज्ञान से बचाना है—जो मनोविज्ञान तो नहीं बुर्जुआ वर्ग की रक्षा का नया हथियार है। हिन्दी के मनोविश्लेषणवादी आलोचक डा० नगेन्द्र की समीक्षा करते हुए रामविलासजी ने उनकी आलोचना की जो असंगतियाँ बतलाई वे इस पद्धति की अवैज्ञानिकता को सिद्ध करती हैं।

रामविलासजी की आलोचना का सबसे बड़ा माध्यम है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी तर्कशीलता। वे जो कुछ स्थापना करना चाहते हैं—उसके लिए वे अनेक युक्तियों से अपने तर्क को पुष्ट करते हैं। अपने कथन की पुष्टि के लिए दिए गए तर्क की अकाट्यता असंदिग्ध है—जिसके कारण वे प्रति पक्षी को भी अपनी बात मनवाने में सफल होते हैं। सर्व श्री राहुल सांकृत्यायन, भगवतीचरण वर्मा, सुमित्रानंदन पन्त, रांगेयराघव, शिवदानसिंह चौहान, दिनकर, बाबू गुलाबराय (रस सिद्धान्त और आधुनिक हिन्दी साहित्य) डा० नगेन्द्र, शरदचन्द्र, यशपाल आदि पर लिखी गई समीक्षाएँ—उनकी अमोघ तर्कशीलता को प्रकट करती हैं।

शर्माजी की आलोचना की दूसरा विशेषता है—उनकी व्यङ्गात्मकता। एक तीखे और तिलमिलाते हुए व्यङ्ग के द्वारा वे प्रतिपाद्य विषय को और भी अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावपूर्ण बना देते हैं।

यह व्यङ्ग विपक्षी के हृदय पर तीखे तीर की तरह लगता है। पुष्ट तर्कों द्वारा विषय को पाठक के गले तक उतार देने के बाद वे व्यङ्ग के द्वारा आक्रमण कर थोड़े हास्य की सृष्टि भी कर देते हैं। इसीलिए उनकी आलोचना कहीं भी मन को उबा देने वाली नहीं होती—वरन् उसमें एक अनूठी सरसता मौजूद रहती है जो आनन्द की सृष्टि करने के साथ ही पाठक को एक नए जीवन दर्शन की प्रेरणा प्रदान करती है।

अपने तर्कों की क्रमबद्धता के द्वारा वे पाठक को रचना के ध्येय तक ऐसे औत्सुक्य पूर्ण ढङ्ग से ले जाते हैं कि प्राप्त निष्कर्षों से पाठक सहज ही सहमत हो जाता है। उनके तर्क कार्य कारण श्रृङ्खला से उद्भूत ध्येय की एक सूचना में ग्रथित तथा अपनी बौद्धिक संगति से वजनदार होते हैं। डा० नगेन्द्र द्वारा साधारणीकरण की जो नई व्याख्या की गई उसके अनुसार डा० नगेन्द्र का मत है कि साधारणीकरण आलम्बन, आश्रय आदि का न होकर कवि की अनुभूति का होता है। सहृदय सामाजिक (पाठक) कवि की अनुभूति के साथ तादात्म्य करता है। रामविलास ज इस कथन की असत्यता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—कि यदि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होता है तो क्या हिटलर के प्रति श्रद्धाभाव से लिखी किसी फासिस्ट कवि की भावना से डा० नगेन्द्र तादात्म्य करेंगे? क्या उस अनुभूति से तादात्म्य कर डा० नगेन्द्र फासिस्ट हिटलर के प्रति श्रद्धा की अनुभूति का भावन करेंगे। रामविलास जी के इस तर्क की छाया में यदि हम कहें कि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होता है तो क्या डा० नगेन्द्र गोडसे (नाथूराम विनायक गोडसे) के प्रति लिखी गई किसी हिन्दू सभाई कवि की अनुभूति से तादात्म्य स्थापित करेंगे? वस्तुतः साधारणीकरण का सिद्धान्त समाज निरपेक्ष नहीं है। हमारे आचार्यों ने भी उसका जो विवेचन किया है—वह रूपकों को लेकर हुआ है—जिसमें पाठक का महत्वपूर्ण स्थान है। साथ ही नायक के प्रति संस्कार रूप में अवस्थित लोक-श्रद्धा भी एक महत्त्वपूर्ण वस्तु रही है।

रामविलासजी पर गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरित मानस का अत्यधिक प्रभाव है।

युग की परिवर्त्तित वास्तविकताओं के प्रकाश में तुलसीदास के सामाजिक महत्व की प्रतिष्ठा का श्रेय रामविलासजी को ही है। आधुनिक आलोचकों में वे ही एक ऐसे समीक्षक हैं—जिन्होंने तुलसीदास की वाहिर गामी परम्परा को युग जीवन के प्रकाश में देखा तथा उसे विकसित करने के लिए साहित्यकारों का आह्वान किया है। तुलसीदास द्वारा अभिव्यक्त जीवन संघर्ष की भावना को भारतीय जनता की चेतना करते हुए उन्होंने लिखा है—भारत की जनता की यह चेतना साम्राज्यियों को याद रखना चाहिए कि—

जो रन हमें प्रचारेहि कोऊ,
लरहिं सुखेन काल किन होऊ।

रामविलासजी की समीक्षा शैली में एक बड़ी विशेषता अनायास ही जुड़ गई है। साहित्य के व्यापक अध्ययन के कारण वे एक लेखक पर लिखते हुए अनेक लेखकों पर रिमार्क देते चलते हैं। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे।

१—कवि कल्पना को जितनी गैरकानूनी कार्यवाही

(शेष पृष्ठ २३१ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीक्षा के मान

श्री भालचन्द्र गोस्वामी, साहित्यालङ्कार

साहित्य-सन्देश के अक्टूबर १९५२ के अङ्क में श्री कृष्णवल्लभ जोशी का एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका शीर्षक है : नवीन समीक्षा प्रणाली के तत्व। जोशीजी की यह मान्यता सही है कि सार्व-भौमिक विचार क्रान्ति के फलस्वरूप साहित्यिक समीक्षा के तत्वों में परिवर्तन आया है। किन्तु इससे यह निर्णय नहीं लिया जा सकता कि साहित्य के मौलिक रूप में भी अन्तर आ गया है। यहाँ उक्त विद्वान लेखक के द्वारा उठाए हुए सभी तर्कों का उत्तर देने का अवकाश नहीं है किन्तु कतिपय ऐसे तर्कों एवं मान्यताओं का जिनसे साहित्य जगत में क्रान्ति फैलने की सम्भावना है, निराकरण करना आवश्यक लगता है।

मार्क्स ने युग चेतना को चाहे कितने ही वस्तु-परक रूप में देखा हो और उसी आधार पर साहित्य का विश्लेषण किया हो, किन्तु यह कहना कोई आविष्कार की बात नहीं है कि मार्क्स के जन्म लेने से कहीं पूर्व संसार का वह सारा साहित्य, जिसे आज विद्वत्समाज एक मत से सर्व-श्रेष्ठ साहित्य कहता है प्रणीत हो चुका था और उसे जन स्वीकृति इसी रूप में मिल चुकी थी। इससे यह सिद्ध होता है कि मार्क्स की मान्यताएँ अपने आप में सीमित हैं। आज भी जब दर्शन के रूप में मार्क्सवाद अपने यौवन में पदार्पण कर चुका है, मेरे विनम्र विचार में उस साहित्य में मार्क्सवाद का शायद ही विशेष असर पड़ा हो।

सही बात यह है कि साहित्य की भूमिका वह मानव-मनोजगत है जो अपने वर्तमान स्वरूप में अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी सर्वथा नवीन है और रहेगा। साहित्य विशेष में जनक्रान्ति का कितना अंश किस रूप में आया है या नहीं, यह विचार हमारे दृष्टिपथ में आता ही नहीं। विशेष रूप से वर्ग-संघर्ष की भावना एक कृत्रिम भावना है और साहित्य में तो उसकी अभिव्यक्ति ढूँढ़ना दुस्साहस है। शाश्वत साहित्य संघर्ष में नहीं किन्तु समन्वय में विश्वास रखता है। भले ही 'कबीर ने अपने साहित्य में अपनी तेज और तीखी भाषा में एक सामूहिक स्वर लेकर समाज में प्रचलित पुरोहितवाद और मुल्लावाद का विरोध' किया हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कबीर के साहित्य का केवल वही अंश शाश्वत या सर्व-श्रेष्ठ है। वस्तुतः इस साहित्य की तुलना में तो हम उसके रहस्यवाद को गुरुतर महत्व देते हैं जो साहित्य की दृष्टि में कहीं ऊँचे दरजे की चीज है।

इससे भी अधिक यह तर्क कि तुलसी ने अपने युग के अल्पसंख्यकों की विलासिता को चुनौती दी थी और यह कहा था 'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख है।' इस बात को कदापि सिद्ध नहीं करता कि उसके साहित्य की व्यापक महानता इसी वर्ग-संघर्ष की अभिव्यक्ति पर आधारित है! सच तो यह कि ऐसा सोचना अपनी निरी अज्ञानता की उपहासास्पद विवशता दिखाने के बजाय एक सर्व-स्वीकृत सत्य के प्रकाश को असत्य की धूम राशि से आच्छादित करने की धृष्ट चेष्टा करना है। यह सभी जानते हैं कि महात्मा तुलसी का साहित्य आज भी क्यों और किन अर्थों में उसी महानता को लिये है, प्रत्युत समय यापन के साथ-साथ उसमें उन्हीं मूल्यों में अधिकतर महानता का समावेश होता जायगा। इस महाकवि की सफलता के रहस्य को यदि एक सूत्र में रखने की धृष्टता की जाय तो कहना चाहिए कि वह रहस्य था उसकी मानव मन के रहस्यों को समझने की क्षमता। वर्ग-संघर्ष वाली बात तो इस सन्दर्भ में न जाने कहाँ लुप्त हो जाती है।

हम पूछते हैं कि यदि वर्ग संघर्ष की अभिव्यञ्जना ही साहित्य की श्रेष्ठता की कसौटी होती तो आज सोलहवीं सत्रहवीं सदी का एक अन्धगायक जिसने अपने गीतों में अद्वितीय माधुर्य के साथ बाल-प्रवृत्तियों के सहज परन्तु अद्भुत वर्णन के अतिरिक्त हमें और कुछ विशेष नहीं दिया, क्यों एकमत से साहित्य-जगत द्वारा महाकवि ही नहीं, महाकवियों का शिरोमणि माना जाता? उस अन्धगायक ने कौन से वर्ग संघर्ष को अभिव्यक्त किया था? मार्क्सवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अर्थों में उसने कौन-सी युग चेतना को प्रश्रय दिया था?

इसी प्रकरण में बिहारी, देव, सेनापति आदि कुशल कलाकारों को 'व्यक्ति की कुण्ठामय प्रवृत्तियों का या केवल कामोद्दीपन के सूत्रों का ही चित्रण' करने वाला बताना उन्हें मार्क्सवाद ही के पीले चश्मे से देखना नहीं तो और क्या है? आपके पास क्या अधिकार है कि आप उस साहित्य को तो श्रेष्ठ घोषित कर दें जिसमें वर्ग संघर्ष का एक भी बीज विद्यमान हो, और उस सारे साहित्य को हीन बताएँ जिसमें मार्क्सवाद की मान्यताओं से सहमति या उसकी अभिव्यक्ति न हो? यदि बिहारी को मार्क्सवादी आलोचक व्यक्ति की कुण्ठामय प्रवृत्तियों को चित्रण करने के दोष से दूषित मानता है, तो उसी कवि को फ्रायडवादी आलोचक इसी आधार पर श्रेष्ठ कवि घोषित कर सकता है। इसलिए साहित्य का मानदण्ड कोई वाद विशेष न होकर मानव की मौलिक संवेदनाएँ और उनकी अभिव्यक्ति की सजीवता व कुशलता ही है।

वस्तुतः संसार का कोई भी श्रेष्ठ साहित्य पूँजीपति और सर्वहारा की कशमकश के दौरान में नहीं लिखा गया है। यह भविष्य ही बतायगा कि आज जो प्रगतिवादी साहित्य तैयार किया जा रहा है उसमें कितना स्थायित्व है। मेरा विश्वास है कि मार्क्सवादी आलोचकों ने वाल्मीकि, तुलसी, शेक्सपियर, रवीन्द्र, टालस्टाय आदि महान् साहित्यकारों को या तो समझा ही नहीं है और यदि समझा भी हो तो उनकी सर्व स्वीकृत महानता से आतङ्कित होकर उन्हें अपने सीमित दृष्टिकोण से देखने और उपस्थित करने की ही चेष्टा की है। इस सन्दर्भ में तुलसी का उक्त उद्धरण पर्याप्त है।

टालस्टाय के विषय में विद्वान लेखक ने लेनिन का जो वक्तव्य उद्धृत किया है स्वयं उसके अर्थ के विषय में लेखक को भ्रान्ति हो गई जान पड़ती है। लेनिन ने कहा है– The works of Tolstoy will always be read and appreciated by the masses when having thrown off the yoke of the land-owners and capitalists. They will have created for themselves human conditions. इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अपनी वर्तमान अवस्था से मुक्त होने के पश्चात् ही जनसमूह टालस्टाय के साहित्य का सच्चा आनन्द ले सकेगा। इसका अर्थ यह नहीं कि टालस्टाय का साहित्य इसलिए श्रेष्ठ है कि उसमें वर्ग-संघर्ष की अभिव्यक्ति है, या मो० पुष्किन ने उसे इसी रूप में देखा है। शेक्सपियर को तो पक्का मार्क्सवादी मानना एक महान आविष्कार होगा।

सच बात तो यह है कि यदि मार्क्सवादी साहित्य की रागात्मिकता में कुछ भी विश्वास रखता है (जैसा कि विद्वान् लेखक का दावा है) तो हमारा उससे नम्र निवेदन है कि वह उसे यहीं तक सीमित रक्खे। एक बार साहित्यकार की रचना में सचाई (sincerity) आई कि उसमें स्वतः कला और शिल्प की प्राणप्रतिष्ठा होनी प्रारम्भ हो जायगी। रूप और स्वरूप दोनों की वर्चस्वता को लेकर जो साहित्य निर्मित होगा वही साहित्य सत्साहित्य गिना जायगा। साहित्य सर्जना की इस प्रणाली को हृदयङ्गम कर लेने के बाद हमें ऋग्वेद और फासिस्ट के प्रतीकों तथा उपमानों को आकाशी तथा निरर्थक मानने का दुस्साहस नहीं होगा।

साहित्य-सन्देश की १९५१–५२ की फाइल

जुलाई १९५१ से जून १९५२ तक की पूरी फाइल जिसमें आलोचना विशेषाङ्क भी सम्मिलित है बनी हुई तैयार है। सजिल्द मूल्य ५) पोस्टेज ।।।=) आज ही मँगालें।

साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुणाल के पात्र

श्री त्रिलोचन पाण्डेय

'कुणाल' श्री सोहनलाल द्विवेदी लिखित एक खण्ड-काव्य है। खण्ड-काव्य में जीवन-जगत की विस्तृत घटनाओं से एक की झाँकी दिखाना कवि को अभिप्रेत होता है। अतः कथानक व पात्र सीमित होते हैं व एक ही रस की प्रमुखता होती है। उद्देश्य-सिद्धि के उपरान्त काव्य समाप्त हो जाता है। प्रत्येक पात्र का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वर्णित घटना व एक लक्ष्य से सम्बन्ध होता है और वे प्रायः नायक के सहयोगी रूप में आते हैं। पात्र-बहुलता न होने से एक-एक का निजी व्यक्तित्व व घटना-विकास में विशेष स्थान होता है। 'कुणाल' में प्रमुख पात्र चार हैं जिनका प्रत्यक्ष परोक्ष रूप में उसकी विशिष्ट घटना से संबंध है। कवि ने नायक के चरित्र-प्रस्फुटन का आवश्यकतानुसार पूर्ण ध्यान रखा है जब कि अन्य पात्रों में कुछ सीमा-रेखाएँ छूट भी गई हैं जिस कारण पूरा-पूरा विकास नहीं हो सका है।

'कुणाल' अशोक का पुत्र व प्रस्तुत खण्ड-काव्य का नायक है। अत्यन्त सुन्दर—कमल की भाँति कोमल व सुवर्ण की आभा से युक्त! उसकी बाल-क्रीड़ाएँ सबको आकृष्ट करतीं, उसके अस्पष्ट गीत राजमहल में गूँजते रहते। उसकी वाणी में माधुर्य था। धूल धूसरित घुटनों के बल जब वह दौड़-दौड़ कर गिर पड़ता, फिर कहता—"देखो माँ मैं घोले पल छनपल दिल्ली हो आया" तो प्रतीत होता मानो विधाता ने उसका निर्माण कर सृष्टि का सारा सौन्दर्य उसमें भर दिया है—

"विश्व के सौन्दर्य औ माधुर्य का सब सार
केन्द्रगत सा हो गया जैसे यहीं साभार।"

कुणाल के चरित्र की उच्चता इस खण्ड-काव्य में पूर्णतया वर्णित है। यौवन की उद्दाम लालसा से दीप्त तिष्यरक्षिता ने उसे प्रेम का अनुचित प्रश्न किया और कुणाल की चरित्रगत दृढ़ता का प्रमाण यही है कि उसने अनुचित प्रणय-निवेदन को ठुकरा दिया। तिष्यरक्षिता के हृदय में कुछ भार था, वह जिसे हलका करने और अपने मन की कुछ बात कहने आयी थी किन्तु कुणाल ने यह कह कर—

"आर्ये तुम हो जननी मेरी
सोचो तो क्या कहती हो फिर"

अपने चरित्र व राजमर्यादा की रक्षा की। यौवन के उन्माद में वासना से दीप्त लालसा के कारण तिष्यरक्षिता को उचित अनुचित का ज्ञान न रहा था, वह आत्म विस्मृत थी, अतृप्ति की वंचना उसके चञ्चल कपोलों पर क्रीड़ा कर रही थी। कुणाल युवक था पर संज्ञा शून्य न था।

'कुणाल' नियम व व्यवस्था पालक है। भले ही वह तक्षशिला के अधिपति सम्राट अशोक का प्रिय पुत्र था किन्तु माता के प्रतिशोध के सन्मुख झुक जाना ही उसे ठीक प्रतीत हुआ। माता माता ही है। विमाता व माता में कुछ अन्तर नहीं। कोई सत्य मार्ग से विचलित हो जाय किन्तु उसके झोंके में कुणाल क्यों हिले? क्रोध उद्दीप्त तिष्य को राजाज्ञा हुई—

"दोषी के दोनों दृग निकाल,
निर्वासित कर दो राज्यपाल।"

मन्त्री किं कर्तव्य विमूढ़ थे, कुणाल के प्रति ऐसे दुर्व्यवहार की उन्हें आशा भी न थी। कुणाल को भी ज्ञात था तिष्य अपमान का बदला लेगी पर उसमें प्रतिशोध सहने की शक्ति थी, धैर्य था! राजाज्ञा राजाज्ञा है उसका पालन उसका कर्तव्य है। कैसा मनोवैज्ञानिक रूप कवि ने प्रस्तुत किया है। उसने महामन्त्री से स्पष्ट कहा—"आज्ञा पालन करो, यही मेरी भी आज्ञा।" फलतः सुन्दर शावक से नेत्र निकाल लिए गए और निर्वासन का दण्ड मिला। कुणाल की ही यह शक्ति व सहनशीलता थी कि चुपचाप इसे शिरोधार्य कर लिया।

कुणाल का काञ्चना से प्रेम अच्छी तरह व्यञ्जित है। 'मिरेन्डा' (टेम्पेस्ट) की तरह वह भी अपने 'फर्डिनेन्ड' के लिए सब कुछ त्यागने को सहमत है—"I die

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

your maid, to be your bed-fellow, you may deny me, but I will be your servant whether you will or no" काञ्चना भी साथ चलने को उद्यत हो गई, किन्तु निर्वासन तो कुणाल का हुआ है, वे उस पर भार नहीं डालना चाहते। पर काञ्चना सीता की भाँति पति परायणा है, अन्धे पति को एकाकी निर्जन वनस्थलों में कैसे छोड़ दे? सुन्दर कुमार व काञ्चना पथ के भिखारी बन गए हैं—काञ्चना के हाथ में भिक्षा-पात्र और कुमार के हाथ में वीन! शोकाकुल लोग रो रहे हैं। पर कुणाल का मुख पूर्वतः ही आभायुक्त है, खिन्नता, क्लेष का कोई भाव नहीं। निर्लिप्त व अपनी स्वाभाविक मुद्रा में रहना उसके चरित्र की विशेषता है। रामचन्द्र भी अयोध्या-त्याग करते समय राग द्वेष रहित थे। सदा की तरह मन्द मुस्कान लिए—

"प्रसन्नतां यो न गताभिषेकस्तथा
न मम्लौ बनवास दुःखतः"

और निकट भविष्य में सम्राट होने वाले कुणाल को भी निर्वासन मिला, उसने सिर झुका कर सहर्ष स्वीकार भी कर लिया। वह नियति का क्रूर व्यंग्य था!

कुणाल के चरित्र में कवि ने दार्शनिक भावों का प्रवेश कराने की भी चेष्टा की है। वे लौट फिर कर पाटलिपुत्र पहुँचते हैं, प्राचीन घटनाएँ पुनः स्मृति पटल पर सजीव हो हो जाती हैं। आम्रराजी, गङ्गा, सुन्दर झरने उनके अतीत गौरव की याद दिलाते हैं। काञ्चना उद्विग्न है पर कुणाल कहता है—

"यह समय का श्रोत है बहता अनन्त अगाध,
कल नहीं जो आज है, यह नियम अचल अबाध।"

मनुष्य को बहुत दूर जाना है, यात्रा लम्बी है; संसार में सुख-दुख दोनों का जमघट है। कुणाल ने अपना परिचय देते समय कहा है—

"भाग्य का यह व्यंग्य है, यह दुःख का इतिहास,
क्या करेंगे जान कर उसका निठुर निर्वास?"

शाप में वरदान छिपा है, रात्रि में प्रभात, प्रभु का रहस्य यही है, आदि बातों द्वारा उसका विस्तृत अनुभव प्रकट होता है।

कुणाल क्षमाशील है। भले ही नियति के उपहास द्वारा भटकता रहा, पर दूसरे को अपने कारण कष्ट देना उसे स्वीकार नहीं। यह गान्धीवाद का प्रभाव प्रतीत होता है जो बाद में जैनेन्द्रजी के पात्रों में अधिक उभरा। अशोक ने समस्त घटनावृत्त समझने पर तिष्यरक्षिता के वध की आज्ञा दी पर कुणाल ने रोक कर कहा—"राजन्! माता को करो आज क्षमा प्रदान।" अपने जीवन घातक बड़े से बड़े शत्रु को भी क्षमा कर देना कुणाल की ही विशेषता थी।

उदारता, सच्चरित्रता, पवित्रता, आज्ञाकारिता उसके चरित्र के प्रधान गुण हैं। कुणाल का चरित्र देवोपम है, उसमें त्रुटियाँ नहीं हैं। भाग्य के हाथों उसने दुःख भोगा, क्लेष सहा, पर अपने सिद्धान्त व मर्यादा से हटा नहीं है। अन्त में परिणाम भी श्रेयस्कर हुआ। उसके नेत्रों में ज्योति भी आ गई, सिंहासन भी मिला। अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रह कर सहर्ष कष्ट झेलने का परिणाम अन्ततः लाभप्रद ही होता है—इस सिद्धान्त की स्थापना कवि ने कुणाल के चरित्र द्वारा की है।

× × ×

मनुष्य जाति के तीन वर्ग हो सकते हैं—देव वर्ग, दानव वर्ग और मानव वर्ग। कवि अपने चुनाव के अनुसार पात्रों में सत्-असत् वृत्तियों का प्राधान्य प्रदर्शित करता है। कुणाल देव वर्ग का है। उसमें लेखक ने सद्-प्रवृत्तियों का चित्रण किया है तो ठीक उसकी नैतिकता का दूसरा पक्ष तिष्यरक्षिता के चरित्र द्वारा व्यक्त है। गुणों अवगुणों के छिपने व प्रकट होने से चरित्र अच्छी प्रकार उभरता है। तिष्य मानव-वर्ग की है। उसके अच्छे-बुरे दोनों पक्ष हैं पर परिस्थिति वशात् असत् पक्ष अधिक प्रकाश में आया है।

तिष्यरक्षिता युवा और अतीव सुन्दर है। स्वप्नों का संसार बसाना उसकी अवस्था के अनुकूल था। अपने इच्छाओं की तृप्ति के लिए उसे साधन चाहिए। अपने ही सुख-दुःख, आशा-निराशा के बीच उसका मदमाता यौवन छलक रहा है, गल कर समाप्त हो रहा है, वह क्यों न उसका उपभोग करे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"रागारुण रंजित ऊषा सी
मृदु मधुर मिलन की सन्ध्या सी"

वह राग रंजिता तिष्यरक्षिता वास्तव में कविता की परिभाषा ही थी! प्रसाद का एक चित्र मूर्तिमान हो उठता है—

"पगली हो सम्हाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अञ्चल
देख बिखरती है मणिराजी
उठा इसे बेसुध चञ्चल!
फटा हुआ था नील वसन क्या
ओ यौवन की मतवाली
देख अकिंचन जगत लूटता
तेरी छवि भोली-भाली!"

कुणाल का अनुपम उभरता हुआ सौन्दर्य देख कर वह आकृष्ट हुई। कुणाल की काञ्चन द्युति, आजानुबाहु, घने कुन्तल, सुगठित मांस-पेशियाँ, केयूर व लहराते हुए उत्तरीय ने उसे खींच लिया। उसने प्रणय निवेदन करने का विचार किया और अपने हृदय की सारी छलकती भावनाएँ खोल कर कुणाल के सम्मुख रख दीं। कृत्रिमता व लुकाछिपी उसमें नहीं थी, छल या प्रवंचना न थी। सीधी सी बात उसने प्रकृति के उपादानों द्वारा स्पष्ट व्यक्त कर दी—

"है एक भार मेरे उर में
वह हलका करने आई हूँ
कुछ मन की सुनने आई हूँ
कुछ मन की कहने आई हूँ।"

यह उसके हृदय की निष्कपटता, निश्छलता की द्योतक है। वह राजमाता थी पर यौवन के उभार में उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता। इसी तथ्य का उद्घाटन कवि को अभिप्रेत है। कुणाल द्वारा तिरस्कृत होने पर उसका नारी सुलभ स्वाभिमान जागृत होना स्वाभाविक ही था। उसे पश्चाताप हुआ—उसने प्रणय निवेदन किया ही क्यों? न जाने क्यों उचित अनुचित का ध्यान नहीं रहा?—

"दोष किसका? नयन का?
मन का? कि दैव विधान?"

उसने कहा है। परिस्थिति वश हम कुछ कर बैठते हैं—किसका दोष है? या फिर वैसी परिस्थितियाँ आने ही न दी जायँ! यह उसके आत्मज्ञान का परिचायक है। प्रतिक्रिया भी शीघ्र हुई। वह प्रतिशोध की भीषण अग्नि में स्वतः दग्ध होने लगी। यही भावना उसके सुप्त दानवत्व को पूरा उभार देती है। वह झुकी ही क्यों? रमणी सदा दो सिरों पर रहती है। प्रेम में झुकेगी और प्रतिशोध में भी। कामना पूर्ण न होने पर दूने वेग से बदले की भावना से प्रेरित हुई। भावों का कैसा वैषम्य मूलक उद्भव कवि ने किया है! वह नारी थी क्या इसी कारण उपेक्षित हुई? कैकेयी की तरह कोप-भवन में बैठ कर उसने अशोक की राजाज्ञा प्राप्त की, प्रतिशोध की भावना ने उसे खूँखार व निर्मम बना दिया। निर्दय हो कर उसने कुणाल के नेत्र निकाल डालने की आज्ञा दे डाली! इतना पूर्ण हो सकने पर ही प्रतिशोध-भावना शान्त हो सकती थी। वह पूर्ण निर्दय व क्रूर हो गई है अवश्य, पर यह उसके चरित्र की मूल विशेषता नहीं है। कैकेयी ने तो राम को बनवास मात्र ही दिया था, तिष्य को और भी नेत्र निकलवाने पर ही सन्तोष हुआ।

रहस्य खुलने पर अशोक के क्रोध की सीमा न रही। तिष्यरक्षिता दण्ड की भयानक कल्पना से काँप कर गिर पड़ी। "रक्षा रक्षा" चिल्लाती हुई 'मूर्छिता, पतिता, च्युता, हतचेतना, मृत प्राण" हो गई। अनुभावों का सुन्दर चित्रण है। किन्तु कुणाल की चेष्टा से उसकी प्राण रक्षा हो गई।

उसमें आत्म ग्लानि की भावना भी है। कुणाल के राज्याभिषेक पर वह फूली न समाई थी पर उसके हृदय को एक विचार रह रह कर उद्विग्न कर रहा था—

"क्षमा माँगू कैसे मैं आज,
किया मैंने हा कितना पाप।"

मनुष्य होश हवास ठीक होने पर सत्य-असत्य, पुण्य-पाप, भले-बुरे का अन्तर समझने लगता है। 'साकेत' की कैकेयी भी पश्चाताप की भावना में कहती है—

"करके पहाड़ सा पाप मौन रह जाऊँ,
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ....."
"रघुकुल में भी थी एक अभागिनि रानी।"

और तिष्यरक्षिता कुणाल के सम्मुख नत मस्तक हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उसके चरित्र की सद् प्रवृत्ति का सूचक है। प्रसन्न हृदय उसने कुणाल-काञ्चना को चिरञ्जीव होने का आशीर्वाद दिया।

उसके हृदय में घटित सत्-असत् प्रवृत्तियों के सङ्घर्ष ने तिष्य का चरित्र सफलता पूर्वक उभार दिया है। 'लेडीमैकबेथ' के अन्तर्सङ्घर्ष की तरह कवि उसमें सफल हुआ है। भावना व परिस्थिति के अनुसार किस प्रकार मनुष्य में अच्छे बुरे गुण-अवगुणों का उतार-चढ़ाव होता है—इसी पर कवि ने तिष्य के चरित्र द्वारा प्रकाश डाला है।

× × ×

प्रस्तुत खण्ड काव्य में कांचना का अपूर्ण चरित्र खटकता है। वह नायक कुणाल की पत्नी थी, उसके जीवन में प्रमुख स्थान की अधिकारिणी थी। अतः कम से कम अशोक से अधिक महत्व रखती थी (जहाँ तक यहाँ अशोक का सम्बन्ध है), किन्तु उसके लिए एक स्वतन्त्र 'सर्ग' की योजना नहीं की गई जबकि अशोक के लिए है। हो सकता है तिष्य का सौन्दर्य-कार्य उसकी अपेक्षा अधिक उत्कर्ष मूलक प्रदर्शित करने की चेष्टा में कवि ने इसे कम महत्व दिया हो, फिर भी नायक की सहयोगिनी के रूप में काञ्चना के चित्रण में कुछ रेखाएँ छूट गई हैं। समन्वय की दृष्टि से काव्य में यह कमी है।

काञ्चना पति परायणा व अनन्य प्रेमिका के रूप में चित्रित हुई है। कुणाल के साथ स्वयं बन-मार्ग की पथिक बनती है, वही अन्धे कुणाल का सहारा है। भीख माँगते-खाते उसने पति के साथ जीवन व्यतीत किया। एक बार जन्मभूमि मगध पहुँच गए। बाल्यकाल की स्मृतियाँ सजीव होने से काञ्चना उद्विग्न हो उठी, पर कुणाल ने उसे समझाया—समय की गति ऐसी ही विचित्र है। अन्त में वह साम्राज्ञी हो गई और सुखपूर्वक, जीवन यापन करती रही।

अशोक का चरित्र घटना विकास में गौण है। वातावरण उपस्थिति में ही उनका कुछ योग है। उन्हीं की विशाल छत्रछाया में कुणाल का जन्म हुआ। वृद्धावस्था में उन्होंने युवा तिष्यरक्षिता से विवाह किया जो अनुवर्ती घटना का मूल बना। तिष्य के कोप भवन में बैठने पर उन्होंने सत्ता-महानता का वर्णन किया है। उसके लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत हैं। जब तिष्य ने छल से एक सप्ताह स्वयं राज्य करने की अनुमति माँगी तो अशोक ने सहर्ष दे दी। उन्हें क्या ज्ञात था कि तिष्य उन्हीं के पुत्र को भयङ्कर दण्ड देने के हेतु षडयंत्र कर रही है! वे निष्कपट सरल हृदय व्यक्ति थे।

किन्तु जब उन्हें रहस्य ज्ञात हुआ तो उनका क्रोध भी अत्यन्त उग्र हो गया। वे तिष्यरक्षिता का बध कराने पर उद्यत हो गए। कुणाल ही उन्हें शान्त कर सके। अन्त में कुणाल को ही राज्यभार सौंप, काषाय ग्रहण कर उन्होंने बन की राह ली।

'कुणाल' खण्ड काव्य में यही चार पात्र हैं। 'चर', 'महामंत्री', 'अमात्य' केवल नाममात्र को हैं जिनका कार्य विशेष सम्पन्न हो जाने पर पुनः उल्लेख भी नहीं हुआ है। पात्र संकलन, चित्रण की दृष्टि से 'कुणाल' एक सफल खण्ड-काव्य है।

परीक्षार्थी प्रबोध भाग १, २, ३

तैयार हैं। यह सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा, व साहित्य रत्न तथा हिन्दी की एम० ए० की परीक्षाओं के लिये एक अनोखी पुस्तक है। मूल्य प्रत्येक का ३) ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेगी।

प्राप्तिस्थान—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मीलन

'मीरां बृहत् पद संग्रह' नामक एक नवीन पुस्तक पर साहित्य-सन्देश के जून ५२ के अङ्क में प्रो० कन्हैयालाल सहल द्वारा लिखित एक आलोचना प्रकाशित हुई है। पुस्तक की लेखिका ने इस आलोचना पर अपना 'एक समाधान' भेजा था जो नवम्बर के अङ्क में छपा है। इस समाधान के सम्बन्ध में बीकानेर कालेज के हिन्दी प्रोफेसर, राजस्थानी भाषा के माने हुए पण्डित श्री नरोत्तमदास स्वामी का एक पत्र हमें मिला है। इसे हम यहाँ छाप रहे हैं। अब इस विषय पर और कोई पत्र या उत्तर साहित्य-सन्देश में नहीं छापा जा सकेगा। —सम्पादक

प्रिय सहलजी !

पत्र मिला, 'अङ्क समाधान' को पढ़ कर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। मीरां-बृहत्-पद-संग्रह में सैकड़ों स्थलों पर इसी प्रकार अर्थ का अनर्थ किया गया है। दुर्भाग्य की बात यह है कि लेखिका ने अपने को राजस्थानी बतला कर अर्थों पर यह अत्याचार किया है; राजस्थानी भाषा से अपरिचित विद्वान लेखिका को राजस्थानी जानकर उनके अर्थों को सहज ही प्रामाणिक मान लेंगे।

लेखिका को न तो राजस्थानी साहित्य का परिचय है, न बोलचाल की राजस्थानी भाषा का। वे मूलतः राजस्थानी हो सकती हैं पर राजस्थान से उनका सम्बन्ध छूटे सम्भवतः कई पीढ़ियाँ हो चुकी हैं। उनके राजस्थानी होने में मुझे सन्देह नहीं है, सन्देह है उनके राजस्थानी वातावरण से परिचित होने में।

अब रहे 'अङ्क समाधान' के सैंस और कामिण शब्द। सैंस के सम्बन्ध में लेखिका लिखती है—"परन्तु बोलचाल की राजस्थानी भाषा में उपर्युक्त शब्द 'सौ' के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।" इस रेखाङ्कित ही के लिये क्या कहा जाय ?

सैंस या सैंस शब्द राजस्थानी भाषा में हजार के ही अर्थ में प्रयुक्त होता है, सौ के अर्थ में कहीं नहीं। क्या साहित्य, क्या लोक साहित्य* और क्या बोलचाल सर्वत्र उसका अर्थ हजार होता है, सौ कहीं देखने में नहीं आया। भाषाविज्ञान भी इस अर्थ का समर्थन नहीं करता।

नौकर के अर्थ में राजस्थानी में कामिण शब्द का प्रयोग मैंने न तो कहीं देखा है और न सुना है। 'कारू-कामिण' शब्द भी सुनने में नहीं आया, हाँ 'कारू-कमीण' नामक शब्द अवश्य है। 'कारू का अर्थ है सुधार, कुम्भार आदि कारीगर और कमीण का अर्थ है दाई महतर आदि नीच जाति के व्यक्ति। यह कमीण फारसी के 'कमीनह' का अपभ्रंश है, हिन्दी में यह कमीना के रूप में प्रयुक्त होता है। विवाह आदि के अवसरों पर ये लोग जो वस्तुएँ लाते हैं या जो सेवाएँ करते हैं उनके बदले में, उनको 'नेग' दिये जाते हैं।

उद्धृत पंक्ति में कामिण शब्द का अर्थ कामिनी ही है। प्रथा भी इस अर्थ का समर्थन करती है और भाषा-विज्ञान भी। कामिण शब्द को सीधे और सरल कामिनी शब्द से व्युत्पत्ति न करके उसे कमीना शब्द का अपभ्रंश बताना द्राविड़ी प्राणायाम नहीं तो क्या है !

भवदीय—

नरोत्तमदास स्वामी

---

* लोक साहित्य से एक उदाहरण लीजिये—'कोइ सैंस किरण को छोड्यो ये म्हे रुखालो सूरज देवता' अर्थात् सहस्ररश्मि सूर्यभगवान को हमने रखवाले के रूप छोड़ दिया है।' सूर्यदेव का विशेषण सहस्र रश्मि ही है, शत-रश्मि नहीं, यह तो राजस्थानी भाषा से अपरिचित पाठक भी समझते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

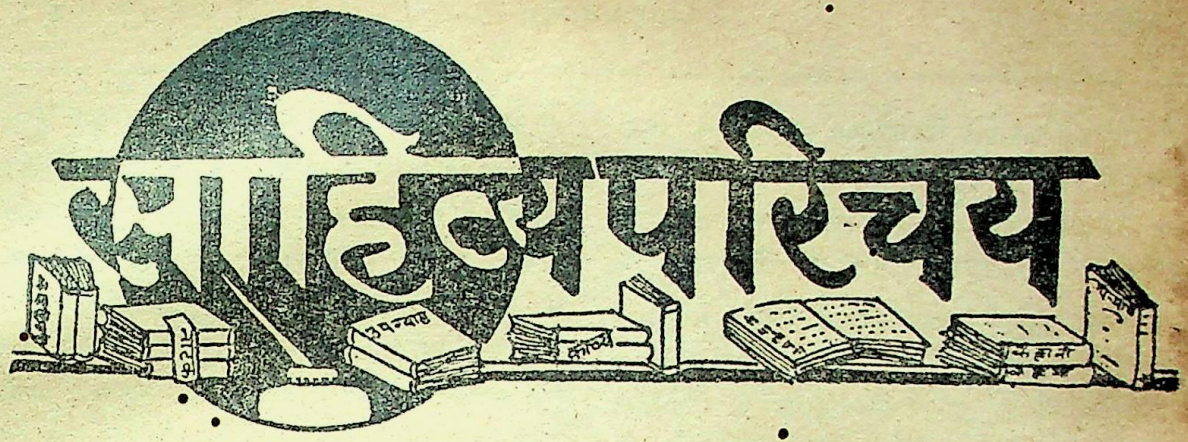

आलोचना

काव्य और कल्पना—लेखक–श्री राम खेलावन पांडेय, प्रकाशक–श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना। पृष्ठ १५०, मूल्य ३॥)

प्रस्तुत पुस्तक पाण्डेयजी के विविध साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है।' पहले निबन्ध के आधार पर ही इसका नामकरण हुआ है। पहले निबन्ध में कल्पना का महत्व दिखाया गया है और उसका (कल्पना) नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से तादात्म्य किया है। कविता और उसके स्वरूप का विवेचन करते हुए अनुभूति, कल्पना और बौद्धिकता तीनों को ही महत्व दिया है। जीवन की आलोचना एवं चित्रण के साथ ही इसमें जीवन-दर्शन भी अपेक्षित है। इसी दृष्टि से पाण्डेयजी ने आधुनिक कविता का मूल्याङ्कन किया है।

लेखक महोदय आत्मानुभूति को प्रधानता देते हुए कला की उपेक्षा नहीं करते। हिन्दी काव्य का संक्षिप्त पर्यालोचन दोनों ही दृष्टियों से (विषय की भी और विधान की) हुआ है और सामाजिक और मानसिक प्रवृत्तियों के आधार पर भविष्य का भी दिशानिर्देश किया गया है। नये युग में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों में तथा भावनाओं और अभिव्यक्ति के प्रतीकों में जो अन्तर आया उसको स्पष्ट करके भविष्य की मोटी रूप रेखा निर्धारित की गई। लेखक ने व्यापक पाण्डित्य, गम्भीर दृष्टि और विश्लेषण बुद्धि का परिचय किया है। अभेद दर्शन के साथ भेद दर्शन विवेक और प्रौढ़ता का चिन्ह है। गीति काव्य के विवेचन से इस भेदक विवेक बुद्धि का परिचय मिलता है। सब गीतों को एक लाठी से हांकने की बात नहीं की गई है, इसके साथ उनके क्रम विकास पर भी एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण लेकर प्रकाश डाला गया है। लेखक के दृष्टिकोण से शुद्ध गीति-काव्य में कोई ही ग्रन्थ आयंगे। साहित्य शास्त्र के विद्यार्थियों को इन निबन्धों में बहुत विचारोत्तेजक सामग्री मिलेगी।

गोविन्द स्वामी—(साहित्यिक विश्लेषण वार्ता और पद संग्रह) प्रधान सम्पादक गो० श्री व्रजभूषण शर्मा, सहायक सम्पादक पो० कंठमणि शास्त्री तथा क० मोकुलचन्द तैलंग। पृष्ठ संख्या २१५, मूल्य ३)

कृष्ण-काव्य में अष्टछाप के कवियों का विशेष महत्व है। उनमें से जितना सूर का प्रकाश हुआ है उतना और किसी का नहीं। वे तो सूर ही ठहरे किन्तु अन्य कवि-गण भी उसी मण्डल के हैं। इस संग्रह में एक भूमिका और तालिका के साथ ५७४ पदों का संग्रह दिया गया है। भूमिका में वार्ताओं के आधार जीवन वृत्त के साथ-साथ वल्लभकुल की साम्प्रदायिक-सेवा पद्धति और काव्य सौष्ठव पर भी विवेचन किया गया है जिसमें रस, अलङ्कार और भाषा सम्बन्धी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। वैसे तो विश्लेषण कर्ता तैलंगजी ने गोविन्द स्वामीजी के काव्य का प्रधान रस शृङ्गार ही माना है तथापि नायिका-भेद आदि शृङ्गारिक अङ्गों में उन्होंने आध्यात्मिक भावनाओं के दर्शन किये हैं। वे लिखते हैं:—

'उसका लक्ष्य स्थूल लौकिक नायिकाओं का भाव-चित्रण व नख-शिख वर्णन नहीं, अपितु ब्रह्म और जीव के महामिलन-जन्य उस आनन्द की ओर संकेत करना है'। इस दृष्टि से तो भक्ति को ही प्रधान-रस मानकर शृङ्गार को उसके अन्तर्गत रखना चाहिए किन्तु समालोचक महोदय ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृङ्गार को रस-राज होने के नाते तथा भगवान से सम्बन्धित होने के कारण उसी को मुख्यता दी है। यह विचारणीय है। हमको आशा है कि कांकरोली विद्या-विभाग अष्टछाप के अन्य ग्रन्थों का भी शीघ्र ही प्रकाशन करेगा।

तीन वाद—लेखक-सिद्धनाथ पाठक, प्रकाशक-स्मृति साहित्य-सुधमालय। पृष्ठ संख्या ५१, मूल्य १।)

यह पुस्तक बी० ए० के राजनीति-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है और इसमें व्यक्तिवाद, मार्क्सवाद और सिंडिकेलिज्म का विवेचन किया गया है। इस विवेचन में तीनों वादों के संक्षिप्त इतिहास के साथ उनकी प्रतिक्रिया भी दी गई है जिसमें दूसरे वाद के लिए एक भूमिका बन जाती है। इस प्रकार यह तीनों वाद एक क्रम में बैठ जाते हैं और विचारशील विद्यार्थी की समझ में आ जाते हैं।

—गुलाबराय

कर्मभूमि : एक अध्ययन—लेखक-श्री तेजनारायण टण्डन और श्री रामखेलावन चौधरी। प्रकाशक-हिन्दी पुस्तक भण्डार, रानी कटरा, लखनऊ। पृष्ठ १३६, मूल्य १॥)

प्रेमचन्दजी के प्रसिद्ध उपन्यास कर्म-भूमि के सम्बन्ध में इस पुस्तक में प्रारम्भ के १०० पृष्ठों में परिच्छेदों का विश्लेषण और उसके पात्रों का परिचय और अन्त के ३६ पृष्ठों में प्रेमचन्दजी के जीवन का परिचय और उनकी शैली आदि की व्याख्या है।

आचार्य-शुक्ल और चिन्तामणि—लेखक-श्रीलाल 'भानु' साहित्याचार्य, प्रकाशक-शारदा प्रकाशन मन्दिर कोलारस-शिवपुरी, म० भा०। पृष्ठ ३८; मूल्य ।॥≈)

चिन्तामणि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है। इस पुस्तक में उसी का समीक्षात्मक विवेचन है। संक्षेप में ही सब बातों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

नाटक

गौतम नन्द—(ऐतिहासिक नाटक) रचयिता-श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द'। प्रकाशक-साहित्य-प्रकाशन-मन्दिर, ग्वालियर। पृष्ठ १२६ + २, मूल्य १॥)

यह नाटक मिलिन्दजी का तीसरा नाटक है। प्रताप-प्रतिज्ञा से मिलिन्दजी ने नाटककार के रूप में जो ख्याति प्राप्त की थी, वह ख्याति नाटकीय भावोत्तेजन और सौष्ठव पर खड़ी हुई थी। उसके उपरान्त मिलिन्दजी में विचार और कला दोनों का सौष्ठव उदय हुआ जो 'समर्पण' और उससे आगे इस प्रस्तुत नाटक में फलीभूत हुआ है। गौतम नन्द का कथानक बहुत साधारण है। गौतम नन्द भगवान गौतम बुद्ध के सौतेले भाई हैं। वे समझते हैं कि वे साधारण व्यक्ति हैं, भगवान बुद्ध की भाँति वे प्रव्रज्या नहीं ग्रहण कर सकते। राजकुमारी सुन्दरिका से वे स्पष्ट प्रतिज्ञा करते हैं कि वे उससे विवाह कर गौतम बुद्ध की भाँति कभी प्रव्रज्या नहीं ग्रहण करेंगे और उसे त्यागेंगे नहीं, किन्तु यह सुनकर कि उनके राजद्वार से गौतम बुद्ध बिना भिक्षा ग्रहण किये ही लौट गये हैं, व्यथित होकर जब नन्द उन्हें लौटाने के लिए गये तो, उनके पीछे-पीछे उनके स्थान तक चले गये और फिर न लौटे। यह है मूल सूत्र। इसके साथ देवदत्त-मातृविका का कथा-सूत्र भी संलग्न है जो भगवान बुद्ध के संदेश की कसौटी बनता है। शुद्धोदन के पुरोहित कुम्भक और उसकी पत्नी व्युरेश्वरी का कथा-सूत्र हास्योद्रेक के साथ अर्थोपक्षेपकों का कार्य भी करता है। लेखक का विचार है कि "अवसरों को छोड़ने की यह पुरानी कहानी अवसरवाद, भोगवाद और स्वार्थ के नए आक्रमणों के विरुद्ध भी रचनात्मक संघर्ष की दीप-ज्योति बन सकती है।" किन्तु हमें सन्देह है कि इस बौद्धिक युग में नन्द का समस्त विकास और जीवन जब ठोस भूमि पर मानवीय व्यवहारिकता पर निर्भर कर रहा था तब भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व के जादू से प्रभावित हो नन्द का विवशता पूर्ण आकस्मिक त्याग कोई भी स्वस्थ प्रकाश आज के जीवन में प्रदान कर सकता है। ओज तथा भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से नाटक अभिनन्दनीय है, निस्सन्देह वह अभिनेय भी है। छपाई सफाई बहुत आकर्षक।

परीक्षा—लेखक-श्री रघुवीरशरण 'मित्र' प्रकाशक-अ० भा० राष्ट्रीय साहित्य प्रकाशन परिषद, मेरठ। पृष्ठ-संख्या ११८, मूल्य २)

इस पुस्तक में मित्रजी के लिखे सात बालोपयोगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकांकी नाटक हैं। इनके नाम हैं—परीक्षा, पुरस्कार, अँग्रेज बालक, दान, भोग और नाश, अमर विजय, आत्मबल, अमरशहीद। इनमें परीक्षा सबसे बड़ा २६ पृष्ठों का नाटक है। यह नाटक वस्तुतः तीसरे दृश्य के साथ समाप्त हो जाना चाहिए था। बालकों के परोपकार और उसके फल की मूल कथा यहाँ समाप्त हो लेती है। पर लेखक उन्हें आगे राजनीति में घसीट ले गया है और महात्मा गांधी के जैसा नेतृत्व प्रदान कर प्रधान नायक की मृत्यु खोली मार कर करा डाली है, वह सब स्पष्ट ही शिथिल है। इसी नाटक में लेखक ने प्राइवेट परीक्षा में बैठकर उत्तीर्ण होने का जो प्रोत्साहन दिया है, उसे शुभ नहीं कहा जा सकता। पुरस्कार में गाँव के बालकों की बुद्धिमानी और वीरता से प्रसिद्ध डाकू के परास्त होने की घटना का वर्णन है। 'अजेय बालक' में ब्रह्मचारी बालकों द्वारा आचार्य पाणिनी के आश्रम में दिग्विजयार्थ निकले हुए सम्राट पुरुषोत्तम की युद्ध-वृत्ति का विरोध और शक्तिरूप में सीता का पृथ्वी में समा जाना तो मूल कथानक है, किंतु इससे अहिंसा का प्रतिपादन किया गया है। 'दान, भोग और नाश' में प्रहसन के रूप में नाई, सेठ, डाकू आदि पात्रों के उपलक्षण से दान, भोग तथा नाश का रहस्य समझाया गया है। 'अमर विजय' में राजकुमार अक्षय-कुमार द्वारा जनसेवा और जन सङ्गठन करके अहिंसाभाव से आक्रमणकारी सम्राट को सिंहासन-च्युत कर स्वराज्य स्थापन का प्रतिपादन किया गया है। 'आत्मबल' में प्रह्लाद-हिरण्य-कश्यप की पुराण-प्रसिद्ध कथा को अत्यन्त संक्षेप में तथा राजनीतिक स्वरूप प्रदान कर सत्य, अहिंसा और प्रणपालन की शिक्षा दी गयी है। 'अमरशहीद' में इतिहास प्रसिद्ध खुदीराम बोस तथा प्रफुल्लचन्द चाकी के शहीद होने के कथानक को छोटे नाटक का रूप दिया गया है। इस प्रकार सातों नाटकों में भव्य भावों के उद्रेक के साथ बालकोचित नाटकीयता विद्यमान है, इस रूप में बाल-साहित्य की वृद्धि करने के लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं।

—सत्येन्द्र

इतिहास

विश्व के इतिहास और सभ्यता का परिचय—लेखक—प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप, प्रकाशक—राजराजेश्वरी पुस्तकालय, गया। पृष्ठ ३६२, सजिल्द, सचित्र, मूल्य ५)

यह पुस्तक बिहार की प्रारम्भिक परीक्षाओं के इतिहास के विद्यार्थियों के लिए अनेक हिन्दी-अँग्रेजी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। लेखक स्वयं इतिहास के अच्छे विद्वान और गया कालेज के इतिहास अध्यापक हैं। आपने इस पुस्तक में विश्व की प्रसिद्ध और मान्य संस्कृतियों, विविध देशों तथा विभिन्न समस्याओं का संक्षिप्त किन्तु व्यापक रूप से वर्णन किया है। किसी भी देश का प्राचीन से प्राचीनतम और आधुनिक से आधुनिकतम परिचय इसमें मिल सकता है। इसे पढ़ कर संसार का विहंगम रूप पाठक के सम्मुख आ जाता है। पुस्तक यद्यपि परीक्षार्थियों को लक्ष्य में रख कर लिखी गई है परन्तु उसे पढ़ कर एक साधारण पाठक भी विषय को समझ कर अपनी ज्ञान राशि को बढ़ा सकता है। पुस्तक बीस अध्यायों में विभाजित है जिसकी विषय-सूची ही १६ पृष्ठों में दी गई है। हम ऐसी उपयोगी पुस्तक का सहर्ष स्वागत करते हैं।

प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद—लेखक—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। पृ० १६४, सचित्र, मूल्य ३)

प्रस्तुत पुस्तक अपने ढङ्ग की एक महत्वपूर्ण रचना है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों—नाटक, उपाख्यान, स्मृति, उपनिषद और वेद—सभी का आधार लेकर इसमें प्राचीन काल के राजा-रईस और साधारण जनता के नित्य के कार्यों-उत्सवों और विशेष अवसरों का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है कि आँखों के सामने दृश्य का साक्षात स्वरूप नर्तन करने लगता है। जीवन, कला और स्थापत्य से सम्बन्ध रखने वाले ८९ विषयों की इसमें चर्चा है। उदाहरण के लिए जहाँ विनोद के साक्षी पक्षी गण हैं वहाँ पक्षीसों पंक्तियों का और जहाँ बाग बगीचों का वर्णन है वहाँ वीथियों और पुष्पों का बहुत ही कलात्मक वर्णन दे दिया गया है। नित्य के कार्य स्नान आदि और उस समय उपयोग में आने वाली सैकड़ों वस्तुओं की चर्चा देखकर और उनके तत्कालीन नामादि का वर्णन पढ़ कर दङ्ग रह जाना पड़ता है। रङ्ग-शाला की, नाटकों की, सङ्गीत, मदनोत्सव, उद्यान, यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि की चर्चा बड़ी ही मनोमोहक रूप में की गई है। गणिका आज बड़े तिरस्कार की दृष्टि से देखी जाती है, परन्तु इस पुस्तक से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में वेश्याओं के बड़े भेद होते थे और गणिका नाम से उन्हीं का सम्बोधन होता था जो कला, ज्ञान और संस्कृति में बहुत उच्चकोटि की मानी जाती थी और जिनका आदर समस्त समाज करता था। यही नहीं इस पुस्तक में काव्य-शास्त्र का विनोद, पद्यबद्ध कथा, इन्द्रजाल, मन्त्रविद्या आदि का भी सुन्दर वर्णन है। अन्त में चार परिशिष्ट देकर पुस्तक की महत्ता और भी बढ़ा दी गई है। इस पुस्तक में हमको प्राचीन युग की झाँकी ही नहीं मिलती है वरन् प्राचीनों के प्रकृति प्रेम और उनके जीवन की उमङ्ग और उल्लास के भी दर्शन होते हैं। प्राचीन आर्यों ने केवल आध्यात्मिकता में ही विशेषता नहीं प्राप्त की थी वरन् उनका लौकिक जीवन भी उतना ही सम्पन्न और कलामय था जितना उनका आध्यात्मिक जीवन। प्रत्येक दृष्टि से यह पुस्तक श्लाघ्य है और इसके लिए हम विद्वान लेखक और महामति प्रकाशक को बधाई देते हैं।

विज्ञान

विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास—लेखक–सर डब्लू० सी० डेम्पीयर, अनुवादक प्रो० कृष्णानन्द द्विवेदी, प्रकाशक–युग प्रकाशन, १ फैंज बाजार, दिल्ली। पृष्ठ ३०१, मूल्य ६)

सर डेम्पीयर की यह पुस्तक अँग्रेजी में बहुत प्रसिद्ध है। मूल लेखक के अपने शब्दों में इस पुस्तक के लिखने का "प्रथम उद्देश्य, सामान्य पाठक की सहायता करना है जो यह जानना चाहता है कि विज्ञान जिसने उसके जीवन को इतना प्रभावित कर रखा है अपने महत्वपूर्ण स्थान को कैसे प्राप्त कर सका है; दूसरा उद्देश्य है, विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति।" "इस पुस्तक में निरीक्षण और प्रयोग मूलक वैज्ञानिक प्रणाली के उद्‌गम, विकास एवं उत्कर्ष का वर्णन बहुत संक्षेप में परन्तु आकर्षक स्पष्टता के साथ किया गया है।"

विज्ञान का आरम्भ कैसे हुआ, यूनान और रोम में उसने कैसे उन्नति की, मध्य युग में उसकी क्या दशा रही और नव जागरण में कैसे उसने विकास किया—यह सब इसमें बताया गया है। रसायन, भौतिक विज्ञान, भूगोल, विज्ञान, शरीर विज्ञान, ज्योतिष, जीव विज्ञान आदि सभी के विकास का इतिहास इस पुस्तक में वर्णित है। पुस्तक बहुत ज्ञान वर्द्धक और लाभदायक है। अनुवाद भी काफी आकर्षक हुआ है।

मनोविज्ञान

सामान्य मनोविज्ञान—(संक्षिप्त संस्करण)–लेखक–श्री अर्जुन चौबे काश्यप, प्रकाशक–राज राजेश्वरी पुस्तकालय, गया। पृष्ठ ४४३, मूल्य ५)

जब से माध्यमिक परीक्षा बोर्डों ने तथा विश्वविद्यालयों ने हिन्दी में उत्तर देने की छूट दी है तब से द्रुतगति के साथ वैज्ञानिक साहित्य में वृद्धि हो रही है। विज्ञानों में लेखकों का ध्यान मनोविज्ञान की ओर अधिक गया है। प्रोफेसर काश्यपजी के सामान्य मनोविज्ञान का संक्षिप्त संस्करण भी प्रौढ़ चिन्तन का आधार लेकर चला है। इसमें सामान्य मनोविज्ञान को प्रारम्भिक विद्यार्थियों के धरातल से ऊँचा उठाने का उद्योग किया गया है और मनोविज्ञान की कठिन और जटिल समस्याओं का तथा उनके सम्बन्धों में किए गये प्रयोगों आदि का विवेचन हुआ है। प्रोफेसर साहब के विवेचन का क्षेत्र विस्तृत है और इस कारण इस पुस्तक में हर प्रकार के पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग का भी उनको अवसर मिला है और इस अंश में वे भावी कार्यकर्ताओं के पथ-प्रदर्शक बनेंगे। पारिभाषिक शब्दावली की समस्या को बहुत अंश में सुलझाते हुए भी उसकी कठिनाइयाँ पूरी तौर से हल नहीं हुई हैं। जैसे Positive विज्ञान के लिए उन्होंने समर्थक विज्ञान रखा है। समर्थन किसी जानी हुई चीज का ही पुष्टिकरण होता है। मेरी समझ में प्रतिपादक शब्द अच्छा रहता। Normative के लिए आदर्श-निर्धारक शब्द ठीक है। Habit के लिए आचरण और आभास दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। आचरण अभ्यस्त भी हो सकता है और अनभ्यस्त भी। Fissure के लिए रन्ध्र शब्द का प्रयोग हुआ है, मेरी समझ में दरार शब्द अच्छा रहता। Personality के लिए अन्य लेखकों की भाँति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काश्यपजी ने भी व्यक्तित्व रखा है लेकिन व्यक्तित्व Individual की इकाई का अधिक द्योतक है। पर्सोनेल्टी उससे कुछ ऊपर की चीज है। मैंने इसके लिए दो शब्द सोचे हैं, आत्मभाव और स्वरूपता। एक शब्द 'आया' भी चल रहा है। इसके लिए कोई शब्द स्थिर करना पड़ेगा। इसी प्रकार Automatic के लिए स्वयंभू शब्द विचारणीय है, स्वचलित शब्द अच्छा रहता।

कहीं-कहीं ऐसे अँग्रेजी शब्दों को जिनका हिन्दी पर्याय बन सकता था, जैसा का तैसा ही रखा गया है। जैसे—Temporal lobe के लिये मण्डीय पिण्ड या कनपटी सम्बन्धी पिण्ड ठीक होता। इस प्रकार शब्दावली में सुधार की तो आवश्यकता है ही किन्तु सामान्य मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रायः सभी प्रश्नों के समावेश करने का जो इसमें साहस किया गया है वह अत्यन्त सराहनीय है।

ज्योतिष

भारतीय काल गणना—लेखक व प्रकाशक—ज्योतिर्विद पं० देवकीनन्दनजी खंडेलवाल, पो० फतहपुर (जयपुर) राजस्थान। पृष्ठ संख्या १४२, मूल्य २॥=)

यह पुस्तक हिन्दी में अपने ढंग का अपूर्व संग्रह है। यह तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सृष्टि की उत्पत्ति और मण्डल का निर्माण, प्रलय का वर्णन, ग्रह, उपग्रह, कल्पित ग्रह, राशि एवं नक्षत्रों की स्थिति, गति, आकार आदि का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है।

द्वितीय भाग में सृष्टि के आरम्भ से आज तक प्रयोग में आने वाली भिन्न भिन्न काल-गणनाओं का वर्णन किया गया है। साथ में विश्व का स्थिर समय (स्टेन्डर्ड टाइम) एवं सूर्योदय सारणी दी गई है।

तृतीय भाग में विभिन्न भारतीय तथा इतर देशीय ६० संवत्सरों का वर्णन, महाभारत काल का निर्णय, प्रचलित संवतों के १०००० वर्ष के कैलेण्डर, भारतीय इतिहास में मत वैमत्य के कारण, उनमें एकरूपता लाने के लिये युक्तियाँ, युगों का वास्तविक मान एवं प्रारंभ तिथि का निर्णय, भारतीय संवतों के प्रचलन में सौर, चान्द्र आदि की ईस्वीय सन् से अधिक सुविधाएँ आदि आदि का वर्णन किया गया है।

पुस्तक वैसे तो सभी के लिये उपयोगी है पर ज्योतिष विद्या के प्रेमियों के लिये तो अत्युपयोगी है।

पुस्तक के विद्वान संग्रह-कर्त्ता ने पुस्तक के प्रथम भाग के सृष्टि परिचय में सभी ग्रह व उपग्रहों का जहां वर्णन किया है वहीं ध्रुव तारे का भी वर्णन किया है। आपने उस में लिखा है—पृष्ट २३ पंक्ति प्रथम—'परन्तु सीधे नेत्रों द्वारा देखने पर ध्रुव स्थिर ही दिखाई देता है। यदि किसी उच्च स्थान से दो छिद्रों वाले घड़े में से ध्रुव तारे का निरीक्षण करके उस घड़े को उसी स्थान में स्थिर कर दिया जाय और पुनः उन दोनों छिद्रों में से देखने पर कुछ समय के पश्चात् ध्रुव तारा दिखाई नहीं देता। इससे ध्रुवतारे का गतिमान् होना सिद्ध होता है।' परन्तु ध्रुव तो ध्रुव ही है। गतिमान नहीं। गतिमान 'ध्रुव' नहीं हो सकता। 'आर्य्य-भटीय' में इसके लिये बड़ी सुगम बात लिखी है। उसमें लिखा है कि जिस प्रकार नाव में यात्रा करने वाले को नदी तट के वृक्ष चल दिखाई देते हैं पर हैं वास्तव में वे अचल, स्थिर, इसी तरह ध्रुव तो वास्तव में स्थिर ही है, पर पृथ्वी घूमती है। अतः पृथ्वी पर रहने वालों को ध्रुव तारा चाहे गतिमान दिखाई दे पर है वह स्थिर ही। पुस्तक संग्राह्य है।

—प्रज्ञनाथ शर्मा ज्योतिषाचार्य

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य-शिक्षा—लेखक—श्री दयाशङ्कर पाठक, प्रकाशक—जयपुर प्रिंटिंग वर्क्स, चौड़ा रास्ता जयपुर। पृष्ठ ३५८, मूल्य ४) साहित्य-सन्देश के ग्राहकों के लिए २॥)

इस पुस्तक में स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी बातों का वर्णन किया गया है। स्वास्थ्य क्या है, प्रकृति किस प्रकार स्वास्थ्य को ठीक रखती है। भोजन, हवा और पानी कैसा होना चाहिए और स्वास्थ्य पर किसका क्या असर पड़ता है। प्राणायाम और योगासन कैसे करने चाहिए। व्यायाम कौन-कौन से और किस प्रकार किए जाँय। मालिश कैसे की जाय, कहाँ की मालिश से क्या हानि लाभ होता है—आदि बातें इसमें लिखी गई हैं और सैकड़ों चित्रों द्वारा उन्हें समझाया गया है। शरीर रचना का और मल-मूत्र विज्ञान का भी ज्ञान कराया गया है। रोगोत्पादक कीटाणु कौन कौन होते हैं, उनसे किस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काश्मीर-साहित्य पर प्रकाश—

(पृष्ठ २१४ का शेषांश)

की एक कवयित्री श्रीमती अरिनमाल हुई हैं। आज भी उनके गीत गाते-गाते काश्मीरी का हृदय-भर आता है। काश्मीरी के काव्य-निर्माण में इस प्रकार कवयित्रियों का प्रमुख हाथ रहा है।

आधुनिक युग के प्रारम्भ में भी एक शाखा सूफीवाद से प्रभावित रही। परन्तु इस युग के सूफीवादी काव्य पर सन्त प्रवृत्ति की छाप अधिक रही। कवि प्रकाशराम, परमानन्दजी, कृष्णराजदान, लक्ष्मणजी आदि सन्त कवि इसी परम्परा में आते हैं। इन्होंने वेदान्त का आधार लेकर प्रकृति और प्रेम को पद्यबद्ध किया। दूसरी ओर गीत रचना बराबर जारी रही। उसका लोकगीत का रूप 'रोफ' की शकल में रहा। आज भी त्यौहारों पर, ब्याह-शादी के मौकों पर मुसलमान महिलाएँ मिल कर 'रोफ' गाती हैं और नाचती हैं। कविता की इस धारा को महमूद गामी ने गजल, नजम और मसनवी की शक्ल में सँवारा और लोकप्रिय किया। अधिकांश शब्द काश्मीरी ही अपनाए। पहले या तो संस्कृत बहुल और या फिर फारसी-प्रधान शब्दों से काश्मीरी रचना भरी रहती थी; पर महमूद गामी ने इस परम्परा में काफी सुधार किया। आगे चल कर रसूल मीर ने इसको बहुत ही विकसित किया।

'महजूर' जब पैदा हुए तो गीत अपने जोबन पर थे। कवि महजूर ने अपना रंग भर दिया; पर वह एक ऐसे युग में आये जब कि सामन्तशाही ने अपना विकराल रूप दिखाया था। इसलिए 'महजूर' ने जहाँ काश्मीरी गीत को अपनी कल्पना से प्राणवान किया, वहाँ वे विद्रोह करने से रुक न सके। उन्होंने देखा कि काश्मीरी अपने ही वतन में पराया है। वह बेबस है। उसके निशात और शालिमार नहीं है। काश्मीर की सुन्दर घाटी में वह लुट रहा है, पिट रहा है तो उसका कवि चीत्कार कर उठा। उसने राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ सांस्कृतिक आन्दोलन तेज किया। इस अर्से तक और अनेक कवि इस संघर्ष में आ चुके थे। मैं (कवि नादिम) भी उनमें से एक था। कवि आजाद महजूर के ही जमाने में बानी कवि के रूप में सामने आए। अफसोस! वह जवानी में ही काल-कवलित हुए। मिर्जा आरिफ की रचनाओं ने भी प्रेरित किया। 'काश्मीर छोड़ दो' के गीतों में काश्मीरी कवि की बोलती बन्द करने का प्रयास किया गया; परन्तु उसके ठीक बाद ही जब पाकिस्तानी आक्रमण की लपेटों ने उस स्वर्गभूमि को आ घेरा, तो वह बाँध टूट गया। सामन्तशाही तब दम तोड़ चुकी थी। ऐसे मौके पर काश्मीरी कवि 'जङ्गबाज खबरदार' का नारा देकर जनता को प्रबुद्ध करने लगा। उस समय की रचनाओं में वह गजलियानी रंग-ढंग और छन्द व तुकों की बन्दिश छूट गई। कविता का प्रवाह फूट पड़ा और नए छन्द बने। उस समय से मैंने भी काश्मीरी कविता में पूरे जोश के साथ अपनी रचनाएँ देने का उपक्रम किया। वह आँधी कुछ थम जरूर गई; पर परेशानी अभी दूर नहीं हुई है। अभी भी साम्राज्यवाद की नंगी तलवार सिरों पर लटक रही है। इसलिए अब जो रचनाएँ की जा रही हैं उनका भी एक विशेष रूप रहता है।

एक बात जो अब विशेष रूप से अपनाई जा रही है वह है, काव्य की समीक्षा। जनता से अब काश्मीरी कवि सामन्ती महफिलों से दाद नहीं माँगता, बल्कि देहातों में जाकर देहातियों से अपनी आलोचना कराता है। उनके दुःख-दर्द को, हँसी-खुशी को और उनके गम व गुस्से को उन्हें सुनाकर अथवा उनसे सीख कर कविता में ग्रथित करता है। इस तरह प्रकृति और मानव का सामञ्जस्य करके ही नये काश्मीरी साहित्य की सृष्टि हो रही है।"

बचा जा सकता है तथा रोग का निदान कैसे किया जाय इसको भी संक्षेप में बताया है। कुछ साधारण रोगों का उपचार भी बता दिया गया है। संक्षेप में इस एक पुस्तक से स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुत ज्ञान हो जाता है। पुस्तक उपादेय है।

सौन्दर्य और शृङ्गार—लेखक-श्री दयाशङ्कर पाठक, प्रकाशक-जयपुर प्रिंटिंग वर्क्स जयपुर। पृष्ठ ११२, मूल्य साहित्य-सन्देश के ग्राहकों के लिए १)

स्त्रियों के सौन्दर्य का स्वरूप वर्णन करके उसके विकास का मार्ग लेखक ने बताया है। चित्रों द्वारा विषय को समझाने का भी यत्न किया गया है। अन्तर और वाह्य शृङ्गारों की भी चर्चा की गई है। पुस्तक साधारण-कोटि के पाठकों विशेषकर स्त्रियों के मतलब की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन पर लिखा गया एक अभिनव महाकाव्य

देवार्चन

रचयिता श्री 'करील'

सुन्दर छन्दों में, अत्यन्त परिमार्जित भाषा और हृदय-स्पर्शी भावनाओं का भण्डार, यह सत्रह सर्गों का वृहत महाकाव्य आपके सन्मुख गोस्वामी तुलसीदासजी का सांस्कृतिक नेतृत्व समूर्त कर देगा। इस महाकाव्य को पढ़कर आपका भावना-विभोर हृदय राष्ट्रीयता की उच्च भावनाओं और विश्व संस्कृति के अनिर्वचनीय प्रभाव से स्पन्दित हो उठेगा। हिन्दी में देववाणी संस्कृत के सामर्थ्यवान महाकवियों की पद्धति के चमत्कारिक साक्षात्कार से आपका मन और मस्तिष्क पुलकित हो उठेगा। तुलसीदासजी की महाप्राणा सहधर्मिणी रत्ना का जीवन वृत्त, तथा उनके पुत्र तारक का अवाञ्छनीय निधन आप को करुणार्द्र कर देगा। उनके गुरु शेष-सनातन के प्रवचनों से आपकी कर्तव्य भावना प्रबुद्ध हो जायगी; और स्वतः तुलसीदासजी के महान राम-राज्य की दिव्य ज्योति आपके नेत्रों को निहाल कर देगी।

शृङ्गार, वीर, शान्त, अद्भुत और करुण रसों का ज्वार, तथा हिन्दी और संस्कृत के विभिन्न छन्दों का ओज, प्रसाद और माधुर्य आपको अवश्य आन्दोलित कर देगा।

चार सौ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ५), कृपया अपनी प्रति आज ही आर्डर भेजकर सुरक्षित करा लीजिये जिससे बाइन्डिंग होते ही भेज दी जाय।

साहित्य-रत्न-भण्डार, ४ गान्धी मार्ग, आगरा।

साहित्य सन्देश आगरा की

सन् १९५१-५२ की फाइल

तैयार है

साहित्य सन्देश के गत वर्ष की पूरी फाइल 'आलोचना विशेषांक' सहित सजिल्द तैयार हैं, फाइलों के शीघ्र समाप्त होने की आशा है। मूल्य ५) पोस्टेज ।।।=)

फाइल की सूची मुफ्त मँगायें

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sahitya Sandesh, Agra
DECEMBER, 1952.

REGD. No. A. 263.
License No. 16.
Licensed to post without prepayment.

साहित्य-सन्देश के विशेषाङ्क स्थायी साहित्य की वस्तु होते हैं

साहित्य-सन्देश

का

आगामी—जनवरी-फरवरी १९५३ का अङ्क

कहानी विशेषांक

इसमें—

- कहानी कला का निरूपण।
- कहानी के तत्वों का विशद विवेचन।
- हिन्दी कहानी साहित्य का इतिहास।
- हिन्दी कहानी के मूल स्रोत का अन्वेषण।
- हिन्दी की कहानियों और कहानीकारों का परिचय और आलोचना।

यथार्थ में

कहानी के तत्वों और हिन्दी-कहानी के सम्बन्ध में सब कुछ इस विशेषाङ्क में होगा। लब्ध-प्रतिष्ठ तथा प्रामाणिक विद्वानों की लेखनी के प्रसाद के रूप में कहानी-साहित्य पर विविध निबन्ध तथा प्रत्येक आवश्यक जानकारी इस विशेषाङ्क में मिलेगी।

विशेषाङ्क आवश्यकतानुसार ही छपवाया जा रहा है अतः आज ही वार्षिक मूल्य ४) भेज कर उसके ग्राहक बन जायँ और अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

४, गांधी मार्ग, आगरा।

आवश्यक सूचना

१—कहानी विशेषांङ्क १५ फरवरी के लगभग प्रकाशित होगा। उस अङ्क की तैयारी में जनवरी का अङ्क प्रकाशित न हो सकेगा। अतः पाठक उसकी प्रतीक्षा न करें।

२—जिन ग्राहकों का मूल्य दिसम्बर, जनवरी या फरवरी के अङ्क से समाप्त हो रहा है वे महानुभाव वी० पी० की प्रतीक्षा न कर अपना मूल्य मनीआर्डर से भेजने की कृपा करें जिससे उन्हें विशेषाङ्क छपते ही भेजा जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

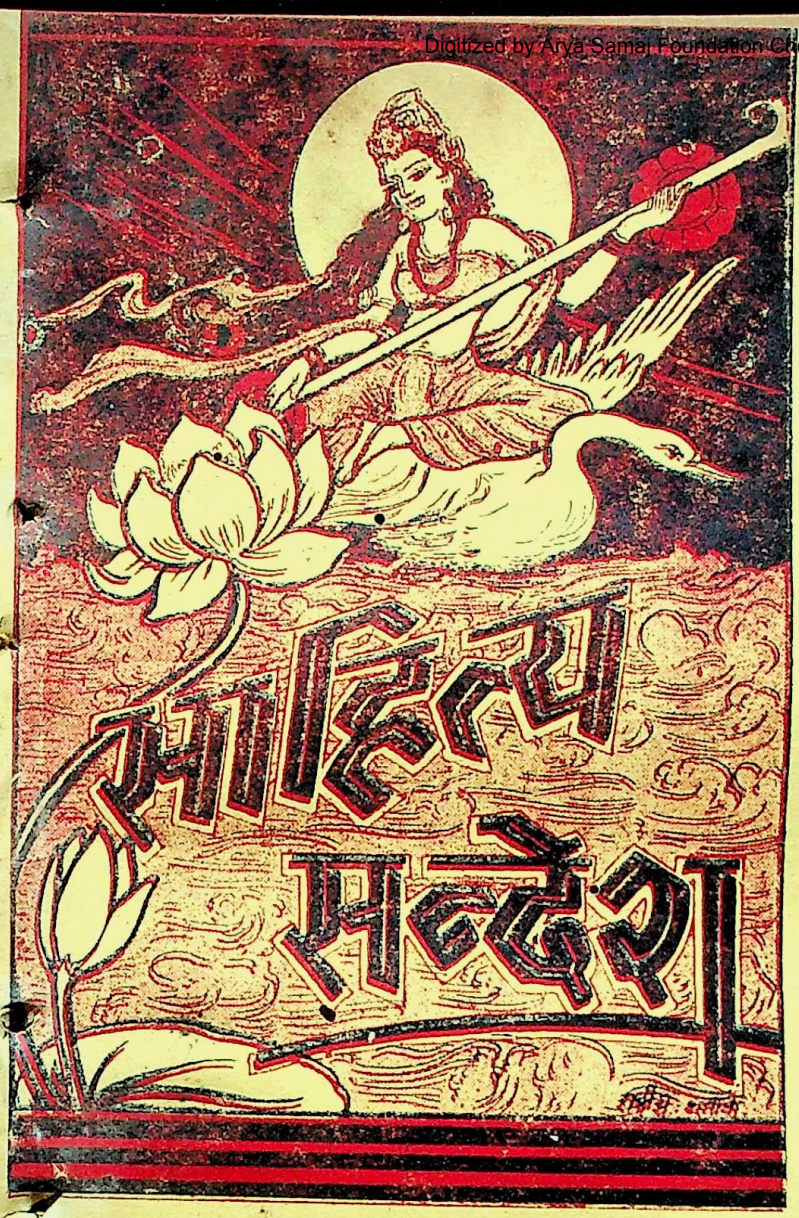

साहित्य सन्देश

वर्ष १४] जनवरी-फरवरी—१९५३ [अङ्क ७-८

सम्पादक

गुलाबराय एम० ए०

सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

महेन्द्र

*

प्रकाशक

साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक

साहित्य-प्रेस, आगरा।

कहानी अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्यसन्देश प्रत्येक माह की १५ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना-विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापस कर दिए जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : दिसम्बर, जनवरी १९५२-५३

आलोचना

सूर पञ्च रत्न की टीका—लक्ष्मीनारायण टंडन १॥)
कर्मभूमि : एक अध्ययन—प्रेमनारायण टंडन १॥)
चन्द बरदाई और उनका काव्य—त्रिवेदी ८)
प्रसाद का जीवन और साहित्य—रामरतन भ० ५)
पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त—श्री लीलाधर गुप्त ६)
हिन्दी साहित्य का परिचय—आ चार्य चतुरसेन ४)
हिन्दी छन्द प्रकाश—रघुनन्द शास्त्री ४)
हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास—देवीशरण रस्तोगी ६)
हिन्दी गद्य साहित्य—शिवदानसिंह चौहान २)
सूर बाल कृष्ण पदावली—प्रभु दयाल मीतल १॥)
सूर रामचरित— ,, ,, १॥)
भक्त कवि व्यासजी— ,, ,, ६)

कविता

भूमि की अनुभूति—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द २॥)
त्रिवेणी के सङ्गम—वासुदेव गोस्वामी १।)

कहानी

शरत साहित्य भाग २५ और २६ प्रत्येक १॥)
जय एक लिंग—मदनगोपाल सिंहल १॥)
संध्यादीप—अनु० मां० परदेशी ३)
जिन्दगी के थपेड़े—विष्णु प्रभाकर ३)
दशकुमार चरित—पं० निरञ्जनदेव आयु० ५॥)
सीमा—कृष्णचन्द एम० ए० ३)
अन्धा छत्रपति—,, ,, ३)
काँटे— ,, ,, ३)
पञ्चतंत्र—डा० मोतीचन्द ४॥)

उपन्यास

पतवार—भगवतीप्रसाद वाजपेयी ५)
शून्य का विस्तार—शैलेश १।)
प्रवञ्चना—गुरुदत्त ५)
सुखदा—जैनेन्द्रकुमार ४)
उल्का—वि० स० खांडेकर ६)

नाटक

सोरों का सन्त—रामदत्त भारद्वाज १॥)
परीक्षा—रघुवीरशरण 'मित्र' २)
रंगभूमि—मदनगोपाल सिंहल १)
जीवन और संघर्ष—उदयशङ्कर भट्ट ३)
गौतमनन्द—जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' १॥।)

इतिहास

प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ३)
कला और संस्कृति—वासुदेवशरण अग्रवाल ४॥)

स्फुट

जीना सीखो—देशराज गंधर्व २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मंगाने का पता—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी विशेषाङ्क की विषय सूची

१—हमारी विचारधारा—	सम्पादक	[illegible]
२—संस्कृत आलोचना साहित्य में कहानी का स्वरूप—	श्री भालचन्द्र गोस्वामी सा० रत्न, साहित्यालङ्कार	[illegible]
३—भारत के कथा साहित्य की परम्परा—	डा० भोलाशङ्कर व्यास एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री	[illegible]
४—वैदिक कहानियाँ—	डा० मुन्शीराम शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०	[illegible]
५—जातक कथाएँ और उनका महत्व—	श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए०	[illegible]
६—लोक-कहानियों का उदय—	डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०	[illegible]
७—कहानी की परिभाषा—	प्रो० कमला गर्ग एम० ए० (दिल्ली वि० वि०)	[illegible]
८—कहानी के तत्व—	श्री मथुराप्रसाद गर्ग एम० ए०	[illegible]
९—कहानी का स्वरूप—	प्रि० श्री सद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए०	[illegible]
१०—कहानी : एक अनुशीलन—	डा० सुधीन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०	[illegible]
११—कहानी का मनोवैज्ञानिक सत्य—	बा० गुलाबराय एम० ए०	[illegible]
१२—लघुकथा	श्री सत्य	[illegible]
१३—हिन्दी कहानी कला का विकास—	डा० लक्ष्मीनारायणलाल एम० ए०, डी० फिल०	[illegible]
१४— ,, ,, ,,	कुमारी डी० शान्ता एम० ए०	[illegible]
१५—तुलनात्मक अध्ययन : कहानी और उपन्यास, कहानी और एकाङ्की, कहानी और निबन्ध—	प्रो० वासुदेव एम० ए०	[illegible]
१६—प्रेमचन्द और उनके बाद की कहानियाँ—	डा० हरदेव बाहरी एम० ए०, डी० लिट्० (प्रयाग वि० वि०)	[illegible]
१७—हिन्दी के प्रमुख कहानीकार—	श्री त्रिलोचन पाण्डेय बी० ए०	[illegible]
१८—हिन्दी की सामाजिक कहानियाँ—	डा० ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ एम० ए०, पी-एच० डी०	[illegible]
१९—भविष्यत् कहानी का रूप—	प्रो० शिवनाथ एम० ए० (शान्ति निकेतन)	[illegible]
२०—उर्दू की कहानियाँ—	पं० हरिशङ्कर शर्मा	[illegible]
२१—तेलुगु (आन्ध्र) कहानी साहित्य—	श्री न० वी० राजगोपालन	[illegible]
२२—तमिल का कहानी साहित्य—	श्री एम० सुब्रह्मण्यम् सा० र०	[illegible]
२३—कन्नड़ का कहानी साहित्य—	श्री एम० जी० कुलकर्णी	[illegible]
२४—मराठी कहानी साहित्य का क्रमिक विकास—	श्री बलवन्त लक्ष्मण कोतमिरे	[illegible]
२५—गुजराती साहित्य के पाँच कर्णधार—	श्री हरेश झवेरी	[illegible]
२६—बङ्गला भाषा में कहानी—	श्री हरप्रसाद बागची एम० ए०	[illegible]
२७—आज की कहानी की गतिविधि : पश्चात्य आदर्श—	प्रो० नागरमल सहल एम० ए०	[illegible]
२८—कहानी का शिल्प-विधान—	डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०	[illegible]
२९—कहानी की प्रणालियाँ और शैलियाँ—	बाबू गुलाबराय एम० ए०	[illegible]
३०—कहानी और उपन्यास : एक समीक्षा—	आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी (काशी वि० वि०)	[illegible]
३१—हिन्दी कहानी की आलोचना—	श्री त्रिलोचन पाण्डेय	[illegible]
३२—मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी : क्यों—	प्रमुख कहानीकारों की अपनी लेखनी से	[illegible]

१ श्री सुदर्शन, २ श्री वृन्दावनलाल वर्मा, ३ महाकवि श्री निराला, ४ श्री राही, ५ पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', ६ आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री, ७ श्री जैनेन्द्रकुमार, ८ श्री शिवपूजन सहाय, ९ डा० रांगेय राघव एम० ए०, पी-एच० डी०, १० पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, ११ श्री सियारामशरण गुप्त।

——१ प्रो० टी० नरसिंहाचार्य एम० ए०, २ श्री रामकृष्णदास, ३ प्रो० विनयमोहन शर्मा एम० ए० (नागपुर वि० वि०), ४ डा० रामविलास शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा संस्थाओं के लिये हमारा नया प्रयास

यह मार्च का महीना आर्थिक वर्ष का अन्तिम महीना है, इस मास में सभी स्कूल, कालिज तथा अन्य संस्थाएँ अपने बजट के अनुसार पुस्तकें खरीदेंगी। उन्हें हम इस विज्ञप्ति द्वारा याद दिला रहे हैं कि वे अच्छी और सस्ती पुस्तकें हमसे ३१ मार्च से पहले ही खरीद लें। हम ३१ मार्च १९५३ तक इस सूची की **सभी पुस्तकें पौने मूल्य में** देंगे, जो शिक्षा संस्थाएँ नहीं हैं वे आर्डर के साथ ५) मनीआर्डर से पेशगी भेजेंगे तो उन्हें भी यह रियायत मिल जायगी।

आलोचना

रास पञ्चाध्यायी—उदयनारायण तिवारी	२)
आलोचना के पथ पर—कन्हैयालाल सहल	४)
साहित्य सुषमा—नन्ददुलारे वाजपेयी	२)
साहित्यिका—हंसकुमार तिवारी	१।।)
राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान—कन्हैयालाल सहल	३)
गोदान : समीक्षा—प्रेमनारायण शुक्ल	१।।)
काव्य की परिभाषा—रामचन्द्र श्रीवास्तव	१।)
कहानी ,, ,,	।)
काव्य का आत्मा ,, ,,	।)
आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ ,,	।)
प्राचीन कवि—डा० सुधीन्द्र	२)
आधुनिक कथा साहित्य-गङ्गाप्रसाद पाण्डे	२।)
कामायनी समालोचना—ब्रजलाल वर्मा	२।)
काव्य रश्मि—आचार्य धर्मेन्द्र एम० ए०	१।।)
कहानी कला और उसका विकास—त्रिपाठी	३)
कबीर वाणी—प्रेमनारायण टण्डन	२।)
काव्य रचना ,,	।-)
चन्द्रगुप्त एक अध्ययन ,,	१।)
ध्रुवस्वामिनी एक अध्ययन ,,	१)
गोदान ,, ,, ,,	१।।)
स्कन्दगुप्त ,, ,, ,,	१।)
सेवासदन ,, ,, ,,	१।)
प्रेमाश्रम—प्रेमनारायण टण्डन	१।)
कर्म भूमि एक अध्ययन— ,,	१।।)
कुरुक्षेत्र की टीका— ,,	।३)
प्रेमचन्द उनकी कृतियाँ कला—	२।)
नूरजहाँ की टीका—राम खेलावन चौधरी	२।)
यशोधरा एक अध्ययन-लक्ष्मीनारायन टंडन	१।।)
आधुनिक कवि पंत की टीका—,, ,,	२।)
पञ्चवटी एक अध्ययन— ,, ,,	।।।=)
वत्सराज एक अध्ययन— ,, ,,	।।)
सूर पञ्च रत्न की टीका—तेजनारायण टण्डन	२)
काव्य कल्पतरु का सरल अध्ययन— ,,	१।)
प्रयोग कालीन बच्चन—सत्यप्रकाश मिलिन्द	१)
प्रस्थान—कामताप्रसाद	।।।)
बुद्धि तरङ्ग—सद्गुरुशरण अवस्थी	२।)
प्रेमचन्द—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित	२।)
विद्यापति का अमर काव्य—गुणानन्द जयाल	२)
हि० सा० का संक्षिप्त इतिहास-गयाप्रसाद शुक्ल	२)
हि० सा० और उसके अङ्ग— ,, ,,	१।)
हिन्दी गद्य निर्माता—श्रुतिकान्त एम० ए०	१)
हिन्दी कवि परिचय— ,, ,,	१।)
तुलसी गीतावली—गुलाबराय	।)
त्रिवेणी—सुदामा प्रसाद चतुर्वेदी	१।)
रीतिकाल और रत्नाकर—कृष्णकुमार	२।)
प्रसाद के नाटकीय पात्र—जग० ना० दीक्षित	५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता

हिमाच्छन्ना—रामेश्वरलाल खण्डेलवाल २॥)
दूब के आँसू—पद्मसिंह शर्मा कमलेश २)
कृष्णायन (अवतरणकांड)—द्वारिकाप्रसाद मिश्र २)
कृष्णायन—(मथुराकाण्ड) ,, २)
जीवन संगीत—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ४)
विश्वज्योति बापू—रामगोपाल शर्मा दिनेश १॥)
बैकाली—हितैषी १॥)
जननायक—रघुवीर शरण मित्र १५)
तार सप्तक—अज्ञेय २॥)
कवितावली सटीक—रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री ३)
प्रांगण—बालकृष्ण बलदुआ २)
बंदी—रघुवीर शरण मित्र ३)
अमर आशा—श्रीमन्नारायण अग्रवाल ३॥)
आभा—तारा पाण्डे १)
गुनगुन—शिखरचन्द्र जैन ॥=)
गीत—बालकृष्ण बलदुआ ॥)
गाँव की ओर—अरविन्द ॥)
जमाल दोहावली—महावीरसिंह गहलौत १)
देश दर्शन—बैजनाथ प्रसाद सिन्हा ॥)
धरती—त्रिलोचन शास्त्री ३)
धुँए के धब्बे—मनोहर चतुर्वेदी २॥)
ब्रज विनोद—भवानीदास १)
मुक्त पाश—विजयवर्गीय १)
मुकुल माधवी—जटा साहित्य भूषण ।)
मार्शल की सलामी—कुमार योधेय १)
मराली—आचार्य रामलोचन शरण ३)
मजदूर—सुरेशकुमार श्रीवास्तव २)
प्रपात—भयंकर १)
सुकवि सरोज—गौरीशंकर द्विवेदी ३)
शंखनाथ—डा० सुधीन्द्र ।)
बीरवधू—नाथूराम माहौर १)
वासंती ॥=)
गाण्डीव—राकेश ६)
ज्योतिकिरण—कृष्ण कुमार त्रिवेदी १)
मीरा गीतावली—गंगाप्रसाद पाण्डे ॥)
प्यार के क्षण—श्री इन्दु ।)
प्रेम पुष्प मंजरी—ठा० भीकमसिंह १)
हार-जीत—सेवक २)

कहानी

कैबड़े का फूल—श्री इन्दु १।)
हिन्दुस्तानी संस्कृति—जङ्गबहादुरसिंह २)
धुँधली तस्वीरें—नरेन्द्रनारायणलाल १॥=)
जब आकाश भी रो पड़ा—राजबहादुरसिंह २॥)
चवन्नी वाले—सन्तोषनारायण नोटियाल १॥)
कालेज की कहानियाँ—अजान २॥)
स्वामी के पत्र—ज्योतिर्मयी ठाकुर ४)
उपजाऊ पत्थर—राबी १॥=)
एकादशी—तेजरानी पाठक १।)
बुकोसियों की कहानियाँ—मधुकर २)
कृष्णार्जुन युद्ध—रामचन्द्र तिवारी ॥)
अपने गीत—बालकृष्ण बलदुआ १॥)
टूटे हुए दिल—रामप्रतापबहादुर २॥)
दले मले फूल—बिजली १॥)
बृजघोष—राजबहादुरसिंह २।)
मुक्ताहार—बैजनाथराय २)
युगाङ्गिनी—श्री जगन्नाथ चौधरी १॥)
अंजुलीना—स० न० कुलश्रेष्ठ १)
रेखाएँ लहरें और परछाइयाँ—यादव ३)
हमारी शेरवानी—शम्भूनाथ सक्सेना १॥)
हसना रोना—गङ्गाप्रसाद पाण्डे २)
दुष्यन्त और शकुन्तला—शान्तिस्वरूप गौड़ २।
संसार की मनोरम कहानियाँ—
रामवृक्ष बेनीपुरी १॥)
भीखू की टोली—सुश्री शारदा बेदालङ्कार १।)

उपन्यास

अवध की नवाबी—गणेश पाण्डे २॥)
अपना दूध—भोलानाथ तिवारी २॥)
अछूता बन्धन—केशवकुमार ठाकुर २॥)
एक अपरिचित स्त्री के पत्र—स्टीफेन ज्विग १।)
कारमेन—अ० मधुकर ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] के दावेदार—शरतचन्द्र	५)
[illegible]दाह— ,,	४)
[illegible]कारा— ,,	१)
[illegible] दीदी— ,,	१)
[illegible] प्रश्न— ,,	४)
चरित्रहीन— ,,	५)
[illegible]न लहरी—विश्व मोहनकुमार	२॥)
[illegible]ती देवता—पुरोहित	२।)
[illegible]टिली पुत्रक—वाजपेयी	२)
[illegible]ला की साधना-भगवतीप्रसाद वाजपेयी	२॥)
[illegible]ड़ा बाग—पाण्डे	१।॥)
[illegible] साहब—गिरजादत्त शुक्ल गिरीश	४)
[illegible]ती—जानकी प्रसाद	॥।)
[illegible]— ,,	१)
[illegible] पिता खुद एक समस्या— सन्तोष कुमार मेहता	३)
[illegible] की पगध्वनि—श्री कृष्ण वाजपेयी	३)
[illegible]का—विजयकुमार मिश्र	३)
[illegible]दत्त—चन्द्रभाई भट्ट	२)
[illegible]ई शेर—भगवानदास अवस्थी	१)
[illegible] की ज्वाला—कुमारी प्रभा	३)
[illegible]ी—कंचनलता संवरलाल	५)
[illegible]—मैक्सिम गोर्की	५)
[illegible]भिलाषा—कपिलदेव	३)
[illegible]वा कौन—सच्चिदानन्द पाण्डेय	२॥)
[illegible]ग्रहण—महावीर प्रसाद केयूर	२॥)
[illegible]ना का मूल—रवीन्द्रनाथ ठाकुर	४)
[illegible]श्वरी—विकल	३)

नाटक

[illegible]द्ध विजय—बैजनाथ राय	१॥)
[illegible] परीक्षित—गौरीशङ्कर मिश्र द्विजेन्द्र	१॥)
[illegible]ति—गोविन्दवल्लभ पन्त	१॥।)
[illegible]मा—कञ्चनलता सम्वरलाल	१।)
[illegible] का उतार—	=)
[illegible] का सन्त—रामदत्त भारद्वाज	१॥)
[illegible]ा—रघुवीरशरण मित्र	२)

राजनीति

अगस्त ब्यालीस—सीताराम गोस्वामी	५)
बापू के प्रति श्रद्धाञ्जलि—प्रभाकर ठाकुर	१)
फाँसी—रघुवीर शरण मित्र	३)
संविधान की रूपरेखा—श्रीपालचन्द एम० ए०	॥)
राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ—रतनलाल बंसल	१॥)
आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त— रामनारायण यादवेन्दु	४)
बापू के हरिजन—गांधी जी	२)
बापू का नर-लोक देव-लोक-सीताराम गो०	१॥)
भगवान बापू—राजेन्द्रसिंह	॥)
भारत में मंत्री मिशन—कौशल प्रसाद जैन	१)
बलिया में क्रांति और दमन-देवनाथ उपा०	३॥)
बंगाल में हिन्दू संस्कृति के नाश का प्रयत्न— कौशल प्र० जैन	॥)
बापू जी घर में—चतुरसैन शास्त्री	१)
बापू के महादेव—प्रभुदयाल विद्यार्थी	१॥)
हमारा संघर्ष—क्षेमचन्द सुमन	४)
जापान की राजनीतिक प्रगति— पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे	४॥)
हिन्दी राज तरंगिणी—गोपीकृष्ण शास्त्री	४॥)

यात्रा सम्बन्धी

माओ के देश में—रामआसरे	१)
यात्रा के पन्ने—राहुल	६)

स्वास्थ्य तथा चिकित्सा

आत्म संयम—महात्मा गांधी	१॥)
आहार और आरोग्य—ज्योतिर्मयी	३)
सोने की कला—डा० हीरालाल	॥।)
स्वास्थ्य का साधन—महात्मा गांधी	१॥।)
आहार विज्ञान—हनुमानप्रसाद शर्मा वैद्य	३)
स्वास्थ्य शिक्षा और व्यक्तिगत व्यायाम— प्रकाशचन्द यादव	६)
दृढ़ चिकित्सा—पं० गणेशदत्त जी शर्मा	॥।)
दीर्घ जीवन—डा० नीलकंठ राज	।=)
नवीन प्राकृतिक चिकित्सा-डा०हीरालाल	२॥।=)

(शेष सब से अन्तिम पृष्ठ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १५] आगरा—जनवरी-फरवरी १९५३ [अङ्क ७-८

हमारी विचार-धारा

कहानी विशेषाङ्क—

साहित्य सन्देश का कहानी विशेषाङ्क पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए हमें बहुत हर्ष है। कहानी के विविध पहलुओं पर इस अङ्क में विभिन्न मान्य विद्वानों ने विविध दृष्टिकोणों से विचार किया है। एक स्थल पर सभी ज्ञातव्य बातों को जुटाने में हमें कहाँ तक सफलता मिली है—इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही कर सकेंगे। हमें तो इतना ही सन्तोष है कि हमने अपनी शक्ति भर प्रयत्न किया और विद्वान लेखकों का हमें पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

हम चाहते थे कि इस अङ्क में विशिष्ट कहानीकारों की कला के सम्बन्ध में स्वतन्त्र और विशद आलोचनात्मक लेख देते पर वैसा करने में स्थान बहुत अपेक्षित था जो सम्भव नहीं था। अतः हमें उसे छोड़ना पड़ा। फिर भी विभिन्न लेखकों द्वारा विभिन्न प्रसङ्गों में प्रमुख कहानीकारों की कला की विशेषताओं की जो चर्चा की गई है वह हम समझते हैं कि कहानी-साहित्य के अध्ययन करने वालों को विशेषरूप से सहायक होगी। प्रमुख लेखकों की चर्चा एक साथ करने में उन पर तुलनात्मक प्रकाश भी पड़ जाता है।

कहानी पर अध्ययन—

प्रयाग विश्व विद्यालय के प्राध्यापक श्री हरदेव बाहरी एम० ए०, डी० लिट् हिन्दी कहानियों का एक कोश बना रहे हैं जिसमें प्रत्येक लेखक की प्रत्येक कहानी का कथानक, उसके पात्रों की चर्चा और उसकी विशेषता आदि का पूर्ण परिचय रहेगा। यह कोश हिन्दी के लिए एक अनूठी वस्तु होगी। कोश आधे से अधिक तैयार हो चुका है। आशा है श्री बाहरी उसे शीघ्र ही पूरा कर देंगे।

श्री भालचन्द्र गोस्वामी ने कथा-साहित्य के सभी अङ्गों का विशेष अध्ययन करके एक वृहद् ग्रन्थ तैयार किया है। इस ग्रन्थ का ही एक लेख संस्कृत-साहित्य के सम्बन्ध में इस अङ्क के प्रारम्भ में दिया जा रहा है। हम आशा करते हैं कि यह ग्रन्थ भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० लक्ष्मीनारायणलाल भी कहानी साहित्य पर विशेष अध्ययन कर रहे हैं।

अब तक कहानी विषयक जितना आलोचना साहित्य निकल चुका है उसकी भी चर्चा हमने एक स्वतन्त्र लेख में की है। हमारा उद्देश्य यही है कि जो महानुभाव इस विषय पर और अधिक अध्ययन करना चाहें उन्हें उपलब्ध सामग्री का पूरा ज्ञान हम दे दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस क्षेत्र की आवश्यकता—

कहानी साहित्य की उन्नति हिन्दी में कम नहीं हुई है, फिर भी अभी कुछ विषय तो प्रायः अछूते पड़े हैं। राष्ट्रीय कहानियों की बड़ी कमी है। वीरता लाने वाली कहानियों की भी बड़ी आवश्यकता है। युद्ध, अन्वेषण, साहस, साहसिक यात्रा आदि की कहानियाँ भी जितनी अधिक लिखी जाय, उतना अच्छा हो। हमारे देश के नौजवानों में नैतिकता और उच्च भाव भरने वाले साहित्य सृजन की ओर हमारे लेखक ध्यान दें तो देश उन्नत हो। राष्ट्रनिर्माण के बहुत से पहलू हैं, उनमें सभी पर हम कहानियों द्वारा प्रकाश चाहते हैं जिससे साहित्य अपने नाम को सार्थक कर सके।

पाठकों से निवेदन—

पाठकों से एक निवेदन है। यदि उन्हें यह अङ्क रुचिकर प्रतीत हो तो, और न भी हो तो भी, दोनों दशाओं में वे अपना अभिमत हमें भेजने की कृपा करें। उससे हमें बहुत लाभ होगा। जिन महानुभावों को यह अङ्क पसन्द आवे उनसे हमारा इतना आग्रह और है कि वे इस पत्र की चर्चा अपने मित्रों और साथियों से करके उसके स्थायी पाठकों की संख्या वृद्धि करने में हमारे सहायक बनें। जो सज्जन इस ओर जितनी सहायता देंगे हिन्दी के प्रचार में वे उतने ही सहायक सिद्ध होंगे।

सहायक ग्राहक—

एक बार १००) देकर, वह भी जब चाहें तब लौटने की शर्त पर, सहायक ग्राहक बनने वालों को 'साहित्य-सन्देश' बिना मूल्य दिए जाने का हमारा नियम है। हमारे पास कई अध्यापकों तथा अन्य कुछ सज्जनों के पत्र आए हैं और उन्होंने यह आग्रह किया है कि यह १००) एक साथ न लेकर १०)—१०) करके दस महीनों में ले लिया जाय। ऐसे प्रेमी बन्धुओं की सुविधा के लिये हमने १ जनवरी से यह नियम भी कर लिया है। जो सज्जन चाहें इस सुविधा से लाभ उठा सकते हैं और पत्र बिना मूल्य पा सकते हैं।

वेदव्यासजी के स्मारक की नींव—

कानपुर, ३१ जनवरी का समाचार है। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने कल यहाँ से ५० मील की दूरी पर स्थित कालपी में भारत के महान महाकाव्य 'महाभारत' के रचयिता वेदव्यास के स्मारक की नींव रखी। श्री मुन्शी ने कहा—वेदव्यासजी संसार के प्रथम ऋषि थे। उन्होंने महाभारत में जीवन के प्रत्येक पहलू का चित्रण किया है और महाभारत के सभी चरित्र सजीव हैं। तब से शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, अनेक साम्राज्य बने और बिगड़ चुके हैं, मानवता का दृष्टिकोण बदल चुका है लेकिन फिर भी महाभारत प्रत्येक युग, प्रत्येक परिस्थिति, प्रत्येक सम्बन्ध और प्रत्येक दृष्टिकोण को मूल्य प्रदान करता है।

स्मारक एक स्तम्भ के रूप में होगा जो यमुना के तट पर १५० फीट ऊँचे टीले पर बनाया जायेगा। श्री मुन्शी ने आशा प्रकट की कि कालपी के लोग स्मारक को आकर्षक बनाएँगे तथा उसे तीर्थ स्थान बना देंगे।

हम आशा करते हैं कि यह स्मारक शीघ्र ही मूर्त रूप ग्रहण करेगा—केवल कागज पर ही चित्र रूप में नहीं रहेगा।

श्रीमती होमवती का स्मारक—

हिन्दी साहित्य परिषद मेरठ के तत्वावधान में मेरठ के साहित्यिकों ने हिन्दी की कवियित्री तथा कहानीकार श्रीमती होमवती का स्मारक बनाने का निश्चय किया है। यह मेरठ कालिज में हिन्दी भवन के रूप में बनाया जायगा। साथ ही श्रीमती होमवती के लिए एक स्मारक ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जा रहा है। २१-२२ फरवरी को हिन्दी-भवन का शिलान्यास होगा। इस अवसर पर कुछ अन्य कार्यक्रम भी रखे गये हैं। श्रीमती कमला चौधरी और श्री कृष्णचन्द्र शर्मा इस आयोजन को सफल बनाने का पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं। श्रीमती होमवती ने हिन्दी में उत्कृष्ट कहानी लिखी हैं। उनकी 'निसर्ग' और 'धरोहर' हिन्दी के प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। हम इस आयोजन की सफलता चाहते हैं।

राजधानी में हिन्दी भवन—

भारत की राजधानी दिल्ली में हिन्दी का कोई भवन न होने की कमी को आज कल बहुत अनुभव किया जा रहा है। अब जब वहाँ दिल्ली के अतिरिक्त बाहर के भी चोटि के कितने ही साहित्यिक रहते हैं—इस कमी का अखरना स्वाभाविक ही है। प्रयाग, काशी, पटना, आगरा, इन्दौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदरास, वर्धा आदि स्थानों पर हिन्दी प्रचार के केन्द्र स्थान और उनके अपने भवन हैं—दिल्ली में इसका न होना खेद की बात है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी इस के लिए अधिक सचेष्ट प्रतीत होते हैं। हम आशा करते हैं कि दिल्ली की सम्पन्न जनता इस कमी की पूर्ति शीघ्र ही करेगी।

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद—

बिहार सरकार की ओर से सञ्चालित उक्त संस्था पटना में कई वर्ष से हिन्दी सेवा का काम कर रही है। हिन्दी के तपस्वी लेखक श्री शिवपूजन सहाय उसके मन्त्री हैं। परिषद की ओर से प्रति वर्ष दो भाषण कराने की व्यवस्था की गई है। ऐसे तीन भाषण हो भी चुके हैं जिनमें एक हिन्दी के आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी का था। आपका यह भाषण परिषद की ओर से प्रकाशित भी हो गया है। उसका शीर्षक है—'हिन्दी-साहित्य का आदिकाल'। हम इस प्रयत्न का स्वागत करते हैं।

दिल्ली प्रान्तीय सम्मेलन—

जनवरी के अन्तिम सप्ताह में दिल्ली में प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था। उसका उद्घाटन भाषण देते हुए श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने जो शब्द कहे हैं वे बड़े मार्मिक हैं और उन पर सभी राजनैतिक नेताओं को ध्यान देने की जरूरत है। आपने कहा कि—"यह हमारी आजादी दो कौड़ी की भी नहीं होगी यदि नींव अर्थात् साहित्य नहीं बढ़ता है।" वास्तव में बात ठीक है—साहित्य जन जीवन जागृति की जान है। उसकी ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जा रहा है—इस कमी की ओर हमारे नेताओं और अधिकारियों को ध्यान देने की जरूरत है।

अजमेर प्रदेश में हिन्दी—

हैदराबाद में एक हिन्दी सभा के तत्वावधान में भाषण देते हुए अजमेर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने कहा—'मुख्यमन्त्री बनने के बाद मैंने अपने राज्य में हिन्दी के लिए जो कुछ किया है उसका लेखा-जोखा मैं हिन्दी की इस संस्था के सामने देना चाहता हूँ। मैंने ज्यों ही पद-ग्रहण किया, पत्रावलियों पर हिन्दी में आदेश देना शुरू कर दिया। आज हमारे राज्य के मन्त्री पत्रावलियों पर हिन्दी में ही आदेश देते हैं। इसका राज्याधिकारियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा और धीरे-धीरे वहाँ हिन्दी ही का प्रयोग होने लगा है।' हम आशा करते हैं कि उत्तर प्रदेश सरकार का भी काम हिन्दी में जल्दी ही होने लगेगा। सरकार की ओर से इस तरह की घोषणा तो कई बार हुई है और बहुत कार्य हिन्दी में होने भी लगा है, पर अभी अधिकतर काम अङ्गरेजी में होता है। यह बदलना चाहिए।

बङ्गप्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन—

कलकत्ता में ५—६ फरवरी को बङ्गाल प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन प्रो० प्रियरञ्जन सेन एम० एल० ए० की अध्यक्षता में हुआ। श्रद्धेय टण्डनजी ने अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहा कि—'प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा तो प्रान्तीय भाषाओं में ही दी जाय; किन्तु उसके बाद की उच्च शिक्षा सारे देश में हिन्दी में ही दी जानी चाहिए। टण्डनजी ने उन शिक्षाविज्ञों से अपना मतभेद प्रकट किया जो इस बात की वकालत कर रहे हैं कि शिक्षा का माध्यम अंगरेजी ही रहनी चाहिए।

पंजाबी हिन्दी लिपि में—

हाल ही में हिसार में पञ्जाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था। इस अवसर पर उद्घाटन भाषण में पञ्जाब के प्रतिष्ठित नेता डा० सत्यपाल और सम्मेलन के सभापति स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने पञ्जाबी भाषा को हिन्दी लिपि में लिखने पर बहुत जोर दिया। यह बड़ा शुभ चिह्न है। यदि पञ्जाबी भाई पञ्जाबी भाषा को हिन्दी लिपि में लिखने लगें तो उनका साहित्य हमारे लिए विशेष सुलभ हो जाय और बङ्गला, गुजराती आदि भाषा-भाषियों का भी ध्यान आकृष्ट हो। एक लिपि विस्तार में हम जितना कदम बढ़ा सकें उतना ही अच्छा है।

प्राध्यापकों का सम्मेलन—

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मन्त्रालय की ओर से आयोजित भारत के सभी विश्व विद्यालयों के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्राध्यापकों का एक सम्मेलन २०-२२ जनवरी को दिल्ली में हुआ था। २५ विश्व विद्यालयों के प्रतिनिधि इसमें उपस्थित थे। सम्मेलन ने निर्णय किया है कि इण्टर परीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक की पढ़ाई में हिन्दी भाषी प्रान्तों में तुरन्त ही हिन्दी को अनिवार्य कर दिया जाय। दूसरे प्रान्तों में यह काम जल्दी से जल्दी हो। सम्मेलन ने प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए तीन कमेटियाँ भी बनाई हैं जो शिक्षा-क्रम में हिन्दी को स्थान दिलाने के लिए शिफारिश करेंगी।

हिन्दी परिषद का अधिवेशन—

विश्वविद्यालयों के हिन्दी अध्यापकों की भारतीय हिन्दी परिषद का वार्षिक अधिवेशन गत मास आगरा में हुआ था। सभापति का आसन लखनऊ वि० वि० के हिन्दी अध्यक्ष डॉ० दीनदयालु गुप्त ने ग्रहण किया था। इस अधिवेशन में प्राध्यापकों का अच्छा समारोह रहा और कई विषयों पर महत्वपूर्ण चर्चा हुई। कई अच्छे निबन्ध भी पढ़े गए। एक दिन अष्टछाप का प्रदर्शन भी हुआ। परिषद में प्राप्त हुए निबन्धों को पुस्तक रूप देने की आवश्यकता है। आशा है इसके लिए प्रयत्न हो रहा होगा।

सूर कुटी की यात्रा—

उक्त परिषद के अवसर पर आये हुए विद्वान प्राध्यापकों ने २५ दिसम्बर को आगरा के निकट ही रुनकुता के पास यमुना तट पर गौघाट पर स्थित प्राचीन सूर कुटी की यात्रा की। यह यात्रा बड़ी भव्य रही। वहाँ पर श्रद्धेय टण्डन जी के द्वारा एक शिला रक्खी गई और डा० धीरेन्द्रजी की अध्यक्षता में महाकवि सूर के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई। यह आयोजन ब्रज साहित्य मण्डल की ओर से हुआ था। सभी समागत सज्जनों ने सूर-स्मारक बनने के अवसर पर पूर्ण सहायता देने का आश्वासन दिया।

कहानीकार का महत्व—

कानपुर में हिन्दी कथाकार सङ्घ की ओर से आयोजित एक स्वागत समारोह में भाषण देते हुए उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री क० मा० मुन्शी ने कहानीकार की प्रशंसा करते हुए कहा—'एक कथा लेखक अपने पाठकों पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है और अपनी कल्पना की ताकत से वह अपने देशवासियों का चरित्र बदल सकता है। उत्तम शिक्षा उपन्यासों और कहानियों के जरिये ही दी जा सकती है।'

उपन्यासकार व कहानीकार के अपने निजी अनुभव बताते हुए उन्होंने बताया कि किस प्रकार एक बार वे सरकार की कोप-दृष्टि से बचे और किस प्रकार उनके उपन्यासों "पटना का प्रभुत्व" "तन-मन" और "गुजरात के नाथ" ने पाठकों में लेखक के लिए प्रेम और आदर पैदा किया। उन्होंने बताया कि यद्यपि वे "घनश्याम" उपनाम से लिखा करते थे और चाहते थे कि पाठक उनकी असलियत को न जाने तथापि अपने पाठकों की आँखों से वे बच नहीं सके।

उपकुलपतियों का निश्चय—

आगरा, लखनऊ और प्रयाग के उपकुलपतियों का एक सम्मेलन जनवरी में लखनऊ में हुआ था। इस सम्मेलन ने निश्चय किया है कि शिक्षा का माध्यम जल्दी से जल्दी हिन्दी कर दिया जाय। इस निश्चय के लिए शिक्षा के यह अधिकारी सचमुच बधाई के पात्र हैं। आशा है शीघ्र ही इस निश्चय को कार्य-रूप में परिणत किया जायगा।

हिन्दी टेलीप्रिंटर—

दिसम्बर के अङ्क में अपनी विचारधारा के अन्तर्गत हमने सूचना दी थी कि भारतीय तार-विभाग टेलीप्रिंटर द्वारा नागरी लिपि में तार भेजने की चेष्टा कर रहा है। हमें हर्ष है कि इस उद्योग में सफलता मिल गई और हैदराबाद में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में इसका प्रयोग भी किया गया। हैदराबाद से जो तार भेजे गए उनकी शब्द संख्या डेढ़ लाख के करीब थी। इसमें से दस हजार से ऊपर शब्दों के तार टेलीप्रिंटर द्वारा हिन्दी में भेजे गए।

राष्ट्रीय पुस्तकालय की स्वर्ण जयन्ती—

भारत का सब से बड़ा पुस्तकालय कलकत्ते का राष्ट्रीय पुस्तकालय है। इसकी स्थापना हुए तो १०० वर्ष हो गए पर इसको वर्त्तमान रूप देने का श्रेय लार्ड कर्जन को है जिन्होंने ३० जनवरी १९०३ को इसका उद्घाटन किया था। ३० जनवरी १९५३ को इसकी स्वर्ण जयन्ती मनाई गई। पहले इसका नाम इम्पीरियल लाइब्रेरी था, पर १९४८ में बदल कर राष्ट्रीय पुस्तकालय रक्खा गया। इसमें मुद्रित और हस्त लिखित पुस्तकों की संख्या साढ़े सात लाख है। व्यय का वार्षिक बजट भी करीब पौने चार लाख का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक विक्रय के लिये नहीं है
NOT TO BE ISSUED

संस्कृत आलोचना साहित्य में कहानी का स्वरूप

श्री भालचन्द्र गोस्वामी साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

पुस्तक विक्रय के लिये नहीं है
NOT TO BE ISSUED

यह बात प्रायः निर्विवाद है कि विश्व की सभी जीवित भाषाओं में साहित्य के सभी अङ्गों के सम्बन्ध में प्राचीनतम आलोचना सामग्री हमें संस्कृत के रीतिग्रन्थों में मिलती है। कहानी के स्वरूप की सम्यक् विवेचना संस्कृत के जिन रीतिग्रन्थों में उपलब्ध है उनमें क्रमशः अग्निपुराण (रचनाकाल अनिश्चित), दण्डी कृत काव्यादर्श (६ वीं शती) और विश्वनाथ कविराज कृत साहित्यदर्पण (१४ वीं शती) का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त साहित्यमीमांसा नामक एक ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है जिसमें कहानी की अच्छी व्याख्या की गई है। एक रचना कदाचित वही है जो अलङ्कार सर्वस्वकार राजानक रुय्यक (जिनका समय ११ वीं सदी के ठीक बाद का माना गया है) के नाम पर कही जाती है। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं जिनमें यद्यपि मुख्यरूप से कहानी के स्वरूप की विवेचना तो नहीं है किन्तु उनमें की गई इतरविषयक चर्चा से कहानी के स्वरूप पर छाया पड़ती है। ऐसे ग्रन्थों में वामन कृत अलङ्कारसूत्र (८ वीं शती), आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक (६ वीं शती) और मम्मट कृत काव्यप्रकाश (१२ वीं शती) का नाम गणनीय है।

उक्त मौलिक ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थों के टीकाकारों ने भी कहीं अपने मूल ग्रन्थकार का मतानुसरण करते हुए और कहीं स्वतन्त्र रूप से कहानी के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। इनमें से जिन टीकाकारों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वे हैं : (१) नृसिंहदेव (सं० १०८२ वि०) जिन्होंने दण्डी कृत काव्यादर्श की टीका की और (२) दण्डी के उत्तरवर्त्ती अभिनवपादगुप्त जिन्होंने आनन्दवर्धन के ध्वनिसूत्रों की टीका ध्वन्यालोकालोचन नाम से संस्कृत आलोचना साहित्य में एक मौलिक रीतिग्रन्थ के समान ही आदर होता है।

प्रस्तुत लेख का मन्तव्य इन सब ग्रन्थों और टीकाओं में प्राप्त कहानी सम्बन्धी विवेचना को एक सरसरी तौर पर देखना ही है, इसका विस्तृत विश्लेषण करना नहीं।

संस्कृत में आधुनिक अँग्रेजी शॉर्ट स्टोरी, जिसे हिन्दी में कहानी या आख्यायिका कहते हैं, के समकक्ष प्रायः पाँच शब्द मिलते हैं : (१) आख्यायिका (२) कथा (३) कथानिका या कथालिका (४) परिकथा और (५) खण्ड कथा। इनके नाम एक साथ स्पष्टरूप में सर्व प्रथम अग्निपुराण में मिलते हैं। ध्वनिकार ने इनमें से कथानिका के स्थान पर सकलकथा का नाम दिया है, यद्यपि दोनों के लक्षण समान नहीं हैं। इनके अतिरिक्त दण्डी ने इसी प्रसंग में तीन पारिभाषिक शब्द और प्रयोग किए हैं : (१) आख्यान, (२) आख्यानक और (३) चित्रकथा। पिछले दो नाम 'दशकुमार चरित' में (जो रीतिग्रन्थ नहीं है) केवल आनुषाङ्गिक रूप से प्रसङ्गवश आये हैं। इनमें से आख्यान और आख्यानक को सम्भवतः एकार्थी माना जा सकता है और चित्रकथा को उक्त पाँच भेदों (आख्यायिका, कथा, कथानिका, परिकथा और खण्डकथा) में से किसी एक का (कदाचित परिकथा का) पर्याय माना जा सकता है। स्वयं दण्डी ने आख्यान या आख्यानक शब्द की व्याख्या नहीं की है और शेष रीतिकारों ने भी इन नामों का उल्लेख तक नहीं किया है। अतः इन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार हमारे सामने ये पारिभाषिक शब्द रहते हैं : (१) आख्यायिका (२) कथा (३) कथानिका (४) परिकथा (५) खण्डकथा और (६) सकलकथा। इनमें से आख्यायिका, कथा, परिकथा और खण्डकथा का नाम समान रूप से स्पष्ट रूप में केवल अग्निपुराण और ध्वन्यालोक में मिलता है ? चारों में गुण, धर्म आदि का भेद भी है। इसी प्रकार कथानिका और सकलकथा का रूप भी शेष चारों में भिन्न और परस्पर स्वतन्त्र है।

आगे चलकर दण्डी ने अपने काव्यादर्श में इनमें से केवल दो भेदों, आख्यायिका और कथा, को स्वीकार किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शेष भेदों को बिना उनका नाम लिए ही यह कहकर टाल दिया कि वे इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं। मोटे तौर पर आख्यायिका और कथा को भी दण्डी ने एक ही जाति की दो संज्ञाएँ माना है। शेष सभी रीतिकारों, जैसे मम्मट, वामन, विश्वनाथ आदि ने भी केवल दो ही भेदों, आख्यायिका और कथा, को स्वीकार किया है और दोनों को किसी न किसी आधार पर स्वतन्त्र घोषित किया है।

इस क्रम से ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि प्रारम्भ में कहानी के अनेक भेद स्वीकार किये गए और उनमें भिन्नता स्थापित रखने की व्यवस्था भी की गई (चाहे वह भिन्नता वाह्याकार सम्बन्ध भिन्नता ही रही हो) किन्तु धीरे-धीरे इनमें अनावश्यक जटिलता के समावेश को रोका गया और इस सम्बन्ध में सिद्धान्ततः केवल दो रूपों, आख्यायिका और कथा, को मान्यता दी गई। यह सब संस्कार ईसा की १०वीं शती से प्रारम्भ होकर १४वीं शती में निश्चित हो गया। संयोग की बात है कि आज भी संस्कृत आलोचना साहित्य से निरपेक्ष हम इस सम्बन्ध मे दो ही रूपों, उपन्यास और कहानी, को मान्यता देते हैं। (स्केच जैसे शेष श्रव्य कथात्मक साहित्यों में इतर साहित्य विधाओं का मिश्रण है, इनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है) यह और भी अधिक संयोग की बात है कि यही दो रूप लक्षणों के आधार पर क्रमशः आख्यायिका और कथा के पर्याय या समकक्ष सिद्ध होते हैं, जैसा कि नीचे की व्याख्या से प्रकट होगा। दूसरे शब्दों में हम आज जिस आख्यायिका को कहानी का पर्याय मानते हैं, वह उस काल में, आज हम जिसे हिन्दी में उपन्यास, मराठी में कादम्बरी और अंग्रेजी में नावेल कहते हैं उसकी समकक्ष थी और आज की कहानी शॉर्ट स्टोरी का प्रतिनिधित्व संस्कृत की कथा करती थी। इनके अतिरिक्त जिस प्रकार अंग्रेजी में कई दिनों तक नावेल और शॉर्ट स्टोरी के बीच की एक चीज नावेलेटि (Novelette) के नाम से चलती रही, उसका पर्याय भी संस्कृत में सकलकथा आदि के रूप में उपलब्ध है।

इस प्रकरण में यह बात द्रष्टव्य है कि संस्कृत-काल में गद्य-साहित्य की इन पाँच छः विधाओं से गद्य-साहित्य का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व होता आया है, अर्थात् जहाँ गद्य का नाम लिया जाता था वहाँ गद्य के अधिक से अधिक ये ही पाँच छः रूप अभिप्रेत थे। यह दण्डी से पूर्व की व्यवस्था है। दण्डी और उसके परवर्त्ती समालोचकों ने गद्य-साहित्य के दो ही रूप स्वीकार किए, आख्यायिका और कथा। संस्कृत-काल में कदाचित आत्म-कथा, निबन्ध, गद्य-काव्य (जिस अर्थ में उसे हम आज जानते हैं), आदि काव्य विधाओं का कथात्मक साहित्य से भिन्न कोई विशिष्ट स्वतन्त्र रूप नहीं मिलता। हाँ, आत्म-कथा की प्रणाली को गद्य-साहित्य की एक विधा—आख्यायिका में अवश्य स्थान दिया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि कथा-साहित्य को संस्कृत में इतनी व्यापकता प्राप्त है कि उसके आगे आज के प्रचलित शेष गद्य भेदों का नाम भी नहीं मिलता और यदि मिलता है तो उन्हें आख्यायिका साहित्य के अन्दर ही उसके पृष्ठ पोषक के रूप में अन्तर्भुक्त कर दि है। कहानी को इस प्रकार से अपने सम्पूर्ण साहित्यगत वक्तव्य का माध्यम बनाना संस्कृत समालोचकों की हृदयजीवी एवं रसिक वृत्ति का परिचायक है।

इतनी भूमिका के पश्चात् हमें आख्यायिका आदि की व्याख्या इन संस्कृत ग्रन्थों में किस रूप में की गई है, जो हमारा मुख्य विवेच्य विषय है, इसका सामान्य दर्शन कर लेना चाहिए।

अग्निपुराण का रचनाकाल ईसा के पूर्व का है या ईसा के ठीक बाद का, अतः यह संस्कृत के सब रीतिग्रन्थों में अग्रगण्य है, अथवा इसकी साहित्य-विषयक सामग्री प्रक्षिप्त है इस आधार पर कि जिस व्यवस्थित, संश्लिष्ट और मंजे हुए रूप में वह यहाँ उपलब्ध है वह उस रूप में ईसा के बहुत बाद, कदाचित् ७ वीं सदी तक नहीं मिलती, इस विवाद में न पड़ते हुए हम अग्निपुराण की सामग्री को सबसे पहले लेते हैं।

अग्निपुराण के अनुसार आख्यायिका के लक्षण ये हैं :

(१) उसमें लेखक के वंश की प्रशंसा (या उल्लेख) विस्तार पूर्वक होनी चाहिए।

(२) उसकी घटना कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ आदि विपत्तियों से युक्त होनी चाहिये।

(३) सम्पूर्ण आख्यायिका को परिच्छेदों में बाँटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना चाहिए। इन परिच्छेदों को उच्छ्वास आदि के नाम अभिहित किया गया है।

(४) उसमें वक्र या अपवक्र छन्दों का प्रयोग होना चाहिये।

महाकवि दण्डी के अनुसार आख्यायिका नायक द्वारा अथवा अन्य किसी (पात्र) द्वारा कही गयी होनी चाहिए, उसमें उच्छ्वास आदि परिच्छेद, तथा वक्र या अपवक्र छन्द होने चाहिये। दण्डी ने यह भी कहा है कि उसके विषयों की कोई तालिका निर्धारित करके नहीं रक्खी जा सकती (जैसे कि अग्निपुराण में मिलती है) यह उसके घटना विस्तार का एक और अवसर है।

साहित्य दर्पण में केवल घटना विषयक लक्षण को छोड़ कर आख्यायिका के वे ही लक्षण गिनाये गये हैं जिन्हें अग्निपुराण में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार वे दण्डी से प्रभावित जान पड़ते हैं।

वामनाचार्य (सन् १९०१ ई०) द्वारा उल्लिखित साहित्य मीमांसा नामक ग्रन्थ में आख्यायिका का रूप किञ्चित् अधिक स्पष्टता से आकृत है। इसके अनुसार उसकी कथा का सम्बन्ध किसी नरपाल से होना चाहिये, जिसमें विचित्र और सुन्दर वर्णनों (प्रसंगों) का समावेश हो, और उसमें पद्य से प्रारम्भ किये गए दस उच्छ्वास होने चाहिए।

ध्वनिसूत्रों के व्याख्याता अभिनवगुप्त ने भी आख्यायिका को उच्छ्वासादि से युक्त गद्य-प्रबन्ध-विशेष माना है।

आख्यायिका के उदाहरण के रूप में दण्डी के टीकाकार नरसिंहदेव ने कादम्बरी गद्य में महाश्वेता प्रसङ्ग में नायक चन्द्रापीड़ के आत्मवृत्त का, और विश्वनाथ कविराज ने तथा मम्मट के टीकाकार वामनाचार्य ने बाणभट्ट कृत हर्षचरित का नाम उल्लिखित किया है। यह बात कुछ विस्मयजनक है कि जिस कादम्बरी गद्य के एक छोटे से अंश को नरसिंहदेव ने आख्यायिका के उदाहरण के रूप में उपस्थित किया है, उसी सम्पूर्ण कादम्बरी को विश्वनाथ ने कथा के उदाहरण में रक्खा है।

जो भी हो, आख्यायिका के सम्बन्ध में इन सभी ग्रन्थों में एक बात जो समानरूप से प्राप्त है वह है उसकी विस्तार वृद्धि और उसको परिच्छेदों में बाँटने की व्यवस्था। कहना न होगा कि यह व्यवस्था आख्यायिका को किसी भी प्रकार आधुनिक कहानी के समकक्ष मानने में सहायक नहीं होती। इसके विषय विस्तार आदि को देख कर इसे उपन्यास के समीप की ही वस्तु माना जा सकता है।

कथा के सम्बन्ध में अग्निपुराण में दो बातों पर जोर दिया गया है। एक तो उसकी संक्षेपवृत्ति और दूसरे उसमें उच्छ्वास, लम्भक आदि परिच्छेदों का अभाव। ये दोनों बातें कथा को हमारी कहानी के बहुत निकट ला देती हैं। हाँ, इसमें इतना अवश्य कहा हुआ है कि मुख्यार्थ की सिद्धि के लिये इसमें अवान्तर कथाओं को स्थान है। किन्तु इस पर भी मुख्यार्थ या मूल कथा की पुष्टि को विशेष महत्व दिया गया है। कवि द्वारा अपने वंश की प्रशंसा के लिए यहाँ भी स्थान है, यद्यपि संक्षिप्त रूप में।

काव्यादर्श में कथा और आख्यायिका का कोई प्रकृत भेद नहीं माना गया है प्रत्युत दोनों को एक ही जाति की दो वस्तुयें बताया गया है। दण्डी की अष्टश्लोकी व्याख्या का सारांश यही है कि वे कथा या आख्यायिका पर पूर्ववर्ती आलोचकों के लगाये बन्धनों को अनिवार्य रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।

दण्डी के बाद विश्वनाथ कविराज ने कथा की व्याख्या की है। अग्निपुराण की भाँति वे भी कथा को आख्यायिका के स्पष्ट रूप से भिन्न मानने का आग्रह करते हैं। इस व्याख्या में आश्वास (या उच्छ्वास) आदि परिच्छेदों का स्पष्ट रूप से न तो निषेध है न विधान। परिणाम यह कि इन उच्छ्वासों का उपयोग साहित्य दर्पणकार की दृष्टि में कथा का एक लक्षण नहीं है। अन्य लक्षणों में घटना की सरसता विशेष उल्लेखनीय है। अभिनवगुप्त ने स्पष्ट रूप में कथा को उच्छ्वासों आदि परिच्छेदों से रहित माना है।

कथा के सम्बन्ध में सब मतों को मिलाकर देखने से यही निष्कर्ष निकलता है कि वह आधुनिक कहानी के अधिक निकट की वस्तु है।

आख्यायिका और कथा के अतिरिक्त खण्डकथा, परिकथा, कथानिका और सकलकथा नामक जिन चार और भेदों का उल्लेख मिलता है, उनका भी इस प्रकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निकट सम्बन्ध है। पहले दो का नाम अग्निपुराण और ध्वनिसूत्रों में समान रूप से मिलता है किन्तु उनके लक्षणों में आकाश पाताल का अन्तर है। तीसरे का नाम केवल अग्निपुराण में और चौथे का केवल ध्वनिसूत्रों में मिलता है। खण्डकथा और परिकथा के लक्षण अग्निपुराण में एक से ही दिये गये हैं। उनमें करुण और शृङ्गार रस का परिपाक पाया जाता है। कथानिका में एक साथ भयानक, करुण और अद्भुत रसों की योजना रहती है। ध्वन्यालोक में जिन तीन अतिरिक्त काव्य-विधाओं का उल्लेख मिलता है, यथा खण्डकथा, परिकथा, और सकलकथा उनकी व्याख्या अभिनवगुप्त ने की है। खण्डकथा के विषय में उन्होंने लिखा है कि उसमें 'एकदेशीय' वर्णन होता है। परिकथा में एक नायक से सम्बन्ध रखने वाले अनेक वृत्तान्तों का अनेक प्रकारों से वर्णन होता है, तथा सकल-कथा एक ऐसा इतिवृत्त है जिसके अन्त में सब फलों की सिद्धि हो जाय। अभिनवगुप्त की व्याख्याओं के अनुसार इन तीनों का, विशेष रूप से खण्डकथा का सम्बन्ध हमारी आधुनिक कहानी से है। किन्तु अधिक विस्तृत व्याख्या एवं उदाहरणों के अभाव में इनसे कोई निष्कर्ष निकालने में कठिनाई होती है।

इन अतिरिक्त काव्य-विधाओं का लोप आगे चल कर क्यों होगया इसका कारण हमारी विनम्र दृष्टि में कदाचित यही था कि हमारे साहित्य में सदा जीवन के अधिक से अधिक पूर्ण रूप को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति विद्यमान रही और ऐसे साहित्य को जान-बूझकर दृष्टि से ओझल करके रक्खा गया जिससे इस लक्ष्य की सिद्धि न होती हो। आगे के ग्रन्थों में जीवन के अल्पदेश को अभिभूत करने वाली लक्ष्य और लक्षण रचनाओं के अभाव को देखकर यह नहीं समझना चाहिए कि हमारे साहित्यमनीषी इनसे परिचित नहीं थे, अन्यथा नाटकों में भाण, व्यायोग, अङ्क, वीथी और प्रहसन जैसे एकाङ्की नाटकों का अस्तित्व संस्कृत में ठेठ अन्त तक नहीं रहता।

उक्त दृष्टिकोण के अतिरिक्त एक और दृष्टिकोण है जिससे कुछ रीतिकारों ने गद्य के सामान्य स्वरूप की विवेचना करते हुए विचार किया है। इस दृष्टिकोण का सूत्रपात करने वाले हैं पण्डितराज वामन और इसे पल्लवित किया है ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन ने। हाँ, इनसे पूर्व अग्निपुराण में भी इसका संकेत मिलता है। आगे चलकर मम्मट ने भी इसी सम्बन्ध में अपना मत प्रकट किया है। वह दृष्टिकोण है : साहित्य के प्रत्येक अंग में विभिन्न शब्दावली का प्रयोग होना चाहिए ताकि उसकी विशिष्टता को रक्षा हो सके। किसी साहित्य में कोमल वर्णों का प्रयोग होता है, किसी में उद्धत और किसी में मध्यम। इसी प्रकार किसी साहित्य में लम्बे लम्बे और किसी साहित्य में छोटे समास वाले गद्य का प्रयोग किया जाना चाहिए। गद्य के अन्तर्गत पद्य के प्रयोग के और उसमें भी विशिष्ट छन्दों के प्रयोग के विधान को इस प्रश्न से सर्वथा भिन्न मानना चाहिए।

इसी दृष्टिकोण को लेकर अग्निपुराण में कहा गया है कि आख्यायिका के उत्तरांश में छोटे २ समास होने चाहिए यद्यपि उसमें अत्यन्त कोमल पदावली नहीं होनी चाहिए, तथा कथानिका में अनुदात्त (सौम्य) वर्णों का उपयोग होना चाहिए। आख्यायिका के सम्बन्ध में ध्वनिकार और मम्मट का मत अग्निपुराण से बहुत कुछ मिलता है। कथा के विषय में ध्वनिकार ने रसविशेष की 'संघटना' (यह उनका पारिभाषिक शब्द है) अर्थात् पदावली के चुनाव का मापदण्ड स्थिर किया है और मम्मट ने उसमें अत्यन्त उद्धत अर्थात् कठोर वर्णों को निषिद्ध ठहराया है। ध्वनिसूत्रों में संघटना की दृष्टि से परिकथा में कोई बन्धन नहीं है। खण्डकथा और सकलकथा में दीर्घ समासों के प्रयोग का वैकल्पिक विधान है।

एक तो किसी भी साहित्य में पदावली के चुनाव को मनोनीत करके रखना उसके स्वाभाविक विकास को निरुद्ध करना है। दूसरी बात यह कि किस प्रसंग में कैसी पदावली का प्रयोग होना चाहिए इस बात की कसौटी भाषा विशेष (इस प्रकरण के लिए संस्कृत भाषा) ही है। तीसरी बात यह कि व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा करना सदा सम्भव भी नहीं जान पड़ता। अतः कुछ अन्य लक्षणों की भाँति संघटना के सिद्धान्त को भी शाश्वतता के अभाव में आज की परिस्थिति में अस्वीकार किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के कथा साहित्य की परम्परा

डा० भोलाशङ्कर व्यास एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री

डार्विन के विकासवादी मत के अनुसार 'होमो सेपीन' (मानव) ही सबसे पहला प्राणी है, जिसने पूर्णतः सामाजिक रूप में रहना सीखा। वैसे तो सामाजिक प्रवृत्ति का बीज; समूह में, झुण्ड में रहने की प्रवृत्ति पक्षधारियों (बर्डज़) तथा अन्य स्तनधारियों (मेमल्स) में भी पाई जाती है; किन्तु उन्हें पूर्ण सामाजिक प्राणी नहीं कहा जा सकता। मानव की इसी विशेषता के आधार पर कभी-कभी उसको 'सामाजिक जन्तु' के रूप में भी परिभाषित किया जाता है (मैन इज ए सोशल एनिमल)! तो इस प्रकार डार्विन के अमीबा के पड़पोते 'होमो सेपीन' ने विकास के क्रम में एक बड़ा लम्बा डग भरा। मानव का यह लम्बा डग उसके अध्ययन में एक बहुत बड़ा महत्त्व रखता है। और आज इस डग की हर चाल का अध्ययन 'समाज-शास्त्र' का अङ्ग बन बैठा है। मानव को पूर्ण सामाजिक प्राणी बनाने में सबसे अधिक हाथ भाषा ने बटाया है। भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई यह भी एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, किन्तु इसकी उत्पत्ति में किसी सीमा तक 'श्रम' (लेबर) का का विशेष हाथ रहा है। दूसरे शब्दों में 'श्रम' का मानव को सामाजिक प्राणी बनाने में प्रमुख हाथ है। मैं इस सम्बन्ध में अवान्तर (श्रमेतर) कारणों की अवहेलना तथा अस्वीकृत नहीं कर रहा हूँ। भाषा, प्रकृति के संघर्ष की मानव को एक विशिष्ट देन है, जो इसके पूर्वज (डार्विन के मत से) 'रोडेशियन मैन' या 'नैएडरथालेर मैन' या चिम्पेंज़ीज' में नहीं पाई जाती।

भाषा तथा अग्नि इन दो वस्तुओं के आविष्कार ने मानव को एक विशेष गति दी, और उसने तेजी से अपने जीवन में एक अपूर्व गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न किया। मानव या आर्य सबसे पहले मिस्र में, मध्य एशिया में, वोल्गा के पास में, या भारत में कहाँ विकसित हुआ इस रहस्य भरे विवादग्रस्त विषय को न लेकर हमें तो भारत के आर्यों के कथा साहित्य की परम्परा की ओर ध्यान देना है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मानव अपने भावों को दूसरे के सामने प्रस्तुत करना चाहता है, तथा दूसरे के भावों को सुनना चाहता है। इसमें भाषा सहायक सिद्ध हुई। इस प्रकार सबसे पहले उत्तम पुरुष (मैं) तथा मध्यम पुरुष (तुम) के भावों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया चली। किन्तु समाज 'मैं' और 'तुम' ही नहीं है। 'हम' में (समाज में) 'वह' भी सम्मिलित है, और इस प्रकार मानव में 'वह' से सम्बद्ध भावों के जानने की भी इच्छा हुई होगी। इन भावों को जानने का साधन सदा मध्यम पुरुष रहा होगा और इस प्रकार कहानी या कथा का आरम्भ हुआ होगा। यह 'वह' (जिसमें बहुवचन 'वे' भी सम्मिलित है) किसी भी देश तथा किसी भी काल से सम्बद्ध हो सकता है। इस प्रकार इसके परोक्ष (देशेतर तथा अतीत) एवं अपरोक्ष (एतद्देश विशिष्ट तथा वर्तमान) ये दो रूप होंगे। इस प्रकार कथा या कहानी मानव के अतीत या वर्तमान; तथा इस देश के या उस देश के जीवन का लेखा होगा। कभी भी उत्तम पुरुष का या मध्यम पुरुष का स्वयं का जीवन भी कहानी के रूप में कहा जाता होगा, जिसे हम आज की परिभाषा में 'आत्मकथा' का रूप मान सकते हैं। यह कहानी की शुरूआत है।

आर्यों का प्रारम्भिक जीवन युद्ध, यज्ञ, योगादि क्रिया, तथा दो भिन्न मानव-संस्कृतियों के सङ्घर्ष का युग था। अतः उनके भावों के विनिमय में ये तत्व प्रधान थे। वेदों में यद्यपि प्रमुख तत्त्व यज्ञ के समय की गई देवों की प्रार्थनाएँ हैं, किन्तु हम वहाँ 'वह' (अन्य पुरुष) की तथा मध्यम एवं उत्तम पुरुष की अतीत की तथा वर्तमान की जीवनचर्या का संकेत पाते हैं। क्या हम इसे कथा-साहित्य या कहानी का बीज नहीं कह सकते? किस प्रकार अंगिरस् ऋषि ने अग्नि की खोज की (स्वाग्नग्ने अंगिरसो गुहाहितं अन्वविन्दन् शिश्रमाणं वने वने), इस तथ्य का संकेत मिलता है। देवों की, जो वस्तुतः (सायण के मत में भी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक शक्तियाँ या तत्त्व हैं; स्तुति में उनके कार्यों पर प्रकाश डाला जाता था तथा ये कार्य देवों के काल्पनिक जीवन की कुछ घटनाएँ लेकर आते थे। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के इन्द्रसूक्त में ऋषि गृत्समद; इन्द्र ने अरि, बल आदि दैत्यों को मार कर गायों को छुड़ाया, तथा सातों नदियों को प्रवाहित किया; इस बात का संकेत करते हैं—

यो हत्वा हि मरिणात् सप्त सिन्धून्
यो गा उदाजत् अपधा बलस्य ॥ (ऋ० २ । १३ । ३)

वस्तुतः इस घटना में यह रूपक है कि वर्षा के देवता ने काले बादल रूपी दैत्यों के द्वारा छिपाई हुई जलरूपी गायों को, वज्र (बिजली) के द्वारा उन दैत्यों को मार कर छोड़ दिया। ये रूपक पूर्ण घटनाएँ कहानी के आदिम रूप हैं। ग्रीस, रोम, मिस्र, मोसोपोटामिया, अमेरिका, स्कैंडिनेविया, सुमेरिया, ईरान तथा भारत आदि सभी देशों की प्राचीन संस्कृति के इतिहास में इस ढङ्ग की देवता सम्बद्ध अनेक घटनाएँ पाई जाती हैं। * वेदों में देवताओं से सम्बद्ध इन रूपक कथाओं के अतिरिक्त कुछ मानवी कथाएँ भी हैं। ये आर्यों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालती हैं। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद के सप्तम मण्डल का 'दशराज्ञ सूक्त' उस समय की एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करता है। ऋषि वशिष्ठ द्वारा रचित यह सूक्त दिवोदास के पुत्र सुदास तथा दूसरे आर्य एवं अनार्य राजाओं के युद्ध का वर्णन करता है। अन्य उपाख्यानों में हम दशम मंडल के यम-यमी, तथा पुरूरवस् एवं उर्वशी से सम्बद्ध घटनाओं को ले सकते हैं। 'आत्मकथा' का बीज हमें 'वाक्सूक्त' में मिलता है, जहाँ वाणी स्वयं कहती है :—

"मैं रुद्र के लिए धनुष चढ़ाती हूँ, ताकि वह आर्यों के शत्रु शरु को मार सके। मैं ही आर्यों के लिए युद्ध रचती हूँ, मैं द्यावापृथिवी में व्याप्त हूँ।"

(अहं रुद्राय धनु रातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोमि अहं द्यावापृथिवी आविवेश)

(ऋ०)

* A, C. Bonquet : Comparative Religion. Ch. V.

स्पष्ट है वाणी की इस आत्मकथा में भी रूपक ही है।

आर्यों की वैदिक कालीन सामाजिक अवस्था, एक ओर प्राक् समाजवादी युग के अन्त तथा दूसरी ओर दासत्व-युग के सन्धिकाल की सभ्यता है। आर्यों के जन-जीवन का तत्प्रभावित प्रतिबिम्ब ही इस काल की इन वैदिक कथाओं में पड़ा है। प्राक्-समाजवादी मानव बहुदेववादी होता है, प्रकृति के प्रत्येक उपकरण में वह देवत्व का आरोप करता है। उसका स्वयं का मानवी जीवन युद्ध तथा सामाजिक परिवर्तन से मुक्त रहता है। आर्यों व दस्युओं के युद्ध के उपाख्यान पहली वस्तु हैं। यम-यमी व उर्वशी-पुरूरवा के उपाख्यान दूसरी। यम व यमी का उपाख्यान उस काल के दाम्पत्य तथा वैवाहिक-सम्बन्ध के विषय में आर्यों में उद्भूत वैचारिक परिवर्तन का लेखा है। उर्वशी का उपाख्यान आर्यों तथा गन्धर्वों (सम्भवतः हिन्दुकुश, काश्मीर आदि स्थानों पर रहने वाली अनार्य बर्बर जाति) के सम्पर्क की एक कहानी है। इस समय के कथा-साहित्य की विशेषताएँ हैं:— १ रूपकात्मकता; २ जनता की वास्तविक भाषा में लिखा जाना; ३ पात्रों की अल्पता; ४ घटना की सरलता तथा अजटिलता तथा मानव-जीवन से समीपता।

वेदों के बाद का भारतीय साहित्य ब्राह्मण तथा उपनिषद् हैं। ब्राह्मण कर्मकाण्ड प्रधान हैं तथा उपनिषद् ज्ञान काण्ड प्रधान। इन दोनों में भी यत्र तत्र आख्यानों या कहानियों का अस्तित्व है। किन्तु दोनों का ढंग अलग अलग है। ब्राह्मणों में सामाजिक ढंग के या सामाजिक विकास के उपाख्यान पाये जाते हैं, जबकि उपनिषदों में दार्शनिक तत्वों को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त रूपक। म की प्रसिद्ध कहानी से सभी परिचित हैं जो प्रसाद की 'कामायनी' का मेरुदण्ड है। यह शतपथ ब्राह्मण से ली गई है। मानव के जीवन की एक बहुत बड़ी घटना 'जल-प्लावन' से यह सम्बद्ध है, जो पाश्चात्य तथा पूर्वी दोनों सभ्यताओं के इतिहास में उल्लिखित है। ऐतरेय ब्राह्मण आदि में कई उपाख्यान ऐसे हैं जो उस समय ब्राह्मणों, स्त्रियों, दासों आदि की समाज में क्या स्थिति थी इस पर प्रकाश डालते हैं। उपनिषदों में भी हम यम-नचिकेता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाख्यान (कठोपनिषत्) यज्ञ का उपाख्यान (केनोपनिषत्) आदि पा सकते हैं। इस काल ही से हम लोक-कथाओं तथा साहित्यिक कथाओं का भेद देख सकते हैं। ब्राह्मणों के उपाख्यान लोक कथाओं पर आधृत हैं, जबकि उपनिषदों के साहित्यिक हैं। इस भेद का मुख्य कारण उस समय की सामाजिक स्थिति है। दासत्व युग का आरंभ हो गया था, इसके कारण समाज मुख्य रूप से दो वर्गों में बँट गया था। बहुदेववाद का जोर का प्रचार था, पर दूसरी ओर एकदेववाद भी जोर पकड़ रहा था। अभिजातवर्ग में कुछ लोग एकदेववाद की ओर झुक पड़े थे, वे दर्शन की कल्पनाओं को बढ़ा रहे थे। इन लोगों में मुख्य याज्ञवल्क्य, पिप्पलाद, सुकेशा, दध्यङ आथर्वण आदि थे। इन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए रूपकों का आश्रय लिया। उपनिषदों की साहित्यिक कथाएँ यही रूपक हैं, जो जन-समाज के जीवन से बहुत दूर थीं। इस प्रकार उपनिषदों की कथाएँ वैदिक संहिताओं की कथाओं से प्रकृति में सर्वथा भिन्न हैं, ये मानव-जीवन से परे हैं। ब्राह्मणों की कथाओं ने वैदिक कथाओं की प्रकृति का उत्तराधिकार कायम रक्खा तथा अपने आपको जन-जीवन के साथ रक्खा। मोटे तौर पर इन दोनों में ठीक वही भेद था, जो आज के हिन्दी साहित्य में यशपाल तथा रांगेय की कथा-कृतियों तथा अज्ञेय एवं इलाश्चन्द्र जोशी की कथाकृतियों में है। पहली ब्राह्मणों की भाँति जन-जीवन के विकास का लेखा है, दूसरी उपनिषदों की भाँति दर्शन (मनोविज्ञान) के तत्त्वों के रूपक। यही नहीं, जिस तरह आज भी हमारी बूढ़ी दादियों और नानियों की मौखिक लोक-कथाएँ चलती रहती हैं, वैसी ही उस समय में भी रही होंगी और इन लोक-कथाओं ने महाभारत तथा पुराणों जैसे कहानियों के विश्वकोषों के बनने में सहायता की होगी। जिस तरह आज हमारे डॉ० सत्येन्द्र, आचार्य राहुल, प्रौढ़विज्ञ त्रिपाठी जी, सत्यार्थी जी आदि ब्रजभाषा, भोजपुरी, अवधी, तथा अन्य भाषाओं की दादी नानी की कहानियों को इकट्ठा कर रहे हैं, वैसे ही पुराने पौराणिकों ने सूतजी के काल्पनिक नाम के आधार पर किया होगा।

कथा साहित्य की दृष्टि से रामायण-युग तथा महाभारत युग का अत्यधिक महत्त्व है। आर्य समाज तेजी से बदलता जारहा था। दासत्वयुग का अन्त होने को था। कृषि के उत्पादन ने तथा साधनों ने समाज को नया रूप धारण करने में प्रेरित किया। पहले तो विजेता तथा विजित ये ही दो वर्ग थे; किन्तु अब विजेता जाति भी अभिजाति तथा निम्न इन दो वर्गों में विभक्त हो गई थी। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय (ज्ञान के रक्षक तथा देश की सीमा के रक्षक) समाज में उन्नत बन बैठे थे, तथा उन्हें विशेष अधिकार प्राप्त हो गये थे। क्षत्रिय (राज्य की राजनीति) तथा ब्राह्मण (धर्म) दोनों एक हो गये थे। रामायण की कथा आर्य तथा अनार्य जातियों के संघर्ष की कहानी है, वह दासत्व युग के जन-जीवन का लेखा है; जब कि महाभारत की कथा आर्य जाति का गृह-कलह है, जब वह सामन्त-युग के उषःकाल में अभिजात तथा निम्न दो वर्ग में बँटने जा रही है। एक प्रसिद्ध विद्वान् के शब्दों में महाभारत की कथा दासाधिनायक राज्यों तथा गणराज्यों का गृह कलह है। (Mahabharata the Civil war of Slave owners and Gana-Sanghas) रामायण तथा महाभारत का रचना काल क्या होगा यह निर्विवादास्पद नहीं, फिर भी रामायण का मुख्य भाग ६०० ई० पू० तथा महाभारत का मुख्य भाग ६०० ई० पू० के लगभग लिखा गया होगा, अनुमान है दादी नानी की कहानियों के रूप में रामायण या महाभारत की कहानियाँ पहले से प्रचलित रही हों, ठीक वैसे ही जैसे पद्मावती और हीरामन तोते की कहानी जायसी के समय में नहीं, अपभ्रंश काल तक में पाई जाती है। आर्यजाति के व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की सबसे पहली लिखित कथा रामायण है। यही कारण है कि यह 'आदिकाव्य' कहलाती है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में, "उसमें पहले पहल मानव-चरित्र को काव्य का विषय बनाया गया।" रामायण में मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। यही कारण है कि वह उपाख्यान नहीं है, कथा है। उसमें आज के शब्दों में, जीवन की एक झाँकी वाला कहानी-पन न होकर, सम्पूर्ण जीवन के घात प्रति घातों का सम्पूर्ण वर्णन है, उसमें उपन्यासत्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभात एक ही वंश के राजाओं के गृहकलह की कहानी है। वैसे यह ग्रन्थ कई कथाओं, आख्यानों, उपाख्यानों का विश्वकोष है। नलदमयन्ती, सत्यवान सावित्री, दुष्यन्त शकुन्तला आदि के कई आख्यान इसी के अङ्ग हैं। महाभारत का ध्यान से विश्लेषण करने पर कौरव-पाण्डवों की खास कहानी के अतिरिक्त इसमें ब्राह्मणों वाली यज्ञ-जीवन की कथाएँ, उपनिषदों वाली दार्शनिक रूपक कथाएँ, तथा उस समय तक प्रचलित दादी नानी वाली लोक-कथाएँ सभी संग्रहीत मिलेंगी। नलदमयन्ती, सत्यवान् सावित्री आदि प्रेमाख्यानों का शायद लोककथाएँ ही बीज रही हों। महाभारत की इन तीनों प्रकार की कथाओं की खिचड़ी ही आगे जाकर पौराणिक कहानियों के रूप में आई। महाभारत की कहानियों की ये विशेषताएँ हैं:—(१) प्राचीन विभिन्न प्रवृत्तियों की खिचड़ी, (२) अभिजात वर्ग (संस्कृतमयी) की भाषा में साहित्यिक रूप लेकर आना; (३) पात्रों का बाहुल्य, (४) कथानक की जटिलता।

सामन्तवाद बद्धमूल हो गया था। सारा समाज पूरी तौर पर दो वर्गों में बँट गया था। देश के हस्तजीवी कलाधर गौण हो गये थे। सामन्तवाद राजनीति तथा धर्म का गठबन्धन लेकर आया था। राजनीति का यन्त्र थे क्षत्रिय, धर्म का यन्त्र ब्राह्मण। स्पष्ट है बाकी के लोगों में जिनमें कृषक, तथा हस्तजीवी आते थे; निम्न वर्ग में थे। स्त्रियों की भी दशा शोचनीय हो चली थी। जहाँ एक ओर मनु 'यत्र नार्य स्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' की घोषणा करते थे, वहाँ ब्राह्मण वर्ग 'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूना त्रयी न श्रुतिगोचरा' के द्वारा उनके लिये वेदों के पढ़ने तो क्या सुनने तक का निषेध कर रहे थे। इस प्रकार ब्राह्मण वर्ग अपनी जीविका की रक्षा के उद्देश्य से आर्य धर्म के वास्तविक मूलाधार ग्रन्थों को साधारण जनता (शूद्र) तथा अपनी तथाकथित क्रीतदासियों (स्त्रियों) से बचा कर रखना चाहते थे। किन्तु साथ ही वे उन पर धर्म का हौवा, धर्म का प्रभाव भी डालना चाहते थे। इनके लिए उन्होंने नये साहित्य की रचना की। और यही है हमारा 'पुराण-साहित्य।' उस समय के ब्राह्मणों ने परम्परागत (१) ब्राह्मण वाली कहानियों (२) उपनिषदों की कहानियों, (३) ऐतिहासिक उपाख्यानों, (४) दादी नानी की लोककथाओं, (५) और कुछ ब्राह्मणों की गुरुडम को पुष्ट तथा दृढ़ बनाने वाली स्वयं कल्पित कहानियों को इकट्ठा किया और उन्हें खुद के नाम से नहीं, किन्तु भगवान् कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के नाम से उन्हें प्रचारित किया। इस कल्पित नाम को देने का कारण भोली जनता के सामने, भोली नारियों के सामने उनको प्रामाणिकता सिद्ध करना था। इस कार्य में हजारों ब्राह्मणों ने भिन्न-भिन्न रूप से हाथ बँटाया होगा और ये संगृहीत कथाएँ जिनमें ऊपर से दार्शनिक सिद्धान्तों, वैष्णव धर्म के विभिन्न देवी-देवताओं की महत्ता का लेखा बढ़ा दिया गया था, धीरे-धीरे उस कलेवर को प्राप्त होने लगे जो आज के १६ पुराण तथा १६ उप पुराणों में पाया जाता है। प्रत्येक पुराण किसी विशेष देवता, गणेश, शिव, ब्रह्मा, कृष्ण, विष्णु, चण्डी आदि की महत्ता तथा प्रधानता को लेकर आया, जो उस समय के वैष्णव धर्म में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों के लेखे हैं। फिर भी इन सब पुराणों में कुछ एकता है। इन सभी में सृष्टि का आदिम विकास (सर्ग); मानव-समाज, विशेषतः आर्य-समाज की विभिन्न सामाजिक दशाओं का वर्णन (प्रति-सर्ग), मान्व-वंश का वर्णन (वंश), मन्वन्तर—१४ मनुओं के वर्णन; तथा वंशानुचरित-राजाओं की वंशावली पाई जाती है। * इस प्रकार पुराण, काल्पनिक तथा ऐतिहासिक दोनों तरह की प्राचीन भारतीय कथाओं के भण्डार हैं। इसीलिये इनको एक साथ 'इतिहास-पुराण' के नाम से अभिहित किया जाता है। इतिहास आर्य-जाति के विकास में घटित सच्ची घटनाओं का लेखा है, ठीक वैसे ही जैसे वर्माजी का 'झाँसी की रानी' उपन्यास; पुराण आर्य-जाति के सामाजिक विकास के पहलुओं की कल्पित कहानियाँ है। प्रथम प्रकार की कहानियाँ कभी-कभी अर्ध-ऐतिहासिक रूप भी लेकर आती थीं, जैसा प्रसादजी की कुछ कहानियों में देख सकते हैं। इतिहास भाग व्यक्ति-प्रधान होता था और पुराण-भाग टाइप-प्रधान। समष्टि को धीरे-धीरे अवहेलित किया जाने लगा

* सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥
(विष्णु-पुराण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उदाहरण के लिए कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, द्रौपदी आदि ऐतिहासिक हैं, इनसे सम्बद्ध कथानक ऐतिहासिक या अर्ध-ऐतिहासिक हैं। इन पात्रों का चित्रण व्यक्ति के रूप में हुआ है, वैसे ये कभी-कभी टाइप का रूप भी धारण कर लेते हैं। पुराण भाग के पात्र टाइप होते हैं। प्रसिद्ध सत्यनारायण की कथा का साधु बनिया टाइप है व्यक्तिनहीं।

पुराणों की इन सब कहानियों का ध्येय साधारण जनता में ब्राह्मण-धर्म की महत्ता स्थापित करना था। इसलिये इन पुराणों को, जिन्हें 'इतिहास-पुराण' के नाम से पुकारा जाता था, पंचम वेद कहा गया। भागवत के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में कहा है कि भगवान् वेदव्यास ने वेदों को चार भागों में बाँटा, जो ऋग्वेद आदि वेद हैं। इनको उन्होंने जैमिनि, पिंगलाद, अथर्वा आदि शिष्यों को दिया। स्त्रियों तथा शूद्रों के वेद के अनाधिकारी होने के कारण व्यास ने वेदों के आधार पर ही महाभारत तथा पुराणों की रचना की और इसे पञ्चम-वेद कहा (इतिहास-पुराणानि पंचमो वेद उच्यते)। इस वेद को उन्होंने एक व्यक्ति को दिया, जिसका नाम रोमहर्षण है। यहाँ इस नाम का महत्त्व ध्यान देने योग्य है। इसका अर्थ है 'रोंगटे वाला'। अर्थात् पुराणों के द्वारा यह व्यक्ति (जो वस्तुतः काल्पनिक है) जनता को रोमाञ्चयुक्त बना देता था और उनके हृदय-पक्ष को अपने वश में ठीक उसी तरह कर लेता था जैसे आज के प्लैटफार्म के भाषण या प्रोपैगेंडा साहित्य। यदि मैं यह कहूँ कि पुराण ब्राह्मण धर्म को मजबूत बनाने तथा उसके द्वारा सामन्तवाद की नींव पक्की करने के प्रचार के साधन थे तो ठीक होगा। प्रायः सारे ही पुराण एक से ढङ्ग से लिखे गये हैं। इनकी कथा या तो सूत और शौनक के संवाद से शुरू होती है, या फिर वैशम्पायन और जनमेजय के संवाद से। सूत कोई व्यक्ति विशेष न होकर उस समय के वे लोग थे जो पौराणिक धर्म के प्रचारक थे, ये आज के चारण, भाट, रात्र जैसे रहे होंगे। पर भागवत आदि में फिर भी सूत व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। ये ऊपर वाले कल्पित रोमहर्षण के पुत्र हैं, जो व्यासजी के इतिहास-पुराण वाले शिष्य हैं:— इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः।

इस युग की कथाओं की विशेषता है :—(१) प्राचीन सभी प्रचलित कहानियों का संग्रह; (२) कुछ नई कल्पित कहानियों का मेल; (३) ब्राह्मणों की महत्ता (देवत्व) तथा राजाओं के ईश्वरांश के सिद्धान्त का प्रचार; (४) संस्कृत-भाषा में लिखा जाना, जो लोक-भाषा न थी। इसी समय में कुछ ऐसी कथाएँ भी कल्पित हुईं जो ब्राह्मणों की जीविका से सम्बद्ध थीं। ये कथाएँ हैं व्रत, उद्यापन वाली कथाएँ। कार्तिक महात्म्य, एकादशी कथा, पुरुषोत्तम मास कथा आदि जिनमें दानादि की महत्ता का दिग्दर्शन है। किन्तु ब्राह्मणों ने एक बात ठीक की। इन व्रत उद्यापन वाली कहावतों को सभी पुराणों में नहीं जोड़ा। ये प्रायः स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, भविष्यपुराण या ब्रह्मवैवर्तपुराण के अङ्ग हैं। आगे जाकर कई ऐसी व्रतादि कथाएँ भी कल्पित हुईं, जिनको किसी न किसी पुराण का अङ्ग घोषित किया गया, पर देखने पर उन पुराणों में वे नहीं पाई जातीं। उदाहरणार्थ सत्यनारायण की कथा, जो पद्मपुराण की मानी जाती है, उस पुराण में नहीं पाई जाती।

इस प्रकार पौराणिक कथाएँ एक आभिजात्य अन्तस् के साथ आभिजात्य भाषा में जनता के पास आती थीं, जिसे अभिजात वर्ग के कुछ लोग ही जनता की भाषा में अर्थ कर कर के जनता को सुनाते थे। किन्तु दूसरी ओर नये ढङ्ग की दादी-नानी वाली लोक-कथाएँ, जनजीवन की कहानियाँ कहने सुनने में आती रही होंगी। इन्हीं के आधार पर बुद्ध की जातक कथाएँ तथा पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश की कहानियाँ चली होंगी। आगे चल कर ये कथाएँ भी साहित्यिक रूप लेकर वर्ग विशेष का साधन बनीं। पञ्चतन्त्र की कहानियाँ कोरी उपदेशात्मक कहानियाँ न होकर, राजनीति के उपदेश का साधन हैं, जहाँ विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को कहानियों के द्वारा आभिजात्य राजनीति का उपदेश दिया है। इन कहानियों में पक्षी तथा पशु भी मानव-जीवन के साथी बन कर आते हैं। इनका बीज वे दादी-नानी की कहानियाँ हैं; जो पशुओं तथा पक्षियों से सम्बद्ध थीं। इन्हीं पञ्चतन्त्र की कहानियों का प्रभाव ईसप के 'फेबिल्स' पर पड़ा है। दादी-नानी की इन्हीं कहानियों का दूसरा रूप बृहत्कथा (गुणाढ्य की बड्डकहा), कथासरित्सागर, शुक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चविंशति, वेतालपञ्चविंशति, तथा सिंहासनद्वात्रिंशत्पुत्तलिका की कहानियाँ हैं।

प्राकृत काल तथा अपभ्रंश काल में इसी प्रकार कथा-साहित्य सदा दो वर्गों में बँटा रहा:—१, साहित्यिक कहानियाँ, जो अभिजात वर्ग की भाषा में थीं; २, तथा लोक-कथाएँ। हिन्दी साहित्य ने इसी परम्परा को लिया। तुलसी ने साहित्यिक कथा को अपनी रचना का क्षेत्र चुना, जायसी ने उस समय की लोककथा को। इतना होने पर भी तुलसी ने उस रामायण कथा को जनता की ही भाषा में लिखा तथा उसे अपने समय के जनजीवन में उतारा यही तुलसी का महत्त्व है। यही कारण है कि तुलसी के 'मानस' की कथा मूल रूप में कुछ और होते हुए भी सोलहवीं सदी के भारतीय मानव के जनजीवन का लेखा भी बन बैठी थी, यही कारण तुलसी की सफलता का है। सूफियों ने उस समय की दादी-नानियों वाली प्रेम कथाओं को लिया।

हिन्दी साहित्य के गद्य को आरम्भ में इन्हीं कथा रूपों की बपौती मिली। पुराणों की कहानियों ने 'नासिकेतोपाख्यान' को प्रभावित किया; तथा प्रेमसागर तो पुराण के एक अंश का अनुवाद ही है। लोककथा ने 'रानी केतकी की कहानी' को जन्म दिया। इतना होते हुए भी आज की हिन्दी कहानियाँ अँगरेजी, फ्रेंच, रूसी तथा बँगला कहानियों से प्रभावित होकर आई हैं। ऊपर हम विभिन्न काल की भारतीय कहानियों में एक परम्परा देख आये हैं। उसके आधार पर हम इन्हें दो भागों में विभक्त कर सकते हैं:—१, शुद्ध साहित्यिक कहानियाँ, जो व्यक्ति या टाइप को लेकर चलती हैं, इनके अन्तर्गत व्यक्तिप्रधान ऐतिहासिक कहानियाँ, दार्शनिक रूपक, या टाइप-चित्रण आते हैं; २, जनजीवन से सम्बद्ध कहानियाँ, जो जनता की वास्तविक स्थिति का चित्रण है, लोककथाएँ इसी के उस अङ्ग में आती हैं, जो लिखित नहीं होती। एक काल की लोक-कथाएँ भविष्य के साहित्यिक रूप में पड़ कर व्यक्तिप्रधान या टाइपप्रधान भी बन सकती है। जन-जीवन से सम्बद्ध कहानियाँ केवल लोककथाओं में ही नहीं, साहित्यिक रूप में भी होती हैं और जनता में सामाजिक चेतना ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों यह वर्ग विशेष विकसित होता जाता है। आज के हिन्दी साहित्य की कहानी को हम इन्हीं दो वर्गों में बाँट सकते हैं। हिन्दी के कथासाहित्य में प्रेमचन्द का स्थान इसीलिए महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने साधारण जनता की सामाजिक चेतना को उद्बुद्ध किया। शरत् और प्रेमचन्द में यही बड़ा भेद है। शरत् की कहानियाँ परिवार से, व्यक्ति से, मनोविज्ञान से सम्बद्ध हैं, वे शुद्ध साहित्यिक कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द की कहानियाँ, समाज से, देश से, सम्बद्ध हैं, वे १९२०-१९३६ के भारत का राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक इतिहास है, जन-जीवन की सम्पूर्ण गतिविधि का लेखा है। प्रसाद की कहानियाँ पहली कोटि की अभिजात कथाएँ हैं। वे आस्कर वाइल्ड के इस सन्देश को लेकर आती प्रतीत होती हैं:—

Art should never try to be popular. The public should try to make itself artistic.

प्रसाद के बाद प्रथम वर्ग की कहानियाँ हिन्दी में नया रूप लेकर आईं। वे फ्रांस के अभिजात यथार्थवादी जोला आदि से तथा फ्रॉयड के मनोविश्लेषण से प्रभावित हुईं। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, अज्ञेय आदि का कथा साहित्य (कहानियाँ तथा उपन्यास) इन्हीं फ्रेंच यथार्थवादियों तथा मनोविश्लेषकों से प्रभावित हैं। इनकी रचनाएँ भी व्यक्ति प्रधान या टाइपप्रधान हैं। टाइप प्रधान का ज्वलन्त उदाहरण अज्ञेय की 'शेखर एक जीवनी' है। मनोविश्लेषण में जोशी तथा अज्ञेय, जैनेन्द्र तथा वाजपेयी जी से दो कदम आगे हैं। अज्ञेय का "शेखर" तो जैसे किसी मनोविश्लेषक के "लेबोरेटरी एक्सपेरीमेंट्स" का लेखा है। इनमें कुछ नहीं अनार्किस्ट आभिजात्य विचार प्रतिबिंबित हुए हैं। आज के जन जीवन को प्रतिबिंबित करने वाले कथाकारों में प्रमुख यशपाल तथा रांगेय राघव हैं। इसी के साथ हम एक उर्दू कहानीकार का नाम ले सकते हैं जो धीरे धीरे हिन्दी जगत् के सम्मुख आते जा रहे हैं, ये हैं:—किशन चन्दर। इन जन-कलाकारों की लेखिनी आज उस खाई को पाटती जारही है, जो अब तक साहित्यिक कथाओं में तथा जन कथाओं में रही है,

(शेष पृष्ठ २६६ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक कहानियाँ

डा० मुन्शीराम शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०

वैदिक साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। पाश्चात्य तथा पौर्वात्य सभी विद्वानों का अभिमत ऐसा ही है। वेद-विश्वासी आस्तिक आर्यों की बुद्धि ने इस साहित्य को ज्ञान-विज्ञान के मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। प्राचीनतम भाषा में लिखा होने से यह साहित्य परवर्ती विद्वानों के लिए अनेक स्थानों पर दुरूह-सा बना रहा। ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करने का प्रयास मिलता है। उपनिषदों के ऋषि भी इस दिशा में संलग्न हुए हैं; परन्तु काल का अतिपात उन्हें वैदिक ऋषियों की अनुभूति से सम्भवतः तद्रूप नहीं कर सका। फिर भी वे वैदिक ऋषियों के साक्षात के निकट पहुँच सके हैं, ऐसा मानने में किसी भी आलोचक को आपत्ति नहीं हो सकती। आधुनिक भाष्यकर्ता सायण, महीधर आदि इस अनुभूति से बहुत दूर थे। निकट पहुँचने के लिए जिस तपश्चर्या की आवश्यकता होती है, उसका उपादान भी ये विद्वान नहीं कर सके। अतः वैदिक साहित्य की अनेक बातें या तो रहस्यमय अन्धकार में आच्छन्न रहीं, अथवा भ्रान्तरूप में जनता के समक्ष उपस्थित की गईं। उदाहरण के लिए हम यहाँ वैदिक कहानियों पर विचार करते हैं।

पौराणिक साहित्य में प्रजापति ब्रह्मा और उसकी पुत्री सरस्वती की कथा आती है। इसी प्रकार गौतम-अहल्या, इन्द्र-वृत्र तथा देव और असुरों की भी कथायें आती हैं। इन कथाओं के बीज वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। पर ये बीज केवल बीज हैं, कहानी का सांगोपांग वर्णन नहीं हैं। कहानियों के बीजों के साथ-साथ वेद में कतिपय ऐसे नाम भी आते हैं जो ऐतिहासिक महापुरुषों के नाम हैं। इक्ष्वाकु, पुरुरवा, बुध, चन्द्र, अत्रि, आयु, नहुष, ययाति, यदु, पुरु, द्रह्यु, अनु, शन्तनु आदि ऐसे ही नाम हैं। वेद में इन नामों को देखकर ऐतिहासिक (प्राचीन तथा नवीन) यही कहते रहे हैं कि वेद में इतिहास है और उसकी सहायता से हम अपने विगत इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी मान्यता पुराकाल में भी रही है, परन्तु उसका प्रतिपक्षी दल अधिक प्रबल रहा है जिसने वेद में न इतिहास माना है और न कहानियों का बीजाङ्कुर।

ऋग्वेद १-१६४-३३ में पिता दुहितुर्गर्भं माधात् तथा ३-३१-१ में पिता यत्र दुहितुः सेक मज्जन् पद आते हैं। इन्हीं के आधार पर ब्रह्मा और सरस्वती वाला कथानक पुराण साहित्य की कहानी का रूप धारण करता है। ऋग्वेद १०-११-६ में आये हुए जार आ भगम् पद को आधार मानकर गौतम अहिल्या की कथा निर्मित हुई है। ऋग्वेद १-३२-५ के वृत्रं व्यंस मिन्द्रो वज्रेण पद से इन्द्र तथा वृत्रासुर के युद्ध की कथा अप्रसर हुई है। यजुर्वेद २३-१८ में अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका को सम्बोधन करके सुभद्रिका को नमस्कार करने के लिए कहा गया है जो काम्पीलवासिनी है। ये केवल थोड़े से संकेत हैं जो वेद में कहानी के रूप को प्रगट करने वाले हैं। परन्तु क्या हम इन्हें कहानियों अथवा इतिहास की घटनाओं का पूर्व रूप कह सकते हैं? निरुक्तकार ने स्पष्ट शब्दों में इस स्थापना का खण्डन किया है।

पुराण-साहित्य अवश्य लम्बी चौड़ी कहानियों से भरा पड़ा है। उसमें ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश है। परन्तु यह साहित्य भी अपने रचयिता के ही शब्दों में आम्नाय अर्थात् वेद के अर्थ को प्रदर्शित करने के लिये निर्मित हुआ था। जिस प्रकार का आलंकारिक वर्णन वेदों में है, उसी प्रकार का, अपेक्षाकृत विस्तृतरूप में, पुराणों में है। जैसे आज की कहानी का काल्पनिक कथानक उद्देश्य विशेष से गर्भित रहता है, वैसे ही पुराण-काल में भी रहता था। वेद में अहल्या रात्रि है, गौतम चन्द्र है और सूर्य ने इन्द्र रूप धारण किया है। इन्द्र सूर्य है तो वृत्र मेघ है। पिता सूर्य है तो दुहिता उषा है। इसी प्रकार रूपक अलंकार के द्वारा वेद ने प्राकृतिक जगत की घटनाओं को समझाया है। पुराण-साहित्य ने इन्हीं रूपकों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृहदाकार बनाकर प्राकृतिक तथा मानव-जगत की घटनाओं पर प्रकाश डाला है। आज की कहानी यथार्थवाद की भित्ति पर खड़ी होकर भी काल्पनिक रहती है, प्रेमचन्द्रजी के सूरदास या मालती यथार्थ प्रतीत होते हुए भी किसी स्थान विशेष के विशिष्ट व्यक्ति नहीं हैं, उसी प्रकार वेद के इक्ष्वाकु, आयु, त्रिशंकु, नहुष आदि ऐतिहासिक न होकर प्रतीक मात्र हैं जो कहीं अन्तरिक्ष-स्थानीय नक्षत्रों की गति-विधि बतलाते हैं और कहीं ओषधि आदि के गुणों का उल्लेख करते हैं। वेद में आये हुए कतिपय नाम भी राजाओं के नाम नहीं हैं। शान्तनु, अर्जुन, कृष्ण, राधा, सहदेव आदि नामों को देखकर हमें उनमें महाभारत-कालीन व्यक्ति-विशेषों का आरोप नहीं करना चाहिये, क्योंकि वेद और उनके शब्द महाभारत-कालीन व्यक्तियों से भी पूर्व के हैं। महाभारत आदि का साक्ष्य इस तथ्य को असंदिग्ध रूप में उपस्थित कर रहा है। पर इसमें संदेह नहीं है कि वेद के रूपकों के आधार पर ही पौराणिक कथा-साहित्य का निर्माण हुआ है और उसकी वही दिशा है जो आज के कहानी-साहित्य की है। मनु के 'वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे' श्लोकार्ध का भी मन्तव्य इसी तथ्य का समर्थन करता है। अतः वैदिक साहित्य में आई हुई कहानी कहानी का बीज मात्र है और वह सोद्देश्य है। पौराणिक कहानी उसी का वृंहित रूप है। पञ्चतंत्र में विकसित होती हुई वही हमारी आज की आदर्श कहानी बनी हुई है।

(पृष्ठ २६४ का शेषांश)

एक साथ दोनों का अपूर्व सम्मिश्रण लेकर आरही हैं। टेकनीक में इन पर बाहरी प्रभाव भले ही पड़ा हो, पर इनकी आत्मा शुद्ध भारतीय है, वह आज के बीसवीं सदी के द्वितीय तथा तृतीय पाद के भारत का, उसके समाज का लेखा है। इस पद्धति को इन कलाकारों ने जर्मनी के कलाकार टॉमस मन से सीखा, या फ्रेंच कलाकार अरागों से, या अँगरेज कथाकार प्रीस्टले, या रूसी कलाकार गोर्की तथा शोलोखोफ (Sholokhov) से यह तथ्य हमारे लिए इतना महत्व नहीं रखता, जितना कि यह तथ्य कि ये कलाकार भारत के जन-जीवन के सच्चे कलाकार हैं। आज के भारत के कथा साहित्य को ये उस कसौटी पर खरा उतार रहे हैं, जो पश्चिम के एक विद्वान् नेता ने 'साहित्य' के विषय में कही थी:—

"It (Art) ought to be intelligible to the masses and loved by them."

(पृष्ठ २७० का शेषांश)

है किन्तु उसमें पशु-पक्षियों की विभिन्न चर्चायें, विभिन्न देश-देशान्तरों के वर्णन अत्यन्त सरस व सुरुचिपूर्ण शैली में उपस्थित किये गये हैं। आश्चर्य यह है कि विश्व के कथा साहित्य का आदि स्रोत होने पर भी वह अपने में पूर्ण विकसित और साहित्यिक है। दार्शनिकों, पोपों तथा धार्मिकों का साहित्य जैसा एक रस, जड़ और लोकरुचि विहीन व्यक्ति-गत सृष्टियों को लेकर चलता है वह 'जातक' में नहीं मिलता। भारतीय जनता का सच्चा चित्र यहाँ हमें प्राप्त है, हाँ उनका उपयोग स्थविरवाद के प्रचारार्थ किया गया है। यही कारण है कि 'जातक' साहित्य इतना आकर्षक बन पड़ा है। कल्पना और यथार्थ का जैसा सामञ्जस्य जातक साहित्य में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातक कथायें और उनका महत्व

श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, एम० ए०

विश्व-साहित्य में भारत का कथा साहित्य प्राचीनतम् माना जाता है। जिसे आज 'कहानी' या 'गल्प' कहते हैं, वह टेक्नीक की दृष्टि से पश्चिमी प्रयोग है परन्तु उसका मौलिक रूप भारत में ही गढ़ा गया, यहीं से सेमेटिक भाषाओं और तत्पश्चात् सेमेटिक भाषाओं से योरोप की भाषाओं में कथा व कहानियों का विकास हुआ, यह सर्व-सम्मत तथ्य है।

ज्ञान के आदि स्रोत भारत ने प्रथम कहानी भी रची यह भी हमारे लिये गौरव का विषय है।

भारतीय ज्ञान का मूल वेदों में है वैदिक साहित्य में शुनः शेष की कथा, यम यमी संवाद, पुरुरवा-उवशी संवाद आदि कथानक प्रागैतिहासिक हैं। ऐतरेय, व शतपथ ब्राह्मणों के कथानक भी अत्यन्त प्राचीन हैं। इनके पश्चात् जातक कथायें आती हैं क्योंकि रामायण व महाभारत की रचना पर जातक कथाओं का अप्रतिम प्रभाव पड़ा है, यह हम आगे देखेंगे, सर्व प्रथम जातक साहित्य को लें।

सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य त्रिपिटकों में विभाजित है अर्थात् सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधर्म पिटक। इनमें सुत्तपिटक में पाँच निकाय हैं—(१) दीघ निकाय (२) मज्झिम निकाय (३) संयुत्त निकाय (४) अंगुत्तर निकाय (५) खुद्दक निकाय। खुद्दक निकाय पुनः कई भागों में विभाजित है; यथा खुद्दक पाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्त निपात, विमानत्थु, थेर गाथा, थेरी गाथा, पेतवत्थु, जातक, निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, अपदान, बुद्धवंस और चरियापिटक। तो जातक खुद्दक निकाय का दसवाँ ग्रन्थ है।

जातक वस्तुतः अनेक कथाओं का संग्रह है। 'जातक' शब्द का अर्थ है 'जन्म सम्बन्धी'। भगवान गौतम, 'बुद्ध' होने के लिये अनेक जन्मों में संक्रमण करते रहे, पूर्व जन्मों में उनकी संज्ञा थी 'बोधिसत्व' अर्थात् 'बुद्धत्व' के लिये प्रयत्नशील सत्व-प्राणी। 'बुद्धत्व' एक जन्म में प्राप्त नहीं हो सकता, उसके लिये पशु, पक्षी आदि अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ता है, इन्हीं पूर्व जन्मों की कथायें 'जातक' नामक ग्रंथ में संग्रहीत हैं और आज 'जातक' शब्द से 'पूर्वजन्म की कथाओं' का अर्थ सामान्यतः ले लिया जाता है।

जातकों की संख्या ५५० मानी जाती है परन्तु उन की ठीक संख्या ५४७ है। किंतु इस संख्या में भी हेरफेर हो सकता है क्योंकि एक कहानी की पुनरावृत्ति भी हो गई है और साथ ही बहुत सी कथायें विनय पिटक, सुत्त पिटक आदि ग्रंथों में प्राप्य हैं परन्तु उनका उल्लेख 'जातक' में नहीं है। प्रायः एक मुख्य कथा के अंतर्गत अनेक उप-कथाओं का वर्णन है। यदि इनकी भी गणना की जाय तो संख्या अनुमानतः तीन सहस्र तक पहुँच जाती है।

वर्गीकरण—प्रत्येक 'जातक-कथा' को हम पाँच भागों में बाँट सकते हैं (१) पच्चुप्पन्नवत्थु (२) अतीतवत्थु (३) गाथा (४) अत्थवण्णना (५) समोधान। बुद्ध के जीवन में घटित घटना का नाम पच्चुप्पन्नवत्थु है इस घटना के कारण वे कोई प्राचीन कथा कहने के लिये विवश हुये, अतीत वत्थु (अतीत वस्तु) वस्तुतः जातक का महत्व-पूर्ण भाग है। इसी अतीतवत्थु के बीच में 'गाथायें' दी गई हैं जो 'पद्य' में हैं और अत्यन्त प्राचीन हैं, अत्थ वण्णना में गाथाओं की व्याख्या और उनका शब्दार्थ होता है और अंत में समोधान है जिसमें 'अतीत वत्थु' के पात्रों से 'बुद्ध' अपना सम्बंध जोड़ते हैं यथा—'सुंसुमार' जातक में "उस समय सुंसुमार देवदत्त और वानरराज तो मैं ही था"। इस प्रकार जातक में गाथा का भाग पद्य में और शेष भाग गद्य में है।

"जातक ग्रंथ" को निपातों में बाँटा गया है इसमें २२ निपात हैं, इसमें गाथाओं का क्रम द्रष्टव्य है।

निपात संख्या-क्रम	कथा संख्या	आगत-गाथाओं की संख्या
प्रथम निपात	१५०	१
द्वितीय ,,	१५०	२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय ,,	५०	३
चतुर्थ ,,	५०	४

गाथाओं का इस प्रकार क्रमशः आना दूर तक नहीं चलता। १३ वें निपात तक गाथायें प्रायः क्रम से आती है और १४ वें निपात में गाथाओं की संख्या विविध है। आगे के निपातों में गाथाओं की संख्या बढ़ती गई है अंतिम जातक 'वेस्सन्तर' में तो गाथाओं की संख्या ७०० से भी अधिक है।

विकास—'जातकों' का आधार गाथायें हैं, त्रिपिटक में अनेक गाथाओं का प्रयोग मिलता है। भाषा की दृष्टि से 'गाथा' भाग अधिक प्राचीन है; गद्यभाग बाद में जोड़ कर 'जातक' के रूप में कथाओं का संगठन किया गया प्रतीत होता है। यद्यपि विंटर नित्ज के अनुसार सारी गाथाओं को त्रिपिटक का मूल अंश नहीं माना जा सकता। ऊपर के वर्गीकरण से भी स्पष्ट है कि गाथाओं की संख्या आगे के निपातों में क्रमशः बढ़ती गई है जो निश्चित रूप से बाद की भरती है।

पहले निपातों की संख्या के अनुसार ही गाथाओं की संख्या रही होगी। अतः स्पष्ट है कि 'जातक' बुद्ध के पश्चात् कई शताब्दियों के पश्चात् का सङ्कलन है। जो रूप आज हमें प्राप्त है वह परिवर्द्धित है।[1] रायस डैविडस के अनुसार अधिकतर जातक कथाएँ 'विनय पिटक' पर आधारित हैं।

जातक संख्या तथा नाम	आधार ग्रन्थ
१ अपानक	दीघ निकाय (२,३४२)
९ मखादेव	मज्झिम निकाय (२,७५)
३५ महासूदसेन	दीघ निकाय (२,१६९)
४०५ बक ब्रह्म	मज्झिम निकाय (१,३२८)
१० सुखविहारी	विनय (२,१८३)

[1] "We must judge each separate story piece by itself. Books grew up gradually that they were not books in our modern sense and that they had no single author.

RHYS Davids.

जातक कथाओं तथा त्रिपिटक का सम्बन्ध उक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है अब कुछ और विचित्रताओं को देखिए :

१—प्राचीन बौद्ध साहित्य को नौ भागों में बाँटा गया है जिनमें ऐक 'जातकम्' भी है।

२—इन प्राचीन कथाओं में भी बुद्ध के पूर्व जन्म का वर्णन है। किन्तु कहीं भी बुद्ध को 'पशु' नहीं बनाया गया है, वे वहाँ सर्वदा आचार्य, अध्यापक या सन्यासियों के रूप में दिखाये गये हैं जबकि तथाकथित जातक कथाओं में तपस्वी, राजा, ब्राह्मण होने के साथ-साथ सिंह, हाथी, घोड़ा, कुत्ता, सीदड़ का जन्म लेते हैं। यही नहीं वे तीन बार चाण्डाल और एक बार जुआरी का भी जन्म लेते हैं।*

३—जिन्हें हम 'जातक' कहते हैं वे वस्तुतः बौद्ध लेखकों द्वारा धर्मोपदेश के लिये या बुद्ध-महिमा प्रदर्शनार्थ जोड़ी हुई कथायें हैं और इस प्रकार वह एक धर्म विशेष की वस्तु बन गई हैं, उस समय तथा उसके पहले के प्रचलित सभी जातकों को नहीं लिया गया है। रायड डैविडस कहते हैं : Our existing Jataka-book is only a partial record, it does not contain all the Jatakas that were current in the earliest of their literature among the Buddhist community. कम से कम १० जातक कथाएँ हमें प्राप्त हैं जिनका रूप बौद्ध-लेखकों ने अपनी शिक्षा के अनुसार कर लिया है किन्तु वे निश्चितरूप से बौद्ध साहित्य के पूर्व की कथायें हैं यथा महासूर्यसेन आदि तो जातक कथाओं में से बहुत सी कथायें प्राचीन लोक कथायें हैं (Indian folklore) बहुत से पौराणिक अध्ययन हैं, कुछ अन्ध विश्वासों को लेकर रची गई हैं और कुछ केवल लोक मनोरञ्जन के लिए, इस सब सामग्री का उपयोग कर 'जातक' को वर्तमान रूप दिया गया है जो ईसा की ४ या ५ वीं शताब्दी की घटना है। किन्तु उनकी प्राचीनता अनुसरण है, भरहुत व साँची के स्तूपों पर कई नाटक कहानियाँ चित्रित हैं। प्रायः

* भदन्त आनन्द कौशल्यायन जातक (प्रथम भाग की भूमिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठे तथा अन्तिम जातक ग्रन्थों में कथायें अत्यन्त विस्तृत हैं अतः नवीन हैं। अन्य ग्रन्थों की कथाएँ अपेक्षाकृत प्राचीन हैं।

४—जातक के बीच की जो गाथायें (Verses) हैं उनको अलग कर देने पर भी 'जातक' की रचना में कोई बाधा नहीं आती अतः ये गाथायें ऊपर की सजावट (Framework) हैं जो अपने मूल रूप में गद्य भाग से अधिक प्राचीन हैं। *

'विकास' के पश्चात् हम जातक कथाओं का रूप इस प्रकार देख सकते हैं। प्रायः कहानियाँ 'ब्रह्मदत्त' और 'बनारस राज्य' से प्रारम्भ होती हैं, 'ब्रह्मदत्त' सम्भवतः अनेक राजाओं की उपाधि रही हो यथा 'विक्रमादित्य'। कुछ विद्वानों के अनुसार 'ब्रह्मदत्त का नाम' केवल परम्परा है यथा अँग्रेजी में Once upon a time कहा जाता है।

जातक कथाओं में पशु, पक्षियों, व्यापारियों आदि की विभिन्न कथायें हैं इन्हें हम इस प्रकार रख सकते हैं।

(१) व्यावहारिक नीति सम्बन्धी कथायें (२) पशुओं की कथायें (३) हास्य व विनोद की कथायें (४) रोमाञ्चक लम्बी कथायें या उपन्यास (५) नैतिक कथायें (६) कथन (७) धार्मिक कथायें।*

वर्णन शैलियाँ भी पाँच भागों में विन्टर नित्ज के अनुसार बाँटी जा सकती हैं।

(१) गद्यात्मक वर्णन (२) आख्यान (संवादात्मक तथा वर्णन व संवादों का मिश्रित रूप) (३) अपेक्षाकृत लम्बे विवरण जिनका प्रारम्भ गद्य से होता है किन्तु बाद में गाथाओं का भी समावेश हो जाता है। (४) किसी विषय पर कथित वचनों का संग्रह (५) महाकाव्य या खण्ड-काव्य के रूप में वर्णन। वानरिन्द जातक, सहीचम्पम जातक, सुंसमार जातक, संधिभेद जातक बहुत महत्वपूर्ण हैं इनमें व्यंग्य सुन्दर हैं, विदेश वार्तायें हैं। व्यंग्य प्रायः जाति पर हैं यथा पशु प्रायः मनुष्यों की कटु आलें ना करते दिखाये गये हैं।

हत्व :—जातक-कथाओं के विषय में 'रायस डैविड्स' का मत देखिये—

The whole collection forms the most reliable, the most complete, and the most ancient collection of folklore now extent in any literature in the world.*

प्राचीनता :—हम 'जातक' के समय पर विचार कर चुके हैं किन्तु इस सम्बन्ध में अन्य साहित्य पर कुछ विचार करना उपयुक्त होगा, कि किस प्रकार उसे 'जातक-कथाओं' से प्रेरणा प्राप्त हुई और कहाँ तक वह इन कथाओं से प्रभावित हुआ।

जातक-साहित्य का वर्तमान रूप भले ही ईसा की ५वीं शताब्दी में बन पाया हो परन्तु उसका अस्तित्व स्वयं बुद्ध के समय या उसके कुछ बाद अवश्य था अर्थात् ईसा पूर्व ५०० वर्ष से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक यह साहित्य रचा गया अतः, दो हजार वर्ष प्राचीन है। रामायण व महाभारत पर जातक का अद्वितीय प्रभाव पड़ा है। "सारा रामायण दशरथ जातक व देवधम्म जातक को लेकर रचा गया प्रतीत होता है, स्थिति यह है कि एक ही कथा बुद्ध-साहित्य में है और वही अबौद्ध-साहित्य में मिलती है—डा० भण्डारकर के अनुसार "पतंजलि के महाभाष्य तक में 'राम' का उल्लेख नहीं है, हाँ बुद्धघोष ने (ईसा की ४ वा ५वीं शताब्दी में विद्यमान) अवश्य रामायण व महाभारत की चर्चा की है।' (भदन्त आनन्द कौशल्यायन)। 'घट जातक' तो एक छोटा सा भागवत ही है। भागवत तो पीछे की रचना निर्विवाद रूप से है अतः उस पर 'जातक' का प्रभाव है ही। 'रामायण' जो 'महाभारत' की परवर्ती रचना है, उस पर भी जातक का प्रभाव है। किन्तु पतंजलि में 'राम' का नाम न मिलने से यह सिद्ध नहीं होता कि 'रामायण' जातक का अनुकरण है। निषेधात्मक प्रमाणों पर खोज का कार्य खड़ा नहीं हो सकता। और भदन्त आनन्द कौशल्यायन के मत को देख कर ऐसा

* History of Indian literature Volume II page 125. quoted by Bharat singh Upadhaya.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है कि उन पर बुद्ध-प्रभाव इतना अधिक है कि सारे हिन्दू साहित्य को वे बुद्ध-साहित्य के आगे महत्व नहीं देना चाहते। फिर भी महाभारत की कथाओं पर जातक प्रभाव अक्षुण्ण है जबकि वहाँ सिवि, कौटिल्य (शांति पर्व), महासुर अशोक (आदि पर्व), एडुक (बौद्ध मन्दिर) रोमक, आदि के उल्लेख मिलते हैं।

'जातक' के बक जातक, वानरिन्द जातक, कूट जातक, पञ्च तन्त्र में मिलते हैं। हितोपदेश पंच तंत्र पर आधारित है उसमें गाथाओं की प्रधानता है और पञ्च-तंत्र 'जातक' पर। पंच-तंत्र में जो बीच में श्लोक दिये गये हैं उनके पीछे 'जातक' गाथाओं का प्रेरणा है।

पञ्च-तन्त्र के माध्यम से 'जातक' कथायें ६ वीं शताब्दी में पहलवी भाषा में पहुँच चुकी थीं। ७५० ई० में 'कलेलादमना' के नाम से अरबी में पंच-तंत्र का अनुवाद हो चुका था। रीज डेविड्स के अनुसार 'ईसप' की कथाओं पर जातक का प्रभाव है। "बारलम एण्ड जोसेफ" नामक पुस्तक के जोसेफ स्वयं बुद्ध हैं जो बोधिसत्व से भाषा-विज्ञान के अनुसार इस प्रकार बन गये—बोधिसत्व—बोसत जोसफ। सिंदबाद व अलिफ लैला Arabian Nights पर 'जातक' का प्रभाव माना जाता है।

हूणों ने पूर्वीय योरुप में 'जातक-कथाओं' को फैलाया। श्रीमती 'रायस डेविडस' के अनुसार शेक्सपियर के मरचेण्ट्स आफ वेनिस में 'तीन डिबियाँ' तथा 'आधसेर माँस' के वर्णन में तथा 'ऐज यू लाइक इट' में बहुमूल्य रत्नों के विवरण में जातक का प्रभाव है। भिक्षु शीलभद्र के अनुसार 'दाँते' की Divine comedia पर जातक प्रभाव है।

बुद्धकालीन भारत का राजनैतिक, भौगोलिक, लौकिक, धार्मिक चित्र स्पष्ट करने वाला साहित्य जातक साहित्य है। हीनयान व महायान की शृङ्खला यही साहित्य जोड़ता है। भारतीय सभ्यता के प्रसार की गाथा जातक में सुरक्षित है। उस समय भारत के १६ जनपदों (असम्प्रदान जातक), कुरु पांचाल-वंश युद्ध (चम्पेय्य जातक), मिथिला, श्रावस्ती, बनारस, पाटिलपुत्र, कौशाम्बी आदि नगरों का वर्णन, तक्षशिला आदि विद्यातीर्थों, राजगृह, उज्जैयनी, मिथिला आदि को मिलाने वाले राजमार्गों, स्थानीय व्यापारों, कला दस्तकारी, जलयानों से होने वाली यात्रायों बन्दरगाहों आदि के विशद वर्णन मिलते हैं—लौकिक विश्वासों, समाज में स्त्रियों के स्थान, दासों, सुरापान, यज्ञ में जीव हिंसाओं, व्यापारिक संघों, डाकुओं के गिरोहों, राजवंशों, विभिन्न जातियों, जनतन्त्रों, आदि के वर्णन तात्कालिक भारत का सांगोपांग चित्र उपस्थित करने में जातक कथाओं की देन प्रशंसनीय है। डा० विमलचरण लाहा, रायस डेविडस, डा० फिक, राधाकुमुद मुकुर्जी, श्रीमती रायस डेविडस आदि ने बुद्ध-कालीन भारत का वर्णन इन्हीं जातक-कथाओं के आधार पर विस्तार से किया है। साँची व भरहुत के स्तूप, लङ्का के ५०० चित्र, जावा के बोरो बदूर स्तूप, बरमा के पेगोडाओं, स्याम के सुखोदय नामक प्राचीन नगर के चित्रों में जातक के अनेक दृश्य अंकित किये गये हैं। इतिहास के विद्यार्थी के लिए ईसा पूर्व के भारत को चित्रित करने के लिए एक मात्र आधार यही जातक-साहित्य है। वैदिक साहित्य व बुद्ध साहित्य के बीच की कड़ी को जोड़ने वाली बहुत सी कथायें हमें प्राप्त हैं, ब्राह्मणवाद के समानान्तर स्थविरवादी प्रवृत्तियों, शिक्षाओं नैतिक मापदण्डों को प्रस्तुत करने में भी जातक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

"भारतीय जीवन का प्रत्येक पहलू यहाँ चित्रित है। राजाओं के जन्म-मरण के स्थान पर जब व्यापक दृष्टि से इतिहास लिखा जायगा तब इन कथाओं का मूल्य ज्ञात होगा।" कुछ अत्यन्त आश्चर्यजनक बातें जातकों में मिलती हैं—

(१) नक्षत्रों के ऊपर विश्वास रखने की प्रवृत्ति की निन्दा (नक्खत जातक)
(२) सत्याग्रह का वर्णन (महासलिव जातक)
(३) ऋतु विज्ञान (मरुत-जातक)
(४) सामूहिक दण्ड (कुक्कुर जातक)

यदि विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखा जाय तो भी—'जातक' एक मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद 'साहित्य' के रूप हमारे सम्मुख आता है। यह ठीक है कि उसके पीछे धार्मिक दृष्टिकोण है और 'कर्म' का सिद्धान्त उसका मूल

(शेष पृष्ठ २६६ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-कहानियों का उदय

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

साधारण लोकवार्ता साहित्य का आरम्भ भी धर्म-गाथाओं के साथ ही मानव की शैशवावस्था में हुआ होगा। यह बिल्कुल सम्भव है कि पहले धर्मगाथा का जन्म हुआ हो, तदनन्तर उन गाथाओं में से आदि मानव की धार्मिक आस्था का अभाव होता गया और वे गाथायें लोकवार्ता में मात्र लोक-साहित्य का रूप ग्रहण करने लगी हों। धर्म-गाथाओं के मूल के सम्बन्ध में अभी तक दो प्रधान मत हैं : एक यह मानता है कि धर्मगाथा सूर्य और अन्धकार के संघर्ष की प्राकृतिक घटनाओं के रूपक पर बनी हैं। पहले आदि मानव समूह ने प्रकृति के इन दिव्य व्यापारों को देखा और इन्हें मूर्त रूप में शब्द का अर्थ माना अथवा इन मूर्त विषयों को शब्द दिये, फिर समय पाकर शब्दों में विकार हुआ और उनसे अर्थ-परिवर्तन भी होने लगा। इससे प्रकृति-व्यापारवाची शब्द दिव्यता अथवा देवत्व-द्योतक हो उठे। उनमें नैतिक सिद्धान्तों का भी समावेश हो गया।

धर्मगाथा की उत्पत्ति का मूल उन शब्दों में निहित है जो रूपकालङ्कार की भाँति प्रयोग में आये। आगे चलकर रूपक का भाव लुप्त हो गया। वे अवस्थाऐं भी विस्मृत हो गयीं जिनमें होकर इस शब्द का रूपकवत् प्रयोग हुआ था और शब्द 'धर्मगाथा' का आधार बन गया।

धर्मगाथा के मूल के सम्बन्ध में दूसरा मत यह रहा है कि ये मनुष्य की बर्बर अवस्था में उत्पन्न हुई हैं और इनका सम्बन्ध उस काल के मनुष्यों के कृषि-कर्म तथा प्रजनन-कर्म से है। कृषिकर्म और प्रजनन-कर्म में जिन भयों और आशङ्काओं का पद-पद पर उदय होता है उन्हीं के आधार पर धर्मगाथाएँ चलीं।

जिस प्रकार धर्मगाथाओं का उदय हुआ है, उससे यह स्पष्ट है कि पहले वे जो शब्द धर्मगाथाओं में आज पात्र बने हुए हैं किसी प्राकृतिक व्यापार को प्रगट करते थे। उन प्राकृतिक व्यापारों का प्राकृतिक रूप विलुप्त होता गया और धार्मिक कथा का रूप उसने ग्रहण किया, जिसमें उन प्राकृतिक व्यापारों के विविध शब्दों ने कथा के पात्रों का दिव्य तथा अलौकिक रूप ग्रहण कर लिया। बाद में परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने से कथाओं की धार्मिक आस्था भी कम हो गयी और वे केवल लोककथाएँ हो गयीं। लोककथाओं में पात्रों के नाम भी लुप्त हो जाते हैं। घटनाएँ और कथा-विधान ही ऐसा रह जाता है जो उन्हें धर्मगाथा से संबन्धित रखता है। पात्रों के नाम यदि मिलते भी हैं तो ये नये होते हैं और मूल धर्मगाथाओं के साभिप्राय शब्दों के रूपान्तर नहीं होते। हाँ, कभी-कभी ये रूपान्तरित नाम भी इन धर्म-गाथाओं में से लोकगाथाओं में चिपके चले जाते हैं। यूरोप की कितनी ही लोकगाथाओं का 'जियस' वेदों का 'द्यौस' है। द्यौस पहले प्राकृतिक व्यापार है फिर देवता हुआ और आर्य ऋषियों ने उसकी स्तुति की। फिर वह धर्मगाथाओं का अलौकिक नायक बन गया, और उसकी कथा कहने वाला साधारण जन यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि जिस जियस के सम्बन्ध में वह ऐसी रोचक कहानियाँ सुनता है, वह कोई पुरुष रूपधारी व्यक्ति नहीं, एक प्राकृतिक व्यापार है।

किन्तु लायल महोदय मानते हैं कि उनके मूल में ऐतिहासिक तथ्य अवश्य विद्यमान होता है। उनका कहना है—

'आख्यान अथवा गाथा में कथातत्त्व और कल्पना-तत्त्व के साथ ऐतिहासिक तथ्य का भी समावेश होता है। नहीं, कथा और कल्पना का मूल बिन्दु ऐतिहासिक तथ्य अथवा घटना होती है।' यह लेखक यह मानता है कि 'धर्मगाथा का जब जन्म हुआ उस समय मनुष्य इतिहास और कल्पना-कथा में अन्तर करना नहीं जानता था, अतः उन कथाओं में जो धर्मगाथाओं के रूप में हमें प्राप्त हुए हैं इतिहास का बिन्दु भी है और लोकगाथाओं का भी। दोनों का जन्म साथ-साथ हुआ है, बाद में इतिहास कथा से अलग होता चला गया, और कथा इतिहास से।'

धर्मगाथाओं के निर्माण अथवा विकास की तीन अवस्थाऐं मानी जा सकती हैं। आरंभिक अवस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक व्यापारों और व्यापार-कर्ताओं की वह जीवन द्योतक शब्दों के द्वारा अभिव्यक्ति करेगा। किन्तु जिन व्यापारों से विभूषित प्रकृति के ये तत्व और व्यापार मानवीकरण के आरोप अथवा रूपक के द्वारा सिद्ध हुए नहीं माने जा सकते उन व्यापारों का आदि-द्रष्टा, प्रकृति के इन व्यापारों को अपनी भाँति ही प्राणियों के व्यापार मानता है। सूर्य, ऊषा आदि उसके लिए प्राणी ही हैं, अतः उनको वह रूपक अथवा मानवीय आरोप के द्वारा प्रकट नहीं कर रहा। अपने मनोभाव में उसने उस प्रकृति-मण्डल को यथार्थतः इसी रूप में देखा है। इस क्रम से आरम्भिक धर्मगाथाओं का निर्माण हुआ। जो वेदों में बिखरी मिलती हैं।

माध्यमिक गाथायें वे होती हैं जिनमें शब्दों के यथार्थ अर्थ और विषय या तो बिल्कुल ही विस्मृत हो जाते हैं या अधिकांश विस्मृत हो जाते हैं और उन विस्मृत कड़ियों को जोड़ने के लिए कल्पित कड़ियाँ बन या बना ली जाती हैं।

तीसरी प्रकार की गाथाएँ भी होती हैं। ये शब्द के बहु अर्थों के कारण अथवा एक ही अर्थ वाले विविध शब्दों के श्लेष से उत्पन्न हो जाती हैं।

धर्मगाथाओं और लोककथाओं के अध्ययन से यह विदित होता है कि इनका मूल बहुत प्राचीन है और ये सम्भवतः उस समय अपनी धुँधली रूपरेखा तैयार कर चुकी थीं, जब कि विविध राष्ट्रों और देशों में विभाजित आर्यजन विभाजन से पूर्व शान्तिपूर्वक किसी एक स्थान पर रहते थे।

इस विचार विमर्श से यह निष्कर्ष निकलता है कि लोकवार्ता-साहित्य की धर्मगाथाओं का उदय जिन उपादानों से हुआ उन्हींसे साधारण लोकवार्ता साहित्य की लोक-गाथाओं और लोक-कथाओं का भी हुआ। धर्मगाथा और लोककथा के उदय की श्रेणियां संक्षेप में यों दिखायी जा सकती हैं—

पहली अवस्था—आदि मानव-मानस द्वारा प्रकृति व्यापारों का दर्शन, उनका नामकरण, और उनमें अपने जैसे व्यापारों की अनुभूति।

दूसरी अवस्था—इस अनुभूति-ज्ञान के दो रूप हुए। एक ज्ञान ने विकसित होकर उन प्रकृति के व्यापारों के वाचक शब्दों के यथार्थ अभिप्राय को अंशतः अथवा पूर्णतः विस्मृत कर दिया और उन प्रकृतिवाची शब्दों के विषयों को देवत्व और अलौकिकत्व से विभूषित कर दिया, और धर्म भावना का, श्रद्धा अथवा भय का संचार कर दिया। ऐसा प्रकृति के उन तत्वों और व्यापारों के संबंध में हुआ जो मनुष्य को अपने प्रत्यक्ष अनुभव से उसके दैनिक कार्यक्रम में हानि-लाभ पहुँचाते प्रतीत होते थे।

दूसरे ज्ञान ने विकसित होकर प्रकृति के विविध व्यापारों में मिलने वाली शिक्षाओं को हृदयंगम किया, उन प्रकृति के व्यापारों को कथा-रूप दिया और उनसे उपदेश निकाला।

तीसरी अवस्था—पहला ज्ञान धर्मगाथाओं के रूप में धार्मिक आख्यानों का आधार बना, उन्हें मनीषियों ने अपनाकर और भी अधिक श्रद्धा का भाजन बना दिया। इसमें से महाकाव्यों तथा धर्मगाथाओं के परिपक्व रूप खड़े हुए, यह शिष्ट और विशेष वर्ग की संपत्ति होता चला गया। इसका रूप भी स्थिर होता गया।

दूसरे ज्ञान को साधारण लोक ने अपनाया, इसमें प्रकृति के व्यापारों की शिक्षाएं साधारण कल्पना से विविध विविध रूप ग्रहण करती रहीं, यही साधारण लोकवार्ता हुई। इसमें या तो मनोरंजन की प्रधानता रही, या नैतिक शिक्षा की। इस साहित्य में कथा-कहानी के रूप में घटनाएं तो सुरक्षित रहीं, पर नामों की रक्षा न हो सकी। इसकी आधार रूप-रेखा तो दृढ़ रही पर ऊपरी रूप में अनेकों परिवर्तन होते गए। ये सर्व साधारण की संपत्ति बनीं।

चौथी अवस्था—मूल लोकवार्ताएं अपने आदि स्रोत से पृथक होती चली गयीं, वे विविध मानव-समूहों द्वारा विविध भौगोलिक प्रदेशों में ले जायी गयीं, उन प्रदेशों की भूगोल के अनुसार उस कथा के स्थानों का नामकरण हुआ, ये अधिकाधिक फैलने-फूटने लगीं। उनकी शाखा-प्रशाखाएं ऐसा नया रूप ग्रहण करने लगीं कि मूल से बिलकुल असंबद्ध प्रतीत होने लगीं। अब ये बिलकुल ही साधारण लौकिक कहानियाँ हो गयीं।

पाँचवीं अवस्था—ये साधारण लोक कहानियाँ साधारण जन समुदाय में प्रवाहित हो चलीं और साधारण लोक-मानस ने इनके समान ढाँचे पर बिलकुल लौकिक और स्थानीय कहानियाँ रच डालीं। ऐसी कहानियों को भी प्रेरणा मिली जिनका उनकी प्रेरक कहानी से कोई संबंध ही न रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरणार्थ आदि कवियों ने प्रकृति के इन व्यापारों में शक्ति के दर्शन किये, उनके हृदय आतङ्क और श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठे, उन्होंने उन्हें देव मान लिया, उनके व्यापार जो यथार्थ में प्रकृति व्यापार भर थे, देवताओं के अलौकिक कृत्यों की कथा बन गये। अब सूर्य नहीं रहा, वह इन्द्र के रूप में एक शक्तिशाली देव हो गया जिसने वृत्र नाम के अहि सर्पों के से आकार वाले बादलों का संहार कर डाला और सृष्टि को जल दिया। यह वृत्र दानव हो गया, जिसका आकार प्रकार सर्पों जैसा कल्पित किया गया। इसे मार कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया तो सरमा प्रत्यक्ष हुई :—ऋग्वेद ४, २, ६।

इन्द्र ऊषा को प्रेम करता है, उसे उपहारों से समृद्ध करता है, ऊषा वृत्र की वन्दिनी थी, इन्द्र ने उसके बन्धनों को नष्ट कर दिया, ऊषा मुक्त हुई।

वृत्र-विनाश में इन्द्र का साथ अग्नि ने दिया। अग्नि भी अब देव हो गया है, मात्र प्रकृति का एक भूत नहीं रहा। पणि ने सरमा को फुसलाया, उसने इन्द्र से कर लेना चाहा पर वह मारी गयी। इन्द्र के बाण से जब पणि सुरमा को बहका रही थी, इन्द्र के विरुद्ध, तब सरमा ने पणि से कहा था :—"मैं नहीं जानती कि इन्द्र का दमन किया जा सकता है, क्योंकि वह स्वयं दमनकर्त्ता है, पणि तुम्हीं इन्द्र द्वारा धराशायी की जाओगी।"

और यही होता है। इन्द्र का मित्र अग्नि साधारण देवता नहीं उसने वृत्र के संहार में इन्द्र का साथ दिया है, वह कभी सोता नहीं, वह सबको कठिनाइयों से बचा कर ले जाता है। वह जो है उस सबका ज्ञाता है। इस सूर्य, मेघ, संयुक्त, आदि सम्बन्धी प्रकृतिव्यापार का यह धर्मगाथा का पूर्वरूप बनने लगा। समय बीतने पर इन्द्र-अग्नि जैसे सीधे दिव्यपात्रों का स्थान राम-लक्ष्मण अथवा कृष्ण-बलदेव ने ग्रहण किया। वृत्र रावण बना, पणि शूर्पणखा हुई और परिपक्व धर्मगाथा का पौराणिक रूपान्तर प्रस्तुत हो गया। यह शिष्ट सम्प्रदाय में हुआ, लोक की कल्पना में उपरोक्त आदिकालीन विविध प्रकृति तत्वों की प्राणमय कल्पना ने एक अद्भुत कहानी का ढाँचा खड़ा किया। जिसमें न तो इन्द्र-वृत्र का नाम रहा, न राम-रावण का।

इस कहानी का मूल ढाँचा कुछ ऐसा बना : राजकुमार और उसके मित्र घर से चले। उन्होंने एक सुन्दरी की छवि देखी, वह सुन्दरी पानी में रहती थी। वह एक मणिधर सर्प के वश में थी, दोनों ने सर्प को मार डाला और सुन्दरी को प्राप्त किया, एक अन्य राजकुमार की दृष्टि सुन्दरी पर पड़ी। उसने चतुर दूती भेजी जो धोखा देकर उसे लेगयी पर राजकुमार के मित्र ने पता लगा लिया और वह दूती को धता बता कर उस सुन्दरी को छुड़ा लाया। जब राजकुमार और सुन्दरी के साथ वह मित्र भी घर लौटने लगा तो उसने रात में जगकर पक्षियों की बातों से राजकुमार पर पड़ने वाले तीन सङ्कटों को जान लिया। उसने तीनों सङ्कटों से राजकुमार की रक्षा की, पर अन्त में राजकुमार हठ पकड़ गया कि बताओ तुम्हें इन सङ्कटों का कैसे ज्ञान हुआ तो मित्र ने सब हाल कहा, वह पत्थर का हो गया तब राजकुमार और सुन्दरी से जो पहला पुत्र उत्पन्न हुआ उसके स्पर्श या रक्त से वह पाषाण पुनः जीवित हो उठा। यह कहानी इन्द्र, ऊषा, सरमा, अग्नि, पणि की ही लोक-कल्पना में जीवित रहने वाली आवृत्ति है। अग्नि के तीन रूपों से तीन सङ्कटों की कल्पना हुई है, सब सङ्कटों से अग्नि रक्षा करती है, इससे मित्र द्वारा रक्षा की भावना लोक-कहानी में मिलती है। पणि दूती है। अग्नि की सामर्थ्य बीत जाने पर वह पाषाणवत् शीतल और जड़ हो जाती है। और वह तभी पुनरोद्दीप्त हो सकती है जब पुनः उद्योग किया जावे। वेदों में भी अग्नि के आरम्भिक-रूप को प्रथम उत्पन्न शिशु भी कहा गया है।

यह लोकवार्ता विविध दलों के व्यक्तियों के साथ अलग अलग देश में गयी और अपनी उस मौलिक रूपरेखा की रक्षा करते हुए भी विविध देशों में आज इसने विविध रूप धारण कर लिए हैं, जिन्हें तुलना करने पर यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि इसी ने इतने वेष बदल लिए हैं। जर्मनी में यह 'फेदफुल जोहन' के नाम से प्रचलित है; दक्षिण में राम-लक्ष्मण की कहानी का रूप लिया, बङ्गाल में फकीरचन्द बनी, ब्रज में "चारु होइ तो ऐसो होइ" के नाम से चल रही है, और भी इसके कितने अवान्तर रूप इधर-उधर के अनेकों प्रदेशों में मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी की परिभाषा

प्रो० कमला गर्ग एम० ए० (दिल्ली वि० वि०)

उस दिन जब लता से आवृत्त गुफा में मचलते बालक को मां ने बालक के पिता के शौर्य एवं साहस की वह घटना जिसमें उसने सिंह को किस अपूर्व रूप से पराजित किया था, सुनाई होगी तभी अनायास कथा का जन्म हो गया होगा—मानव का कथा विषयक आकर्षण ही सहज रहा है। स्मरणीय घटनाओं की आवृत्ति ही कथा के स्फुरण में सहायक हुई होगी। विगत घटनाओं के प्रति रुचि 'तब क्या हुआ' की उत्सुकता ने कथा का विकास किया होगा। श्रोता की रुचि एवं उत्सुकता में तीव्रता के संचरण के लिए कल्पना की अन्तर्धारा आ मिली होगी। और तब····क्रमशः सभ्यता के विकास के साथ 'कथा' कला के परिधान में लिपटी आ खड़ी हुई।

अपने पूर्वजों के इतिहास को सुरक्षित रखने का मानव का अनुराग ही कथा सामग्री एकत्रित करने में प्रेरित करता रहा होगा। कहानी का पर्यायवाची अंग्रेजी में प्रमुख शब्द (Story) स्टोरी इसी की ओर संभवतः संकेत करता है। 'Story' का मूल अर्थ है—a historical narrative or anecdote अर्थात् एक ऐतिहासिक इतिवृत्तात्मक वर्णन। इसी प्रकार संस्कृत में आख्यान एवं आख्यायिका का अर्थ भी ऐतिहासिक वर्णन का सूचक है। 'आख्या' शब्द का अर्थ है 'कहना'। इसी से आख्यान शब्द बना जिसका तात्पर्य है—किसी पूर्ववृत्त की सूचना देना। इसी प्रकार आख्यायिका का भाव है जिस का पर्याय स्पष्टतः 'इतिहास' कहा गया है (शब्द कल्पद्रुम)। कालान्तर में इसमें मनोविनोद तत्व का जब समावेश हो गया तब पूर्व वृत्तान्त के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ। मनोविनोद के लिए आवश्यक हुआ कि घटित वृत्तान्त का बन्धन न रखा जाय वरन् उसमें कल्पना का पुट मिलाकर मन का अनुरंजन किया जाय। यहीं कथा का आविर्भाव होता है। इसी में प्रबंध कल्पना का परिचय मिलता है। ऐतिहासिक आख्यान एवं कथा में यही अन्तर है कि प्रथम में विशुद्ध यथार्थ घटना का वर्णन है जब कि अपर में कल्पना मिश्रित घटना का वर्णन है।

मानव ज्यों ज्यों विकसित होता गया त्यों त्यों उसकी प्रवृत्तियाँ भी परिमार्जित होती गई। प्रारंभ में कथा के उपर्युक्त दो रूप ही रहे होंगे। क्रमशः मनुष्य ने मनोरंजन के साधनों का उपयोग शिक्षा के हेतु भी किया। उसने कथा को शिक्षा का माध्यम बनाया। इस प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह धीरे धीरे वास्तविक घटना में कल्पना की मात्रा का अधिकाधिक मिश्रण करने लगा। पात्र भी कल्पित होने लगे, घटनाएं भी कल्पित होने लगीं। (गुणाढ्य की बृहत्कथा)। मनुष्य पात्रों के स्थान पर पशु-पक्षी भी पात्र बनाए जाने लगे। संभवतः इसके पीछे कारण यह रहा होगा कि वैचित्र्य के कारण कथा अधिक आकर्षक हो उठे एवं नीति भी उपस्थित की जा सके। पंच तंत्र, हितोपदेश आदि नीति कथा के अच्छे उदाहरण हैं। पाश्चात्य जगत् में भी इसी प्रकार की कथाएं प्रचलित रही हैं। इन्हें Apologue या Fables भी कहते हैं। ईसप की इस प्रकार की कहानियां बहुत प्रसिद्ध हैं। वेद, पुराण, उपनिषद, जातक तथा विविध मतों एवं विश्वासों से ओतप्रोत कथाएं प्रचुर मात्रा में भारतीय साहित्य में उपलब्ध हैं। इनमें दार्शनिक तथ्य तो भरपूर हैं किन्तु मनोरंजन की सामग्री का भी अभाव नहीं है।

इसी मनोरंजन पक्ष ने ही कथा को कला की प्रेरणा दी। भावनाओं की अभिव्यक्ति अधिकाधिक सुन्दर हो, हृदयस्पर्शी हो, स्वाभाविक हो, सजीव हो आदि विशेषताओं की ओर कथाकार का ध्यान आकृष्ट होने लगा। वह लघु एवं दीर्घ कथाओं की रचना करने लगा। कथा के आकार प्रकार एवं उद्देश्य के अनुसार भिन्न भिन्न रूपों का आविर्भाव हुआ तथा विविध नामों के द्वारा उनका वर्गीकरण किया जाने लगा। कथा की अभिव्यक्ति छन्दोबद्ध प्रबंधयोजना अथवा नाटक द्वारा भी हो सकती है। किन्तु पद्य एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगमंच में कथावस्तु के अतिरिक्त अन्य उपकरणों की भी उपेक्षा रहती है। गद्य के आविर्भाव के पूर्व पद्य तथा नाटक द्वारा ही प्रबंध कल्पना का निर्वाह कर लिया जाता था किन्तु जब से साहित्य में गद्यशैली का प्रवेश हुआ तब से कथाकार को अपनी कथा को गद्यशैली में उपस्थित करना अधिक सुगम प्रतीत होने लगा। इसमें अबाध रूप से वर्णन करने की उसे सुविधा रहती है। पात्रों, परिस्थितियों, भावनाओं, समस्याओं का विचारपूर्ण तथा तर्कपूर्ण विश्लेषण करने का अवसर रहता है। यत्र तत्र कथाकार स्वयं भी कथा में उपस्थित हो सकता है। हां, काव्य के अन्य रूपों की भांति उसे इसमें भी सावधान रहना पड़ता है कि कहीं रस विपर्यय न हो एवं कथा की शृङ्खला खण्डित न हो।

कहानी शब्द की उत्पत्ति 'कथानिका' या 'कथानक' से मानी जाती है। पहले कथा का अर्थ जो कुछ लिया जाता था उससे आज की कहानी अत्यधिक भिन्न नहीं है। मूलतः दोनों एक ही हैं, किन्तु युगों के परिवर्तन क्रम में पड़ कर निस्संदेह आख्यान या आख्यायिका के विपरीत कल्पित वृत्तान्त की ओर संकेत करता था। इस के ही अंतर्गत नीतिकथा, जिसका उल्लेख इतिपूर्व किया जा चुका है, आती थी। अंग्रेजी में Fable या apologue नीतिकथाओं को कहते हैं। इसके अतिरिक्त allegry की एक कोटि है जिसे रूपक या दृष्टान्त कहा जा सकता है; अथवा अन्योक्ति भी इसके निकट है। Tale में कल्पित कथा से अधिक पद्यात्मकता रहती थी। Story में ऐतिहासिकता का पुट विशेष रहता था। किन्तु अब साधारणतः Tale, Story एवं fiction कल्पित प्रबंधकों के ही पर्याय माने जाते हैं। इनमें से fiction शब्द जिसका अर्थ काल्पनिक कथा है, तत्वों की दृष्टि से कथा से सादृश्य रखता सा प्रतीत होता है।

आधुनिक युग में कथा ने 'कहानी' की संज्ञा धारण करली है। इसी प्रबन्ध कथा के अन्तर्गत एक और वर्गीकरण अब किया जाता है और वह है उपन्यास का। इसमें और कहानी में अन्तर है। कहानी की अपेक्षा इसमें घटनाओं का, भावनाओं का तथा जीवन व्यापारों का विस्तार अधिक होता है। हिन्दी में कल्पित कथा का नाम कहानी हो गया है तथा अँगरेजी में fiction कहने लगे हैं। उपर्युक्त कोटि की रचनायें भी अब कम होने लगी हैं। अब कहानी का उद्देश्य पूर्व की भाँति नीति का उपदेश देना नहीं रहा है। उपयोगिता से अधिक मार्मिकता रसात्मकता पर जोर डाला जाता है। जीवन का वास्तविक चित्रण उसमें हो, इसका प्रयत्न किया जाता है। साथ ही मनोरञ्जन का भी साधन रहे इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है।

कहानी की परिभाषा विद्वानों ने तथा कहानीकारों ने नाना प्रकार से की है। पाश्चात्य जगत में आधुनिक कथा साहित्य के विख्यात कथाकार एडगर एलेन पो कहते हैं—

"कहानी एक ऐसा आख्यान है, जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव के उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखा गया हो। उसमें ऐसी सब बातों का बहिष्कार कर दिया जाता है जो उस प्रभाव को अग्रसर करने में सहायक न हों। वह स्वतः पूर्ण होता है।" प्रारम्भ में इस परिभाषा ने कहानी के क्षेत्र में एक परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था यद्यपि अब उपर्युक्त परिभाषा की मान्यता पूर्व की भाँति नहीं रही तथापि इसमें से एक बात तो स्वीकार आज भी की जाती है, वह है कहानी का संक्षिप्त होना। किन्तु कहानी का लघु आकार ही सब कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य बातें भी हैं, जिन पर परवर्ती कहानीकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। इस ओर हिन्दी में प्रेमचन्दजी का ध्यान पहली बार गया। उनका कहना है—"कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अङ्ग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली उसका कथा-विन्यास सब उसी एक भाव की पुष्टि करते हैं। .....वह एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।" सफल कथाकार होने के नाते कहानी की विशेषताओं से वे अपरिचित नहीं थे, अतः उन्होंने कहानी की परिभाषा की अपेक्षा व्याख्या अधिक की और वह है भी बहुत सुन्दर। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार कहानी लेखकों में यथेष्ट विख्यात हैं। आपकी सम्मति है—"घटनात्मक इकहरे चित्रण का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम कहानी है। और साहित्य के सभी अङ्गों के समान रस इसका आवश्यक गुण है।" इसमें दो बातों पर बल दिया गया है। (१) घटना, (२) इकहरा चित्रण, किन्तु शङ्का होती है कि कहानी क्या केवल घटनात्मक ही हो सकती है? अज्ञेय की कहानी 'रोज' को किस के अन्तर्गत रक्खा जाये, एक समस्या बन जाती है। इकहरा चित्रण भी विचारोत्तेजक है—इससे भाव प्रकट होता है कि केवल एक ही घटना का चित्रण हो अथवा प्रधान घटनात्मक कथानक के अतिरिक्त अन्य उपकथानकों का निषेध। अतः परिभाषा की दृष्टि से यह सम्मति अधिक सहायक नहीं प्रतीत होती। आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल ने अपनी पुस्तक 'साहित्य जिज्ञासा' में कहानी को परिभाषित किया है कि कहानी "घटना या चरित्र विशेष का संक्षिप्त रसयुक्त चित्रण है।" यह परिभाषा अधिक स्पष्ट प्रतीत होती है। कहानी की कथावस्तु में किसी घटना या चरित्र का ही समावेश होगा। रसयुक्त होना अनिवार्य है। कारण काव्य अर्थात् साहित्य का अङ्ग होने के नाते इसमें रस का परिपाक अपेक्षित है। इसके अभाव में कहानी में मनोरञ्जकता एवं मार्मिकता की न्यूनता खटकने वाली होगी। पाठकों पर कहानीकार प्रभाव डालने में असमर्थ होगा। संक्षिप्त होना आवश्यक है। यहीं कहानीकार की कला एवं उसके कौशल का परिचय मिलता है। कुशलतापूर्वक संक्षेप की सीमा में रह कर कहानीकार अपनी कहानी को हृदयस्पर्शी एवं प्रभावशाली बनाने में तभी समर्थ हो सकेगा जबकि उसमें अभिव्यक्ति कलात्मक होगी। कहानी में उपन्यास की भाँति घटना या चरित्र का विकास सम्भव नहीं है। किन्तु वह चित्रण अपनी सीमाओं में ही पूर्ण है। लघुता के अन्दर ही वह पुष्ट रेखाओं से अङ्कित है।

कहानी की सामग्री जीवन से ही ली जाती है। कहानीकार अपनी प्रेरणा के अनुसार, जीवन में से सामग्री एकत्रित करता है। कभी उसकी कहानी जीवन की छाया के रूप में आती है। कभी जीवन की तत्कालीन दशाओं से अनुप्राणित हो कलात्मक रूप से व्यञ्जना करते हुए सन्देश देती है। कलात्मक से अभिप्राय है कि उपदेशात्मक रीति ग्रहण न कर संकेतात्मक व्यञ्जनाशैली के द्वारा स्थिति का मार्मिक बोध कराए और उद्बोधन की प्रेरणा प्रदान करे। तत्वों की दृष्टि से विचार करने हर यही कहा जा सकता है कि कहानी में कथावस्तु की सामग्री इतिहास, समाज, राजनीति, जीवन की विविध अनुभूतियाँ, समस्यायें, चरित्र चित्रण या घटना विशेष, भावना विशेष को एकत्रित की जा सकती हैं। कहानी में जहाँ उपन्यास की भाँति विस्तार का अभाव है वहीं उसमें एक विशेष सुविधा भी कहानीकार को प्राप्त है। एक ही वस्तु अर्थात् भाव को केन्द्रित कर उस पर प्रकाश डाल कर जितना महत्वपूर्ण उसे कहानी में बनाया जा सकता है उतना उपन्यास के विस्तृत 'कैनवास' पर सम्भव नहीं। इसकी तुलना हाथी दाँत के किसी सूक्ष्म कारुकार्य के साथ की जा सकती है। जीवन का गुह्यतम पर्यवेक्षण कहानी में अधिक सम्भव है। छोटे-छोटे गीतों की भाँति एक ही भाव, दशा या चरित्र का चित्रण इसमें सफलतापूर्वक किया जा सकता है। विविध कहानी रचना प्रणाली पर अन्य तत्व निर्भर करते हैं। यदि पत्र या डायरी के रूप में भावों को अभिव्यक्त किया गया है तो स्वगत भाषण की प्रधानता रहती है। पूर्व स्मृतियों के उल्लेख किये जाते हैं। नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने के लिए साधारणतः कहानी में कथोपथन का भी उपयोग किया जाता है। चरित्र, शैली, कथा विन्यास, मुख्यतः कहानी के तत्व हैं। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पिछले कुछ वर्षों से ही और प्रकार की और शैलियाँ भी प्रचलित हो गई हैं। रेखाचित्र एवं रिपोर्ताज। रेखाचित्र केवल मात्र चित्रण है। उसमें कहानीकार की कल्पना को प्रधानता नहीं मिल पाती, एक विशेष दृष्टिकोण से किसी व्यक्ति विशेष, भाव विशेष, या घटना विशेष का चित्रण मात्र रहता है। रिपोर्ताज में में रिपोर्ट अर्थात् सूचना विवरण रहता है। इसमें मार्मिकता उत्पन्न करना ही ध्येय होता है। उपर्युक्त दोनों शैलियों में प्रयत्न रहता है कथा विन्यास का। रेखाचित्र में फिर भी कल्पना न्यूनाधिक स्थान प्राप्त कर लेती है किन्तु रिपोर्ताज में शब्दों के कुशल चयन का ही प्रयास परिलक्षित होता है। यह घटना प्रधान ही अधिक होता है। अभी इन दोनों का प्रयोग प्रारम्भ ही हुआ है। परिमार्जित होकर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में स्थान पाने के लिए ये उद्योगरत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी के तत्व

श्री मथुराप्रसाद गर्ग एम० ए०

कहानी का प्रारम्भ और उसकी परम्परा—मानव ने जिस दिन से भाषा द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति की होगी सम्भवतः उसी दिन से उसने कहानी कहना और सुनना प्रारम्भ कर दिया होगा—दूसरे शब्दों में कहानी की परम्परा दस हजार वर्ष से कम पुरानी नहीं, अधिक भले ही हो।

श्रोता सदैव मनोरञ्जक और कर्ण-प्रिय बात सुनना चाहता है। अतएव उसकी इस मनोरंजन-प्रियता की तुष्टि के लिए कहानी कहने वाला भी जो कुछ कहता है उसे वह हृदय-ग्राही, कलात्मक और मनोरंजक बनाने की चेष्टा करता है। यह मनोरञ्जकता (१) अनुभूति (२) कल्पना और (३) प्रयास से उत्पन्न हो सकती है। मानव में मनोरञ्जक कहानी सुनने की प्रवृत्ति शिशुओं की जिज्ञासा से स्पष्ट है। जब किसी शिशु के समक्ष विचित्र और आश्चर्यजनक वार्ता कही जाती है तो वह उसे बड़े चाव से श्रवण करता है। अतएव यह स्वीकार कर लिया जा सकता है कि कहानी सुनने की वृति मानव में स्वाभाविक गुणस्वरूप है। इसीलिए इस वृति की तुष्टि के लिए कहानी कहने की कला भी मानव ने शीघ्र ही ग्रहण करली होगी। रिचर्ड बर्टन के शब्दों में—'कहानी दुनियाँ की सबसे पुरानी वस्तु है इसीलिए आश्चर्य नहीं कि इसका प्रारम्भ उसी समय से हुआ हो जब मनुष्य ने घुटनों के बल चलना सीखा था।'*

मनुष्यता के विकास के साथ-साथ कहानी का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया। आदिकाल में मनुष्य कन्दराओं में रहा करते थे, जानवरों का शिकार कर अपना उदरपोषण करते थे। तत्पश्चात् समाज का निर्माण हुआ। अरुण, वरुण आदि देवताओं की पूजा प्रारम्भ हुई। ठण्ड के दिनों में आग के सामने बैठ कर तापते हुए वृद्ध लोग जङ्गली पशुओं की और अन्य विषयक कहानियाँ कहा करते थे। मनुष्य की बुद्धि विकसित होने पर किंवदन्तियों के आधार पर लोगों में कहानियाँ प्रचलित हुई। यात्रा, साहसकार्य जादू और प्रपञ्च सम्बन्धी कहानियों का प्रचलन हुआ। इस पर कहानी ने अपना आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया। यह स्वरूप तो परिवर्तित हुआ पर कहानी-प्रेम ज्यों का त्यों बना रहा। बच्चा केवल कहानी सुनाना ही नहीं चाहता अगर उसमें तनिक भी कल्पना है तो वह सुनाना भी चाहता हैं और अन्त में वह स्वयं कहानी हो जाता है। यह मानव जीवन कहानी से गुंथा हुआ है। जीवन के कठोर यथार्थ से ऊबकर वह एकदम किसी नये वातावरण में विश्रान्ति और परिवर्तन चाहता है तो उस समय कहानी ही उसका सहारा बनती है।

कहानी की परिभाषा और उसके सम्बन्ध में विभिन्न मत—एक शब्द में कहानी की परिभाषा देना कठिन है। कहानी क्या है, कौन चीज कहानी हैं, कौन चीज कहानी नहीं है, यह सब हम पहचानते हैं। हाँ, यह समझने में आपत्ति अवश्य होती है कि साधारण और कलात्मक कहानी में क्या अन्तर है। प्रेमचन्दजी के शब्दों में—'आख्यायिका केवल घटना है।' मोटे रूप में यह बात ठीक सी है परन्तु कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जो पात्र परिस्थिति का विश्लेषण करके अथवा चित्र देकर ही रह जाती है, उनमें घटना का अभाव रहता है तथापि वे कहानियाँ हैं। प्रेमचन्दजी इस बात को जानते थे, उन्होंने कहा भी है—'वर्तमान आख्यायिका का आधार ही मनोविज्ञान है। घटनाएँ और पात्र तो उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लाये जाते हैं उनका स्थान बिल्कुल गौण है।'—इन दोनों कथनों को संयुक्त करने पर यों कहा जा सकता है—"कहानी एक घटना, मनःस्थिति या बाह्य परिस्थिति है जिसमें मनोवैज्ञानिक सत्य या मनोवैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन सम्भव हो।"† प्रेमचन्दजी

* Master of the English Novel Richard Burton.

† मानसरोवर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मतानुसार—'कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुञ्जाइश नहीं होती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं वरन् उसके चरित्र का एक अङ्ग दिखाना है।'

प्रसादजी के शब्दों में कहानी की परिभाषा का स्वरूप कुछ-कुछ में खड़ा किया जा सकता है—'आख्यायिका में सौन्दर्य की एक झलक का रस है। मान लीजिये आप किसी तेज सवारी पर चले जा रहे हैं, रास्ते में एक गोल मटोल शिशु खेल रहा है, सुन्दरता की मूर्त्ति। उसकी झलक मिलते न मिलते भर में सवारी आगे निकल जाती है किन्तु उतनी ही झलक उतनी होती है कि उसकी स्थायी रेखा आपके अन्तर्पट पर अङ्कित हो जाती है, यही काम कहानी भी करती है।"

Stevenson के शब्दों में—"The short story is not a transcript of life but a simplification of some side of life"—"The short story as the phrase implies is first a story and secondly it is short. Still it would be wrong to imagine that it is only a shortened novel (a cut down, abbreviated or abridged novel) and although the short story is dramatic it will also be a mistake to suppose it to be only a variety of prose drama. A short story deals with the particular piece of action or one particular situation. It presents a single episode treated dramatically and producing on the reader "an effect of Totality" a unified impression of one situation or experience or event" *

पहाड़ी के शब्दों में उपन्यास और कहानी की भिन्नता में परिभाषा का आभास मिलता है।—".....उपन्यास में जीवन की समस्याओं की व्याख्या मिलती है और उन समस्याओं का समाधान मिलता है। कहानी में यह बात नहीं पाई जाती। कहानी एक प्रश्न को उठाती है किन्तु उसका उत्तर पूर्ण रूप से नहीं देती। व्याख्या उपन्यास का प्राण है। संकेत (Suggestion) और गूँज (echo) कहानी की जीवन श्वासें हैं। उपन्यास को हम नक्षत्र-खचित आकाश कहें तो कहानी को सप्तरङ्गी इन्द्रधनुष मान लें। अकस्मात् रहस्यपूर्ण क्षितिज के कोने से रङ्गों की रागिणी उठी और देखते-देखते नयनाभिराम होकर अछोर फैल गई और फिर देखते-देखते न जाने कहाँ विलीन होगई। पर बहुत देर के लिए आँखों में और मन में एक कसक और एक गूँज छोड़ गई।"

जीवन में सङ्घर्ष और जटिलता की वृद्धि के साथ ही साथ मनुष्य को अवकाश की कमी होती गई अतएव मनुष्य ने थोड़े से थोड़े समय में अपने अनुरञ्जन के उपाय निकाले; छोटी कहानी इसी तरह के उपाय का उपेय है। उपन्यासों के लिखने और पढ़ने दोनों में अधिक समय चाहिये। Poe के अनुसार "कहानी वह जो आध घन्टे से लेकर एक दो घन्टे में पढ़ी जा सके या कहानी वह जो एक बैठक में पढ़ी जा सके।"

फिर भी हम कहानी को किसी विशेष परिभाषा की परिधि में नहीं बाँध सकते। कहानी के उद्देश्य, विषय या टेकनीक को लेकर उसकी परिभाषा नहीं बन सकती। कहानी का क्षेत्र इतना विस्तृत है विषय और शैली दोनों की दृष्टि से, कि हम कहानी की परिभाषा को दो-चार वाक्यों की परिभाषा की परिधि में नहीं बाँध सकते हैं।

कहानी के तत्व (अङ्ग) : १—कथानक—एक या एक से अधिक पात्रों के अनुभवों तथा घटनाओं का क्रमिक अनुबन्धन ही कथानक है। कथानक एक प्रकार से कथा ही है, परन्तु वह लेखक की भावुकता और कल्पना के सहारे विकसित होती है। कहानीकार की कला-शक्ति से कहानी में ऐसी कलात्मकता उत्पन्न हो जाती है कि जब तक पाठक कहानी समाप्त नहीं कर लेता तब तक वह रुकना नहीं चाहता। कथानक सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक हो सकता है। कहानीकार सर्वप्रथम कथानक

* General Introduction to Stevenson stories : Soman.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सृजन करते ही उसके धागे में पात्रों को पिरोता चलता है। कथानक जीवन की घटनाओं या भावों की शृङ्खला मात्र है। यह शृङ्खला साधारण या जटिल हो सकती है। साधारण कथानक में एक ही घटना या भाव का चित्रण होता है। जटिल कथानक में एक से अधिक घटनाओं तथा पात्रों की परिस्थितियाँ चित्रित होती हैं। जटिल कथानक के लिए कहानी में स्थान नहीं। कहानी का कथानक छोटा, सरल और खूब कसा हुआ होना चाहिये। घटनाओं से गुम्फित कथानक एक कहानी को एक उपन्यास की कोटि में रख देगा। कथानक के विकास की पाँच स्थितियाँ होती हैं—(क) प्रारम्भ, (ख) आरोह, (ग) चरम-स्थिति, (घ) अवरोह और (ङ) अन्त।

(क) प्रारम्भ (i)—कहानी का प्रारम्भ किसी पात्र के परिचय के साथ किया जा सकता है। (ii) कहानी का प्रारम्भ वातावरण के वर्णन द्वारा भी किया जाता है। (iii) कभी दो पात्रों के कथोपकथन के साथ कहानी का प्रारम्भ होता है। कहानी के प्रारम्भ में लेखक स्वतन्त्र है, लेकिन यह अवश्य है कि प्रारम्भ रोचक होना चाहिये।

(ख) आरोह—इसमें पात्र की मानसिक व्यवस्था या स्थिति या भावना का विकास दिखाया जाता है।

(ग) चरमस्थिति—कहानी की चरमस्थिति वह है जहाँ पर कहानी की रोचकता अथवा सुन्दरता में क्षण भर में स्तब्धता आ जाती है और पाठक के हृदय में कम्पन अनुभव होने लगता है। दुखान्त कहानियों में यह परिस्थिति अन्त में होती है।

(घ) अवरोह (पतन)—'आगे क्या हुआ' की जिज्ञासा या उत्सुकता का समाधान ही चरमस्थिति के पश्चात् अवरोह या पतन है।

(ङ) अन्त या उपसंहार—पाठक की कल्पना के लिये बहुत सी कहानियों में पिछली दो परिस्थितियाँ छोड़ दी जाती हैं।

सुखान्त कहानियों में नाटक, उपन्यास की तरह पाँच परिस्थितियाँ होती हैं—(प) आरम्भ, (फ) प्रयत्न, (ब) प्राप्त्याशा, (भ) निर्गताप्ति (म) फलागम।

(प) आरम्भ—उद्देश्य की सिद्धि के लिए उत्सुकता को आरम्भ कहते हैं।

(फ) प्रयत्न—उसकी सिद्धि के लिए गतिशील चेष्टा का नाम प्रयत्न है।

(ब) प्राप्त्याशा—कथानक के आगे बढ़ने पर जहाँ उद्देश्य की सिद्धि और असिद्धि दोनों में सिद्धि पक्ष प्रबल दीखे वहाँ प्राप्त्याशा होगी।

(भ) निर्गताप्ति—जब असिद्धि पक्ष बिलकुल तिरोहित हो वहाँ प्राप्ति होती है।

(म) जहाँ उद्देश्य की सिद्धि सम्पन्न हो जाय वहाँ अन्तिम अवस्था फलागम होती है।

२ चरित्र-चित्रण—चरित्र चित्रण कहानी का महत्त्वपूर्ण अंग है। यदि चरित्र निरूपण का आधार मनोवैज्ञानिक सत्य है तो वास्तविक, स्वाभाविक और सजीवरूप में पात्र खड़े होंगे। अगर लेखक जीवन सम्बन्धी ज्ञान तथा अनुभव सीमित होकर संकीर्ण है तो अपूर्ण पात्र खड़े होंगे, अगर उसकी अनुभूतियाँ गहरी होकर व्यापक अनुभव रखती है तो पात्र सशक्त और सजीव होंगे। प्रेमचंद के पात्र हमारे सामने इसी रूप में आते हैं। पाठक के हृदय में पात्रों के प्रति सहानुभूति का उदय होना सफल चरित्र-चित्रण का प्रतीक है। चरित्र निरूपण में चार बातें प्रमुख हैं—(च) वास्तविकता (छ) संक्षिप्तता (ज) स्वाभाविकता (झ) आंशिकता चरित्र चित्रण (ट) वर्णनात्मक (ठ) संकेतात्मक (ड) कथोपकथनात्मक (ढ) घटनात्मक हो सकते हैं।

३ शैली—शैली तो लेखक का स्वभाव है, और स्वभाव का उद्भवस्थ है जीवन। 'शैलीकार जीवन को आँखों से देखते हैं; पुस्तकों द्वारा नहीं झांकते।'* शैली कला की प्राण है। शैली ही कलाकार के अस्तित्व और व्यक्तित्व का परिचय देती है। कहानी लिखने की अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं—(क) वर्णनात्मक शैली† (ख) आत्मकथन शैली (ग) पत्र शैली (घ) डायरी शैली (ङ) कथोपकथन शैली।❀

*आलोचना के पथ पर : सहल।

†पहाड़ी ने इसे 'इतिहास शैली' का नाम भी दिया है।

❀इसे 'नाटकीय शैली' भी कहा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ कथोपकथन—कथोपकथन द्वारा कहानी में रोचकता और सजीवता का समावेश होजाता है। कथोपकथन चरित्र चित्रण में बल देते हैं। कथोपकथन पात्रों के अनुकूल होने चाहिए। भाषा की स्वाभाविकता भी अनिवार्य है। कथोपकथन स्थान, समय और परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिये।

५ भाषा—भाषा ऐसी होनी चाहिये जो कि सजीव लगे। जिसमें सफल चित्र खड़े करने की सामर्थ्य हो और ओज और माधुर्य गुणों की अवस्थिति विषयानुकूल और रसानुकूल हो। उसमें व्यंग और परिहास के भी स्थल हों। मुहावरों के प्रयोग से भी भाषा सशक्त और सजीव होती है। भाषा के सम्बन्ध में चार मत हैं—

(१) एक के प्रतिनिधि प्रसादजी हैं। प्रसादजी की भाषा शुद्ध परिमार्जित है जिसमें मुसलान पात्र भी हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करते हैं। विदेशी पात्रों के द्वारा भी उन्होंने साहित्यिक भाषा का प्रयोग कराया है। उन्होंने इसका समाधान इस प्रकार के शब्दों में किया है—"× × भिन्न-भिन्न देश और वर्गवालों से उनके देश और वर्ग के अनुसार भाषाओं का प्रयोग कराने से रचनाओं को अजायबघर बनाना पड़ता है जो कहीं अधिक अप्राकृतिक हो जाता है और सामाजिकों के लिए भी इतनी भाषाओं से परिचय रखना असम्भव है। × × अतएव भाषा विविधता के लिए तर्क न करना ही हितकर है। स्वरूप भिन्नत्व केवल वेशभूषा से ही व्यक्त कर देना चाहिये।"*

(२) दूसरी शैली के प्रतिनिधि प्रेमचन्दजी हैं। उनकी भाषा के सम्बन्ध में ठीक ही कहा गया है—"किसानों की बातचीत में असाधारण रूप से देहात के मुहावरों और शब्दों को अपनाया है जबकि शहर के मुसलमान पात्र उर्दू बोलते हैं। उनकी भाषा जितनी सरल और चमत्कारपूर्ण है उतनी ही वह जनता की भाषा में छिपे हुए वैचित्र्य और साहित्यिकता की गवाही देती है।"†

(३) उग्रजी की भाषा फड़कीली होकर लाक्षणिक है। उनकी लोचदार भाषा पाठक के हृदय में बैठ सी जाती है। जैसा कि उदाहरण से स्पष्ट है—'मेरी एक बीबी थी, गुलाब की तरह खूबसूरत, मोती की तरह आबदार, कोहेनूर की तरह बेशकीमत, नेकी की तरह नेक, चाँद की तरह सादी, लड़कपन की हँसी की तरह भोली, और जान की तरह प्यारी।'❀

(४) अज्ञेय और यशपाल आदि की रोचक भाषा।

६ सिद्धान्त अथवा दृष्टिकोण—इसके आधार पर दो विभाग हो सकते हैं (अ) आदर्शवादी—प्रेमचन्द का "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" प्रसिद्ध है हीं (आ) यथार्थवादी।

कहानीकार का दृष्टिकोण जीवन को गतिशील बनाकर उन्नतमार्ग की ओर अग्रसर करना होना ही चाहिये।

७ विषय—विषयों का चुनाव प्रायः कहानीकारों की रुचि और सिद्धान्तों पर निर्भर रहता है। विषय की दृष्टि से अभी तक निम्न प्रकार की कहानियाँ लिखी गई हैं—

(अ) सैद्धान्तिक कहानियाँ।

(आ) प्राचीन वैभव और संस्कृति की ओर आकर्षण उत्पन्न करने वाली कहानियाँ।

(इ) सुधारात्मक (राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित) कहानियाँ।

(ई) जासूसी कहानियाँ।

(उ) हास्यास्पद कहानियाँ।

(ऊ) ऐतिहासिक कहानियाँ।

(ए) प्रेम कहानियाँ।

(ऐ) मनोवैज्ञानिक दिग्दर्शन कराने वाली कहानियाँ आदि आदि।

उपसंहार—कहानी एक कला है और इसीलिए विकासशील भी है। जीवन बड़ा है, किसी के बनाये हुए नियम बड़े नहीं। सहल जी के शब्दों में कहानी के रचना-तन्त्र को पढ़कर कहानीकार नहीं बन सकते। जीवन की अनुभूतियों से ही कहानीकार बनते हैं। अथवा—

The whole tale of my life is better to me than any poem.' (R. L. Stevenson)

* जगन्नाथ : 'प्रसाद' के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ २६६

† डॉ० रामविलास शर्मा

❀ 'दोजख की आग' का प्रारम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी का स्वरूप

प्रिं० श्री सद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए०

हिन्दी भाषा में कथा और कहानी दो शब्द बहुत प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। हम लोग भ्रम वश उन्हें एक ही अर्थ में प्रयोग करते हैं। परन्तु उनमें अन्तर है। कथा वास्तव में बड़ी गाथा को कहते हैं। आज कल इस अर्थ में उपन्यास शब्द का प्रयोग होता है। अंग्रेजी में नावल शब्द इसका भाववाची है। कहानी का भाववाची शार्ट स्टोरी अथवा आख्यायिका है। इतिहास की दृष्टि से कहानी से कथा पुरानी है। सब देशों में ही कथा की प्राचीनता देखने में आती है। वह गद्य और पद्य दोनों में मिलती है। वर्तमान कहानी का रूप और उसकी आकार बोधिनी परिभाषा पश्चिम की साहित्यिक परिपाटी से मिली है। भारतवर्ष के साहित्य में छोटी कथायें भी थीं और बड़ी भी। परन्तु उनका विभेद केवल आकार का था वस्तु का नहीं। यहाँ बड़ी-बड़ी कथायें भी थीं और बड़ी कथा में बँधी हुई कहानियों की लड़ी भी थी।

हिन्दी में कथा साहित्य का इतिहास दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता अथवा चौरासी वैष्णवों की वार्ता से आरम्भ होता है। गोकुलनाथ की यह गद्य रचना कथा का आरम्भिक रूप प्रस्तुत करती है। जटमल की गोरा बादल की कथा, लल्लूलाल जी का प्रेमसागर, सदल मिश्र का नासिकेतोपाख्यान, इंशा अल्ला खां की रानी केतकी की कहानी तथा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का राजा भोज का सपना तथा एक अद्भुत और अपूर्व स्वप्न वास्तव में हिन्दी गद्य की आरम्भिक कथायें हैं। इन की कथाओं की यहाँ चर्चा नहीं की जाती है। भारतेन्दु जी मौजी और विनोदप्रिय प्राणी थे वैसी ही उन की कहानी हैं। किस्सा साढ़े तीन यार, वैसी वेतुकी वस्तु नहीं है जैसा कि शीर्षक से ज्ञात होता है। सारङ्गा और सदावृक्ष एक चम्पू का हिन्दी में अच्छा उदाहरण है। बड़ी कथाओं में चन्द्रकान्ता सन्तति की बड़ी धूम रही और अनुवाद में सहस्र रजनी चरित का भी अच्छा जुग रहा। परन्तु अभी तक कथा और कहानी का वह विभेद सामने नहीं आया जो आज दिखाई देता है।

हिन्दी साहित्य में आज की कहानी का निर्माण पश्चिमीय आकार-प्रकार के अनुसार हुआ है। उसका आदर्श भी विदेशी है। अंग्रेजी साहित्य से कहानी को साहित्यिक रूप उन्नीसवीं शताब्दी में मिला। वह रानी एलीजबेथ का समय था। परन्तु इस युग में रङ्गमञ्च का विकास खूब हुआ और लोगों को कहानी पढ़ने के स्थान में कहानी देखना अधिक रुचिकर हुआ। प्रेसों की बाढ़, मुद्रण की सुविधायें, मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों की अधिकता, साक्षरता का प्रचार, कौतूहल के प्रति पैतृक अनुराग आदि कुछ ऐसी घटनायें हैं जिनके कारण कहानी के फैलाव में अद्वितीय प्रोत्साहन मिला है। जीवन साधन की कठोरता वर्तमान सभ्यता की फेनिल सुख दौड़-धूप और व्यक्त जीवन के प्रति मोह इतना अवकाश कब छोड़ते हैं कि परीक्षार्थी और समालोचक को छोड़ कर साधारण पाठक लम्बे उपन्यासों को पढ़ने बैठें। अवकाश ने रुचि का भी मार्ग प्रदर्शन किया है। पढ़ने की रुचि ने उपन्यास को छोड़कर कहानी का वरण किया। उपन्यासों के रस को अवकाश से मित्रों के साथ, सिनेमाहाउस में अभिनयों के रूप में देखने का स्वभाव डाला गया। आज रसिक से रसिक के लिए भी उपन्यास के लम्बे कथानक केवल टाकीज के विनोदमय घूँट ही नीचे उतार सकते हैं। हिन्दी में कुछ पत्र तो केवल कहानियों के बल पर ही निकलते हैं। उनका उद्देश्य बिक्री मात्र है। अतएव उनकी कहानियाँ अधिकतर ऐसी होती हैं जो निम्न स्तर का रतिभाव जागरित करती हैं।

कहानी और कथा के स्थूल अन्तर को यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है। कथा अनेकार्थी होती है। उसमें अनेक कहानियों के तत्व मिल सकते हैं। उसमें नायक के अतिरिक्त अनेक और पात्र होते हैं जिनका पूर्ण अथवा आंशिक शील विदर्शन कथा अङ्ग समझा जाता है। कथावस्तु का विस्तार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाओं की निश्चित व्यवस्था और उनके घात-प्रतिघात को सामने रखकर किया जाता है। दूसरी ओर शील निरूपण में अन्तरद्वन्द्व का अच्छा मनोवैज्ञानिक रूप सामने आ सके इस ओर भी परिस्थितियों का ध्यान और घटनाओं की मोड़ रक्खी जाती है। कथोपकथन में अद्वितीय प्रत्युत्पन्नमति और तर्क का आनन्द रहना चाहिए। रसों की अनेकरूपता और वृत्तियों की विभिन्नता कथा साहित्य का गौरव है। विरोधी रसों और वृत्तियों को इस कला से अनुकूल परिस्थितियों को बीच में डाल कर पास पास सजा दिया जाता है। जिसमें वैषम्य न खटके और मन भी उचाट न हो। कथा विस्तार में रोचकता और रुचिमत्ता को शनैः शनैः बिखेरा जाता है। औत्सुक्य और कुतूहल को एक मुट्ठी से और आदर्श लक्ष्य को दूसरी मुट्ठी से इतना धीरे-धीरे खोला जाय कि समस्त ग्रन्थ की रोचकता बनी रहे और लोग जानने के लिये व्यग्र रहें। परिस्थितियों के बलवान प्रवाह में पात्र इसलिए नहलाया जाता है कि उसका स्वरूप निखरे उसकी भाव वृत्ति का संस्कार हो। दूसरी ओर परिस्थितियों के बलाबल का मूल्य भी मानव जान जाय और संकल्प की दृढ़ता को शक्ति मिले। ये सब बातें कहानी के लिए सम्भव नहीं।

कहानी तो एक छोटी सी साहित्य वस्तु है। उसमें कथा का भारी पन और साहित्यिक बोझ नहीं होता। नसों पर बैठ कर पढ़ते और थकते जाने वाली न भावुकता होती है और न गहरा लम्बे तनाव वाला कौतूहल होता है। अनुभूति की तीव्रता होती है पर अनेकरूपता नहीं होती। रस का गहरा अकेला पन होता है परन्तु रसान्तर नहीं होता और न अपने अनेकार्थी स्वरूप और भावनायें होती हैं। एक तत्व, एक संवेदना, एकार्थी प्रेरणा, एक प्रयोजन, एक स्वरूप तथा एक प्रकार की सर्वत्र मनोहरता कहानी की विशेषता है। कोई भी घटना, कार्य, व्यापार शील का स्वरूप विषय तथा वस्तु कहानी की प्रेरणा बन सकती है और उस पर कहानी लिखी जा सकती है। कभी-कभी केवल मानसिक प्रत्यय अथवा मनोवैज्ञानिक तथ्य पर भी कहानी आधारित की जा सकती है। कहानी की गति में उसका वेग होता है, कथा मन्थर गति से चलती है कहानी का गुण उसकी सर्वत्र पाठकों का उसे मनोविनोद अथवा मनोरञ्जन अथवा मनोमन्थन करना होता है। वास्तव में साहित्य के सभी स्वरूपों में सबसे अधिक ढिल मिल हो जाने के कारण उसे किसी परिभाषा में समेटना बड़ा दुस्तर कार्य है। परिभाषा का निर्माण विशेषताओं और आकार स्वरूपों के निश्चय प्राप्ति से ही सम्भव है। कहानी कला अभी तरुणाई पर है। उसकी प्रौढ़ता अभी दूर है। उसमें नये नये उत्तम से उत्तम कलाकार आ रहे हैं और आये हैं। प्रतिभा का मार्ग लोक पर बनी सड़क नहीं होती। वह तो परिभाषा का पिछड़ापन सिद्ध करके नया स्वरूप दान देने ही में कृतकार्य होती है। अतएव इस समय कोई कड़ी सीमायें कहानी को घेरने के लिए नहीं खींची जा सकती। मनोवैज्ञानिक सत्य और काल्पनिक वास्तविकता किसी भी कहानी के प्राण हो सकते हैं परन्तु कला की सार्थकता इनके व्यक्तीकरण के महत्व पर निर्भर है। प्राणों से मुखरित, जीवन से सचेतन संसार में पुष्ट गति का निर्देशक साहित्य ही किसी उत्तम कहानी की शोभा हो सकता है। जिस वास्तविकता में प्रणोदना है, जिन घटनाओं में प्रस्वेद का आकर्षण है, जिन स्वरूपों में आदर्श यथार्थ ऊपर उठ रहा है वे सब कहानी को महत्व देने वाले हैं। कहानी में अनुभूति की पूर्णता परमावश्यक है। उसकी निबन्धना में समूचापन अवश्य होना चाहिए। हल्की कहानियों में रेखा स्वरूप अङ्कन अथवा परिहास स्वरूप निरूपण अथवा परिस्थितियों की विनोदी अभिव्यञ्जना सभी उचित जमझना चाहिए। हाट में अपनी वासना जन्य आकर्षण पर बिकने वाली और अपने वाले अक्षरों की सतरों वाली कहानी पत्रों के लिए रेल के डब्बों, यात्री गृहों और होटल की दूकानों में भीड़ बढ़ाने वाली कहानियाँ साहित्य और कला की श्री वृद्धि नहीं करती हैं। वे भोग के भूखों का पेटभर सकती हैं और साहित्य के व्यभिचारियों को धनी बना सकती हैं।

अन्य साहित्य स्वरूप की भाँति कहानी भी सच्ची कला की साधना है। वस्तु, कार्य, परिस्थिति, नायक सभी से उस का सम्बन्ध रहता है। मनोवैज्ञानिक अद्वितीयता और समूचापन उसका सब से बड़ा गुण है। किसी भी बलवान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार धारा का प्रभाव और किसी भी वाद का समन्वय उसमें मिल सकता है। परन्तु प्रचार भावना की सीमा जहाँ पर छू गई कला मलिन हो जाती है। मार्क्सवादी, प्रगतिवादी, प्राचीनवादी, सम्प्रदायवादी, गांधीवादी और अन्य सभी वादियों में से किसी का बोझ अधिक पड़ गया तो चाहे टाल्सटाय हों चाहे एनातोलेफ्रांस हो चाहे प्रेमचन्द हो और चाहे चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य हों, सफल कहानी न लिख सकेंगे।

कहानी में भूमिका घातक है। आरम्भ से ही गति भर कर अंत तक पहुँचना चाहिये। विषयान्तर का स्थान नहीं होता। स्मृति को केवल आनुषंगिक तीव्रता देने के लिये ही प्रयोग करना चाहिये। कल्पना केवल आसन्न स्वरूपों को सौन्दर्य देने में सहायक होनी चाहिये। थोड़ा भी इधर उधर की मोड़ कहानी को मन्द कर देती है। किसी स्थल का बोझ अथवा किसी प्रकार के अन्तराय का समावेश जिसके कारण प्रभाव की एक देशीयता अथवा सम्पूर्णता अथवा एकार्थता शिथिल हो जाय, अहितकर है। वस्तु हो अथवा न हो, पात्र हो अथवा न हो, परिस्थितियों को वर्तमान किया गया हो अथवा न किया गया हो, इसमें कुछ बिगड़ता बनता नहीं। कथानक की सुविधा सुबोधता और उसका क्रम निर्वाह, उसका सुख दुख भरी विस्मयापन्नता, वस्तु की उच्चता और गम्भीरता, आदि मध्य और अन्त की कला ये ही कहानी के सब कुछ नहीं हैं। और न ये आज की कहानी के अपरिहार्य गुण ही हैं।

चरित्र चित्रण में वर्णनात्मक ढंग के कारण आज प्रेमचन्द को नये समीक्षक पिछड़ा हुआ कहते हैं। पर क्या शील निरुपता की निष्कर्षात्मक प्रणाली प्रत्येक अच्छी कहानी में रह सकती है। अथवा रहती है। यदि शील के गुप्त स्फुलिंग संकेत की फूंक चमक जाते हैं और समीक्षक कला के लिये करतल ध्वनि कर उठता है तो क्या कभी ऐसा नहीं होता कि आरम्भ से ही जाज्वल्यमान शील के अंग सब को अपनी ओर आकृष्ट किये रहते हैं और कला प्रभूत मात्रा में बिखरी रहती है। क्या कहानियों के लिये एक मात्र घुलाहट ही सब कुछ है। वस्तु की नरमी अथवा कर्कशता—किसे हम कहानी के लिये प्राण कहें। हिन्दी भाषा में कहानी कला पर जो कुछ निकला है उसका सब से बड़ा भाग कहानी और कथा में अन्तर स्थिर करने में व्यय किया गया है। वह अन्तर इतना व्यापक और अनेक पक्षी नहीं हैं जितना दिखाया जाता है। यह भ्रम पिछड़े हुये अंग्रेजी समीक्षकों का विवेकहीन अनुकरण के कारण देखने में आता है। कहानी में चरित्र चित्रण कथावस्तु कथोपकथन तथा घटनाचक्र को उसके प्रमुख तत्व कहना और उनकी लम्बी चौड़ी व्याख्या करना अनावश्यक है। ये सब तो कथा के प्रमुख और अनिवार्य तत्व हैं। वहीं उनकी विशद समीक्षा अच्छी लगती है। यह भ्रांति भी योरपीय समीक्षकों के पुराने विवेचन के कारण होती है। किसी भी नायक के चरित्र का कोई अंश भले ही किसी कहानी में पकड़ा जा सके अथवा किसी कथा का कोई अंश किसी हेरफेर के साथ कहानी में आ जाय अथवा दो चार प्रमुख घटनायें तारतम्य के साथ किसी निष्ठा की पुष्टि के लिये नियोजित की गई हों पर इसका यह भाव नहीं कि इन तत्वों का सम्यक रूप स्फुरण कहानी में आ सकता है। यह दूसरी बात है कि इनमें से किसी तत्व की प्रमुखता के कारण हम किसी कहानी को चरित्र चित्रण प्रधान कहें अथवा घटना प्रधान कथा कहें या सम्यक प्रधान कहें अथवा घटना प्रधान कहें। कहानी के लिये जो तत्व है परमावश्यक वह वातावरण का है। वातावरण वस्तु विन्यास के वर्णन से किसी कहानी में पूर्णता प्राप्त नहीं करता वह तो बड़ी कथा का कार्य है परन्तु कहानी की समस्त गति की परख के लिये एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठ भूमि निर्माण करना उसका प्रमुख कार्य है। सारी कहानी के अभिज्ञान के लिये उसके निर्माण की बड़ी आवश्यकता है। उसका अस्तित्व बहुत बार चिंतना के सजग स्पंदन से बनता है और बहुत बार भाव जगत की एकतानता से उदय होता है। कहानी चाहे पत्रों में लिखी जाय अथवा दिनचर्या के पृष्ठों में, सम्वादों में उसका निर्माण हो अथवा विवरण स्वरूप में, शील के कण वर्णन में आवें अथवा निष्कर्ष में, उत्तम पुरुष लेखक हो अथवा अन्य पुरुष, बड़ी तड़क भड़क और कड़क के साथ आरम्भ हो अथवा साधारण ढंग से, शीर्षक चाहे दूर से घोषणा करने वाला हो अथवा केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय निर्देश करता हो—वास्तव में वातावरण ही कहानी का प्राण होता है।

कहानी के लिए बोल चाल की भाषा पर जोर देने वाले सच्चे रसिक और प्रौढ़ समीक्षक नहीं हैं। वे छोटी कक्षाओं के अध्यापकों की जिद लेकर साहित्य क्षेत्र में आना चाहते हैं। हिन्दी कहानी आज अनेकों रूप में मिलती है। वर्णनात्मक ढङ्ग की उत्तम से उत्तम कहानियाँ हैं। वर्णनों में रूप व्यापार का अनोखा बिम्ब प्रतिबिम्ब विम्बित रूप उपस्थित करके कुशल कहानीकार वर्णनात्मक कहानियों को साधारण कहानी कहने वाले समीक्षक की प्रतिभा को चुनौती देता है। उसके साक्षात और परोक्ष दोनों विधानों का आश्रय मिलेगा। प्रकृति चित्रण के नये से नये विधान कहानीकार सीख गये हैं। केवल संवादों से या सब कुछ कह देना अथवा पात्रों की रचना में कहानी बढ़ा ले जाना भी कुछ उत्तम कहानियों में मिलता है। भाव और रूप पक्ष में भी अनेक रूपता है। ऐय्यारी के चटारे और गहमरीजी की जासूसी चक्करदार चोरियाँ भी हैं। कहानियाँ सीधी सादी भाषा में भी हैं और फिर भी ऊँची हैं। रहस्यात्मक दुरूह भाषा में भी हैं। समाज का चित्रण, राजनीति की चञ्चलता, प्रेम की आह और कराह, धर्म का सन्देश, नीति की व्यवहार व्याख्या, कुटुम्ब राष्ट्र और अन्तर राष्ट्र का स्वरूप, पुरानी गाथाओं का अर्वाचीन चित्रण, नवीन वादों के विवाद—सभी किसी न किसी रूप में आज की कहानी की दुनिया में मिलते हैं। आदर्श प्रेरणा वाली कहानियों में नैतिकता ऐसी घुसी रहती है कि वह खटकती नहीं। आदर्श की पकड़ में घोर यथार्थ और यथार्थ के नाम पर आदर्श का सूक्ष्म यह भी कहानियों में होता है। अलौकिक को वास्तविक बना डालना और वास्तविक को बहुत ऊपर उठा ले जाना दोनों प्रकार के कलाकार कहानी जगत में हैं। संक्षेप में वर्तमान जगत के सारे उत्पीड़न और उसकी समस्त आकांक्षायें कहानियों में हैं।

रविबाबू और शरत् बाबू के प्रभाव से हिन्दी कहानियों में दो वर्ग स्पष्ट दिखायी देते हैं—मनोभाव प्रधान और घटनात्मक कहानियाँ। रवि बाबू के अनुयायी कथानक के तारतम्य पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते हैं। वे मन की तह की खोज कर छोटे-छोटे और हलके और गहरे तथ्यों का स्पष्टीकरण ही अपनी कला का स्वरूप मानते हैं। बाह्य स्थिति विशेष मानता का नाता आन्तरिक परिस्थिति विशेष से कैसा, दोनों का आदान प्रदान किस प्रकार का है एवं दोनों के आन्दोलन में कैसे घात-प्रतिघात उत्पन्न होते हैं—इसी का स्पष्टीकरण उनका प्रमुख साधन है। कथानक को वे केवल साधन मात्र मानते हैं। शरत् बाबू के अनुयायी कथानक की सुचारुता को नहीं छोड़ते। विदेशों की कहानियों के अध्ययन ने कुछ और तथ्यों को भी उन्हें दिया है। सबका समन्वय आज की अच्छी कहानी में मिल सकता है।

कहानी कला के सम्बन्ध में इतना उपरोह केवल इस लिए किया गया कि पाठक समझ लें कि कहानी की समस्त शास्त्रीय विशेषतायें मिल कर भी कहानी का यथा तथा निरूपण नहीं कर सकती। कलागति बनी होती है। शास्त्र उसे नियमों में जकड़ना चाहता है। अतएव जो भाग शास्त्र पकड़ पाता है वह उस क्षण युग का ही प्रतिनिधित्व कर सकता है, जब इस की सीमायें निश्चित होती हैं। आकार विधायनी विशेषतायें परिभाषा बनाते समय भी पिछड़ापन लिए रहती हैं। सच्चे आलोचक को केवल यह देखना चाहिए कि समस्त कहानी का कोई सांघातिक प्रभाव पड़ता है अथवा नहीं और उस प्रभाव के भुलावे में कला की भूलें भूल जाती हैं अथवा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी : एक अनुशीलन

डा० सुधीन्द्र

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में कहानी और उपन्यास की भिन्न सत्ता नहीं रही। अपने वर्तमान नाम और रूप में दोनों वस्तुएँ आधुनिक हैं। वेद, पुराण, शास्त्र तथा लौकिक साहित्य में कथा और कहानी पर्याय थे। इनके लिए साहित्यिक संज्ञायें 'आख्यान', 'उपाख्यान', 'कथा' तथा 'आख्यायिका' थीं।

'कथा' काल्पनिक अर्थात् उत्पाद्य वस्तु की होती थी ('प्रबन्ध कल्पना कथा') और 'आख्यायिका' ऐतिहासिक अर्थात् सहज उपलब्ध वस्तु की (आख्यायिकोपलब्धार्था')। 'आख्यान' और 'उपाख्यान' भी कथा और आख्यायिका के ही भेद-प्रभेद होते थे परन्तु वे प्रायः छोटे प्रसंग या कथान्तर्गत कथा होते थे जैसे नासिकेतोपाख्यान, नलोपख्यान आदि। इस प्रकार कथा और आख्यायिका के विशाल कक्ष में संस्कृत साहित्य की गद्य-श्रो 'कादम्बरी', 'जातक कथा' जैसी धर्म कथा, 'कथा सरित्सागर', 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' जैसी नीति कथा और कहानियों की भूल भुलैया वाली कृतियों—'वैताल पंचविंशतिका', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' और 'शुक सप्तति'—सभी की परिगणना होती थी।

जैसे अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क, संसर्ग और सम्प्रदान से भारत को 'नॉवल' (Novel) मिला है, जिसे मराठी भाषा ने 'कादम्बरी' नाम दिया, बंगला और हिन्दी ने 'उपन्यास' और गुजराती ने 'नवल कथा' वैसे ही आज की साहित्यिक कहानी भी अंग्रेजी से ही हिंदी को मिली है।

'उपन्यास' का प्रचलन जब हिन्दी में हुआ तो वृहद्-कथा को 'उपन्यास' समझा जाने लगा और छोटी कथा को कहानी। उस समय दोनों ('कहानी' और 'उपन्यास') में आकार का ही भेद समझा गया। अब भी कई मुँह छोटे आख्यान को 'कहानी' कहने की भूल करते हैं। प्रत्येक बड़ा आख्यान 'उपन्यास' है और प्रत्येक छोटा आख्यान 'कहानी' है—यह बात बड़ी भ्रान्तिपूर्ण है। वस्तुतः दोनों के तन्त्र में, दोनों के शिल्प-विधान में स्पष्ट विभेद है। दोनों के व्यक्तित्व भिन्न हैं, इसलिए 'कहानी' कहानी ही रहेगी, 'उपन्यास' उपन्यास ही रहेगा। भले ही यह सुनने में विचित्र लगे, परन्तु ऐसा सम्भव हो सकता है कि कोई बड़ी 'कहानी' बहिरङ्ग में, आकार में, बड़ी होने के कारण किसी छोटे 'उपन्यास' से बड़ी हो जाय। 'उपन्यास' और 'कहानी' दोनों अब भिन्न वस्तुए हैं। अँग्रेजी कथाकार सर वाल्टर स्काट और चार्ल्स डिकेन्स आदि के कुछ उपन्यास लघुकाय होने के कारण ही 'कहानी' मान लिये गये थे परन्तु अब उन्हें 'उपन्यास' का पद मिल गया है।

आजकल का कहानीकार 'कहानी' कहता है—या लिखता है, परन्तु उसकी 'कहानी' इंशाअल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' नहीं होती, न वह 'चौबोलों' की भाँति कथान्तर्कथा (कथा के भीतर कथायें) सुनाता है और न वह पुराण इतिहास से राजा शिवप्रसाद की भाँति 'राजा भोज का सपना'—जैसी नीति-कथा लिखता है। आज की 'कहानी' में—यह 'माया', 'मनोहर कहानियां' आदि का साधारण पाठक भी जानता है—कोई नैतिक-सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रेरणा रहती है—उपदेश उसमें हों भले ही, पर 'कान्ता सम्मित' होता है। जीवन का यथार्थ भी उसमें उपेक्षित नहीं होता।

'साहित्यालोचन' कार आचार्य श्री श्यामसुन्दरदास ने 'कहानी' को 'उपन्यास' की सन्तति माना है, जो अब अपने पिता से पृथक् है। **"यह बालिका, जो 'गल्प' कहलाती है, उपन्यास की ही औत्स जात है; किन्तु कुछ समय से वह अपने पितृगृह में निवास नहीं करती। इसने नवीन कुल की मर्यादा ग्रहण करली है।"**

('साहित्यालोचन' दसवीं आवृत्तिः पृष्ठ १७८-७९)

'साहित्यालोचन' कार ने 'उपन्यास' और 'कहानी' के शिल्प-विन्यास के विभेद-दर्शन में यह लिखा है—'इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों में केवल आकार का भेद ही नहीं माना जाता वरन् इनके रूप-रङ्ग भी भिन्न हो गये हैं। कुछ विद्वान तो इस 'गल्प' वाङ्मय के शोभाशाली विकास से इतने चकित हो गये हैं कि इसे ये एक स्वप्न सृष्टि मानने लगे हैं।'

उपन्यास और कहानी दोनों साहित्यांग मानव जीवन के चित्र को कथा के माध्यम से, कल्पना के रंग में रंजित करके दिखलाते हैं। इस कारण 'कहानी' और 'उपन्यास' में पारिवारिक सम्बन्ध है। वे दोनों एक ही गोत्र के हैं। वह गोत्र है 'कथा'। दोनों में मानव-जीवन की कथा सुनाई जाती है। आख्यान कहा जाता है। इसीलिए दोनों की गणना कथा-साहित्य में की जाती है। जिसमें विवरण या गतिशील वर्णन हो—उसे कथा कहा जा सकता है; बस इसी अर्थ में हम 'उपन्यास' को एक बड़ी कथा कह देते हैं और 'कहानी' को छोटी कथा या लघु कथा। परन्तु साहित्य-विवेचना के क्षेत्र में कहानी और उपन्यास का यह एकीकरण संभव और समीचीन नहीं है।

हमें यह देखना है कि आचार्य श्यामसुन्दरदास के शब्दों में कहानी की 'नवीन कुल की मर्यादा' क्या है? 'उपन्यास' से वह रूप-रंग में किस प्रकार भिन्न है, अथवा उसकी स्वतंत्र कला कोटि क्या है? उन्होंने 'साहित्यलोचन' में 'कहानी' कला का अनुशीलन निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"गल्प या छोटी कहानी केवल एक प्रसंग को लेकर उसकी एक मार्मिक झलक दिखा देने का ही उद्देश रखने लगी जिससे वह उपन्यास के कथा भार से नितान्त मुक्त हो गई। वह ,जीवन का समग्र-सापेक्ष चतुर्दिक चित्र न अंकित कर केवल एक क्षण में घनीभूत जीवन-दृश्य दिखाने लगी जिसके कारण वह उपन्यास की कोटि से स्वतन्त्र हो गई। इन दिनों की गल्प या कहानी यद्यपि आकार में छोटे उपन्यास से बड़ी भी हो तो भी उसकी गणना अलग ही की जायगी। इसका कारण यही है कि 'गल्प' या कहानी की कला दूसरे उपकरणों को लेकर अपना अङ्ग सजाने लगी है।"

('साहित्यालोचन' : १० वीं आवृत्ति : १७६)

परिभाषा देना कठिन है—यह कहने से कठिनाई सरल नहीं होती। संसार में कुछ तत्व अवश्य ऐसे हैं जिनका नाम-रूप नपे-तुले सीमित शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता—जैसे 'ईश्वर', जैसे 'जीवन', जैसे 'सत्य', जैसे 'कविता' और जैसे 'प्रेम'। परन्तु 'कहानी' इस परा कोटि में नहीं आती। उसको परिभाषा के बन्धन में बाँधा जा सकता है। देखें, अपने नाम-रूप में विशिष्ट ऐसी 'कहानी' की व्याख्या करते हुए कहानी कला के पुरस्कर्त्ता और प्रतिष्ठाता स्वयम् प्रेमचन्द क्या कहते हैं:—

"कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अङ्ग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है।

उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा वृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का सम्मिश्रण ही होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

विद्वान् लेखक ने यहाँ कहानी का उद्देश्य (जीवन के एक अङ्ग या मनोभाव का उद्घाटन) कहा है। यद्यपि यह 'निबन्ध' में भी हो सकता है। शब्द-चित्र, रेखा-चित्र, संस्मरण और स्मृति-चित्र में भी। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि 'कहानी' की कल्पना प्रेमचन्द के मन में अवश्य निर्दिष्ट और स्पष्ट है। यहाँ मैं दूसरे मूर्द्धन्य कहानीकार जैनेन्द्रजी की दी हुई परिभाषा भी अवश्य देना चाहूँगा, जिसमें आप देखेंगे कि परिभाषा अस्पष्ट और अगम्य है, जैसे कोई तत्त्व-दार्शनिक बोल रहा हो—

"कहानी तो एक भूख है जो निरन्तर समा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धान पाने की कोशिश करती रहती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शङ्कायें होती हैं, चिन्तायें होती हैं और हमीं उनका उत्तर, उनका समाधान खोजने का, पाने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। उदाहरणों और मिसालों की खोज होती रहती है। कहानी उस खोज के प्रयत्न का एक उदाहरण है। वह एक निश्चित उत्तर तो नहीं दे देती, पर यह अलबत्ता कहती है कि शायद उस रास्ते मिले। वह सूचक होती है, कुछ सुझा देती है और पाठक अपनी चिन्तन-क्रिया के सहारे उस सूझ को ले लेते हैं।"

—'जैनेन्द्र के विचार'

कहानी का धर्म तो कुछ दार्शनिक सी शैली में यहाँ स्पष्ट किया गया है, परन्तु कहानी के तत्व की ओर मूर्त संकेत इसमें भी नहीं है। इस अमूर्तता के लिए उत्तरदायी लेखक की दार्शनिकता है। कुछ इसी की प्रतिध्वनि या प्रतिच्छाया-सी परिभाषा है श्री अज्ञेयजी की, कि—

"कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, एक शिक्षा है, जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती।"

श्री जैनेन्द्रकुमार और श्री अज्ञेयजी दोनों की बड़ी-छोटी परिभाषाओं की छान-बीन करें तो यह कह सकते हैं कि दोनों में 'कहानी' का प्रयोजन दार्शनिक के ढङ्ग से बताया गया है। और वह प्रयोजन जीवन के (चिरन्तन अथवा सामयिक) प्रश्न का अनुसन्धान, समाधान आदि है। पर क्या साहित्य-मात्र का लक्ष्य यह नहीं है?

साहित्य के मन्दिर में जब कहानी का जन्म हुआ था तब से कहानी-मात्र का उद्देश्य रञ्जन या मनोरञ्जन रहा हो परन्तु यह निर्विवाद है कि आज की कहानी (विशुद्ध साहित्यिक विधा के रूप में) 'मानवीय सत्य का उद्घाटन' के तत्व को उपेक्षित नहीं कर सकती। इसीलिए कला-मर्मज्ञ राय कृष्णदास ने यह मत दिया है कि—

"कहानी मनोरंजन के साथ साथ अवश्य किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है। यह जितना आंशिक और एकदेशीय होगा, कहानी भी उसी अनुपात में निम्न श्रेणी की होगी।"

वस्तुतः 'कहानी' के लक्ष्य, उद्देश्य या प्रयोजन में सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप विकास होता गया है। किसी भी देश या भाषा की 'कहानी' की कहानी बतलाती है कि उसकी विकास की परम्परा मानव-मन के विकास की प्रतिच्छाया है। पहिले वह मनुष्य की सहज जिज्ञासा की तृप्ति के लिए लिखी गई, फिर उसको ज्ञान देने के लिए—फिर वह केवल चमत्कार या कौतूहल के प्रयोजन से लिखी गई। फिर वह घटनाओं में किसी अज्ञेय शक्ति की लीला दिखाने के लिए लिखी जाने लगी। और अब मानव मन की जटिल गुत्थी को सुलझाने के लिए लिखी जाती है। प्रेमचन्द के मत (वर्तमान कहानी का आधार मनोविज्ञान है) को शब्दशः स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह तो कहानी के लक्ष्य का एक प्रकार हो सकता है कि आज की कहानी अधिकांशतः इसलिए लिखी जाती है कि उससे किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर प्रकाश पड़ता हो अथवा जो किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो। कदाचित आज के साहित्यकार इससे सहमत न होंगे कि मनोवैज्ञानिक सत्य की प्रधानता ही कहानी की उच्चता की एक कसौटी बन सकती है। वस्तुतः आज की कहानी इस उद्देश्य को भी अपूर्ण मान कर उससे आगे बढ़ आई है।

कहानी : रूप-रंग-रेखा—'कहानी' के रूप और कलेवर और उसके लक्ष्य और प्रयोजन की इतनी छानबीन करने के पश्चात् हम अब कहानी के रूप-रंग-रेखा का आकलन कर सकते हैं।

(१) 'कथाकल्पना' का माध्यम (Medium of imaginative narration) : रूप

(२) 'प्रभाव' की एकांगिता (Singleness of impression) : रंग

(३) 'एकसूत्रता' या 'एकाग्रता' : रेखा

'कहानी' कल्पना-सृष्टि है, नितान्त काल्पनिक कथा का माध्यम वह स्वीकार करती है। उसमें सत्यांश होना संभव है परन्तु वह भी कल्पना में लिपट कर आता है। कथा है, अतः उसमें 'गति' अनिवार्य है। 'प्रभाव' विविध हो सकता है—केवल कौतूहल और विस्मय से लेकर घटनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमत्कारात्मक, भावात्मक, नैतिक, चारित्रिक, समस्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, संवेदनात्मक अनेक रूप इसके हो सकते हैं। कहानी के विकास का पथ देखें तो यह स्पष्ट होगा कि कहानी ने ये सब प्रभाव अपनाये भी है। अतः इनमें से एक या कुछ की ही उद्देश्य में परिगणना करना अनुचित है तो कहानी की परिभाषा यों होनी चाहिए—

'कहानी' साहित्य की वह विधा है जो काल्पनिक आख्यान के माध्यम से स्थूल अथवा सूक्ष्म भावात्मक प्रभाव की एकांगिता का अनुसन्धान करती हुई अपनी एकाग्र दृष्टि से जीवन का एक खण्ड चित्र, झलक या झाँकी देती है।

कहानी में (एकाङ्की नाटक की भाँति) मानव चरित्र का एक पक्ष, जीवन का एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव या संवेदन प्रदर्शित या व्यञ्जित होता है। कहानी का एक ही ध्येय, लक्ष्य, उद्देश्य या प्रयोजन रहता है—फिर चाहे वह एक घटना में ही काम चला ले या अनेक घटनाओं में उसे फैला दे परन्तु अन्त में प्रभाव केन्द्रीयकृत अवश्य होगा और वही 'कहानी' का गन्तव्य या 'चरमोत्कर्ष' है। कहानी की यही आत्मा बसती है। यहीं उसके प्राण स्पन्दित हैं। इसे हम कहानी का 'रंग' कह सकते हैं।

इसी एकांकी लक्ष्य 'रेखा' के कारण कहानी की दृष्टि एकाग्र होती है—वह अपनी आत्मा (रंग) और अपने कलेवर (रूप) का ध्यान करती हुई ऐसी चाल ढाल बनाती है कि वह इनका सन्तुलन और समन्वय कर सके। वस्तुतः इसी 'रेखा' के कारण कहानी अब अपने पिता 'उपन्यास' से पृथक है और अपने दूसरे भाई बहिनों (रेखाचित्र, शब्दचित्र, संस्मरण, स्मृति चित्र, गद्यगीत आदि) से भी पृथक रूप में जानी-पहिचानी जाती है।

वस्तुतः, 'कहानी' में दो तत्त्व ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और वे हैं **एकांगी प्रभाव** और एकाग्रता। अन्य सभी तत्त्वों पर इन्हीं का प्रभाव पड़ता है और इनके प्रभाव के बिना वे सजते-सँवरते खिलते-फलते नहीं। इन्हीं की सिद्धि के लिए कहानी का चित्राधार परिमित लेता है, विस्तीर्ण नहीं। सीमित स्थान में जैसे सीमित व्यक्ति ही आमंत्रित किये जा सकते हैं, उसी प्रकार पात्रों की संख्या भी 'कहानी' में उतनी ही होती है जितनी कि कथा-भार को सँभालने के लिए अनिवार्य और उचित हो। जो घटना-व्यापार या संभाषण 'कहानी' के उद्दिष्ट प्रभाव का साधक होता है वही 'कहानी' में स्थान पाने का अधिकारी होता है। घटना व्यापार का प्रत्येक अंश, संभाषण का प्रत्येक वाक्य चरित्रोद्घाटन करता हुआ या प्रभाव के चक्र को गति देता हुआ अपने औचित्य के अधिकार की घोषणा करता है। कहानी के गतिशील घटनाचक्र की चरम स्थिति है 'चरमोत्कर्ष' (Climax), जहाँ उद्दिष्ट प्रभाव केन्द्रीभूत होता है। यही वह चरम बिन्दु है, जिसमें 'कहानी' का प्रयोजन (मानव चरित्र की एक झलक, मनोवैज्ञानिक सत्य या मनोभाव का प्रकाशन या अन्य कोई संवेदना) निहित है। इसी उच्चतम बिन्दु तक पहुँचने के लिए 'कहानी' अपने सब अंगों का सन्तुलन करती हुई गतिशील रहती है। 'कहानी' मानव जीवन के एक संवेदनात्मक प्रभाव का काल्पनिक कथात्मक शब्द या रेखाचित्र है।

और सबसे मुख्य बात है उसकी एकाग्र दृष्टि। इसी दृष्टि के कारण इस सृष्टि का रूप विशिष्ट होजाता है। यह दृष्टि बनी रहे तो फिर कितना ही विशाल दीर्घकाल हो, कितने ही पात्र (व्यक्ति) और घटनायें हों, फिर भी 'कहानी' के कहानीपन पर आघात नहीं पहुँचता! क्या हिन्दी की अमर कहानी 'उसने कहा था' में समय की सीमा एक-दो घण्टे या दिन या महीने या वर्ष है? उसमें तो एक व्यक्ति का समूचा जीवन ही समाया हुआ है—कुछ यही बात 'प्रसाद' जी की 'आकाशदीप', और 'सालवती' कहानियों में भी है ही। परन्तु जिन कहानियों में एक युग का समय समाया रहता है उनमें भी समय के दोनों छोरों को मिलाने वाला सूत्र यही कहानीकार की एकाग्र दृष्टि है। अर्जुन की भाँति उसकी आँख पेड़ की मोटी-मोटी डालियों और पत्तों के झुरमुट में छिपी बैठी चिड़िया की आँख की पुतली को ही देखती है। 'कहानी' का प्राण कहाँ है? वही तो उसका लक्ष्य या प्रयोजन या प्रभाव है। वह प्रभाव छोटी से छोटी घटना में दिखाया जा सकता है और युग-युगान्तर या जन्मजन्मान्तर तक फैली हुई कथा में भी। इसलिए इस दृष्टि से एक बैठक में पढ़ी जाने की शर्त भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौण है—वह तो केवल संक्षिप्तता जैसे सूक्ष्म तत्त्व की स्थूल कसौटी मात्र दी गई है।

'कहानी' यदि एकाग्र दृष्टि लेकर चलती है तो उपन्यास समग्र दृष्टि लेकर। दृष्टि की एकाग्रता ही 'उपन्यास' में नहीं होती। वह कहानी की अपनी वैयक्तिकता या विशिष्टता है। वास्तव में इसी वैयक्तिकता से 'प्रसाद' की 'सालवती' कहानी और 'आकाशदीप' भी अपने वर्तमान रूप में कहानियाँ हैं परन्तु इन्हें में घटनाजाल, चरित्र का घटाटोप और अनेक संवेदनाओं का रंग भर कर इन्हें उपन्यासों का रूप दिया जा सकता है।

घटनायें भी कहानी में एक से लेकर एक राशि तक आ सकती हैं यदि उनमें किसी एक प्रभाव और एक सूत्रता का अनुसन्धान किया जा सके। कहानी की घटनायें विशृङ्खलित नहीं होतीं; आकश में बिखरे हुए बादलों की भाँति वे फटी-फटी नहीं होतीं, वे रस्सी में बँटे हुए धागों या तन्तुओं की भाँति अविच्छिन्न रहती हैं।

और कभी कभी तो ऐसी कहानी भी देखी जाती है (अर्थात् लिखी जाती है) जिसमें घटना इतनी सूक्ष्म या अमूर्त्त (Abstract) होती है कि उसे घटना ही न कहा जा सके। घटना कहानी के लिए सहज है परन्तु घटना का आरोह-अवरोह कहानी का अनिवार्य तत्त्व नहीं है। कोई मानसिक संवेदना या भावात्मक संघटना अपने आरोह-अवरोह के साथ कहानी का अच्छा अवलम्ब बन सकती है। आज के लेखकों में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी की कुछ कहानियों में यही गुण प्रखर है। आजकल की कहानी स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होती जारही है।

जब तक कहानी की वस्तु काल्पनिक है—उसमें आख्यान-वृत्ति है, उसकी दृष्टि अपने एकांगी प्रभाव पर एकाग्रता से केन्द्रित है, उसे 'कहानी' के पद से वञ्चित नहीं किया जा सकता।

कभी कभी वास्तविक घटना को लेकर कई लेखक एक भावना-जाल बिछा कर कुछ रचना करके उसे 'कहानी' कहना चाहते हैं परंतु उसे कहानी न कहकर 'संस्मरण' या 'रेखा चित्र' कहना उचित होगा। शास्त्रीय परिभाषा में कहानी की वस्तु 'उत्पाद्य' होनी चाहिए।

'कहानी' किसी की जीवनी नहीं होती क्योंकि एक तो जीवनी वास्तविक होती है, फिर वह एकाङ्गी नहीं हो सकती, कहानी, जीवनी से प्रेरणा ग्रहण कर सकता है परन्तु कल्पना का आवरण उसे लेना ही होगा। कहानी रिपोर्टाज से भिन्न है क्योंकि रिपोर्टाज में सच्ची घटना का विवरण अनिवार्य है। कहानी में घटना आवश्यक है परंतु अनिवार्य नहीं—वह सूक्ष्म भावात्मक संघटना भी हो सकती है। मानसिक (हार्दिक और बौद्धिक)। 'कहानी' गद्य-गीत नहीं होती क्योंकि 'गद्य-गीत' केवल कल्पना, भावना और अनुभूति का प्रसार है। वह केवल आत्मगत (Subjective) है। 'कहानी' एक परगत (Objective) वस्तु है।

(पृष्ठ २९५ का शेषांश)

है। यही उनके साहित्य में प्रतिपादित होता है। एच० जी० वेल्स की तरह यूटोपिया पर इनकी चीजें केन्द्रित हैं। सत्य में गहराई है: उसे पेश करने के ढङ्ग में संक्षिप्तता और स्थायित्व है। इनकी बड़ी कहानियाँ भी अपनी लघु-कथाओं का विस्तृत रूप मात्र हैं। वर्तमान युग से बहुत आगे बढ़ कर समाज की प्रस्तुत विभिन्न समस्याओं का हल ढूँढने का प्रयत्न इनकी प्रत्येक कहानी में स्वस्थ धरातल पर किया गया है। लेखक की ऐसी धारणा है कि आज की सरल माँग, कल एक लाख वर्ष पश्चात् (इस अवधि तक लेखक सामाजिक क्रान्ति के लिये प्रस्तुत है) बहुत अधिक परिष्कृत हो जायेगी।

वर्तमान समाज की स्थिति से रावी को असन्तोष है। उसकी हर कहानी मानव समुदाय को लक्षित करके कही जाती है। 'कथागुरु' की आड़ लेकर उपदेश देने का तरीका कहानी को स्पष्ट अवश्य कर देता है: मगर यह स्पष्टता कहानी से अधिक ऊपर उभर आती है, जिससे कि लेखक कहानीकार से अधिक विचारक, और विचारक से अधिक प्रचारक बन जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी का मनोवैज्ञानिक सत्य

श्री गुलाबराय एम० ए०

मुन्शी प्रेमचन्दजी ने अच्छी कहानी की कसौटी बतलाते हुए लिखा है:—

'सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो और उन्होंने अपने कथन के स्पष्टीकरण में बतलाया है 'साधु-पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखी होना मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस आवेग में पिता के मनोवेगों को चित्रित करना और तदनुकूल उसके व्यवहारों को प्रदर्शित करना, कहानी को आकर्षक बना सकता है। इस सम्बन्ध में पिता के व्यवहार के कई रूप हो सकते हैं, वह पुत्र को डाटे-फटकारे, उसको धन की सहायता से वञ्चित कर दे अथवा स्वयं घर से चला जाय, या घर में रह कर अपने को कष्ट दे, मौन रहे, स्वयं खाना-पीना छोड़ दे या कम कर दे इत्यादि। इन बातों के अतिरिक्त लड़के की प्रतिक्रिया का भी चित्रण हो सकता है।'

दूसरा उदाहरण और देखिए:—'बुरा आदमी भी बिलकुल बुरा नहीं होता है, उसमें कहीं-न-कहीं देवता अवश्य छिपा रहता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। उस देवता को खोल कर दिखा देना समर्थ आख्यायिका का काम है।' मुन्शी प्रेमचन्द नीच-से-नीच के हृदय-तल में छिपी हुई सज्जनता की चिन्गारी को प्रकाश में लाने में बड़े कुशल हस्त हैं।

फिर आगे वे लिखते हैं :—'विपत्ति पड़ने पर मनुष्य दिलेर हो जाता है। यहाँ तक कि बड़े-से-बड़े सङ्कट का सामना करने के लिए ताल ठोक कर तैयार हो जाता है। उसकी सारी दुर्वासना भाग जाती है। उसके हृदय में छिपे जौहर निकल आते हैं और हमें चकित कर देते हैं।'

एक चौथा उदाहरण और लीजिए :—'किसी समस्या का समावेश कहानी को आकर्षक बनाने का सबसे उत्तम साधन है। जीवन में ऐसी समस्याएँ नित्य ही उपस्थित होती रहती हैं और उनसे पैदा होने वाले द्वन्द्व आख्यायिका को चमका देता है। सत्यवादी पिता को मालूम होता है कि पुत्र ने हत्या की है। वह उसका न्याय वेदी पर बलिदान कर दे या अपने जीवन सिद्धान्तों की हत्या कर डाले, कितना भीषण द्वन्द्व है! पश्चात्ताप ऐसे द्वन्द्वों का अखण्ड स्रोत है' (प्रसादजी ऐसे द्वन्द्वों को प्रकाशित करने में बड़े कुशल हस्त थे) 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि कहानियों में बड़े अन्तर्द्वन्द्व हैं। 'न्याय' में भी एक ऐसी ही कहानी है।

यद्यपि सभी कहानियों में ऐसे मनोवैज्ञानिक या नैतिक सत्य का होना अनिवार्य नहीं है क्योंकि बहुत सी कहानियों के अस्तित्व की सार्थकता उनके चित्रण के कौशल में, जैसे मुन्शी प्रेमचन्दजी के शतरञ्ज के खिलाड़ी में या भाषा की अलङ्कारिकता में, जैसे चण्डी प्रसादजी की कहानियों में ही प्रमाणित होती है (ऐसी कहानियों में तन्मयता आदि के मनोवैज्ञानिक सत्य रहते हैं) तथापि ऐसे सत्य कहानी में जान डाल देते हैं। आजकल के कहानीकार सब स्थानों में नीति का समावेश नहीं करते हैं। नैराश्य की मनोदशा भाव के वर्णन मात्र से जैसे अश्क की 'डाली' नाम की कहानी में अथवा सियारामशरण गुप्त की 'काकी' नाम की कहानी में बालक के भोलेपन का चित्रण उनकी जान है। किन्हीं-किन्हीं कहानियों में किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन होता है या सभ्यता के विकास का काल्पनिक चित्रण किया जाता है। कहानी की रोचकता उसके कौतूहल के अतिरिक्त मानव समाज के प्रति सहानुभूति में है। हम मनुष्य हैं और मनुष्य के विचारों, आशाओं और अभिलाषाओं, उसकी सफलता और विफलताओं के प्रति एक सहानुभूतिपूर्ण रुचि रखते हैं। यह सहानुभूति जो सारे साहित्य का मूल है कहानी का भी आधार है। मनोवैज्ञानिक सत्य इस सहानुभूति के लिए सामग्री उपस्थित कर उसका पोषण करता है। प्रेमचन्दजी जैसे कलाकार के लिए जो कला को कला के लिए नहीं वरन् जीवन के लिए मानते थे ऐसे सत्य का और भी विशेष मूल्य था, तभी तो उन्होंने इसको विशेष महत्व दिया और यह महत्व देने योग्य बात भी है। आजकल भी मनोवैज्ञानिक सत्यों को महत्व दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है किन्तु आजकल का मनोविज्ञान भीतरी सितहों तक जाने की कोशिश करता है, उसका सम्बन्ध मनुष्य के अवचेतन से रहता है। प्रेमचन्दजी में ऐसे विश्लेषणात्मक मनोवैज्ञानिक सत्य के भी उदाहरण मिलते हैं।

वैसे तो मनोवैज्ञानिता कहानी में आदि से अन्त तक रहती है और कहानी या उपन्यास मनोविज्ञान के अध्ययन का साधन भी है क्योंकि कहानीकार जो जीवन की झाँकी देता है उसके पीछे पात्रों की मानसिक स्थिति ही तो मूल प्रेरणा शक्ति के रूपमें रहती है, और कुशल कलाकार उस मानसिक स्थिति का बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों के अनुकूल मनोविज्ञान के नियमों के आधार पर ही करता है। फिर भी मुन्शी प्रेमचन्दजी ने जिस मनोवैज्ञानिक सत्य का उल्लेख किया है वह कहानी का उद्देश्य ही है। यह उद्देश्य शुद्ध मनोवैज्ञानिक सत्य का भी उद्घाटन हो सकता है अथवा किसी नैतिक सत्य का। कहानी अमूर्त सत्य को एक सहजग्राह्य मूर्तरूप दे देती है। वह सत्य शरीर में आत्मा की भाँति स्थित रहता है। आत्मा का परिचय शरीर द्वारा ही मिलता है।

इस उद्देश्य या मनोवैज्ञानिक सत्य के सम्बन्ध में अमरीका में कहानी के जन्मदाता एडगर एलन पो (Edgar Allan poe) सन् १८०९—१८४९ (पश्चिम में भी यह विद्या बहुत पुरानी नहीं है) ने इसको महत्व देते हुए लिखा है कि आख्यायिका लेखक यदि चतुर और कला कुशल है तो वह अपनी आख्यायिका में पहले कोई घटना चक्र बना कर पीछे उसमें विचारों की शृङ्खला जोड़ देने की गलती कभी न करेगा। वह सावधान होकर पहले एक लक्ष्य या प्रभाव की कल्पना करेगा—तदनन्तर वह ऐसी घटनाओं की सृष्टि करेगा—वस्तु को इस रूप में नियोजित करेगा कि वह उक्त लक्ष्य या प्रभाव को अधिक से अधिक सफलता पूर्वक व्यञ्जित कर सके। यदि प्रथम वाक्य से ही वह उस प्रभाव के द्योतन करने में समर्थ नहीं होता तो प्रथम प्रासे मक्षिकापातः की उक्ति चरितार्थ होती है। (यह अनुवाद डाक्टर श्यामसुन्दरदास के साहित्यालोचन से दिया गया है) अन्तिम वाक्य का मूल इस प्रकार है (If his very initial sentence tend not to the bringing of this effect he has failed in his first step) यह इस उद्देश्य या मूल प्रभाव को बल देने को ही लिखा गया है। जहाँ तक कहानीकार के मन का सम्बन्ध है (मैंने कोई कहानी लिखी नहीं है अन्दाज से कहता हूँ) प्रायः ऐसा होता है कि कोई घटना किसी मनोवैज्ञानिक सत्य का सुझाव उत्पन्न कर देती है और फिर कलमकर उस घटना का उन घटनावलियों को कुछ वास्तविकता और कुछ कल्पना के आधार पर साज सम्हाल कर ऐसा रूप दे देता है कि वह मनोवैज्ञानिक सत्य अपने आप व्यक्त हो जाए या झलकने लगे। कुछ लोगों के मन में उस सत्य का ही पहले आविर्भाव हो जाता हो और घटनओं को कल्पना के आकार पर रचते हों। जो कुछ भी होता हो घटना और सत्य का शरीर और आत्मा का सा सम्बन्ध हो जाना चाहिए। वह सत्य ऊपर से थोपा हुआ न दिखाई देना चाहिए। यद्यपि किसी कहानी में उस सत्य को स्पष्ट-शब्दों में लिख दिया जाता है जैसे अज्ञेय की एक कहानी (शत्रु) में अन्तिम वाक्य यह है—"और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।" इसी प्रकार सुदर्शन की 'सन्यासी' नाम की कहानी में उसका सत्य स्पष्ट रूप से अन्त में लिख दिया गया है—'मन की शान्ति कर्त्तव्य के पालन से मिलती है'। यह सत्य मनोवैज्ञानिक भी है और नैतिक भी। किन्तु उसका व्यक्तिकरण पाठक के मन में होना अधिक श्रेयष्कर होता है। कहानी लेखक उपदेशक का रूप धारण करने के आक्षेप से बच जाता है। मनोवैज्ञानिक सत्य को सत्यनारायणजी की प्रेम कली की भाँति (याही सों अधखिली रही यह प्रेम कली है) अधखिला ही रहना अच्छा रहता है। उसका वर्णन कौशल ऐसा होना चाहिए कि वह सत्य उभार में आ जाए। इस सम्बन्ध में श्रीगिरधारीलाल शर्मा 'गर्ग' ने अपनी 'कहानी—एक कला' के पृष्ठ १२३ पर एक लेखक के अँग्रेजी उद्धरण का हिन्दी अनुवाद दिया है। वह द्रष्टव्य है:—

'मनुष्य को मनुष्य रूप में अङ्कित करो, शिक्षा आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल आयेगी। सूर्यास्त का स्वाभाविक वर्णन करो, यह तुम्हारे अन्दर किस भावना का उद्रेक करता है, यह बताना उचित नहीं। पाठक के मन में चाहे जिस भाव का उदय हो, होने दो। जहाँ सच्ची कला है वहाँ कुछ सीखने का है ही पर प्रकृति पर अपना कानून न लगाओ।' इसके अन्तिम वाक्य का मूल इस प्रकार है:—"Every work of art has a profound moral significance, but you must not to impose your own laws on nature." वास्तव में वह किस अंश में उद्देश्य को व्यक्त रखें और किस में अव्यक्त। कलाकार को अपने पाठकों को उस राह तक तो ले जाना ही पड़ता है जिस राह पर चल कर उनको मनोवैज्ञानिक सत्य या नैतिक सत्य के दर्शन हो सकें। अब हम कुछ प्रमुख कहानियों के मनोवैज्ञानिक सत्यों को व्यक्त करके इस लेख को समाप्त करेंगे।

उसने कहा था—गुलेरीजी की इस कहानी ने बड़ी प्रसिद्धि पाई है। इसके कई कारण हैं। उनमें से एक उसका मनोवैज्ञानिक सत्य भी है—वह है बात का निबाहना और ऐसे व्यक्ति की बात का जिसने मन पर बाल्यकाल में ही प्रभाव डाला हो। लहनासिंह अपने अन्तिम क्षणों में बार-बार भजन की टेक की भाँति यही दुहराता है 'वजीरासिंह पानी पिला—उसने कहा था' यही टेक कहानी का शीर्षक और उसकी जान है। अन्तिम क्षणों में स्मृति भी कुछ तीव्र हो जाती है। लहनासिंह पिछली सारी घटनाओं को दुहरा देता है और उसके बलिदान का रहस्य खुल जाता है।

मधुआ—प्रसादजी की इस कहानी में यह मनोवैज्ञानिक सत्य उभार में आता है कि मनुष्य चाहे जितना बिगड़ा हुआ हो जब किसी चिन्ता का भार उस पर पड़ता है तब उस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए उसका सुधार आरम्भ हो जाता है। शराबी के जीवन में मधुआ के आ जाने से उसके खिलाने पिलाने की उसे चिन्ता हो गई और शराब न पी सका। उसने शान रखने के लिए छोड़े हुए काम को फिर से सम्हाल लिया और उसका जीवन-क्रम व्यवस्थित होगया।

प्रेमचन्दजी की बहुत सी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्य है और नैतिक सत्य भी है। दो-एक का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

बड़े भाई साहब—यह एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसमें वर्णित बड़े भाई साहब जो पढ़ने में कुछ मन्द-बुद्धि हैं बार-बार फेल होते हैं। और उनका छोटा भाई जो पढ़ने में अपेक्षाकृत कम ध्यान देता है, लगातार अच्छी तरह से पास होता हुआ अपने और उनके बीच के अन्तर को कम करते-करते उनसे केवल एक दर्जा नीचा रह जाता है। बड़े भाई साहब अपनी झेंप मिटाने के लिए अपनी कक्षा के पाठ्य क्रम की कठिनाइयों का बखान करते हैं और बड़े होने के अधिकार से डाट-फटकार बतलाते रहते हैं। वे अपनी बुद्धि की कमी की क्षति पूर्ति अपनी आयु की बड़ोत्तरी से पूरा करना चाहते हैं। वे यह नहीं भूलते हैं कि वे बड़े हैं।

'मैं तुम से पाँच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअ़त में आजाओ, लेकिन मुझ में और तुम में पाँच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुम से पाँच साल बड़ा हूँ। मुझे जो दुनिया और जिन्दगी का तजुर्बा है तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० लिट० और डी० फिल क्यों न होजाओ। समझ किताबें पढ़ने से, नई दुनिया देखने से आती है।' इस में यही मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बड़ा भाई अपने बड़े पन के अधिकार में रहकर अध्ययन की परवाह और प्रयत्न करके भी पिछड़ जाता है और छोटा भाई अपने को जीवन की दौड़ में पिछड़ा पाकर अपनी क्षति पूर्ति के लिए एक अव्यक्त मानसिक उन्नति कर लेता है। (प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडलर ने बतलाया है कि घर का दूसरा लड़का प्रायः पहले की अपेक्षा अधिक मेधावी पाया जाता है।) यह सब मन की अज्ञात क्रियाओं द्वारा होता रहता है। अन्त में एक आकस्मिक और अप्रत्याशित मोड़ मुन्शी प्रेमचन्द जी ने इस कहानी को दिया है। कनकउए उड़ाने के विरुद्ध उपदेश देते-देते कनकउए की डोर भाई साहब के ऊपर से गुजरती है। तब उनके हाथ बरबस उठ जाते हैं और वह उसे लूट कर भागते हैं। यह घटना इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रमाणित करती है कि मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश चाहे जितने दे किन्तु मानवी कमजोरियाँ और पूर्व के पड़े हुए संस्कार उन उपदेशों से कहीं प्रबलतर होते हैं।

शान्ति—इस कहानी में एक नैतिक सत्य है और एक मनोवैज्ञानिक। दाम्पत्य जीवन में यदि दोनों ओर से स्वाभिमान प्रबल हो और एक का चरित्र बिगड़ा हो तो बिगड़े हुए पक्ष के सुधार की आशा नहीं रहती। अभिमान का बदला उपेक्षा से मिलता है। सुधार के लिए समझौते की वृत्ति आवश्यक है। अत्याचारी के अत्याचार के शमन की कुछ आशा हो सकती है तो प्रेम और सहानुभूति में। इसमें मनोवैज्ञानिक यह सत्य है कि दुख की पराकाष्ठा शान्ति का रूप धारण कर लेती है। प्रेमचन्दजी ने जिस पात्र के मुँह से कहानी कहलाई है वह कहता है 'किन्तु रह-रह कर यह सन्देह हो जाता था कि गोपा की यह शान्ति उसकी अपार व्यथा का ही तो रूप नहीं है'। यह सन्देह वास्तविक था और उद्धृत वाक्य द्वारा कहानी के मनोवैज्ञानिक सत्य का ही उद्घाटन नहीं हुआ वरन् उसका शीर्षक भी सार्थक होगया।

पूस की रात—में नैराश्यपूर्ण परिस्थिति में भी मनुष्य अपनी खीझ छिपा लेने के लिए क्षति में भी लाभ का स्वर्णकण खोज निकालता है। हलकू के निद्रा मोह के कारण उसके खेत के जल जाने पर हलकू और मुन्नी का वार्तालाप इसी सत्य का परिचायक है। मुन्नी ने चिन्तित होकर कहा—'अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी'।

हलकू ने प्रसन्न मुख से कहा—'रात की ठंडी में यहाँ सोना तो न पड़ेगा। इसमें किसानों की कठिनाइयों की भी एक करुण व्यञ्जना है। इसमें आँख फूटी पीर गई की लोकोक्ति भी चरितार्थ होती है।

मुक्ति मार्ग—इसमें एक नैतिक और कुछ कुछ मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मनुष्य में जब तक धन का मद रहता है तब तक वह अनर्थ करने और एक दूसरे को नीचा दिखाने को उतारू रहता है। धन ही सब आपत्तियों और पापों का मूल है। किंतु जब धन का मद जाता रहता है तब मनुष्य की अकल ठिकाने आ जाती है। उसके हृदय से ईर्ष्या-द्वेष मिट जाता है और हृदय की सफाई होजाती है। वह अपराध स्वीकार करने को तैयार होजाता है। झींगुर और बुद्धू गरीब होकर मजदूरी करने लगते हैं। तब उनके हृदय की कालिमा मिट जाती है और वे एक दूसरे से अपना अपना अपराध स्वीकार कर लेते हैं।

बुद्धू ने कहा 'तुम्हारी ऊख में आग मैंने लगाई थी।'

झींगुर ने विनोद के भाव से कहा—'जानता हूँ' थोड़ी देर के बाद, झींगुर बोला—"बधिया मैंने ही बाँधी थी और हरिहर ने उसे कुछ खिला दिया था।"

गरीबी और अपराध-स्वीकृति ही मुक्ति का मार्ग है।

बड़े घर की बेटी—मुन्शी प्रेमचन्द की यह प्रसिद्ध कहानियों में से है। आनन्दी में पितृगृह के प्रति गर्व की भावना थी और उसके कारण वह अपने देवर के प्रति कटु व्यङ्ग्य भी कर सकी, किन्तु जैसा प्रेमचन्दजी ने कहा है—बुरे से बुरे आदमी के अन्दर भी कहीं न कहीं देवता अवश्य छिपा रहता है। प्रेमचन्द ने आनन्दी में उसी देवता की ज्योति दिखाई है। वह अपने पीछे भाई को भाई से अलग कर पारिवारिक सङ्गठन को विच्छिन्न नहीं करना चाहती थी। इसी विच्छेद को बचाने के लिए उसने घर छोड़ कर जाते हुये लालविहारी को रोक लिया। फिर उसके सम्बन्ध में यही बरबश कहना पड़ा "बड़े घर की बेटियाँ बिगड़ी को बनाने वाली होती हैं।" आनन्दी ने 'बड़े घर की बेटी' नाम को बुरे अर्थ में भी और अच्छे अर्थ में भी सार्थक कर दिया।

अलबम—यह श्री सुदर्शनजी की अच्छी कहानियों में से एक है। इसमें जिस नैतिक सत्य का प्रकाशन हुआ है वह यह है कि सच्ची मानवता उपकृत में हीनता भाव नहीं उत्पन्न होने देती। पं० शादीराम को आर्थिक सहायता देने के लिए लाला सदानन्द ने पण्डितजी की अलबम यह कह कर खरीद ली थी कि वे उसको अपने एक सेठ मित्र के लिए खरीद रहे हैं। लाला सदानन्द के मरने पर ही पंडितजी पर यह भेद खुला।

इसी प्रकार अन्य कहानियों के भी मनोवैज्ञानिक और नैतिक सत्य बताये जा सकते हैं। कहानी का अध्ययन मनोरञ्जन के लिए ही नहीं वरन् सामाजिक और मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ग्रहण करने और उनसे व्यावहारिक कुशलता प्राप्त करने के लिए भी होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघु कथा

श्री सत्य

अन्धकार के आवरणों को चीर कर सत्य को प्रकट करने के, वैयक्तिक सत्ता के सामने रखने के कई रूप हैं। कहानी का माध्यम उच्च स्तर की चीज शायद न भी हो, पर मजबूत है, इसमें शक नहीं। उच्च स्तर के लिए कुछ स्थान की गुंजाइश मैं रख रहा हूँ, और इसलिए कि कहानी-आवरण में बुद्धि-चेतना एवं ज्ञान की स्पष्टता स्वयं एक विशेष प्रकार के आवरण की धारण कर लेती है। पर यह आवरण हलके घूँघट की तरह है। इससे सत्य का लोप हो जाता हो यह तो नहीं कहा जा सकता, मगर मनुष्य की स्वाभाविक रुचियों का झीना और अनुकूल घूँघट उसे आकर्षक बना देता है।

कहानी विचार-प्रसाधन का एक साधन है : आज की क्रियात्मक व्याख्या इस स्तर पर आ गयी है। यह स्तर एकान्त रूप से गलत हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस विचार प्रसाधन में लेखक की, जो कहानी लिखता है, विचारों का अपरोक्ष रूप से प्रचार करता है, संवेदनशील प्रवृत्तियाँ काम करने लगती हैं। कभी-कभी विचार शीलता को तीव्र भावुकता की ओर मोड़ ले जाते हैं। भावुकता सही होते हुए भी विचारों की विशेषताओं से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकती। लम्बी कहानी में, जिसमें लेखक की भावनायें रसिकता और कभी-कभी बोझ बन कर छिपी रहती हैं, वहाँ पाठक को कहानी के सार तत्व में पहुँचते देर लगती है। कभी कभी लेखक और पाठक दोनों ही बीच में खो भी जाते हैं।

लम्बी कथाओं का सार रूप है लघु-कथाएँ। लेकिन इनका अपना अलग अस्तित्व है। दृष्टान्त की क्षमता इसमें विशेष होती है। लेखक की कल्पना का इन्द्र-धनुषी रस इसमें होता है : और इसीलिए उपदेशक अथवा वैज्ञानिक के दृष्टान्त से उसकी कहानियाँ भिन्न होती हैं। संक्षिप्तता के इस युग में लघु-कथा का भविष्य उज्ज्वल है। जीवन के चयोन्मेषित तथ्यों का समावेश सरलता और प्रभावशाली ढङ्ग से लघु-कथाओं द्वारा प्रकट होता है।

जीवन की सामयिक घटनाओं से लेखक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। लघु-कथा-लेखक को भावना अथवा विचार को सीधे और ताकतवर ढङ्ग से मौलिकता का मिठास देकर आगे चलना है। इसीलिए वह कथा के आन्तरिक सौन्दर्य और विचार की ठेठ गहराई को ग्रहण करने का ही अधिकारी होता है। यही कारण है कि लघु-कथा का अस्तित्व सामयिक समस्याओं और उसके प्रभावों पर आधारित होते हुए भी एकान्त सत्य का प्रतिपादन करने में अधिक जागरूक होता है। इस सत्य की व्याख्या जब भी बदलेगी, कथाकार की कथायें और चिन्तन की गहराइयाँ उसकी कसौटी का काम करेंगी।

लघु-कथा की मूल प्रेरणा दो प्रकार की है। एक तो लेखक घटना को देख कर उसमें सत्य की खोज करता है। दूसरे सत्य को प्रकाशित करने के लिए घटना का सहारा लेता है। लेकिन लघु-कथा की एक कसौटी है : वह यह कि उसमें वैयक्तिक भावनाओं का रङ्ग न होकर सत्य का, विचार चिन्तन के सारांश का संक्षेप में प्रतिनिधित्व है।

इस तरह से लघु-कथाओं के दो रूप हो गये हैं। एक बौद्धिक, दूसरा नैतिक। बौद्धिक कथायें यथार्थवाद के करीब होती हैं, नैतिक आदर्श के। यथार्थवाद वस्तु-सत्ता में सत्य को खोजता है, आदर्श सिद्धान्तों में वस्तु सत्ता को। दोनों एक दूसरे के पूरक होते हुये भी अपना निजी अलग अस्तित्व रखते हैं।

नैतिक लघु-कथाओं के प्रतिनिधि साधारणतया धर्म-प्रचारक रहे हैं। उनका निश्चित प्रभाव भी पड़ा है। इस स्कूल में ईसप की कहानियाँ, पञ्चतन्त्र की कथायें, महाभारत, बाइबिल, जातक की रूपक कथाओं को शामिल किया जा सकता है। नयी पीढ़ी में प्रयोग करने वाले लोक-कथाओं और जन-विश्वास के आधार पर ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथाओं का निर्माण कर रहे हैं। इनमें अयोध्याप्रसाद गोयलीय (गहरे पानी पैठ) और विशाल भारत के सम्पादक श्री श्रीराम शर्मा (खण्डित प्रतिमा) हैं। पत्र-पत्रिकाओं में इस प्रकार की कई कथायें आज कल प्रकाशित हो रही हैं।

दूसरी श्रेणी में हम रवीन्द्र की कुछ कहानियों को लेंगे। उदाहरण-स्वरूप उनकी एक कथा इस तरह है—

"गृह स्वामी ने काँच के भाँड़ में बन्द मछलियों को मुक्त करना चाहा, बड़े तालाब में ले जाकर उन्हें छोड़ दिया। मगर वे उसी तरह निरन्तर चक्कर खाती रहीं, जिस तरह काँच के भाँड़ में।" (कथा का मूल भाव शब्द-ब-शब्द नहीं)।

इसी स्कूल से सम्बन्धित खलील जिब्रान भी हैं। देश और समाज ने इनके दार्शनिक विचारों को एक विशेष प्रकार की पृष्ठभूमि दी। अपनी निजी प्रतिभा के बल पर उन्होंने अपने सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने में लघु-कथाओं का प्रयोग एवं उपयोग किया। काव्यमत सौन्दर्य के कारण दोनों संसार में अपने इस क्षेत्र के सफल अधि-नायक हैं। यद्यपि इनकी कथायें कभी-कभी ईसप और पञ्चतन्त्र की कहानियों (लघु) के करीब आ जाती हैं—पर नवीन विचारधारा ने शैली पर जबर्दस्त प्रभाव डाला था और इसीलिए आदर्श तथा यथार्थवाद का सामञ्जस्य इनमें मिलता है। वे मानव के मूल नैतिक विचारों के परिपाक के विकास को आवश्यक मानते थे, और इसके लिए वैयक्तिक सत्ता को जिम्मेदार ठहराते थे। खलील जिब्रान की एक कथा का सारांश है—

"सुबह आहार की खोज में निकलने वाली एक लोमड़ी ने जब अपनी परछाईं देखी, तो उसे लगा कि उसे एक ऊँट भोजन के लिए चाहियेगा। दोपहर तक जब उसे इच्छित आहार नहीं मिल सका तो उसने अपनी परछाईं फिर देखी, अब सूर्य आकाश के ठीक बीच में आ गया था, और उसकी परछाईं बहुत छोटी हो गयी थी। उसने सोचा कि अब मेरा काम एक चूहे मात्र से ही चल जायेगा।"

दृष्टान्त कथाओं के लिहाज से और अपना असर डालने के ख्याल से दोनों ताकतवर उदाहरण हैं।

इस क्षेत्र में इस पीढ़ी के प्रयोग कर्ता हैं सुदर्शन, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, आनन्द मोहन अवस्थी, बनफूल और रावी। श्री सुदर्शन की "झरोखे" आन्तरिक प्रकाश के स्पष्ट होने के लिये एक आमन्त्रण हैं। जिब्रान से वे प्रभावित हैं। इसलिये इन लघुकथाओं में (जिन्हें वे कथा नहीं मानते : 'पेरेबल' के लिये लघुकथा ही उपयुक्त शब्द मुझे जच रहा है) जिब्रान कहीं-कहीं हावी होकर बोलने लगता है। जिब्रान की ही तरह सुदर्शन भी मसीहा की वाणी बोलने लगते हैं। पर जब उनका मौलिक रूप सामने आता है, तो सौन्दर्य अधिक खिल उठता है : कथा अधिक सार्थक और सफल हो जाती है। उनकी एक कथा है, जिसमें विक्रमादित्य कालिदास को साधारण आदमियों के वेश में देखकर आश्चर्य करता है, और उसे उत्तर मिलता है कि कालिदासों की कमी नहीं कमी विक्रमादित्यों की है।

बङ्गला के बनफूल और हिन्दी के आनन्दमोहन अवस्थी एक तरह से करीब है। इनकी लघुताओं में तीव्र व्यंग्य है। घटना को लेकर सत्य-दर्शन की जिज्ञासा इनमें अधिक है बनिस्पत निश्चित सत्य को घटना के माध्यम से पेश करने के।

भारतीय ज्ञान पीठ, बनारस से प्रकाशित "आकाश के तारे : धरती के फूल" कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का सुन्दर लघु-कथा संग्रह है। इन कथाओं में सौन्दर्य, कल्पना और मिठास है : पर कुल मिला कर वे शिशु की सरल जिज्ञासा और उत्सुकता के नजदीक ही हैं। अपने आप में उनकी निश्चित रूप से कीमत है।

हिन्दी में इस ओर निरन्तर प्रयास एवं प्रयोग करने वाले हैं आगरा के रामप्रसाद विद्यार्थी रावी। इनकी लघु-कथाओं में कल्पना की सरसता, आदर्श की सन्तोषकारी झलक है। चिन्तन स्वतन्त्र है : उसके सारांश पर घट-नाओं का आधार है। वैयक्तिक चेतना को सामाजिक विकास के लिए अधिक आवश्यक मानते हैं। परिस्थितियों के सृजकों के प्रति न इन्हें अधिक असन्तोष है, न उसके द्वारा उत्पन्न विवशता पर विश्वास। अतीत के क्रम को लाँघ कर आदर्श के विशिष्ट दायरे में पहुँचने की तीव्र आकांक्षा

(शेष पृष्ठ २८८ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कहानी कला का विकास

—१—

डा० लक्ष्मीनारायण लाल एम० ए०, डी० फिल०

भारतेन्दु युग में या कुछ उससे पूर्व ही हिन्दी-कहानी कला की उत्पत्ति की समस्त परिस्थितियाँ उपस्थित थीं; लेकिन फिर भी इसकी उत्पत्ति में आश्चर्य-जनक विलम्ब हुआ। ऐसा क्यों? वस्तुतः अपनी मूल मान्यताओं में भारतेन्दु युग आदर्श और मर्यादा का युग था। साहित्य-क्षेत्र में यह एक ऐसा युग था जहाँ यथार्थ पर आदर्श का आरोप पग-पग पर होता चलता था और अपने दृष्टि-कोण में भी यह युग कुछ सीमा तक रूढ़िवादी था। इस काल में मूलतः नाटक-उपन्यास की कला का अपेक्षाकृत क्यों इतना विकास हुआ? क्योंकि ये दोनों कलाएँ हमारे प्राचीन साहित्य की पिछली परम्पराओं के सूत्र में थीं, और इनके अनुसरण तथा इनके अनुवाद में इस युग को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। हमारे यहाँ इसकी सुन्दरतम पृष्ठभूमि थी।

फिर भी इस युग ने हिन्दी कहानी कला की उत्पत्ति की कुछ प्राण शक्ति अवश्य उपस्थित की, जिसकी प्रेरणा से इसका आविर्भाव हुआ। उस प्राणशक्ति को हम सर्वथा इस युग की पत्र-पत्रिकाओं में पाते हैं। 'कविवचन सुधा' (१८६७) 'हरिश्चन्द्र मेगजीन' (१८७३) 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' (१८७४) 'हिन्दी प्रदीप' (१८७७) 'ब्राह्मण' (१८८०) 'सार सुधा विधि' (१८७६) 'क्षत्रिय पत्रिका' (१८८०) और 'भारत मित्र' (१८७७) आदि मासिक पत्रों और साप्ताहिकों में जहाँ एक ओर आधुनिक भाषा शैली के विकास का प्रयत्न हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर इन्हीं प्रयत्नों के माध्यम से हिन्दी-गद्य के लघु रूपों के जन्म हो रहे थे। इन लघु रूपों में निबंध, व्यंग्यचित्र, स्फुट चित्र, हास्यचित्र और स्वप्न चित्र आदि की गद्य शैलियाँ उल्लेख-नीय हैं। वास्तव में इन्हीं गद्य शैलियों के प्रेरणासूत्र में हिन्दी कहानी कला के आविर्भाव का सम्बन्ध है।

लेकिन समूचे भारतेन्दु युग में कहानी कला की उत्पत्ति की दिशा में जितने भी परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से प्रयत्न हुए उन समस्त प्रयत्नों और गद्य शैलियों में हिन्दी कहानी कला का कोई भी रूप नहीं बन सका।

निश्चित रूप से हिन्दी कहानी अपनी संज्ञा और कला-त्मक रूप की प्राप्ति में केवल सरस्वती का आधार बहन करेगी। सरस्वती के भी प्रारम्भिक वर्षों में इसे आख्यायिका और गल्प की संज्ञा दी गयी है। ऐतिहासिक दृष्टि से क्रमशः पहली संज्ञा संस्कृत की कथा-परम्परा की स्मृति है और दूसरी स्पष्टतः बँगला का प्रभाव। इन प्रारम्भिक वर्षों में भारतेन्दु युग के उक्त समस्त गद्य के लघु रूपों के सूत्र अपने विकसित रूप में यहाँ उदित हुए। अर्थात् उन्हीं के विक-सित माध्यमों से सरस्वती के प्रारम्भिक वर्षों में हिन्दी कहानी कला के आरम्भ के अविकल प्रयत्न और प्रयोग हुए, जिनसे हिन्दी कहानी कला का मौलिक आविर्भाव हुआ।

सरस्वती के प्रायः प्रारम्भिक दो वर्षों में उक्त प्रयत्न और प्रयोग मुख्यतः सात रूपों में हुए। इनमें सर्व प्रथम उस प्रयत्न और प्रयोग की कहानी आती है जो शेक्सपियर के नाटकों की इतिवृत्ति की छाया पर अन्यपुरुष और वर्णनात्मक शैली में निर्मित हुई है; जैसे, किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती', जिस पर 'टेम्पेस्ट' की इतिवृत्ति की छाया है।

दूसरा प्रयत्न है, स्वप्न चित्र के रूप में उपस्थित की गयी कहानी। भारतेन्दु युग की स्वप्न कल्पनाओं में कहानी के तत्त्वों के संगुफन के असफल प्रयत्न मिलते हैं। यहाँ सफलता मिली है; जैसे केशवप्रसाद सिंह की 'आपत्तियों का पर्वत' कहानी। इसी प्रयत्न की प्रेरणा से तीसरे प्रयोग में वह कहानी आती है; जो किसी सुदूर देश के काल्पनिक चरित्रों को लेकर तथा उनसे किसी एक मौलिक संवेदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सृष्टि से निर्मित हुई है; जैसे गिरिजादत्त वाजपेयी कृत 'पति का पवित्र प्रेम'। चौथे प्रयत्न में यात्रा-वर्णन के माध्यम से कहानी निर्माण का प्रयोग किया गया है; जैसे केशव-प्रसाद सिंह कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा'। पाँचवें प्रयत्न में आत्मकहानी की शैली से कहानी की सृष्टि हुई है; जैसे, कार्तिकप्रसाद खत्री कृत 'दामोदर राव की आत्मकहानी'। छठे प्रयत्न की दिशा में संस्कृत नाटकों की आख्यायिका आती है; जैसे, श्री हर्ष रचित 'रत्नावली' नाटक की आख्यायिका; जिसे पं० जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी ने कहानी के रूप में ढाला है। सातवें और अन्तिम प्रयत्न में एक ऐसी कहानी के निर्माण का प्रयोग किया गया है; जहाँ केवल वर्णन और विश्लेषण शैली से एक सामाजिक संवेदना इतिवृत्ति में बाँधी गयी हैं; जैसे, लाला पर्वतीनन्दन कृत 'प्रेम का फुहारा' नामक कहानी।

उपर्युक्त सातों प्रकार के प्रयत्नों और कलात्मक प्रयोगों से हिन्दी कहानी कला के आरम्भ का सूत्रपात निश्चित रूप से हुआ। कहानी के विधान में कथानक, चरित्र, शैली और समस्या चयन को एक निश्चित दिशा मिली। अर्थात् कहानी के सीमा-क्षेत्र और ध्येय को एक रूप मिला। कथानक, घटना-संयोगपूर्ण और कथाश्रयी; चरित्र-काल्पनिक और स्वच्छन्द पर स्थूलता का पुट लिए; शैली, वर्णनात्मक; तिलिस्मी, ऐयारीपूर्ण; समस्या अथवा वर्ण्य वस्तु में धर्म-आचरण का आदेश, स्वच्छन्दतापूर्ण व्यापार आदि तात्त्विक विशेषताएँ कहानी कला की सीमा-क्षेत्र और रूप को निर्धारित करने लगीं।

कहानी कला के इन विकास क्रमों में 'सरस्वती' के माध्यम से आगे रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' नामक कहानी कला की दृष्टि से परम उल्लेखनीय है। इसके उपरान्त ही सरस्वती के आगामी अङ्कों में कलात्मक कहानियाँ आने लगती हैं; और उस दिशा में इसका चरमोत्कर्ष चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत 'उसने कहा था' नामक कहानी से होता है।

आगे सरस्वती के अतिरिक्त कहानी कला के विकास में—'इन्दु' (१९०९) और 'हिन्दी गल्पमाला' के प्रकाशन ने तथा जयशङ्करप्रसाद और इलाचन्द्र जोशी की कहानीकला के अभ्युदय ने अपूर्व बल दिया।

हिन्दी कहानी-कला के प्रारम्भिक विकास की दृष्टि से 'इन्दु' द्वारा जयशङ्करप्रसाद, 'सरस्वती' द्वारा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 'हिन्दी गल्पमाला' द्वारा इलाचन्द्र जोशी और उधर सप्त-सरोज की भूमिका से प्रेमचन्द के अभ्युदय ने समष्टि रूप से एक नये और अपूर्व स्वस्थ युग-द्वार को खोला। वस्तुतः गुलेरी, प्रसाद और प्रमचन्द का अभ्युदय, हिन्दी-कहानी-कला की अनन्य साधना, जो पिछले पचास वर्षों से की जा रही थी, के फलस्वरूप है।

भाग्यवश हिन्दी कहानी-कला को ही यह सुयोग मिल सका है कि इसका आविर्भाव जिन उक्त साहित्यिक मनीषियों द्वारा हुआ, उन्हीं की साहित्य-साधना से इसका विकास भी हुआ। कहानी कला की दिशा में यह विकास इतना व्यापक और विस्तृत था कि इसने अपने में एक स्वतन्त्र युग की प्रतिष्ठा की। 'प्रसाद' और प्रेमचन्द, इन दो महान कथा-शिल्पियों से दो पृथक और अनन्य कला-संस्थानों के निर्माण हुए, जिनके अन्तर्गत हिन्दी के अनेकानेक प्रतिष्ठित विकासयुगीन कहानीकारों ने अपनी बहुमूल्य कला-कृतियाँ दीं। इस तरह हिन्दी कहानी-कला के विकास-युग के केवल दो मुख्य कारण—प्रेमचन्द और 'प्रसाद' तथा समूचे विकासयुग का प्रतिनिधित्व, इनकी विभिन्न शिल्पनिधियों और कलागत मान्यताओं ने किया।

प्रेमचन्द मूलतः आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा के प्रतीक थे। 'प्रसाद' भावमूलक परम्परा के अधिष्ठाता थे। तुलनात्मक दृष्टि से 'प्रसाद' की भावात्मक परम्परा को अपेक्षाकृत कम कहानीकारों ने अपनाया और प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा में इस युग के अधिक से अधिक कहानीकार आये।

भावगत प्रवृत्तियों के समान प्रसाद और प्रेमचन्द की कहानी कला में भी स्पष्ट अन्तर है। प्रसाद अपनी भावगत प्रेरणा के फलस्वरूप अपनी कहानियों में प्रेम, सौन्दर्य और रहस्य भावना के कहानीकार हैं। भावनाओं से ओत-प्रोत इनकी कुछ विशुद्ध सामाजिक और यथार्थवादी कहानियों को छोड़ कर शेष सब कहानियाँ प्रतीकात्मक और ऐतिहासिक कोटियों में रक्खी जा सकती हैं। प्रतीकात्मक कहानियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल धरातल कल्पना और भावुकता है, अतएव ये कहानियाँ अपने कलागत स्वरूप में रेखाचित्र और सङ्गीत के समीप चली जाती हैं। ऐतिहासिक कहानियों में एक सूचना तथा उनके विकास के अन्तर्गत आदि, मध्य और अन्त में तीनों स्थितियाँ मिलती हैं। 'आकाशदीप', 'स्वर्ग के खण्डहर में' 'पुरस्कार', 'देवरथ' और 'सालवती' आदि कहानियों में कथानक निश्चित हैं और इनमें अनेक प्रकार की कल्पना-रञ्जित सूक्ष्म रेखायें उभर उठी हैं। फिर भी इनमें भावों का तारतम्य और एक-सूत्रता सर्वत्र स्पष्ट है। इनके निर्माण में घटनाओं के साथ-साथ संयोग का सहारा लेने में प्रसाद को कोई आपत्ति नहीं है।

चरित्र की दिशा में प्रसाद का दृष्टि-कोण बहुत ही ऊँचा है, जिनके पीछे प्रसाद के भावुक और, सौन्दर्यप्रेमी और कारुणिक व्यक्तित्व का प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित है। कहानियों की निर्माण शैली भारतीय नाटक प्रणाली की प्रेरणा के अन्तर्गत आती है; अर्थात् इनके निर्माण में बीज विकास और फलागम की प्रतिष्ठा हुई है।

प्रमचन्द यथार्थवादी परम्परा के कर्णधार हैं, अतएव इनकी कहानी कला में समस्त शिल्पगत प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, जो वस्तुतः कहानी कला की आधार शिलाएँ हैं। उन्होंने कहानी-विधान के मर्यादित क्षेत्र और मान्यताओं के अन्तर्गत सैकड़ों कहानियों की सृष्टि की और उनके माध्यम से हमारे समाज की प्रायः समस्त इकाइयों और युगचेतना को सफल अभिव्यक्ति दी। इनके शिल्पविधान में कथानक, चरित्र और शैली तीनों दिशाओं में आश्चर्यजनक सुगमता और कला का सहज आकर्षण मिलता है। कथानक सदैव इतिवृत्तात्मक होते हैं और उसका एक स्पष्ट और सुनिश्चित आकार होता है; क्योंकि इनकी कहानी कला की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह भावप्रधान न होकर वस्तुप्रधान होती है। फलतः प्रेमचन्द की शिल्पगत प्रवृत्ति में घटना का स्पष्ट होना और इतिवृत्त का सर्वसाधारण गम्य होना अत्यन्त आवश्यक है।

चरित्र कल्पना और चरित्र चित्रण की दिशा में प्रेमचन्द की दृष्टि अत्यन्त सुदृढ़ है। इनके पात्र निम्न वर्ग से लेकर मध्यम, उच्च और प्रायः समस्त अधिकारी वर्ग तक फैले हैं। यही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी तक इनकी चरित्र-सीमा में आ गये हैं। लेकिन संवेदनात्मक दृष्टि से प्रेमचन्द मध्यम वर्गीय पात्रों के कहानीकार हैं और इनके समस्त चरित्र सहज और स्वभाविक हैं। पात्रों में व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा आश्चर्यजनक ढङ्ग से हुई है। इन्होंने पात्रों की दिशा में कभी जटिलता नहीं उपस्थित की। ये पात्र, जीवन के तूफान में जैसे, कभी दिशाभ्रम नहीं होते और व वे हमारे सामने अपनी गूढ़ मानसिक गुत्थियाँ ही रखते हैं, जिनमें जीवन की क्रिया और प्रतिक्रिया का विकट तुमुल आबद्ध रहता है। कहानियों की निर्माण शैली में आरम्भ, विकास और चरम सीमा ये तीनों भाग पूर्णतः स्पष्ट होते हैं। क्योंकि प्रेमचन्द की कहानी कला की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनकी कहानियाँ सदैव एक निश्चित लक्ष्य से विकसित होती हैं।

हिन्दी कहानी कला के समूचे विकास युग में प्रेमचन्द और प्रसाद के विभिन्न कलागत संस्थानों का ही प्रतिनिधित्व हुआ है, तथा इन्हीं की कलाओं की दो मुख्य प्रवृत्तियों ने इस युग में आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त की।

इनके आगे हिन्दी कहानी कला के संक्रान्ति युग में अनेक कलागत प्रवृत्तियाँ अङ्कुरित हुईं। क्योंकि संक्रान्ति युग में, हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अपूर्व विस्तार और प्रसार हुआ; फलतः युग की अनेक प्रवृत्तियों का इसमें स्थायी होना अत्यन्त स्वाभाविक हो गया। ये युगीन प्रवृत्तियाँ मुख्यतः दो क्षेत्रों में रखकर बाँटी जा सकती हैं—(१) सांस्कृतिक (२) सामयिक। सांस्कृतिक क्षेत्र में जीवन-दर्शन और मनोविज्ञान ये दो धाराएँ हैं तथा सामयिक क्षेत्र में साम्यवाद (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) और यौनवाद (सैक्स) दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं। ये समस्त प्रवृत्तियाँ इतनी शक्तिशाली क्रान्ति-मूलक और युग-सापेक्ष्य हैं कि इनके प्रभाव औरस्थायी प्रेरणा से हिन्दी कहानी कला का स्वर्णयुग-द्वार खुलता है।

युगीन प्रवृत्तियों और उनके मुख्य कहानीकारों, जैसे, जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवती चरण वर्मा और 'पहाड़ी' आदि कहानी-कारों की विशिष्ट कलाओं के फलस्वरूप इस काल में कथानक निर्माण तथा कथा-विधान के रूपों में अनेक नए नए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोगों और हस्तलाघव के परिचय मिले। कथानक अपनी क्रम बद्धता, एक सूत्रता और वर्णनात्मकता से आगे चढ़कर मानसिक सूत्रों, मनोवैज्ञानिक चक्रों, सूक्ष्म घटनाओं और मन : उद्वेगों के माध्यम से निर्मित होकर अस्फुट रेखा-चित्रों, टुकड़ों और सांकेतिक रूप में कभी-कभी इतने व्यापक हो गए हैं कि उनमें जीवन के लम्बे-लम्बे भाग, जीवन की विस्तृत समस्याएँ संगुम्फित हो गयी हैं। जैनेन्द्र और अज्ञेय के कथा विधान इस दिशा में सदैव उल्लेखनीय हैं। संश्लिष्ट चरित्र तथा मनःस्थिति की गूढ़-ग्रन्थियों के विश्लेषण में ऐसे कथा विधान प्रस्तुत किए गए, जिनसे चरित्र से सम्बन्धित वे तमाम कर्म-प्रेरणाएँ एक ऐसे संधि-स्थल पर एकीकृत हो गयीं कि जिनके सहारे उस गूढ़ चरित्र का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया। ऐसी भी न जाने कितनी कहानियाँ लिखी जाने लगीं, जिनमें कथानक के रूप इतने सूक्ष्म और अव्यक्त थे कि उन्हें अध्ययन-सीमा में बाँधना कठिन है।

विधान की दृष्टि से इस युग की कहानी कला का मेरुदण्ड चरित्र है। इसी के अध्ययन, इसी की कर्म-प्रेरणाओं के विवेचन तथा इसी की व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के चारों ओर इस युग की कहानी शिल्प विधि के समस्त उपकरण घूमते मिले। यही नहीं, बल्कि दर्शन, मनोविज्ञान, यौन-वाद और साम्यवाद आदि समस्त युगीन प्रवृत्तियाँ इसी केन्द्र बिन्दु से चरितार्थ की गईं। चरित्र अवतारणा मूलतः यथार्थ भाव भूमि पर हुई। युग का जितना बौद्धिक दृष्टि-कोण जीवन के प्रति हुआ, वही बौद्धिक दृष्टिकोण इसके कला पर उतर आया। और कला इतनी व्यापक होती गयी कि यह सम्यक कहानी शैली से लेकर, रेखाचित्र, चिन्तन चित्र, विश्लेषण चित्र तथा सूचकिना (रिपोर्ताज) केमराविधान और न्यूजरील तक फैली।

इस तरह कहानी की निर्माण शैली और रूपविधान में अपूर्व ढंग का वैविध्य, नवीनता और व्यापकता आयी। वार्ता, दृष्टान्त, सांकेतिक और प्रतीकात्मक शैली से लेकर, ऐतिहासिक, आत्म कथात्मक, डायरी-रूपकात्मक, पत्रात्मक, स्वगत भाषण और मिश्रित शैली तक उसका विकास हुआ। रचना शैली में इतने वैविध्य और प्रयोग आने का सबसे मुख्य कारण यही था कि इस युग की कहानी कला में चरित्र का विकास दिखाने के लिए विस्तार के अभाव ने इसके रचना कौशल पर सबसे अधिक दबाव डाला। चरित्र विकास के साथ जब कहानी कला में भाव वस्तु को भी उसके अनुरूप ही प्रमुखता मिली, तब इसके रचना-विधान में और भी नये नये प्रयोग हुए और होते जारहे हैं। विशुद्धतः आज की कहानी कला चित्रकला के समीप आती जारही है। जिस तरह चित्र कला के माध्यम से अनेक आधुनिक वाद—प्रतीक वाद, रूपविधानवाद, अभिव्यंजना-वाद और प्रभाववाद आदि अभिव्यक्त हो रहे हैं, ठीक यही कार्य आज कहानी कला से भी लिया जाने लगा है।

—२—

कुमारी डी० शान्ता एम० ए०

यद्यपि 'रानी केतकी की कहानी' कथावस्तु की दृष्टि से मौलिकता की श्रेणी में ही आती है फिर भी किशोरीलाल गोस्वामी जी की 'इन्दुमती' ही हिन्दी की सर्व प्रथम मौलिक कहानी मानी जाती है जिस पर शेक्सपियर के 'टेंपेस्ट' की छाप स्पष्ट है।

इसके बाद बङ्ग महिला की 'दुलाई वाली' कहानी प्रति-दिन की साधारण घटनाओं को प्रधानता देती हुई हिन्दी कहानी क्रम के विकास की एक और सीढ़ी प्रदर्शित करती है। यथार्थवादी चित्रण से साधारण घटना को भी प्रभाव-शाली बनाना ही 'दुलाई वाली' कहानी की विशिष्टता है।

आधुनिक कहानी का प्रारम्भ दो उद्गमों से होता है। प्रथम का उल्लेख ऊपर हो चुका है जो प्रतिदिन की साधारण घटना को यथार्थवादी चित्रण से प्रभावशाली बनाता है। दूसरा है प्राचीन आख्यानक नीतियों, प्रेमाख्यानक काव्यों, खण्डकाव्यों और नाटकों के अनुकरण पर गद्य में कहानी के रूप में रचना करना। प्रथम रचना शैली से यथार्थवादी कहानियों का और द्वितीय प्रकार की रचना से आदर्शवादी कहानियों का प्रादुर्भाव हुआ। प्रथम कोटि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्गत, प्रेमचन्द, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा आदि और द्वितीय कोटि में प्रसाद, चण्डीप्रसाद, हृदयेश आदि का नाम उल्लेखनीय है। यहीं से उद्देश्य की दृष्टि से हिन्दी कहानी दो भागों में विभक्त हो जाती है।

प्राचीन कहानियों में कथा का क्रमिक विकास दैव घटनाओं के संयोग द्वारा हुआ करता था। प्रेमचन्द इस विकास क्रम में परिवर्तन उपस्थित करते हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में कथानक का विकास दैव घटना-संयोग से नहीं, वरन्, चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से किया। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक चित्रण ही कहानी के प्राण हो गये।

कहानी के तृतीय विकास में कलाकार महान सत्य की व्यञ्जना करता हुआ दिखायी देता है। सुदर्शन कृत 'कमल की बेटी' इसी श्रेणी की कहानी है जिसमें प्राचीन पौराणिक सत्य का प्रतिपादन मिलता है।

कहानी क्षेत्र में प्रसाद एक नयी प्रगति को लेकर उपस्थित होते हैं। ऐसे कथानकों का आधार जीवन की प्रतिदिन की घटना नहीं वरन् लेखक की कल्पना शक्ति ही है।

आधुनिक हिन्दी कहानी को लक्ष्य में रख कर हम उसको इन प्रधान विभाजनों में विभक्त कर सकते हैं जैसे कि चरित्र प्रधान, वातावरण प्रधान, कथानक प्रधान और कार्य प्रधान। प्रथम कोटि के सर्व श्रेष्ठ लेखक श्री प्रेमचन्द हैं। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी भी इसी कोटि की सुन्दर रचना है।

द्वितीय कोटि की रचना के अन्तर्गत प्रेमचन्द के साथ-साथ प्रसाद तथा उनके वर्ग के लेखक आते हैं, 'शतरञ्ज के खिलाड़ी', 'आकाश दीप', 'बिसाती' आदि इसी कोटि की कहानियाँ हैं। श्री सुदर्शनजी ने अपनी वातावरण प्रधान कहानियों में कवित्वपूर्ण भावनाओं का कवित्वपूर्ण भाषा में चित्रण न कर के यथार्थवादी भावनाओं को यथार्थ वातावरण में चित्रित किया है। कला की दृष्टि से इन कहानियों का महत्व कम नहीं है।

तीसरी कोटि की कहानी साधारण श्रेणी की ही कहानी हैं, फिर भी इसमें उच्च कोटि की कहानियाँ पाई जाती हैं। ऐसे कथाकारों के अन्तर्गत ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गोविन्द वल्लभ पन्त आदि आते हैं, पन्त जी का 'मिलन मुहूर्त' इसका सुन्दर उदाहरण है जिसमें वातावरण और चरित्र-चित्रण दोनों का सामञ्जस्य हुआ है।

चौथी कोटि की कहानियों में कार्य पर अधिक जोर दिया जाता है जिसके अन्तर्गत जासूसी कहानियाँ आती हैं।

शैली की दृष्टि से भी आधुनिक कहानी बहुत प्रगति कर चुकी है जिनमें चार शैलियाँ प्रधान हैं—वर्णनात्मक शैली, संलाप शैली, आत्म चरितात्मक शैली और पत्र लेखन की शैली। डायरी प्रणाली में कहानियाँ बहुत कम पाई हैं।

जब हम हिन्दी की आधुनिकतम कहानी पर दृष्टि डालते हैं तो उस पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है जो अमेरिका और फ्रेञ्च साहित्य से हो कर पड़ा है। एडगर एलेन पो ने सर्व प्रथम कहानी की रूप रचना को उपन्यास से भिन्न बताया और वस्तु का नियोजन तथा लक्ष्य की एकता और अनन्यता पर जोर दिया।

हिन्दी की आधुनिक कहानी पर दूसरा प्रभाव फ्रेञ्च कहानी लेखकों द्वारा नियोजित नाटकीय उपकरण का है। वस्तु, स्थान, और काल का नाटकीय सङ्कलन त्रय कहानी में भी चरितार्थ किया गया और नया नियम यह बना कि कहानी एक ही पात्र, एक ही घटना और एक ही भाव को लिये चले, यद्यपि इस नये नियम का पालन पूर्ण रूप से नहीं किया गया, फिर भी इसके फल स्वरूप कहानी कला में कतिपय परिवर्तन हुए। कहानी की वस्तु का विन्यास इस प्रकार किया जाने लगा कि कथा के बीच में घटना का उत्थान, चरमावस्था, और पतन दृष्टिगोचर होने लगे और पात्रों का चरित्र चित्रण नाटकीय ढङ्ग से होने लगा। इस प्रकार घटना और पात्र अन्योन्याश्रित बना दिये गये। घटनाओं में तीव्रता और प्रभावोत्पादकता की मात्रा अधिक रहने लगी और कहानी के देश काल विशेष पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

इस प्रकार आज की हिन्दी कहानी बाहरी प्रभावों से प्रभावित होकर भी अपनी मौलिकता बनाये हुए है और उसी में उसका महत्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलनात्मक अध्ययन

कहानी और उपन्यास, कहानी और एकाङ्की, कहानी और निबन्ध

प्रो० वासुदेव एम० ए०

पिछले ७०-८० वर्षों में गद्य का उतना सर्वाङ्गीण विकास हुआ जितना पहले कभी न हुआ था। गद्य-साहित्य के इन अङ्गों के विकास से यह बात स्पष्ट है कि आज का साहित्यकार जहाँ एक ओर विश्लेषण-बुद्धि से काम लेने लगा है वहाँ दूसरी ओर साहित्य की टेकनीक, रूप-विधान तथा शैलियों के चमत्कार-प्रदर्शन में अधिक अनुराग रखता है। हिन्दी के आधुनिक गद्य-लेखकों की प्रवृत्तियाँ इसी ओर झुकी हैं। अत्यधिक अप्रासंगिक बातों का उल्लेख न कर मैं कहना चाहूँगा कि हिन्दी का गद्य-साहित्य विश्व गद्य-साहित्य के साथ होड़ करने में आज अपनी समस्त शक्तियों के साथ प्रयत्नशील है। यद्यपि आधुनिक हिन्दी गद्य में उपन्यास और कहानी को छोड़ कर गद्य के अन्य अङ्गों का अभी उतना विकास नहीं हो सका है तथापि एक सुधी विद्यार्थी और सजग आलोचक को कहानी साहित्य का अध्ययन करते समय अन्य साहित्याङ्गों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। आज के साहित्य में कहानी ने अपना अडोल स्थान बना लिया है। इसमें भविष्य की बड़ी-बड़ी संभावनायें छिपी हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में कहानी-कला को ध्यान में रखते हुये तथा गद्य-साहित्य के कुछ प्रमुख अङ्गों के साथ उसकी संगति, समता तथा विषमता दिखलाते हुये उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। कहानी की तुलना गीतिकाव्य, इतिहास, खण्डकाव्य, संस्मरण, रेखा-चित्र इत्यादि से भी की जाती है पर मैंने यहाँ उपन्यास, एकाङ्की और निबन्ध को ही कहानी के तुलनात्मक अध्ययन का लक्ष्य बनाया है। इसका कारण यह है कि कहानी और उपन्यास, कहानी और एकाङ्की तथा कहानी और निबन्ध में जितना सीधा सम्बन्ध, जितनी समीपी समानता और जितना सूक्ष्म अन्तर है उतना गद्य-साहित्य के अन्य अङ्गों के साथ नहीं।

कहानी और उपन्यास—

कहानी की परिभाषा और उसके वास्तविक स्वरूप को स्थिर करते समय यह स्वाभाविक प्रश्न होता है कि कहानी और उपन्यास में कितनी समानतायें और कितनी विषमतायें हैं। यह प्रश्न और भी उग्र हो उठता है जब कुछ लोग यह कहने लगते हैं कि "कहानी उपन्यास का लघु-रूप है।" उपन्यास के किसी एक अध्याय को कहानी का रूप दिया जा सकता है। यदि दोनों में कोई अन्तर है तो इतना ही कि "कहानी एक लघु कथा है और उपन्यास एक विस्तृत आख्यान।" इस दृष्टि से "कहानी उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण है।" साहित्य के सर्व-साधारण पाठकों के बीच कहानी और उपन्यास का यही स्थूल अन्तर बहुत अधिक प्रचलित या प्रचारित है। अंग्रेज आलोचक विलियम हडसन ने तो यहाँ तक कहा है—"Short story is the comming form of fiction and ultimately it will displace the novel entirely." इसी बात को आचार्य गुलाबराय ने कुछ प्रकारान्तर से इस प्रकार कहा है—"कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अप्रजा है और नये रूप में उसकी अनुजा। वृत्त या कथा-साहित्य की वंशजा होने के कारण कहानी और उपन्यास दोनों में कई बातों की समानता है। दोनों ही कलात्मक रूप से मानव जीवन पर प्रकाश डालते हैं।" यहाँ यह प्रश्न होता है कि क्या कहानी छोटा उपन्यास है या उपन्यास बड़ी कहानी? आचार्य गुलाबराय ने इस प्रश्न का उत्तर एक दृष्टान्त के सहारे दिया है—"ऐसा कहना वैसा ही असङ्गत होगा जैसा चौपाये होने की समानता के आधार पर मेंढक को छोटा बैल और बैल को बड़ा मेंढक कहना। दोनों के शारीरिक संस्कार और सङ्गठन में अन्तर है। बैल यदि चार पैरों पर समान बल देकर चलता है तो मेंढक उछल-उछल कर रास्ता तय करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।"* इन तर्कों के आधार पर कहानी को उपन्यास का 'Comming form' कहना उचित नहीं।

उपन्यास और कहानी के विषय और उद्देश्य में जो भी समानताएँ हों लेकिन दोनों की वास्तविकता को समझने के लिए आधुनिक कहानी की प्रगति से अवगत होना आवश्यक है। कहानी कला अपने स्वतन्त्र रूप में इतनी अधिक प्रगति करती गई कि उसकी स्वतन्त्र सत्ता को विद्वानों ने एक मत होकर अन्तिम मान्यता दे दी है जब तक आधुनिक कहानी का जन्म न हुआ था तब तक इसका अस्तित्व विवाद का विषय बना रहा। यूरोप में १९ वीं शताब्दी तक (हमारे यहाँ प्रथम महायुद्ध तक) कहानी को लोग 'कथा', 'आख्यायिका', 'आख्यान', तथा लोक-कथा का पर्याय मानते रहे। सम्राक टी० शिपले (T. Shipley) ने महान् कृति 'Dictionary of word literture' (पृ० ५२२) में इस विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है लिखा कि 'It is the 19th century that the narrative from currently known as 'Short Story' emerged....Most story of the 19th century continued to be loosely constructed. The very term 'Story' was seldom employed, short narratives being generally called 'Tales', 'Sketches', 'Viquettes' or even 'Essays' etc. यही बात हिन्दी साहित्य में द्विवेदी-युग तक होता रही। जिस तरह १९ वीं शताब्दी में योरोपीय विद्वान छोटी कहानी को Tales, Sketches, Viquettes, Essays का पर्याय मानते रहे उसी तरह हमारे देश में भी सन् १५ तक छोटी कहानी को प्राचीन आख्यायिका, कथा, लोक-कथा आदि का आधुनिक संस्करण मानते रहे। यह धारणा बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ी कि लोग कहानी को उपन्यास का लघु रूप मानने लगे। आधुनिक विश्व के गद्य साहित्य में उपन्यास और कहानी का ही अत्यधिक विकास हुआ, इसीलिए कहानी की आन्तिम टकराहट उपन्यास से हुई। परन्तु आज यह बात स्पष्ट हो गई है कि कहानी और उपन्यास दोनों साहित्य की स्वतन्त्र सृष्टियाँ हैं जिनके रूप, प्रभाव, शैली और उद्देश्य में महान् अन्तर है। कहानी को उपन्यास का 'लघु रूप' कहने का समय अब नहीं रहा। आधुनिक विश्व के गद्य साहित्य में कहानी को आज जो निर्विघ्न और निर्द्वन्द्व स्थान मिला है वह उसकी एकान्त प्रगति और स्वतन्त्र सत्ता-शक्ति का परिचायक है। आज न तो बाह्य दृष्टि से और न आन्तरिक दृष्टि से उपन्यास और कहानी में समानताएँ रह गई हैं। डॉ० श्रीकृष्णलाल ने ठीक ही लिखा है कि 'कहानी उपन्यास का छोटा रूप नहीं है, वरन् यह उससे एक सर्वथा भिन्न और स्वतन्त्र साहित्य रूप है।'

स्थूल दृष्टि से उपन्यास और कहानी के मूल अन्तर स्पष्ट हैं लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से दो बातें ऐसी हैं जिनके प्रकाश में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कहानी की अपनी सीमाएँ हैं, उनमें दूसरों का अनधिकार प्रवेश नहीं हो सकता है इसी तरह उपन्यास के अपने दायरे हैं। उसकी भी अपनी मर्यादायें हैं। दोनों के अस्तित्व पर अब कोई आतङ्क नहीं रहा। जब था, तब था। इन पँक्तियों में मैं अपनी पुस्तक 'हिन्दी कहानी और कहानीकार' से कुछ उद्धरण देकर उपन्यास और कहानी के मूल अन्तर को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। "पहली बात यह है कि कहानी में जहाँ जीवन की एक झलक दिखलाने की चेष्टा की जाती है वहाँ उपन्यास में जीवन की विशद् और विषम परिस्थितियों का चित्रण होता है। उपन्यासकार वह शिकारी है जो अपने निशाने की चिड़ियों के साथ उनके आस-पास में बैठी हुई दूसरी चिड़ियों तथा उसके आस-पास के दृश्य, वातावरण, जहाँ तक उसकी दृष्टि जा सकती है, का निरीक्षण करता है। इसके विपरीत, कहानीकार धनुर्विद्या-विशारद वीर अर्जुन की तरह अपने निशाने को अचूक बनाने के लिए केवल पक्षी की आँख को और ज्यादा-से-ज्यादा सिर को, जिसमें आँख स्थित है, लक्ष्य कर तीर छोड़ता है। कहानी और उपन्यास में यही मूल अन्तर है। दूसरी बात यह कि कहानी में जहाँ व्यक्ति या चरित्र के किसी एक पहलू या व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है वहाँ उपन्यास में उसका विकास

* काव्य के रूप, पृष्ठ २०६-२२६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। अतएव, अंग्रेज-आलोचक हडसने के शब्दों में यह ठीक ही कहा गया है कि 'In short story character is revealed, not developed'. कहानी में चरित्र की अभिव्यक्ति (Revelation) होती है और उपन्यास में उसका विकास। दोनों में तात्विक अन्तर का यही मूल कारण है। ऐसी हालत में कहानी 'उपन्यास की अनूजा' या 'Coming form of fiction' नहीं कहा जा सकता।

कहानी और उपन्यास में जो मौलिक भेद है वह है शिल्प-विधान (Technique) का। "वातावरण का विस्तार, जीवन की अनेकरूपता, प्रासङ्गिक कथाओं के तारतम्य के कारण कथा-प्रवाह का बहुशाखा होकर अन्त की ओर अग्रसर होना, पात्रों का बाहुल्य आदि बातें जो उपन्यास में श्लाघ्य या कम-से-कम क्षम्य समझी जाती हैं, कहानी में अग्राह्य हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त कहानीकार अपने पाठक को अन्तिम संवेदना तक शीघ्रातिशीघ्र ले जाता है और एक साथ पर्दा उठाकर सजी-सजाई झाँकी की मोहक एवं आकर्षक छटा से मनोमुग्ध कर देता है। वह बीच-बीच में रहस्योद्घाटन नहीं करता, एक दो संकेत चाहे कर दे, किन्तु अन्तिम क्षण तक बात को पेट में पचाये रखता है।" कहानीकार यदि संश्लेषक है तो उपन्यसकार विश्लेषक। दोनों का अन्तर बिलकुल स्पष्ट है। हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द ही पहले कथाकार थे जिन्होंने उपन्यास और कहानी के इस सूक्ष्म तथा बारीक अन्तर को भली-भाँति समझने और समझाने की सक्रिय चेष्टा की थी। उन्होंने कहा था—'कहानी एक ऐसा उद्यान नहीं है जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल, बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।' इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि कहानी का स्वरूप और उसकी परिभाषा उपन्यास की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है। दोनों साहित्य की नितान्त नूतन और सर्वथा भिन्न कलात्मक सृष्टियाँ हैं। कहानी गीतिकाव्य की तरह हमारी संवेदनात्मक रागात्मक वृत्तियों को जितना अधिक स्पन्दित करने में समर्थ होती है उतना उपन्यास नहीं। कहानी की लोक-प्रियता का यह भी एक कारण है।

कहानी और एकांकी—

आजकल हिन्दी साहित्य में एकांकी नाटकों की धूम है। इसके अनेक कारण हैं। एक तो आधुनिक युग की कार्य-व्यस्तता के कारण पाठकों का समयाभाव; दूसरा, लेखकों का जीवन के एकांगी पक्षों के प्रति एकांताग्रह। वर्तमान विश्व साहित्य में कहानी और एकांकी ने अपना अचल और अडिग स्थान बना लिया है। पिछले ४०–५० वर्षों में इनकी जितनी माँग बढ़ी है उस अनुपात में साहित्य के अन्य अंगों की नहीं हुई। वास्तव में, कहानी और एकांकी विश्व गद्य साहित्य के विकास की संभवतः अन्तिम परिणतियाँ हैं। साहित्यकार की सूक्ष्मदर्शी विश्लेषण-बुद्धि विकसित होते-होते कहानी और एकांकी रूप पहुँचकर गद्य साहित्य के चरम-विकास की सूचना दे चुकी है। हिन्दी में आधुनिक कहानियों और एकांकियों का उदय २० वीं शताब्दी में ही संभव हुआ। अतः हिन्दी एकांकी और कहानी का इतिहास उनकी किशोरावस्था का जीवन-भर है। पर इस थोड़े से ही समय में साहित्य के इन दो महत्वपूर्ण अंगों ने जिस तेज रफ्तार में अपना रास्ता तय कर अपनी महत्ता और शक्ति का परिचय दिया है वह आश्चर्य जनक और प्रशंसनीय है। हर वर्ष हिन्दी कहानियों और एकांकियों की माँग बढ़ती जा रही है और पहले की अपेक्षा इनकी खपत सन्तोष जनक है। प्रश्न यह है कि इनकी लोक प्रियता का कारण क्या है? विज्ञान के इस युग में जबकि मनुष्य थोड़े समय में अधिक-से-अधिक ज्ञान-लाभ करना और अपना मनोरंजन करना चाहता है, वह ऐसे ही साहित्य की माँग करता है जिससे उसके दैनिक जीवन की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में थोड़ी-बहुत सहायता मिल सके। आज का साधारण पाठक पेट को भोजन, मन को शांति और मस्तिष्क को नये ज्ञान-विज्ञान से भरना चाहता है। जो साहित्य थोड़े समय में ये सामग्रियाँ जुटा सके, वह उपकारी और उपयोगी होता है। कहानी और एकांकी सर्व साधारण पाठकों की बढ़ती हुई इस माँग को पूर्ति करते हैं। यही कारण है कि साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा इनकी (कहानी और एकांकी) लोक प्रियता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता और उपयोगिता दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। कहानी और एकाङ्की की रचना तभी होती है जब मन का संवेग मस्तिष्क के वेग से मिलकर, एकाकार होकर, समाजोपयोगी भावों की नूतन सृष्टि करता है। यदि ऐसा न होता तो साहित्य का लक्ष्य पूरा नहीं होगा। एक एकाङ्की-लेखक (प्रो० काश्यप) ने अपने एकाङ्की नाटकों ('परमाणु बम', 'कवि-प्रिया' आदि) को 'कवित्व की नाटकीयता' की संज्ञा दी है, कहा है: 'कवित्व की नाटकीयता के अभाव में जीवन के घूर्णित भावों को सन्तोष नहीं मिल पाता। नाटकीयता का प्रस्फुटन यों तो बिना कवित्व के हो सकता है किन्तु भाव-सौष्ठव की गरिमा नहीं निखर पाती।' (कवि-प्रिया, पृ० ३) प्रश्न यह होता है कि क्या नाटक लिखने के लिये कवि होना अनिवार्य है? क्या यह आवश्यक है कि कहानीकार अथवा एकाङ्कीकार अपनी ऊर्ध्वमुखी रागात्मक प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति का पथ दे ही? इस प्रश्न के उत्तर में मैं यह कहना चाहूँगा कि जहाँ तक उद्देश्य का प्रश्न है, कहानीकार हो या एकाङ्कीकार, उसे वस्तुवादी व्यावहारिक दृष्टि अपनानी ही पड़ती है। कहानी और एकाङ्की की रचना की मूल प्रेरक-शक्ति समाज है न कि लेखक का अन्तर्मुखी मन या अवचेतना। यह काम तो उनका है जो भावुक, स्वप्निल और कल्पनाजीवी है—एक विशुद्ध छायावादी कवि। छाया से हम कुछ देर के लिए अपना मन भले ही बहला लें लेकिन वह सत्य नहीं। एक धोखा है, अतः उससे बचना ही होगा। इस विवेचन का निष्कर्ष यह है कि अपने मूल उद्देश्य में कहानी और एकाङ्की की एकता और एकरूपता स्वयं सिद्ध है। दोनों की दृष्टियाँ सामाजिक और बहिर्मुखी होती हैं। दोनों का एकही लक्ष्य है: सामाजिकों की संवेदनाओं को जागृत करता हुआ मस्तिष्क में हिलोर पैदा करना। कवि और कहानीकार—एकाङ्कीकार में जो तात्विक भेद है वह यह कि "कवि अपने अहम् की भावनाओं को शेष-सृष्टि के साथ मिलाकर देखता है। उसकी व्यक्तिगत अनुभूति या तो उस वातावरण से टकरा पड़ती या कहीं मेल खा जाती है। जहाँ वह मेल खा जाती है वहाँ वह हर्षित-पुलकित हो अपनी भावना को गान के रूप में अभिव्यक्त कर देता है, जहाँ उसकी भावनाओं के साथ वातावरण टकरा जाता है, वहाँ वह खीझ उठता है, फुँफकार उठता है या फिर अपने मन की एक अलग दुनिया बसाने में तल्लीन हो जाता है। इसके विपरीत कहानीकार अथवा एकाङ्कीकार सृष्टि नहीं, सृष्टि के सामाजिक जीवन के साथ अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करता है। उसमें पैठ कर वह वहाँ की असंगतियों, अभावों, अभियोगों और समस्याओं पर दृष्टिपात करता है। इसलिए कहानीकार या एकाङ्कीकार के लिये यथार्थता का प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है। उसका चित्रित लोक जितना ही यथार्थ होगा उसका कला उतनी ही सफल मानी जायेगी। इससे यह स्पष्ट है कि कहानीकार और एकाङ्कीकार को वस्तुनिष्ठ होना पड़ता है। जहाँ कवि की सफलता अधिकाधिक आत्मनिष्ठता पर निर्भर करती है वहाँ कहानीकार-एकाङ्कीकार की सफलता वस्तु-निष्ठता में निहित होती है। इससे यह तात्पर्य नहीं निकालना चाहिए कि दोनों—कवि और कहानीकार एकान्त भाव से अपने-अपने क्षेत्र में कीलित रहते हैं। नहीं, दोनों में मात्रा का अन्तर होता है। कवि भी वस्तुनिष्ठ हो सकता है और कहानीकार या एकाङ्कीकार भी आत्मनिष्ठ हो सकता है, पर प्रमुख रूप में वह ऐसा नहीं होगा। इन अप्रासङ्गिक बातों के लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि उद्देश्य और वर्ण्य-विषय की दृष्टि से एकाङ्की और कहानी का एक ही लक्ष्य है। सच तो यह है कि अपने मूल रूप में कहानी और एकाङ्की में विषमताओं के लिये कम-से-कम गुञ्जाइश है। डॉ० नगेन्द्र ने एकाङ्की की जिन आवश्यकताओं पर प्रकाश डाला है वे कहानी के लिये भी अनिवार्य हैं। डा० सत्येन्द्र ने उनके कथन का सारांश इस प्रकार दिया है—

विस्तार की सीमा कहानी जैसी।
जीवन का एक पहलू, एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त क्षण।
एकता, एकाग्रता, आकस्मिकता की अनिवार्यता।
सङ्कलन त्रय उतना अनिवार्य नहीं।
प्रभाव और वस्तु का ऐक्य अनिवार्य।
स्थान और काल की एकता अनिवार्य नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सांकेतिक पंक्तियों में एकाङ्की के लिये जिन आवश्यक बातों का निर्देश किया गया है, लगभग सभी कहानी के लिए भी अनिवार्य हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि कहानी और एकाङ्की के दृष्टिकोणों में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन जहाँ तक उसकी टेकनीक और रूप-रचना तथा शैली का प्रश्न है वहाँ दोनों में बहुत बड़ा भेद पड़ जाता है। डॉ० सत्येन्द्र के शब्दों में 'एकाङ्की कहानी नहीं है।' वास्तव में बात भी कुछ ऐसी ही है। साहित्य के विद्यार्थी को उनके सूक्ष्म भेदों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। एकाङ्की का प्राण कथोपकथन है : यह जितना ही संक्षिप्त, मर्मस्पर्शी, वाग्वैदग्धपूर्ण और चरित्र की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करने वाला होगा एकाङ्की उतना ही सफल सिद्ध होगा। कहानी के लिए कथोपकथन कोई आवश्यक तत्व नहीं है। दूसरी बात यह है कि एकाङ्की की रचना में रङ्गमञ्च की सुविधाओं को ध्यान में रखना पड़ता है। कहानीकार का रङ्गमञ्च पाठकों का हृदय है जिस पर वह अपनी तूलिका से भावों को मांसल तथा बाचाल चित्र रूपों में उतारता जाता है। इस दृष्टि से कहानी लेखक की स्वतन्त्रता एकाङ्की लेखक की अपेक्षा अधिक है। तीसरी बात संकलन-त्रय संबंधी है जिसमें मतभेद की गुञ्जाइश बहुत अधिक है। कहानी और एकाङ्की में सङ्कलन-त्रय का प्रश्न विवादास्पद है। चूँकि दोनों में कथानक का संकोच अधिक होता है इसलिये सङ्कलन त्रय का सिद्धान्त दोनों के लिये उपयोगी हो सकता है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि व्यर्थ की बातों का समावेश न हो सकेगा। संकलन-त्रय प्रभाव की एकता (unity of Impression) और रस-निष्पत्ति में भी सहायक हो सकता हैं। फिर भी यह कोई अनिवार्य तत्व नहीं है। यह तो उनके लिये है जो कहानी या एकाङ्की लिखने का प्रारंभिक प्रयास करते हैं। फिर भी यह कहना अत्युक्ति न होगी कि एकाङ्की नाटकों में स्थान और काल की एकता का प्रश्न एक आवश्यक प्रश्न है। एकांकी की अपनी सीमाएँ हैं। उसे उन सीमाओं में सिमट कर रहना ही पड़ता है। उस पर रङ्ग-मञ्च की सुविधाओं और अभिनय-कला की आवश्यकताओं का बाहरी नियंत्रण है। यह नियंत्रण आदेश के रूप में एकाङ्की कला पर सदैव शासन करता रहता है। इसीलिये एकाङ्कियों में संकलन-त्रय के सिद्धान्त की विशेष चिन्ता एकाङ्की-लेखकों को करनी ही पड़ती है। इसके विपरीत कहानीकार पर इस प्रकार का कोई भी बाहरी दबाव नहीं है। वह तो आकाश का स्वतंत्र पंछी है, उसके लिये सभी द्वार उन्मुक्त हैं। उसकी पहुँच सभी जगह है। वह चाहे तो संकलन-त्रय के सिद्धान्त को माने या न माने, उसकी मर्जी। लेकिन एकाङ्कीकार को स्वाभाविक सीमाओं के आदेशों को मानना ही पड़ता है। अतः कहानी की अपेक्षा एकाङ्की स्वतन्त्र टेकनीक वाला साहित्य का एक भेद है।

कहानी और निबन्ध—

आधुनिक साहित्य में निबन्ध एक कला है। उसका भी एक स्वतन्त्र अस्तित्व है। आधुनिक गद्य की अंतिम मञ्जिल निबन्ध है जहाँ गद्य अपनी परिपक्वता का प्रमाण-पत्र देता है। निबन्ध और कहानी के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता इसलिये पड़ी कि प्रभाव और विस्तार की दृष्टि से आधुनिक कहानी निबन्ध के बहुत निकट आ गई है। निबन्ध से मेरा तात्पर्य यहाँ वैयक्तिक निबन्ध (Personal essay) से है। जिस तरह एक अच्छे वैयक्तिक निबन्ध में जीवन का पूरा चित्र उपस्थित नहीं किया जाता उसी प्रकार कहानी में भी जीवन का खंड-चित्र उपस्थित किया जाता है। दोनों में किसी विशेष मनोरञ्जक, चित्ताकर्षक एवं प्रभावशाली दृश्य अथवा पक्ष का चित्र उतारा जाता है। इस चित्र का विस्तार भी संक्षिप्त होता है। कभी-कभी कहानी और निबन्ध का सम्बन्ध इतना गहरा हो जाता है कि असली रूप का पता भी नहीं चलता। अंग्रेजी में चार्ल्स लैम्ब के निबन्ध और हिन्दी में महादेवी के संस्मरण। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध (अशोक के फूल) कुछ इतने प्रभावशाली और चित्ताकर्षक हैं कि यह समझ में नहीं आता कि उन्हें निबन्ध कहा जावे या कहानी। वैयक्तिक निबन्ध आज संस्मरण का नूतन रूप लेता जा रहा है। वह दिन दूर नहीं जब संस्मरण और वैयक्तिक निबन्ध कहानी में अन्तर्भुक्त हो जायेंगे। पिछले २०-३० वर्षों में कहानी ने अपने रूपों को व्यापक बना कर निबन्ध और संस्मरण को भी अपनी सीमा-मर्यादा में ले लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उसके विकास का स्वस्थ चिह्न है। कहानी की तरह निबन्धों में भी संवेदनाओं को उद्बोधन देने की पर्याप्त शक्ति होती है। उनमें हृदय की रागात्मक वृत्तियों को मुँह खोलने का अवसर मिलता है। कहानी की भाँति निबन्ध में भी अतीत के सुनहले सपनों को साकारता प्रदान की जाती है। ये समानतायें हैं जो कहानी और निबन्ध को एक-दूसरे के निकट लाती हैं। लेकिन इसके विपरीत कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनसे उनके अन्तर का भेद खुलता है। निबन्ध की शैली अधिकतर वर्णनात्मक होती है। स्वाभाविक वर्णन कर देना निबन्ध का एक भारी गुण है। लेकिन कहानी की शैली विश्लेषणात्मक है। चरित्र के मन और परिस्थितियों का जितना मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होगा कहानी का आकर्षण और प्रभाव बढ़ेगा। दूसरी बात यह कि वैयक्तिक निबन्ध की रचना के पीछे, सामान्यतः एक सामूहिक मानवीय-चेतना होती है जो सर्व-साधारण के लिए पहेली बनी होती है। कहानी की सामान्य-चेतना सामाजिक तथा पारिवारिक है। यही कारण है कि निबन्धों की अपेक्षा कहानी सर्व-साधारण पाठक को अधिक आकृष्ट करती है। निबन्धों की उतनी खपत भी नहीं होती जितनी दैनिक जीवन में कहानियों की होती है। कहानी की लोकप्रियता का मूल कारण यही है कि वह सामाजिकों की सामाजिक भूख को, सामाजिक सामग्रियों को जुटा कर शान्त करती है। निबन्ध के पाठक परिष्कृत बुद्धि वाले व्यक्ति होते हैं। महादेवी, रामचन्द्र शुक्ल तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्धों को समझने के लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता होगी। लेकिन प्रेमचन्द, कौशिक आदि की कहानियाँ सरलता के साथ समझ ली जाती हैं। बौद्धिक गम्भीरता निबन्ध को पठनीय नहीं बनने देती, इसलिए कि उसके सामाजिक तत्वों का समावेश पर्याप्त और सन्तोषजनक नहीं होता। इन बातों के अतिरिक्त निबन्ध में कल्पना को पंख फैलाकर शेष संसार में उड़ान भरने का उतना अवसर भी नहीं मिलता जितना कहानी को प्रायः मिला करता है।

इसके अतिरिक्त एक बात और है। 'किसी ने निबन्ध को हँसी हँसी में ज्ञान-वितरण' 'किसी मजेदार और बहुश्रुत व्यक्ति के भोजनोत्तर एकान्त सम्भाषण की संज्ञा दी है।' निबन्ध की इस विशेषता से यह बात स्पष्ट है कि निबन्ध ज्ञान-गङ्गा है जिसमें कोई भी डुबकी लगाकर कुछ ज्ञान-धर्म अर्जित कर सकता है। लेकिन शर्त यह है कि वह 'ज्ञान' भी रोचक हो। रोचकता तो कहानी की भी एक महत्वपूर्ण शर्त है लेकिन वह (कहानी) इस बात की प्रतिज्ञा नहीं करती कि वह अपने पाठकों को किसी ज्ञान-गङ्गा में स्नान करायेगी ही। किसी को ज्ञान का मोती कहीं मिल जाये यह दूसरी बात है लेकिन ज्ञान अथवा उपदेश दिलाने का वह कोई वादा नहीं करती।

निबन्ध और कहानी में एक दूसरा अन्तर भी है। अच्छे निबन्धों में लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है लेकिन कहानी में इसकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है लेकिन कहानी में लेखक के व्यक्तित्व का आभास मिलता है, प्रकट नहीं होता। 'जिस निबन्ध में वर्ण्य विषय तो हो किन्तु व्यक्ति नदारद हो वह सच्चे अर्थ में निबन्ध नहीं। सच्चा निबन्ध-लेखक वर्ण्य-विषय का उतना प्रस्फुटन नहीं करता जितना वह अपने व्यक्तित्व को प्रस्फुटित करता है।'* कहानी में बिलकुल उलटी बात है। यहाँ वर्ण्य-विषय ही प्रधान और व्यक्ति गौण होता है।

उपरिलिखित पंक्तियों में मैंने कहानी की तुलना साहित्य के उन्हीं अङ्गों से की जिनका सम्बन्ध एक दूसरे के निकट है। कहानी के वास्तविक स्वरूप को अच्छी तरह समझने के लिये यह आवश्यक है कि कहानी और गीति-काव्य, कहानी और इतिहास, कहानी और कथा, आख्यायिका, लोक कथा, नीति कथा, इत्यादि के पारस्परिक सम्बन्धों और उनकी विषमताओं को समझा जाये। तभी हम कहानी के महत्व का सही मूल्याङ्कन कर सकेंगे।

* समीक्षायण, प्रो० कन्हैयालाल सहल, पृ० ११५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्द और उनके बाद की कहानियाँ

डा० हरदेव बाहरी एम० ए०, डी० लिट्० (प्रयाग वि० वि०)

[१]

आधुनिक कहानी-कला के अग्रदूत मुंशी प्रेमचंद सन् १९१६ में हिंदी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। सन् १९३६ में उनका देहान्त हो गया। इन बीस वर्षों में उन्होंने हिन्दी को लगभग ४०० कहानियों का दान दिया। 'सप्त सरोज' उनका पहली कहानी-संग्रह था और 'कफन और दूसरी कहानियाँ' अंतिम। आधी से अधिक कहानियाँ १९३० और १९३६ के बीच में लिखी गईं और इस काल की कहानियाँ भाव तथा कला की दृष्टि से उत्कृष्ट मानी गई हैं। वैसे तो उनकी पहली हिन्दी कहानी 'पंच परमेश्वर' ने ही एक नये युग की सूचना दी, लेकिन आरंभिक काँल की सभी कहानियों का स्वरूप आधुनिक नहीं कहा जा सकता। कुछ कहानियाँ तो निश्चित रूप से खत्री और गहमरी की कहानियों की परम्परा में रखी जायेंगी। उनमें रोमांचकारी घटाओं और कुतूहलपूर्ण घटना चक्रों का समावेश हुआ है, जैसे 'शूद्र' अथवा 'डामुल का कैदी' में। लेकिन ये प्रेमचंद की प्रतिनिधि कहानियाँ नहीं हैं। उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं—'पंचपरमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'इस्तीफा,' 'कफन', 'नशा', 'समर-यात्रा', 'पूस की रात', 'प्रेम का हृदय', 'अलगोझा', 'दो भाई', 'गृहदाह', 'शांति', 'बड़े घर की बेटी', 'मुक्तिधन', 'सुभागी', 'दफ्तरी', 'आत्माराम', 'शंखनाद', 'बूढ़ी काकी', 'परीक्षा', 'उद्धार', 'धिक्कार', 'स्त्री और पुरुष', 'माता का हृदय', 'मा' इत्यादि। इस प्रकार की लगभग ५० कहानियाँ विश्व के किसी साहित्य के समकक्ष रखी जा सकती हैं।

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के कथानक प्रत्येक क्षेत्र से लिए। यह उनका बहुत बड़ा महत्व है। उन्होंने सब तरह की कहानियाँ लिखी हैं—धार्मिक कहानियाँ, जैसे 'बासी भात में खुदा का साझा; सामाजिक कहानियाँ, जैसे 'मृतक भोज', 'शांति', 'सद्गति' आदि; पारिवारिक कहानियाँ, जैसे 'घर-जमाई', 'दो भाई' और 'बैर का अन्त'; राजनैतिक कहानियाँ, जैसे 'रियासत का दीवान', 'जुलूस' और 'इस्तीफा'; नैतिक कहानियाँ, जैसे 'न्याय' और 'दूध का दाम'; प्रेम-कहानियाँ, जैसे 'विद्रोही' और 'कैदी', ऐतिहासिक कहानियाँ, जैसे 'वज्रपात', 'सारंधा' आदि; मनोवैज्ञानिक कहानियाँ, जैसे 'नशा', 'कफन' और 'बड़े भाई साहब'; भावात्मक कहानियाँ जैसे 'पंच परमेश्वर' और 'पूस की रात' एवं प्रतीकात्मक कहानियाँ जैसे 'अग्नि समाधि'।

प्रेमचन्द से पहले पारिवारिक और ग्रामीण जीवन की कहानियाँ हिन्दी में उपलब्ध नहीं हैं। ग्राम की पीड़ित-शोषित जनता के साथ उन्हें हार्दिक सहानुभूति थी। उनकी आधे से अधिक कहानियाँ ग्रामीण जीवन सम्बन्धी हैं। राजनीति में वे रमे हुए थे। स्वाधीनता आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था—अतः देश-प्रेम उनमें कूट-कूट कर भरा था। समाज-सुधार करते हुए भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा करने की उनकी प्रबल इच्छा थी। मानव-मन का उन्होंने गहरा अध्ययन किया था—वे दुनियादार थे, अनुभवी थे। अतः इन विषयों पर उनकी कहानियाँ पूर्णतया सफल हैं। इन क्षेत्रों से बाहर की प्रायः कहानियाँ सफल नहीं कही जा सकतीं, जैसे 'डिमांस्ट्रेशन', 'उन्माद', 'ढपोरसंख', 'मोटेराम', 'कुत्सा', 'कायर', 'आहुति', आदि।

प्रेमचन्द की एक विशेषता ऐसी है जो न पहले हिन्दी के किसी कहानीकार में थी, न बाद में आ पाई—वे अपने युग के प्रतिनिधि थे। उत्तर प्रदेश के राजा-जमींदार से लेकर रङ्क-कंगाल तक और गाँव की झोंपड़ी से लेकर नगर की वैभवशाली अट्टालिका तक का पूरा परिचय उनकी कहानियों से प्राप्त होता है। उनकी सर्वग्राहिणी दृष्टि हिन्दू-मुसलमान, किसान-मजदूर, महाजन-बनिया, महंत-पुरोहित, पटवारी-पुलिस, क्लर्क-मुन्शी, नर-नारी, माँ-बेटी, विधवा-समस्या, वेश्या, बूढ़े बच्चे, शोषित-शोषक—सब पर पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पात्रों, कार्यों, व्यापारों, दृश्यों और कथानकों की इतनी विविधता अन्यत्र नहीं मिलती।

प्रेमचन्द की एक और विशेषता है उनकी मनोवैज्ञानिक अनुभूति। उनकी सर्वोत्तम कहानियाँ वही समझी गई हैं जो चरित्र-प्रधान हैं। उनसे पहले कुछ इनी-गिनी कहानियाँ इस स्तर की थीं। अधिकतर कहानियाँ अमानुषिक-अति-मानुषिक, प्राकृतिक-अतिप्राकृतिक घटनाओं से परिपूर्ण थीं। मनोवैज्ञानिक यथार्थता एवं वास्तविकता सर्वप्रथम प्रेमचन्द की कहानियों में ही एक प्रधान तत्व के रूपमें दृष्टि-गोचर होती है। उनकी प्रत्येक कहानी में एक प्रधान घटना का आयोजन तो रहता ही है; यहाँ तक कि उनकी ऐसी कहानियों में भी जिनमें विचार और बुद्धिवाद की प्रधानता हो गई है जैसे 'नैराश्य', 'लीला' तथा 'स्त्री और पुरुष' अथवा भावपूर्ण कहानियों में जैसे 'कायर', 'पूस की रात' और 'घासवाली' में घटना सूत्र अवश्य रहता है। जिन कहानियों में प्रेमचन्द ने पात्रों का चरित्र-परिवर्तन कर दिया है, वे प्रायः स्वाभाविक नहीं हैं। इनमें आदर्शवाद यथार्थवाद पर गालिब हो जाता है—देखिये 'दीक्षा', 'पशु से मनुष्य' आदि। उनका मन्तव्य था कि प्रत्येक कहानी में एक ऊँचा नैतिक सन्देश अवश्य होना चाहिए। कहानियों में जो कोई समस्या उठाई गई है, उसका हल बताना प्रेमचन्द ने आवश्यक माना है। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियाँ निरुद्देश्य नहीं लिखीं। उनका यथार्थ आदर्शोन्मुख है।

प्रेमचन्द का कहानी कहने का ढङ्ग बहुत ही रोचक और लोक-प्रिय है। वे सर्वसाधारण के लिये लिखते थे और सर्वसाधारण की ही वर्णनात्मक शैली में लिखते थे। यह शैली उन्हें लोककथाओं से प्राप्त हुई थी—एक था राजा और एक थी रानी। कहीं परिपार्श्व का चित्रण करते हुए, कहीं पात्रों की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए, एवं सम्भाषण में प्रामाणिकता तथा पात्रानुकूलता लाते हुए वे कहानी में स्थानीय रङ्ग भरते चलते हैं। घटना एक ही लेते हैं जिसकी चरम सीमा प्रायः किसी चामत्कारिक स्थल पर होती है। जिस कहानी में कोई समस्या लेते हैं उसका समाधान भी किसी प्रभावोत्पादक घटना के द्वारा करते हैं। उनके कथोपकथन चुस्त और स्वाभाविक होते हैं। कहीं-कहीं हास्य और व्यंग्य के छींटे छोड़ते जाते हैं। जगह-जगह टीका-टिप्पणी के रूप में सूक्तियों द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि करते चलते हैं। कथा की नैतिक भूमि इन सूक्तियों से तैयार होती है। उनकी शैली की सर्वविदित विशेषता उनकी भाषा है—बहुमान्य जनभाषा—जिसके कारण प्रेमचन्द को पढ़ने और समझने वालों की संख्या बहुत अधिक रही है।

[२]

प्रेमचन्द-युग में ही प्रेमचन्द की शैलियों का विकास और प्रचलन हुआ हो, यह बात नहीं है। आज तक उनके बीसियों अनुयायी विद्यमान हैं। समकालीन कहानीकारों में कौशिक, सुदर्शन, राधाकृष्ण, राधिकारमण प्रसाद सिंह, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि अनेकों के नाम लिये जा सकते हैं जिन्होंने प्रेमचन्द की तरह यथार्थ और आदर्श का समन्वय किया, चरित्र-चित्रण को अधिक प्रधानता दी, कहानी में आकस्मिक घटना और दैव-संयोग का सहारा लिया, भाषा और वर्णन का प्रचलित रूप अपनाया और संयम, श्लीलता तथा शक्ति के साथ अपनी विषय-वस्तु का विवेचन किया। इन्हें प्रेमचन्द का अनुयायी नहीं कहा जा सकता, सहयोगी कहना उपयुक्त होगा। इन सब ने अपनी कहानियों का घटनाक्षेत्र और उनका निर्वाह, अपने-अपने ढङ्ग से किया है। कौशिक और सुदर्शन ही को ले लें। इन्होंने शहरी जीवन का चित्रण उपस्थित किया है। इनकी कहानियों के पात्र प्रायः निम्नवर्ग के न होकर मध्य वर्ग के हैं। कौशिक की सम्भाषण शैली तथा सुदर्शन की भावपूर्ण चित्रमय शैली का अपना निजी स्थान है। इनकी कुछ उत्कृष्ट कहानियाँ प्रेमचन्द की उत्कृष्ट कहानियों की अपेक्षा निश्चय ही अच्छी हैं। कौशिक की 'ताई', 'उद्धार', 'माता का हृदय', 'प्रमाद', 'इक्केवाला' और 'छोटा भाई', तथा सुदर्शन की 'हार की जीत', रक्षाबन्धन', 'पाप-परिणाम', 'राजपूताने का प्रायश्चित', उच्चकोटि की कहानियाँ हैं। उनकी 'कवि की स्त्री' आत्म-शैली की कहानियों में और 'न्याय-मन्त्री' ऐतिहासिक कहानियों में सर्वश्रेष्ठ है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियों में 'सन्तरे का छिलका', 'मिठाई वाला', 'प्रलोभन' आदि अनेक कहानियों में विशिष्ट परिस्थितियों का अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर चित्रण हुआ है।

प्रेमचन्द के अनुयायिओं में जनार्दनप्रसाद झा द्विज, मोहनलाल नेहरू, सत्यजीवन वर्मा, श्रीनाथसिंह, कृष्णानन्द गुप्त, पृथ्वीनाथ शर्मा, वाचस्पति पाठक, होमवती देवी, उषादेवी मित्रा, कमला त्रिवेणी शङ्कर आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इनकी कहानियों में विषय और घटना अथवा चरित्र की विविधता तो है, परन्तु कला या प्रभाव की दृष्टि से इन्हें द्वितीय कोटि में रखा जाता है। इनमें जनार्दनप्रसाद झा द्विज की 'सबूत' और 'दुखिया', सत्यजीवन वर्मा की 'मुनमुन' और 'पड़ोसिन', श्रीनाथसिंह की 'किशोरी' और 'पति का पुनर्जन्म', कृष्णानन्द गुप्त की 'करीम मर गया' और 'शिल्पी', वाचस्पति पाठक की 'सूरदास' तथा कुछ अन्य कहानियाँ सफल हैं।

प्रेमचन्द गद्यकार थे। उन पर प्रसाद की भावपूर्ण शैली का प्रभाव नहीं के बराबर है। प्रसाद की परम्परा हमें गोविन्दवल्लभ पन्त की 'जूठा आम' तथा 'मिलन मुहूर्त', सुदर्शन की 'हार की जीत', सियारामशरण गुप्त की 'कोटर और कुटीर' तथा 'मानुषी', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'झलमला', विनोदशङ्कर व्यास की 'दीपदान' तथा 'हाथी के दाँत', चण्डीप्रसाद हृदयेश की 'उन्माद', 'प्रेम-परिणाम' और 'योगिनी' में मिलती है। कहानी की लोकप्रियता से आकृष्ट होकर पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा आदि अनेक कवि इस क्षेत्र में उतरे। इनमें सबसे अधिक सफलता भगवतीचरण वर्मा को प्राप्त हुई है। महादेवी की संस्मरणात्मक कहानियों में संवेदना और ममता, एवं निराला की कहानियों में परिहास और व्यंग्य तो है, पर प्रायः इनमें कथा-अंश बहुत कम होता है। इन कवि-कहानीकारों की कहानियों में भावात्मकता और सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ रस-सञ्चार तो होता है, पर कहानी-कुतूहल की परितुष्टि नहीं होती।

प्रेमचन्द ने सामाजिक कहानियाँ तो लिखीं और रूढ़ियों पर व्यंग्य भी किये, पर उनकी कहानियों में विद्रोह और कटुता नहीं है। इस तरह की कहानियाँ पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री, सुभद्राकुमारी चौहान, भगवतीचरण वर्मा आदि बाद के लेखकों द्वारा लिखी गईं। साम्यवादी लेखकों में यह प्रवृत्ति वाद के रूप में विकसित हुई। सामाजिक कहानियों में चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की 'कमीनों की जिन्दगी', होमवती की 'गोटे की टोपी', अमृतराय की 'इतिहास', उग्र की 'हमारा समाज', 'बलात्कार', अश्क की 'चरत', 'रसपान' और 'केवल जाति के लिए' एवं रांगेय राघव की 'साम्राज्य का वैभव' नाम की कहानियाँ अच्छी कोटि की हैं।

राजनीति के क्षेत्र में प्रेमचन्द के बाद अनेक हलचलें हुईं—१९३९ में सत्याग्रह, १९३९ से १९४५ तक महायुद्ध, १९४२ में विद्रोह, १९४५ में आजाद हिन्द फौज का मामला, १९४७ में स्वतन्त्रता-प्राप्ति, इत्यादि। इन सब की प्रतिध्वनि हिन्दी कहानी साहित्य में हुई है। तारापाण्डे की 'दारोगा की बेटी' और अज्ञेय की 'छाया' तथा 'द्रोही' का सम्बन्ध सत्याग्रह से है। जैनेन्द्र की 'एक रात' में देशभक्ति का स्वर है।

कुछ ऐतिहासक कहानियाँ भी अच्छी कोटि की लिखी गई हैं, परन्तु बहुधा कहानियों की विचारधारा आधुनिक ही है। वृन्दावनलाल वर्मा और चतुरसेन शास्त्री ने राजपूत काल की, भगवतशरण उपाध्याय ने प्राचीनकाल की शुद्ध ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं। यशपाल के 'ज्ञान दान' और रघुवंश के 'छायातप' संग्रह में कई यथार्थवादी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं।

प्रमचन्द गम्भीर प्रकृति के साहित्यकार थे। उन्होंने एक दो हास्यरसपूर्ण कहानियाँ लिखी तो हैं, पर वे बहुत निम्नकोटि की हैं। जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियों में सुरुचि और साहित्यिकता की कमी है। हास्य-व्यंग्यमय चित्रण निराला की 'सुकुल की बीवी' और 'चतुरी चमार', शिवपूजनसहाय की 'कहानी का प्लाट', बेढब बनारसी की 'बनारसी एक्का' और 'इण्टरव्यू', अन्नपूर्णानन्द की 'अकबरी लोटा' और 'दावत की अदावत', शिक्षार्थी की 'अंग्रेजी सुहागरात' और 'नई कला', अश्क की 'चरत' और 'बैंगन का पौधा' एवं हरिशङ्कर शर्मा, केशवचन्द्र वर्मा, आदि की कहानियों में सफलता से हुआ है।

प्रेमचन्द गान्धीवादी थे, पर वाद में बँधकर उन्होंने कहानियाँ नहीं लिखी थीं। इधर यशपाल और पहाड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मार्क्सवादी), चन्द्रकिरण, सौनरेक्सा (भौतिकवादी), गोपाल नेवटिया (मर्यादावादी), आदि ने सिद्धान्तवादी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें नारेबाजी और प्रोपेगेण्डा बहुत ज़ोरों से हुआ है। साम्यवादी लेखकों की कहानियों में यह स्तर बहुत ऊँचा है। इन कहानियों में साहित्यिकता और स्थायित्व का अभाव है।

[३]

प्रेमचन्द के बाद की कहानियों की दो बड़ी-बड़ी विशेषतायें हैं—प्रथम, मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता और दूसरे, बौद्धिकता। मनोविज्ञान के दो रूप इन कहानियों में परिलक्षित होते हैं—१-अन्तर्संघर्ष और २-प्रतीकत्व। अन्तर्संघर्ष द्वारा व्यक्ति और समाज की अनेक समस्याओं का विश्लेषण किया जाता है। समाज की प्रतिक्रिया व्यक्ति पर और व्यक्ति की समाज पर इसी के द्वारा विवेचित होती है। जैनेन्द्र की 'एक रात', और 'चलित-चित्र', इलाचन्द्र जोशी की 'अभिनेत्री', अज्ञेय की 'कड़ियाँ', रायकृष्णदास की 'प्रसन्नता की प्राप्ति', नरोत्तमप्रसाद नागर की 'वर्जित प्रदेश' आदि इस प्रकार की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों का चित्र विशेषतया मार्मिक होता है। नारी के हृदय का स्वस्थ विवेचन अनेक कहानियों में सुन्दरता से किया गया है, जैसे अज्ञेय की 'रोज', जैनेन्द्र की 'पत्नी' और 'भाभी', भगवतीचरण वर्मा की 'पराजय अथवा मृत्यु' में। ऐसी कहानियाँ बड़ी पेचीदा और बोझिल होती हैं। साधारण पाठक इनसे बिदकते हैं। मनोरञ्जन इनका उद्देश्य ही नहीं है। इन पर फ्रायड का प्र[illegible] मन की चेतन, अचेतन, अवचेतन और उससे भी गहरी अवस्थाओं का विश्लेषण करके कई कहानी कारों ने साहित्य को मनोविज्ञान (शास्त्र) बना दिया है।

मनोविज्ञान का दूसरा पहलू समाजवादी कहानियों में प्रकट हुआ। व्यक्ति का महत्त्व कम हुआ और समाज का अधिक। इन कहानियों में व्यक्ति समाज का प्रतीक है। व्यक्ति को लेकर ही समाज का चित्रण उपस्थित किया जाता है, जैसे जैनेन्द्र की 'टाइप' में। कभी-कभी मनुष्येतर प्राणी को लेकर मनुष्य की भावनाओं का चित्रण होता है, जैसे यशपाल की 'पुलिस की दफा' में अथवा कमलाकान्त की 'पगडण्डी' में।

बौद्धिकता भी मनोविश्लेषण ही का एक पक्ष है। प्रेमचन्द के बाद की अधिकतर कहानियाँ मस्तिष्क-प्रधान हैं। इनकी शैली में भावना की, इनके पात्रों में भावुकता की और विषय-वस्तु में रस-प्रधान तत्त्व की कमी है। अज्ञेय, पहाड़ी, सौनरेक्सा, अमृतराय, रांगेय राघव, तेज-बहादुरसिंह चौधरी, रामचन्द्र तिवारी आदि अनेक लेखकों की कहानियाँ इसी तरह की हैं। इन कहानियों में निबन्ध-शैली का समावेश हुआ है।

इधर २-३ वर्षों से कहानी की शैली के सम्बन्ध में नये प्रयोग हुए हैं, परन्तु अभी तक इनमें स्थायित्व नहीं आ पाया इसलिए इन के सम्बन्ध में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता।

परीक्षार्थी प्रबोध भाग १, २, ३

तैयार हैं। यह सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा, व साहित्य रत्न तथा हिन्दी की बी० ए०, एम० ए० की परीक्षाओं के लिये एक अनोखी पुस्तक है। मूल्य प्रत्येक का ३) ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेगा।

प्राप्तिस्थान—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के प्रमुख कहानीकार

श्री त्रिलोचन पाण्डेय

भारतीय साहित्य की परंपरा में कहानी-नितान्त उपेक्षित तो नहीं पर उसके वर्तमान स्वरूप पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट है फिर भी वह नितान्त विदेशी प्रभाव मात्र नहीं। अब उसका साहित्य विशेष अपने पैरों पर खड़ा है, उसके प्रमुख कलाकार अपनी विशिष्ट प्रवृत्तियों से अलग अलग झलक उठते हैं। उनका वर्ग भी निर्धारित हो सकता है। विशेषताओं के आधार पर उनका विवेचन प्रस्तुत निबंध का प्रतिपाद्य विषय है।

वर्गीकरण का आधार है—जो कहानीकार जिस विषय पर अधिक लिख सका है वह उसी वर्ग-विशेष का माना जायेगा चाहे उसने अल्प संख्या में अन्य विषयों भी अपना लिए हों। एक ने किसी विषय पर २० कहानियाँ लिखी हैं, दूसरे विषय पर १५, तीसरे विषय पर ७, तो उसका प्रमुख विषय पहला माना जायेगा, चाहे दूसरे व तीसरे विषयों पर मिला कर कहानियों की संख्या पहले से बढ़ जाय। स्थूल वर्गीकरण कुछ ऐसा होगा—

१—जो कहानीकार किसी पौराणिक या ऐतिहासिक विषय लेकर चले हैं।

२—जिन्होंने सामयिक विषयों पर लिखा है—इसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक आदि सभी विषय आ जायेंगे।

३—जिन्होंने मनुष्य की अन्तः प्रवृत्तियों को कहानी का आधार बनाया है, उसके विश्लेषण में तत्पर हुए हैं।

४—हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानीकार, वैसे इनके विषय उपर्युक्त वर्गों में आ जाते हैं, पर इन तत्वों पर ही अधिक ध्यान रखने से स्वतंत्र वर्ग समीचीन है।

घृणा, प्रेम, क्रोध आदि शाश्वत विषयों पर स्वतन्त्र वर्ग नहीं माना जा सकता, क्योंकि इनका विवेचन एक तो सभी ने किया है, फिर किसी विषय का वर्णन करते समय किया है, स्वतन्त्र साध्य नहीं है। विषय-प्रधानता ही कथाकार का विशिष्ट वर्ग निर्धारित करेगी। इस आधार पर उदाहरणतः प्रेमचन्द दूसरे वर्ग में आयेंगे। इसी प्रकार और कहानीकारों का वर्ग निश्चित होगा।

प्रेमचन्द का सर्व प्रमुख कहानीकार होना निर्विवाद है। उनका ध्येय रहा है—आदर्शोन्मुख यथार्थवाद। जिसका परिचय—"यह ठीक है चिड़िया आसमान में उड़ती है पर दाना चुगने के लिए उसे जमीन पर ही आना पड़ता है।" वाले वाक्य से हो जाता है। उन्होंने लगभग ४०० कहानियाँ लिखी हैं जिनका 'प्रेमचन्द-उनकी कला' में डा० सत्येन्द्र जी ने वर्गीकरण करने की चेष्टा की है। उनमें कुछ हैं—'रानी सारंधा', 'सुजान भगत', 'आत्माराम', 'नमक का दारोगा', 'पूस की रात', 'प्रतिध्वनि', 'पंच परमेश्वर', 'धोखा,' 'बड़े भाई साहब', 'परीक्षा', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'सेवा मार्ग' आदि। उनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं—

१—कहानियों में भारतीय जीवन का प्रत्येक पक्ष लिया है। डा० हजारीप्रसाद जी ने ठीक ही लिखा है—"प्रेमचन्द के अध्ययन से सारा उत्तरी भारत जाना जा सकता है। झोंपड़ी से महलों तक, बैंकों से गाँवों तक, अमीरों से कृषक तक, पंचायतों से धारा सभाओं तक समाज के प्रत्येक वर्ग में आचार-विचार, रहन सहन, व्यवहार का परिचायक इनसे बड़ा कोई नहीं।"

२—कहानियों में उपर्युक्त वातावरण, कौतूहल, चरित्र चित्रण, मानसिक भावों का विश्लेषण बहुत सुन्दर है। उसमें प्रवाह है जो पात्रों का रंग निखार देता है। अनुभूति बड़ी व्यापक है।

३—साथ ही अभिव्यक्ति-कौशल बड़ा प्रभाव पूर्ण है। सरल से सरल, गूढ़ से गूढ़ भावों की व्यंजना करने में प्रेमचन्द अपना सानी नहीं रखते। सजीवता तो निरन्तर है ही।

४—हास्य की अपेक्षा व्यंग्य अधिक है क्योंकि संघर्ष में जूझते हुए कलाकार की वाणी से वह स्वरूप बदल गया है।

५—भाषा मुहावरेदार और बड़ी सशक्त है। प्रचलित सरल रूप रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गुलेरी' जी की तीन कहानियाँ हमारे सामने हैं—'उसने कहा था', 'बुद्धू का काँटा', 'सुखमय जीवन'। इनके आधार पर उनकी विशेषतायें हैं—कला सङ्गठन का पूर्ण ज्ञान, प्रौढ़ता, परिपक्वता। लेखक निर्दिष्ट वस्तु को ध्वनित करता है, व्यक्त नहीं करता। चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक है, सूक्ष्म है। व्यंग्य, विनोद का पुट यथा-स्थान है। 'शीर्षक' बहुत उपयुक्त हुये हैं और सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वातावरण सृष्टि में भी वे दक्ष हैं। भाषा भावों के अनुकूल है, देशज शब्दों द्वारा उसका प्राह्य रूप रखा है।

'प्रसाद' पहले कवि हैं तब कथाकार। अधिकांश कहानियाँ बौद्ध-कालीन घटनाओं को आधार बना कर चली हैं। 'आकाश दीप', 'पुरस्कार', 'ममता', 'इन्द्रजाल', 'मधुवा', 'देवदासी', 'हिमालय का पथिक', 'गुण्डा' आदि प्रसिद्ध हैं। कुल ६६ हैं।

१—कहानियों में कल्पना का माधुर्य है। कहीं आरम्भ में प्रकृति का मनुष्यों की प्रकृति से साम्य दिखाते हुए चले हैं—"आद्रा नक्षत्र, आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़ जिसमें देव दुन्दभी का गम्भीर घोष। प्राची के निरभ्र कोने से स्वर्ण पुरुष झाँकने लगा। देखने लगा महाराज की सवारी ·····नगर तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चमरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा, वहाँ हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें लेने लगा।"

२—पात्रों पर विवेक का बन्धन रहता है, यथार्थ के पक्ष में भी हैं पर भाव-प्रधानता उन्हें मनुष्य कोटि से ऊपर उठा देती है।

३—चित्रण, कथोपकथन बड़े सजीव व नाटकीय हैं—प्रसाद नाटककार ही तो थे! अन्तर्द्वन्द भी है किन्तु उसे वर्णन करने का प्रयत्न अधिक है।

४—आरम्भ और अन्त दोनों ही मुख्य घटना से सम्बद्ध हैं। अन्त होने पर पाठक एक निश्चित विचारधारा में मग्न हो जाता है।

५—भाषा संस्कृत तत्सम प्रधान है जिसका परिचय उपर्युक्त उद्धरण से हो जाता है।

कौशिक की प्रधान कहानियाँ हैं—'उद्धार', 'विधवा', 'रक्षाबन्धन', 'इक्केवाला', 'ताई', 'पगली' आदि। 'दुबे जी की चिट्ठियाँ' भी आपकी कहानियों का संग्रह है।

१—कहानियों में पारिवारिक जीवन के चित्र अधिक हैं।

२—पात्र गहरी चोट खाकर तिलमिला उठते हैं। वे संक्षेप-प्रिय हैं, आवश्यकता से अधिक विस्तार नहीं करते।

३—शैली, कथोपकथन स्वाभाविक मार्मिक हैं।

४—हास्य सुरुचिपूर्ण है और दैनिक समस्याओं पर होता है।

५—वाक्य छोटे और चुस्त होते हैं। समाप्त होने पर भी गूँजते रहते हैं, जैसे—"तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई—मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया।"

'सुदर्शन' उर्दू से हिन्दी में आये। कहानियाँ हैं—'हार की जीत', 'न्यायमन्त्री', 'एथेन्स का सत्यार्थी', 'मजदूर', 'अठन्नी का चोर', 'सन्यासी' आदि।

१—वर्णन अत्यन्त सुन्दर हुये हैं। रहस्य का उद्घाटन होता है पर कौतूहल बना रहता है। आदर्श भी साथ-साथ लगा चलता है।

२—कथोपकथन नाटक सा आनन्द देते हैं—भावों का विश्लेषण कुछ कम है।

३—भाषा में जोर है और कहीं बड़ी तीखी हो जाती है। सूक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं। वाक्य हैं, शब्द सरल हैं।

'जैनेन्द्र' का एक विशेष स्थान है। कहानियाँ हैं—'हत्या', 'चोर', 'तमाशा', 'परदेशी', 'ग्रामोफोन का रेकर्ड', 'अन्धे का भेद', 'त्रिवेनी' आदि।

१—कहानियाँ विचार प्रधान हैं। उनमें सूक्ष्मता है।

२—सांस्कृतिक भावना, अहिंसा का प्रभाव अधिक है।

३—पात्र प्रायः समस्या बन जाते हैं। कथोपकथन कहीं सैद्धान्तिक हो जाने से उलझन उत्पन्न करते हैं।

४—मनोवैज्ञानिक कहानियों का उन्हें प्रतिनिधि लेखक कहा जा सकता है। अन्तर्द्वन्द्व का उद्घाटन बड़ा कौशलपूर्ण होता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को पकड़ कर व्यक्त कर देना इनकी विशेषता है।

५—भाषा सरल, सुव्यवस्थित तथा कुछ लाक्षणिक प्रयोग लिए होती है। उसमें एक एक शब्द का अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान होता है।

'उग्र' जी की कहानियाँ हैं—'देशभक्त', 'बुढ़ापा', 'अछूत', 'उसकी माँ' आदि। कहानियों में समाज का उद्घाटन प्रायः प्रधान है। रूढ़ियों का विरोध, राष्ट्रीय भाव मुख्य हैं। वातावरण उपयुक्त तथा सटीक होता है। हास्य, आलोचना यथा स्थान मिलती है। कुछ कहानियाँ अश्लील-सी हैं पर मुक्त रहने पर कलापक्ष सुन्दर रहा है।

'भगवतीप्रसाद वाजपेयी' की मुख्य कहानी हैं—'अज्ञा', 'मिठाई वाला', 'सूखी लकड़ी' आदि। ये आदर्श-यथार्थ का मिश्रित रूप लेकर चले हैं। जीवन से प्रेरणा लेकर भावों तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण किया है। निरपेक्ष रह कर दूर से चित्र उतारने में आप बड़े पटु हैं। व्यवहारिकता द्वारा चित्रण सजीव हो जाता है। भाषा चलती हुई है।—"मिठाई वाला निकट आ गया। बोला—माँ कितनी मिठाई दूँ ? सभी तरह की मिठाइयाँ हैं; रङ्ग बिरङ्गी, कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी और जायकेदार। बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे बड़े चाव से चूसते हैं। इन गुणों के सिवा ये खाँसी को भी दूर करती हैं। कितनी दूँ ? चपटी, गोल और पहलदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।" छोटे छोटे वाक्य ही इसके प्राण हैं।

'भगवतीचरण वर्मा' की प्रमुख कहानियाँ हैं—'प्रायश्चित', 'उत्तरदायित्व', 'दो बाँके', 'एक शाम', 'प्रेजेण्ट्स', 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' आदि।

१—ऐतिहासिक सत्य की व्यञ्जना नवीन प्रणाली से है।

२—वस्तु प्रायः विनोदपूर्ण रहती है, कथोपथन व वातावरण द्वारा उसे आकर्षक बनाया जाता है।

३—विस्मय, कौतूहल तत्व भी यथा स्थान रहते हैं। पाठकों को उक्ति-वैचित्र्य देख कर बड़ा आश्चर्य होता है।

४—भाषा स्वतन्त्र तथा मुहावरेदार होती है।

'चतुरसेन शास्त्री' की कुछ कहानियाँ हैं—'दुखवा मैं कासों कहौं मोर सजनी', 'दे खुदा की राह पर', 'पानवाली', 'भिक्षुराज' आदि।

१—कहानियों के पात्र 'टाइप' अधिक हैं, व्यक्तित्व-प्रधान कम।

२—वर्णन विशद व स्वाभाविक होता है। उपयुक्त चित्रण वातावरण के साथ बड़ा आकर्षण उत्पन्न करता है, स्थायी प्रभाव अवश्य पड़ता है।

३—घटना प्रधान रहती है, नाटकीय लाघव मिलता है।

४—भाषा मुहावरेदार, सशक्त होती है। उसकी प्रौढ़ता, गति बड़ी मर्मस्पर्शी होती है।

'रायकृष्णदास' की प्रमुख कहानियाँ हैं—'भग्न भूत', 'बीज की बात', 'अन्तःपुर का आरम्भ', 'सम्राट का स्वत्व' आदि।

१—कहानियों में भावतत्व प्रधान है, संक्षिप्तता का गुण भी है। समाज का चित्रण उनमें कम मिलता है।

२—जीवन का चित्रण सूक्ष्म होता है, कलात्मक अधिक होता है। अन्तर्द्वन्द्व दिखाने में सफल रहे हैं।

३—भाषा परिमार्जित, अलङ्कार युक्त होती है। तत्सम रूप मुख्य है। शैली आकर्षक है।

चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ने कथा-साहित्य को एक नवीन शैली दी। शृङ्गार उसमें मुख्य है कहानियों की पृष्ठभूमि सामाजिक है, वातावरण गूढ़ होता है। कहानियों में बुद्धिवाद की प्रधानता इनकी देन है। अलंकरण प्रधान है—"यामिनी और उषा के अन्तिम आलिङ्गन में समय, स्मृति और प्रत्यक्ष की क्षणिक सन्धि के अवसर पर स्वर्ग और संसार के निमेष व्यापी मिलन के मुहूर्त में स्वप्न और सत्य के 'चुम्बन-व्यापार' के क्षण में चन्द्रशेखर ने किशोरी का कान्त दर्शन प्राप्त किया था।"

हास्य रस की कहानियों में दो प्रमुख लेखक हैं—जी० पी० श्रीवास्तव और अन्नपूर्णानन्द। इधर 'भुशुण्ड' द्वारा 'चिमिरखी' शीर्षक से हिन्दी में सर्व-श्रेष्ठ कहानियों की एक पैरेडी भी निकली है जिसमें ६ पैरेडी हैं। श्रीवास्तवजी की कुछ कहानियाँ हैं—'जवानी के दिन', 'लम्बी दाढ़ी', 'गुदगुदी', 'लतखोरीलाल' आदि।

१—कहानियों में हास्य मुख्य है, विषय सामाजिक, या व्यक्ति सम्बन्धी हैं। चित्रण अत्यन्त वास्तविक व सजा है।

२—शीर्षक कहानी को सूत्र रूप में छिपाए रखता है।

३—वर्णन, कथोपकथन बड़े सजीव होते हैं, कहीं कहीं अतिरेक भी अवश्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—भाषा बोलचाल की मुहावरेदार है, शब्द कहीं चित्र-सा खड़ा कर देते हैं। "दिन भर टालते ही बीता। पानी पीने, पान खाने और कमरे से कुछ न कुछ लाने के बहाने घर के भीतर सैकड़ों ही बार गया। मगर उनकी एक भी झलक दिखाई न दी। कभी-कभी उनके ढाँचे पर नजर पड़ भी गई, तो उनके घूँघट के मारे कुछ दाल न गली....।"

इसी परम्परा में ज्वालादत्त शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, वाचस्पति पाठक, सियारामशरण गुप्त आदि अन्य कथाकार भी हैं। श्री विनोदशङ्कर व्यास ने इन कहानीकारों के तीन स्कूल कर दिये हैं—(१) प्रसाद स्कूल (२) प्रेमचन्द स्कूल (३) उग्र स्कूल। उपर्युक्त कथाकार इन्हीं में आ जाते हैं।

'प्रगतिवाद' जिस अर्थ विशेष में प्रयुक्त हुआ है उसके कथाकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं—'यशपाल', 'पहाड़ी', 'रांगेय राघव'। यशपाल की कहानियाँ हैं—'गराडेरी', 'बदनाम', 'जबरदस्ती', 'पराया मुख', 'एक राज' आदि।

१—कहानियों में युग सङ्घर्ष का चित्र प्रधान है। चित्रण यथार्थवादी है। रूढ़ि के प्रति विद्रोह, बौद्धिक विश्लेषण उनमें प्रधान है।

२—मनोवैज्ञानिकता के साथ सभी तत्वों का समाहार लेखक अपनी रुचि के अनुसार कर लेता है।

३—चित्रण कभी तो सारे समाज का होता है, कभी उच्च, मध्यवर्गीय व्यक्तियों का।

४—भाषा सरल व उर्दूपन लिए रहती है। व्यंग्य प्रधान होता है। वैसे यथार्थ चित्रण कुछ विरूप होता ही है।

५—पात्र व्यष्टि के घोंसले से निकल कर समष्टि की धूप में विचरण करते हैं।

पहाड़ी की कहानियाँ हैं—'देश की बात' 'सड़क पर' 'तमाशा', 'जीवन का रहस्य', 'नया मोरचा' आदि। कहानियों में जनता के मार्मिक भावों का प्रकाशन अधिक है। समाज का वातावरण वास्तविक है और दैनिक जीवन का चित्रण उनमें प्रधान है। भाषा सरल है।

कुछ महिला कथाकार भी हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आई हैं। सुभद्राकुमारी चौहान, शिवरानी देवी के अतिरिक्त उषादेवी मित्रा, होमवती, चन्द्रावती जैन, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा आदि ने अपनी कहानियों में सामाजिक चित्रण किया है। संवेदना, आत्मीयता उनमें प्रमुख है।

कहानीकारों द्वारा अब कहानी का स्वरूप अत्यन्त व्यापक हो गया है। अनेक रेखा चित्र, व्यंग्य चित्र, संस्मरण आदि भी उसके अन्तर्गत आ जाते हैं। लेखिकाओं ने अधिकतर जीवन के घरेलू चित्र अधिक अपनाए हैं। लेखक सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित हुए हैं। इधर राजनैतिक, आर्थिक विषयों ने प्रधानतः उनका ध्यान आकृष्ट किया है। लेखकों ने सभी विषय अपनाए हैं। किसी ने जीवन के एक स्वरूप की मार्मिकता स्पष्ट की है, किसी ने विभिन्न संस्कार स्पष्ट किये हैं। कोई ऐतिहासिक आधार लेकर चला है तो कोई नवीन सभ्यता की आड़ में होते हुए पाखण्डों की जड़ उखाड़ने पर कटिबद्ध है। साथ ही कुछ विषय उपेक्षित भी रह गये हैं। शिकार संबंधी कहानियों में एक ही मुख्य नाम है—श्रीराम शर्मा। वीर-सम्बन्धी युद्ध सम्बन्धी विषय लेकर अभी कोई कथाकार प्रसिद्ध नहीं हो सका। वैसे तो नदी का प्रवाह समृद्ध है। किनारे काटता हुआ वृक्ष पत्थर बहाता हुआ चल रहा है। इधर लेखकों की संख्या में यथेष्ट वृद्धि हुई है। लक्षण अच्छे हैं। किन्तु लगता है अभी इनमें कुछ कमी है। कला पूर्णतः मँज नहीं सकी है। गोर्की मोपाँसा जैसे कथाकार अभी दो चार हैं। सूक्ष्मता भी कम है। एक एक शब्द का मूल्य अभी नहीं है। और यह है भी उनका प्रयोग काल। ध्यान इतना रखना है—विषय चाहे जो हो, माध्यम उसका सशक्त होना चाहिए। साथ ही अभिव्यक्ति का कौशल भी अपेक्षित है। जो वे कहें वह व्यक्त न हो, वर्णित न होकर ध्वनित हो। रस सदा व्यंग्य होता है, वाच्य नहीं। श्रेष्ठ कहानी की कसौटी भी यही है और हिन्दी के कथाकारों की सफलता-असफलता भी इसी तथ्य पर निर्भर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की सामाजिक कहानियाँ

डा० ओम्प्रकाश एम० ए०, पी-एच० डी०

जासूसी तथा ऐयारी के साहित्य के साथ हिन्दी कथा-साहित्य का एक युग समाप्त हो गया और अपने आस-पास से कथानक लेकर कहानी कहने की अधिक स्वस्थ प्रवृत्ति का उदय होने लगा। सामाजिक कहानियों के कथानक अतीत से भी सकते हैं तथा वर्तमान से भी; प्रथम को 'ऐतिहासिक' कहा जाता है और द्वितीय को 'सामाजिक'। अन्तर केवल 'काल' का है—अतीत का समाज जिस संस्कृति का चित्र खींचता है ठीक वही चित्र वर्तमान में नहीं मिलता। इसी प्रकार सामाजिक कहानियों में 'देश' का अन्तर भी रह सकता है—हिन्दी की कहानी भारत-बाह्य समाज दर्शन करा सकती है तथा 'शुद्ध भारतीय' समाज का भी। अस्तु 'शुद्ध सामाजिक' कथानक एक ओर तो 'ऐतिहासिक-सामाजिक' कथानक से भिन्न होता है दूसरी ओर 'भौगोलिक सामाजिक' कथानक से। हिन्दी कहानियों में प्रथम दो प्रकार के कथानक तो हैं परन्तु भारतबाह्य चित्रों का अभाव है।

ऐतिहासिक कहानी में सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि यदि लेखक इतिहास का ध्यान रखता है तो कहानी-कला धुँधली होने लगती है और यदि कहानी-कला को निखारा जाय तो ऐतिहासिक वातावरण नहीं जम पाता। अतः अधिकतर लेखक केवल ऐतिहासिक नाम देकर ही अपनी कहानियों में इतिहास का पुट देसके हैं, उनमें इतिहास की सजीवता नहीं ला सके। वस्तुतः यदि इन कहानियों की प्रेरणाओं और उद्देश्यों पर गम्भीर विचार किया जावे तो हमको अन्त में वर्तमान तक आना ही पड़ेगा। हाँ, उपन्यासों में इतिहास तथा कला के इस विरोध का कोई आग्रह नहीं है; क्योंकि उपन्यासकार को वातावरण की सृष्टि में जितना समय और जितना स्थान अपेक्षित होता है उतना वह आसानी से पा सकता है। अस्तु, प्रेमचन्द जैसे सफल कहानीकार भी अपनी ऐतिहासिक कहानियों में उतने सफल नहीं कहे जा सकते; 'नवनिधि' की कहानियाँ इसका प्रमाण हैं। 'वज्रपात', 'परीक्षा', 'सती' आदि में न वह सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययन है न वह स्पष्ट व्यक्तित्व-निरूपण—इनसे कथा की उत्सुकता तो शान्त होती है परन्तु मन पर कला की छाप नहीं रह पाती; 'शतरञ्ज के खिलाड़ी' निश्चय ही सुन्दर है परन्तु उसको किस सीमा तक ऐतिहासिक कहा जायगा, यह विचारणीय है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रसादजी ऐतिहासिक कहानियों में खरे उतरते हैं, परन्तु वे तो थे ही ऐतिहासिक पुरुष, और उनका इतिहास देश का सांस्कृतिक चित्र है न कि किसी काल विशेष का निर्जीव साँचा। अपनी अन्तिम कहानी 'सालवती' में वे आजकल की वेश्या-समस्या पर विचार न करके नारी-जीवन की सनातन भूख का चित्र खींच रहे हैं और उसका उदाहरण उन्होंने अतीत से ले लिया है। 'चित्रमन्दिर' प्रागैतिहासिक युग की कथा है परन्तु उसमें भी "काम और भूख" के पारस्परिक बल को तोलने के लिए यह उदाहरण दिया गया है कि "एक हिरन के न पाने पर एक युवा नर अपनी प्रेयसी नारी को छोड़ कर चला जाता है, उसे भूख है केवल भूख"। अस्तु यह स्पष्ट हो गया कि प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियों में कला ऐतिहासिक चित्रण की उतनी नहीं है जितनी कि मनोवैज्ञानिक चित्रण की। हाँ, इतिहास के सूक्ष्म ज्ञाता होने के कारण वे इन कहानियों में ऐतिहासिकता की भी रक्षा कर सके हैं।

अब 'शुद्ध सामाजिक' कहानियों पर विचार करें। व्यक्ति की सङ्कुचित सीमा से लेकर परिवार की विस्तृत सीमा तथा व्यापक समाज की अपार सीमा तक इसका क्षेत्र है। इस प्रकार इसके तीन वर्ग होंगे—(१) व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित, (२) पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित, तथा (३) व्यापक सामाजिक जीवन से सम्बन्धित। इस लेख में आगे 'सामाजिक' शब्द का व्यवहार 'शुद्ध सामाजिक' (=देश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल की उपाधियों से संयुक्त) के अर्थ में ही करेंगे।

व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सामाजिक कहानियाँ कला का चरम विकास सूचित करती हैं, क्योंकि इनमें समाज का स्थूल आवरण अपना सूक्ष्म प्रभाव दिखलाकर ही छिप जाता है, असली रूप में सामने नहीं आता। इसीलिए इन कहानियों को मनोवैज्ञानिक विशेषण दिया जाता है। व्यक्ति के हृदय में भावनाओं का जो भूकम्प निरन्तर सक्रिय रह कर उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता रहता है उसका स्थूल कारण समाज ही तो है; परन्तु आज की छोटी कहानी में उस स्थूल कारण के चित्रण को अवसर नहीं मिलता, इसलिए उसको सूक्ष्म, अप्रत्यक्ष एवं सांकेतिक बना दिया जाता है। प्रेमचन्द में इस प्रकार की कहानियाँ कम हैं, जहाँ हैं भी वहाँ हास्योन्मुखी हैं, गम्भीर नहीं। जैसे 'बड़े भाई साहब', 'विनोद' या 'लाञ्छन' कहानियों को ले सकते हैं। इनके कथोपकथन हमारे सुपरिचित हैं, इनमें किसी भी सामाजिक या पारिवारिक सत्य का उद्घाटन नहीं है, प्रत्युत है कुछ व्यक्तियों की मनोवृत्तियों का चित्र। 'बड़े भाई साहब' में आयु में बड़ा होने से ही जो उत्तरदायित्व और छोटों के बीच में अपना बड़प्पन दिखाने की व्यर्थ भावना आ जाती है उसी का व्यंग्यमय चित्र है। 'विनोद' आजकल के कालेज जीवन की एक सच्ची तथा गरम घटना है, जिसमें सताये गये व्यक्ति का वातावरण ही उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। 'लाञ्छन' में वही बात पढ़े-लिखे महिला-समाज के विषय में है—बालिकाओं के स्कूलों में पढ़ानेवाली अविवाहित असन्तुष्ट अध्यापिकाओं का दयनीय जीवन। प्रेमचन्द का पाठक अधिक गहरा नहीं जाना चाहता इसलिए वे इन व्यक्ति प्रमुख कहानियों में भी मन के सूक्ष्म स्तरों की खोज उचित नहीं समझते।

प्रसाद के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। अपनी अधिकतर कहानियों में उन्होंने केवल हृदय के रहस्य को सुलझाने का प्रयत्न किया है—'आकाश दीप', 'देवदासी', 'चूड़ीवाली', 'पुरस्कार', 'सलीम'—किसी भी कहानी को लिया जा सकता है। न व्यापक समाज की कोई समस्या है न परिवार की, है केवल 'हृदय के एक दुर्बल अंश' की कहानी। प्रश्न होता है हृदय इतना अविश्वनीय क्यों है? उत्तर बहुत स्पष्ट है कि हृदय का स्वभाव ही विस्तार है, सङ्कोच तो विकार है जो निरन्तर पीड़ा उत्पन्न करता रहेगा। प्रसाद की इन कहानियों में वातावरण तो आजकल का है परन्तु सत्य है शाश्वत; और क्योंकि यह सत्य आजकल के व्यक्ति की अनेक समस्याओं को सुलझा कर आजकल के विषम जीवन को सुखमय बना सकता है, इसलिए इन कहानियों को सामाजिक माना गया है।

कौशिक तथा सुदर्शन प्रेमचन्द की शैली में ही अधिक प्रकट हुए हैं। हाँ, सुदर्शन का 'झरोखे' नाम का संग्रह एक दूसरी प्रणाली का है, परन्तु उसकी 'झाँकियों' को कहानी कहा भी जाय या नहीं—यह विवादास्पद है। जैनेन्द्रजी की कहानियों में वह सूक्ष्मता तो है जो उनको व्यक्ति-प्रमुखता देती है, परन्तु लेखक जितना भावुक है उतना वह पाठक को नहीं बना पाता। उपेन्द्रनाथ अश्क तथा यशपाल दो अलग दिशाओं में पहुँचे हैं; अश्कजी ने रोमांस से रङ्ग लिया है और यशपालजी ने राजनीति से। अश्क की 'ह्वाइट के हिज्जे' कहानी कितनी कोमल है, कितनी मनोवैज्ञानिक! और समाज का कितना सुन्दर चित्र अपनी दयनीयता में उतार सकी है! यशपाल के 'धर्मयुद्ध' में जो 'घटनारञ्जित कहानियाँ' हैं, उनमें सभी व्यक्ति प्रमुख समाज की समस्याओं की झलक दिखाती हैं, 'आत्मिक प्रेम' आजकल के कलाकार का मजाक है तो 'मनु की लगाम' में संस्कारों के आडम्बरों पर चुभता व्यंग्य है—यशपालजी मजाक में जितने सिद्धहस्त हैं उतने गम्भीरता में नहीं।

पारिवारिक कथानकों का जनता में अपेक्षाकृत अधिक स्वागत है; प्रेमचंद जैसे कहानीकार भी यहाँ खूब चमके हैं और स्त्री कहानी-लेखिकाएँ भी। लेखिकाओं ने पाठक को करुण चित्र ही अधिक दिये हैं, परन्तु प्रेमचन्द ने आदर्शों की स्थापना की है। हमारी पारिवारिक समस्याओं का एक प्रमुख कारण है नवीन तथा प्राचीन का समन्वय न होना, पढ़ा-लिखा पति अपढ़ पत्नी से सन्तुष्ट नहीं रह पाता, और शिक्षित पत्नी अपने गृहस्थ पति से सदा झगड़ती रहती है। नवीन शिक्षा से पूर्व हमारा गृहस्थ एक इकाई थी—एक शरीर उसी की सुरक्षा को ध्यान में रखकर व्यक्तियों के लाभालाभ पर विचार किया जाता है, परन्तु आज व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इका ई बस गया है। गृहस्थ का प्रश्न तो तब आवेगा जब व्यक्तियों से कुछ बचे। प्रेमचन्द की 'बड़े घर की बेटी' इस समस्या की एक सफल कहानी है। 'शान्ति' को इसका पूरक कहा जा सकता है। शान्ति जब तक गँवार थी तब तक वह हीरा थी, जब वह नई रोशनी में रम गई तभी उसका पतन होगया, नवीन सभ्यता स्वार्थ सिखाती है और पुरानी त्याग, आनन्दी का कुटुम्ब से विद्रोह देवर के कटु-व्यवहार से भी उकसा है और अपनी स्वार्थ-भावना से भी; उसको शान्ति तभी मिलती है जब वह परिवार के लिए अपने स्वार्थ को ठुकरा देती है। अपनी उपेक्षा करके उसने सबको अपना बना लिया।

प्रसाद जी ने पारिवारिक जीवन पर अधिक समय नहीं लगाया। परिवार की समस्याएँ सामयिक हैं, तथा शाश्वत भी। सामयिक का चित्र प्रेमचन्द में आ चुका, शाश्वत का प्रसाद में देखा जा सकता है। 'नीरा', 'भीख में', 'परिवर्त्तन', 'सन्देह' आदि प्रमाण है। सभी समस्याओं के मूल में दो ही सत्य हैं। पारस्परिक अविश्वास, तथा अतिवाद ('समझौता'—एडजस्टमेन्ट न कर सकना)। सन्देह तथा प्रेम का अभाव जीवन को प्रखर, नीरस तथा भयानक बना देते हैं (नीरा), यदि पत्नी पति पर विश्वास न करे या पति पत्नी के आचरण पर सन्देह करे तो पारिवारिक जीवन सुखी नहीं रह सकता (भीख में), जीवन भर हो जाता है और दूसरे पर अविश्वास करते-करते आत्मविश्वास भी खो जाता है (परिवर्त्तन)।

अश्क की कुछ कहानियाँ पारिवारिक जीवन का अच्छा चित्र खींचती हैं। 'पाप का आरम्भ', 'मर्द का एतबार', आदि में स्त्री-पुरुष के आपसी समझौते की समस्या है। अश्क जी स्त्री के प्रति अधिक सहानुभूति रखते हैं और उसके अपराधों के लिए भी पुरुष को अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराते हैं, उनमें रोमांस भी है तथा करुणा भी। जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में पारिवारिक समस्याएँ एक नया रूप लेकर आई थीं, परन्तु कहानियों में उस छाया का प्रवाह न फूटा। यशपाल के 'पिंजड़े की उड़ान' में 'प्रायश्चित', 'पराई' 'नीरस रसिक' आदि का सम्बन्ध परिवार से है; जो व्यक्ति सहृदय कलाकार बनता है उसकी यह सहृदयता अपनी पत्नी तक क्यों नहीं पहुँच पाती! (नीरस रसिक) कदाचित् इसलिए कि जो अपनी है उसमें कोई आकर्षण शेष नहीं रह जाता (पराई)। यशपाल की विचार धारा पश्चिम से बहुत अधिक प्रभावित है। वे दाम्पत्य-प्रेम को शुद्ध भौतिक सम्बन्ध समझकर (प्रेम का सार) उसको यौवन की यौन-बुभुक्षा मात्र घोषित कर बैठते हैं। गुरुकुल की शिक्षा का अस्वाभाविक संयम (प्रायश्चित) कभी न कभी विद्रोह का रूप धारण कर सकता है। एक विचार से कहानीकार यशपाल ने पारिवारिक कथानक नहीं लिए, यौवन की समस्याएँ ली हैं और उनका यूरोपीय भौतिक सुझाव दिया है।

व्यापक समाज के कथानक हमारे कहानी-साहित्य में अनल्प हैं, अपनी अपनी रुचि के अनुकूल लेखकों ने समाज के विभिन्न अङ्गों को अपनाया है। प्रेमचन्द की रुचि भारत की ९० प्रतिशत जनता में थी—किसान और मजदूर उनके स्थायी नायक हैं; उनके जीवन की सुन्दरतम झाँकी इन कहानियों में मिलेगी। 'पञ्च परमेश्वर', 'बैर का अन्त', 'घरजमाई', 'अलग्योझा' आदि में ग्रामीण उच्च आदर्शों के अनेक सुन्दर चित्र हैं, एक ओर हिन्दू-मुसलिम-एकता है तो दूसरी ओर पाप से भय, कहीं कपट के भीतर भी पवित्रता झलकती है, तो कहीं लाचारी बुरी बीमारी। संक्षेप में प्रेमचन्द का थीसिस यह है कि यदि समाज के जोंक रक्त न चूँसे तो भारतीय ग्रामीण समाज सबसे अधिक पुष्ट, स्वस्थ तथा सुन्दर है; वे बुरे, झगड़ालू, बेईमान या कपटी नहीं होते परन्तु आर्थिक मजबूरियाँ उनसे कभी-कभी वैसा करा लेती हैं। 'पञ्च परमेश्वर', पारिवारिक जीवन की 'बड़े घर की बेटी' के समान, किसी भी साहित्य की अमूल्य निधि है। बैर का अन्त बैरी के जीवन के साथ हो जाता है उसके सम्बन्धियों से बैर का क्या प्रश्न? जब अपने-अपने अधिकारों की रक्षा के लिए भाई-भाई अलग हो जाते हैं तो क्या वे सदा के लिये अलग हो गये? नहीं, विपत्ति के समय सब एक हो हैं—झगड़ा तो सम्पत्ति में है विपत्ति में नहीं, वह तो परायों को भी अपना बनाने वाली है।

प्रसाद ने 'भिखारिन', 'मधुआ', 'घीसू', 'नीरा',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विरामचिह्न' आदि कहानियों में व्यापक समाज की दो समस्याओं को उठाया है—एक आर्थिक समस्या तथा दूसरी अछूत-समस्या। पेट के लिए मनुष्य कितना चतुर बन सकता है, कितना गिर जाता है, यह कलाकार की सहानुभूति के साथ स्पष्टतः अङ्कित हो सका है; 'मधुआ' इस दृष्टि से उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। प्रेमचन्द और प्रसाद में एक अन्तर स्पष्ट है : प्रेमचन्द अधिकृत वर्ग को भारतीयता का संरक्षक समझ कर उसको भाग्यशाली मानते हैं इसलिए उस वर्ग की सुन्दरता को पाठकों के मन में स्थान दिला सके हैं, प्रसाद को इस वर्ग से सहानुभूति ही थी इसको भाग्यवान् वे न समझ सकते थे इसलिए प्रसाद की इस प्रकार की कहानियाँ पाठकों के मन में केवल करुणा को जगाती हैं। प्रसाद ने यह बतलाया है कि आर्थिक परवशता मनुष्य को कितना गिरा सकती है और यह अधिक दिखाया है कि सम्पन्न व्यक्ति अपने अहंकार में मानसिक मूल्यों तक की अवहेलना करने लगते हैं। 'अपराधी' कहानी में यह निश्चय करना कठिन है कि लेखक सम्पन्नों की क्रीड़ाओं की निन्दा चाहता है, या नारी की प्रिय और पुत्र के बीच लाचारी; 'कठोर नियति' ने एकदिन वन-पालिका कामिनी को राजकुमार की प्रेयसी के रूप में देखा, और फिर अपने अबोध पुत्र के साथ उसी एक रात्रि की स्मृति में डूबी हुई परित्यक्ता के रूप में। अन्त में वह गम्भीर होकर देखती है कि जिसको वह इतना प्यार करती है उसी के हाथ से उसके एक रात्रि के सुख का वह एकमात्र प्रमाण सदा के लिए नष्ट हो गया। प्रसाद की कहानियाँ सामाजिक परिस्थितियों की दूराधार मात्र बना सकी हैं, उनका व्यापार तो सूक्ष्म है मनोभाव, विधान या नियति।

जैनेन्द्रजी की कहानियों में 'अपना-अपना भाग्य' काफी प्रभावशालिनी है। जब तक भाग्यवाद है तब तक आर्थिक विषमता है या इस प्रकार कहिए कि जब तक विषमता है तब तक भाग्य में विश्वास है। अधिकृत इतना दबा हुआ है कि वह इस समस्या पर सोच नहीं सकता और समाज के अधिकारी अपना अमूल्य समय क्यों नष्ट करने लगे। सुमित्रानन्दन पन्त, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, अज्ञेय, अश्क, यशपाल आदि कहानी लेखक सामाजिक कथानकों में काफी अग्रसर हो रहे हैं। पन्तजी की पाँच कहानियों में से 'पानवाला' उसी आर्थिक विषमता का चित्र है। कुछ लोग प्रारम्भ से ही "स्नेह के संरक्षण से वञ्चित" होकर आत्मविश्वास खो बैठते हैं, उनके लिए भविष्य जैसी कोई वस्तु मानो बनी ही नहीं, और "समाज की दुर्बलता को वह अपनी दुर्बलता, उसके दोषों को अपने ही दोष समझने" लगते हैं। पन्तजी को ऐसे एकाकी अविवाहित युवक से बड़ी सहानुभूति है जिसको इस विकृत समाज ने समझने का प्रयत्न ही नहीं किया और न जिसकी प्रतिभा से समाज कोई लाभ उठा सका।

अश्क जी का 'बैंगन का पौधा' उसी आर्थिक विषमता का उदाहरण है। 'एरोमा' नगर के शिक्षित समाज की चालबाजी की कथा है। गरीब आदमी आविष्कार करता है, अमीर उसको बिना मूल्य खरीदकर अपने नाम से चालू कर देता है। 'दो आने की मिठाई' भी ऐसी ही कहानी है। अश्क जी ने परम्परा को छोड़कर विषमता का एक कमनीय चित्र खींचा है जिसमें मजदूर किसानों के स्थान पर नगर के मध्यवित्त समाज के प्रति भी पाठक का ध्यान जाता है, और जिसमें कोरा व्यंग्य न होकर प्रभावित करने की भी कलापूर्ण शक्ति है।

यशपाल की कहानियाँ घटना-प्रधान हैं, जिनमें कुछ परिस्थितियों की कटु आलोचना है तथा कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन, लेखक का मुख्य आकर्षण सफल प्रहार है, पाठक के मन में सहानुभूति तो नहीं जगती प्रत्युत कुछ लोगों के प्रति आवेश उबल पड़ता है। समाज-निर्माण में इन झटकों का भी अपना स्थान है, परन्तु साहित्य का वास्तविक उद्देश्य सहृदयता या सहानुभूति होना चाहिए, संहार या कटुता नहीं। 'समाज-सेवा' में इस सेवा-कार्य को केवल स्वच्छन्द यौनाचार का बहाना मात्र माना है, 'दुखी दुखी' में पेट की ज्वाला से वेश्याकर्म पर उतारू होने वाले समाज की कहानी है परन्तु पाठक जिस मजे से उसे सुन लेता है उस गति से वह पिघलता नहीं। 'तीसरी चिता' में प्रेम को बहाना बनाया है और सामाजिक कर्त्तव्य को प्रमुखता दी है। 'हृदय' में भावुकता का मजाक है—जो आदमी एक गीत के पीछे जान दे दे, उसकी कविताओं से संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का क्या भला होगा।

हमारे साहित्य में सामाजिक कहानियों की बाढ़ सी आ गई है, दैनिक पत्रों तक में एक घटना-प्रधान सामाजिक कहानी का मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु उन्हीं पुराने कथानकों का बार-बार आना अच्छा नहीं लगता। फलतः गम्भीर एवं व्यस्त साहित्यिक पहिले लेखक का नाम पढ़ता है फिर यह निश्चय करता है कि उस कहानी पर समय नष्ट करना चाहिए अथवा नहीं। व्यापक समाज से केवल आर्थिक विषमता के ही कथानक कहानीकारों को अधिक रुचे हैं और वे यह तो बतलाते हैं कि समाज के पास जितनी शक्ति तथा प्रतिभा है उसका उपयोग नहीं हो रहा, परन्तु किस प्रकार हो यह वे नहीं बता सके। वेश्या-समस्या तथा अछूत-समस्या पहिले स्वतन्त्र रूप से आया करती थीं परन्तु अब वे भी आर्थिक विषमता का ही अङ्ग बन गई हैं; कुछ लेखक यौन-समस्या को भी इनसे मिला देने के शौकीन हैं। व्यापक समाज में और भी अनेक चित्र हैं, समाज में जिस गति से परिवर्तन हो रहा है उस गति से व्यक्ति में परिवर्तन नहीं हो रहा—यह विषमता अनेक छोटी कहानियों का कथानक बन सकती है। ग्रामों का पतन तथा नगरों का विकास, मशीन का प्रचार, सामाजिक एकता के भीतर छिपी हुई व्यक्ति की अहङ्कारमूलक प्रवृत्ति क्या ध्यान देने योग्य नहीं है?

पारिवारिक तथा वैयक्तिक कहानियों को अधिक पनपना चाहिए, परन्तु परिवार की समस्याएँ शरच्चन्द्री स्टाइल पर नहीं आनी चाहिए। आज मध्यवित्त समाज का पारिवारिक जीवन ध्वस्त हो चुका है। शिक्षित महिलाओं को अविवाहित रह कर जीवन संग्राम में ठोकर खाते हुए नौकरी करनी पड़ती है। विश्वविद्यालय में पढ़ने वाली दो सहेलियों में से एक जो बड़े घर की है अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर लेती है दूसरी जन्म भर मैनेजरों की खुशामद करती हुई जैसे-तैसे अध्यापिका रह पाती है। लाख प्रयत्न करने पर भी व्यक्ति अपने पिछले इतिहास को नहीं मिटा सकता, जिस अत्याचार के लिए वह शहीद हुआ है, वही अत्याचार अधिकार प्राप्त करने पर उसका स्वभाव बन जाता है। आज समाज का आदर्श बदल रहा है, जीवन के मूल्य बदल रहे हैं, अच्छा या बुरा कहने की प्रवृत्ति पुरानी हो गई। आज तो परिस्थितियों से रँग कर चित्र खींचना ही सबसे बड़ी कला है। व्यक्तियों के जीवन पर सामान्य मनोविकार किस प्रकार स्थायी छाप छोड़ जाते हैं और उनकी झलक प्रत्येक क्रिया में किस प्रकार झलकती है—यह स्वयं बड़ा सरस विषय है। गलतफहमियाँ घटनाओं का निर्माण तो करती ही हैं, व्यक्तित्व की भी रचना करती हैं—छोटी कहानी इस सत्य को सफलतापूर्वक दिखला सकती है। सामाजिक कहानियों का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए, घटनाओं के स्थान पर मनोविकारों का सूक्ष्म प्रभाव दिखलाना अधिक रोचक हो सकता है। आशा है भविष्य में इस प्रकार आदर्शों के भी निदर्शन हमको कहानी साहित्य में मिलेंगे।

(पृष्ठ ३२५ का शेषांश)

शैली की होती है। कथावस्तु सामाजिक होने पर भी शाश्वत साहित्य के तत्व इनमें रहते हैं।

श्री नार्लवेङ्कटेश्वरराव मद्रास के प्रसिद्ध तेलुगु दैनिक 'आन्ध्रप्रभा' के सम्पादक हैं। तेलुगु के प्रथम श्रेणी के सम्पादक होने के साथ-साथ एक नाटककार और कथाकार के रूप में भी ये विख्यात हैं। इनके जन-प्रिय होने का कारण इनकी विचार-धारा है। कहानियों में साधारण जनता के जीवन का मार्मिक चित्रण होता है।

इनके अतिरिक्त आजकल कई कहानीकार विख्यातनामा हो चुके हैं, जिनके कारण आन्ध्र का कथा-साहित्य विश्व-साहित्य में स्थान पा रहा है। श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री 'जमदग्नि', 'करुणकुमार' आदि के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। गोपीचन्द, चलम् आदि कथाकार अपनी यथार्थवादी रचनाओं से जनादर पा चुके हैं।

आन्ध्र कथा साहित्य दिनोंदिन वर्धमान है। हाल ही में 'यूनेस्को' के द्वारा आयोजित विश्वकथा प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार पानेवाले, 'आँवी' कहानी के रचयिता श्री पालगुम्म पद्मराजु आन्ध्र ही के हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यत् कहानी का स्वरूप

प्रो० शिवनाथ एम० ए० (शांति-निकेतन)

एक बार रेलगाड़ी के एक सुरुचिसंपन्न और कहानी प्रिय सहयात्री को जब यह ज्ञात हुआ कि मैं साहित्य का विद्यार्थी और अध्यापक हूँ, तब कहानी के सम्बन्ध में अनेक बातें करने के पश्चात उसने कहा कि अच्छा, बताइए, भविष्यत् में कहानी कैसी होगी अथवा हो ? उसका प्रश्न कुछ आश्चर्योत्पादक था। मन में आया, यह तो कहानी का सजीव पाठक है—भविष्यत् की चिन्ता से पीड़ित। भविष्यत् के सम्बन्ध में कुछ कहना सरल तो नहीं है। फिर भी वर्तमान से निकलते भविष्यत् का मन में कुछ आभास ला मैंने कहा कि भविष्यत् में कहानी लोक-जीवन के और निकट होगी। इसका कारण यह है कि तब कहानीकार को मानव के मन तथा उसके समाज की संस्कृति को आज की अपेक्षा अधिक निकट से देखना पड़ेगा, क्योंकि जिस प्रकार गत इस पन्द्रह वर्षों के भीतर कहानीकार लोक के सैद्धांतिक अथवा बौद्धिक अध्ययन का सहानुभूति से चलकर उसके मन अथवा उसके समाज की संस्कृति की ओर क्रमशः बढ़ा और बढ़ रहा है उसी प्रकार भविष्यत् में वह उसके मन तथा उसके समाज के निकट से निकट पहुँचेगा अथवा उसे पहुँचना चाहिए। जो कहानीकार ऐसा न कर सकेगा वह या तो कहानीकार ही न माना जायगा अथवा उसका साहित्यकार का जीवन वैसे ही अल्प होगा जैसे गत दस पन्द्रह वर्षों के भीतर उन कहानी लिखने वालों का था जो लोक के केवल सैद्धांतिक अथवा बौद्धिक अध्ययन का सहानुभूति के भरोसे कहानीकार बनना चाहते थे। इस प्रकार भविष्यत् कहानीकार की कसौटी होगी लोक के मन तथा समाज की संस्कृति तक उसकी निकट से निकट पहुँच।

मैंने सहयात्री से यह भी कहा था कि भविष्यत् में लोक क्रमशः विकसित होता जायगा, अतः वह अपने मन तथा समाज की संस्कृति के प्रति अधिक से अधिक सचेतन होगा, वह इनका स्वयं काफी जानकार होगा। ऐसी स्थिति में लिखने की वास्तविक प्रेरणा, कहने के लिए वास्तविक भाव, विचार, अनुभूति के बिना जो कहानीकार लिखेगा—जैसा कि आज पैसे के लिए कहानी लिखने की ओर लोग लपकते देखे जाते हैं—उसका अस्तित्व ही न रहेगा। लोक के मन तथा समाज की संस्कृति की वास्तविक पहचान और उन्हें रूप देने का वास्तविक साहित्यिक रति (लगन) और प्रेरणा भविष्यत् कहानीकार के अस्तित्व के लिए अनिवार्य होगी। मैंने इसी बात को यों भी कहा था कि संस्कृति-सम्पन्न कहानीकार ही भविष्यत् में टिक सकेगा। लोक के मन तथा समाज की संस्कृति को कहानी का रूप देने के लिए उसे भी संस्कृति से सम्पन्न बनना पड़ेगा। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ भावनाओं, विचारों, प्रेरणाओं से सम्पन्न होना होगा, जो संस्कृति की सार वस्तुएँ हैं। इस प्रकार संस्कृति सम्पन्न होकर ही वह साहित्यकार के वास्तविक पद अर्थात् सांस्कृतिक नेता का पद प्राप्त कर सकेगा। कहानीकार ऐसा होकर ही कहानी की संस्कृति का निर्माण करेगा; मतलब, कहानी के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रूप को जन्म देगा। कहानी का जो श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रूप है वह लोक के मन तथा समाज की संस्कृति की बनावट में अपना फर्ज अदा करेगा; अर्थात् पाठक तथा श्रोता के मन और समाज के निर्माण में कहानी का अपना योग-दान करेगी और इस प्रकार कहानीकार सांस्कृतिक नेता के पद का अधिकारी होगा।

इसके बाद सहयात्री ने भविष्यत् में कहानी के प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में भी राय माँगी थी। उसने कहा था कि आज तो अन्य साहित्यांगों की अपेक्षा कहानी का प्रचार-प्रसार अधिक है, भविष्यत् में इस सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ? मैंने कहा कि जिस प्रकार आज कहानी अन्य साहित्यांगों की अपेक्षा अधिक पढ़ी जाती है उसी प्रकार भविष्यत् में भी अधिक पढ़ी जायगी; इसमें संदेह नहीं। मैंने कहा कि आज की अपेक्षा अधिक लोग इसे पढ़ेंगे; इस का कारण भविष्यत् में शिक्षा का उत्तरोत्तर विकास और प्रचार-प्रसार होगा। इसके साथ ही मैंने यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी निवेदन किया कि ऐसी हालत में कहानीकार के भीतर बैठे साहित्यकार का दायित्व अधिक बढ़ जायगा, क्योंकि उसकी रचना अपेक्षाकृत अधिक लोग पढ़ेंगे। तब उसे लोक के मन तथा समाज की संस्कृति के अधिक से अधिक रूपों की अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करनी पड़ेगी, क्योंकि उसकी रचना में अधिक से अधिक लोगों के लिए पढ़ने की सामग्री होनी चाहिए। क्योंकि कहानी अधिक से अधिक लोक के मन तथा समाज की संस्कृति का आकर्षण तथा प्रेरणा-केन्द्र होगी, अतः उसमें प्रेरणा देने के लिए मन तथा समाज के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ की अधिक से अधिक अभिव्यक्ति होनी चाहिए। कहानीकार यदि साहित्यकार बन कर सांस्कृतिक नेता का पद ग्रहण करना चाहेगा तो उसका कार्य भी सरल हो जायगा; वह इस प्रकार कि वह अपनी संस्कृति को, अपने संदेश को अपनी रचना द्वारा अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचा सकेगा। लोक के मन तथा समाज की जिस संस्कृति को वह बनाना चाहता है, अथवा उसका परिष्कार-संस्कार करना चाहता है वह उसकी रचना द्वारा सरलता पूर्वक हो जायगा। कहानीकार को इसका ध्यान रखना होगा कि उसकी कहानी संस्कृति को बना-बिगाड़ सकती है, अतः उसे अपनी कहानी में रचनात्मक तत्त्वों को ही स्थान देना है, विध्वंसात्मक तत्त्वों को नहीं; क्योंकि वह सांस्कृतिक नेता भी है, जो संस्कृति को बनाता है, बिगाड़ता नहीं।

सहयात्री की साहित्यिक सुरुचिसंपन्नता का और निखरा रूप तब मेरे सामने आया जब उसने भविष्यत् कहानी की रूप-रचना के बारे में मुझ से प्रश्न किया। इसका जो जवाब मैंने दिया उसमें मेरी अपनी रुचि अधिक काम कर रही थी। मैंने कहा कि लोक के मन तथा समाज की संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए सभ्यता की तड़क-भड़क, चमत्कार के प्रभाव के कारण कहानी की रूप-रचना में जो चमत्कार लाया गया है उसे हटाना चाहिए, और भविष्यत् में शायद यह हट जायगा। मेरा कहना यह था कि रचनागत जो अनावश्यक कौशल और कोरा चमत्कार है वह कहानी से चलाजायगा। उसकी रचना में सादगी और सरलता आयेगी, जो संस्कृति की द्योतक है, जो सात्विकता का प्रतीक है। कहानी की रूप रचनागत अनावश्यक तड़क-भड़क भविष्यत् के सुसंस्कृति-सम्पन्न श्रोता, पाठक को पसन्द नहीं आयेगी, जो तड़क भड़क सभ्यता का प्रतीक है और यह सभ्यता ऊपरी चीजों पर ही दृष्टि रखकर चलती है। कहानीकार को संस्कृति का मूल-भूत तत्व कहना है, अतः उसे सादगी सरलता की ओर ही जाना चाहिए। मैंने अपनी बात को यह कह कर और साफ किया कि लोक कथाओं में रचनागत जो सरलता प्राप्त है भविष्यत् कहानी में वही सरलता होनी चाहिये। ऐसी कहानियों में सरलता इसलिए है कि उनमें संस्कृति के प्राणअभिव्यक्त हुए हैं। लोक-कहानियों में रचनागत अनावश्यक तड़क-भड़क नहीं है, उनमें सारवस्तु का कथन सीधी, सरल पद्धति से हुआ है। मैंने सहयात्री से जैनेन्द्रजी की कुछ कहानियों का उल्लेख भी किया था, जिनकी कला लोक कथाओं की रचना कला सी है।

एक छोटा सा स्टेशन आया, ग्रामवधू की विदाई का दृश्य हमारे सामने आया। हमारी कहानी भी अब ग्रामीण सामाजिकता की ओर मुड़ी।

(पृष्ठ ३२८ का शेषांश)

तामिल, तेलुगु तथा मलयालम आदि भाषाओं के साहित्य से भी सुन्दर कहानियाँ कन्नड में अनुवादित हुई हैं।

फिर भी कन्नड-साहित्य में जितनी उन्नति होनी चाहिये उतनी उन्नति नहीं हो सकी है। यद्यपि कन्नड-साहित्य में कुछ कहानियाँ उच्च कोटि की हैं। तथापि जीवन की अभी बहुत सी समस्याएँ स्पर्श किये बिना रह गयी हैं। देश की गरीबी, किसानों का अज्ञान, अविभक्त कुटुम्ब-जीवन, मजदूर समस्या तथा स्त्रियों का सुधार आदि सामाजिक विषयों पर मार्मिक ढंग से लिखने वाले कहानीकारों की कमी है। हमारे जन-जीवन से मिलकर तथा उससे स्फूर्ति पाकर सुन्दर साहित्य का निर्माण करने के लिये तरुण साहित्यिकों को सिद्ध होना चाहिये। संतोष की बात है कि उदयोन्मुख कहानीकार इस तरफ ध्यान देने लगे हैं और साहित्य का यह अंग भी पुष्ट होता जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू की कहानियाँ

श्री हरिशङ्कर शर्मा

जहाँ तक हमको मालूम है, उर्दू में सबसे पहले 'तूती नामा' के नाम से एक कहानी लिखी गयी थी, परन्तु यह संक्षिप्त या छोटी कहानी नहीं, लम्बा किस्सा था। इसके पश्चात् सुप्रसिद्ध शायर सौदा ने मीर की मसनवी 'शुअल-ए-इश्क' का गद्य रूपान्तर किया और यही अनुवाद कहानी-रूप में उर्दू में आया। निस्सन्देह उर्दू में आधुनिक कहानी-कला को विकसित करने का श्रेय फोर्ट विलियम कालिज के सञ्चालकों और अध्यापकों को ही दिया जा सकता है। उक्त कालिज का इस दिशा में, सबसे पहला प्रयत्न शेख सादी के 'गुलिस्ताँ' का उर्दू अनुवाद प्रकाशित करना है। यह अनुवाद मीर शेर अली ने 'बागे उर्दू' के नाम से (१७९९ ई० में) प्रकाशित कराया था। इसके पश्चात् श्री निहालचन्द लाहोरी ने 'गुलबकावली' का अनुवाद 'मज़हब-ए-इश्क' के नाम से प्रकाशित किया। आगरा निवासी श्री लल्लूलालजी की हिन्दी कहानियों के उर्दू अनुवाद भी इसी समय उक्त कालिज के ही प्रयत्न से प्रकाशित हुए। मीर अमन का 'बागो-बहार', 'आरायशे महफ़िल' भी इन्हीं दिनों प्रकाश में आए। इन्हीं दिनों काजिम अली 'जवान' और जान गिल क्रिस्ट ने भी उर्दू में अनेक कहानी-किस्से लिखे। इन लोगों का सम्बन्ध भी उपर्युक्त फोर्ट विलियम कालिज से ही था। इन विद्वानों ने मौलिक कहानियाँ भी लिखीं और अनुवाद भी किये। यह सन् १८०३ या १८०५ की बात है। मीर अमन के 'बागो बहार' की अच्छी प्रसिद्धि हुई थी। यह पुस्तक सुप्रसिद्ध अमीर खुसरो के 'चहार दरवेश' का उर्दू अनुवाद है। फोर्ट विलियम के इन प्रयत्नों के पश्चात् तो उर्दू में कहानी-किस्सों का पुल टूट पड़ा और धड़ाधड़ उनकी रचना होने लगी। लखनऊ स्थित नवलकिशोर प्रेस ने साहित्य-प्रचार की दृष्टि से उर्दू कहानीकारों को खूब प्रोत्साहन दिया और बहुत-सी कहानियाँ प्रकाशित कीं।

बीसवीं शती के प्रारम्भ से उर्दू समाचारपत्रों और पत्रिकाओं का प्रकाशन होने से तो उर्दू में कहानी-कला का बहुत विकास और विस्तार हुआ है। इन पत्र-पत्रिकाओं में छोटी-छोटी कहानियाँ प्रकाशित होती थीं, जिन्हें पाठक बड़े चाव से पढ़ते थे। श्री प्रेमचन्दजी सबसे पहले कहानीकार थे, जिन्होंने आधुनिक युग में उर्दू कहानियों में प्राण-प्रेरणा की। वे 'धनपतराय' के नाम से उर्दू में लिखते थे, यही उनका वास्तविक नाम भी था। श्री सुदर्शनजी ने भी इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया। इनकी लिखी हुई छोटी-छोटी कहानियाँ उर्दू दुनिया में बहुत पसन्द की गयीं। मुन्शी सज्जाद हैदर और न्याज़ फतेहपुरी की कहानियाँ भी बड़े शौक से पढ़ी गयीं। इनकी कहानियों की वर्णन-शैली ने एक नया रूप धारण किया। ख्वाजा-हसन निजामी भी अपनी शैली पर सुन्दर कहानियाँ लिखते हैं। उनकी शैली उर्दू जगत् में अधिक पसन्द की गयी है। पाश्चात्य भाषा की कहानियों के उर्दू अनुवाद प्रकाशित होने से भी उर्दू वालों को अच्छी प्रेरणा मिली है और उर्दू साहित्य को प्रशंसनीय प्रगति प्राप्त हुई है। उर्दू कहानीकारों में अब्बास हुसेनी, मजनूं, एम-असलम, काजी अब्दुल गफ्फार आदि ने भी अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की है। मियाँ एम-असलम साहब और मिसेज हिजाब इम्तियाज अली साहिबा भी बड़ी सुन्दर कहानियाँ लिखती हैं। मुन्शी प्रेमचन्द सर्व-श्रेष्ठ उर्दू कथाकार १८८० ई० में पैदा हुए थे। इन्होंने अपनी अनुभूतिपूर्ण कहानियों द्वारा उर्दू और हिन्दी दोनों के साहित्य की श्री-वृद्धि की। मुन्शी जी यथार्थवादी थे, उन्होंने अपनी कहानियों को अतिशयोक्तियों से सर्वथा अछूता रख उन्हें वास्तविकता पूर्ण बनाया। उन्होंने मानव भावों का सफल, सुन्दर और गहरी अनुभूति के साथ चित्रण किया है। मुन्शीजी की भाषा ओजस्विनी तथा उनकी शैली हृदयों पर असर करने वाली है। वे अपनी स्वाभाविक कथा-कला द्वारा घटनाओं और भावनाओं का सजीव चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। उनकी जबान में जादू और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान में जिन्दगी है। जादराह, वारदात, रुबाबोखयाल, आखिरी तोहफा, प्रेम-चालीसी, प्रेम-बत्तीसी, प्रेम-पचीसी खाक परवाना, रुहानी शादी, दूध की कीमत आदि प्रेमचन्द जी की बीसियों कहानी-पुस्तकें उर्दू में प्रकाशित हो चुकी हैं। उर्दू में आपने उपन्यास भी कई लिखे हैं जिनमें मैदान अमल, बाजारेहुस्न, बेवा, चौगान हस्ती, पर्दायजाज, गबन, निर्मला, फर्दोस, खयाल, गोशए आफियत, राम चर्चा आदि प्रसिद्ध हैं। प्रेमचन्दजी का देहान्त १९३६ ई० में हुआ।

ख्वाजा हसन निजामी १८७८ ई० में देहली में पैदा हुए। अरबी, फारसी और उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आप बहुत छोटी उम्र से ही उर्दू साहित्य की सेवा कर रहे हैं। आपने सबसे पहले 'मुफलिसी का मुजर्रब इलाज' नामक पुस्तक लिखी थी। अब तक डेढ़सौ से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं। आपकी लेखन-शैली अपने ढङ्ग की अनोखी है। आप साधारण से साधारण बात को बहुत आकर्षक बना देते हैं। यह आपकी बहुत बड़ी विशेषता है। भाषा बड़ी परिमार्जित, सरल और स्वाभाविक होती है। वाक्य छोटे-छोटे और सबकी समझ में आने लायक। निजामी साहब की भाषा देहली की टकसाली भाषा है जो सरल और मधुर है। आपकी लिखी किताब 'गदर दहली के अफसाने' बारह भागों में है। इनमें गदर के सब हाल कहानियों के रूप में लिखे गये हैं। ये कहानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त ख्वाजा साहब ने 'बच्चों की कहानी' और 'जगबीती कहानियाँ' नामक पुस्तकें भी लिखी हैं।

श्री सुदर्शनजी ने भी प्रेमचन्दजी की शैली पर बड़ी सुन्दर और सजीव कहानियाँ लिखी हैं। आप की कहानियों का घटना-क्रम कुछ इस प्रकार होता है कि पाठक की उत्सुकता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। सुदर्शनजी की शैली बड़ी सुन्दर और स्वाभाविक है। भाषा सरल और आकर्षक होती है। आप भावों के बड़े सफल चित्रकार हैं। आप प्रायः भावात्मक कहानियाँ ही लिखते हैं। कहीं आपने ग्रामजीवन का चित्र खींचा है और कहीं शहरी जीवन की हूबहू तस्वीर उतारी है। सभी प्रकार के चित्रण में आप सफल हुऐ हैं। उर्दू दुनिया में सुदर्शनजी की कहानियों की बड़ी प्रतिष्ठा है, वे बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। सोलह सिंगार, सदा बहार फूल, सुबहेवतन, कौस कजइ, चश्मो चिराग, चन्दन, बहारिस्तान आदि सुदर्शनजी की प्रसिद्ध कहानी पुस्तकें हैं। बंगालतीसी नामक पुस्तक में आपने बंगाली भाषा की कई प्रसिद्ध कहानियों का अनुवाद किया है। कहानियाँ ही नहीं सुदर्शनजी ने उर्दू में उपन्यास और नाटक भी लिखे हैं।

सुल्तान हैदरसाहब जोश की कहानियों का भी उर्दू में अच्छा आदर है। आपने अपनी कहानियों में इस बात के लिए बड़ा जोर दिया है कि भारतीयों पर पच्छिमी प्रभाव न पड़ने पावे। कहीं-कहीं आपकी कहानियों में शिष्ट हास्य का पुट भी मिलेगा। भाषा प्रौढ़, वर्णन-शैली आकर्षक और चित्रण सजीव है। फसाने जोश, सब्र की देवी आदि आपकी कहानी-पुस्तकें हैं।

काजी अब्दुल गफ्फार—उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार हैं। आपकी कहानियों की उर्दू वाले बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। 'लैला के खतूत', 'उसने कहा', 'मजनूँ की डायरी', 'तीन पैसे की छोकरी' आदि प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। शैली सजीव और आकर्षक है। चित्रण में स्वाभाविकता और सुन्दरता है।

सैयद अलीअब्बास हुसैनी—इनकी लिखी 'रफीक तनहाई', 'आई० सी० एस०', 'बासी फूल' आदि कहानी पुस्तकें उर्दू जगत् में बहुत पसन्द की गई हैं। आप प्रसिद्ध कहानीकार हैं।

मजनूँ गोरखपुरी—आध्यात्मिक कहानियाँ लिखने और भाव-चित्रण-कला में बड़े दक्ष हैं। आपकी प्रायः सभी कहानियों में पाठक को कुछ-न-कुछ विशेषता दिखलाई देगी। मजनूँ ने अपनी विशेष लेखन-शैली द्वारा उर्दू कहानी जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। आपकी लिखी 'अफसाने', 'ख्वाब-ओ-खयाल' आदि अनेक कहानी पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त गम्भीर कहानियों के अतिरिक्त उर्दू में 'हास्य-रस की कहानियाँ' भी बड़ी सुन्दरता और सफलता से लिखी गयी हैं। सबसे प्रथम मुन्शी सज्जादहुसेन साहब ने इस दिशा में प्रगति प्रारम्भ की और लखनऊ के 'अवध पञ्च' में जिसके आप सम्पादक थे, हास्य-रस की कहानियाँ

(शेष पृष्ठ ३३३ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेलुगु (आंध्र) कहानी साहित्य

श्री न० वी० राजगोपालन

भारत की अन्य भाषाओं के गद्यसाहित्य ही की भाँति आन्ध्र या तेलुगु का गद्यसाहित्य भी अधुनातन है। यद्यपि आन्ध्र के पहले महाकाव्य "महाभारतमु" में ही गद्य का सुन्दर रूप मिलता है तथा बाद के काव्यों में भी लगतार उसका प्रयोग होता रहा। तथापि गद्य का उपन्यास, कथा, समालोचना आदि विविध अङ्गों में विकास अर्वाचीन युग में ही हुआ। ईसा की अठारहवीं शताब्दी से लेकर आन्ध्र भाषा में प्रचुरमात्रा में कथासाहित्य प्राप्त होता है।

पहले कथा का प्रयोजन केवल मनोरञ्जन था। अतः साधारण जनता के लिये कहानी का जितना महत्व रहा, उतना साहित्य की पृष्ठ-भूमि पर नहीं था। अठारहवीं शताब्दी में जिन कथाओं का निर्माण हुआ, उनका अभी तक अधिक प्रचार है। "तेनालि रामुनि कथलु" को कौन आन्ध्र बालक नहीं जानता है? आन्ध्र ही क्या? समस्त दक्षिण में तथा उत्तर भारत के अनेक प्रान्तों में ही नहीं अँगरेजी आदि विदेश-भाषाओं में भी इन कहानियों का अनुवाद और प्रचार हुआ है। इतिहास-विख्यात, आन्ध्र-भोज, श्रीकृष्णदेवराय के दरबार में तेनालिराम, महाकवि और विदूषक थे। इन कहानियों में तेनालिराम से सम्बद्ध हास्य-जनक घटनाओं का जो चित्रण हुआ है, उससे पाठक हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। परन्तु इन कहानियों की प्रामाणिकता सन्देहास्पद है। यदि ये कहानियाँ कपोल-कल्पित हैं तो नहीं बता सकते कि किस की कल्पना है।

इसी कोटि का और एक कथा-समुच्चय है 'परमानन्द शिष्युल कथलु'। 'मदनकाम राजुनि कथलु', 'शुक-सप्तति कथलु' आदि शृङ्गारिक या प्रेम-सम्बन्धी कहानियाँ भी प्रसिद्ध हैं। 'मर्यादरामन्न कथलु' और 'काशी मजली कथलु' भी इसी समय की हैं।

कथा-साहित्य का द्वितीय अध्याय उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू होता है। इस काल में पद्य के अतिरिक्त गद्य की अनेकाङ्गी समृद्धि हुई। वस्तुतः कहानी के वास्तविक स्वरूप के दर्शन इसी युग में होते हैं। जनता का अँग्रेजी साहित्य से भी परिचय बढ़ने लगा था। श्री चदुलवाड सीताराम शास्त्री स्मरणीय हैं जिन्होंने 'ग्रिम्स फेरी टेल्स' का अँग्रेजी से तेलुगु में अनुवाद किया। इनकी शैली में एक नवीनता थी; भाषा सरल और स्त्री-बाल ग्राह्य होने के कारण इनकी अधिक ख्याति हुई।

हिन्दी-साहित्य में जान गिलक्राइस्ट ने जो काम किया, वह तेलुगु में सी० पी० ब्राउन ने किया। ये स्वयं आन्ध्र भाषा के विज्ञ थे। तेलुगु का पहला शब्द-कोश इन्होंने बनाया था। अनेक गद्य-रचयिताओं को प्रेरणा देने के अतिरिक्त इन्होंने स्वयं 'तातार्चार्युल कथलु' नामक कहानी संग्रह भी किया।

स्वनामधन्य स्व० वेदं वेंकटराय शास्त्री ने कथा-सरित्सागर का तेलुगु अनुवाद उपस्थित किया जो अपनी प्रौढ़, सरस तथा वैदुष्य-पूर्ण शैली से गद्य-युग में एक प्रकाश-स्तम्भ-सा रहा।

सबसे बढ़ कर इस युग में साहित्य के लिए काम करने वाला एक व्यक्ति अवतीर्ण हुआ। यह आन्ध्र का 'भारतेन्दु' है। ये हैं 'आन्ध्र गद्य-कवि ब्रह्मा' वीरेशलिंगम् जी। इन्होंने तेलुगु गद्य में युगान्तर उपस्थित किया। इनकी प्रहसन, नाटक, उपन्यास, समालोचना आदि शताधिक रचनाओं में कहानियों का भी विशिष्ट स्थान है। महान् समाज-सुधारक होने के कारण, इनकी कहानियाँ भी समस्या-प्रधान हैं, विशेषतः विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा एवं स्त्री-जनोद्धार सम्बन्धी कहानियाँ लिखीं। उपन्यास आदि के समान कहानियों के क्षेत्र में भी इन्होंने क्रान्ति उत्पन्न की।

इसी समय के एक उल्लेखनीय कथाकार हैं जो 'आन्ध्र बाणभट्ट' कहलाते हैं। 'विनोद-कथाकल्पवल्ली', 'चित्रकथा लहरी' और 'चमत्कार-कथा-मंजरी' को न जानने वाला आन्ध्र-युवक कदाचित ही कोई होगा। श्री रामानुज शर्मा की शैली में अपूर्व आकर्षण है; अद्भुत घटना-सन्निवेश में अतुलनीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सुकता होती है, वस्तु के वर्णन में गद्य काव्य का आनन्द आता है। इनको पढ़ते समय बाण-भट्ट की 'कादम्बरी' स्मरण आती है। कहीं कहीं कल्पना के अतिरेक में वास्तविकता डूब गई है। शृङ्गारिक चित्रण कहीं कहीं अश्लीलता की सीमा तक पहुँच जाते हैं। फिर भी इनके पाठकों की संख्या बड़ी है।

आंध्र-कथा-साहित्य का नवीन युग उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से शुरू होता है। अब तक आंध्र जनता के सम्मुख, अंग्रेजी आदि विदेश-भाषाओं तथा बंगला आदि अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियाँ भी आने लगीं। पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी बढ़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि तेलुगु में भी मौलिक कहानियाँ रची जाने लगीं। इनकी विषय-वस्तु विभिन्न प्रकार की रही; पारिवारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक कथाओं के साथ भावात्मक कहानियाँ भी निकलीं जिनसे इनका साहित्यिक महत्व भी बढ़ा। केवल मनोरंजन के लिए अद्-भुत घटनाओं का समावेश मात्र न रहकर कथा की अन्य विशेषताओं पर भी ध्यान दिया गया।

इन कथाओं के कई भेद हैं। एक है 'चिन्नकथा' जो छोटी कहानी होती है। जिस कहानी में काव्य के तत्व विद्यमान होते हैं और भावात्मकता होती है उसे 'कथा-निका' कहते हैं। एक तीसरे प्रकार की कहानी है 'पिट्ट-कथा'! 'पिट्ट' का अर्थ है चिड़िया। चिड़ियों, जानवरों आदि की कहानियों को 'पिट्टकथा' कहते हैं, जो बच्चों के लिए लिखी जाती हैं। जैसे हितोपदेश की कहानियाँ। अब यह शब्द व्यापक हो गया है। वे सब कहानियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं जो बच्चों के लिए लिखी जाती हैं और जिनमें नीति और उपदेश प्रधान होता है।

आधुनिक कथाओं के बारे में सोचते ही हमें पहले स्व० अडिवि बापिराजु का नाम याद आता है। इनका हाल ही में देहान्त हुआ। ये प्रसिद्ध चित्रकार थे। संगीत और नृत्य से भी इनका विशेष परिचय था। शिल्प, सङ्गीत, नृत्य आदि कलाओं से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं पर कई कहानियाँ लिखी हैं। मानव-हृदय की चिरन्तन वृत्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करने में ये सिद्ध-हस्त हैं।

कला ही कलाकार का प्राण है; कला के लिये सब कला प्रेमी सब कुछ त्यागने को तैयार होता है। "कलिता यद्यस्ति राज्येन किम्?" कहने वाले कितने नहीं थे? तो कलाकार के जीवन में प्रणय का क्या स्थान है? यदि कभी नारी का प्रेम कला की उपासना में बाधा बन कर उपस्थित हो तो कलाकार के हृदय में कैसा संघर्ष उठता है—ऐसे चित्र श्री बापिराजु की कहानियों में देखते हैं। 'वीणा', 'संध्या-नृत्यमु', 'नागराजु' आदि कहानियाँ शाश्वत साहित्य की चीजें हैं। कहानियों की भाषा-शैली में संस्कृत तत्सम पदावली की बहुलता होने पर भी इनमें प्रौढ़ता और काव्य का-सा रस-गुम्फन अत्यन्त मनोज्ञ है। 'द्वेषमु', 'वसुबालुडु', 'असुर कन्या' आदि में ऐतिहासिकता का पुट है।

इनकी दूसरे ढङ्ग की कहानियाँ हैं 'लचिमि', 'तिरुपति-कोंड मेट्टु' आदि। इनके पात्र निम्न वर्ग के हैं। चमार, भिखारी आदि के विषादपूर्ण जीवन में भी दया, सहानुभूति, प्रेम आदि का कम प्रभाव नहीं हैं; इन चित्रों में मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने में राजुजी सफल हुए हैं। इन कहानियों की भाषा भी पात्रों के अनुकूल, मुहावरेदार प्राचीन शैली की है।

'मुनि माणिक्यं' से अपरिचित आन्ध्र कोई नहीं है। इनका पूरा नाम है 'मुनिमाणिक्यं नरसिंहारावु' पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के चित्रण में ये अद्वितीय हैं। इनकी 'कांतंम् कथलु' काफी प्रसिद्ध हैं। नारी पात्रों का चतुर विनोद-प्रिय और रहस्यमय रूप उपस्थित करने की इनकी क्षमता विलक्षण होती है। इनकी अपनी टेकनीक है। भाषा चलती, चुस्त, व्यंग्यपूर्ण होती है। हास्य की छींटें स्थान-स्थान पर मिलती हैं। 'चाय के प्याले में तूफान' 'ऊदे रङ्ग की साड़ी' जैसे शीर्षक आकर्षक होते हैं। कहानी पढ़ते हुए पाठकों का कुतूहल कभी भी घटता नहीं है। इनके पात्र सर्वसाधारण के हैं। तेलुगु की पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कथाएँ अक्सर निकलती हैं।

श्री विश्वनाथ सत्यनारायण एक महाकवि के नाते आन्ध्र में बड़े प्रसिद्ध हैं। इन्होंने उपन्यास और कहानियाँ भी लिखी हैं। कहानियों की भाषा आम जनता की रोजमर्रा

(शेष पृष्ठ ३१९ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमिल का कहानी साहित्य

श्री एम० सुब्रह्मण्यम् सा० र०

ईसा से कई वर्ष पहले ही तमिल साहित्य में अच्छे-अच्छे महाकाव्य रचे जा चुके थे। कालान्तर में जब इन्हें बिना टीका के समझना कठिन होगया तब कई टीकायें लिखी गयीं। यही टीका काल गद्य का आरम्भ-काल है। परन्तु आगे गद्य का जैसा विकास होनी चाहिये था वैसा विकास नहीं हुआ, अर्थात् साहित्य के अन्य उपाङ्गों की रचना नहीं हुई।

आज-कल कहानी का अर्थ अंग्रेजी की Short story समझा जाता है। वैसी कहानियाँ गद्य के रूप में आरम्भ में भले ही नहीं लिखी गयी हों परन्तु छोटे-छोटे कथा-प्रधान काव्य ईसा से चार-पाँचसौ वर्ष बाद लिखे गये। वस्तुतः इन लघु-काव्यों को उस युग में वही स्थान मिला होगा जो आजकल लघु-कथाओं को मिला है। ये लघु-काव्य या कथा-प्रधान काव्य अपने धर्म के प्रचार के लिए जैनियों ने रचा था। इन काव्यों द्वारा अहिंसा, मांस और मद्य-निषेध, सत्य, चोरी न करना आदि पर जोर दिया गया।

जब जैन धर्म का प्रचार बढ़ा तो उसे रोकने के लिए शैवों ने भी अवतारों को लेकर कथा-प्रधान काव्य लिखना आरम्भ किया। इन दोनों प्रकार के काव्यों को कई वर्षों के बाद गद्य के रूप में भी लिखा गया। संस्कृत काव्यों का अनुवाद भी पहले काव्य के रूप में और पश्चात गद्य के रूप में किया गया। पञ्चतन्त्र, हितोपदेश आदि का अनुवाद भी तमिल में किया गया। इनके अतिरिक्त नीति-प्रधान या उपदेशात्मक तथा मनोरञ्जन की कहानियों की रचना भी हुई। इनमें दूसरे प्रकार की कहानियों का कोई साहित्यिक महत्व न रहा।

१९ वीं शताब्दी के आरम्भ में जब नवीन और सरल शैली में गद्य लिखा जाने लगा तब उसी शैली में कहानियाँ भी लिखी जाने लगीं। वीरमामुनिवर की 'परमार्थ गुरु कथै' नामक कहानी को तमिल कहानी साहित्य का पहला ग्रन्थ मानना चाहिये। यह हास्य-रस प्रधान कहानी थी। सामइवराय मुदालियर ने पञ्चतन्त्र का अनुवाद किया।

अङ्गरेजी शिक्षा के प्रचार के उपरान्त कुछ नवीन ढङ्ग की कहानियाँ लिखी जाने लगीं। स्वर्गीय सुब्रह्मण्य भारती ने जैसे कविता जगत में क्रान्ति मचायी थी वैसे ही गद्य-जगत में भी किया था। इनकी शैली में माधुर्य, ओज और अर्थ-गाम्भीर्य के साथ सरलता भी रहती थी। इनकी 'नवतन्तिर कथैकल' हास्य रस प्रधान कहानी-संग्रह है। भाषा इतनी सरल थी कि साधारण पढ़ना-लिखना जानने वाले भी पढ़ कर समझ जाते हैं। इन्होंने रवीन्द्रनाथ की कहानियों का भी अनुवाद किया है।

पाश्चात्य टेकनीक पर कहानी लिखने वालों में व० वे० सुब्रह्मण्य अय्यर अग्रणी हैं। इनके पहले माधवय्या ने तमिल वालों के जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाले चित्रणों से भरी कहानियाँ तमिल और अँग्रेजी में लिखीं। परन्तु ये व० वे० सु० अय्यर की भाँति कलात्मक और आकर्षक ढङ्ग से कहानी नहीं लिख सके। प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पक्षपाती होने के कारण श्री अय्यर ने अपनी कहानियों में उनकी झलक दिखायी है परन्तु इनकी कहानियों में नवीन विचार भरपूर हैं। छोटी कहानियों में इनकी कहानियों का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। इनकी कहानियों में जैसा भावावेश मिलता है वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। एक आलोचक ने पाश्चात्य कहानियों के लक्षण के बारे में लिखा है कि "कथा संक्षिप्त हो, पात्र कम हों और मनो-भावों का वर्णन नाटकीय ढङ्ग से हो; पात्रों के बारे में सारी बातें स्पष्ट न कह कर, पात्रों के प्रति पाठकों के मन में उत्सुकता जागृत कर उनके गुणों को अनुमान से जानने की प्रेरणा हो। इसके लिए सफल कथाकार कहीं-कहीं कवित्व-मय शैली का प्रयोग करता है।" उपर्युक्त सारे लक्षण श्री अय्यर की कहानियों में पाये जाते हैं। प्रेमाख्यानक कहानियाँ तो कई लोगों ने लिखी हैं। लेकिन प्रेम को पवित्र रूप में दिखाने में अय्यर अद्वितीय हैं। इनकी 'कमल विजयं', 'कुलत्तंगरै अरशमरम' आदि मौलिक कहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियाँ तथा 'लैला मजनूँ', 'अनारकली' आदि विदेशी कहानियों के आधार पर लिखी हुई कहानियाँ किसी भी भाषा की कहानियों से समता कर सकती हैं। निस्सन्देह श्री अय्यर अन्य कहानीकारों के लिए मार्ग-दर्शक हैं।

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (राजाजी) ने मद्यपान निषेध और अस्पृश्यता निवारण आदि को लेकर कहानियाँ लिखी हैं। सामाजिक और साहित्यिक दृष्टि से इनकी कहानियाँ सफल निकली हैं। सामयिक समस्याओं और राजनैतिक आन्दोलनों को लेकर भी इन्होंने कई कहानियाँ लिखी हैं।

श्री शुद्धानन्द भारती, श्री सुब्रह्मण्य भारती की परम्परा के लेखकों में हैं। ये कवि और गद्यकार भी हैं। बड़े विद्वान् और योगी पुरुष हैं। श्री ब० वे० सु० अय्यर के संपर्क में रहने के कारण इनकी रचनाओं में श्री अय्यर की रचनाओं का प्रभाव पड़ा है। पश्चिम के विक्टर ह्यूगो जैसे उपन्यासकारों का प्रभाव इनकी कृतियों पर पड़ा है।

स्वर्गीय वेंकटरमणी विद्वान् और अच्छे कहानीकार थे। उन्होंने ग्रामीणों और उनके जीवन को चित्रित करने वाली अनेक कहानियाँ लिखी हैं इनकी कहानियों में 'सावुन का बुलबुला', 'देशभक्त कंदन', 'खेतिहर मुरुगन' आदि बड़ी ही सुन्दर और सफल कहानियों में हैं। इनकी कहानियों में वह शक्ति है जो पाठकों में ग्रामों के प्रति प्रेम और ग्राम-सुधार सम्बन्धी कार्यों के प्रति रुचि उत्पन्न करे। इनके अतिरिक्त इन्होंने मध्यम श्रेणी के लोगों के, जैसे ग्रामीण अध्यापक, मुनीम आदि के जीवन का वर्णन भी अपनी कहानियों में किया है। इन्होंने अपनी कुछ कहानियों का अँग्रेजी में भी अनुवाद किया है।

स्वर्गीय व० रा० (वी० रामस्वामी) भी श्री सुब्रह्मण्य भारती की परम्परा के हैं। इन्हें श्री भारती के साथ रहने का सौभाग्य मिला। अंधविश्वास, भाग्यवाद और सामाजिक कुरीतियों का खण्डन करने वाले होने के कारण इनकी कहानियों का विषय भी यही हो गया। आजकल के उत्साह-हीन और भाग्य पर विश्वास करके हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने वाले निठल्लों की पीठ पर कोड़े लगा कर इनकी कहानियाँ मानो कहती-सी प्रतीत होती हैं—"सुस्त लोगो, उठो यह कर्मभव संसार परिश्रम करने वालों के लिए हैं निठल्लों के लिए नहीं है।" 'कोदै तीवु' 'विजयं' आदि इनकी मुख्य कहानियाँ हैं।

मद्रास के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'कल्कि' के सम्पादक रा० कृष्णमूर्ति की 'एट्टिक्कु पोट्टी' 'शारदैयिन तंतिरंगल' आदि हास्यरस प्रधान कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ इनकी अन्य कहानियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। इन कहानियों में दैनिक जीवन में घटने वाली अनेकों घटनाओं का वर्णन सरल और विनोदात्मक ढंग से किया गया है। राष्ट्रवादी होने के कारण इनकी हाल की लिखी कहानियों में राष्ट्रीय आन्दोलनों का प्रभाव पड़ा है।

गत कुछ दशाब्दियों से कइयों ने पाश्चात्य टेकनिक पर अनेकों कहानियाँ लिखी हैं। समयानुकूल नवीन बातों का समावेश होने के कारण इनकी कहानियाँ बहुत ही लोकप्रिय हुई हैं। ऐसे कहानिकारों में 'पुदुमै पित्तन' 'पिचमूर्ति' 'रामय्या' 'चिदंवर सुब्रत्मण्यय' 'टी० एन० कुमारस्वामी' 'रावी' 'नाडोंडी' 'पूवालूर सुदररामन' वीलिनाथन आदि प्रमुख हैं। इनकी अधिकांश कहानियों में वर्तमान काल के सामाजिक और पारिवारिक जीवन को चित्रित किया गया है। तमिलनाडु की अनेकों महिलाओं ने भी अपनी अनुपम रचनाओं से साहित्य मन्दिर को अलंकृत किया है। स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व इन्होंने अपनी कहानियों द्वारा किया है। 'गुहप्रिया' 'कुमुदिनी' 'कोदैनाथकी अम्माल' कु० सावित्री अम्माल, पुष्पा महादेवन, सरोजा राममूर्ति आदि प्रसिद्ध कहानीकारों में है।

अब तक लिखी हुई कहानियों की कथावस्तु सुख-भोग में डूबे रहने वालों के जीवन से ली गयी, इन कहानियों के पात्र उच्च कुल के या सम्पन्न परिवार के लोगों में से होते थे। कहानिकारों का ध्यान उन नंगे, भूखे और गृहहीन लोगों की ओर नहीं गया जो देश में बहुसंख्यक हैं। धीरे-धीरे कुछ लेखकों का ध्यान उनकी ओर भी गया। कुछ कहानिकारों ने ऐसे स्त्री-पुरुषों के जीवन का वर्णन भी किया जो कुल-जाति और धन्धे की दृष्टि से उपेक्षित और तिरस्कृत थे। तीसरा, ऐसी कहानियाँ जिनमें यथार्थता के नाम पर अश्लील और गन्दी बातों का वर्णन हो, लिखने का काम लोगों ने साहस से किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड़ का कहानी साहित्य

श्री एम० जी० कुलकर्णी

भारत में सबसे पहले बङ्गाल में कहानी का प्रयोग हुआ। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानी का प्रभाव सारे भारत पर पड़ा। आपने करीब तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। कन्नड साहित्य भी इनके प्रभाव से दूर नहीं रह सका। करीब चालीस साल के पहले कन्नड-साहित्य में छोटी कहानी का युग प्रारम्भ हुआ।

कन्नड साहित्य में श्री मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार (श्रीनिवास) छोटी कहानी के जनक समझे जाते हैं। आप जीवन के सामान्य अंशों को भी अत्यन्त मार्मिक ढङ्ग से चित्रित करते हैं। आपकी भाषा सरल तथा शैली सुन्दर है। आपके पात्र सजीव तथा परिचित से मालूम होते हैं। आपकी कला में कृत्रिमता नाम के लिए भी नहीं है। यह आपकी विशेषता है। आपने पचास से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। आपकी कहानियाँ विशेषतः सामाजिक हैं। कुछ ऐतिहासिक भी हैं। श्री मास्ति की कुछ कहानियाँ अँग्रेजी में अनुवादित भी हो चुकी हैं। आपकी 'वेणुगानम्' तथा 'मंगम्मा' नाम की कहानियों को मद्रास के मुख्य मन्त्री श्री सी० राजगोपालाचारी जी ने तमिल भाषा में अनुवाद किया है। कन्नड के कहानी-साहित्य में आपका स्थान सर्वोच्च है।

बिजापूर जिले के श्री वासुदेवाचार्य केलूर तथा मङ्गलूर जिले के सर्व श्री पंजे मंगेशराव एवं एम० एन० कामत के नाम भी उल्लेखनीय हैं। आपने भी प्रारम्भिक काल में कहानियाँ लिखकर कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

श्री 'आनन्द' की कहानियाँ उच्च कोटि की हैं। आपने अपनी कहानियों में प्रेम की व्यञ्जना कलापूर्ण ढङ्ग से अभिव्यक्त की है। आपकी कहानियों में इतिहास के आधार पर लिखी हुई 'निजगल्ल की रानी', पात्र प्रधान कहानी 'मोची', भाव-प्रधान कहानी 'वैणिक', तर्क प्रधान कहानी 'हेमकूट के आश्रम से आने पर' तथा हास्य प्रधान कहानी 'मेरा साला' आदि श्रेष्ठ हैं। सामाजिक समस्याओं पर लिखित 'मुझ से मारी गयी लड़की' तथा 'जीवन' आदि कलापूर्ण कहानियाँ हैं। आपके दो-तीन कहानी संग्रह निकल चुके हैं जिनमें 'माटगाति' (जादुगारिन) बहुत प्रसिद्ध है।

श्री को० शि० कारन्त तथा अ० न० कृष्णराव की कहानियाँ बड़ी चुभती हुई होती हैं। आपने अपनी कहानियों में समाज का नग्न-चित्र खींचकर, सामाजिक बुराइयों पर अच्छा प्रकाश डाला है। श्री अ० न० कृष्णराव की 'चिनगारी' तथा 'बिजली' नाम के दो संग्रह प्रसिद्ध हैं।

श्री 'आनन्द कन्द' ने बहुत कम कहानियाँ लिखी हैं। फिर भी वे उच्चकोटि की हैं।

श्री के० बी० पुट्टप्पा कन्नड-साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। आप कन्नड के श्रेष्ठ कवि हैं और साथ साथ कहानीकार भी हैं। आपकी भाषा प्रौढ़ तथा शैली काव्यमय है। आपके 'मलेनाड के चित्र' तथा 'सन्यासी और अन्य कहानियाँ' आदि कहानी-संग्रह प्रसिद्ध हैं।

श्री 'अम्बिका तनय दत्त' (बेंद्रे) कर्नाटक के राष्ट्रीय तथा प्रतिनिधि कवि समझे जाते हैं। यद्यपि आपका प्रधान क्षेत्र काव्य है तथापि कहानी क्षेत्र में भी आपका एक विशिष्ट स्थान है। आपकी कहानियों में समाज की बुराइयों के उद्घाटन के साथ साथ सुधार की ओर भी प्रवृत्ति दिखाई देती है। आपकी भाषा सरल तथा शैली भावात्मक है।

इनके अलावा सर्व श्री० पु० ति० नरसिंहाचार, गोपाल कृष्णराव, कृष्णकुमार कल्लूर, जी० पी० राजरत्नम्, आर० एस० मुगली, ना-कस्तूरी, ईश्वरन्, सी० के० वेंकटरामय्या, गोरूर रामस्वामी अय्यंगार तथा क्षीर सागर आदि का नाम भी उल्लेखनीय है।

स्त्री लेखिकाओं में श्रीमती जयलक्ष्मी श्रीनिवासन्, बी० टी० जे० कृष्ण, लीला कारंत, शामला तथा कुमारी पद्मावती आदि प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक युग में अङ्गरेजी, हिन्दी, बङ्गला, मराठी,

(शेष पृष्ठ १२१ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी कहानी-साहित्य का क्रमिक विकास

श्री बलवन्त लक्ष्मण कोतमिरे

आधुनिक मराठी कहानी की आयु सत्तर वर्षों की है। अंग्रेजी भाषा द्वारा मराठी कहानी को आधुनिक रूप मिला है और आज वह भारतीय आधुनिक भाषाओं के कहानी-साहित्य में विशेष स्थान पा रही है तथा विश्व की अनेक भाषाओं के साथ वह भी विश्व भाव के साथ विश्व की समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा कर रही है।

मराठी भाषा के साहित्य में वैभवशाली वधू के समान अँग्रेजी भाषा का प्रवेश हुआ। उस वैभवशाली वधू ने अपने सम्पन्न गुणों से मराठी साहित्य को विशाल तथा स्वतन्त्र बनाया। मराठी साहित्य के आज के वैभव में कहानी-साहित्य को अत्यन्त महत्व का स्थान मिला है। मराठी कहानी के इस विशाल तथा कलात्मक रूप के निम्नलिखित मुख्य चार काल माने जाते हैं :—

१—प्रारम्भिक काल : सन् १८८० से १९१० तक,
२—प्रयोग काल : सन् १९१० से १९२५ तक,
३—विकास काल : सन् १९२५ से १९४० तक,
४—उत्कर्ष काल : सन् १९४० से १९५० तक,
५—स्वतन्त्र काल : सन् १९५० से आगे....

इन चार कालों में मराठी कहानी अपने प्रारम्भिक काल (१८८०-१९१०) में अपना कोई विशेष अस्तित्व नहीं रखती थी। वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अरबी, फारसी, अंग्रेजी, बङ्गला आदि भाषाओं से परिचित हो गयी थी। पं० कृष्ण शास्त्री चिपलूनकर ने अरबी भाषा में से अनेक सुन्दर कहानियों का अनुवाद सन् १८३१ में "अरबी भाषेतील सुरस और चमत्कारिक गोष्टी" शीर्षक कथा-संग्रह द्वारा प्रकाशित किया। उसी प्रकार संस्कृत साहित्य में से पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, कादम्बरी, दशकुमार चरित्र आदि कथात्मक वाङ्मय का अनुवाद मराठी में हुआ था।

अँग्रेजों का प्रभुत्व भारत में ठीक रूप से बैठने के बाद भारतीय कथाएँ अँग्रेजी भाषा का प्रचार होने के कारण अँग्रेजी साहित्य से परिचित तथा प्रभावित होने लगीं। अठारहवीं शताब्दी में बम्बई शहर अंग्रेजों के लिए भार का मुख्य द्वार के रूप में था। इसलिए मराठी भाषा बोल वाले लोगों का सम्बन्ध जल्दी से अँग्रेजी साहित्य में आ लगा। क्योंकि मराठी भाषियों को बम्बई नगर बहुत नजदी था। इस तरह मराठी कहानी ने अँग्रेजी कथा-साहित्य सीधा सम्बन्ध रखकर अपने रङ्ग और रूप में योग्य सुध करने का मौका मिला है।

मराठी कहानी के प्रारम्भिक काल के प्रतिभावान् लेख ने अपनी प्रतिभा का उपयोग अँग्रेजों के प्रभुत्व को भारत निकालने के लिये वैचारिक आन्दोलन करने के लिये किया अपने राष्ट्रीय विचारों को लोगों के सामने रखने के लिए लेखकों ने अनेक समाचार पत्रों के सम्पादकों का क किया। इन प्रतिभावान् सम्पादकों में न० चिं० केलक शिवराम पन्त पराञ्जपे, अच्चुनराव कोल्हटकर, खाडील आदि मुख्य थे।

इस काल में पाठकों के सामने राजनीतिक विचार र जाते थे। देश के सामने अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता का प्र था। साहित्य के लालित्य की सूक्ष्मता की ओर न लेख को आकर्षण था न पाठकों को। मनोरञ्जन के लिए उन सामने उपन्यासों की सृष्टि थी। कहानी की सूक्ष्मता अ भावुकता की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। । समय 'कमणुक', 'मासिक मनोरञ्जन' आदि पत्रिकाओं अँग्रेजी के 'रॉयल' 'सन्दल' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशि साधारण लेखकों की कहानियों के अनुवाद निकलते अनुवाद करने के लिये अनुवादकों ने अँग्रेजी साहित्य प्रसिद्ध कहानीकारों की कहानियों का अनुवाद करने का कष्ट नहीं उठाया।

इस समय लेखकों के सामने राजनीतिक, सामाजि धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि प्रश्न थे। केलकर खाडीलकरजी, कोल्हटकरजी, पराञ्जपे आदि लेखकों अपने राजनीतिक विचारों का प्रचार करने के लिए अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिभा का उपयोग किया। प्रसिद्ध उपन्यासकार हरिनारा- ण आपटे ने अपने कथा-साहित्य द्वारा सामाजिक सुधार रने का प्रयत्न किया। सामाजिक अन्यायों के विरुद्ध अपना ात्मिक सन्ताप प्रगट करने के लिए 'कुटुम्ब शिक्षण माला' अनेक निबन्धात्मक कथाएँ लिखी हैं। का० र० मित्रजी अपनी 'मनोरञ्जन' पत्रिका से महिलाओं के देवीत्व के का प्रचार करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार सामाजिक ार के चक्कर में सब कहानीकार पड़ गये थे इसलिए ानी की सूक्ष्मता तथा कलात्मकता की ओर किसी का ान नहीं गया।

आपटे जी ने अनेक छोटी कथायें लिखीं, परन्तु किसी भी आधुनिक मराठी कहानी के गुण नहीं मिलते। श्री ० सी० गुर्जर ने आपटे जी की परम्परा को आगे बढ़ाया। र्जरजी ने बंगला कथा साहित्य की भावुकता और लालित्य मराठी कहानी में ले आने का प्रयत्न किया। गुर्जरजी समान बंगला-साहित्य के लालित्य से मराठी कहानी को जाने का प्रयत्न बा० गो० आपटे, द० बा० अत्रे, द० ० कुलकर्णी, ना० कु० आगाशे आदि व्यक्तियों ने या है।

गुर्जरजी ने जिस प्रकार बंगला कथा-साहित्य से मराठी नी-साहित्य को सम्पन्न करने का प्रयत्न किया इसी ार, कृ० के० गोखले ने अंग्रेजी भाषा के बलपर मराठी नूदित कथाओं को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। र्जरजी की की कथाओं में लघुत्व था लेकिन कहानी के ु नहीं थे। लेकिन गोखले जी की कथाओं में कहानी के त-रूप का कलात्मक विकास था। गोखले जी के समान र्जरजी आपटे के साथ भी लिखते थे। लेकिन आपटे जी कला उपन्यास निर्मिति की ओर अधिक झुक गये थी। पटे जी पहले उपन्यासकार थे, बाद में कहानीकार। न्तु गुर्जर जी पहले कहानीकार और बाद में उपन्यास- र।

आपटेजी की परम्परा को आगे व्यवस्थित रूप देने का ा प्रसिद्ध उपन्यासकार ना० सी० फडकेजी ने किया है। केन गुर्जरजी पुरानी तथा आधुनिक परम्परा के लेखक उनकी अभी तक छह सौ तक कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। गुर्जरजी कोल्हटकर, आपटेजी, गोखलेजी आदि पुराने कहानीकारों के साथ कहानी-साहित्य की निर्मिति कर रहे थे। वैसे ही आज भी आधुनिक परम्परा के फडकेजी, भावेजी, गोखलेजी, गाडगीलजी, चोरघडेजी, जोशीजी आदि के साथ लिख रहे हैं। १९१० से १९२५ तक मराठी कहानी का प्रयोगकाल माना जा सकता है। इस काल में कहानी को अपना स्वतन्त्र रूप मिला है। इस काल में गुर्जरजी के साथ कृष्णाजी केशव गोखले, नारायण हरि आपटे, वा० ना० देशपांडे, आनन्दीबाई शिर्के आदि ने कहानी को कलात्मक-रूप देने का श्रम उठाया है। इसी काल में आधुनिक मराठी कहानी के निर्माता दिवाकर कृष्णजी की कहानियों का निर्माण हुआ।

श्री दिवाकर कृष्णजी का 'समाधि और छह कहानियाँ' नामक एक कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ। दिवाकर कृष्णजी की कहानियों में आपटेजी तथा गुर्जरजी की कहानियों की अपेक्षा अधिक कलात्मकता थी। 'मृणालिनीचें लावण्य', 'वेडया ची कहाणी', 'समाधि' आदि कथाओं को पढ़ कर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनेक कहानियों की याद आती है। रवीन्द्र की कथाओं का काव्यमय वातावरण और भावुकता उनकी कहानियों में भावदर्शन की व्यापकता के साथ दिखाई पड़ती है। दिवाकरकृष्णजी के बाद वि० स० खाण्डेकर की कहानियों का निर्माण काल आता है। सन् १९२३ में उनकी कहनी 'घरकुणाचें ? (किसका मकान ?) प्रकाशित हुई।

सन् १९२५ से १९४० तक का काल सम्पूर्ण रूप से मराठी कहानी के विकास का काल आता है। इस काल में कहानी में उसकी भावुकता के साथ कलात्मकता का सम्पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। सन् १९२९ में 'रत्नाकर' मासिक के जन्म के साथ इस काल का आरम्भ होता है। इस काल में न० चिं० केलकर, गुर्जरजी, वा० म० जोशी, ना० ह० आपटे आदि कहानीकार अपनी कहानियों का निर्माणकर रहे थे। लेकिन नारायण सीताराम फडके, और विष्णु सखा-राम खांडेकर की कहानियों ने इस काल के कहानी-साहित्य में क्रान्ति की है। दोनों ही अध्यापक थे, इसलिये दोनों ही पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में आये थे। इसलिये उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियों में पाश्चात्य आधुनिक कहानी का आधुनिकरूप मिलता है।

खांडेकरजी और फडकेजी इस काल के प्रमुख कहानी लेखक हैं, फिर इनके कहानी निर्मिति की धाराएँ अलग-अलग बही हैं। कलावादी फडकेजी कहानी के कलात्मक और विलासमय रूप की ओर आकर्षित हुए हैं, तथा जीवनवादी खांडेकरजी गाँधीवाद और समाजवाद के अपूर्व मिश्रण द्वारा जीवन के सुधार की ओर आकर्षित हुए हैं। दोनों के साहित्य के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोण होने के कारण मराठी कहानी-साहित्य का भण्डार उनकी विविध प्रकार की कहानियों के द्वारा समृद्ध हुआ है। फडकेजी की कहानियों में सुशिक्षित युवक-युवतियों के विलासमय जीवन का चित्रण कलात्मक ढङ्ग से चित्रित किया है। इसलिये उनकी कहानियों में कलात्मकता, सजीवता, सरलता और स्वच्छन्दता आयी है।

जीवनवादी खाण्डेकर जी की कहानियाँ ध्येयात्मक, गम्भीर और उपदेशात्मक हैं। खाण्डेकरजी की कहानियों के पात्र फड़केजी की कहानियों के समान समाज के ऊँचे स्तर के नहीं है, बल्कि किसान, मजदूर, देशभक्त आदि साधारण व्यक्तित्व का जीवन लेकर चित्रित हुए हैं। फड़केजी ने अपनी कहानियाँ पाठकों को स्वर्ग के माधुर्य का अनुभव कराने के लिये लिखी हैं, लेकिन खाण्डेकरजी ने अपनी कहानियों में मृत्युलोक के जीवन की वास्तविकता का कठोर चित्रण किया है। खाण्डेकरजी के लिये कहानियों की पृष्ठभूमि युद्ध क्षेत्र के रूप में दिखाई पड़ता है। खाण्डेकर और फड़केजी की कहानियों का आदर्श मराठी कहानी-साहित्य के उत्कर्ष काल में अपनी पूर्णता को प्राप्त कर सका।

सन् १९४० से १९५० तक का काल मराठी कहानी-साहित्य का उत्कर्षकाल माना जा सकता है। सन् १९३५ के आसपास 'प्रतिभा' और 'ज्योत्स्ना' आदि मासिकों के द्वारा इस काल के प्रतिनिधि कहानीकार पाठकों के सामने आये। १९३५ के बाद मराठी कहानी में उत्कर्षकाल की विशेषताओं का धीरे धीरे दर्शन होने लगा। मराठी कहानी अपने चरम विकास की ओर धीरे धीरे बढ़ने लगी। उसकी आत्मा सूक्ष्मता का रूप धारण करने लगी। इस काल की कहानियों में व्यक्ति के मन की अपेक्षा सामाजिक वृत्तियों का विश्लेषण अधिक होने लगा। व्यक्ति की भावुकता के साथ जीवन के गाम्भीर्य का समन्वय चित्रित होने लगा। इसी काल में य० गो० जोशी, अरविंद गोखले, चिं० वा० जोशी, व्यंकटेश माडगूलकर, गंगाधर गाडगील, दिघे आदि कहानीकारों की कहानियों में मराठी कहानी का आधुनिक रूप पूर्ण विकसित रूप में दिखाई देने लगा।

उत्कर्षकाल के कहानीकारों में बामन चोरघडे और अरविंद गोखले को महत्व का स्थान दिया जा सकता है। इस काल की कहानियों में सौम्यता, तीव्रता और विविधता दिखाई पड़ती है। अब कहानी अन्तर्मुखी हो गयी है। फ्रायड के सिद्धान्त के अनुसार कहानियों में मनोविश्लेषण के सिद्धान्त के अनुसार पात्रों के मनोभावों को चित्रित करने का युग चल रहा है। कहानी के प्रसंग या तंत्र की अपेक्षा मानवीय वृत्ति को अधिक प्राधान्य मिलने लगा। जीवन के यथार्थवाद की अपेक्षा मनुष्य के आदर्श गुणों और भावनाओं का आन्दोलन करने वाली कहानियों का निर्माण होने लगा।

इस काल में देश के स्वातन्त्र्य के साथ जीवन का स्तर कुछ ऊँचा होने लगा। जीवन की प्रवृत्तियाँ सामाजिक और विश्व के आदर्श रूप के प्रति आकर्षित हुई हैं। मनुष्य की कोमल भावनाओं का कलात्मक विश्लेषण सौ० कमल फड़के, कु० लीला देशमुख, विभावरी शिरूरकर, इन्दिरासन्त, शान्ता ज० शेलके आदि कहानी-लेखिकाओं के द्वारा स्त्रियों की मनोभावनाओं का विश्लेषण करने वाली कहानियों में होने लगा। इस प्रकार देश के स्वातन्त्र्य के साथ उत्कर्षकाल की कहानी अपने चरम विकास की ओर अग्रसर होने लगी है।

सन् १९५० के बाद की आधुनिक मराठी कहानी अपने अस्तित्व का उपयोग भारत की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने तथा मानवीय आदर्श भावनाओं का विश्लेषण करने विश्वभाव के साथ विश्वसाहित्य की ओर अग्रसर होने का कर रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती कहानी साहित्य के पाँच कर्णधार

श्री हरेश झवेरी

प्रत्येक साहित्य के कुछ साहित्यकार ऐसे होते हैं, जिनका विकास सर्वतोमुखी होता है। गुजराती साहित्य भी उस नियम का अपवाद नहीं है, अतः यहाँ उन पाँच कहानी लेखकों का परिचय (संक्षिप्त) दिया जाता है, जिनकी गति सर्वतोमुखी होती हुई भी कहानी-कला में विशेष रूप से प्रेगवती है। उनमें से प्रथम नाम श्री 'धूमकेतु' का आता है। आपका मूल नाम श्री गौरीशङ्कर गोवर्धन जोशी है। इस समय आप अहमदाबाद में शिक्षक रूप से काम करते हैं।

गुजराती साहित्य में पहले कहानी का स्थान महत्वपूर्ण नहीं था। किसी भी साहित्यकार ने उस समय तक, उस साहित्य को हाथ नहीं लगाया था। अतः कहानी साहित्य की शैशवावस्था ही गुजराती साहित्य में, श्री धूमकेतु के पहले थी। और जो कहानियाँ थीं भी वे भी पुरातन पञ्चतन्त्रा-गामिनी सीधा उपदेश देने वाली और प्रामीण थीं। उनमें नोवैज्ञानिक सत्यों का आविष्कार अभी बाकी था। ठीक से ढुँढले समय में श्री धूमकेतु ने उस क्षेत्र को पकड़ा—पकड़ा ही नहीं—उसे समृद्ध भी कर दिखाया। उनकी कला मनोवैज्ञानिक है। उनकी कहानियाँ किसी हेतु को लक्ष्य करके ही लिखी गई हैं। श्री धूमकेतु की कहानियों में बहुधा गरीबों और गरीबी का ही चित्रण मिलता है। अपने मंतव्यों को शान्त बुद्धिव्यापार द्वारा नहीं, पर प्रबल ऊर्मियों के द्वारा चित्रात्मक रूप देना—यही श्री धूमकेतु की विशेषता है। इसी से उसमें विचार प्रेरकता और वेधकता आती है।

श्री धूमकेतु का पात्रालेखन सबल है। वस्तु सङ्कलन चमत्कृतिमय है और उनकी कहानी का ध्वनि वाचक के हृदय में प्रविष्ट हो जाय, ऐसा सफल उनका आलेखन है। एक सामान्य और वास्तविक प्रसङ्ग को लेकर, उसमें रङ्ग-बिरङ्गी आकृति करके उस प्रसङ्ग को हृदयङ्गम, सबल और पूर्ण वास्तविक बना सकते हैं। उनकी शैली सरल, आकर्षक, हृदयमय और विषयानुकूल है।

कहानीकारों में दूसरा महत्वपूर्ण स्थान है श्री पन्नालाल पटेल का ग्रामीण सहवास के अत्यन्त आधिक्य से वे ग्राम्य-हृदय से अत्यन्त परिचय पा सके हैं। और इसीलिए अग्र-गण्य साहित्यकारों से जो अभी तक उपेक्षित ही थे। उन सत्य और वास्तविक ग्रामीण जीवनों पर उनकी दृष्टि पड़ी। इस प्रकार गुजराती कहानी साहित्य में इस अङ्ग की पूर्ति का श्रेय श्री पन्नालाल पटेल को मिला। पहले एक ही विषय से गुजरात ऊब गया था—अब श्री पटेल ने एक नये क्षेत्र का उद्घाटन किया; और उनकी कहानियाँ पाकर गुजरात ने उनका आदर भी समुचित किया।

जिस प्रकार श्री धूमकेतु गरीबों के साथी बने, उसी प्रकार श्री पन्नालाल पटेल ने गाँवों का (पिछड़े हुए गाँवों का) पक्ष लिया। श्री पटेल की कहानियाँ स्वयं कहती हैं कि "वे विशेष प्रबल और विशुद्ध मानवता, कृत्रिम वातावरण में रहे हुए शहरी में नहीं, प्रत्युत अकृत्रिम वातावरण में पले हुए ग्रामवासियों में ही रहती हैं।" उनकी कहानियों में देहाती शब्दों और रूढ़िप्रयोगों का बड़ी उदारता से उपयोग पाया जाता है। उनकी शैली वास्तविक और आकर्षक है।

तीसरा नाम आता है श्री गुलाबदास ब्रोकर का। सन् १९३२-३३ के सत्याग्रह में श्री ब्रोकर ने भाग लेकर जेल-वास किया। समयापन की इच्छा से उन्होंने वहाँ लेखन-प्रवृत्ति का आरम्भ किया। इस प्रकार श्री ब्रोकर द्वारा स्वीकृत जेलवास गुजरात के लिए लाभदायी हुआ।

दैनिक जीवन के अति सामान्य प्रसंगों को लेकर उनको अपनी शैली से अत्यन्त रसमय बना कर वाचक को उसमें तन्मय बनाना—यही श्री ब्रोकर की विशेषता है। इस विशेषता से ही वे आज गुजराती कहानी लेखकों में सम्मान्य पद भोग रहे हैं।

श्री ब्रोकर की दृष्टि समाज की छोटी-छोटी वस्तुओं पर घूम जाती है और उनमें से किसी भी छोटी वस्तु को वे यथाशीघ्र खींच लेते हैं। इस वस्तु को रूप, रङ्ग, आत्मा और वास्तविकता देकर उसकी बाह्य और आन्तरिक पीड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सुन्दर बना देते हैं, इस प्रकार वे गुजरात को सुन्दर, सामाजिक कहानियाँ सदैव देते रहते हैं। श्री बोकर समाज के अच्छे बुरे दोनों पार्श्वों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवलोकन करते हैं। समाज का एक भी अनिष्ट तत्त्व अपनी दृष्टि में आने पर, आप उस पर तुरन्त कटाक्ष कर देना कभी नहीं भूलते।

चौथे हैं श्री रामनारायण वि० पाठक, आजकल आप भारतीय विद्या-भवन की गुजराती भाषा और साहित्य-विभाग का सञ्चालन कर रहे हैं। श्री पाठक ने जिस विषय को अपने हाथ में लिया है, उस विषय को उन्होंने कुछ नया और विलक्षण रूप देकर, पूर्ण सफलता से गुजरात को पुनः समर्पित किया है। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में आपकी बड़ी देन है। आप ख्यातिप्राप्त कहानी लेखक, कवि, विवेचक और पत्रकार हैं। 'स्वैर विहार' नामक पुस्तक में अपने हास्य-रस प्रधान लेखों का संग्रह करके गुजरात के एक हास्य लेखक भी आप बने हैं। वे प्रायः 'शेष', 'द्विरेषु' 'स्वैर विहारी' आदि उपनामों से ही लेख लिखते हैं। आपकी कुछ कहानियों की, गुजराती की उत्तम कहानियों में गणना की जाती है।

पाँचवें कहानीकार हैं श्री ईश्वर पेटलीकर। सन् १९४० में न्यूयार्क के 'हेरल्ड ट्रिब्यून' नामक एक दैनिक पत्र ने संसार की श्रेष्ठ कहानियों की प्रतियोगिता प्रकट की। अपने भारत की कहानियाँ भी उसमें स्थान प्राप्त कर सकें—इस इच्छा से दिल्ली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नामक दैनिक पत्र ने अखिल भारतीय श्रेष्ठ कहानी प्रतियोगिता की योजना सञ्चालित की। गुजरात भी उस प्रतियोगिता में भाग ले सके इस इच्छा से 'जन्मभूमि' नामक गुजराती दैनिक ने गुजरात की श्रेष्ठ कहानी प्रतियोगिता उपस्थित की।

गुजराती में श्री पेटलीकर की कहानी का प्रथम नम्बर रहा। इस कहानी ने अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में भी स्थान लेकर गुजरात का नाम रक्खा। वह कहानी थी 'लोहिनी सगाई'। उस कहानी ने मुझ में श्री पेटलीकर के विषय में आदर भाव उत्पन्न किया। इसके बाद जैसे-जैसे श्री पेटलीकर की कहानियों का मैंने अध्ययन किया, वैसे ही श्री पेटलीकर ने मेरे हृदय में गुजरात के श्रेष्ठ कहानीकार के नाते अपना नाम अंकित कर लिया। अपनी कहानियों में उन्होंने देहाती व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण और वास्तविक चित्र चित्रित किया है। उन्होंने समाज के रूढ़िवादी वर्ग पर, उनकी मान्यताओं पर और उनके विचारों पर कटाक्ष किया है। 'ग्रामचित्रो' नामक उनकी पुस्तक गुजरात में प्रसिद्ध है। आजकल आप आनन्द (गुजरात) में रह कर 'पाटीदार' नामक मासिक पत्र का सञ्चालन कर रहे हैं।

(पृष्ठ ३२३ का शेषांश)

लिखीं जो बहुत पसन्द की गयीं। वस्तुतः आपकी लेखनी में जादू भरा था। 'इन्तखाब अवधपञ्च', 'सर गुजश्ता हाजी बगलूल' आदि आपकी प्रसिद्ध कहानी-पुस्तकें हैं। सैयद अहमदशाह बुखारी पतरस की हास्यमयी कहानियाँ खूब प्रसिद्ध हैं। मुल्ला रमूजी और शौकत थानवी ने भी हास्य रस में सुन्दर कहानियाँ लिखकर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। 'दुनियाये तबस्सुम', 'विदेशी रेल', 'मौजे तबस्सुम', 'बहारे तबस्सुम', 'सैलावे तबस्सुम', 'तूफाने तबस्सुम', 'दिलफेंक' आदि थानवी की लिखी पुस्तकों की बड़ी धूम है। हास्य रस सम्बन्धी कहानियों की दुनिया में मिर्जा-अजीमबेग चगताई का स्थान बहुत ऊँचा है। आपकी कहानियाँ शिष्ट हास्यरस की सुन्दर कला-कृति हैं। ये कहानियाँ सर्व साधारण ने इतनी पसन्द की हैं कि कितनी ही भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं। हिन्दी में भी उनके अनुवाद हैं। लोग पढ़ते और 'वाह-वाह' कहते हैं। 'कोलतार', 'रूहेजराफत', 'रूहे लताफत', 'खानिम' आदि आपकी प्रसिद्ध कहानी-पुस्तकें हैं। मिर्जा फरहत उल्ला बेग भी हास्यरस सम्बन्धी कहानियाँ लिखने में अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आपका भी हास्य बड़ा शिष्ट और सुन्दर होता है। 'गुब्बए तबस्सुम', 'मजमूआ जराफत', 'तूफाने जराफत' आदि इनकी लिखी प्रसिद्ध कहानी-पुस्तकें हैं।

अभिप्राय यह है कि इस अल्पकाल में उर्दू कहानी-कला की अच्छी उन्नति हुई है। इस लेख की इन कतिपय पंक्तियों द्वारा इस विषय का पूरा परिचय दे सकना कठिन है। फिर भी कहानी की दिशा की ओर कुछ न कुछ निर्देश तो है ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगला भाषा में कहानी

श्री हरप्रसाद बागची एम० ए०

सभी आधुनिक आर्य भाषाओं के समान 'बँगला-साहित्य' का विकास संस्कृत तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के आधार पर हुआ किन्तु 'कहानी' के सम्बन्ध में कुछ मौलिकता बँगला साहित्य में भी दिखाई पड़ती है। यह सर्व सम्मत तथ्य है कि आधुनिक गल्प-साहित्य का विकास नवीन प्रयोगों का परिणाम है पर उसके पीछे बँगला का भी अपना 'कुछ' अवश्य है। बङ्गाल में भी धार्मिक श्रद्धा (अन्ध विश्वास) ने 'मनसा देवी' की कहानी दी है। मनसादेवी की पूजा के समय उनके माहात्म्य को प्रकट करने के लिये 'पाँचाली' गाई जाती थी। 'मनसा मङ्गल' काव्यों में जिस कहानी का वर्णन है वह लोक कथा ही है क्योंकि वह किसी पुराण में नहीं मिलती। निम्न श्रेणी के किसी लोक-कवि ने इस कहानी को पद्य बद्ध किया जब कि लोक कथा के रूप में यह १६ वीं शताब्दी के पूर्व से ही प्रचलित रही होगी। इसमें देवी की शक्ति, चमत्कार, आदि प्रकट किया गया है। इसके समानान्तर अनेक धर्म कथाएँ प्रचलित रही होंगी। साथ ही संस्कृत की परम्परा में 'वैतालपंचविंशति हितोपदेश' आदि से जनता अपना मनोरञ्जन करती रही। धार्मिक कथाओं में 'मनसादेवी' की कथा के समान 'चण्डी-मङ्गल' 'कालकेतु व्याधा' की कथाएँ व्रत कथा के रूपमें प्रचलित थीं। इनको पद्य का रूप बाद में मिला। एक तीसरी धारा है 'जीवनी साहित्य' का जो वस्तुतः कहानी के अन्तर्गत ही आता है क्योंकि उनमें कहानी के सभी गुण हैं, इनमें भक्तों, आचार्यों की जीवनियों के साथ कवियों ने अपने जीवन सम्बन्धी रोचक वृत्तान्त कविता में दिये हैं जो प्राचीन 'जातक' कहानियों की 'गाथाओं' की परम्परा का स्मरण दिला देते हैं यथा 'धर्म मङ्गल रचयिता 'रामदास आदक' की आत्म कथा (१६६३)। 'शून्य पुराण' जो १५ वीं शताब्दी से पीछे की रचना नहीं मानी जाती हमारे सम्मुख कई कहानियों के खण्ड प्रस्तुत करती है।

इसके अतिरिक्त शैवाख्यानों की कथाएँ अत्यन्त रोचक हैं। ये प्रायः अलौकिक और अपेक्षाकृत प्राचीन हैं इन्हें दो भागों में बाँट सकते हैं (१) मीननाथ, गोरक्षनाथ की कहानी (२) गोविन्द चन्द, मयनावती की कहानी।

फोर्टविलियम कॉलेज की स्थापना से बँगला साहित्य ने एक नया मोड़ लिया। प्रथम तो अनुवादों की भरमार हुई किन्तु ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 'वेतालपञ्चविंशति' द्वारा नवीन गद्य को तो जन्म दिया ही साथ ही छोटी कहानियों के लिए उचित भूमि प्रस्तुत की। उनकी 'पाठ्य पुस्तकों' में 'सीता का वनवास' तथा 'आख्यान मञ्जरी', 'कथा माला', 'चरितावली' आदि प्रारम्भिक कृतियाँ होने पर भी एक नूतन युग का सन्देश लाती हैं। फिर भी प्रथम गल्पकार 'भूदेव' (१८२५ से १८९४ ई०) को माना जाता है जिनका कहानी संग्रह है 'अँगुरीय विनिमय'। बङ्किम बाबू के दुर्गेश नन्दिनी पर भूदेव के अँगुरिय-विनिमय का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य था।

यह युग पत्र-पत्रिकाओं का था अतः नियमित रूप से कथा साहित्य की श्री वृद्धि होने लगी।

वस्तुतः 'बङ्किम' की कहानियों में कथा की प्रथम किरण फूटी, जहाँ सामान्य पात्रों को भी एक विशेष गरिमा से अभिमण्डित कर असाधारण रूप में उपस्थित किया गया। एक रोमाण्टिक स्वप्नालोक की दीप्ति से प्रत्येक पात्र का व्यक्तित्व जगमगा उठा, बङ्किमबाबू के ज्येष्ठ भ्राता सञ्जीवचन्द्र ने भी अच्छा साहित्य दिया उनमें पर्याप्त मौलिकता विद्यमान है। उनकी 'पालामौ' श्रेष्ठ भ्रमण कहानी मानी जाती है। महर्षि देवेन्द्रनाथ की सुपुत्री स्वर्णकुमारी देवी ने अच्छी कहानियाँ दी हैं, फिर भी यही कहना होगा कि उपन्यासों के क्षेत्र में जितना कार्य हुआ उतना कथा के क्षेत्र मे नहीं हो सका। 'बङ्किम' की महानता उनके उपन्यासों के कारण है।

रवीन्द्र की प्रतिभा के स्पर्श से 'कथा' भी चमक उठी, कहानी की टेक्नीक की दृष्टि से उत्कृष्ट आधुनिक रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रवीन्द्र' की कथाओं में दर्शनीय हुआ। यह एक नवीन सृष्टि थी, आज प्रायः प्रत्येक भाषा के साहित्य में 'छोटी कहानी' का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, बँगला में कहानी को इतना महत्व 'रवीन्द्र' के ही द्वारा मिला यह एक संयोग था। बङ्किम, सञ्जीवचन्द्र की कहानियाँ टेकनीक की दृष्टि से प्राचीनता को लिए हुए थीं, क्योंकि उनमें 'छोटे उपन्यास' या 'बड़ी गल्प' के तत्व विद्यमान थे। अतः जिसे हम 'माडर्न शार्ट स्टोरी' कहते हैं उसके प्रतिनिधि हैं रवीन्द्रनाथ टैगोर। 'गीताञ्जलि' के समान ही उनकी छोटी कहानियों का महत्व है, आज तक इनकी कहानियाँ अद्वितीय हैं। रवीन्द्र की कहानी की विशेषता है उनका कवित्वमय वर्णन तथा मनोभावों का सूक्ष्म अङ्कन। इसके अतिरिक्त वातावरण प्रधान कहानी लिखने में रवीन्द्र के जोड़ माने जाते हैं। हिन्दी में कल्पनाशीलता, कवित्वमय वार्तालाप, प्रेम व रहस्य का मिश्रण तथा वातावरण सृष्टि आदि तत्व 'प्रसाद' की कहानियों की मुख्य विशेषतायें हैं। 'प्रसाद' की कहानियों पर 'रवीन्द्र' का प्रभाव अवश्य था, वे घटनात्मकता पर उतना जोर नहीं देते जितना वातावरण की सृष्टि पर, साथ ही मनोवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण अत्यन्त ही मोहक होता है। बङ्किम को केवल सामान्य स्तर के मनुष्यों का ही अनुभव था, उन्हें असाधारण व्यक्तित्व देने में उनकी कला अन्यतम है किन्तु रवीन्द्र की अनुभूति व्यापक थी। उनकी कहानियाँ चोट नहीं करतीं, आत्म प्रवण उत्पन्न करके 'कचोट' उत्पन्न करती हैं। कहीं प्रेम की रङ्गीनी है, कहीं रहस्य की निगूढ़ता तो कहीं सारी घटना के पीछे सिसकता हुआ कोई भाव जिसको पहचान कर पाठक मुग्ध हो जाता है। मानव-स्नेह, कोमलता, करुणा को जगाने में उनकी कहानियाँ अत्यन्त सफल हुई हैं।

"आभिजात्य" कला के श्रेष्ठ प्रतिनिधि होकर भी उनमें सामान्य मानवता के तत्व अक्षुण्ण हैं। उपन्यासों से उनकी कहानियों का महत्व अधिक भले ही हो कम तो किसी प्रकार भी नहीं है। प्रेमचन्द को भी अधिक सफल कहानीकार माना जाता है।

१९ वीं शताब्दी के अन्त में बड़ी कहानियों की सृष्टि श्री शरदचन्द्र मजमूदार ने की थी। रवीन्द्र जैसी कला की बारीकी यहाँ नहीं है पर फिर भी वह मार्मिक अवश्य है। रवीन्द्रनाथ के होते हुए यदि किसी ने कहानियों में विशेष नाम पाया था तो वह थे प्रभात कुमार मुखोपाध्याय। "ललितकुमार बन्द्योपाध्याय ने भी कुछ अच्छी कहानियाँ लिखी थीं परन्तु इन तीनों को छोड़ कर शायद ३० वर्ष के भीतर नामी कहानी लेखक कोई नहीं हुए थे।" रवीन्द्र के बाद 'शरदचन्द्र का ही नाम आता है जो बङ्गाल के सबसे अधिक जनप्रिय कथाकार माने जाते हैं। 'शरद' के कथा-साहित्य में 'रोमांस' कुछ अधिक हो जाता है अतः रोचक तो वह अवश्य होता है परन्तु पाठक की चित्त-वृत्ति पर उसका प्रभाव सदा अच्छा पड़ेगा यह कहना कठिन है क्योंकि उनके पात्र प्रायः उत्तरदायित्वहीन, किसी भावना-विशेष के (और वह प्रायः प्रेम की ही होती है) शिकार रहते हैं। 'शरद' की सरलता मनमोहक है। वहाँ कवित्व नहीं है, परन्तु भावों के चित्रण में उन्हें अत्यन्त सफलता मिली है। रवीन्द्र में तीव्रता नहीं है, उनकी सहानुभूति एक रस तथा व्यापक है, परन्तु 'शरद' में तरलता अधिक है। उनमें निम्न जनता के प्रति सहानुभूति भी है, 'रवीन्द्र' के समान ये रस स्रष्टा मात्र नहीं हैं। उनकी प्राण शक्ति 'मानव' के प्रति अधिक यथार्थ के पथ पर है परन्तु फिर भी उन्हें एक विशुद्ध यथार्थवादी कथाकार नहीं माना जा सकता। क्योंकि पात्रों के अन्तर्मन के सौन्दर्य को सबसे सुन्दर ढङ्ग से चित्रित करने वाला शरद का साहित्य भी अपनी असाधारणता से पीछा नहीं छुटा सका। फिर भी उनके चरित्रों में भलाई-बुराई दोनों चित्रित की गई हैं, वे हमारे चिर परिचित से लगते हैं, हम उन्हें याद रख सकते हैं, उनके साथ हँस सकते हैं, रो सकते हैं परन्तु हम वही नहीं बन सकते। बनना भी नहीं चाहते, भावुकता का आधिक्य मनुष्य में कोई बहुत बड़ा गुण नहीं है—यह बात शरद-साहित्य से स्पष्ट है। शरद साहित्य में एक और दोष है—एक रसता। प्रायः एक ही नारी विभिन्न रचनाओं में एकसा गुण, शील लेकर चलती फिरती दृष्टिगोचर होती है। शरदचन्द्र ने कुछ मार्मिक कहानियाँ जिनको अँग्रेजी में Novelette कहते हैं लिखी हैं परन्तु उनका वास्तविक स्थान औपन्यासिकों

(शेष पृष्ठ ३४१ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज की कहानी की गतिविधि : पाश्चात्य आदर्श

प्रो० नागरमल सहल एम० ए०

कहानी प्राचीन होते हुये भी नवीन है और नवीन होते हुये भी पुरातन सृष्टि है। यह उसका शाश्वत गुण है। कहानी कहना-सुनना मानव का सनातन धर्म रहा है। इस कहानी से ही मनुष्य की जीवन-गाथा बढ़ती है। कहानी का सहज आकर्षण असंदिग्ध है। इतिहास, दर्शन-शास्त्र आदि विषयों में भी कहानी (Anecdote) का संपुट बड़ा रुचिर लगता है। दर्शनशास्त्र की सैद्धान्तिक ऊहापोह में श्रान्त मस्तिष्क को कहानी से विश्राम मिलता है, इतिहास को दुर्गम घटियों में स्थिरता से पैर जमाने को अवकाश मिलता है। कहानी कह कर पढ़ाने वाला अध्यापक भी छात्रों का अनायास हित सम्पादन तथा अपना कार्य सुकर करता है। कहानी भाषण को नीरस होने से बचा देती है, लेख को दुरूह नहीं होने देती, वार्तालाप को जड़ और यान्त्रिक नहीं होने देती। कहानी से बच्चे बुड्ढे बिलम जाते हैं, धरती से ऊपर उठ कर बैठे-लेटे ही कहीं की कहीं यात्रा कर आते हैं। कहानी का आकस्मिक प्रवेश, उसका क्षणिक दर्शन जब इतना आह्लादकारी होता है तो उसकी अरी-पूरी उपस्थिति कितनी मनोरम होनी चाहिये इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। कहानी से लगाव होने के कारण कहावत भी अधिक मोहिनी हो जाती है पर फिर भी कहानी लिखना काम है बारीक, मोटा नहीं। इसी से तो मनुष्य-जीवन के युग बीत गये पर कहानी की तरुणाई नहीं गई।

पहले की कहानी बस कहानी ही होती थी। कथा की कड़ियाँ संश्लिष्ट नहीं, बिखरी हुई रहती थीं। उसमें कला-त्मकता कम पर उपदेशात्मकता की भरमार रहती थी। सब की कहानी उपन्यास का भार लिए चलती थी—सम्पूर्ण जीवन को अपने में सिमटा कर। पर भारतेन्दु-युग में प्रथम बार कहानी ने अपना बोझ हलका कर जीवन के विशिष्ट अंशों को अपनाना शुरू किया। पुरानी कहानी में उपदेश प्रकट रहता था, आज की कहानी में प्रच्छन्न। "The bad fable has a moral, while the good fable is a moral." तब की कहानी विस्मयोद्बोधक अधिक, विचारोत्तेजक कम, चमत्कारपूर्ण अधिक पर भावना-प्रवण अथवा मनोवैज्ञानिक कम होती थी। आज कहानी के विविध रूप निखरे हैं। पुराने कहानी लेखक कहानी-कला के वैशिष्ट्य का ध्यान रखे बिना ही जैसे कहानी लिखा करते थे, पर आज का लेखक कहानी-कला का पूरा जानकार है। आज की कहानी जैसे समझदार हो चली है।

हिन्दी की आधुनिक कहानियों पर पाश्चात्य प्रभाव की छाप सर्वत्र स्पष्ट है। आधुनिक कहानी के जन्मदाता एडगर ऐलन पो (१८०९–१८४९) माने जा सकते हैं। पो अमेरिका के थे इसीलिए उनका प्रभाव इङ्गलैंड में भी कोई १८९० के आस-पास पड़ने लगा था। पो ने कहानी के सिद्धान्त तथा व्यावहारिक निदर्शन दोनों दिये। पो के अनुसार कहानीकार पाठक की भावना, बुद्धि या आत्मा का स्पर्श करे पर उसके लिए प्रभावैक्य (Unity of effect) का निभाना अनिवार्य है। कहानीकार पाठक पर क्या प्रभाव डालना चाहता है इसका वह पहले से ही अन्दाज कर ले। फिर तदनुसार ही ऐसा घटना-विन्यास तथा चरित्र-गठन का आदर्श अपनाये जो इष्ट-सिद्धि में निश्चित योग दे। कहानी में एक भी शब्द भरती का या फालतू नहीं होना चाहिए। कहानी का प्रथम वाक्य अगर पर्यवसान की तरफ संकेत करता न दीखे तो कहानीकार को असफल समझना चाहिए। कहानी के कथानक में नाटकीयता का तत्व भी उसने आवश्यक माना। The fall of the house of usher (१८३९) और The cask of Amontillado (१८४६) आदि पो की कहानियों में इन सिद्धान्तों का सफल परिवहन हुआ है। पो के पहले इङ्गलैण्ड में कुछ ढीली-ढाली कहानियाँ (पो की तरह की कसी हुई नहीं) सर वाल्टर स्काट, डिकंस, मिसेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गैस्केल और मेरीडिथ आदि ने लिखीं। स्टीवंसन तथा किपलिङ्ग पर पो का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। हेनरी जेम्स, बेनेट, वेल्स, सर आर्थर क्विलरकाउच आदि अनेक लेखकों ने कहानी की नूतन सर्जना की। किपलिङ्ग की कहानियाँ सांकेतिक हैं। स्टीवन्सन की कहानियों में नैतिक विश्लेषण तथा रोमांस का योग है। कहानी-कला की उद्देश्य-सिद्धि में वेल्स ने अपने अनूठे ढङ्ग से विज्ञान का सहारा लिया है। हेनरी जेम्स ने कहानी को मनोविज्ञान का चोला पहनाया। आर्थर क्विलरकाउच वातावरण की सफल सृष्टि के नाते वरेण्य हैं। साधारण वास्तविकता में अनूठेपन का दर्शन बेनेट की विशेषता है। कैथरीन मैन्सफील्ड ने पाठक को नग्न यथार्थ का दर्शन कराया। आगे चल कर कहानी के इतने विभिन्न रूप सामने आये कि उनको एक सूत्र में गूँथना सहज नहीं है पर हैं वे सब पो के ऋणी। मिस एलिजाबेथ बोवन ने लिखा है कि कहानी की पहली आवश्यकता 'आवश्यकता' का तत्व ही है। 'The first necessity is necessariness.' जैक लण्डन ने लिखा कि कहानी मूर्त, सम्बद्ध, त्वरितगति वाली, सजीव तथा रुचिकर होनी चाहिए। 'It should be concrete, to the point, with snap and go and life, crisp and crackling and interesting.' क्लपोल ने लिखा कि कहानी में घटनाओं का ब्यौरा होना चाहिए, कहानी घटना-दुर्घटना संकुल हो, उसकी गति तेज हो, उसका विकास अप्रत्याशित हो, असमञ्जस के माध्यम से सङ्कट की परिणति की ओर अग्रसर होना चाहिए। कहानी घुड़दौड़ की तरह है जिसका प्रारम्भ और अन्त ही महत्वपूर्ण है। 'A story is like a horse race. It is the start and finish that count most.'—Ellery Sedgewick. आज की कहानी नाटकीय से अधिक चित्रात्मक हो गई है। इसका सम्बन्ध रङ्गमञ्च से अधिक सिनेमा और चित्रकारी से समझना चाहिए। सिनेमा और कहानी आज दोनों स्वतन्त्र हैं, परतन्त्र नहीं। दोनों बन्धनरहित, स्वेच्छाविहित, अनुशासन को मान कर चलने वाले हैं। पो के अलावा पो के समकक्ष एक रूसी लेखक हैं गोगल (१८०९-१८५२) गोगल की कहानियों में कल्पना-लोक से वस्तु-जगत में अवतरण है। पो की रुचि साधारण में नहीं, असाधारण में थी। फ्रांस में बेलजेक अमेरिका में पो, रूस में गोगल और तुर्गनेव ने नए ढङ्ग की कहानियाँ लिखीं। इङ्गलैण्ड में किपलिङ्ग के उपन्यासों में लारेंस जैसे स्वयं बार-बार नायक हो जाते हैं पर कहानियों में उनके चरित्र लेखक से इतने दबे हुए या अभिभूत नहीं हैं। इङ्गलैण्ड के कहानीकारों पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा—चेखव, मोपासा और हैमिंगवे की त्रयी का। रूस में टाल्स्टाय तथा गोर्की एवं डोस्टोस्की आदि ने कहानियाँ लिखीं, तो फ्रांस में Flaubert, Coppee, Anatole France तथा Maupassant आदि ने। इन सब लेखकों के बारे में थोड़ा बहुत लिखने में भी लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा अतः उनके प्रयोगों से जो सिद्धान्त उद्भूत हुए हैं उन्हीं की चर्चा करना अब अलं होगा। पश्चिम में कहानी के इतने विविध प्रयोग हुए हैं कि कहानी का वर्गीकरण भी एक ढंग का नहीं हो सकता। कुछ कहानियाँ कल्पना-प्रवण हैं तो कुछ यथार्थवादी। कुछ करुण, कुछ दुःखान्त, कुछ हास्यवादी तो कुछ बाल जीवन से सम्बन्ध रखने वाली तो कुछ अतिप्राकृत तत्व लिए हुये भूत, प्रेत, परी तथा पशु पक्षियों का समावेश करने वाली भी। कुछ स्थान विषयक भी यथा—'Tales of five Towns', 'Wessex Tales' इत्यादि। कुछ कहानियाँ कथानक-प्रधान, कुछ चरित्र-प्रधान, कुछ वातावरण-प्रधान, कुछ नाटकीय तो कुछ औपन्यासिक या आत्म-चरितात्मक भी। गैस्केल की 'The Half Brothers' कथानक-प्रधान कहानी का सुन्दर निदर्शन है। कभी-कभी कथानक एक उलझन बन जाता है। पाठक की रुचि उसकी सुलझन में ही रहती है, यथा कानेन डायल की 'Red Headed League.'

J. B. Esenwein के अनुसार (१) प्रभाव की एकता (२) एक श्रेष्ठ कथानक (३) एक प्रधान घटना (४) एक प्रधान पात्र और (५) एक समस्या तथा उसका समाधान—ये पाँच आवश्यक उपकरण हैं। कथानक में (१) घटनाओं का तारतम्य या प्रभाव (२) (Climax) तीव्र स्थिति (३) कथानक का सम्भाव्य (Probable) होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) नाटकीय स्थिति (५) कुतूहलता या औत्सुक्य (Suspense) और (६) इन सब अङ्गों को आपस में अच्छी तरह गुथा होना चाहिए। एक घटना का दूसरी घटना के लिये कारणभूत होना (Causal connection) ही कथानक का प्राप्य आदर्श है। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में 'जिस प्रकार चित्र में सारा खेल रेखाओं और रङ्गों का ही होता है, सारा प्रभाव साधनों पर ही अवलम्बित रहता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कहानी में व्यञ्जक और व्यंग्य का—कथा और उद्देश्य का एकीकरण हो जाता है। .....नवीन कहानी साध्य को साधन से—उद्देश्य को कथानक से एकदम अभिन्न बना कर चलती है और कभी-कभी तो जीवन-घटना ही कहानी की वस्तु ही, अपना साध्य आप बन जाती है। घटना के मर्म में ही उद्देश्य छिपा रहता है।'

आज की कहानी 'नानी की कहानी' मात्र नहीं रह गई है। 'जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के सङ्घर्ष से उलटा-सीधा चलता रहता है। इस सुवृहत् चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति को प्रदर्शित करने में ही कहानी की विशेषता है।'—श्री इलाचन्द्र जोशी। उपन्यास अगर जीवन का चक्र है तो कहानी किसी विशेष क्षण में चलते हुए चक्र का दिखावा है। इसी लिए Barry Pain ने ठीक कहा है कि 'The novel is a satisfaction, the short story is a stimulus' कहानी-कला पर अँग्रेजी में Evelyn May Albright की बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तक है जो अब दुष्प्राप्य-सी है। उनके अनुसार कथानक एक तथा सर्वथा अविभक्त होना चाहिये। कहानी की बातें चमत्कारपूर्ण हो सकती हैं, पर असंभाव्य कभी नहीं होनी चाहिए। पाश्चात्य कहानियों की अपेक्षा भारतीय कहानियों में आदर्शात्मकता अधिक है। Albright के अनुसार अच्छी कहानियों में आश्चर्य-तत्व का प्राधान्य नहीं होता। Climax का अभिप्राय है कथानक में पर्यवसान तक उत्तरोत्तर रुचि की वृद्धि होते रहना—यह नहीं कि अकस्मात आश्चर्योद्भूत मानसिक या भावनात्मक ठेस सी (Jerk) लगे। प्राकृतिक दृश्यों का अतिरञ्जित वर्णन कहानी में अनपेक्षित है। कहानी का वह मुख्य विषय ही बन जाय तो बात दूसरी है। हास्य-सृष्टि करनी हो तब तो ठीक अन्यथा कथाकार को प्रथम पुरुष के प्रयोग से बचना चाहिए। वार्तालाप में 'मैं' अगर कोई बहुत अच्छी बात कहता हूँ तो इसमें अभिमान या अहंभाव की गंध आती है। उसमें अगर अहंता झलके ही नहीं, तो कथानक नीरस हो जाता है। साहसिक कहानियों में प्रथम पुरुष के प्रयोग से चित्रात्मकता का संचार अवश्य होता है पर इससे तीव्र स्थिति के चित्रण में व्याघात पहुँचता है। आत्म विश्लेषण के लिए पत्र रूपात्मक कहानी अच्छी होती है लेकिन अधिक लम्बी होने पर उसमें शुष्कता आ जाती है। दैनन्दिनी (Diary) के रूप में लिखी गई कहानी लेखक के लिए ठीक हो सकती है, पर पाठक को ऐसी कहानी बड़ी अरुचिकर होती है। * * * ऐसे चिह्नों से समय यापन की सूचना देने में बचपन है। शीर्षक छोटा होना चाहिए। वह एक प्रकार का संकेत होना चाहिए, पूरा विषय नहीं। अमूर्त शीर्षक जैसे बहादुरी, अचम्भा आदि डालने चाहिए। उपन्यास चरित्र का विकास दिखाता है, पर कहानी चारित्रिक परिवर्तन मात्र को द्योतित करती है। 'The cross-road, rather than the main road travelled' चरित्र के भूत भविष्य का कहानीकार नाटकीय संकेतमात्र कर सकता है, उसका अभिधात्मक वर्णन वर्ज्य समझा जाना चाहिए। जीवन में हमारा ऐसे मनुष्यों से साक्षात्कार नहीं होता जो प्रथम मिलन के आध घन्टे में ही अपने बारे में सब कुछ कह डालें। अगर ऐसे कभी मिल गये तो दुबारा कोई उनसे भूल कर भी मिलना चाहेगा नहीं। इसी तरह से कहानीकार को चरित्र का अपनी तरफ से पूरा वर्णन नहीं कर डालना चाहिए। पाठक की आँखों के नीचे वार्तालाप के आधार पर चरित्र के क्रमिक विकास का चित्ताकर्षक दिग्दर्शन होते रहना चाहिए। कहानी के चरित्र साधारणतः स्थिर (Static) न होकर गतिशील (Dynamic) होने चाहिए। स्थिर तभी हो सकता है जब उस स्थिरता में ही कोई चमत्कार पूर्ण वैशिष्ट्य हो। सर्वोत्तम कहानी वह है जो चरित्र को विकास के चौराहे पर दिखाये कि वह कौन सा रास्ता पकड़ता है। स्थान-चित्रण के उद्देश्य के अलावा डील-

(शेष पृष्ठ ३४१ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी का शिल्प-विधान

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

कहानी के साधारणतः कई अङ्ग माने गये हैं। भगवती-प्रसाद वाजपेयी जी ने जो स्वयं एक कहानीकार हैं, लिखा है: "यों तो कहानी को हम कई अङ्गों में विभाजित कर सकते हैं जैसे—कथानक, दृश्य, कथोपकथन, दुविधा की तीव्रता तथा चरम परिणति। किन्तु इनमें कथानक, दृश्य, तीव्र दुविधा तथा चरम परिणति का निर्वाह अपेक्षाकृत असाधारण होता है।"

किन्तु यह विवेचन अस्पष्ट है और भ्रामक है। वाजपेयी जी ने वैज्ञानिक गहरायी से स्पष्टीकरण नहीं किया। वस्तुतः कहानी के अङ्ग तो वस्तु, पात्र और दृश्य ही होते हैं। वस्तु, जिसे कथानक, वृत्त, प्लाट आदि नाम भी दिया जा सकता है कहानी का वह सूत्र है जो गति और घटनाओं से पात्र और दृश्य में व्याप्त होकर कहानी को कहानी का रूप देता है। अतः कथानक के अन्तर्गत 'गति' और 'घटना' इन दो का समावेश होता है। इन 'गति और घटना' के तत्वों के केन्द्र मुख्यतः पात्र होते हैं। पात्रों के निर्माण में तीन तत्व रहते हैं। शारीरिक कर्म, मानसिक चिन्तन तथा वाणी-व्यापार। गति, घटना और पात्रों की पृष्ठभूमि अथवा आधार होते हैं दृश्य।

इन अङ्गों के प्रस्तुत होने पर भी कहानी सफल कहानी नहीं हो सकती, अथवा ये समस्त अङ्ग प्रस्तुत हों और एक से हों और विभिन्न कहानीकार इनसे कहानी का निर्माण करें तो भी कहानी एक नहीं बनेगी। जितने कहानीकार हैं, उतनी ही कहानियाँ बनेंगी। कारण यह है कि कुछ ऐसी भी वस्तु होती है जो कहानीकार की अपनी होती है। इसे साधारणतः 'शैली' कहते हैं। यह शैली दो रूप रखती है। एक व्यक्तित्व-परक दूसरी वस्तु-परक। यह वस्तु-परक शैली ही 'टेकनीक' अथवा शिल्प-विधान कहलाती है। इस 'शिल्प-विधान' की व्यक्तित्व परक शैली से बहुत गहरी सम्बद्धता होती है, क्योंकि वस्तुतः वे एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। शिल्प-विधान विन्यास के अन्तर्गत शैली का स्वरूप प्रस्तुत करता है। व्यक्तित्व परक शैली 'अभिव्यक्ति' के स्वरूप को।

यह शिल्प-विधान स्थूलतः चार अङ्गों से समन्वित माना जाता है। इन्हें डा० रघुवीरसिंह ने (१) प्रस्तावना (२) मुख्यांश, (३) क्लाइमैक्स, = (पराकाष्ठा) और (४) पृष्ठ-भाग—उतार एवं अन्त नाम दिये हैं। इनसे भी हमारा काम नहीं चल सकता है। शिल्प-विधान के दो कार्य मुख्य होते हैं—एक कहानी के 'अङ्गों का संयोजन।' कथानक, पात्र और दृश्य परस्पर संयोजना चाहते हैं, उन्हें उचित रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित और सुसम्बद्ध करना शिल्प-विधान का काम है। फिर, दूसरा काम शिल्प-विधान का यह है कि इस संयोजना में एक गति, एक प्रभाव, एक औत्सुक्य अथवा एक विकलता व्याप्त करता चले, और इसका योग्यतम निर्वाह प्रस्तुत करे। कहानी एक लघु और तीव्रतम वस्तु है। वस्तुतः उसमें 'प्रस्तावना' का तो नितान्ताभाव होना चाहिए। जिन कहानियों में ऐसी प्रस्तावनाएँ मिलती हैं, जिनमें पात्रादि के परिचय देने का प्रयत्न होता है, अथवा परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है, वे प्रस्तावनाएँ चिपकाई हुई और अनावश्यक होती हैं। यदि उनमें उनके अपने ही वर्णन चमत्कार का आकर्षण नहीं होता तो वे बोझिल लगती हैं। जैसे 'उसने कहा था' कहानी में अमृतसर के बाजार में बम्बूकार्ट वालों का वर्णन उसकी अपनी रोचकता के कारण ही सह्य है, अन्यथा सर्वथा चिपकाया हुआ है। इसी प्रकार जैनेन्द्रकुमार की 'एक गौ' का आरम्भ बिलकुल बोझिल है। इस कहानी के आरम्भ की ५४ पंक्तियाँ अनावश्यक हैं। इनमें आयी बातें स्वयं आगे कहानी में प्रस्फुटित होती चली जाती हैं। यही कहानी में उचित भी है कि पात्र-आदि का आवश्यक परिचय कहानी की गति में प्रसङ्गानुसार प्रकट होता रहे। प्रेमचन्द जी की 'पूस की रात' कहानी का यह आरम्भ इसीलिए आकर्षक और उचित है।

"हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—"सहना आया है, लाओ जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूं, किसी तरह गला तो छूटे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली—"तीन ही तो रुपए हैं, देदोगे तो कम्बल कहाँ से आयगा ?"..... आदि इसमें कहानीकार ने न तो हल्कू का परिचय देने में न मुन्नी का परिचय देने में शब्द व्यय किये हैं, यह भी नहीं बताया, उनकी अवस्था कैसी है, सहना क्यों आया है ? इन सब प्रश्नों का उत्तर स्वयंमेव कहानी देती चली जाती है। कहानी का आरम्भ हो गया है—'हल्कू' और 'मुन्नी' सीधे पाठक के सामने खड़े बातें करने लगते हैं और उन्हें देखते ही पाठक उनका परिचय भी पा लेता है, स्वयं ही। इन्हीं प्रेमचन्दजी ने 'बड़े घर की बेटी' में एक भाग ही सातसौ-आठसौ शब्दों का प्रस्तावना के रूप में दिया है। कहानी तो दूसरे भाग से ही आरम्भ होती है, पहला भाग हटा देने पर भी कहानी कहानी ही रहेगी। ऐसा आरम्भ औपन्यासिक आरम्भ माना जा सकता है। कहानी का आरम्भ नहीं हो सकता। अतः कहानी के कथा-विन्यास अथवा शिल्प-विधान में 'प्रस्तावना' के लिए स्थान नहीं हो सकता। 'प्रस्तावना' के उपरान्त इसी प्रकार 'मुख्यांश' का उल्लेख भी व्यर्थ ही है। कहानी में 'अमुख्यांश' होना ही नहीं चाहिए, हो नहीं सकता। 'मुख्यांश' मात्र ही कहानी होता है, उसमें ही 'चरम' और 'उतार' होता है, उससे भिन्न ये भी नहीं होते। इस प्रकार शिल्प-विधान में हम निम्नलिखित चार तत्व मान सकते हैं।

एक—आरम्भ
दूसरा—विकास
तीसरा—चरम, और
चौथा—संहार,

'आरम्भ' बिना प्रस्तावना के मार्मिक स्थल से होता है। इसमें कहानी के सूत्र की दिशा का पता चल जाता है, अथवा किसी रहस्य की उद्भावना हो जाती है। नयी शैली की उन कहानियों में जिनमें 'कहानी' को कोई कहने वाले कहते हैं, उसमें यह आरम्भ बड़ा और स्वयं एक कहानी के रूप में हो सकता है।

प्रेमचन्दजी की कहानी 'पूस की रात' में 'हल्कू' और 'मुन्नी' के वार्त्तालाप से ही हमें उनकी दरिद्रावस्था का ही पता नहीं लगता, यह भी विदित होता है कि उन्होंने जो रुपये कम्बल खरीदने के लिए रखे थे, वे सहना को दे दिये अब कम्बल नहीं खरीदा जा सकता। कम्बल का न होना बीज अथवा आरम्भ है, इसके न होने से क्या हुआ ? अथवा क्या हो सकता है ? यही कहानी में विकास पायेगा। इसी प्रकार भगवतीचरण वर्मा की 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' नामक कहानी में हीरोजी की कहानी वस्तुतः यथार्थ कहानी नहीं। हीरोजी तो कहानी कहने वाले हैं, इसका आरम्भ लम्बा है, और स्वयं एक कहानी के रूप में।

आरम्भ होते ही कहानी का विकास होने लगता है। विकास के दो भाग होते हैं—समृद्धि और तीव्र दुविधा। समृद्धि में कथा सूत्र अथवा कथा का बीज प्रस्फुटित होता है। कहानी कहानी का रूप ग्रहण करती प्रतीत होती है, किन्तु इस समृद्धि के साथ कहानीकार एक दुविधा अथवा संशय को जन्म देता है। भगवतीप्रसाद बाजपेयीजी ने लिखा है : "तीव्र दुविधा कहानी की एक विशेषता मानी जाती है। ज्यों-ज्यों कहानी प्रसङ्गानुसार अग्रसर होती जाती है, त्यों-त्यों पाठक की यह उत्सुकता बढ़ती ही जाती है कि अन्त में होता क्या है ? यह उत्कसुता प्रायः एक-न-एक संशय या दुविधा के रूप में होती है और कथा के अन्तिम परिणाम तक पहुँचते-पहुँचते अत्यन्त तीव्र हो जाती है। अङ्गरेजी में इसे Suspense कहते हैं। जिस कथा में यह गुण नहीं उत्पन्न होता, वह निर्जीव-सी रहती है।"

'पूस की रात' नाम की कहानी में हल्कू का रात में खेत पर जाना, जबरा से विनोद, शीत का अनुभव आदि सब 'समृद्धि' है। कहानीकार कहानी के लिए आवश्यक समस्त उपादानों को यहाँ तक उपस्थित कर देता है। साथ ही यह प्रश्न भी उपस्थित कर देता है कि अब क्या होगा ? शीत की विकटता, पत्तों का जलाना, जबरा का भौंकना, नील गायों का खेत चरना, हल्कू का कभी ललकारना, कभी आलस मग्न होना, कभी साहस करके उठना—ये समस्त स्थितियाँ तीव्र दुविधा की हैं।

और यहाँ विकास समाप्त हो लेता है। तभी कहानी चरम पर पहुँचती है। 'पूस की रात' में बड़ी दुविधा के उपरान्त हल्कू निश्चयात्मक होगया—"जबरा अपना गला-फाड़े डालता है। नील गायें खेत का सफाया किये डालती थीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हल्कू गर्म राख के पास शान्त बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों ओर से जकड़ रखा था।''—यह चरम है।

इसके बाद होता है 'संहार'। 'पूस की रात' में हल्कू के खेत का संहार नीलगायें कर गयीं, हल्कू निश्चित सोता रहा। प्रातः उठा और प्रसन्नतापूर्वक यह कह कर "रात की ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा" उसने कहानी के रहे बचे सूत्र का ही संहार कर दिया, कहानी समाप्त हो गया।

यह किसी भी कहानी का साधारण शिल्प-विधान है। शिल्प-विधान के इन चारों तत्वों द्वारा कहानीकार कहानी के अङ्गों की उचित संयोजना करता है। कथानक की गति और घटना-क्रम में पात्रों को निबद्ध करता हुआ, उनकी पृष्ठभूमि अथवा आधार-भूमि रूप दृश्यों की संयोजना करता जाता है। जिस कहानी में इन सब की संयोजना उचित होती है, और ये सब शिल्प-विधान के तत्वों के साथ सहयोग करते हुए शिल्प के चरम के साथ ही चरम पर पहुँचते हैं तो कहानी श्रेष्ठ बन पाती है। इन शिल्प-तत्वों के साथ व्यक्तित्व-परक शैली की शक्ति को भी कम महत्व नहीं देना होगा। यह शैली ही कहानी में व्यञ्जना (Suggestiveness), स्पन्दन, प्रभाव, आकर्षण, विदग्धता, रस, रुचिरता अथवा रोचकता उत्पन्न करती है। कथा-सूत्र में प्रवाह, पात्रों के चित्रण में व्यक्तित्व, सम्भाषणों में वाक्-चातुर्य तथा मार्मिकता, दृश्य चित्रण में सरसता तथा प्रभावादि इसी व्यक्तित्व-परक शैली से आते हैं।

इस साधारण विवेचन के साथ हमें यह न भूलना होगा कि कहानी के कितने ही प्रकार होते हैं, और उन प्रकारों के साथ कहानी के शिल्प-विधान में भी कुछ साधारण परिवर्तन हो सकते हैं।

(पृष्ठ ३३५ का शेषांश)

में है। "बहुतों का खयाल है कि मनुष्य हृदय के घात-प्रतिघातों का सूक्ष्म विश्लेषण करने वाला तथा अननुकरणीय भाषा द्वारा उन भावों को प्रकाश करने वाला उनसे बड़ा उपन्यास लेखक आजतक बङ्गला भाषा में पैदा नहीं हुआ।"

इन गणयमान्य कलाकारों के अतिरिक्त अनेक कथाकार बङ्गला साहित्य की कहानियों से श्री वृद्धि कर रहे हैं। गत २५ वर्ष के भीतर तो बहुत से प्रतिभाशाली कहानी लेखक साहित्य गगन पर उदय हुये हैं। अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त, "वनफूल" (बलाई चांद), आशा पूर्ण देवी, ताराशङ्कर गङ्गोपाध्याय, नवेन्दु घोष, प्रबोधकुमार सान्याल, प्रेमेन्द्र मित्र, विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय, मनोज बसु, मानिक वन्द्योपाध्याय, सरोज कुमार राय चौधरी आदि कहानी लेखकों ने बहुत नाम पाया है। गत कई वर्षों से प्रतिवर्ष श्रेष्ठ गल्प लेखकों की श्रेष्ठ कहानियों का सङ्कलन प्रकाशित किया जाता है। आज कल तो ऐसा प्रतीत होता है कि गम्भीर प्रबन्ध लेखक तथा छोटे गल्प लेखकों का युग है न कि काव्य और उपन्यास लेखकों का। आधुनिक कथा साहित्य की दृष्टि से बङ्गला साहित्य विश्व के साहित्य के सम्मुख खड़ा हो सकता है, क्योंकि उसके पास बङ्किम, रवीन्द्र व शरद जैसी प्रतिभाएँ हैं। और उनके पथ पर चलने वाले व्यक्तियों की भी कोई कमी नहीं है।

(पृष्ठ ३३८ का शेष)

डौल, वेष-भूषा तथा साज-सज्जा का लम्बा-चौड़ा बखान त्याज्य है क्योंकि उसका प्रभाव पाठक की कल्पना को उद्बुद्ध करना कभी नहीं होता। वार्तालाप सम्बद्ध ही नहीं, अनिवार्य होना चाहिए। वह चरित्र-व्यञ्जक ही नहीं, कथा को गतिमान् बनाने वाला होना चाहिए। व्यञ्जना के सहारे वह सारा भूतकाल सामने लाकर रख सकता है। वार्तालाप का अपना निजी आकर्षण भी होना चाहिए। मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि तथा नाटकीय चातुर्य—ये दो वार्तालाप के अमिन्न संयोजक तत्व हैं। वर्णनात्मक पुट कहानी के वेग में रुकावट डालते हैं।

प्राश्चात्य आदर्शों को अपनाकर चलने वाली कहानियों की हिन्दी में कमी नहीं है। पाश्चात्य आदर्श बहुत कुछ आत्मसात् हो गये हैं पर अब उसके 'स्वदेशी' विकास की भी अपेक्षा है जिसकी ओर हिन्दी के कहानी लेखकों का ध्यान जा तो रहा है, पर पूरा नहीं गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी की प्रणालियाँ और शैलियाँ

श्री गुलाबराय, एम० ए०

वैविध्य विकास और उन्नति का प्रमुख चिह्न है। कहानी साहित्य में जैसा-जैसा विकास होता गया वैसे ही विविध प्रणालियों का जन्म होता गया। कहानी की ऐतिहासिक और आत्म कथात्मक प्रणालियाँ प्राचीन काल में भी थीं। आज-कल भी दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी जाती हैं और दोनों की विशेषताएँ हैं। इन दोनों पद्धतियों के अतिरिक्त पत्रात्मक और कथोपकथन पद्धतियाँ भी प्रचलित हैं। वैसे तो कुछ कहानियाँ डायरी के रूप में भी लिखी गई हैं।

ऐतिहासिक पद्धति—यह सबसे अधिक प्रचलित पद्धति है। इसमें लेखक बीती हुई बात को कहता चलता है। वह तटस्थ सर्वज्ञता के साथ सब पात्रों का समान रूप से वर्णन करता हुआ उनके चरित्रों पर भी प्रकाश डाल सकता है। ऐसी कहानियों के अनेकों उदाहरण हैं। जैसे प्रेमचन्दजी की 'पञ्च परमेश्वर' नाम की कहानी। 'जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन देन का साझा था, एक दूसरे पर अटल विश्वास भी था .....।' विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'काकी' शीर्षक कहानी भी इसी प्रकार की है।

आत्म-कथात्मक पद्धति—इसमें कहानी एक पात्र के मुख से कहलाई जाती है। इसमें कहने वाले पात्र को अपने सम्बन्ध में निकटतम जानकारी होती है और वह अपने सम्बन्ध की हृदयग्रन्थ बातों को भी साधिकार कह सकता है। किन्तु उसे दूसरे पात्रों का भी ध्यान रखना पड़ता है। उनके चरित्र को भी विकसित होने का अवसर देना पड़ता है। दूसरों के चरित्र का उद्घाटन उन पात्रों के कार्यों या वचनों द्वारा ही करा सकता है। दूसरों के बाहरी व्यापारों को तो वह अपनी जानकारी से कह सकता है किन्तु उनके मानसिक व्यापारों के सम्बन्ध में वह अनुमान से ही कह सकता है। वह उस सर्वज्ञता के साथ नहीं कहता जिससे कि ऐतिहासिक ढङ्ग का कहानीकार कहता है। इस प्रकार की कहानियों के भी बहुत उदाहरण मिल सकते हैं पर इतने नहीं जितने कि ऐतिहासिक पद्धति के। प्रेमचन्दजी की 'बड़े भाई साहब' नाम की कहानी इसका अच्छा उदाहरण है। 'मेरे भाई साहब मुझ से पाँच साल बड़े थे, लेकिन केवल तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था जब मैंने शुरू किया था.....' जैनेन्द्रजी की 'कः पन्थाः' शीर्षक कहानी, तथा उग्रजी की 'मा' शीर्षक कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। मुन्शी प्रेमचन्द की कहानी में 'मैं' को दूसरे पात्र की बराबर ही महत्व मिला है। अन्य दो कहानियों में 'मैं' वक्ता मात्र है।

पत्र प्रणाली—इस प्रणाली में पत्रों द्वारा ही सारी कथा विकसित होती है। इस घटना-क्रम का बड़े कौशल से उल्लेख करना पड़ता है। चरित्र-चित्रण के लिए भी इसमें कम गुंजाइश रहती है। इसमें तारतम्य टूटा-सा रहता है, किन्तु घटनाओं का उतना उल्लेख हो जाता है जिससे कि थोड़ी कल्पना के सहारे टूटे तार जुड़ जाय। चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार की 'एक सप्ताह' शीर्षक कहानी इसका अच्छा उदाहरण है।

कथोपकथन पद्धति—इस पद्धति में कथोपकथन की प्रधानता रहती है। घटना क्रम का भी उल्लेख कथोप-कथन द्वारा होता है। इसमें कथा के तन्तुओं को जोड़ने और उसको आगे बढ़ाने का श्रेय कथोपकथन में भाग लेने वाले सभी पात्रों को रहता है। कहानीकार उनको इकट्ठा मात्र कर देता है और वार्तालाप की परिस्थिति से परिचित कराता चलता है। कौशिकजी की 'सनक' नाम की कहानी इसका एक उदाहरण है। जैनेन्द्रजी ने भी कुछ संवादात्मक कहानियाँ लिखी हैं।

तत्वों के आधार पर—कहानियों के तत्वों में किसी एक तत्व की प्रधानता के आधार पर कहानियों का विभाजन किया जा सकता है और उनकी शैलियों में भी थोड़ा अन्तर हो जाता है। जैसे घटनात्मक कहा-नियों में विवरण (Narration) की प्रधानता रहती है और वातावरण-प्रधान कहानियों में वर्णन (Des-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

cription) की प्रधानता रहती है। विश्लेषणात्मक कहानियों में गति कुछ अधिक होती है। एक घटना के बाद दूसरी घटना आती है। उसमें औत्सुक्य को जाग्रत रख कर आगे बढ़ते रहने की कला रहती है और वर्णन में एक परिस्थिति या दृश्य को कुछ देर के लिए स्थायी बना कर उसका ब्यौरेवार चित्रण किया जाता है। वर्णन में कल्पना का खेल अधिक रहता है। जासूसी-तिलस्मी कहानियों में बुद्धि-तत्व की कुछ प्रधानता रहती है। प्रेमचन्दजी की कहानियों में भी चरित्र के साथ वर्णन रहता है। ऐतिहासिक कहानियों में जैसे 'रानी सैरन्ध्रा' में विवरण की मात्रा कुछ अधिक रहती है।

वातावरण प्रधान—वातावरण की प्रधानता उन कहानियों में विशेष महत्व प्राप्त कर लेती है जिनमें वातावरण चरित्र पर प्रभाव डालता है। ऐतिहासिक कहानियों में भी जैसे वृन्दावनलाल वर्मा की कहानियों में वातावरण और स्थानीय रङ्ग (Local colour) का कहीं-कहीं प्राधान्य हो जाता है। प्रसादजी भी वातावरण के उपस्थित करने में बड़े सिद्ध-हस्त थे। उनकी 'पुरस्कार' कहानी से निम्न उद्धरण दिया जाता है—

"आर्द्रा नक्षत्र, आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा—देखने लगा महाराज की सवारी। शैल-माला के अञ्चल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा, वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें लेने लगा।"

मन पर प्रभाव डालने वाले वातावरण का उदाहरण हमको श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार की 'डाकू' शीर्षक कहानी में उस स्थल पर मिलता है, जहाँ कि डाकू दरबार साहब में जाता है और वहाँ के धार्मिक वातावरण से प्रभावित हो, उसके मन में पश्चात्ताप आ जमता है।

"मन्दिर के भीतर सुगन्ध की लपटें-सी उठ रही थीं। ग्रन्थी महोदय बहुत ही श्रद्धा-भाव से गुरु-ग्रन्थ पर चँवर डुला रहे थे। एक ओर रागियों की टोली बैठी थी और सितार, तबला तथा हारमोनियम के साथ वह अलाप ले रही थी—

हम निरगुन तुम तत्ता ग्यानी।

भक्त लोग चुपचाप सुन रहे थे। पन्द्रह-बीस मिनट बीत गए और यह अलाप समाप्त नहीं हुआ।—

हम निरगुन तुम तत्ता ग्यानी।

मालूम नहीं यह अलाप कब से शुरू हुआ था और कब तक जारी रहेगा। गाने वाले गाये जा रहे हैं और सुनने वाले सुने जा रहे हैं—हम निरगुन तुम तत्ता ग्यानी।

इन सरल से शब्दों में कुछ ऐसी गहराई थी, इस स्वर में कुछ ऐसा माधुर्य था, चारों ओर के वातावरण में कुछ ऐसा जादू था कि जन्म भर के डकैत और हत्यारे सिकन्दर-सिंह के अन्तःकरण में भी क्षण भर के लिए मानों आत्म-प्रकाश का उजियाला सा छा गया।"

चरित्र चित्रण प्रधान—चरित्र-प्रधान कहानियों में जहाँ बाहरी व्यक्तित्व का वर्णन होता है वहाँ वर्णन का ही प्राधान्य रहता है, जैसे प्रसादजी की 'गुण्डा' नाम की कहानी में "वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रातों की छाया में, कड़कती हुई जेठ की धूप में, नंगे शरीर घूमने में वह सुख पाता था। उसकी चढ़ी मूँछें बिच्छू के डङ्क की तरह देखने वालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रङ्ग, साँप की तरह चिकना और चम-कीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा दूर से ही ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमें सीप की मूँट का बिछुआ खुँसा रहता था। उसके घुँघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर उसी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कन्धे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गंडासा। यह थी उसकी धज। पट्ठों के बल जब वह चलता उसकी नसें चराचर बोलती थीं। वह गुण्डा था।"

चरित्र जहाँ पर मानसिक गुणों और अन्तरिक व्यक्तित्व की दृढ़ता में दिखाया जाता है वहाँ वर्णन तो नहीं रहता किन्तु शब्दों में कुछ अधिक बल दिखाया जाता है:—इसका उदाहरण प्रसादजी के 'व्रतभङ्ग' से नीचे दिया जाता है। देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम बहुत कटु हो इस समय। अच्छा फिर कभी :—"

"न अभी न फिर कभी। मैं दरिद्रता को भी दिखलाऊँगा कि मैं क्या हूँ। इस पाखण्ड-संसार में भूखा रहूँगा, परन्तु किसी के सामने सिर न झुकाऊँगा। हो सकेगा तो संसार को बाध्य करूँगा। हो सकेगा, तो संसार को बाध्य करूँगा झुकने के लिए।"

चरित्र-चित्रण की भी कई शैलियाँ हैं—प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक जिसमें लेखक स्वयं पात्र का विश्लेषण कर देता है और परोक्ष या नाटकीय जिसमें पात्रों के कार्य, कथोपकथन अथवा किसी एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र का चित्रण, जैसे प्रेमचन्द की 'गिला' नाम की कहानी में पत्नी ने अपने पति का चित्रण किया है। 'गिला' चरित्र प्रधान कहानी का अच्छा उदाहरण है उसमें सभी प्रकार के चित्रण हैं कहानी के एक-एक तत्व के समावेश की कई शैलियाँ होती हैं, जैसे प्लौट या कथानक का प्रारम्भ कहीं कथोपकथन से तो कहीं वातावरण के चित्रण से, जैसे पुरस्कार कहानी में जिसका उद्धरण हम ऊपर दे चुके हैं। कुछ कहानियों का प्रारम्भ घटनाओं से होता है। अन्त करने के कई ढङ्ग हैं। किन्तु ये ब्यौरे की बातें हैं।

भाव प्रधान कहानियाँ—घटना प्रधान कहानियों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। कुछ कहानियाँ भाव प्रधान भी होती हैं। प्रसादजी की कहानियों में प्रायः भाव की प्रधानता रहती है। 'विसाती' उनकी भाव प्रधान कहानियों का अच्छा उदाहरण है—उसमें थोड़ी प्रतीकात्मकता भी है। गुल और बुलबुल प्रेमिका और प्रेमी के प्रतीक हैं। कहानी के अन्त में शीरी कहती है:—

"एक मेरा शलजू बुलबुल शीत में हिन्दुस्तान की ओर चला गया था वह लौटकर आज सवेरे दिखलाई पड़ा पर जब वह पास आ गया और मैंने उसे पकड़ना चाहा तो वह उधर कोहकाफ की ओर भाग गया।"

शीरी के स्वर में कम्पन था फिर भी वे शब्द बहुत सम्हल कर निकले थे। सरदार ने हँस कर कहा—'फूल को बुलबुल की खोज? आश्चर्य है!"

प्रसादजी ने कहानी की सारी भावुकता इस वाक्य में उड़ेल दी है—"बिसाँती अपना सामान छोड़ गया, फिर लौट कर नहीं आया। शीरी ने बोझ तो उतार लिया पर दाम नहीं दिया।"

भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'सूखी लकड़ी' नाम की कहानी में भी प्रतीकात्मकता है। सूखी लकड़ी वास्तव में सूखा ईंधन तो थाही किन्तु बेचने वाली की भी दीन-हीन दशा की प्रतीक थी।

भाषा शैली के आधार पर—भाषा की दृष्टि से भी कई कोटियाँ हो सकती हैं। किन्हीं कहानियों की भाषा (जैसे मुन्शी प्रेमचन्द की कहानियों की) चलती हुई मुहावरेदार होती है जिससे हिन्दी उर्दू के शब्द निर्विरोध रूप से आते हैं। इसका एक उदाहरण प्रेमचन्दजी की 'बड़े भाई साहब' शीर्षक कहानी से दिया जाता है:—'मेरे फेल होने पर मत जाओ, मेरे दर्जे में आओगे तो दाँतों पसीना आजायेगा, जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे और इङ्गलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा।.....मेरे दर्जे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटा दाल का भाव मालूम होगा।'

कुछ कहानियाँ संस्कृत गर्भित शैली की होती हैं जैसी प्रसादजी की है) उनमें संस्कृत तत्सम शब्दों का प्राधान्य रहता है और कहीं-कहीं उपमा-रूपकों की झड़ी लगजाती इसका एक उदाहरण हम वातावरण के चित्रण में 'पुरस्कार' कहानी से दे चुके हैं। चण्डीप्रसाद हृदयेश की कहानियों में काव्यमयता और भावावेश और भी बढ़ा हुआ दिखाई देता है।

'रमानाथ ने आवेश में कहा—पूज्यवर देखना चाहता हूँ, माता की उस मधुर मुस्कान को, जिसे देख कर विश्वेश्वर भी विस्मित और विमोहित हो गये थे। देखना चाहता हूँ, हिमाचल के तुषार मण्डित सुवर्ण-शृङ्ग पर माता की फहराती हुई विजय-वैजयन्ती को। सुनना चाहता हूँ सौरभ्य का वह श्रुति मधुर कल-कल-नाद और भेंट में देना चाहता हूँ यह पञ्जर-बद्ध हृदय।'

आवेश पूर्ण शैली में छोटे-छोटे वाक्य होते हैं और समीक्षित होते हैं क्योंकि भावावेश में एक ही बात मन में घूमती रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी और उपन्यास : एक समीक्षा

आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

कहानी की चर्चा करते समय उपन्यास को एकदम भुलाया नहीं जा सकता। कहानी उपन्यास के रूप में आरम्भ हुई थी और कहानी की चर्चा भी उपन्यास की चर्चा से ही शुरू होनी चाहिए। उपन्यास और कहानी अर्थात् कथा साहित्य—आज का सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्याङ्ग हैं। यह समूचा साहित्याङ्ग विशुद्ध आधुनिकता की उपज है और अपने विकास-क्रम में अनेक प्रकार के साहित्यिकरूपों को आत्मसात् कर चुका है। वस्तुतः जब एक यूरोपियन आलोचनात्मक ने कहा था कि उपन्यास के पेट में आधुनिक माने जाने वाले सभी साहित्य रूप आ जाते हैं तो वह कुछ इस बात की ओर इशारा कर रहा था कि आज की साहित्यिक दुनिया में परिचित जितने भी नये साहित्य-रूप हैं—निबन्ध, साहित्यिक पत्र, संस्मरण और इतिहास, धार्मिक प्रवचन, क्रान्तिकारी मेनिफेस्टो, यात्रा विवरण, रेखाचित्र, डायरी, आत्मकथा आदि—उन सबको इसने अपनाया है। और मजेदार बात यह है कि सबको आत्मसात् करने के बाद भी वह सब से भिन्न है। कहानी तो उपन्यास से सीधे उत्पन्न हुई ही है इसीलिए उसके अनेक गुणों को विरासत में पा सकी है।

ध्यान देने की बात यह है कि पुराने महाकाव्यों और नाटकों को सदा जनसमूह के सामने आना पड़ा है; एक पढ़ा जाता रहा है, दूसरा खेला जाता रहा है। दोनों में ही ऐसी अनेक प्रकार की साहित्यिक रूढ़ियों का आश्रय लेना पड़ा है जो जनता को दृष्टि में रख कर निश्चित किए गये हैं। केवल लेखक की इच्छा और रुचि के द्वारा उनका बदला जाना सम्भव नहीं था। परन्तु उपन्यास को ऐसी किसी रूढ़ि से बँधना नहीं पड़ा। वह पाठक और लेखक के बीच एक प्रकार के प्राईवेट और अनौपचारिक सम्बन्ध पर आधारित है। इसीलिये इसके रचना कौशल में एक विशेष प्रकार का लचीलापन है, जो अवसर के अनुकूल रूप ग्रहण कर लेता है। यही कारण है कि उपन्यास (और कहानियाँ भी) लेखक की अनुभूतियों को पाठक के चित्त में अधिक विश्वास के साथ पहुँचाने की सम्भावना लिए रहता है। उपन्यास आधुनिक युग के बहुत ही शक्ति शाली यन्त्र—छापे की मशीन—के आविर्भाव के बाद पैदा हुआ है और पुराने महाकाव्यों और नाटकों से जन्म के साथ ही, भिन्न कोटि का साहित्याङ्ग बन गया है।

मैंने ऊपर संकेत किया है कि आधुनिक छोटी कहानियाँ उपन्यास की प्रत्यक्ष सन्तति हैं। वे उपन्यास की सभी विशेषताओं को लेकर उत्पन्न हुई हैं फिर भी वे उपन्यास से भिन्न और विशिष्ट स्थान पर अधिकार कर सकी हैं। फिर एक बात और है—चूँकि वे दोनों ही साहित्य रूप पाठक और लेखक के बीच एक प्रकार के अनौपचारिक ढङ्ग के आपसी सम्बन्ध पर आधारित हैं इसीलिए लेखक कहानी और उपन्यास के माध्यम से पाठक के चित्त में जिन अनुभूतियों को प्रविष्ट कराना चाहता है उन्हीं पर आलोचक का ध्यान प्रधान रूप से केन्द्रित हो जाता है। लेखक के कहने का ढङ्ग और शिल्प-कौशल आलोचक के लिए गौण बन जाता है। शायद ही कोई दूसरा साहित्याङ्ग हो जिसमें कहने का ढङ्ग और कारीगरी इस प्रकार गौण मान ली जाती हो। इसका वक्तव्य-वस्तु अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है और साहित्य-रूप कम। मामूली सी आलोचनात्मक दृष्टि रखने वाला पाठक अधिकतर उपन्यास या कहनी में पड़े हुये भावावेगों, घटनाओं और शक्तिशाली चरित्रों के साथ अपनी आत्मीयता अनुभव करने में ही अधिक उलझ जाता है। वस्तु-संघटन, कारीगरी और शैली आदि की ओर उसका ध्यान ही नहीं जा पाता। कभी-कभी बड़े और समझदार समझे जाने वाले आलोचक भी उपन्यासों की इसी प्रकार आलोचना करते हैं मानों वे कोई नियम-बद्ध रचना ही न हों, बल्कि यों ही अकृष्ट भूमि में उत्पन्न हुए झाड़-झंखाड़ की तरह बिना किसी योजना के ही, धरती फोड़ कर उग आये हों! ऐसी आलोचना इस साहित्याङ्ग को बहुत ही गलत ढङ्ग से उपस्थित करती हैं। वे मानों चिल्ला कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहती हैं कि उपन्यास और कहानियों का यह लोक-प्रिय साहित्य किसी शिल्प विधान के नियम से नियन्त्रित नहीं है। उसमें रचयिता की शिल्प-चातुरी का कोई स्थान ही नहीं। लेकिन यह बात बिल्कुल गलत है। यदि उपन्यास में कोई शिल्प-चातुरी न होती तो वह इतने दिनों से इतने प्रकार के वक्तव्य-विषय और वक्तव्य-पद्धतियों को इतनी सफलता के साथ आत्मसात् न कर सकता। उपन्यास और कहानियों के गठन में ही निस्सन्देह ऐसी कोई शिल्प-चातुरी है जो तरलधर्मा और परिस्थिति के अनुकूल बनने की क्षमता से सम्पन्न है। अपने आरम्भ काल से लेकर उपन्यास समय की गति के साथ ताल मिला कर चलता आया है और सामाजिक सम्बन्धों की जटिलता के साथ सामञ्जस्य भी स्थापित करता आया है। इसीलिए यह शिल्प-चातुरी बड़े ही महत्व की चीज है। क्योंकि इसमें अन्यान्य साहित्याङ्गों के समान कठोर सीमा का बन्धन नहीं है और मनुष्य की निरन्तर बढ़ती हुई जय-यात्रा के साथ ताल मिला कर चलने की अद्भुत् क्षमता है। विचारणीय यह है कि यह शिल्प-क्या है? यह तो निश्चित ही है कि उपन्यास और कहानी का साहित्य विशुद्ध आधुनिक युग की उपज है और संस्कृत में लिखे जाने वाले कथा, आख्यायिका और चम्पू श्रेणी के साथ इसका दूर का सम्बन्ध होते हुए भी उनसे भिन्न है। वह आधुनिक युग के वैयक्तिकतावादी विचारधारा को आश्रय करके आगे बढ़ा था और आज भी इसके लोक-प्रिय बने रहने में वैयक्तिक मत का बड़ा जबर्दस्त हाथ है। जिस लेखक का अपना निजी वैयक्तिक मत नहीं होता वह सफल कथाकार नहीं हो सकता। वैयक्तिक मत अवश्य चाहिये और चाहिये दृढ़ता—चट्टान की सी दृढ़ता। और सही बात तो यह है कि आज की कल्पित कही जाने वाली कहानियों और उपन्यासों की कथायें वस्तुतः समाज की कल्पित मान्यताओं का तिरस्कार करती रहती हैं। इसका मतलब यह हुआ कि आधुनिक युग का उपन्यास साहित्य सच्चाई का अनुगमन करता है और यद्यपि उसमें कल्पित घटनाओं का संनिवेश किया जाता है तथापि वह झूठी मान्यताओं का निरन्तर विरोध करता रहता है। यह वस्तुतः पुरानी कथा आख्यायिकाओं के कल्पना-लोक से नीचे उतर कर वास्तविकता की कठोर भूमि पर आने का प्रयास है। इस प्रकार नया कथा साहित्य निरन्तर यथार्थ की ओर उन्मुख बना रहता है। इसकी निरन्तर ताजगी का अर्थ यही है कि वह कला-लोक से हट कर वास्तविकता की दुनिया में पहुँचता रहता है और पुरानी सड़ी-गली मान्यताओं का प्रत्याख्यान करता है। वह रूढ़िबद्ध कल्पित मान्यताओं के स्थान पर जमाने की गति से शोधित सच्ची मान्यताओं को प्रतिष्ठित करता है। और यह तो आप मानेंगे ही कि यह कोई नई बात नहीं है। निरन्तर भागते हुए मानों के साथ ताल मिलाकर चलना कठिन साधना है। उपन्यास और कहानियों की दुनिया में यह साधना निरन्तर चल रही है।

इस दृष्टि से देखिए तो साहित्य में यथार्थवाद वह धारावाहिक प्रयत्न है जो साहित्यिक शिल्प विधान और जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है। अन्यान्य साहित्याङ्गों की अपेक्षा उपन्यास और कहानियों का साहित्य इस सामञ्जस्य विधान का शायद सर्वोत्तम वाहन है। वह एक विचित्र तथ्य है कि उगते हुए प्रतिभाशाली कथाकार प्रायः सर्वत्र व्यंग्य और कटाक्षमूलक साहित्य की रचना करते हैं या फिर, पूर्ववर्ती पीढ़ी के साहित्यकारों की रचनाओं का विडम्बनात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं और उन मूल्यों और मान्यताओं पर कटाक्ष किया करते हैं जो किसी समय समाज में अत्यन्त बहुमान के साथ गृहीत थीं पर अब विकृत और जीर्ण हो गई हैं। पूर्वकाल के महाकाव्य और कथा-आख्यायिकाओं का स्थान कथा-साहित्य ने अब अवश्य ग्रहण किया है पर उसके समान पुराने आदर्शों तथा गतिहीन आचारों को कभी महत्त्व नहीं दिया है। इसने सदा दकियानूसी आचरणों और गलत आदर्शों का प्रत्याख्यान किया है। कभी-कभी उपन्यासों का नाम देने में ही पुरानी मान्यताओं का विरोध कर दिया गया है। थैकरे ने 'वेनिटी फेयर' उपन्यास के नाम के साथ एक छोटा उपशीर्षक दे दिया था—'एक नायक विहीन उपन्यास'! यह उस पुरानी मान्यता पर आघात करने के उद्देश्य से किया गया था जो नायकहीन उपन्यास को असम्भव व्यापार मानती है। हिन्दी के प्रतिभाशाली उपन्यासकार अज्ञेय ने "शेखर : एक जीवनी" के नामकरण में उसी धक्कामार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृत्ति का परिचय दिया है। यह उस रूढ़ि का विरोध है जो मानती आई है कि जीवनी और उपन्यास अलग अलग वस्तुएँ हैं, दोनों का रूप अलग, शिल्प-विधान अलग! फील्डिङ्ग ने अपने उपन्यास के साथ 'एक गद्य में लिखा हुआ सुखान्त महाकाव्य'—जैसा एक भारी भरकम वाक्यांश जोड़ कर इसी प्रवृत्ति का परिचय दिया था! उपन्यासकार कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ झकझोर डालने का प्रयत्न अवश्य करता है।

सो, उपन्यास रूढ़मान्यताओं का विरोध करके ही आगे बढ़ा है। निरन्तर सङ्घर्ष इस साहित्य का विशिष्ट लक्षण है।

लेकिन यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रायः कहानी लिखने वाले इस प्रकार के व्यंग्य और चोट करने की प्रवृत्ति से बहुत कुछ मुक्त ही मिलते हैं। कहानीकार काम की बात में अधिक उलझता है। यद्यपि रूढ़ियों पर चोट करने में वह पीछे नहीं रहता पर अधिक भड़कीले रङ्ग में वक्तव्य को रंगने की न तो उसे फुरसत होती है और न बहुत उत्साह। वस्तुतः भीड़भभ्भड़ और रेलपेल की दुनिया ने ही कथाकार को थोड़े में कहने को बाध्य किया है। और उपन्यास की भीतरी लचीली तरल धर्मिता ने उसे थोड़े में कहने की कला के अनुकूल बनने को बाध्य किया है। थोड़े में कहने की यह कला ही वस्तुतः कहानी के रूप में प्रकट हुई है। उसमें रूढ़ियों पर चोट करने पर व्यञ्जना वृत्ति पर अवलम्बित रहने की प्रवृत्ति अधिक है। अनाडम्बर चरित-विधान और अकृत्रिम ढङ्ग से वस्तु योजना कहानी कला की जान है। वह उपन्यास के समान झकझोर डालने या सनसनी में डाल देने का प्रयत्न नहीं कर पाती।

वैसे, यह ठीक है कि हाल के उपन्यासकार भी सनसनी खेज घटनाओं और साहसिक अभियानों में अब उतनी रुचि नहीं रखते बल्कि नित्यप्रति के जीवन और प्रात्यहिक घटनाओं में अधिक रमते हैं। आधुनिक उपन्यास अपेक्षाकृत कम घटना-बहुल होते हैं और चरित्र के भीतरी सङ्घर्ष को अधिक महत्व देते हैं। कथावस्तु पर वे जितना ही कम ध्यान देते हैं उतना ही चरित्र चित्रण पर जोर देते हैं। यहाँ तक कि हाल के उपन्यासकार चरित्र को घटनाओं की परिणति मात्र मानते हैं।

समाज का जो धर्म-शास्त्रीय नियमों पर आधारित विधान है और नैतिकता की जो अवस्था है उसमें चरित्रों का स्वाभाविक विकास रुद्ध हो जाता है। इसीलिए आधुनिक कथाकारों ने (जो पुरानी कथा आख्यायिका के लेखकों से भिन्न जाति के साहित्यिक हैं) ऐसी व्यवस्था के प्रति कभी खुल कर और कभी प्रच्छन्न विद्रोह किया है। उपन्यास और कहानी के लेखकों ने आरम्भ से ही समाज के उपेक्षितों, दलितों और अधःपतितों में मनुष्यत्व की अधिक ज्योति देखी है और उनके प्रति जन-साधारण की सहानुभूति जाग्रत की है। मानवता के खोये हुए और धूलिच्छन्न रत्नों को खोज निकालने में कथा-साहित्य ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। यह दुर्भाग्य की ही बात है कि अधिकांश उपन्यास लेखक समाज के इस उपेक्षित और प्रच्छन्न अङ्ग की चर्चा करते समय अनासक्त नहीं रह पाते। वे समाज के दोष दिखाने के बहाने से दोषों में रस लेने लगते हैं और शक्तिशाली साहित्य के स्थान पर घासलेटी साहित्य लिखने लगते हैं क्योंकि उनमें अपना व्यक्तिगत कोई मत नहीं होता और यदि होता भी है तो उस पर दृढ़ता के साथ जम नहीं पाते। वे भीड़ के इशारे पर चलने लगते हैं। उनमें इतनी भी हिम्मत नहीं होती कि ललकारे जाने पर क्षण भर खड़े हो जायँ। परन्तु इससे कथा-साहित्य की महिमा को कहीं बट्टा नहीं लगा है। मैं ने स्टीफेन ज़्विग की एक कहानी पढ़ी थी। मैं उसका शीर्षक भूल गया हूँ। कम शक्ति वाले उपन्यासकार के हाथ में उसके चरित्र पड़ जाते तो कहानी अत्यन्त बीभत्स हो उठती। आदि से अन्त तक वह कहानी नीति शास्त्र के बंधे बंधाये नियमों के अनुसार अत्यन्त गर्हित है। वह एक सुन्दरी स्त्री का एक डाक्टर से गर्भपात कराने के अनुरोध की कहानी है। इस पाप कर्म से दूसरे पापकर्म को प्रश्रय मिलता है। शुरू से अन्त तक वह पाप की ही कहानी है। परन्तु उस पाप की अग्नि में तप कर दो ऐसे उज्ज्वल चरित्र उसमें निखर उठे हैं कि बस कुछ मत पूछिए। पाप की आँच से ऐसा निखार अद्भुत प्रयास है। मनुष्य के इस दिव्य रूप को देखकर रोमाञ्च हो उठता है। उपन्यासों और कहानियों के साहित्य ने न जाने कितनी घिसी पिसी मान्यताओं को हमेशा के लिये फेंक दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कहानी की आलोचना

श्री त्रिलोचन पाण्डेय

हिन्दी में कहानी का अब अपना साहित्य है जिस आधार पर हम उसे अन्य साहित्यिक विधाओं से पृथक् करते हैं। कहानी के सम्बन्ध में साहित्य के इतिहास रचयिताओं ने अपने-अपने मत दिए हैं। ऐसे प्रमुख आलोचकों के मत नीचे दिए जाते हैं। इतिहास-ग्रन्थों के अतिरिक्त कहानी पर स्वतन्त्र पुस्तकें भी अनेक निकल चुकी हैं जिनमें विभिन्न दृष्टिकोणों से इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। किस पुस्तक में क्या बात है—यह दिखाना प्रस्तुत लेखक का मन्तव्य है।

डा० श्यामसुन्दरदास ने 'साहित्यालोचन' में कहानी या आख्यायिका पर विचार करते हुए उसकी परिभाषा दी है—"आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रख कर लिखा गया नाटकीय आख्यान है।" इसमें समय तथा स्थान अपेक्षाकृत कम है अतः पात्र व परिस्थिति का चुनाव प्रधानता ग्रहण कर लेता है। सङ्घटन की पुष्टता, संक्षिप्त प्रणाली द्वारा भावाभिव्यक्ति अनिवार्य उपकरण हैं। आकार के सम्बन्ध में साधारणतः ३०००-१२००० तक शब्दों की सीमा कही गई है पर वे शब्द न्यूनाधिक हो सकते हैं। प्रधानता उनके आकार की नहीं है, कला के उपकरणों की है। उनका कहना है—"प्रत्येक आख्यायिका का एक निश्चित लक्ष्य उसे लिखने से पूर्व ही निरूपित कर लिया जाय और उस निश्चित लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही घटना, वर्णन, पात्र आदि की सृष्टि की जाय।" पूर्व लक्ष्य निर्धारण से वह उपदेशात्मक होने को बाध्य तो है पर यह लेखक के कौशल पर निर्भर है कि वह उपदेश ध्वनित हो, स्पष्ट व्यक्त न हो।

आचार्य शुक्ल जी कहानी के दो भेद मानकर चले हैं—(१) घटना प्रधान (२) मार्मिक। मिश्रित रूप भी मिलता है। पहले प्रकार में तो इतिवृत्त का प्रवाह मात्र अपेक्षित है, दूसरे प्रकार में इसके साथ विभिन्न स्थितियों का चित्रण भी पाया जाता है। घटना विन्यास के वैचित्र्य को उन्होंने आधुनिक कहानियों की वह प्रत्यक्ष विशेषता मानी है जो उन्हें प्राचीन कहानियों से अलग करती है। उन्होंने 'इन्दुमती' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है जो सं० १९५७ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। लेखक हैं श्री किशोरीलाल गोस्वामी। तदुपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' व 'दुलाई वाली' कहानी आती हैं। कहानियों की शुक्लजी ने कुछ प्रणालियाँ निर्धारित की हैं—

१—सादे ढङ्ग से कुछ अत्यन्त व्यञ्जक घटनाएँ प्रस्तुत करने वाली जैसे—'निन्दिया', 'पेन्सिल स्केच'

२—मार्मिक परिस्थितियों के वर्णनों के साथ उन्हीं में अन्त होने वाली जैसे—'उन्मादिनी', 'शान्ति निकेतन'

३—घटना की व्यञ्जना के साथ-साथ लेखक की व्याख्या सहित जैसे—प्रेमचन्द, जैनेन्द्र।

४—घटना-संवाद में व्यञ्जना-कलाओं का समन्वय लेकर चलने वाली जैसे—प्रसाद, रायकृष्णदास।

५—किसी तथ्य का प्रतीक खड़ा करने वाली—जैसे उग्र की 'भुनगा'

हिन्दी कहानी का संक्षिप्त विकास भी प्रस्तुत किया है।

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास में कहानी की चर्चा वैदिककालीन दन्त-कथाओं से आरम्भ की है। संस्कृत में उन्होंने दो नाम बताएँ हैं—(१) कथा (२) आख्यायिका। पारस्परिक वार्तालाप का काल्पनिक वर्णन है कथा; प्रथम पुरुष में जीवन की विभिन्न स्थितियों का वर्णनात्मक ढङ्ग है आख्यायिका। तब उन्होंने कहानी के विविधि अङ्गों पर विचार किया है। पहला अङ्ग है कथानक। कथाकार की दृष्टि, अन्तर्दृष्टि होती है। वह हृदय के उन्माद में, विरोधक शक्तियों, भावों व समस्याओं पर जाती है। कथानक तो जीवन से ही गुथा रहता है। आपने कहानी लिखने के तीन ढङ्ग माने हैं—लेखक द्वारा इतिहास की तरह, लेखक द्वारा प्रथम पुरुष में, डायरी के पृष्ठों के रूप में। प्रारम्भ के सम्बन्ध में उनका कहना है—उसमें आकर्षण हो, कहानी से उसका पूर्ण सामञ्जस्य हो, उसमें कहानी का उद्देश्य भी सन्निहित हो। तब क्रमिक विकास, कुतूहल, हास्य-व्यंग्य आदि उपादानों का विचार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० साहब ने कथोपकथन को कहानी का सर्वोत्तम अंश माना है। इसके लिए एक ओर तो लेखक को अपने भाव समझने की चेष्टा करनी चाहिए, दूसरी ओर अन्य व्यक्तियों के व्यवहार का सूक्ष्म अवलोकन करना चाहिए। भाषा-शैली पर विचार करते हुए लिखा है—"शैली ही मञ्च है, जिस पर आकर भाव और विचार अपना सुन्दर अभिनय दिखाते हैं।" तब उद्देश्य पर विचार है। लेखक को यह चिन्ता न हो किस उद्देश्य विशेष से कहानी लिखी जाय, ध्यान यह हो कि उसे कला का रूप देकर कहाँ तक जीवन के अङ्गों में घटाया जा सकता है। अन्त में कहानी के गुण स्पष्ट किए हैं—मौलिकता, स्वाभाविकता, सरसता, उपयुक्त विषय, भावप्रधानता आदि।

इनकी आलोचना में सबसे बड़ी विशेषता है सोदाहरण लक्षणों को समझा देना। 'रानी सारन्धा', 'स्तोफा', 'करुणा की मूर्ति', 'दुर्गा का मन्दिर', 'अम्मा' से उद्धरण दिए हैं। हिन्दी की इन कहानियों के साथ ही 'पो', 'हॉथर्न', 'स्टीवेन्सन' आदि के संकेतों द्वारा भी अपने विचारों की पुष्टि की है।

बाबू गुलाबराय ने 'काव्य के रूप में' अङ्गों की विवेचना के उपरान्त तत्वों पर विचार किया है। उपन्यास, गद्य-काव्य, रेखाचित्र, प्रगीत से कहानी का अन्तर स्पष्ट किया है। कुछ अँग्रेजी सिद्धान्तों के उद्धरण के पश्चात संक्षेप में हिन्दी-कहानी का विकास भी दिखाया है। शैली के कुछ गुण निर्धारित किये हैं। पाश्चात्य सिद्धान्तों को भारतीय कहानियों के उदाहरण से समझाने की चेष्टा की है।

श्री मुन्शी कन्हैयालाल, भूतपूर्व सम्पादक 'चाँद' ने लेखकों का पथ-प्रदर्शन ध्यान में रख कर एक पुस्तक लिखी 'कहानी कैसे लिखना चाहिए।' इसकी सामग्री एकत्र करते समय लेखक ने पाश्चात्य समालोचकों व लेखकों के उपयोगी ग्रन्थों से सहायता ली है। मौलिकता का 'झूठा दावा' वह नहीं करता। इसी कारण नियम अधिकांश पाश्चात्य सिद्धान्तों के रूपान्तर हैं। कहानी के स्वरूप, प्लाट, चरित्र-चित्रण, रचना, क्लाइमैक्स, शैली का विवेचन किया है। कहानी के शीर्षक, मसौदे पर भी प्रकाश डाला है तथा तत्सम्बन्धी पुरस्कार, उपयुक्त स्थान का निर्देश भी किया है। लेखक सफलता के मुख्य तीन गुण मानता है—चरित्र-चित्रण, दृश्य, प्लाट।

श्री विनोदशंकर व्यास तथा ज्ञानचन्द जैन ने अपनी-पुस्तक 'कहानी-कला' में ९ अध्यायों में विचार स्पष्ट किए हैं। आरम्भ में कहानी कला का विकास है। भारत में ऋग्वेद से उसका क्रम निर्दिष्ट किया है। ग्रीक, लैटिन तथा ईसाइयों के 'ओल्ड एन्ड न्यू टेस्टामेन्ट' के कथा-साहित्य से पाश्चात्य विकास का निरूपण भी है। हिन्दी की प्रथम कहानी उन्होंने भी 'रानी केतकी की कहानी' को माना है। इधर के परिवर्तनों पर विचार करते हुए लिखते हैं। "आधुनिक कहानियों का ध्येय है मनुष्य के मनोरहस्यों का उद्घाटन करना। उनमें अनिमन्त्रित और अप्रासंगिक भावुकता के प्रदर्शन का अवकाश नहीं।" 'प्लाट' शीर्षक वाले परिच्छेद में उसके प्रस्तावना भाग, मुख्यांश, क्लाइमेक्स, अन्त आदि पर विचार है। 'रचना क्रम' के उपरान्त कहानी के शीर्षक, आरम्भ व अन्त पर प्रकाश डाला है। शीर्षक के शब्दों पर विचार करते हुए लिखा है। "शीर्षक चार शब्दों से अधिक का न हो तो ठीक होगा।" (१) एक शब्द का शीर्षक—'विसाती', 'रधिया' आदि। (२) दो शब्दों का शीर्षक 'भूली बात', 'उसकी कहानी' आदि। (३) तीन शब्दों का—'हार की जीत', 'उसने कहा था' (४) चार शब्दों का शीर्षक—'स्वर्ग के खण्डहर में' 'चरित्र चित्रण'। वार्तालाप तथा भाषा शैली के उपरान्त नवीन लेखकों के लिए कुछ सुझाव रखे हैं। पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है उदाहरणों द्वारा सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण। प्रसाद, प्रेमचन्द, उग्र, निराला आदि के उद्धरण हैं। प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी का स्वतंत्र परिच्छेद में विश्लेषण किया है। अपने सभी सिद्धान्तों को उस पर अलग-अलग घटा कर स्पष्ट किया है।

श्री गिरधारीलाल शर्मा ने 'कहानी-एक कला' पुस्तक में कुछ आलोचना प्रस्तुत की है। कुल ९ अध्याय हैं। परिशिष्ट में हिन्दी कथा साहित्य की प्रगति है। लेखक ने क्रमशः कहानी के स्वरूप, उपकरण, अङ्ग, चरित्र चित्रण, लेखन पद्धति, शैली, आकार व उद्देश्य पर विचार किया है। दो अध्यायों में यथार्थवाद, कहानी के सौन्दर्य पर विचार है। लेखक ने कहानी के तीन भेद कर दिए हैं—आख्यायिका, स्केच, गल्प। परिभाषा दी है। "कहानी किसी एक पात्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की कोई विशेष घटना मात्र है। किन्तु वह घटना केवल जैसी तैसी घटना नहीं, वह मानव हृदय में अपना गहरा असर डालने वाली होती है।" इसके साथ पूर्वी-पश्चिमी आलोचकों-कथाकारों के मत स्पष्ट किए गए हैं। विश्व-साहित्य में प्रसिद्ध कुछ कहानियों की लम्बाई भी दी है।

श्रीपति शर्मा जी की 'कहानी कला और प्रेमचन्द' पुस्तक एम० ए० की थीसिस का परिवर्धित रूप है। उपन्यासों की अपेक्षा प्रेमचन्द की कहानियों को वे कला की दृष्टि से अधिक सफल मानते हैं। इन्हीं को साहित्यिक विषय बनाकर पुस्तक रूप दिया गया है। आरम्भ में पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने १६ पृष्ठों की एक 'कालिका' लिखी है जिस में तारतम्य के विचार से वे कथा कहानी का साहित्य में तीसरा स्थान मानते हैं। लेखक ने पृष्ठभूमि के रूप में कहानी कला के विकास व सिद्धान्तों का विवेचन किया है। कहानियों की आलोचना यथार्थ की दृष्टि से अधिक है। समीक्षा का मापदण्ड विदेशी है। सर्वत्र स्वतन्त्र चिन्तन तो नहीं है पर कुछ सिद्धान्त छोड़कर विषय विवेचन अपनी दृष्टि से किया है। पाश्चात्य दृष्टि से कहानी की परीक्षा बहुत कुछ समीचीन है।

श्री गङ्गाप्रसाद पाण्डेय ने 'हिन्दी कथा साहित्य' नामक पुस्तक में एक लम्बे स्पष्टीकरण के उपरान्त हिन्दी कहानी का विकास निरूपित किया है। साहित्य के प्रति पहले ही अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है, जिस आधार पर आलोचना की गई है। तब हिन्दी के १२ प्रमुख कलाकारों का कृतियों सहित सम्यक विवेचन है। 'अन्य कथाकार' शीर्षक में १३ अन्य कहानीकारों पर प्रकाश डाला है। पुस्तक को अत्यन्त समीचीन रखने की भरसक चेष्टा की है।

प्रो० वासुदेवनन्दन प्रसाद की एक पुस्तक निकली है 'हिन्दी कहानी और कहानीकार।' प्रथम चार अध्यायों में कहानी की परिभाषा, आधुनिक कहानी का स्वरूप, सफल श्रेष्ठ कहानी की कसौटी, प्राचीन आधुनिक कहानी की चर्चा है। वर्गीकरण के साथ साथ कहानी संग्रहों पर भी विचार हुआ है। अन्त में हिन्दी के १० प्रमुख कहानीकारों का स्वतन्त्र शीर्षक देकर विवेचन है।

डा० सत्येन्द्र ने 'प्रेमचन्द—उनकी कहानी कला' पुस्तक में प्रेमचन्द के परिचय के साथ उनके समय की परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है, जिससे प्रेमचन्द की कला पर प्रभाव व क्रमशः विकास भी स्पष्ट होता है। डा० साहब ने प्रेमचन्द के दृष्टिकोण से कहानी की परिभाषा के विकास पर भी विचार किया है। प्रारम्भिक कहानियों के मूल-तत्व व विकास पर प्रकाश डाला है। वर्गीकरण भी किया है जिससे लेखक द्वारा ग्रहीत कहानियों के विभिन्न विषय स्पष्ट हो जाते हैं। पुस्तक, जैसा कि शीर्षक से ही प्रकट है, प्रेमचन्द से ही सम्बद्ध है और उन पर पूर्ण प्रकाश डालती है।

डा० हजारीप्रसादजी की प्रस्तावना सहित श्री छविनाथ त्रिपाठी की पुस्तक निकली है 'कहानी कला और उसका विकास'। लेखक ने आरम्भ में कहानी का अन्य साहित्यिक विधाओं से अन्तर स्पष्ट किया है, परिभाषा देते हुए उसके गुण-दोषों का विवेचन किया है। तत्व, आदर्श-यथार्थ, प्रेम-करुणा सम्बन्धी समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। हिन्दी कहानी के विकास के साथ पन्द्रह वर्गों में प्रगतिशील कथा-साहित्य पर भी विचार व्यक्त किये हैं।

'कहानी और कलाकार' शीर्षक से प्रो० मोहनलाल की पुस्तक निकली है। इसमें "हिन्दी कहानी और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का मार्मिक विश्लेषण" है। वृन्दावनलाल वर्मा ने इसकी भूमिका में लिखा है—यह पुस्तक हिन्दी पाठकों की बड़ी आवश्यकता को पूरा करती है। इसों पर दृष्टि डाल कर कहानी के प्रत्येक अङ्ग का परिचय हो जाता है। साथ ही यह विद्यार्थी व शिक्षक वर्ग के "साहित्यिक यात्रा पथ में सम्बल का कार्य" देने के उपयुक्त भी है। कहानी की विविध शैलियों का विश्लेषण है। कथाकार कैसे पात्रों द्वारा मनोवाञ्छित प्रभाव की सृष्टि करता है—सोदाहरण इसकी विस्तृत व्याख्या हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं, कहानी का आलोचना सम्बन्धी पृथक् साहित्य ही बन गया है। आलोचकों ने मुख्य प्रवृत्तियों, अङ्गों का विवेचन किया है, उसके सिद्धान्त निश्चित किये गए हैं, वर्गीकरण हुआ है। कहानी साहित्य विकसित हुआ है, पुष्ट हुआ है; आलोचना भी। और, भविष्य उज्ज्वल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी : क्यों

प्रमुख कहानीकारों की अपनी लेखनी से

मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी वह है जो अभी लिखी नहीं गई। जब लिखी जायगी, तो बता सकूंगा, कि वह क्यों मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

—सुदर्शन

❀ ❀ ❀

मैं अपनी कहानियों में सबसे अच्छी 'कलाकार का दण्ड' समझता हूँ; क्योंकि इसके द्वारा मैंने ग्रीक और आर्य मूर्ति कला के मौलिक अन्तर को मूर्त करने का प्रयत्न किया है।

—वृन्दावनलाल वर्मा

❀ ❀ ❀

'चतुरी चमार' ही मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। मेरी कहानियाँ सभी मौलिक हैं जिनमें मैंने साहित्य का निखरा रूप रखने की चेष्टा करते हुए सत्य घटनाओं का ही चित्रण किया। व्यंग्य, शैली एवं प्रवाह आदि का पूरा-पूरा उपक्रम 'चतुरी चमार' में वर्तमान है। 'सुकुल की बीबी' भी अपना मौलिक स्थान रखती है। कुल मैंने बीस ही कहानियाँ लिखी होंगी, जिनमें "देवी" भी अपना अच्छा स्थान रखती है। 'सुकुल की बीबी' का नाटकीकरण मेरे प्रिय शिष्य जयगोपाल मिश्र द्वारा किया जा चुका है।

—निराला

❀ ❀ ❀

मैंने यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों प्रकार की कहानियां लिखी हैं। मेरी दृष्टि में यथार्थ का स्थान आदर्श से बहुत ऊँचा है। आदर्शों की राह बहना सुगम है, यथार्थ को गहरी दृष्टि से देखना कठिन। आदर्श प्रेरणायें देता है, यथार्थ व्यापक सत्य की गुह्य सूचनायें। मेरी प्रेरणा-मूलक आदर्शवादी कहानियों में से कई एक उपरोक्त कहानी से अधिक समर्थ है, किन्तु मेरे वरेण्य यथार्थ में और इसीलिए अपनी संपूर्ण कहानियों में, मैं अपनी 'अलगोजे वाला रावी' कहानी को ही सर्वश्रेष्ठ पाता हूँ। क्यों? इसीलिए कि—

१—इस रचना को मैंने अपने जीवन की एक कल्पना मूलक, दूर-व्यापी स्मृति के रूप में अनुभव किया है। यह मेरी उन कल्पनाओं में है जिनसे मेरी दैनिक जीवन में सीमित चेतना को विस्तार मिलता है।

२—परिस्थिति और भावना के सृजन के साथ-साथ मानवीय सहानुभूति, सौजन्य, प्रभात एवं कुछ असाधारण तत्वों के सहज समावेश में भी मुझे इस कहानी में अपनी सबसे ऊँची सफलता मिली है।

३—मेरे पाठक-श्रोता मित्रों को यही कहानी सबसे अधिक पसन्द आई है, यह अपने प्रवाह में उन्हें साथ ले चलने में सफल हुई है।

—रावी

❀ ❀ ❀

मेरे मते कथाकार की सर्व-श्रेष्ठ कहानी-सम्बन्धी सवाल ही सही दिमाग की उपज नहीं।

वह कलाकार कोई भकुवा ही होगा जिसने सम्यक् निर्माण-काल में सहज एक ही ऐसी रचना की हो, जिसे सुधी-समाज सर्वश्रेष्ठ समझ सके।

रसाल-वृक्ष जैसे, एक नहीं, शत-शत अमृत फल फलता है; वैसे ही, रस-सिद्ध कथाकार की, एक नहीं, शत-शत अमृत-रचनाएँ होती ही हैं। वेदव्यास-जैसे कथाकार हों, तो सहस्र-सहस्र ऐसी कहानियाँ पेश कर दें जिनमें से सर्वश्रेष्ठ चुनना मुश्किल हो जाय। चुनिन्दे चतुरों के लिये भी।

फिर भी, आपके 'कहानी-अङ्क' की शोभा के लिये सर्व-श्रेष्ठ कहानी का नाम लेना ही पड़े, तो मैं कहूँगा कि मेरी सर्व-श्रेष्ठ कहानी है 'चाकलेट'।

जिसकी हेतु-शुद्धता पर महात्मा गान्धीजी का प्रमाण-पत्र है, जिसे—जानें किस आचरण, रण-नीति से—पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने बीस वर्षों तक दाब रखा था।

—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

❀ ❀ ❀

मेरी दृष्टि में मेरी अबतक की प्रकाशित लगभग साढ़े चारसौ कहानियों में 'लम्बग्रीव' सर्व श्रेष्ठ कहानी है। हाल ही में एक कहानी संग्रह प्रकाशित हो रहा है। जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी मार्केट में नहीं आया है। उसमें यही सर्वप्रथम कहानी है। उक्त संग्रह की कच्ची एक प्रति मैं आपके पास भेज रहा हूँ। उसमें कहानी पर मेरी पत्नी की कुछ पंक्तियाँ हैं, जो कहानी के सम्बन्ध में यथेष्ट हैं। आप चाहें तो उनका उपयोग ज्यों का त्यों कर सकते हैं। (पंक्तियाँ यह हैं :—)

"इस कहानी में कलाकार की आहत आत्मा असह्य वेदना से चीत्कार कर रही है। उस चीत्कार से देव दत्य तक विचलित हो गये हैं। कलाकार, जो नित्य ही भूत दया, प्राणियों के सुख और जीवन के आनन्द के स्वप्न देखता रहता है, जब महामहानरमेध का द्रष्टा बना तो फिर उसकी वेदना की सीमा क्या होगी ? शायद ही विश्व के किसी कलाकार ने भारत की विभाजन विभीषिका पर ऐसा हाहाकार किया होगा। कहानी के टेक्नीक का जहाँ तक सम्बन्ध है, लेखक को जातिगत विद्वेष से अछूता रहने में अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। कहानी में विशुद्ध मानव प्रेम और भूतदया है। रत्ती भर भी प्रोपेगण्डा नहीं है, व्यङ्ग और श्लेष के चटमकार के तो कहने ही क्या हैं। 'चन्द्रकला' कहानी का प्राण है, जो शिव का शिरोभूषण और विभाजन के पुरोहित का राष्ट्र चिह्न है। कहानी लेखक की सर्वोत्कृष्ट कहानियों में यह अन्यतम है।" —चतुरसेन शास्त्री

❀ ❀ ❀

बार-बार पूछा गया है कि मुझे अपनी कौन कहानी सबसे अच्छी लगती है और क्यों ? बार-बार मैं खोजता रह गया हूँ। 'क्यों' का उत्तर बन भी जाय 'कौन' का जवाब हाथ नहीं आता। वक्त पर जो लिख गया, लिख गया और ऐसे अलग पीछे छूट गया। याद उसमें कुछ रह गया तो रह गया होगा पर उनमें चुनाव करना मुश्किल होता है।

फिर भी अब के लिए दो कहानियाँ याद कर लेता हूँ। कारण 'साहित्य-सन्देश' का यह 'कहानी अङ्क' है और कुछ कहानियाँ लिखने का गुनाह किया है, इससे दण्ड से मुझे बचाव नहीं। कहानी वे ही दो क्यों याद आयीं इसका कारण शायद यह हो सकता है कि कोई उन्हें याद करता सुना नहीं है। एक 'नीलम देश' दूसरी 'लाल सरोवर'। शायद दोनों मुझे निकट भी हैं।

मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि दोनों ही असम्भव कहानियाँ हैं। कुछ भी उनमें सम्भवनीय नहीं है। नीलम का देश कोई नहीं होता, न कोई राजकन्या जिसकी लक्ष-लक्ष वर्ष आयु हो और माता-पिता जिसके कोई हों ही नहीं। लाल सरोवर में भी एक महाशय के जहाँ पैर पड़ते हैं एक-एक अशर्फी होती जाती है। आखिर में अशर्फियाँ महाशय की प्रार्थना पर सरोवर में लहलहाती कमलनियाँ बन जाती हैं। यह सब अनहोनी बात है। कहीं चेष्टा नहीं है कि यथार्थ का भ्रम पैदा किया जाय मानों पहले ही डुग्गी पीट कर बता दिया जाता है कि यह गढ़न्त है। वस्तु तथ्य उसमें नहीं है। मुझे लगता है कि ऐसी कहानी जो वास्तविकता का आधार ही नहीं अधिक आयु पा सकती है। शरीर मरता है, आत्मा अमर है। वास्तव पर ही जो सर्वथा निर्भर है उस कहानी को चलते समय के साथ मर जाना चाहिए। आधार में अविनश्वर हो कहानी को (या किसी को) नाश से पहले बचाया जा सकता है। उसकी सुविधा या मजबूरी उन कहानियों के साथ है जो वास्तव का बाना पहनने को ठहरती ही नहीं। चित् तत्त्व या आत्म तत्त्व के प्रकाश के लिये जो भी उपकरण बना उसी को लेकर खिल पड़ती है।

ऊपर की कहानियों में सुधार का सुझाव नहीं है, न दोष की दिशा पर कोई निर्देश। सामयिकता या सामाजिकता नहीं है। इसलिये कोई कारण नहीं कि उपयोगिता के तल पर उन्हें याद किया जाय। हवाई कह कर उन्हें आसानी से टाला जा सकता है। इस तरह वे किसी आरोप की भाँति नहीं आतीं। इन सब कारणों से वे मेरे लिये अप्रिय या कम प्रिय तनिक भी नहीं बन पातीं। बल्कि प्रेम उनके प्रति अधिक स्थायी रहता है क्योंकि उनकी ओर से उसके लिए कोई दावा नहीं होता। —जैनेन्द्र कुमार

❀ ❀ ❀

मेरी लिखी कुल सोलह कहानियाँ हैं, जिनका संग्रह 'विभूति' नाम से प्रकाशित हो चुका है। उसमें एक कहानी 'आस्करवाइल्ड' की एक कहानी का अनुवाद है। बाकी १५ कहानियाँ मेरी मौलिक रचनाएँ हैं और सभी सच्ची घटनाओं पर आश्रित हैं। दो-चार ऐतिहासिक भी हैं, किन्तु, मैं नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह सकता कि उनमें से कौन-सी कहानी सर्वश्रेष्ठ है। "निज कवित्त केहि लाग न नीका, सरस होउ अथवा अति फीका।" परन्तु, जिन कहानियों को अधिक से अधिक सहृदय सज्जनों ने पसन्द किया है, उन्हीं को मैं सुन्दर और उत्तम समझता हूँ। रचना की उत्तमता का असली प्रमाण लोक मत ही है। जो अधिकांश लोगों को रुचे, वही श्रेष्ठ रचना है। आज जब मैं कहानी के टेकनीक सम्बन्ध में कहीं कुछ पढ़ता हूँ तो अपने आपको कहानी लेखक मानने में भी बड़ी हिचक होती है।

मेरी दो कहानियाँ ('मुण्डमाल' और 'कहानी का प्लाट') अब तक लगभग दर्जनों संग्रहों में सङ्कलित हो चुकी हैं। इसलिए मेरा अनुभव है कि ये दोनों कहानियाँ बहुत-से लोगों का चित्ताकर्षण कर चुकी हैं। इनमें शब्द-जाल के सिवा क्या खूबी है, मैं नहीं जानता। परन्तु मुझे व्यक्तिगत रूप से अपनी 'मानमोचन' नामक कहानी विशेष अच्छी लगती है, जो पहले पहल श्रद्धेय पं० कृष्णबिहारी मिश्रजी के 'समालोचक' पत्र में प्रकाशित हुई थी। उसमें कौन-सी बारीकी है, यह बतलाना मेरे लिये कठिन है; क्योंकि मैंने कभी कहानी-कला के तत्वों को समझने की चेष्टा नहीं की, केवल भाषा और भाव की सुन्दरता पर ही अपनी सूझ-बूझ के अनुसार मेरा ध्यान बराबर रहा। ऐसी स्थिति में यह बतलाना शक्य नहीं कि मेरी कौन कहानी सर्वश्रेष्ठ है। सच्चे पारखी समालोचक ही यह बतला सकते हैं। मुश्किल यहाँ है कि आज की समीक्षा की कसौटी पर कसे जाने योग्य मैं नहीं रह गया। —शिवपूजन सहाय

❀ ❀ ❀

कहानियाँ मैंने अधिक नहीं लिखी। सन् १९३६ ई० से १९५२ ई० के १६ वर्ष के लम्बे समय में मैंने कुल लगभग ७० कहानियाँ लिखी होंगी। कुछ बड़ी, कुछ छोटी औसतन एक वर्ष में पाँच कहानियाँ भी नहीं पड़ीं। और इनमें सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक सभी प्रकार की कहानियाँ हैं। और मुझे इन्हीं कहानियों के बल पर पाठक बहुमायत से प्रगतिशील लेखक कहते हैं। कुछ लोग जो मेरी ऐतिहासिक कहानियाँ देख सकते हैं, वे समझते हैं और बिना पढ़े ही उन पर राय दे सकते हैं कि वे पलायनवादी और प्राचीनतावादी भावना को लेकर लिखी गई हैं। वस्तुतः वे नहीं समझते कि प्रगतिशील चिन्तन केवल राजनीति में ही सीमित नहीं होजाता, उसका अर्थ है इतिहास, समाज, राजनीति तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक वैज्ञानिक ढङ्ग से देखना। और जब यह आरम्भ होता है, तब सारी सङ्कीर्णतावादी मनोवृत्ति दूर हो जाती है। मेरी कहानियों में मैंने इसका विशेष ध्यान रखा है। और सभी कहानियाँ किसी Moral को लेकर तो नहीं, परन्तु Purpose को लेकर लिखी गई हैं। और मेरा दृष्टिकोण रहा है, समाज और व्यक्ति को उचित Perspective में देखना और जीवन को रूढ़ियों की ओर नहीं, दूसरी ओर—आगे की ओर—एक बेहतर समाज बनाने की ओर ले जाना। कहाँ तक सफल हुआ हूँ यह केवल इस पर निर्भर है कि कहने की बात तो लेख में भी कही जा सकती थी, वस्तु में कहानीपन है भी या नहीं? वर्ना कहानी लिखने की आवश्यकता ही क्या थी? किसी हकीम ने तो बताया न था।

ऐसी ही एक कहानी थी 'घिसटता कम्बल' जो 'समुद्र के फेन' में संग्रहीत है। जब लिखी तो कुछ महसूस नहीं हुआ, पर जब सुनाई गई तो इतनी पसन्द की गई कि मैं स्वयं चिन्ता में पड़ गया। और जहाँ भी समुद्र के फेन की आलोचना हुई 'घिसटता कम्बल' बहुत पसन्द की गई। और कहानी क्या है वह? एक कुर्क की दाल जल्दी से पक नहीं रही है। बस। इतनी सी बात है। दूसरी कहानी थी 'नरक'। 'नरक' को सुन कर लोगों ने कहा—बहुत नया प्रयोग है। इसके बाद तीसरी 'सारनाथ के खण्डहरों में' लिखी। मेरी राय है वह बहुत अच्छी चीज है, पर आलोचक महोदय ने लिखा कि वैसी ऊबानेवाली कहानी उन्होंने अपनी जिन्दगी में कभी नहीं पढ़ी। मैंने इसीमें अपनी कहानी का कल्याण समझा कि कहानी जरूर अच्छी होगी क्योंकि ऊबानेवाली चीज को कोई सिर में पट्टी बाँध कर क्या खतम करने तक पढ़ता है? इधर कहीं पढ़ा कि यशपालजी ने मेरी 'पञ्चपरमेश्वर' कहानी को बहुत पसन्द किया। पहले श्री अमृतराय ने मुझे पत्र लिखा कि यह कहानी प्रेमचन्द की पञ्चपरमेश्वर से कहीं यथार्थवादी है।

मैं नहीं जानता, कौनसी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। मैं उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों में हूँ जो विश्वास करते हैं कि लिखना अभ्यास पर निर्भर है। कोई जीवन पर्य्यन्त लिखकर यदि एक भी ऐसी किताब लिख जाये जो साहित्य में बाद रखी जाये तो वह लेखक सफल है। अतः अभी से सर्वश्रेष्ठ का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि अभी राह मुझे न तो छोटी दिखाई देती है, न कलम भारी है, न मसि चुकी है। परन्तु इतना मैं मानता हूँ कि जितना कठिन एक उपन्यास लिखना है, एक कहानी लिखना भी उतना ही कठिन है। —रांगेय राघव

❀ ❀ ❀

'प्रश्न उठा है कि मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी कौन है?

मैं क्या उत्तर दूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। जिन रचनाओं का जन्म मेरी आत्मा के रस से हुआ है—हर्ष के घोर निपीड़ित कोलाहल और हाहाकार से हुआ है, उन सब को अवमानना का अर्थ मैं जानता हूँ। व्यावसायिक जगत में जिनका अधिक मूल्य आँका गया है, वही श्रेष्ठतम हैं, यह मैं कैसे मान लूँ! जिस देश में शिक्षा-शास्त्र के स्वनामधन्य अधिनायक पाठ्यक्रम को सेक्स से मुक्त रखने की शपथ ले लेकर गौरवान्वित होते हों, वहाँ कथा-साहित्य के साथ न्याय होगा! शिव-शिव! सोचता हूँ 'मिठाईवाला, स्पर्द्धा, प्रलोभन तथा महापुरुष जैसी बीस-पचास सेक्स हीन कहानियाँ यदि मैंने न लिखी होती तो आज मेरी क्या स्थिति होती! परन्तु पाठ्यक्रम में स्वीकृत कहानियों की ही चर्चा विशेष हुई, इस प्रत्यक्ष सत्य को तो मुझे स्वीकार करना ही पड़ेगा। इस दृष्टि से देखूँ तो 'मिठाईवाला' और 'निदिया लागी' ने निस्सन्देह मेरा अधिक प्रतिनिधित्व किया है। 'मिठाईवाला' मेरी सन् ३० के लगभग की रचना है, 'निदिया लागी' सन् ४० के लगभग की। आज मैंने जो दोनों को पढ़कर देखा, तो 'निदिया लागी' ने मुझे अधिक प्रभावित किया। परन्तु यह स्वीकार कर लेने के साथ-साथ बारम्बार मेरे अन्तः करण से यही स्वर फूट उठना चाहता है कि ऐसी तो मेरी पचासों कहानियाँ हैं, किसके पास इतना समय है—कौन है, जो उनकी ओर कभी ध्यान देने का कष्ट उठाये! कोई हो, तो मैं उसको उन कहानियों के निकट ले जाने को तत्पर हूँ।

अब शेष प्रश्न यह रह जाता है कि 'निदिया लागी' को मैं श्रेष्ठतम क्यों मानने को तैयार हूँ। उत्तर में क्षणभर का मौन जब आवश्यम्भावी हो जाता है, तब होंठ खुलने से पूर्व मेरा कण्ठ भर आता है और नेत्र कुछ कह उठना चाहते हैं। बात यह है कि इस कथा का जन्म एक अति साधारण वंश-कुल में हुआ था। निर्माता को स्वयं पता नहीं था कि एक दिन वही उसकी मान-रक्षा का विषय बन जायगी।

इस कहानी की श्रेष्ठता एवं रुचिरता के कई कारण हैं। कौन प्रधान है, इसका निर्णय तो विज्ञ जन ही कर सकते हैं। हो सकता है, इस कहानी के नायक की परिस्थिति में निर्माता ने अपने आप को देखने की कुछ अधिक चेष्टा की हो। ऐसा भी हो सकता है कि इस कथा की सृष्टि कल्पना में अदृष्ट का हाथ प्रेरणा बनकर निर्माता के सिर पर आ गया हो। कारण, जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का संग्रहालय भवन बन रहा था, तभी एक दिन जीरो रोड से गुजरते समय उसकी छत कूटने का दृश्य निर्माता की दृष्टि में जा पड़ा था। फिर दो-चार दिनों के बाद संग्रहालय भवन का एक अंश-विशेष अकस्मात् धराशायी हो गया, परिणाम स्वरूप एक-आध मजदूर की प्राणहानि भी हो गई।

तात्पर्य यह कि निर्माता की कल्पना को भी प्रेरणा का एक आधार अवश्य मिला है। उसका कुछ ऐसा विचार भी है कि ऐसा तो प्रायः होता है। कोई एक दृश्य, कोई एक संवाद, कोई एक घटना चुपचाप कलाकार के मानस-लोक में पड़ी रहती है। एक के संयोग से दूसरी भी अनुकूल अवसर पाकर एक प्रेरक शक्ति बन कर फूट पड़ती है। समान धर्मी वृत्तियों का तम्य बहुधा ऐसी प्रेरणाओं की भूमिका बन जाती है

किन्तु ये सब , साधन और उपकरण गौण हैं। मुख्य स्रोत है निर्मा[illegible] का वह पावन हृदय, जो भावनाओं को ग्रहण करने में अतिशय समवेदनाशील होता है।

—भगवतीप्रसाद वाजपेयी

❀ ❀ ❀

मुझे प्रसन्नता है कि कहानियाँ मैंने इनी-गिनी लिखी हैं। मेरे पक्ष और विपक्ष दोनों के ही लिए यह तथ्य उपयोगी है। अधिक नहीं लिख सका इसका एक ओर यह अर्थ लगाया जा सकता है कि मुझमें लिखने की शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है, दूसरी ओर दर्प के साथ यह निष्कर्ष भी निकलता है कि सिंह बहुसंख्यक न हों तो हानि नहीं है।

किन्तु समस्या दूसरी है। मुझे इस समय अपनी किसी एक कहानी का अभिषेक करना है। इस सिलसिले में राजवंश के नियम और परम्परा अच्छी हैं, वहाँ किसी भी अवस्था में ज्येष्ठ कुमार ही सर्वोपरि है। इसके कारण कितनी ही कठिनाइयों का निराकरण अपने आप हो जाता है, यद्यपि कनिष्ठों में कितने ही षड्यन्त्र कारी प्रमाणित होते हैं और उनके कारण राज-भवनों में निरन्तर अशान्ति रहती है, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में यह परिपाटी किसी भी आचार्य के द्वारा समर्थित नहीं है। फिर मेरी कहानियाँ राजा और रानियों की हैं भी नहीं।

दूसरा उपाय यह है कि इस झमेले में मैं पड़ूं नहीं। कह दूँ—इसमें मेरी हानि भी अधिक नहीं है—कि कहानी साहित्य का श्रेष्ठ अङ्ग नहीं है। होता तो कालिदास की कहानियाँ पढ़ने में आई होतीं और शेक्सपियर ने भी नाटक लिखना छोड़ कर इसी मार्ग को अपनाया होता। कहानियों का साहित्य बच्चों का है। किन्तु जाने दूँ। आप यह बताइए, इस निर्वाचन की आवश्यकता क्यों है? लेखक को समझना चाहते हैं तो उसे आप उसकी एक कृति में नहीं पा सकते। अच्छाई हीं अच्छाई चाहेंगे तो लेखक को अपने से विभक्त करके उसे किसी मन्दिर के अँधेरे गर्भ गृह में स्थापित कर देना पड़ेगा। लेखक की जाति मनुष्य की है और उसमें दुर्बलताओं और त्रुटियों का अभाव नहीं है। उसके उत्तम और निरुत्तम को सम-सहानुभूति देकर ही उसे अपना अन्तरङ्ग बनाया जा सकता है। यदि अपनी भुजा काट कर वह आप से कहे—ले जाओ, यह मेरा सर्वोत्तम है, मेरे लेखन में मेरी आँख, मेरे पैर निकृष्ट अङ्ग हैं तो क्या आप मान जायेंगे? मैं जानता हूँ, इससे आपका अभिप्राय सध नहीं सकता। फिर भी आपकी कठिनाई भी है। आपको अवकाश का विशुद्ध अभाव है, इसलिए लेखक से थोड़े में पीछा छुड़ाकर आप अपना काम चलाना चाहते हैं। इन दिनों 'मानस' के वर्षाकालीन वेदपाठी वटु समुदाय की भाँति लेखक समुदाय पूरी बाढ़ पर है, तब आपकी यह विवशता अकारण नहीं जान पड़ती और इसमें आपको सहानुभूति पाने का भी अधिकार है। फिर भी लेखक को यथोचित समय देना ही होगा, यदि आप उसे ठीक-से समझना चाहते हैं। शीघ्रता और संक्षेप, साहित्य के यही गुण आपकी कसौटी पर हों तो ये तारघर के 'गर-गर' में पर्याप्त परिभाषा में पाये जा सकते हैं। संवेदना, सहानुभूति और आनन्द का आदान-प्रदान आजकल तार दौड़ा कर भी चलता है। वे ठोस होते हैं। गति उनकी द्रुत और तीव्र, प्रभाव उनका तीक्ष्ण और सतेज। फिर भी सबके न हो कर वे व्यक्ति के होते हैं। उनके भेजने और पाने वाले इस और उस सिरे की दूरी पर ही बने रहते हैं। इसी से किसी बड़े साहित्यकार के द्वारा दिया गया भी कोई तार साहित्य के रूप में समादृत हुआ नहीं मिलता। लेखक का पूर्ण परिचय उसके समग्र और अविच्छिन्न अध्ययन में ही सम्भव है।

किन्तु छोड़िए इस लेखक को, अधिकाधिक शब्द देकर वह अधिकाधिक पारिश्रमिक चाहता है और पूछ यहाँ कहानी की है। ऐसी कहानी की जिसे सर्वोत्तम कहा जा सके। उत्तर इसका यह है कि लिखना अभी मैंने छोड़ नहीं दिया है। निज के सर्वोत्तम की उपलब्धि हो गई होती तो और लिखने की आवश्यकता मुझे न रहती, मेरे अन्तस में मेरे बाह्य से अधिक है, यही विश्वास लेकर मैं आपको आगे भी अपनी ओर आकृष्ट रख सकता हूँ।

फिर भी उत्तर देना ही है। डर यह है कि जिसे मैं श्रेष्ठ कह दूँ उसे दूसरा अत्यन्त निकृष्ट कह सकता है। सर्वश्रेष्ठ कहानियों के कई संग्रह मेरे सामने हैं, सभी संग्रहकारों के मत एक हों तो पाठकों को नई नई चयनिकाओं के लिए प्रतिमास अपनी जेबें न कतरनी पड़ें। ज्ञान और विद्वत्ता में किसी चयनकर्ता की ओर उँगली उठाने का साहस मुझ में नहीं है। फिर भी एक ने जिस लेखक की जिस कहानी को प्रथम स्थान दिया है, दूसरे ने उसी लेखक की दूसरी ही कहानी को गौरवान्वित करने में संकोच नहीं किया। तब सोचता हूँ, जिसे चाहूँ मैं भी उसे नई प्रतिष्ठा दे सकता हूँ। चुनौती दे सकता हूँ—वह नहीं, इधर देखो, इक्कीस कहानी मेरी यह है।

इक्कीस—श्रेष्ठ के लिए यह इक्कीस कितना सार्थक है! किसी एक को श्रेष्ठ कहने में अवशिष्ट के लिए अवज्ञा-सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भित रहती है। जैसे जो बचे हैं, वे सबके सब चूसे हुए छिलके हों, किन्तु इक्कीस के प्रयोग में शेष सब उन्नीस-बीस रह कर भी गौरव पा सकते हैं। संख्यावाचक इस साधारण शब्द की अभिव्यञ्जना ऐसी असाधारण है, यह मैंने पहले नहीं सोचा था। स्वीकार करलूँ, इस नये प्रयोग का श्रेय भागी मैं नहीं हूँ। श्रद्धेय राय कृष्णदास ने इसे यह अर्थ-सम्पदा प्रदान की है। केवल इसी के लिए नहीं, और भी अनेक प्रकार से मैं उनका ऋणी हूँ। शिष्य भाव से मैंने बहुत कुछ उनसे सीखा है। वे मेरे लिए सदा प्रणम्य हैं। पर इस अवसर पर अपना प्रणाम मैं उन्हें विशेष रूप से अर्पित कर रहा हूँ। उन्होंने मेरी समस्या का समाधान कभी का अपने 'इक्कीस कहानियाँ' नामक संग्रह में कर रक्खा है। उनका मत मेरे 'झूठ सच' के पक्ष में है। वह यह कहानी—कहानी ही अब इसे कहूँगा—उनके उक्त संग्रह में देखी जा सकती है। आश्चर्य मुझे इस बात का है कि कहानी की खोज में मेरे निबन्ध संग्रह पर उनकी दृष्टि कैसे जा पहुँची। निबन्ध संग्रह में ही भूल से अथवा न जाने किस प्रकार इसे मैंने रख दिया था। उनका निर्णय मैं न मानूँ तो क्या करूँगा? उनकी प्रतिभा का परिचय मुझे है। दुर्गम में से वे जो टूटे-फूटे पत्थर चुन लाते हैं उन्हें भारत के कला-मन्दिर में अद्वितीय स्थान मिल जाता है। निबन्ध लिखते लिखते अनाड़ीपन से मैंने कहानी की अवतारणा कर दी, इसे मेरी कला-साधना मान कर उन्होंने क्षमा कर दिया है। प्रसङ्गवश याद पड़ता है, एक कलाकार ने मुझ से पूछा था—इसमें कितना झूठ है और कितना सच? उद्घोषित झूठ को पकड़ने में वे असमर्थ रहे, इससे मुझे उस समय प्रसन्नता ही हुई थी। सोचा था, कहानी सूक्त वादिनी होकर हृदय को छू दे वही उसकी सफलता है। छोड़ता हूँ।

—सियारामशरण गुप्त

❀ ❀ ❀

स्वर्गीय कहानीकारों की कहानियाँ—

'मधुआ' प्रसादजी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में एक है। यह कहानी सर्वथा यथार्थवादी है। प्रसादजी की कहानियों की भाव-प्रवणता कहीं भी नहीं दिखायी देती। लेकिन प्रेमचन्दजी आदि की सामाजिक कहानियों से प्रसादजी की यथार्थवादी कहानियाँ नितान्त भिन्न हैं। जहाँ अन्य लेखकों में समाज का बाह्य-चित्रण मिलता है, प्रसादजी का दृष्टिकोण आन्तरिक है। करुणा, उच्च संस्कार, भावुकता, मानवता आदि भावों की ओर अधिक ध्यान रहने से ये सामाजिक कहानियों से भिन्न होती हैं। 'मधुआ' में व्यक्तिवाद है। मधुआ को देख कर शराबी के मन में सहज ही करुणा उत्पन्न होती है और उससे उसके जीवन में परिवर्तन होता है। 'शंखनाद' की तरह सामाजिक आवश्यकता या बाह्य परिस्थिति के कारण जीवन में परिवर्तन नहीं। शराबी के मानसिक भावों के विकास परिवर्तन की ओर लेखक का निरन्तर ध्यान रहा है। जीवन में इतना बड़ा परिवर्तन जीवन संघर्ष या अभाव से किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। हृदय का कोमल अंश छूने से ही—हृदय में ममता उत्पन्न होने से ही सम्भव है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि प्रेमचन्द का स्कूल के सामाजिक कहानीकारों की भाँति सुधारवादी दृष्टिकोण नहीं है। शराबी अपने दुर्गुणों से किस प्रकार मुक्त हुआ, यह लेखक का लक्ष्य नहीं है। हृदय में स्नेह उत्पन्न होने से किस प्रकार उसके जीवन का परिवर्तन हुआ—इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का निरूपण है। इस तरह के चित्रण में नीति-सुधार या उद्देश्य स्पष्ट होने से उत्पन्न विकर्षण के लिए स्थान नहीं है।

—प्रो० टी० नरसिंहाचार्य एम० ए०

❀ ❀ ❀

प्रसाद जी की कहानियों में ऐसे भिन्न-भिन्न स्वाद हैं कि कैसे एक दूसरे की तुलना की जाय। 'पिसाती', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'आंधी', 'सालवती', 'आकाशदीप' तथा 'गुण्डा' ऐसी कहानियाँ हैं जिनके शीर्षक मुझे सदैव याद रहते हैं। किन्तु इसके सिवा उनकी छोटी-छोटी कई ऐसी कहानियाँ हैं जो इन कहानियों के समकक्ष हैं और जिन्हें मैं उक्त कहानियों के साथ संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में समझता हूँ।

प्रसादजी की कहानियों की एक विशेषता यह है कि उन्होंने कवित्व को इतनी सुन्दरता से आख्यान के कलेवर में ढाला है कि वह कहीं से विजातीय नहीं रह गया है। इनकी कहानियों की दूसरी विशेषता सांस्कृतिक और ऐतिहासिक वातावरण है जिसके कारण एक विचित्र धुंधला-सा रंग उन कहानियों पर चढ़ गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर जिन कहानियों का नाम मैंने लिखा है उनमें मुझे 'आकाशदीप' के प्रति विशेष आकर्षण है। नारी हृदय का जैसा सुन्दर चित्रण उसमें हुआ है, अन्यत्र दुर्लभ है। 'गुण्डा' यद्यपि उनकी बड़ी उदात्त कहानी है किन्तु मैंने उसे सदैव एक बड़े उपन्यास के बीज-चित्र रूप में ग्रहण किया है।

अन्त में यह बात दुहरा दूँ कि प्रसादजी की किसी एक कहानी को सर्वश्रेष्ठ कह देना असम्भव है जैसा कि सभी प्रथम श्रेणी के कलाकारों के सम्बन्ध में होता है। यह कभी न निर्णय हो सकेगा कि 'रघुवंश', 'शाकुन्तल' और 'मेघदूत' तीनों में कौन सर्वश्रेष्ठ है। तीनों की अपनी-अपनी रंगत है—जिसे जो रंग पसन्द हो। —रायकृष्णदास

❀ ❀ ❀

"हाँ, तो····तो····फिर····" का औत्सुक्य कहानी का स्पन्दन है। इसीसे उसकी आयु बढ़ती है। यदि यह नहीं है तो कहानी कहाँ है? गुलेरीजी की 'उसने कहा था' में इसी की प्रबलता है और तभी वह कहानी है। वह आदि से आज तक कुतूहल से हमें झकझोरती रहती है। उसमें प्रेम का उत्सर्गमय सात्विक आदर्श कितना लुभावना और स्पृहणीय है। अजाने ही वह हमारे हृदय को छू लेता है। उसका कथानक अनूठा, चरित्र-चित्रण प्रकृत, संवाद चुटीले और भाषा प्रसङ्गानुकूल, मुहावरेदार तथा प्रवाहमयी है।

'बचो खालसाजी', 'हटो बाछा', 'हटजा जीये जोगिए' 'हटजा करमा वालिए,' आदि पढ़ते समय हम अपने को अमृतसर की गली में किसी सरदारजी के ताँगे पर बैठा हुआ अनुभव करने लगते हैं। वातावरण की सजीवता प्रदान करने का यह कौशल दर्शनीय है। कहानी का अन्त सर्वथा मनोवैज्ञानिक और मर्मस्पर्शी है। मरणासन्न लहना सिंह की स्मृति बहुत साफ हो गई है, वह गत जीवन के एक-एक चित्र का वर्णन करता जाता है और श्रोता या पाठक की आँखें भीगती जाती हैं। वह सोचने लगता है—क्या यह 'सन्निपात' का आवेश है या वर्षों से दमित-शमित भावों का उपसंहार जो बाहर निकल कर चिर शान्ति की कामना कर रहा है?

कहानी पढ़ कर ऐसा लगता है जैसे कहानीकार समस्त घटनाओं को अपनी आँखों से देख रहा है या देख चुका है। हिन्दी-साहित्य के उषःकाल में इस कहानी का शिल्प-रूप इतना परिमार्जित है कि सहसा मुख से निकल पड़ता है—'ओह!' —विनयमोहन शर्मा एम० ए०

❀ ❀ ❀

निरालाजी ने लिखा है—कुकुरमुत्ता उगावे नहीं उगता।

अगर यह बात कुकुरमुत्ते के लिये सही है तो कहानी-कला तो और भी किताबी नुस्खों से नहीं सीखी जासकती। प्रेमचन्द की कहानियों में पात्र हैं, कथोपकथन हैं, कथानक है, आदि मध्य और अन्त है, जैसा कि सभी कहानियों में होता है। लेकिन वे सभी कहानियाँ प्रेमचन्द जैसी नहीं हैं क्योंकि उनमें प्रेमचन्द ने प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की

प्रेमचन्द ने कहानी-कला हमारी लोक कथाओं से सीखी, हिन्दी उर्दू के पुराने लेखकों से, विदेश के जनवादी कलाकारों से सीखी। लेकिन कहानी में प्राण-प्रतिष्ठा करना उन्होंने जनता से सीखा।

वह एक चित्रकार हैं जो अपने को भूले हुए हिन्दुस्तान के गाँवों और शहरों में चक्कर लगाते रहते हैं, देश और काल का भी उनके लिये बन्धन नहीं है। वह हिन्दुस्तान की इन्सानियत के नमूने हमारे सामने रखते हैं, उस इन्सानियत के जिसे सताया गया है और सताया जाता है, कहीं कुएँ पर पानी भरने की मनाही है, कहीं जुलूस निकालने पर रोक है, कहीं प्रेम पर पाबन्दी है, कहीं सर उठा कर चलने पर बन्दिश है। प्रेमचन्द इन बन्दिश लगाने वाले पाखण्डियों पर व्यंग्य-बाण चलाते हैं, उन्हें रामलीला का कौमिक पात्र बना देते हैं। सतायी हुई इन्सानियत को अपना प्यार देते हैं, ढाढ़स देते हैं, इस तरह कि उनकी कहानियाँ हमारी जनता के दोस्त की तरह हैं जो उसे कभी धोखा नहीं देता।

उनकी कला का स्रोत उनकी देश भक्ति है। और इस स्रोत की थाह नहीं है।

—रामविलास शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरतें और बच्चों के सब रोगों का इलाज—
डा० युगलकिशोर चौधरी १॥)
अपना इलाज आप करो—,, ,, ॥।)
प्राकृतिक चिकित्सा— ,, ,, ॥=)
बुढ़ापा और बीमरी से बचने के उपाय— ॥।)

बालोपयोगी

बाल कहानी कुञ्ज भाग १—मालती श्रीवास्तव ॥।)
,, ,, भाग २— ,, ,, ॥।)
अखण्ड भारत—शिखरचन्द जैन ।-)
आल्हा—बालचन्द जोशी ।=)॥
चीनी फूलदान—धीरेन्द्रनारायण पाण्डे ।)
चन्द्र लोरी—शम्भूदयाल सक्सेना ।-)
बालकों के चलन— ।=)
बापू का महा प्रयाण—सम्पतराय भटनागर ।-)
भारत भक्ति—हरमोहनलाल श्रीवास्तव ॥)
शरावगी शुषमा—कामताप्रसाद १॥)
वीर नारियाँ—राममोहन श्रीवास्तव ॥।)
मेले के मोती—रघुवीरशरण मित्र १॥)
सामान्य ज्ञान— ।-)
शिशु चरित्र चित्रण—सिद्धनाथ मेहरोत्रा ॥।)
गोपालकृष्ण गोखले— ।=)
पट्टाभि सीतारमैया ।=)
महादेव गोविन्द रानाडे— ।=)
महात्मा बुद्ध— ।=)
श्री मालवीयजी— ।=)
बन्दा वीर बैरागी— ।=)
लोकमान्य तिलक— ।=)
लेनिन— ।=)
लाजपत राय— ।=)
कस्तूरबा गांधी— ।=)
कमला नेहरू— ।=)
जवाहरलाल नेहरू— ।=)
महात्मा गांधी— ।=)
सुभाषचन्द्र बोस— ।=)
बच्चों के बापू— ॥)
बुद्धि परीक्षा २ भाग— ॥।)
समझ के खेल २ भाग— ॥।)
दालिम कुमार— ॥।)
देश द्रोही— ॥)
भीष्म— १)
हमें जानना चाहिए— ॥=)
श्री अरविन्द— ॥।)
महाभारत कथा— १)
माँ के सपूत— ॥-)
मामाजी— ॥।)
डा० राजेन्द्रप्रसाद ॥)

विविध

प्रतीक—सियारामशरण गुप्त १॥)
हिन्दी शौर्टहैण्ड (निष्काम प्रणाली) ६।)
कुँजी हिन्दी संकेत लिपि—ऋषीलाल २)
बुद्धि मीमांसा—विश्वनाथप्रसाद मिश्र ३)
राजर्षि टण्डन जी—देवराज मिश्र २)
कामकुंज—विजय बहादुरसिंह बी० ए० ८)
पुस्तकालय—रामदयाल पाण्डे ५॥)
द्रव्यशास्त्र तथा विदेशी विनिमय-श्रीधर मिश्र ४)
नागरिक ज्ञान—भगवानदास केला १॥)
विश्व वेदना ॥।=)
अश्व परीक्षा—राव राजेन्द्र २॥)
वृक्ष विज्ञान—प्रवासीलाल वर्मा ४)
विश्व धाय—भगवानदास वर्मा ॥)
रामायण कोश—केदारनाथ भट्ट ४)
प्रारम्भिक रसायन—अमीचन्द विद्यालंकार १५)
प्राचीन पद्य प्रभाकर की टीका—
मोहनलाल उपाध्याय १।)
वेदी के फूल एक अध्ययन—शिवराज शर्मा ॥।)
सब संग हो—भदन्त आनन्द कौसल्यायन ।=)
कर्मयोग—सन्तराम बी० ए० १)
निर्माण—रांगेय राघव १)
संगीत सुलभ—रामचन्द्र राव दामोदर ॥)

भारत पब्लिशिङ्ग हाउस, ५, सिविल लाइन्स, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकमल के प्रकाशन

उपन्यास

जय सोमनाथ	: क० मा० मुन्शी	५)
भगवान् परशुराम	: क० मा० मुन्शी	६॥)
लोमहर्षिणी	: क० मा० मुन्शी	४॥)
स्वप्नद्रष्टा	: क० मा० मुन्शी	४)
एक था राजा	: मुल्कराज आनन्द	७॥)
कजली	: भवानी भट्टाचार्य	४॥)
हड़ताल	: क्षेमचन्द्र 'सुमन'	४॥)
टूटे हुए पर	: खलील जिब्रान	१॥)
प्रगति की राह	: गोविन्दवल्लभ पन्त	४॥)
नये मोड़	: उदयशंकर भट्ट	३॥)
गदर	: ऋषभचरण जैन	२॥)
बेदवृक्षों की छाया में	: शिह येन	१)
कायर	: राजेन्द्र शर्मा	१॥।=)
जीवन-दान	: श्रीराम शर्मा 'राम'	१॥।=)
आदमी और सिक्के	: महेन्द्रनाथ	१॥।=)
बहती गंगा	: शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'	१॥।=)

राजनीति

गांधी और स्टालिन	: लुई फिशर	२॥।)
आधुनिक योरप का राजनीतिक दर्शन	: श्यामसुन्दर गुप्त।	२)
आज का मानव-जीवन और उसकी समस्याएँ	: रामेश्वर गुप्ता	२)

आत्म-कथा

आधे रास्ते	: क० मा० मुन्शी	४॥)
सीधी चढ़ान	: क० मा० मुन्शी	४॥)

कहानियाँ

पाषाण नगरी	: शिवसहाय चतुर्वेदी	३॥)
जीवन के अंचल से	: लीलावती मुन्शी	४॥)
टूटी चूड़ियाँ	: शीला शर्मा	१॥)
कहानी : नई-पुरानी	: डॉ० रघुबीरसिंह	२)
फूल और पत्थर	: कृष्णचन्द्र	२॥।)

निबन्ध, साहित्य, संस्कृति

मुन्शी अभिनन्दन ग्रन्थ		१५)
अन्तरात्मा से	: रंगनाथ दिवाकर	२।)
अन्तर-निरीक्षण	: न० पोरबन्दर	२॥)
हिन्दी भाषा तथा साहित्य	: उदयनारायण तिवारी	२॥)
हिन्दी गद्य-साहित्य	: शिवदानसिंह चौहान	२)
निबन्धिनी	: गंगाप्रसाद पांडेय	३॥)
सिद्धान्त और समीक्षा	: सन्तराम विचित्र	२॥)
गद्य-गौरव	: बलराज एम०ए०	२॥)
पद्य-प्रवाह	: सुशीलाकुमारी	२॥)
शेष स्मृतियाँ	: डॉ० रघुबीरसिंह	४)
प्रेमचन्द : एक विवेचना	: इन्द्रनाथ मदान	३।)
राष्ट्रभाषा—हिन्दी	: क्षेमचन्द्र 'सुमन'	३)
विचार-वल्लरी	: जैनेन्द्रकुमार	२॥)
धरती गाती है	: देवेन्द्र सत्यार्थी	१०)
धीरे बहो गंगा	: देवेन्द्र सत्यार्थी	६)
बाजत आवे ढोल	: देवेन्द्र सत्यार्थी	७)
काश्मीर : देश व संस्कृति	: शिवदानसिंह चौहान	५)
भारतीय संस्कृति	: शिवदत्त ज्ञानी	५)
सुबह होती है	: कृष्णचन्द्र	३)
घुमक्कड़-शास्त्र	: राहुल सांकृत्यायन	३।)
जीवन-कण	: डॉ० रघुबीरसिंह	३)
जीवन-धूलि	: डॉ० रघुबीरसिंह	१॥)
मुन्शीजी और उनकी प्रतिभा	: सीताराम चतुर्वेदी	३)

नाटक

शम्बर कन्या	: क० मा० मुन्शी	२)
ध्रुव-तारिका	: डॉ० रामकुमार वर्मा	१)
समस्या का अन्त	: उदयशंकर भट्ट	३)
कालिदास	: उदयशंकर भट्ट	२)
एकला चला रे	: उदयशंकर भट्ट	१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोहिणी अम्बा	: उदयशंकर भट्ट	१॥)
सगर-विजय	: उदयशंकर भट्ट	२)
बरगद	: कृष्णलाल श्रीधराणी	१॥)
छलना	: भगवतीप्रसाद वाजपेयी	२॥)
युगछाया	: शिवदानसिंह चौहान	२॥)

काव्य

अपलक	: बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	३॥)
क्वासि	: बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	३॥)
चेतना	: बाबूराम पालीवाल	१॥)
सुवेला	: शम्भूनाथ 'शेष'	२)

मनोविज्ञान

सरल मनोविज्ञान	: हंसराज भाटिया	३॥)
बच्चा मेरा शिक्षक	: कैरोलीन प्रैट	१।)
हमारे बच्चे : ६ से १२ वर्ष तक		४॥)
बचपन के पहले पाँच साल	:	१)
हीन भाव	:	१)
बचपन—पाँच से दस साल	:	१)
हमारे जीवन का अर्थ (भाग १)	:	१)
प्रेम और विवाह	:	१)
हमारे जीवन का अर्थ (भाग २)	:	१)
व्यक्तित्व	:	१)
स्मरण-शक्ति	:	१)
मित्र बनाने की कला	:	१)
हमारे जीवन का अर्थ (भाग ३)	:	१)
अध्ययन कैसे करें	:	१)
हमारे जीवन का अर्थ (भाग ४)	:	१)
चिन्ता	:	१)
हमारे जीवन का अथ (भाग ५)	:	१)
माता-पिता की समस्या	:	१)
हमारे जीवन का अर्थ (भाग ६)	:	१)

देश-परिचय माला

देश की जानकारी	:	॥)
गाँव की बातें	:	॥)
सहकारी आन्दोलन	:	॥)
सफाई	:	॥)
खेतीबारी	:	॥)
पशु-पालन	:	॥)
साम्प्रदायिकता	:	॥)
स्वतन्त्र देश के नागरिक	:	॥)
हमारा विधान	:	॥)
ग्राम-पंचायत	: राजेन्द्र शर्मा	१॥)
हमारा समाज	: भाग एक व दो	१)

बाल-साहित्य

पंचतन्त्र की कहानियाँ (१)	: शकुन्तला देवी	१)
पंचतन्त्र की कहानियाँ (२)	: शकुन्तला देवी	१)
हमारे बापू	: डॉ० इन्द्रनाथ मदान	॥।=)
हमारे नेहरू	: डॉ० इन्द्रनाथ मदान	॥।=)
हमारे गुरुदेव	: डॉ० इन्द्रनाथ मदान	॥।=)
मुन्शी प्रेमचन्द	: डॉ० इन्द्रनाथ मदान	॥।=)
बचपन की कहानियाँ	: शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	१॥।)
चम-चम चमके चन्दा मामा	: बाबूराम पालीवाल	१)
धुएँ की फाँसी	: एस० ए० ताहिर	१॥।)

निर्देशक

राजकमल वर्ष्यबोध	: १९५०-५१	५)

विविध

दाम्पत्य-प्रेम	: मेरी स्टोप्स	२॥)
सन्तति-नियमन	: मेरी स्टोप्स	१॥)
धर्म-वर्णन	: आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव	१॥)
हमारी खुराक और आबादी की समस्या	: ओमप्रकाश	२)
शिक्षण प्रविधि	: विश्वनाथसहाय माथुर	१॥)
रतलाम का प्रथम राज्य	: डॉ० रघुबीरसिंह	१०)

राजकमल अमर साहित्य

पंचतन्त्र	: अनुः डॉ० मोतीचन्द्र	४॥)
दशकुमार चरित	: अनुः पं० निरंजनदेव शर्मा	५॥)

पुस्तकें मिलने का पता

साहित्य-रत्न-भण्डार

४ गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर लिखा गया

एक अभिनव महाकाव्य

देवार्चन

रचयिता—श्री 'करील'

मूल्य ५)

मूल्य में 'साहित्य सन्देश' के ग्राहकों को

भारी कमी

पिछले अङ्क में हमने यह भारी रियायत ३१ दिसम्बर तक के लिये की थी लेकिन बाइन्डिङ्ग होने में काफ़ी विलम्ब होगया और शिकायतों का ढेर लग गया, अतः अब हमने यह रियायत

३१ मार्च १९५३ तक बढ़ादी है

३१ मार्च तक आर्डर मिलने पर पुस्तक पौने मूल्य में भेजी जायगी। पोस्टेज ।।।) पृथक होंगे।

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करालें।

इतना ही नहीं जो सज्जन ३।।।) मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेज देंगे उन्हें पोस्टेज भी नहीं देना पड़ेगा।

आर्डर तथा रुपया भेजने का स्थान—

साहित्य-रत्न-भण्डार, ४, गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश

के

पिछले तीन विशेषांक

साहित्य-सन्देश के १४ वें वर्ष का 'कहानी विशेषाङ्क' आपके सम्मुख है। प्रत्येक वर्ष हम एक विषय लेकर ऐसा विशेषाङ्क निकालते हैं। इस विशेषाङ्क की भाँति ही पिछले सभी विशेषाङ्कों में हिन्दी के सभी विद्यार्थियों और साहित्य-प्रेमियों की रुचि के अनुसार ठोस और उपादेय सामग्री रक्खी गई है। पिछले विशेषाङ्कों की निरन्तर माँग के कारण हमें कुछ के दूसरे संस्करण भी छपवाने पड़े हैं। इस समय हमारे पास पिछले विशेषाङ्कों में से केवल तीन विशेषाङ्कों (श्यामसुन्दर अङ्क, भारतेन्दु अङ्क तथा आलोचनाङ्क) की कुछ प्रतियाँ बची हैं, जिनका (प्रत्येक का) मूल्य एक रुपया है। प्रसाद अङ्क के लिए हमारी 'प्रसादजी की कला' नामक पुस्तक मँगायें। उपन्यास अङ्क की माँग बहुत रही है, इसलिए उसे हम दुबारा छपा रहे हैं।

जो सज्जन इन विशेषाङ्कों की इच्छा रखते हैं, वे आज ही—

एक रुपया प्रति अङ्क, मनीआर्डर द्वारा भेजकर

अपनी इच्छित प्रति मँगालें। रजिस्ट्री से मँगाने के लिए ।-) अतिरिक्त भेजें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

साहित्य सन्देश आगरा की

सन् १९५१-५२ की फाइल

तैयार है

साहित्य सन्देश के गत वर्ष की पूरी फाइल 'आलोचना विशेषांक' सहित सजिल्द तैयार है, फाइलों के शीघ्र समाप्त होने की आशा है। मूल्य ५) पोस्टेज ।।।=)

फाइल की सूची मुफ्त मँगायें

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

४, गांधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम. ए. पी-एच डी.
महेन्द्र

*

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा।

*

वार्षिक मूल्य ४, एक अङ्क का ।८)

वर्ष १४] आगरा—मार्च १९५३ [अङ्क ९

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचारधारा—
२—रसाभास—
३—सिद्ध सम्प्रदाय और नाथ-पन्थ के पारस्परिक साम्य और वैषम्य—
४—मध्य कालीन संस्कृति और कबीर—
५—मुद्राराक्षस का नायक-राक्षस—
६—हिन्दी काव्य में नारी का रूप—
७—प्रेमचन्दजी की अमर कृति 'गोदान'—
८—समाजवादी यथार्थवादी—
९—साहित्य परिषद—

प्रो० आनन्दप्रकाश दीक्षित एम० ए० (हिन्दी संस्कृत)
श्री शुकदेव साहू एम० ए०

श्री सत्यनारायण मिश्र एम० ए० (फाइनल)
प्रो० कैलाश चन्द्र सिंहल एम० ए०
श्री शोभालाल डाभी
श्री एस० टी० नरसिंहाचारी एम० ए०
प्रो० दामोदर झा एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह की १५ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापस कर दिए जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : फरवरी १९५३

आलोचना

हिन्दी गद्य विकास और इतिहास—
योगेन्द्र कुमार मल्लिक १।)
ब्रजभाषा के नव रत्न—कृष्णकुमार सिन्हा २।।।—)
हिन्दी काव्य शास्त्र—शान्तिलाल पालेन्द्र ४)
हिन्दी साहित्य का आदि काल—
हजारीप्रसाद द्विवेदी ३।)
शकुन्तला दर्शन—पं० मूंगाराम त्रिपाठी १।)
काव्यिनय नाट्यशास्त्र—पं० सीताराम चतुर्वेदी १५)
आधुनिक कवि पन्त की समालोचना—
लक्ष्मीनारायण टण्डन २।)
कुरुक्षेत्र की सरल टीका—लक्ष्मीनारायण टण्डन २।।
महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग—
डा० उदयभानुसिंह १०)
साहित्य शिक्षा और संस्कृति—डा० राजेन्द्रप्रसाद ४)
कोरा कला—रामचन्द्र वर्मा १।।)
महाकवि सूरदास—नन्ददुलारे वाजपेयी ४)
साहित्य जिज्ञासा—पं० कालिकाप्रसाद शुक्ल ३)
अतियथार्थवाद की रूपरेखा—मन्मथनाथ गुप्त ७।
वाद समीक्षा—कन्हैयालाल सहल एम० ए० ।।।)
कविवर सेनापति और उनका कवित्त रत्नाकर—
डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी १।।)
हिन्दी साहित्य का सं० इतिहास—गुलाबराय १।।)
हिन्दी साहित्य के वाद और उनके प्रवर्तक—
विश्वम्भरनाथ उपाध्याय १।।।)
कविप्रसाद आँसू तथा अन्य कृतियाँ—
विनयमोहन शर्मा ४)
समीक्षा के सिद्धान्त—डा० सत्येन्द्र ३।।)

कविता

कालिदास ग्रन्थावली—पं० सीताराम चतुर्वेदी ३०)
सूर रामचरित्र—प्रभूदयाल मीतल १।।)
सूर बालकृष्ण पदावली—प्रभूदयाल मीतल १।।)
ग्राम साहित्य भाग २—रामनरेश त्रिपाठी ४)
ग्राम साहित्य भाग ३—रामनरेश त्रिपाठी ६)
द्रौपदी दुकूल—श्री रामलला ।।)
अभिसार—किशोर साहू ३।।)
क्षितिज—चन्द्रप्रकाश वर्मा १।।)

कहानी

इन्सान के रूप—यशोविभलानन्द १।)
अपराजिता—चतुरसेन शास्त्री -)
आधुनिक कहानियाँ—डा० हरदेव बाहरी ३।।)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १५] आगरा—मार्च १९५३ [अङ्क ९

हमारी विचार-धारा

हिन्दी एकेडेमी—

आगरे में महामहिम राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिक्य-लाल मुन्शी की शुभ प्रेरणा से आगरा यूनीवर्सिटी के तत्त्वावधान में हिन्दी एकेडेमी की आयोजना हुई है। अभी तक जो इस पर विचार विमर्श हुआ है, उसके फलस्वरूप इतना ही निश्चित हुआ है कि उसमें चार विभाग होंगे : अर्थात् परीक्षा-विभाग, शिक्षण-विभाग, प्रकाशन-विभाग और शोध-विभाग। इसके शिक्षण-विभाग में हिन्दी की शिक्षा के अतिरिक्त बङ्गाली, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू आदि अन्य प्रान्तीय भाषाओं की शिक्षा देने का भी आयोजन किया गया है। इन भाषाओं के जानने वाले विद्वान इसमें शिक्षण कार्य करेंगे। हम इस आयोजना का इसलिए स्वागत करते हैं कि इस समय राष्ट्र की एकता के लिए हिन्दी के साथ प्रान्तीय भाषाओं के आदान-प्रदान की हम बड़ी आवश्यकता समझते हैं। इसी आदान-प्रदान द्वारा जातीय-साहित्य और जातीय विचार धारा के निर्माण की आशा की जा सकती है। किन्तु इसी के साथ हमको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इस बात से हिन्दी को सम्पन्न बनाने में सहायता तो मिलेगी किन्तु हिन्दी के गम्भीर अध्ययन और अध्यापन तथा उसको उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने के कार्य को प्राथमिकता देना आवश्यक है। वैसे ये चारों कार्य महत्व के हैं तथापि इनमें हिन्दी के अध्यापन और प्रकाशन कार्य को अधिक महत्व देने की आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि अन्य प्रान्त के जो विद्यार्थीगण आवें वे केवल भाषा का ही परिचय न प्राप्त करें वरन् उसके साहित्य का गहरा अध्ययन करें। इसमें उत्तर, दक्षिण, पूरब और पश्चिम के विद्यार्थियों का शुभ सहयोग हो।

हम आशा करते हैं कि शुभ कार्य का श्रीगणेश शीघ्र ही होगा और सरकार इसके लिए पर्याप्त धन देकर योजना को सफल बनायेगी।

हिन्दी-हिन्दी में विभेद—

हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान क्या मिला कि वह बिन बाप की बेटी हो गयी है। देशभर के समझदार व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से हिन्दी के सम्बन्ध में बातें करते हैं। इन सब से एक ध्वनि ही विशेष निकलती है, वह यह है कि 'हिन्दी कोई भाषा नहीं, उसे तो हमें अब बनाना है।' यह अद्भुत बात नहीं है। अँग्रेजी दासता के समय में उर्दू के हिमायतियों ने भी आरम्भ से ही ऐसी बातें कही थीं। उन्होंने पहले तो हिन्दी का अस्तित्व ही स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था, जिसका तगड़ा उत्तर आचार्य महावीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद द्विवेदीजी ने सरस्वती के किसी अङ्क में दिया था। फिर इसका पहलू बदला और डा० ताराचन्द जैसे व्यक्तियों ने यह कहना आरम्भ किया कि हिन्दी नयी भाषा है, जिसे लल्लूलालाल ने बनाया। और आज कहा जा रहा है कि हम हिन्दी बनावेंगे। एक ओर ऐसा निराधार प्रचार किया जा रहा है, तो दूसरी ओर एक भिन्न प्रकार से बातें कही जा रही हैं। यह घर में ही भेद डालने की बात है। यह कहा जा रहा है कि हिन्दी दो प्रकार की है: एक प्रादेशिक हिन्दी, दूसरी राष्ट्रभाषा हिन्दी। हिन्दी में इस भेद की घोषणा दो कारणों से की जा रही प्रतीत होती है—एक तो देश के अहिन्दी राज्यों से उठते इस विरोध को सम्भवतः निरुत्तर करने के लिए कि हमें अपनी भाषा के साथ राष्ट्रभाषा सीखनी पड़ेगी, जब कि हिन्दी क्षेत्र वालों को एक ही भाषा सीखनी होगी। दूसरे उर्दू वालों के प्रादेशिक भाषा सम्बन्धी आन्दोलन की निस्सारता दिखाने के लिए। इनमें से किसी भी कारण से हिन्दी को हिन्दी से भिन्न करने की आवश्यकता नहीं। अन्य भी किसी कारण से हिन्दी को हिन्दी से भिन्न नहीं किया जाना चाहिए। अभी उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महोदय श्री के० एम० मुन्शी ने आगरा विश्वविद्यालय द्वारा नियोजित हिन्दी सम्मेलन का सभापतित्व ग्रहण करते हुए यह चेतावनी दी है कि "हिन्दी के विकास की दृष्टि से इससे अधिक और कोई भयानक बात नहीं हो सकती कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों की हिंदी में और अहिन्दी भाषी पेटी की राष्ट्रभाषा हिन्दी में भेद किया जाय।" हम अपने पिछले अङ्कों में इस बात पर प्रकाश डाल चुके हैं कि विधान ने जिस हिन्दी को स्वीकार किया है, वह एक निश्चित भाषा है, कोई नयी बननेवाली भाषा नहीं। आश्चर्य तो उस समय होता है जब डा० अमरनाथ झा जैसे विद्वान इस भेद पर बल देते हैं। हिन्दी में शैली भेद माना जा सकता है, प्रकृति भेद नहीं। यह शैली भेद भी क्षेत्रीय नहीं हो सकता, न होना चाहिए। भाषा को बनाने का दम्भ जो लोग करते हैं उन्हें भी यह धक्का रखना चाहिए कि वे भूल कर रहे हैं। यहाँ पुनः उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के उक्त भाषण के उस अंश की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जिसमें उन्होंने एक अखण्ड नैसर्गिक सत्य प्रस्तुत किया है—और कहा है कि "कृत्रिम वृद्धि के ऐसे उद्योग भाषा के उल्लेखनीय संवर्द्धन में प्रायः कुछ भी योग नहीं देते।" अपने अनुभव से हैदराबाद के निजाम के उस उद्योग को वे विफल देख चुके थे जिसमें वृहत धनराशि व्यय करके ६०,००० ऐसे उर्दू शब्दों का निर्माण कराया गया जो अँग्रेजी जैसे लगें, जिससे उर्दू में उनका भला प्रकार स्वागत हो सके। यह समस्त उद्योग विफल हुआ।

यथार्थ यह है कि समस्त उद्योग भाषा की प्रकृति को सहायता देने के होने चाहिए आघात के नहीं, तभी भाषा स्वाभाविक गति से विकास करके अपने राष्ट्र के समस्त कार्यों के सम्पादन की क्षमता प्राप्त कर सकती है।

हिन्दी के विरुद्ध षड्यन्त्र—

पटना से निकलने वाले 'हुङ्कार' साप्ताहिक के पाँच जनवरी के अग्रलेख में उक्त शीर्षक से लिखा है—

विधानतः हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया गया है; लेकिन, फिर भी, इसके विरुद्ध षड्यन्त्र अभी जारी है। कई राज्यों की सरकारों ने हिन्दी को राजभाषा घोषित कर दिया है; लेकिन प्रायः कहीं भी सरकार की इस घोषणा को क्रियात्मक रूप नहीं मिल सका है, कहीं भी इस दिशा में प्रगतिशील कदम नहीं उठाया जा सका है। हम देखते हैं, जिन विश्वविद्यालयों ने इस दिशा में कदम उठाए हैं और जो निकट भविष्य में उठाने जा रहे हैं, उनके सद्प्रयत्नों पर भी पानी फेरने की चेष्टा की जाने लगी है और इस प्रकार प्रकारान्तर से राष्ट्रभाषा हिन्दी के मार्ग में, १५ वर्षों के बाद इसे अपना उचित स्थान ग्रहण करने के मार्ग में, भारी रोड़ा अटकाया जा रहा है। अभी हाल ही में नागपुर में शिक्षा-शास्त्रियों का एक अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ था। उसमें दिये गये कुछ भाषण, व्यक्त किये गये विचार हमारी उपर्युक्त धारणा की पुष्टि के लिए पर्याप्त है। सम्मेलन में विश्वविद्यालय विभाग के अध्यक्ष की हैसियत से भाषण करते हुए डा० पी० एन० बनर्जी ने स्पष्ट कहा कि हिन्दी को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जा सकता। उनके विचार से हिन्दी को विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम बना देने से लोगों की सारी शक्ति अनुवाद में ही लग जायेगी और शिक्षा को धक्का लगेगा! इतना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, जो श्री सुनीतकुमार चाटुर्ज्या अब तक राष्ट्रभाषा हिन्दी के इतने प्रबल समर्थक रहे हैं, उन्होंने भी, उक्त सम्मेलन में ही, कुछ उपर्युक्त आशय के ही विचार प्रगट किये। हाल ही लखनऊ की अखिल भारतीय विज्ञान-कांग्रेस में भी अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री डॉ० एम० बोस ने भी कुछ ऐसी ही बातें कहीं। और, सबके अन्त में भारत के उपाध्यक्ष डा० राधाकृष्णन् ने उस दिन बङ्गलोर में मैसूर-शिक्षा-सुधार सम्मेलन में भाषण करते हुए कहा कि विश्व-विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अँगरेजी को ही रखना चाहिए।"

हुङ्कार सम्पादक ने इन भाषणों के आधार पर यह आशङ्का की है कि—"राष्ट्रभाषा हिन्दी के विरुद्ध यह कोई नया षडयन्त्र तो नहीं चल रहा है।" हम षडयन्त्र की बात तो नहीं सोचते पर यह अवश्य समझते हैं कि हिन्दी वालों को इन दिनों बड़े सजग होकर काम करना है और अपने भेद-भाव मिटा कर सङ्गठित रूप से प्रयत्न करना है जिससे हिन्दी अपने स्थान से च्युत न की जा सके।

मेरठ—

मेरठ कालेज में होमवती-स्मारक अधिवेशन का सभापतित्व करते हुए राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने जो विचार प्रकट किए वे ध्यान देने योग्य हैं आपने कहा—

"हिन्दी के सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूँगा कि मैं उसकी ओर से सर्वथा निश्चिन्त हूँ। हिन्दी पर किसी का एहसान नहीं है। वह अपने ही बल पर आगे बढ़ी है। उसमें गति है और आगे बढ़ने की योग्यता है। वह आगे बढ़ती ही चली जायगी। यदि विरोध होगा भी तो जितना ही उसका विरोध होगा उतना ही वह अधिक शक्तिशाली होगी। आज हमारा शासन है। किन्तु इसमें भी हिन्दी का कुछ विरोध है। उस विरोध के रहते भी हिन्दी ने उन्नति की।"

आपने कहा कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता रखती थी। इसी कारण वह हमारी राष्ट्रभाषा बनी। हिन्दी के साहित्यकारों में कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं किन्तु आप उन त्रुटियों पर न जायँ। आप देखें कि हिन्दी कितनी बलवान है। जो लोग आज हिन्दी का विरोध करते हैं इतना वह भी मानते और जानते हैं कि हिन्दी के बिना अन्य कोई गति नहीं। आपने कहा कि हिन्दी का भार आज के नवयुवकों पर है मेरी पीढ़ी के लोग हिन्दी के लिए जो कुछ कर सकते थे वह उन्होंने कर लिया। अब आगामी सन्तति का काम है कि वह हिन्दी को बलशाली बनाए।

राष्ट्रकवि के इस कथन के पीछे इतिहास का प्रबल प्रमाण है। जिसे सभी जानते हैं। हिन्दी का सबसे पहला समाचार-पत्र कलकत्ते से क्यों निकला? पंजाब से निकलने वाले 'मित्र-विलास' की भारतेन्दु युग में क्यों धूम थी? मुसलमान इतिहासकारों और भाषा-विदों ने १२ वीं से १७ वीं शताब्दी तक हिन्दुस्तान-भर की भाषा हिन्दी अथवा हिन्दवी क्यों बतायी? राष्ट्रीय आन्दोलन में उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम के नेताओं ने क्यों हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया? हिन्दी जन्म से राष्ट्रभाषा की योग्यता लेकर आयी है। हम भी आशा करते हैं कि भारत के सौभाग्य के दिनों में हिन्दी-विरोधियों को भी भगवान सद्बुद्धि देंगे।

ब्रज भाषा का महत्व—

१६ जनवरी को मथुरा में ब्रजसाहित्य मण्डल की ओर से हिन्दी के विद्वान प्रोफेसर, प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी अध्यक्ष डॉ० धीरेन्द्र वर्मा सम्मानित किये गये थे। सभापति वयोवृद्ध विद्वान सेठ कन्हैयालाल पोद्दार थे। इस अवसर पर धीरेन्द्रजी ने जो भाषण दिया वह बड़ा महत्व-पूर्ण है। आपने कहा—मैं भी ब्रजवासी हूँ। मेरी कल्पना वृहत ब्रज प्रदेश की है। जिसका विस्तार बहुत है। मैंने ब्रज-भाषा को जयपुर, अलवर, कानपुर, एटा, इटावा, बुलन्दशहर आदि स्थानों में सीखा। मुझे उसमें बहुत से नवीन तथ्य दिखायी दिये। ब्रजभाषा की परम्परा सबसे पुरानी है। मैंने देखा कि प्रसर्पण भाषा किसी भी भाषा की जड़ में है। वैदिक भाषा तथा संस्कृत का मूल रूप क्या था। सूरसेन प्रदेश की भाषा के आधार पर संस्कृत की साहित्यिक भाषा का निर्माण हुआ। पालि का निर्माण अन्तिम निष्कर्ष के रूप में पश्चिमी देश की भाषा और अधिकतर सूरसेन प्रदेश की भाषा के आधार पर हुआ। सौरसेनी भाषा के बाद ब्रजभाषा का जन्म हुआ। वह वैदिक काल से लेकर आजतक चली आ रही है। ब्रजभाषा सबसे पुरानी भाषा है। ब्रजभाषा का क्षेत्र डमरू की तरह है। दक्षिण में गुजरात तक, उत्तर में कमायूँ तक परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच में सिकुड़ गया है। कुरु, पञ्चाल, शूरसेन आदि प्रदेश हैं। कुरु और पञ्चाल सबसे प्राचीन प्रदेश हैं। प्राचीनतम भाषा का रूप ब्रज में अधिक सुरक्षित है। पञ्जाब में वह कुछ विकृत हो गया है। इसका ऐतिहासिक रूप से अध्ययन हो तो हमारी प्राचीन संस्कृति को बहुत सहायता मिलेगी। भौगोलिक दृष्टि के अध्ययन हो तो बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। ब्रज की भिन्न-भिन्न जातियों में भाषा का जो भेद है उसका अध्ययन मैं कुछ अपने छात्रों से करा रहा हूँ। परन्तु ब्रज-साहित्य की पोथियाँ कार्यकर्त्ताओं को उपलब्ध नहीं होतीं। मैं एक बार काशी नरेश के पुस्तकालय में एक पुस्तक पढ़ने गया तो दो पहरेदार बन्दूक लिये मेरे ऊपर खड़े रहे। एक और राजा के यहाँ एक विद्वान एक पुस्तक में से जब कुछ नोट्स लेने लगे तो उनको लिखने नहीं दिया। देश की सरकार को चाहिए कि साहित्य तथा उसकी सम्पत्ति की रक्षा करे। ब्रजभाषा साहित्य इतना महत्वपूर्ण है कि संसार के साहित्यों में उसे स्थान मिलना चाहिए।

अपनी भाषा पर गर्व—

मौडर्न स्कूल नई दिल्ली के संस्थापना-दिवस पर भाषण देते हुए नेहरूजी ने उन लोगों की खिल्ली उड़ायी जो घमण्ड के कारण अंग्रेजी के ज्ञान, अंग्रेजी में बातचीत करने और अंग्रेजी को महत्व देने पर गर्व करते हैं और जो अपने को उनसे ऊँचा समझते हैं जो कि अंग्रेजी नहीं जानते।

नेहरूजी ने कहा कि अंग्रेजी एक अच्छी भाषा है और फारसी तथा फ्रांसीसी भाषा के समान उसका ज्ञान अच्छा है। मुझे अंग्रेजी के विरुद्ध कुछ नहीं कहना लेकिन जनता को अंग्रेजी जानने वाली और न जानने वाली के बीच बाँटना बुरा है।

उन्होंने कहा कि हमारी भाषा आखिर हमारी भाषा और हमें उस पर गर्व करना चाहिए।

तुलसी के जन्म-स्थान की खोज—

हमारे साहित्य के उज्ज्वलतम रत्न महात्मा तुलसीदासजी के जन्म-स्थान का प्रश्न अब भी अन्धकार में पड़ा हुआ है। यह तो सर्वमान्य है कि तुलसीदासजी का सम्बन्ध राजापुर से रहा है किन्तु उसको तुलसीदासजी की जन्म-भूमि कहना, ज्ञात तथ्यों का अतिक्रमण होगा। बाँदा गजेटियर राजापुर की स्थापना का श्रेय तुलसीदासजी को देता है। फिर यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हाल ही में अंग्रेजी और हिन्दी के अखबारों में जो रिपोर्ट छपी उसमें राजापुर को तुलसीदास जी की जन्म भूमि कहा गया है। यह विषय वैज्ञानिक खोज की अपेक्षा कराता है। ब्रज साहित्य मण्डल ने इस खोज को अपने हाथ में लिया है। हम उत्सुकता से खोज के परिणाम की प्रतीक्षा करेंगे। इस खोज के कार्य को कुछ तीव्रगति से अग्रसर कराने के लिए सरकारी सहायता की भी आवश्यकता है। सरकार का यह धर्म है कि जो राष्ट्र के कवि हुए हैं उनके सम्बन्ध में निश्चित जानकारी प्राप्त करावे। सरकार ऐसी खोज को प्रोत्साहन देकर एक राष्ट्रीय महत्व का कार्य करेगी।

उत्तर प्रदेशीय सम्मेलन—

१८–१९ फरवरी को अलीगढ़ में उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ था जिसका सभापतित्व डा० बाबूराम सक्सेना ने किया था और जिसमें राज्यपाल श्री मुन्शीजी तथा श्रद्धेय टण्डनजी आदि पधारे थे। इस सम्मेलन ने भारत सरकार से यह माँग की है कि इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिवसर्विस की परीक्षा में हिन्दी अनिवार्य कर दी जाय। एक प्रस्ताव प्रेस ट्रस्ट के सम्बन्ध में भी हुआ है जिसमें अपनी तमाम खबरें हिन्दी में देने की प्रार्थना की गयी है। कई और भी प्रस्ताव पास हुए हैं।

मिश्रजी का निधन—

काशी के पं० रामनारायण मिश्र हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुराने सेवक, संस्थापक और सहायक थे। गत मास १२ फरवरी को ७८ वर्ष की अवस्था में आपका निधन होगया। मिश्रजी ने अपनी सारी आयु शिक्षा और हिन्दी की सेवा में बिताई। वे एक आदर्श अध्यापक थे और कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। प्रचार की दुनियाँ से परे रह कर आपने काम किया और जो कुछ किया जम कर किया। ऐसे सच्चे और आदर्श हिन्दी सेवक के निधन का किस हिन्दी प्रेमी को दुःख न होगा। हम आपके कुटुम्बियों के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसाभास

प्रो० आनन्दप्रकाश दीक्षित, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत)

रसाभास की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ—अनौचित्य रसाभास की आधार-भूमि है। अभिनवगुप्त ने जितने स्पष्ट शब्दों में यह बात कही है[1] उतने ही स्पष्ट रूप में मम्मट[2] तथा विश्वनाथ[3] ने भी रसाभास को अनौचित्य-प्रवर्तित ही बताया है। किन्तु संस्कृत काल के कतिपय अन्य विद्वानों ने रसाभास की नवीन परिभाषाएँ देने का प्रयत्न किया है। इन लेखकों में रसार्णवसुधाकर के लेखक शिंगभूपाल, भावप्रकाश के रचयिता शारदातनय तथा साहित्यसार के प्रणेता श्री मदच्युताचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय प्रतीत होता है। वस्तुतः इन विद्वान् लेखकों की परिभाषाएँ मौलिकता प्रदर्शन की चेष्टा ही अधिक ज्ञात होती हैं, किसी नवीन दृष्टिपथ की सूचना नहीं देतीं।

शिंगभूपाल का कथन है कि अङ्ग रस को स्वेच्छा से बढ़ाकर अङ्गी की सी प्रतिष्ठा दे देना ही रसाभास है[4]। इस प्रकार का व्यवहार वस्तुतः ऐसा ही है जैसे अविनीत अमात्य का स्वामी के समान आचरण करने लगना है[5]। दूसरे शब्दों में यह कहना ही उपयुक्त होगा कि जिस प्रकार अमात्य का स्वामी के समान आचरण करना अनुचित तथा लोकातिक्रान्त समझा जाता है, उसी प्रकार अङ्गी अर्थात् प्रधान या स्वामी रस को अप्रधान अथवा सेवक या अनुगामी रस भाव बना देना भी अनुचित है। शिंगभूपाल के अतिरिक्त शारदातनय ने भावप्रकाश में जो परिभाषा दी है वह शिंगभूपाल से भिन्न न होने पर भी एक गणितज्ञ की सी परिभाषा होने के कारण उल्लेखनीय ही है। उनका कथन है—कि जहाँ प्रधान रस एक हिस्सा तथा अप्रधान या अङ्गभूत रस दो हिस्सा प्रयोग किया जाता है, वहाँ रसाभास होता है[6]। स्पष्ट है कि दोनों परिभाषाएं एक ही हैं, भले ही शाब्दिक अन्तर दोनों में प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त साहित्यसार के लेखक ने अपनी भिन्न स्थापना करने की चेष्टा करते हुए कहा कि रसाभास तथा भावाभास की उत्पत्ति किसी प्रकार के असंमतावलम्बन अथवा अयोग्य विषय के प्रतिपादन से होती है[7]। तात्पर्य यह है कि जहाँ पर दूसरों के द्वारा मान्य वस्तु के अथवा लोकाचार के विरुद्ध कोई वर्णन किया जाता है, वहाँ रसाभास तथा भावाभास होते हैं।

प्रस्तुत तीनों मतों पर विचार करने से ज्ञात होगा कि अङ्गी रस को अङ्ग रस बना देना अथवा असंमत या लोकाचार विरुद्ध वर्णन करना, यह सभी बातें अनुचित हैं। साहित्यशास्त्र के पाठक मात्र जानते हैं कि आचार्यों ने इस प्रकार के वर्णनों को सदैव अनुचित ही कहा है। अङ्गी रस को अङ्ग रस के रूप में वर्णन करना तो साहित्य-ग्रन्थों में रस-दोष ही माना गया है। रस-दोष का काव्य में होना कदापि प्रशंसनीय तथा समीचीन नहीं कहा जा सकता। अभिप्राय यह कि उल्लिखित समस्त परिभाषाओं के मूल में एक ही स्वीकारोक्ति दिखाई पड़ती है, वह है यह कि अनौचित्य ही

१—औचित्य प्रवृत्तौ चित्तवृत्तेरास्वाद्यत्वे स्थायिन्या रसो, व्यभिचारिण्या भावः, अनौचित्येन तदाभास ।
—लोचन, पृ० ७८

२—तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिता । —काव्यप्रकाश, सू० ४९

३—अनौचित्यप्रवृत्तत्वं आभासो रसभावयो । —साहित्यदर्पण

४—अंगेनाङ्गी रसः स्वेच्छावृत्ति वर्धित सम्पदा ।
—र० सु०, २६३

५—अमात्येनाविनीतेन स्वामीवाभासतां व्रजेत् ।
—वही, २६३, १ । २ ।

६—भागद्वयं प्रविष्टस्य प्रधानस्यैकभागता ।
रसानां दृश्यते यत्र तत्स्यादाभास लक्षणम् ॥
—भा० प्र०, पृ० १३३

७—असंमतावलम्बित्वादयोग्यविषयत्वतः ।
रसाभासस्तथाभावाभासश्च स्युरनुक्रमात् ॥
—सा० सार, पृ० १३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसाभास की वास्तविक आधारभूमि है।

रसाभास-विषयक अनौचित्य का स्वरूप—रसाभास की परिभाषा के सम्बन्ध में कोई वैमत्य न होने पर भी विद्वानों के मध्य अनौचित्य के स्वरूप के सम्बन्ध में केवल एक ही विचार की मान्यता ज्ञात नहीं होती। सभी विचारकों ने अनौचित्य के एक दूसरे से भिन्न रूप बताए हैं। औचित्य-सिद्धान्त के समर्थन में अनेक लेखकों ने जो समय समय पर अपने मत प्रकाशित किए हैं, उन्हीं के अन्तर्गत अनौचित्य की भी चर्चा सहज स्वाभाविक रूप से कर दी गई है। औचित्य की जो सीमा निर्धारित की गई है उसका उल्लंघन ही अनौचित्य की सीमा में प्रवेश करना है। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में इस विषय का सम्यक् प्रतिपादन किया है। उनके अतिरिक्त अन्य अनेक लेखकों का नाम भी लिया जा सकता है। किन्तु यहाँ उस सम्बन्ध में चर्चा करना अभीष्ट नहीं है। यहाँ तो साहित्य के कतिपय विद्वानों द्वारा कथित अनौचित्य के स्वरूप पर विचार करना ही हमारा लक्ष्य है।

पूर्वकथित परिभाषाओं से भी यह स्पष्ट हो गया है कि रसों के प्रयोग के समय उनकी प्रधानता अथवा अप्रधानता का विचार न रखना, लोकाचार के विरुद्ध बात कहना अनुचित ही है। अतएव उसका प्रयोग काव्य में नहीं किया जाना चाहिए। इनके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में कतिपय अन्य विचारों का उल्लेख भी यहाँ किया जायगा।

भावप्रकाश के लेखक ने षष्ठाधिकार में रसाभास का वर्णन करते हुए बताया है कि हास्य से अभिभूत शृङ्गार, शृङ्गार रस का, हास्य और बीभत्स का सम्मिश्रण हास्य का, वीर तथा भयानक का सम्मिलन वीर रस का, बीभत्स तथा करुण के श्लेष से अद्भुत का, शोक एवं भय से आविष्ट रौद्र, रौद्ररस का, हास्य तथा शृङ्गार से खचित करुण, करुण-रस का, बीभत्स, अद्भुत तथा शृङ्गार बीभत्स रस का, वीर तथा रौद्र से संयुक्त भयानक, भयानक रस का, तथा इसी प्रकार अन्य अनेक विरोधी रसों का सम्मिश्रण अनौचित्य-पूर्ण होने के कारण तत्तद रसों का रसाभास होता है।

इसके अतिरिक्त भावप्रकाशकार का कथन है कि पूय, माँस, शोणित, विष्ठादि के लेप का वर्णन हास्य रस को हास्याभास में परिणत कर देता है। सभाओं में नारी-समाज के सम्मुख शूरता-प्रदर्शन, युद्ध के भय से वीर पुरुष का पलायन, वीर रस नहीं बल्कि वीर रसाभास मात्र है। दिव्यादि वस्तुओं के दर्शन पर उत्ताड़नादि अद्भुत को, रौद्र कर्म करने पर भयभीत होना अथवा अनुशोचन करना रौद्राभास मात्र है, रौद्र रस नहीं।[८] इसी प्रकार अन्य अनेक स्थितियों का विचार करते हुए शारदातनय ने रसाभास का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। इस संक्षिप्त लेख में उन सबका उल्लेख तथा उन पर विचार संभव नहीं।

इस वर्णन से शारदातनय के अनौचित्य-विषयक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में दो बातें स्पष्ट होने में सहायता मिलती है। एक तो जैसा पहिले ही कह दिया गया है, विरोधी रसों का अथवा प्रधान के स्थान पर अप्रधान रस प्रधानवत् वर्णन करना अनुचित है। अतः उससे रसास्वादन की आशा तो नहीं की जा सकती, हाँ, रसाभास अवश्य प्रस्तुत हो जाता है। दूसरे, आश्रय में उन भावों का प्रदर्शन जो उसके धर्म के सर्वथा विपरीत हैं—जैसे, वीर पुरुष का भयभीत होकर भागना आदि—भी रसानुकूल नहीं कहे जा सकते। अतएव रसास्वादन कराने की चेष्टा करने वाले कवि के लिए वे ग्राह्य नहीं।

साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने रसाभास पर मानो नैतिक दृष्टि से विचार करते हुए कहा कि—नायक के अतिरिक्त अन्य पुरुष में नायिका का प्रेम अनुचित है। गुरु-पत्नी आदि में अथवा अनेक पुरुषों में या दोनों में से किसी एक में, प्रतिनायक में अथवा नीच पात्र में, यदि किसी की रति या अनुराग वर्णित हो तो वहाँ शृङ्गार-रस में अनौचित्य के कारण शृङ्गार रसाभास होता है। इसी प्रकार यदि गुरु आदि पूज्यों पर क्रोध प्रदर्शित किया जाय तो रौद्र रसाभास होगा। नीच पुरुष का शान्त स्वभाव, शान्त रसाभास, गुरुजनों के प्रति उपहास करने से हास्य रसाभास, ब्राह्मण वध आदि कुकर्मों में उत्साह होने पर अथवा नीच पात्र में उत्साह होने से भी रसाभास, और भय के उत्तम पात्रगत होने पर भयानक रसाभास होता

८—भावप्रकाश, पृ० १३३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।[९] साहित्य-दर्पणकार का यह विचार हमारी दृष्टि से पूर्णतया नीति-मार्ग को ध्यान में रख कर चला है। सामाजिक निश्चित नियमों का उल्लङ्घन समाज के लिए घातक होने के कारण निन्द्य तथा उपेक्षणीय है। वह सर्वथा अनुचित है अतएव उसका वर्णन रसोत्पत्ति में नितान्त असमर्थ है। विश्वनाथ के इस नीति समर्थन के भी दो दृष्टिकोण ज्ञात होते हैं। एक सदाचार विषयक नीति, दूसरे, लोकानुमोदित अथवा व्यवहारोचित नीति। पहली के अन्तर्गत शृङ्गार रसाभास के सम्बन्ध में वर्णित अनौचित्य का निषेध आता है तथा दूसरी की सीमा ब्राह्मण-वध जैसे रूढ़ि सम्मत विचारों के विरुद्ध कार्यों तक बताई जा सकती है। वास्तविक धर्म के विपरीत आचरण भी अनुचित ही है, इसका अनुमोदन भी उत्तम पात्रगत भय को अनुचित मानने से हो जाता है। संक्षेप में, विश्वनाथ की विचारधारा का सार यह हो सकता है कि सदाचार, लोकाचार तथा वास्तविक या स्वाभाविक गुणों के विपरीत आचरण के वर्णन से काव्य का रस रसाभास मात्र रह जाता है।

रसगङ्गाधर के अनुसार अनुचित होने का अर्थ है, जाति, देश, काल, वर्ण आश्रम, अवस्था, स्थिति तथा व्यवहार आदि के विषय में जो-जो लोक और शास्त्र से सिद्ध एवं उचित द्रव्य, गुण अथवा क्रियादि हैं, उनसे भिन्न होना। जाति आदि के विरुद्ध होने से तात्पर्य है, जैसे, बैल और गाय आदि के तेज और बल का कार्य तथा सिंह आदि भयानक जन्तुओं का सीधापन। देश के विरुद्ध से तात्पर्य है, जैसे, स्वर्ग में वृद्धता, रोगादि का वर्णन अथवा पृथ्वी में अमृतपान का वर्णन करना। काल के विरुद्ध, जैसे, ब्राह्मण का शिकार खेलना, क्षत्रिय का दान लेना और शूद्र का वेद पढ़ना। आश्रम के विरुद्ध, जैसे—ब्रह्मचारी और सन्यासी का पान चबाना और स्त्री-समागम करना। अवस्था के विरुद्ध जैसे—बालक तथा वृद्ध के द्वारा स्त्री-सङ्ग करना तथा युवा-पुरुष का वैराग्य धारण कर लेना। स्थिति के विरुद्ध, जैसे दरिद्रों का भाग्यवानों जैसा आचरण और भाग्यवानों का दरिद्रों जैसा आचरण प्रदर्शित करना।[१०]

रसगङ्गाधर के इस मत से पता चलता है कि पण्डितराज लोक तथा शास्त्र के विरुद्ध आचरण के वर्णन को अनुचित मानते हैं। वह लोक तथा शास्त्र के विरुद्ध आचरण कई प्रकार का हो सकता है। इसका ऊपर उल्लेख किया गया है। पण्डितराज के ही समान काव्य प्रकाश के टीकाकार बामन झलकीकर ने भी अनौचित्य का तात्पर्य लोक तथा शास्त्र का अतिक्रमण ही माना है।[११] किन्तु सुधासागरकार ने प्रकर्ष के विरोध अर्थात् प्रधान अप्रधान रस में प्रधान के स्थान पर अप्रधान का अत्यधिक प्रकर्ष दिखाना ही अनौचित्य माना है।[१२]

इस प्रकार सब मतों पर पुनर्विचार करने से प्रतीत होगा कि साहित्य में अनौचित्य को विशेषतया उन स्थलों पर माना है जहाँ रस-दोषों अथवा विरोधी रसों के एक ही

९—उपनायकसंस्थायां मुनिगुरुपत्नीगतायां च।
बहुनायकनिष्ठत्वे रतौ तथानुभयनिष्ठायाम्॥
प्रतिनायकनिष्ठत्वे तद्वदधमपात्रतिर्यगादिगते।
शृङ्गारे नौचित्यं रौद्रे गुर्वादिगतकोपे॥
शान्ते च हीननिष्ठे गुर्वाश्रालम्बने हास्यं।
ब्रह्मवधाद्युत्साहे धमपात्रगते तथा वीरे॥
उत्तमपात्रगतत्वे भयानके ज्ञेयमेवमन्यत्र।
सा० द०, २६२-२६५

१०—तच्च जाति देश काल वर्णाश्रम वयोवस्था प्रकृति व्यवहारादेः प्रपञ्च जातस्य तस्य तस्य यल्लोकशास्त्रसिद्धमुचित द्रव्यगुणक्रियादि तद्भेदः। जात्यादेरनुचितं यथा गवादेस्तेजोबल कार्याणि पराक्रमादीनि। सिंहादेश्च साधुभावादीनि। स्वर्ग जराव्याध्यादि। भूलोके सुधाशेवनादि। शिशिरे जल विहारादीनि। ग्रीष्मे वह्निसेवा। ब्राह्मणस्य मृगया बाहुजस्त प्रतिग्रहः। शूद्रस्य निगमाध्ययनम्। ब्रह्मचारिणोयतेश्च ताम्बूलचर्वणम्। बालवृद्धयोः स्त्रीसेवनम्। युवाश्च विरागः। दरिद्राणामाढ्याचरणम्। आढ्यानां च दरिद्राचारः।
—रसगङ्गाधर।

११—अनौचित्यं हि शास्त्रलोकातिक्रमात्।
—का० प्र० टीका पृ० १२१

१२—सुधासागरे तु-अनौचित्येन प्रकर्षविरोधिना रूपेणेत्यर्थः।
—वही, पृ० १२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान पर प्रयोग को काव्य से न बचाया गया हो। दूसरे जहाँ लोकाचार तथा शास्त्र के विरुद्ध बात कही गई हो। तीसरे, जहाँ वास्तविक गुण अथवा धर्म के विरुद्ध वर्णन किया गया हो। अथवा चौथे तथा अन्तिम रूप में, वहाँ जहाँ नैतिक विचार के विरुद्ध आचरण किया गया हो।

पण्डितराज जगन्नाथ ने इस स्थल पर अनौचित्य के एक विशेष दृष्टिकोण की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि—अनुचित विभाव को आलम्बन मान कर यदि रति आदि का अनुभव किया जाय तो वहाँ रसाभास होता है। उन लोगों के विचार से यह जानना कि कौन सा विभाव अनुचित है, कोई कठिन बात नहीं। इस बात को सीधे और सहज रूप में लोक-व्यवहार से जाना जा सकता है। जिसे अन्य व्यक्ति भी लोक-व्यवहार में बुरा कहें वही बुरा है। उसी प्रकार लोक-व्यवहार में अनुचित कहा जाने वाला विभाव ही अनुचित है। ऐसे अनुचित विभाव के प्रति यदि रति आदि प्रकट की जायगी तो वह रस न होकर रसाभास ही होगा। विद्वानों के इस मत से विरोध प्रदर्शित करते हुए पण्डितराज का कथन है कि यद्यपि इस लक्षण के द्वारा मुनि-पत्नी आदि के विषय में होने वाली रति का इसमें अन्तर्भाव नहीं होता। पहले उदाहरण में मुनि पत्नी आदि को अन्य व्यक्ति अपना प्रेम-पात्र माने यह तो अनुचित है अर्थात् मुनि-पत्नी इतर व्यक्ति के रति भाव का आलम्बन नहीं कही जा सकतीं। किन्तु, दूसरे उदाहरण में विभाव अनुचित है रूप से प्रवृत्त हुआ है। अतएव अनुचित विशेषण का प्रयोग रति आदि के साथ होना चाहिए न कि विभाव के साथ। अर्थात् पण्डितराज के अनुसार रसाभास का लक्षण यह होना चाहिए कि जहाँ रति आदि अनुचित रूप से प्रवृत्त हुए हों, वहाँ रसाभास होता है। ऐसा मानने से ऐसी रति का भी अन्तर्भाव होता है जिसमें अनुचित विभाव आलम्बन हो, जो बहुनायकनिष्ठ हो, अथवा जो प्रियतम तथा प्रियतमा दोनों में न रहने के कारण एक विषयक हो।[१३]

सारांश यह कि रति आदि भाव जब किसी के प्रति अनुचित रूप से प्रवृत्त होते हैं, तब रसाभास होता है। इस अनौचित्य का विविध प्रकार से वर्णन करते हुए भी आचार्यों ने यह निश्चित किया है कि क्या, किस समय अनुचित है, यह लोक व्यवहार से जाना जा सकता है। यों इस अनौचित्य की सीमा का थोड़ा निर्देश इस प्रकार किया जा सकता है कि जहाँ सदाचार की सीमा का उल्लङ्घन किया गया हो वहाँ, जहाँ विरोधी रसों का प्रयोग अथवा काव्य में बताए गए दूषणों का समावेश हो गया हो, जहाँ शास्त्र की मर्यादा का ध्यान न रखा गया हो, जहाँ पदार्थ अथवा व्यक्ति के प्राकृतिक धर्मों का तिरस्कार करके उसके विरोधी धर्मों का वर्णन किया गया हो वहाँ, रसाभास होता है।

१३—विभावनौचित्यं पुनर्लोकानां व्यवहारतो विज्ञेयम्। यत्र तेषामयुक्तमिति धीरिति केचिदाहुः। तदपरे न क्षमन्ते। मुनिपत्न्यादिविषयकरत्यादेः संग्रहे पि बहुनायक-विषयाया अनुभयनिष्ठायश्च रतेर संग्रहात्। तत्र विभावगतस्यानौचित्यस्याभावात्। तस्मादनौचित्येनेरत्यादिविशेषणीयः। इत्थं चानुचितविभावालम्बनाया बहुनायकविषयाया अनुभयनिष्ठायाश्च संग्रह इति। अनौचित्यं च प्राग्वदेव। —र० गं०, पृ० ६८

(पृष्ठ ३७० का शेषांश)

गोरख ने योगियों को माया-प्रभावित सभी विषय वासनाओं से अलग रहने की चेतावनी दी। वह स्पष्ट कहते हैं—

धन यौवन की करें न आस।
चित्र न राखैं कामिनी पास॥

मद्य, भाँग आदि नशीली चीजों के सेवन को उन्होंने अनुचित कहा—

अवधू, मांस भषन्त दया धरम का नास
मद पीवन्त तहाँ प्राण निरास।
भांगि भषंत ग्यानं ध्यानं षोवंत
जम दरबारी ते प्राणी रोवंत।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर सिद्ध-सम्प्रदाय प्रवृत्तिमार्गी था वहीं दूसरी ओर नाथ सम्प्रदाय पूर्णतः निवृत्तिमार्गी। इसके फलस्वरूप "लोक-जीवन में जो धार्मिक चेतना पूर्ववर्ती सिद्धों से आकर उसके पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख हो रही थी उसे गोरखनाथ ने नई प्राण शक्ति से अनुप्राणित किया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध-सम्प्रदाय और नाथ-पन्थ के पारस्परिक साम्य और वैषम्य

श्री शुकदेव साहु एम० ए०

इसके पूर्व कि इन दोनों सम्प्रदायों के पारस्परिक साम्य और वैषम्य पर प्रकाश डाला जाय, संक्षेप में इनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर देना उचित समझा जायगा, क्योंकि इसमें ही इनका विवेचन आसान होगा।

भारतवर्ष की पवित्र भूमि अनादिकाल से ही ऋषियों और तत्व-चिन्तकों की साधना-भूमि रही है। इसने कितने ही धार्मिक उत्थान-पतन देखे। वेदों के गहनीय मन्त्र तथा प्राकृतिक शक्तियों के प्रति स्तुतियाँ यहीं गाई गईं। इसी भूमि पर वैदिक युग के कर्मकाण्ड ने, ब्राह्मण-युग में अत्यन्त ही जटिल और हिंस्र होकर दयनीय पशुओं के खून से खुलकर होली खेली। और इसी भूमि पर इस भयङ्कर कर्मकाण्ड के विरुद्ध अलौकिक ज्ञान-विमण्डित उपनिषदों ने वे आध्यात्मिक मीमांसाएँ प्रस्तुत कीं जिनमें सूक्ष्म तथा शाश्वत कल्याणकारी दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है।

इसके सम्बन्ध में एक बात महत्त्व की है कि उपनिषदों में हमें कर्मकाण्ड के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया मिलती है वह अन्तर्धारा के रूप में (अप्रत्यक्ष रूप में) ही। उसका प्रत्यक्ष रूप से खण्डन और विरोध तो बौद्ध-धर्म ने ही किया।

संक्षेप में बौद्ध-दर्शन का मुख्य सिद्धान्त यह है कि दुनियाँ की सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं—अनित्य हैं। एक निश्चित अवधि के समाप्त हो जाने पर ये काल के कवल हो जाती हैं। इस जगत् में दुःख ही दुःख है। इस दुःख का निवारण ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। 'निर्वाण' की प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य को इस दुःख से छुटकारा मिल जाता है। सदाचार, अहिंसा, आत्मविश्वास, समाधि-शील और प्रज्ञा आदि ही बौद्ध-धर्म के वे अनमोल रत्न हैं जिनके द्वारा 'निर्वाण' की प्राप्ति हो सकती है।

कालान्तर में बौद्ध-धर्म दो भागों में बँट गया—हीनयान और महायान। हीनयान (छोटी गाड़ी) सिर्फ सन्यासियों एवं विरक्तों को ही जगह देने वाला था और महायान ऊँचे-नीचे छोटे-बड़े सबों को 'निर्वाण' तक पहुँचाने का दावा करता था। आगे चलकर महायान के भी कई टुकड़े हो गये। वज्रयान और सहजयान इसके आखिरी टुकड़े हैं। इसमें कष्टपूर्ण व्रत-संयम आदि की कोई गुञ्जायश नहीं रह गई।

बौद्ध धर्म में कालान्तर में अनाचार का प्रवेश होने लगा। इसमें आचार-शुद्धि का इतना कठिन बन्धन एवं अप्राकृतिक अतिशयता बरती जाने लगी कि स्वभावतः लोग इससे विरक्त होने लगे। लेकिन इस देश से इस धर्म का निष्कासन प्रधानतः शङ्कर, कुमारिल तथा उदयन आदि वैदान्तिक और मीमांसक आचार्यों द्वारा ही हुआ। उत्तरी भारत में हर्षवर्द्धन तक इसे फूलने-फलने के लिए राजकीय सहारा मिला। बिम्बसार, अशोक, कनिष्क आदि राजाओं से इसे पर्याप्त सहायता मिली। हर्षवर्द्धन के पश्चात् राजकीय सहायता न मिलने के कारण बौद्ध-सन्यासियों को उन जगहों में जाना पड़ा जहाँ वे निम्न स्तर के लोगों के बीच अपना नाना विध चमत्कार दिखाकर कुछ अर्जित कर सकने में समर्थ हो सकते। फलस्वरूप उनमें उच्च एवं शिष्ट मानसिक एवं नैतिक प्रेरणाओं का अभाव बढ़ने लगा और वे जादू-टोनों तन्त्रों-मन्त्रों की ओर अत्यन्त वेग से मुड़ गये। मन्त्रयान का ही अग्रिम विकास वज्रयान की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। दोनों में अन्तर बहुत ही कम है। सौम्य अवस्था का नाम मन्त्रयान है और उग्र रूप की संज्ञा वज्रयान। बुद्ध ने तो मन्त्र-तन्त्र तथा जादू-टोनों को 'मिथ्या जीव' कहकर तिरस्कृत ही किया। किन्तु पीछे चलकर उन्हीं के अनुयायियों ने इन्हें निर्वाण प्राप्ति का एक प्रमुख अङ्ग ही मान लिया और बुद्ध के मानव व्यक्तित्व का तिरस्कार कर उन्हें मानव-लोक से ऊपर उठाकर दिव्य लोक में पहुँचा दिया। छोटे-बड़े मन्त्रों की रचना होने लगी। इनके साथ ही हठ-योग की जटिल विधियाँ भी इन लोगों ने अपनाईं। इस प्रकार इन सिद्धों ने भोली-भाली जनता का विश्वास अर्जित कर अनेक मठों की सृष्टि कर प्रचुर मात्रा में धन इकट्ठा किया। और धन के अत्यधिक सञ्चय के बाद ? जैसा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः होता है विलास के सभी साधनों का दिल खोलकर उपयोग (?)। मन्त्र, मैथुन तथा हठयोग मन्त्रयान के तीन प्रमुख तत्त्व मान लिये गये।

मन्त्रयान का समय ४००—७०० श० के लगभग तक माना जाता है और इसके उत्तरवर्ती उन्नतर रूप वज्रयान का समय ८००—११७५ श० तक। राहुलजी के अनुसार इन सम्प्रदायों का उद्भव-स्थान दक्षिण का श्रीपर्वत और धान्यकटक (गुन्टूर-जिला मद्रास) में था। वज्रयानी सिद्धों ने मन्त्र के उपर्युक्त तत्त्वों के साथ मद्य और माँस को भी शामिल कर पञ्च तत्त्वों को अपनी सहज-साधना का अङ्ग बनाया।

धर्म के नाम पर तो अनाचार का समावेश हुआ ही साथ ही हठयोग की प्रक्रियाएँ भी इनकी साधना का मुख्य अङ्ग बनीं। इसके परिणाम स्वरूप 'घट के भीतर चक्र नाड़ी शून्य देश आदि की कल्पना करके नाद विन्दु, सुरति निरति आदि पारिभाषिक शब्दों के सहारे अन्तस्साधना का विधान किया गया। इसके कारण वे अपने को रहस्यदर्शी करार देने लगे और रहस्यमय भाषा में ही पहेलियाँ कहकर लोगों को आश्चर्य-चकित करने लगे।

अब प्रतिपाद्य विषय पर आया जाय।

नाथ पन्थ का मूल वज्रयान शाखा है। सिद्धों के वज्रयान की 'सहज साधना' ही नाथ सम्प्रदाय के रूप में पल्लवित हुई। इन दोनों सम्प्रदायों को एक ही विचार धारा की दो उर्मियाँ कह सकते हैं। चौरासी सिद्धों की सूची में नाथ-पन्थ के कुछ प्रमुख आचार्यों के नाम (कुछ मिलते-जुलते) गिन लिये गये हैं। जैसे मीनपा (बौद्ध-सिद्ध) मत्स्येन्द्रनाथ (नाथ पन्थ) गोरखपा (बौद्ध-सिद्ध) गोरखनाथ (नाथ-पन्थी) जलन्धरपा (बौद्ध सिद्ध) जालन्धरनाथ (नाथ पन्थी) आदि। तारानाथ, हरिप्रसाद शास्त्री जैसे विद्वानों का तो कहना है कि गोरखनाथ वस्तुतः पहले बौद्ध थे और बाद में शैव हुए। इस तरह हम देखते हैं कि इन दोनों सम्प्रदायों में कितना अधिक सम्बन्ध है।

सिद्ध और नाथपन्थी—दोनों दार्शनिक योगी थे, परम तत्त्व के अन्वेषक। दोनों ने परमात्मा को बाह्य जगत में न ढूँढ़ा, न ढूँढ़ने की सलाह दी। 'घट' के भीतर ही परम तत्त्व का निवास है। वहीं शून्य का साक्षात्कार हो सकता है। दोनों का यही सिद्धान्त था। फलतः दोनों ने अन्तस्साधना पर जोर दिया। सरह ने तो 'घट' के बाहर परमात्मा को ढूँढ़ने वाले पण्डितों को यहाँ तक कह डाला—

पंडिअ सअल सत्त वक्खाणइ।
देहहि बुद्ध वसन्त ण जाणइ॥
अमणागमण ण तेन बिखण्डिअ।
तोवि णिलज्ज भणइ हउँ पण्डिअ॥

"घट में ही बुद्ध हैं यह नहीं जानता, आवागमन को भी खण्डित नहीं किया, तो भी निर्लज्ज कहता है मैं पण्डित हूँ।"

इसी के सम्बन्ध में दूसरी जगह कहा गया है—

घरें अच्छइ बाहिरे पुच्छइ।
पइ देक्खइ पड़िवेसी पुच्छइ॥
सरह भणइ बढ़ जाणउ अप्पा।
णउ सो धेअण धारण जप्पा॥

मूर्ख, जो वस्तु घर में है उसे बाहर ढूँढ़ता है जैसे कोई मूढ़ नारी पति को सामने देख रही हो फिर भी पड़ोसी से पूछ रही हो कि वह कहाँ है। अरे मूर्ख! आत्मा को पहचानने की कोशिश कर क्योंकि वह ध्यान, धारण या जप से नहीं मिलता।

नाथपन्थियों ने भी परमतत्त्व को न हिन्दू के मन्दिर में देखा न मुसलमान की मस्जिद में, क्योंकि योगी तो उसे वहाँ देखता है जहाँ न मन्दिर है न मस्जिद। अर्थात् अपने 'घट' में ही उसका साक्षात्कार करता है। इसलिए उनका कहना है—

हिन्दू ध्यावै देउरा
मुसलमान मसीत।
योगी ध्यावै परमपद,
जहाँ देउरा न मसीत॥

वे तो 'अलख निरञ्जन' की ही व्याख्या करते हैं जहाँ न राम हैं, न खुदा—

हिन्दू आखै राम को, मुसलमान खुदाय।
जोगी आखै अलख को, जहाँ राम अछै न खुदाय॥

गोरखपन्थी योगियों के मतानुसार सारे तीर्थ कायागढ़ के भीतर ही हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घट ही भीतर अठसठी तीरथ
कहाँ भ्रमरै रे भाई।

या

कायागढ़ भीतर देव देउरा कासी
सहज सुभाइ मिलै अविनासी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सिद्ध-सम्प्रदाय और नाथ-पन्थ दोनों ने बहिःसाधना के विपरीत अन्तस्साधना पर जोर दिया और 'घट' के भीतर ही परमतत्त्व के उपलब्ध होने की बात कही।

जिस तरह अन्तस्साधना पर इन दोनों पन्थों में जोर दिया गया उसी तरह बाह्याडम्बरों के तीव्र विरोध पर भी, क्योंकि बाह्याडम्बर अन्तस्साधना का प्रबल शत्रु है।

तीर्थ-स्नान, देवार्चन आदि बाह्याचार का खण्डन करते हुए सिद्ध-मत में कहा गया—

बम्हा विहूणु महेसुर देवा।
वोहिसत्त मा करहू सेवा॥
देव मे पूजहु तित्थ ण जाना
देव पूजा ही तित्थ ण जावा॥

बोधिसत्वों को ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशादि की पूजा नहीं करनी चाहिये। पत्थर आदि देवताओं की भी पूजा नहीं करनी चाहिए, न तीर्थ जाना चाहिए; बाह्य देव-पूजा से मोक्ष नहीं मिलती।

भिन्न-भिन्न तीर्थों में घूम कर अनेक देवताओं की पूजा वा आराधना को योगियों ने भी मूर्खता कहा है—

न्हाइवे को तीरथ न पूजिवे को देव।
भणंत गोरख अलख अभेव॥

हिन्दू और मुसलमान—दोनों के तीर्थ-व्रतादि पाखंडों की आलोचना फिर इन्हीं से सुनिये—

देवल जात्रा सुनि जात्रा, तीरथ जात्रा पांणी।
अतीत जात्रा सुफल जात्रा, बोलै अमृत वाणी॥
अवधू, मन चंगा तो कठौती में गंगा।
बान्ध्या मेल्हा, तो जगत्र चेला।

शास्त्र-ज्ञान की व्यर्थता भी दोनों पंथों के द्वारा स्पष्ट रूप से घोषित की गई। सिद्ध मत में कहा गया—

आगम वेअ पुराणेहि पण्डिअमाण वहंति।
पक्क सिरीफले अलिअ जिमि बाहेरिअ भमन्ति॥

वेद पुराणादि के अध्ययन से पंडित फूला नहीं समाता, किन्तु जैसे पके बेल के चारों ओर भौंरा मँडराता ही है, कुछ पाता नहीं वैसे ही वह पंडित भी बाहर ही बाहर भ्रमता है, कुछ समझता नहीं।

गोरख भी शास्त्रीय ज्ञान की निन्दा करते हुए स्पष्ट कहते हैं—

वेदे न शास्त्रे कतेबे न पुराने
पुस्तके न बांध्या जाई।
तेथत जानी विरला योगी
और दुनि सब धंधे लागी।

'नाद' और 'विन्दु'—इन दो नामों का प्रचलन वज्रयानी सिद्धों में खूब रहा। गोरख सिद्धान्त में इन्हें उनकी व्याख्या इस प्रकार मिलती है—

नाथांशो नादो नादांशः प्राणः शक्त्यंशी विन्दुः
विन्दोरंशः शरीरम्।

इन दोनों तत्वों से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई है—इसे सिद्ध-सम्प्रदाय और नाथ-पंथ दोनों ही स्वीकार करते हैं।

परमात्म तत्व की उपलब्धि हो जाने पर अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है जिसे किसी भी प्रकार कहा नहीं जा सकता। उसका सिर्फ अनुभव होता है और इस प्रकार का कि वाणी द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। वह गूँगे का गुड़ है। नाथ-पंथी उस अनिर्वचनीयता को इस प्रकार कहते हैं—"शिवं न जानामि कथं वदामि, शिवं च जानामि कथं वदामि।" और इसके सम्बन्ध में सिद्ध लुइया कहते हैं—

भाव न होई, अभाव न होई, अइस संबोहे को पतिआइ।

इस अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति गुरु उपदेश के विना असंभव है। अतः दोनों सम्प्रदायों ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए गुरु उपदेश की आवश्यकता एवं महत्ता प्रतिपादित की है। योग में 'अगुरू' का प्रवेश ही निषिद्ध है, और वज्रयान में भी उसका अत्यन्त ही स्पष्ट रूप दिखाई पड़ता है। सरहपा कहते हैं—

गुरु-उपएं से अमिअ-रस
धावण पीअउ जेहि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहु सत्यत्थ मरुत्थलहिं
तिसिए मरिअउ तेहि ।

अर्थात् जिसने दौड़ कर गुरू-उपदेश के अमृत-रस का पान नहीं किया वह वृथा शास्त्रार्थरूप मरुस्थल में प्यासा ही मर गया ।

उसी तरह नाथ-पन्थ में भी 'निगुरे' की गति नहीं है—

गुरू कीजै गहिला, निगुरा न रहिला ।
गुरू बिन ज्ञानं न पाइला रे भाईला ॥

प्रतीक भाषा—दोनों पन्थों को अपना उपदेश जन-साधारण में फैलाना था अतः दोनों ने तत्कालीन बोल-चाल की भाषा का आश्रय लिया । वह भाषा अपभ्रंश थी यद्यपि उस पर कुछ पुर्वी तथा पञ्जाबी राजस्थानी का भी प्रभाव था । दोनों ने प्रतीक-भाषा का भी प्रयोग किया । उदाहरणार्थ—

चींटी केरी नेत्र में गजेन्द्र समाई
गावड़ी के मुख में बाघड़ी वियाई (सि० स०) ।

अर्थात् सत्य और अहिंसा के सामने हिंसा और माया आदि दुष्प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं ।

इस तरह हमने देखा कि जहाँ तक अन्तस्साधना, पाखण्ड-खण्डन, मूर्ति-पूजा, तीर्थ-स्नान, व्रत नियम आदि बाह्याडम्बरों के विरोध, शास्त्रज्ञान की व्यर्थता, नाद-बिन्दु की चर्चा, स्वसंवेद्यता तथा अनिर्वचनीयता, गुरू-उपदेश के महत्व तथा भाषा आदि का प्रश्न है, सिद्ध-सम्प्रदाय तथा नाथ-पन्थ में पर्याप्त समता है ।

अब उनके पारस्परिक वैषम्य की चर्चा की जाय ।

सिद्ध-सम्प्रदाय निरीश्वरवादी शून्य का प्रतिपादक था जब कि नाथ-पन्थ ईश्वरवादी शून्य का । सिद्धों के लिए 'शून्य' स्वयं ईश्वर का पर्याय था जहाँ अखण्ड शान्ति एवं अबाध आनन्द के साम्राज्य का होना कहा गया है । इसके विपरीत नाथ-पन्थी योगियों का 'शून्य' कोरा शून्य नहीं, बल्कि उसमें ईश्वरत्व का समावेश था और वे ईश्वर थे 'शिव' ।

दोनों के साधनों में भी भिन्नता थी । नाथपन्थ पातञ्जल योग पर आधारित हठयोग को ही, जिसमें इन्द्रिय-दमन, आत्म-शुद्धि तथा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर ऊपर की ओर लक्ष्य तक ले जाने और नानाविध यौगिक प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं, साधन बतलाता है । लेकिन सिद्ध-सम्प्रदाय भोग में ही निर्वाण की कल्पना करता है । शायद ही ऐसा कोई अनाचार हो जिसका वज्रयान ने समर्थन न किया हो । इस सम्बन्ध में 'पञ्च-मकार' तो प्रसिद्ध ही हैं—

मद्यं मासं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च
एते पञ्चमकाराः स्युः मोक्षदाहि युगे युगे ।
संभोगार्थमिदं सृष्टं मैथानुक शेषतः ।

यह सारा संसार ही साधकों के सम्भोग के लिए बनाया गया है । इसी को इन्द्रभूति ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ज्ञान-सिद्धि' में इस प्रकार कहा है—

भक्ष्याभक्ष्य विनिर्मुक्तः पेयापेय विवर्जितः
गम्यागम्य विनिर्मुक्तः भवेत् योगी समाहितः ॥

कुछ विद्वानों ने इन चीजों को सांकेतिक रूप देने की चेष्टा की है और इस तरह इसके पीछे छिपी अनैतिकता पर पर्दा डालने की चेष्टा की है । इसके सम्बन्ध में अपभ्रंश साहित्य के अधिकारी विद्वान डा० विनयतोष भट्टाचार्य के निम्नलिखित शब्द द्रष्टव्य हैं—

"आजकल ऐसी चीजों की रहस्यात्मक व्याख्या करने की प्रवृत्ति चल पड़ी है, लेकिन इतना निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि इस प्रकार का प्रयास सर्वथा निरर्थक है क्योंकि अधिकतर स्थलों पर जो भाषा प्रयुक्त है उसमें द्विविधा का अवकाश नहीं है यद्यपि कहीं-कहीं सन्ध्याभाषा का भी व्यवहार हुआ है । कोई आश्चर्य नहीं कि इसके धर्म का अनुगमन कर सारा पूर्वी भारत शक्ति हीन हो गया और सारी जनता पथ-भ्रष्ट हो गई । यह सौभाग्य की बात हुई कि मुसलमानों ने आकर नालन्दा, तक्षशिला, ओदन्तपुरी और शायद जगत्तल में भी वज्राचार्यों का समूल विनाश कर जनता को बचा लिया ।"

ऐसा प्रतीत होता है जैसे नाथपन्थ के प्रवर्त्तकों ने इन भयंकर अनाचारों को देख कर अपना पन्थ सिद्धों से अलग कर लिया जिसमें इन दुर्गुणों की प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप कठोर ब्रह्मचर्य, वाक् संयम, आन्तरिक शुद्धि, मद्य मांसादि का पूर्ण बहिष्कार शारीरिक शौच आदि नियमों का पालन आवश्यक समझा गया ।

(शेष पृष्ठ ३६६ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यकालीन संस्कृति और कबीर

श्री सत्यनारायण त्रिपाठी, एम० ए० (फाइनल)

हमारी मध्यकालीन संस्कृति यदि महानाटक है, तो कबीर उसके एक महान पात्र और उनका जीवन मध्यवर्ती अङ्क का विष्कम्भक है। उस नाटक के प्रथम अङ्क में मध्य-युग के वितान का वह दृश्य है जिसमें हमारी संस्कृति भयङ्कर स्वप्न से जग उठी थी और सामने यवनों का विकराल रूप अट्टहास कर रहा था, जिसकी ध्वनि हिन्दुत्व के लिए कारा-गार थी और देश उसमें बन्दी। वह अङ्गों की व्यथा से ईश्वरोन्मुख हो चली थी। उसकी धार्मिक व्यवस्था, राज-नैतिक विपर्यय एवं साहित्यिक प्रगति यवन आतङ्क से मर्माहत थी। जन-जीवन में उदासीनता की लहर दौड़ रही थी और नैराश्य काली छाया की भाँति प्राणों पर उतर रहा था। हिन्दू राज्यों की टूटती साँसों पर यवन राज्यों की नींव पड़ रही थी। राजपूतों का पराभव और यवनों का अभ्युदय, हिन्दुत्व का विनाश एवं इस्लाम का निर्माण, सब कुछ साथ-साथ चल रहा था। सञ्चालक था यवन-आक्रमण; साधक का सङ्घर्ष।

इस तत्कालीन देश-व्यापी विप्लव ने हमारे सामाजिक बन्धनों पर गहरी चोट की। हिन्दू जीवन का गौरव एवं उत्साह कुम्भकर्णी निद्रा में सांस लेने लगा। उसकी आँखें पथरा गईं। सामने ही मन्दिरों की दीवारें कराहती हुई धराशायी हो रही थीं। देव मूर्तियाँ जड़वत् ठुकराई जा रही थीं और महापुरुष अपमानित हो रहे थे, फिर भी हमारा समाज निश्चल खड़ा था। उसकी धमनियों में स्पन्दन नहीं था। तब फिर कहाँ से उसके कण्ठ अतीत के पौरुषेय गीत गा सकते थे। उनके सामने एक ओर था निराशा का अपार नीहार और दूसरी ओर भगवान की करुणामयी शरण। हिन्दू जन-समुदाय का शरीर यवन अनुशासन में था और आत्मा थी भगवान की शरण में। फिर भी सामाजिक व्यवस्था जनता के ही हाथ में थी। सामाजिक नियमों के उल्लङ्घन पर हुक्का-पानी तथा महान अपराधों के लिए सम्बन्ध विच्छेद का दण्ड का विधान था। नियमन के ताने-बाने सभी भारतीय थे पर उन पर विदेशी संस्कृति का एक हल्का-सा रङ्ग था। देश ने इस दृष्टि से पराजय नहीं स्वीकार की थी। उसकी अपनी प्रथायें एवं परम्परायें अब भी चल रही थीं—बाल-विवाह, सती-प्रथा, जौहर एवं पर्दा परिपाटी आदि उसके विभिन्न स्वरूप थे।

धर्म की नींव भी डगमगा उठी थी। उसके करवट बदलते ही प्राचीन धर्म विलीन हो गया और बौद्ध-धर्म के भी पद-चिह्न लुप्तप्राय हो चले। देश के प्राच्य-अञ्चल में नाथ-पंथी योगियों की साधना के फन्दे में जनता की धर्म-भावना घुट रही थी। दूसरी ओर वज्रयानी सिद्धों की गुह्य एवं रहस्य-साधना जनता की आत्म-कल्याण तथा लोक-मङ्गल विधायक दृष्टि को अपने मंत्र-तंत्र के गोरख धन्धों में उलझाये हुए थी। अर्थ-शून्य वाह्याडंबर तीर्थाटन आदि की साँकलों में जकड़ा हुआ समाज-संस्कार नैसर्गिक धर्म के क्षेत्र तक आने में असमर्थ था।

ईश्वर की प्राप्ति भगवद्भक्ति पर चल कर नहीं होती थी, अपितु अलौकिक सिद्धियों के विधान में थी। इन सिद्धों तथा योगियों की वाणी का प्रभाव तत्कालीन अशिक्षित जनता पर तो जादू का काम करता था, पर शास्त्रज्ञ पण्डितों के बीच अब भी दार्शनिक खण्डन-मण्डन शास्त्रार्थ की सर्प-पद्धति पर ऊँघता रहा। उनके लिए इन उलटी वानियों का कोई मूल्य न था। वेदान्त का स्वर अब भी ऊँचा था किन्तु साथ ही ब्रह्म सूत्र, उपनिषद, गीता आदि पर भी भाष्य परम्परा रेंगती रही।

इन धार्मिक पद्धतियों के बीच कुछ भक्त कवि कभी-कभी अपनी दबी जबान से कुछ न कुछ कहते रहे। जिनके प्रभाव से सहृदय हिन्दू और मुसलमान बिहारी के 'अहि, मयूर, मृग-बाघ' की भाँति प्रेम स्वरूप ईश्वर की छाया में एकत्र हो जाते थे। ठीक ऐसे ही अवसर पर भक्त धर्म पौराणिक सम्बल लेकर दक्षिण से आया और महान् राजनीतिक झंझा से ध्वस्त जन जीवन की झुलसी जटी में रिमझिम बनकर बरस पड़ा। इस धर्म की ईश्वर और वेद में आस्था थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसने जनता में अपने इष्टदेव के प्रति एक सजग एवं जागरूक लालसा जगायी। परिणाम यह हुआ कि देश के रमते योगियों एवं सिद्धों की जादू-भरी खञ्जड़ी बन्द हो गई। इस काल की प्रभाती गाने चार आचार्य एक साथ चले। एक ने शास्त्रीय पद्धति पर सगुण ब्रह्म की लीला के पद गाए और दूसरे ने द्वैतवादी उपासना में कृष्ण प्रेम के सङ्गीत पिरोये। तीसरे ने कृष्ण के साथ राधा की प्रेममयी कल्पना का शुद्धाद्वैत का निरूपण किया। जिस पर आगे चल कर महा प्रभु वल्लभाचार्य ने भक्त पुङ्गव सूर की वीणा छेड़ी। चौथे आचार्य ने द्वैत वाद के सहजमार्ग पर राधा एवं कृष्ण के युगलमूर्ति की तान अलापी, जिसमें गीत गोविन्द के गायक ने अपनी राग मिलायी।

ईसा की १५ वीं शताब्दी में शास्त्रीय पद्धति के एक बटोही ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर जोर देकर एक महान सम्प्रदाय खड़ा किया जो रामानन्दी सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। दूसरी ओर शुद्धाद्वैतवादी परम्परा में वल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। जिन्होंने प्रेम मूर्ति कृष्ण की उपासना में बहुत से भक्तों को दीक्षित किया। इस प्रकार देश के उपासकों ने राम और कृष्ण का ब्रह्म के अवतार रूप में स्वागत किया।

धर्म के विशाल क्षेत्र में इस सगुणोपासना के साथ-साथ हिन्दू और मुसलमानों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग के निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। इस दिशा में वीर-गाथा-काल में ही सिद्धों और नाथ पन्थी योगियों ने कुछ विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े रोड़े एकत्र कर कुटाई प्रारम्भ करदी थी। और इस पथरीली पगडण्डी पर भिन्न भिन्न सम्प्रदाय के लोग चल भी रहे थे। इसका इस काल में कबीर ने जीर्णोद्धार किया और सबके लिए प्रशस्त बनाया। इस राजमार्ग के लिए बाहरी पूजा अर्चा की विधियाँ व्यर्थ हैं। इस पर चलने वाले सभी एक हैं, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान। जाति-पाँति का भेद एक व्यवधान मात्र है। क्योंकि सबका ईश्वर एक है, जो घटवासी होने के कारण, अन्तर्मुखी साधना का विषय है।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कवि नामदेव ने भी इसी मार्ग का अवलम्बन किया और उसे एक विशिष्ट रूप देने का प्रयास भी किया। इसी मार्ग पर आगे चलकर एक महा फक्कड़ी साधू की खञ्जड़ी बजी। और तभी से वह निर्गुण पंथ कहलाया। इस पंथ के जन्मदाता नाथ पंथी नामदेव ही थे, किन्तु इसके प्रवर्तन में विशेष हाथ कबीरदास ही का था। इसके विकास में उनका महान योग था। कबीरदास ने जहाँ रामानन्दजी से दीक्षा लेकर अद्वैतवाद की स्थूल बातें ग्रहण कीं, वहाँ नाथ योगियों से योग साधना के कुण्डलनी, षटचक्र, शून्य आदि उपकरण भी अपनाये। साथ ही सूफी फकीरों की प्रेम पद्धति को भी आत्मसात करने की कोशिश की। इसी तरह वैष्णव धर्म से अहिंसा का सिद्धान्त ग्रहण किया तो पैगम्बरों से कट्टर खुदावाद। इन विभिन्न प्रकार के वादों के ग्रहण के पीछे समन्वयवादी सुधार की भावना थी, कुछ आलोचकों का ऐसा मत है। फिर भी यह विवादग्रस्त है।

मध्ययुग में सगुण और निर्गुण भक्तिधारा के साथ-साथ सूफी प्रेम-पद्धति की एक और धारा बह निकली। इस धारा का उद्गम तो लौकिक प्रेम है किन्तु वह किसी 'भ्रान्त-भवन' में टिकती नहीं अपितु उस सीमा पर पहुँचती है जिसके आगे कोई राह नहीं है। यह प्रेम तत्व साधक को वहाँ पहुँचाता है जहाँ उसका प्रियतम ईश्वर बुलाता है और धर्म का चतुर्दिक पथ थक कर विलीन हो जाता है। इस पथ की सब से बड़ी साधना है—अलौकिक झाँकी पाकर आपत्तियों की कंकरीली डगर पर चलते ही जाना। इसमें प्रेम की पीर पलती है जिसका साधक अपने प्रिय की स्वानुभूति पाता है। सूफी काव्यों में रहस्यवाद की जो स्वाभाविक व्यञ्जना मिलती है उसकी मधुरिमा साधना में तल्लीन प्राणों के लिए सञ्जीवनी है। यह हुई मध्यकालीन धर्म के चतुर्भुजी रूप की झाँकी जिसमें राम और कृष्ण की सगुण भक्ति परम्परा एवं सन्तों तथा सूफियों की भक्ति पद्धति परिगणित होती है।

हमारी संस्कृति की साहित्यिक शाखा एक विलक्षण ढङ्ग से पनपती रही। पूर्ववर्ती सभी पद्धतियों पर प्रायः पूर्ण-विराम का चिन्ह लग गया। संस्कृत साहित्य मृतप्राय सा हो चला। अपभ्रंश शाखा का भी स्रोत सूख चला। वह केवल जैन धर्म की प्रेरणा से धार्मिक रूप में लटक कर सूखती सी रही। तीसरी धारा फारसी साहित्य की फूट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकली जिसमें सूफी काव्य एवं कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थों की उद्भावना हुई ।

इस काल में जो सबसे बड़ा स्रोत उमड़ा वह था जन भाषा का । अवधी, ब्रज आदि भाषाएँ इसकी विभिन्न स्रोत थीं जिनमें भक्ति की चारों परम्पराओं से सम्बन्धित साहित्य का सृजन हुआ । यह साहित्य जन जीवन के अधिक समीप था । इससे जीवन को निकट से परखकर भगवत् सम्बन्धी काव्य का प्रणयन हुआ । अवधी में तुलसीदास ने अपने अनन्त शील, शक्ति एवं सौन्दर्य समन्वित राम की महिमा को वाणी दी तो ब्रज में अनेक भक्त कवियों की वीणा पर लीलाधाम कृष्ण का कीर्तन हुआ जिसमें सब से मधुर स्वर उस अन्धे भक्त की वीणा का था । कबीर तथा अन्य सन्तों ने तो सभी भाषाओं में अपने राम को उलट-बासियाँ सुनायीं ।

तत्कालीन संस्कृति के विभिन्न अङ्ग —राजनीति, धर्म एवं साहित्य की पृष्ठ भूमि पर ही कबीर की करामात देखी जा सकती है क्योंकि कबीर इस पूरी संस्कृति के विषकम्भक हैं जिसका प्रदर्शन पूर्णनाटक के साथ ही होता है । कबीरदास की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने धूनी रमाई है और अपनी विभूति का जादू सर्वत्र फैलाया है । इसीलिए इस काल के कुशल एवं मर्मठ निर्माताओं में उनका विशेष स्थान है जिसको निर्धारित करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में उनके साथ गहराई तक पैठना होगा ।

धार्मिक क्षेत्र में तो हमें कबीर प्रत्येक कण-कण में रमते हुए मिलेंगे —चाहे वह ज्ञान हो अथवा कर्म या भक्ति । शुक्लजी ने उक्त त्रयी के सामञ्जस्य में ही धर्म की पूर्ण सजीव दशा परिकल्पित की है । तन्तुओं का ताना-बाना तैयार कर धर्म को अपने ढङ्ग से बुना है । पहिले उसने ज्ञान की दार्शनिक धुनाई कर ब्रह्म एवं जीव के रेशे बड़ी बारीकी से सुलझाये हैं । वेदान्ती एवं अन्य दार्शनिकों ने रस रूप एवं क्रिया से परे मान कर भी द्वैताद्वैत की संख्या में उलझा रखा था । वह द्वैत है या अद्वैत—इन दो गाठों के बीच वह गुथा हुआ था । कबीर ने दोनों को एक नया सुझाव दिया और ब्रह्म को संख्या से भी परे मान कर इस समस्या के लिए एक सुन्दर हल उपस्थित किया । इसी प्रकार मुसलमानों का एकेश्वरवाद भी अपने में काफी उलझा हुआ था । वह सृष्टि के समस्त जीवों तथा पदार्थों से भिन्न एक परम शक्तिशाली सत्ता था जिसके भय से प्रेरित होकर साधक ब्रह्मोन्मुख होता था । कबीर ने ब्रह्म को अखिल सृष्टि की एक नियामक सत्ता स्वीकार किया और इन दोनों विरोधी छोरों में एक सम्बन्ध की रेखा खींची ।

"खालिक, खलक, खलक महिं खालिक,
पूरि रह्यो सब ठाईं ।"

इस खालिक तक पहुँचने की मूल प्रेरक शक्ति प्रेम है, भय नहीं ! शङ्कराचार्य आत्मा परमात्मा के मिलन को ज्ञानाश्रित मानते हैं । इस मिलन में आत्मा परमात्मा में लय हो जाती है । लेकिन कबीर इसके लिए प्रेम लीला प्रस्तुत करते हैं जिसके द्वारा मिलकर साधक मिलनावस्था में भी अपनी सत्ता खोता नहीं और परमानन्द का अनुभव करता है । इस विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर विवादास्पद ब्रह्म को अलख, अगम, त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत, विलक्षण मानते हुए भी परम प्रेम का आश्रय ही मानते हैं । वह सभी प्रकार से अगम होते हुए भी प्रेम के लिए सुगम है । प्रेम पूर्ण हृदय से उसकी छवि उतारी जा सकती है किन्तु वह शब्दों में नहीं समा सकता । यह उनकी भक्ति का स्वरूप है जिसमें सभी मार्गों के लिए सन्तुलन है और जो ईश्वर तक पहुँचने का सरलतम एवं लघुतम मार्ग है । इसमें सूफी प्रेम, सन्त साधना, और नाम महिमा तीनों की सहज त्रिवेणी अबाधगति से प्रवाहित है जिसकी कल-कल ध्वनि से "ओऽहम" की प्रतिध्वनि गूँजती रहती है । इस ज्ञान की सूक्ष्मता एवं निराकारता को कर्म का बाना देने के लिए कबीर ने साधक और ब्रह्म के बीच स्त्री-पुरुष के रसमय सम्बन्ध की कल्पना की है । इससे स्पष्ट है जिस प्रकार स्त्री-पुरुष सहज भाव से प्रेम के गठबन्धन में तादात्म्य का अनुभव करते हैं उसी प्रकार जीव और ब्रह्म भी परिणय सूत्र में सहजतया बँधकर एकाकार हो जाते हैं ।

इसके अतिरिक्त कबीर ने अन्य भक्ति पद्धतियों के शाश्वत तत्वों को भी अपनी साधना में समेटने का प्रयास किया है । सूर तुलसी आदि सगुणोपासक भक्तों के प्रेम तथा कामनापरित्याग सिद्धान्त को भी इन्होंने अपनी भक्ति में स्थान दिया है । इनका भी दैन्य भाव तुलसी के टक्कर का है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबिरा कूता राम को, मोतिया मेरा नाव ।
तू तू करो तो घर रहों, दुर दुर कहों तो जावं ॥

साथ ही इनके प्रेम में सूर की दाम्पत्यरति का भी
ण है, जिसमें इनकी कसक और टीस है ।

कबीर ने अपने इस सहज समाधि के मार्ग में रोड़ा
टकाने वाले सभी वादों का खण्डन किया है । उस समय
न्दू धर्म पौराणिक वाह्याचारों से ओत-प्रोत था । मूर्ति पूजा,
र्थ-व्रत, जप-तप आदि कर्म काण्डों के विधानों की काई
न्दू धर्म में लग रही थी । कबीर ने इस काई को काटकर
र्म के स्वरूप को निर्मल एवं शाश्वत किया । यह काई
लाम धर्म से भी प्रेरणा पा रही थी । उन्होंने इसके कर्म-
ण्ड पर भी तीखे कटाक्ष किये । आँख मूँद कर माला
कने वाले भक्तों को वे ढोंगी समझते थे । जोर से
लाकर 'अल्ला-हो-अकबर' कहने वाले मुल्ला से पूछते थे
क्या खुदा बहरा हो गया है । उसकी तस्वीह रोजा-
माज पर इन्होंने गहरा व्यंग्य कसा है । साथ ही पुस्तकी
या की भी निन्दा की है । क्योंकि इसके मतमतान्तरों में
कर संसार भटकता रहता है ईश्वर को नहीं पाता है,
योंकि वह अनुभव-गम्य है । इस अनुभव के लिए उन्होंने
न की शिक्षा निर्धारित की है ।

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय ।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय ॥"

कबीर ने अपनी संस्कृति को इस रूप में धर्माञ्जलि
र्पित की है । सामाजिक क्षेत्र में भी उनके ये धार्मिक
चार विशेष क्रियाशील रहे । उनका धार्मिक सन्देश एक
माज सुधारक की भाँति जनता को एक नयी दिशा देता
हा । उन्होंने मानव की जातिगत, कुलगत, धर्मगत,
म्प्रदायगत आदि सभी विशेषताओं को तुच्छ तथा महत्व-
न बतलाया । वे उस ऊँचे धरातल पर खड़े थे जहाँ
नुष्य न मुसलमान है न हिन्दू ; वह केवल मनुष्यमात्र है ।
निःसन्देह उनके इस विश्वास में वह शक्ति है जो हिन्दू
सलमान ऐक्य ही नहीं वरन संसार के सभी प्राणियों को
क सूत्र में बाँध सकती है ।

क्योंकि विश्वधर्म जिसके लिये धर्म, जाति, देश,
ादि से ऊपर उठना पड़ता है—सभी को अपने में
समेटे हुये है । इस धर्म का विकास वे सामाजिक या सामू-
हिक रूपमें नहीं चाहते थे अपितु व्यक्तिगत विकास के रूपमें;
क्योंकि इकाई का विकास पूर्ण का विकास है और व्यक्ति
समाज की इकाई है, जो अपनी सीमित परिधि में शीघ्र
पूर्ण हो सकता है ।

उन्होंने धर्म की भाँति समाज के भी वाह्याङ्ग की
अवहेलना कर मूल तथ्यों पर बल दिया । फलतः बहुत
से स्थानों पर हिन्दू और मुसलमान काफी समीप आए ।
ईश्वर की भावना दोनों के लिए तात्विक रूप में एक-सी
हो गई । हिन्दू समाज के निम्न एवं उच्चवर्ग में भी किसी
हद तक साम्य उपस्थित किया । यहाँ भी गौण की उपेक्षा कर
आचार आदि मूल बातों पर बल दिया । उनका विचार था
कि समाज की कुरीतियों के विनाश से समाज सोने की
भाँति निखर आयेगा । और तब सभी प्रकार के सोने
आपस में स्वयं मिल जायेंगे । इसीलिए कबीर ने समाज
की शुद्धियों को परख कर धोने का प्रयास किया । जिससे
समाज का विशेष कल्याण हुआ । राजनीति के क्षेत्र में भी
इस समन्वयवादी जड़ी ने जनता और शासक-वर्ग के बीच
के अन्तराल पर विशेष काम किया और दोनों वर्ग एक-
दूसरे के काफी निकट आए ।

साहित्य की प्रयोगशाला में भी कबीर के प्रयोगों की
परम्परा चलती रही । भाव, भाषा, शैली आदि सभी पर
इनके नवीन प्रयोग हुए और अपने आविष्कारों की मौलि-
कता में पुरातन साहित्यिक प्रणालियों को कोसों पीछे
छोड़ दिया । किसी के भी पद-चिह्नों पर चलने की जरूरत
न समझी—चाहे वे स्वदेशी थे या विदेशी । यही कारण
है कि पौराणिक आधार पर प्रणीत महाकाव्य उनके लिए
नयी बोतल में पुरानी शराब की भाँति थे । इनका अपना
नया आविष्कार साखी और सबदी के रूप में था जिनमें
आत्मानुभूति और आत्मनिष्ठा की साफ झलक थी । इनकी
हृत्तंत्री जीवन पर्यन्त एक विशिष्ट धार्मिक प्रयोजन से
बजती रही न कि स्वान्तः सुखाय । इनके साहित्य में भक्ति,
दाम्पत्य-रति प्रधान होने के कारण अपने दोनों पक्षों से उतरी
है । कबीर के लिए समस्त विश्व में केवल एक पुरुष है
और वह है राम । भक्त इस राम की बहुरिया है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिसार भी करता है और वियोग में तड़पाता भी है। अतः उनके काव्य में संयोग-वियोग दोनों पक्ष बड़ी पवित्रता से उतर कर साकार हो उठे हैं। इन दोनों में विरह को प्रधानता मिली है जो हर जगह अपनी करुण झङ्कार गुँजाए है। यह विरह प्रेम को अपनी ज्वाला में तपाकर शुद्ध करता है। कबीर ने इन्हें मिलन और विरह का नाम दिया है। काव्य-शास्त्र की भाषा में यह मिलन पूर्वराग के अन्तर्गत आता है। भगवान के गुणों का श्रवण कर भक्त नवोढ़ा अभिसारिका के रूप में भगवान से अभिसार करने चलता है। इसके पहिले वह वियोग की दशाओं में झूलता रहता है। कबीर का यह शृङ्गार-चित्रण सूर के शृङ्गार वर्णन से मार्मिकता में एक इञ्च भी पीछे नहीं है अपितु अपनी पात्रता में आगे है, क्योंकि आत्मा-परमात्मा का प्रेम सीधी परम्परा पर चला है।

इस समय काव्य का एक और व्यापक दृष्टिकोण मिला—मानव अनुभूतियों का सफल चित्रण। यह कबीर के जीवन की प्रयोगशाला का महानतम आविष्कार था। सचमुच यह काव्य का आत्मगत एवं शाश्वत लक्षण है। इस रूप में उनकी अटपटी बानियाँ निश्चित ही साहित्य के लिए अद्भुत काण्ड थीं। इनके निर्गुण राम की अनुभूति साकार होकर नाच उठी है। अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में एक फकीराना ईमानदारी है। कबीर की कल्पना, भाषा, भाव, विचार सभी मस्ती में झूमते हैं और उनमें चिरन्तन स्पन्दन है। उनकी काव्य साधना का वाह्य अटपटा एवं कुरूप होते हुए भी अभ्यन्तर कोमल तथा मनोरम है। उसकी अभिव्यक्ति में सरल अभिव्यञ्जना है। यहाँ भोले एवं सरल शब्दों में जीवन की नश्वरता किस तरह व्यञ्जित है।

माली आवत देखि कै, कलियन करी पुकारि।
फूली फूली चिन लयी, कालि हमारी बारि॥

उनकी कुछ उलट बासियाँ खटकती हैं, लेकिन वस्तुतः वे महाकवि भारवि के काव्य की भाँति ऊपर ही से नारिकेल की कड़ाई लिये हुये हैं। भीतर सरसता का सागर मौजें मार रहा है। उनके प्राणों में गीतात्मकता समाई हुई है। पद-पद में एक विलक्षण सङ्गीत एवं वर्ण-वर्ण में अद्भुत तान एवं लय बज रही है। जो आत्मा पर सम्मोहन डालती है। कबीर अनुभूतियों के सफल चितेरे हैं। उनके पदों में मीरा अनुभूति का मिठास, आत्मविह्वलता, एवं गीतात्मकता तरङ्गि है। वेदना की आकुलता एवं मिलन की आकांक्षा उनके प्रा को बेसुध बनाए है। यह कबीर की साहित्य को अनोखी देन है। उनकी काव्य-साधना लक्षण एवं अभिव्ञ्जना के क्षेत्र में एक युग पीछे से चलकर एक युग आगे चली है। समस्त तत्कालीन काव्य जगत उनके साथ नहीं उठा सका है। उनकी काव्य ध्वनि काव्य की श्रेणी आती है। जिसे प्राचीन काव्य शास्त्रियों ने उत्तम काव्य कहा इस नाते कबीर का काव्य सर्वश्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी

कबीर की भाषा अनोखी है। रूप की दृष्टि से हम उसे सन्ध्या कहें या खिचड़ी, लेकिन उसकी अभिव्यञ्जना शक्ति एवं अभिव्यक्ति क्षमता अपूर्व है। वह केसरी के सम एक एक भाव, रूप और विचार को अपने में उतारने है। उसकी ग्राहकता उस सिन्धु निशाचरी की भाँति जिसने हनुमान को छायामात्र से खींच लिया था। कबीर बाणी पर पूर्ण अधिकार था। 'द्विवेदी' जी के शब्दों "जिस बात को जिस रूप में उन्होंने प्रकट करना चाह उसे उसी रूप में भाषा से कहलवाया है, बन पड़ा है सीधे सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सा लाचार सी नजर आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत नहीं कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमायश को कर सके। इनकी भाषा के व्यंग से क्या पण्डित क्या मौ सभी तिलमिला उठे हैं।" इतना कहने के बाद निःसं यह कहा जा सकता है कि कबीर का भाषा पर अन्य कवि की अपेक्षा असाधारण अधिकार था। उन्होंने भाषा सीमित कटघरे को अन्तरिक्ष का विस्तार दिया और श के विभिन्न प्रकार के प्रयोग से सचमुच भाषा को अक्षर सनातन रूप दिया।

कबीर की सर्वतोमुखी प्रतिभा मध्यकालीन संस्कृति सभी क्षेत्रों में वनमाला की भाँति छाई हुई थी और जब बरस पड़ी वहीं किसी न किसी प्रकार का नूतन अङ्कु पड़ा। चाहे वह धार्मिक समन्वय पादप हो, चाहे साहित्ि साधना की हरी बेल जिसने जीवन में पनपकर फैलना सीखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्राराक्षस का नायक 'राक्षस'

प्रो० कैलाशचन्द्र सिंहज, एम० ए०

विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' का नायक साधारणतया विद्वानों द्वारा 'चन्द्रगुप्त' अथवा 'चाणक्य' ही बताया जाता है। परन्तु 'मुद्राराक्षस' नाटक का नाम तथा सारे नाटक का कथानक पाठक को यह निष्कर्ष स्वीकार करने में कुछ बाधा डालता है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'उत्तर रामचरितम्' अथवा 'नागानन्द' आदि प्रसिद्ध संस्कृत नाटकों का नाम नायक अथवा नायिका के नाम से सम्बन्धित है तो 'मुद्राराक्षस' नाटक के नाम का क्या नायक से कोई सम्बन्ध नहीं ? ऐसा प्रतीत होता है कि 'मुद्राराक्षस' के लेखक ने वास्तव में चन्द्रगुप्त' अथवा 'चाणक्य' को 'मुद्राराक्षस' का नायक न बनाकर 'राक्षस' को ही अपने नाटक का नायक बनाया है। इसी बात को ध्यान में रखकर कदाचित् जयशङ्करप्रसाद और द्विजेन्द्रलालराय को अपने नाटकों का नाम 'चन्द्रगुप्त' रखना पड़ा। वास्तव में उनके नाटकों में तो चन्द्रगुप्त वास्तविक नायक के पद पर आरूढ़ हो भी जाता है, परन्तु 'मुद्राराक्षस' में 'चन्द्रगुप्त' अथवा 'चाणक्य' को नाटक का नायक मानना कुछ भ्रान्ति-पूर्ण सा सिद्ध होता है।

'साहित्य-दर्पण' में विश्वनाथ ने धीरोदात्त नायक के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है :—

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः
स्थैर्यविगूढ़मानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः।

अब प्रश्न यह है कि क्या 'चन्द्रगुप्त' अथवा 'चाणक्य' में नायक के ये गुण विद्यमान हैं ? 'चन्द्रगुप्त' के चरित्र का विश्लेषण करने से तो स्पष्ट ही है कि उसमें क्षमा का नाम तक न था। 'कौमुदी महोत्सव' के न मनाये जाने पर उसने अपने गुरु 'चाणक्य' तक को भी क्षमा न किया। 'चाणक्य' में तो यह गुण था ही नहीं। क्षमा करना तो वह जानता ही न था। मलयकेतु और पाँचों राजाओं तथा राक्षस के सभी पक्षपातियों दारुवर्मा आदि का वध उसने कराया। यहाँ तक कि पर्व्वतेश्वर को भी उसने क्षमा नहीं किया। हाँ 'चन्दनदास' को अवश्य उसे क्षमा करना पड़ा। वह भी अपनी नीति के कारण विवश होकर। वास्तव में तो वह भी फाँसी के तख्ते पर लटक ही रहा था।

'अविकत्थनः' का सीधा अर्थ है अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाला। परन्तु 'चाणक्य' के सारे चरित्र को देखने से पता चलता है कि वह स्थान-स्थान पर अपनी प्रशंसा करता है। 'भारतेन्दु कृत' अनुवाद में चाणक्य कहता है—

"(नेपथ्य में) मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से बस सकता है।" इसी प्रकार आगे चल कर अपनी शिखा के विषय में कहता है—

"काल-सर्पिणी नन्दकुल क्रोध धूम-सी जौन
अबहूँ बाँधन देत नहिं अहो शिखा मम कौन ?
दहन नन्दकुल-बन, सहज अति प्रज्वलित प्रताप
को मम क्रोधानल-पतङ्ग भयो चहत अब पाप ?"

इस प्रकार की प्रशंसा स्थान स्थान पर भरी पड़ी है—

नव नन्दन कौ मूल सहित खोयो छन भर में।
चन्द्रगुप्त में श्री राखी नलिनी जिमि सर में॥

वह अपनी शक्ति और प्रभाव से इतना उन्मत्त है कि चन्द्रगुप्त तक को भी कह देता है—"सुनो अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं—एक राजा के भरोसे, दूसरा मन्त्री के भरोसे, तीसरा राजा और मन्त्री दोनों के भरोसे। सो तुम्हारा राज्य तो केवल सचिव के भरोसे है, फिर इन बातों के पूछने से क्या ? व्यर्थ मुँह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जानें।" इत्यादि।

इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि चाणक्य में 'अविकत्थनः' गुण वर्तमान न था तो फिर क्या उसको इसके विपरीत 'धीरोद्धत' नायक माना जाय जिसका लक्षण विश्वनाथ ने यों किया है:—

"मायावरः प्रचण्डश्चलोऽहङ्कार दर्प भूमिष्ठः
आत्मश्लाघा निरतौ धीरैर्धीरोद्धतः कथितः।"

वास्तव में इतिहास द्वारा बनाई गई पूर्व धारणाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण हम आर्य चाणक्य के विषय में ऐसा सुनने के लिए अभ्यस्त नहीं हैं, परन्तु 'मुद्राराक्षस' का गहन अध्ययन इसी बात को प्रकट करता है कि चाणक्य 'मायावी', 'प्रचण्ड', 'अहङ्कारयुक्त' और 'आत्मश्लाघा निरत' था। चाणक्य के लिए विशाखदत्त ने भी प्रशंसासूचक शब्दों का प्रयोग न करके सूत्रधारों द्वारा भी 'कुटिलमतिः' ही कहलवाया है। तो क्या मुद्राराक्षस का नायक 'धीरोदात्त' न होकर 'धीरोद्धत' था? यह प्रश्न विचारणीय है। वास्तव में यदि 'चन्द्रगुप्त', 'चाणक्य' और 'राक्षस' तीनों के गुणों का विश्लेषण किया जाय तो हम कह सकते हैं कि 'मुद्राराक्षस' के नायक को धीरोद्धत मानने की आवश्यकता नहीं, वह 'धीरोदात्त' ही है। 'विश्वनाथ' ने 'धीरोदात्त' नायक की परिभाषा देते हुए 'अति गम्भीर' और 'महासत्त्व' विशेषणों का भी प्रयोग किया है। राक्षस के चरित्र पर इन विशेषणों का प्रयोग सर्वथा उपयुक्त बैठता है। विशाखदत्त ने चाणक्य के मुख से ही 'राक्षस' की प्रशंसा इन शब्दों में कराई है "(आकाश में देखकर) वाह! राक्षस मन्त्री वाह! क्यों न हो। वाह मन्त्रियों में बृहस्पति के समान वाह! तू धन्य है!"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अनूदित)

वैसे भी राक्षस का सारा चरित्र गम्भीरता और महानता का द्योतक है। वह नन्द का भक्त है और अन्त तक भी उसका साथ नहीं छोड़ता। चाणक्य की नीति द्वारा धोखे में डाला हुआ मलयकेतु राक्षस की स्वामिभक्ति पर सन्देह करने लगता है परन्तु वह उसे कुछ न कह कर अपने भाग्य अथवा 'दैव' को ही दोषी ठहराता है। अतः हम 'राक्षस' को मुद्राराक्षस का नायक मान सकते हैं।

नायक के गुणों का वर्णन करते हुए भी 'विश्वनाथ' ने लिखा है—

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्री को रूप यौवनोत्साही;
दक्षोऽनुरक्त लोकस्तेजो वैदग्ध्य शीलवान्नतो।"

राक्षस के त्यागी, वीर, कुलीन, उत्साही तथा दक्ष और शीलवान होने में किसको सन्देह है। जिस राजा का राज्य चाणक्य ने छीन कर लिया उसी नन्द के लिये वह अन्त तक लड़ा। अपना सर्वस्व विपत्ति में डाला, यहाँ तक कि परिवार को भी सङ्कट में डालने से नहीं हिचकिचाया। जङ्गल में जाकर निवास ग्रहण किया। इत्यादि।

उसकी नीति का सिक्का चाणक्य पर भी है। विषकन्या भेजना, चन्द्रगुप्त और चाणक्य में कौमुदी महोत्सव पर फूट डलवाना तथा विजयी चन्द्रगुप्त को जलूस के समय गुप्तचरों द्वारा मरवाने की चेष्टा करना आदि कार्य उसकी दूरदर्शिता के द्योतक हैं। यह ठीक है कि उसकी नीति चाणक्य जैसे तीक्ष्ण बुद्धि ब्राह्मण के सन्मुख सफल न हो सकी। परन्तु इसका अधिक श्रेय राक्षस की 'मुद्रा' के विनष्ट हो जाने में है जिससे प्रभावित होकर ही विशाखदत्त ने नाटक का नामकरण 'मुद्राराक्षस' किया न कि चाणक्य की नीति-निपुणता में। वैसे भी चाणक्य यदि राक्षस के विश्वास-पात्रों को भी अपनी ओर मिलाने में समर्थ हुआ तो अपनी प्रचण्डता के आतङ्क द्वारा अथवा राज्य-श्री के लोभ द्वारा। जैसा कि भागुरायण ने एक स्थान पर कहा है 'कठिन नीति चाणक्य की भेद न जान्यौ जाय।' वैसे भी चन्दनदास और शकटदास जैसे स्वामि-भक्तों को अपनी ओर मिलाने में चाणक्य की नीति असफल रही।

वीरता के लिये 'मुद्राराक्षस' का 'राक्षस' प्रसिद्ध है। कुसुमपुर का चन्द्रगुप्त द्वारा अवरोध सुनकर 'राक्षस' कहता है अपनी तलवार खींचकर 'मेरे जीते जी कौन कुसुमपुर घेर सकता है।'

"कहौ जो बनै मृत्यु को जीत धावै,
चलैं संग में छाँड़ि कै कीर्ति पावै।'

यदि मलयकेतु चाणक्य की नीति का शिकार न होता तो कदाचित् राक्षस द्वारा आयोजित कुसुमपुर का अन्तिम आक्रमण चाणक्य की सब योजनाओं को मिट्टी में मिला देता।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि यदि 'चाणक्य' के स्थान पर 'राक्षस' को नाटक का नायक माना जाय तो 'चन्द्रगुप्त' को क्यों नहीं? वास्तव में 'चन्द्रगुप्त' को नाटक का नायक मानने में सबसे बड़ा दोष यह आता है कि 'विशाखदत्त' ने उसे कुलीन नहीं माना। इसीलिए चाणक्य उसे सदा 'महाराज' अथवा कोई आदर सूचक शब्द द्वारा सम्बोधित न करके 'वृषल' ही कहता है। चाणक्य ने तो 'राक्षस' को देखकर एक स्थान पर यहाँ तक कह दिया है....."जब तक नन्दवंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक वह (राक्षस)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी शूद्र का मन्त्री बनना स्वीकार न करेगा।"

—(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अनूदित)

फिर 'मुद्रा राक्षस' का 'चन्द्रगुप्त' तो चाणक्य के हाथ की एक कठ-पुतली मात्र है। उसमें नायकों का एक भी गुण विद्यमान नहीं। वह न तो राक्षस की चालों को समझ सकता है। जैसा कि कौमुदी महोत्सव पर उसने दर्शाया, और नहीं उनका प्रतिकार करने में समर्थ है। वह तो केवल यह कहना जानता है :—

'तासों सदा गुरुवाक्य वश हम नित्य पर-आधीन हैं।' इससे अधिक नपुंसकता और क्या हो सकती है। इसीलिए 'राक्षस' उसके विषय में यह धारणा रखता है।

"चन्द्रगुप्त एक तो दुराशय है। दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब कार्य करता है, इससे वह कुछ व्यवहार जानता ही नहीं।"

(चतुर्थ अङ्क—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अनूदित)

वैसे भी 'चन्द्रगुप्त' ने 'मुद्राराक्षस' में कोई विशेष कार्य नहीं किया। प्रधान कार्य करने वाले को ही आधुनिक समीक्षा शास्त्र के अनुसार किसी नाटक का नायक माना जाता है, परन्तु 'मुद्राराक्षस' में तो 'चन्द्रगुप्त' नहीं के बराबर है। सारा नाटक राक्षस और चाणक्य की कूटनीतियों का खिलवाड़ मात्र है।

अब यह प्रश्न रह जाता है कि फिर विद्वान् 'चन्द्रगुप्त' अथवा 'चाणक्य' को ही 'मुद्रा राक्षस' का नायक क्यों मानते रहे। इसका स्पष्ट कारण है इतिहास की पृष्ठ भूमि के कारण 'चन्द्रगुप्त' और चाणक्य के विषय में हमारी पूर्व धारणा। वास्तव में इस पूर्व-निर्मित गौरव की भावना ने ही 'राक्षस' को नाटक का प्रतिनायक बना दिया है! वास्तव में बात ऐसी नहीं है। यदि हम कथानक को इस रूप में पढ़ें कि नन्द का राज्य चन्द्रगुप्त ने हड़प कर लिया है, राक्षस नन्द के उत्तराधिकारी सर्वार्थ सिद्धि को राज्य सिंहासन पर बिठाना चाहता है, परन्तु उसके आत्महत्या कर लेने पर वह हताश हो जाता है। इसीलिए राज्य को 'चन्द्रगुप्त' के पञ्जों से छुड़ाने के लिए कई चालें चलता है। जिनकी प्रतिक्रिया चाणक्य द्वारा की जाती है और वह राक्षस को विफल बना देता है। इस प्रकार 'चाणक्य' का कार्य 'प्रतिक्रिया' के रूप में आता है न कि क्रिया Positive active के रूप में। इस रूप में भी कथानक का नायक राक्षस ही सिद्ध होता है।

पं० जगन्नाथ शर्मा ने नायक के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि नायक वह है जो नाटक के अन्त तक रहता है और फल का उपभोक्ता होता है। इस दृष्टि से भी राक्षस ही फल का उपभोक्ता है न कि चाणक्य, क्योंकि वह नाटक के अन्त में राज्य की बागडोर राक्षस के हाथ में संभालकर चला जाता है।

जहाँ तक नाटक के उद्देश्य का सम्बन्ध है। उससे भी यही सिद्ध होता है कि मन्त्री चाणक्य का उद्देश्य 'चन्द्रगुप्त' को राज्य पर बिठाना नहीं था बल्कि राक्षस को उसका मन्त्रि-पद स्वीकार कराना, जिसमें वह सफल हुआ। इस दृष्टि से 'राक्षस' के नायकत्व में अवश्य दोष आता है कि उसके उद्देश्य की सफलता नहीं हुई। उद्देश्य की सफलता हुई चाणक्य की। तो क्या चाणक्य ही नाटक का नायक हो जायगा? नहीं वास्तव में 'राक्षस की पराजय' भी उसकी नैतिक विजय और चाणक्य की पराजय है।

इन्हीं सब बातों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'राक्षस' भी 'मुद्राराक्षस' का नायक बनने का उतना ही अथवा अधिक अधिकारी है जितना कि चन्द्रगुप्त अथवा चाणक्य।

साहित्य सन्देश के सहायक ग्राहक बन कर 'सन्देश' को सहयोग दीजिए और अपनी बचत कीजिए।

—सञ्चालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य में नारी का रूप

श्री शोभालाल डाभी

हिन्दी काव्य में नारी का स्थान सर्वोच्च है। नारी विश्व की अनबूझ पहेली है और यही कारण है। नारी के मौन स्वर, करुणाकातर, मर्मर तथा दुःखद आहें दुनिया के कर्णरन्ध्रों को पार न कर सकी।

नारी इन दो अक्षरों के शब्द में कितनी करुणा कितना स्नेह कितना वात्सल्य भरा हुआ है इस छली संसार में उसका स्नेह बिखरा हुआ है। उसकी भावनाएँ उसके हृदय के स्नेह से तरल हैं, उसका संसार त्याग का संसार है। उसकी अनुभूतियाँ उसके एकान्त मधुमय मानस में करुणा के द्वारा अनुप्राणित हुआ करती है। नारी जाति की प्रत्येक साँस में मर्यादा की शृङ्खला है जिससे परिचित, अपरिचित, अपने पराये सभी सम्मानित हैं। नारी के दो रूप प्रमुख हैं—(१) जाया, (२) जननी। दोनों ही रूपों में वह त्याग की प्रतीक है, ममता की मूर्ति है। नारी का माता-रूप ही उसके गौरव का चरम विकास है। इसी रूप में वह जगत की शक्ति का केन्द्र है, इसी रूप में वह उद्भव-कारिणी है। इसी में वह सनातन शक्ति है।

नारी प्रेम की देवी है। सेवा की मूर्ति है। पारिजात वृक्ष की भाँति वह जीवन के सम्पूर्ण कुसुम एक-एक करके अपने आराध्यदेव को चढ़ा देती है, देना और देना यही उसकी प्रकृति है। इसी में ही उसके जीवन की सार्थकता है, इसी में उसकी परणति है। सत्येन्द्रजी के शब्दों में "नारी वात्सल्य, त्याग और करुणा की तो त्रिपथगा है।"

आदिकाव्य में नारी का चित्रण वाल्मीकि ने अत्यधिक सुन्दर ढङ्ग से किया है। राम के साथ सीता बनवास को जाती है और अनेक कष्टों का सामना करती है।

इसके अतिरिक्त वाल्मीकिजी ने सीता के साहस और धैर्य का चित्रण कितना मार्मिक किया है। गर्भिणी सीता को धोखा देकर उनका वन में त्याग करना ऐसी हृदय विदारक घटना है जिसकी राम के बनवास से तुलना ही नहीं की जा सकती। सीता के त्याग में जिस क्रूरता का आभास कवि ने दिया है वह है गोमती के किनारे दुःख से बेहोश हो कर सीता का गिर पड़ना। सीता एक वीर नारी है। राम के बनवास के समय उसने बड़े दर्प में कहा था—

"अग्रतस्ते गमिष्यामि मृदन्ती कुश कंटकान्"। वह कुश काँटों को रौंदती हुई राम के आगे चलने का साहस रखती है। उनमें नारी दुर्बलताएँ, क्रोध, और सन्देह भी हैं। इसीलिए उन्होंने लक्ष्मण से कटु वचन भी कहे थे। इससे उसकी मानवीयता ही प्रकट होती है राम की कातर पुकार सुन कर भय और चिन्ता के एक असाधारण क्षण में वह ऐसी बात कह उठती है।

"दुर्दृष्टस्त्वं वने राम मेकं मोकोऽनुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्न प्रयुक्तो भरते नवा॥"

इसके साथ वह अपना निश्चय भी प्रकट कर देती है वे भस्म हो जायँगी, लेकिन लक्ष्मण के साथ न जायँगी। अपनी इस दुर्बलता से सीता पाठक की सहानुभूति नहीं खो देती, उनकी कटुक्ति नियति का व्यङ्ग बनकर उन्हीं की व्यथा को तिक्त बना देती है। जब लक्ष्मण के बदले रावण ही आ कर उनका हरण करता है।

त्याग और स्नेह और करुणा यह तो नारी हृदय की शाश्वत भावनाएँ हैं। नारी ममता मयी, कल्याणमयी, मङ्गलमयी एवं प्रकाशमयी है। आदि नारी के मानस सागर के तट से भी इन्हीं तीन भावनाओं की लोल लहरें टक-राया करती थीं और आज भी उन तरङ्गों के उत्थान में कोई अवरोध उपस्थित नहीं हो सका है।

नारी अतुल है। और यही है नारी का वास्तविक स्वरूप-लज्जा, सङ्कोच, स्नेह, श्रम, विभ्रम आग और पानी।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक काल तक नारी का प्रमुख स्थान रहा है। वैदिक युग में नारी का स्थान समाज में सर्वोच्च था। वह अपने अधिकारों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण सम्मानित थी। किसी प्रकार के हीनता के विचार नारी के प्रति नहीं थे।

काव्य में आदि काल में नारी-हृदय का सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण हुआ है। समराङ्गण में युद्ध के प्रयाण करते हुये वीरों को उनकी स्त्रियाँ सहर्ष ओज देती थीं। माताएँ, बहिनें एवं पत्नियाँ अपने पुत्रों और भाइयों और पतियों को सदैव युद्ध में विजय होने में शुभ कामना रखती थीं। वीर गाथा काल में स्त्रियाँ अपने पति को युद्ध में जाते समय इस प्रकार उपदेश दिया करती थीं :—

बाह्या फिर मत मोकळ्यों, पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यों खेत में, पर मत आज्यो हार॥

कितनी ओजस्विनी वाणी है, कितना वीरता पूर्ण उपदेश है। यह उपदेश नारी हृदय के ही अनुकूल है, नारी के आदर्श को प्रतिष्ठित करने वाला है।

उस समय की नारियाँ अपने पति को युद्ध में जिस प्रकार सहर्ष भेज देती थीं उसी प्रकार उनका मारा जाना सुनकर विलाप करने नहीं बैठ जाती हैं किन्तु कहती हैं:—

"भला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कन्तु।
लज्जेन्तुवयंसिहं जइ भग्गा घर एन्तु॥ हेमचन्द्र

इस काल में कवियों ने नारी हृदय की भावनाओं को अच्छी तरह से व्यक्त किया है। उसकी भावनाएँ अनवश विकृत नहीं हो सकती हैं।

इस युग के साहित्यकार के लिए नारी मानव के कर्तव्य की प्रेरणा है, वह युद्ध व्यवसायी मानवता की दुर्बलता है स्वयं उसे जानती है, और उसे दुर्बलता की आड़ ला कर वह प्रेम कातर यौवनाद्धत योद्धा को सचेत कर उसे शौर्य प्रदान कर धर्म पालन में प्रवृत्त करती हैं। वह वीरों के लिए उत्साह है, उसे विमूढ़ करने वाली नहीं है, उसे अपने कर्तव्य पर आरूढ़ कराने वाली है। वह पथभ्रष्ट करने वाली नहीं। इसी रूप में पुरुष ने उसे ग्रहण किया है।

वीर गाथा काल का स्थान भक्ति काल ग्रहण करता है। युग बदला और उसके साथ-साथ विचार भी। जीवन की व्याख्या और मूल्य भूल करके वीर गाथा काल का पुरुषत्व पारस्परिक युद्धों में क्षुद्र युद्धों की विजय में सामन्तशाही विलास में शमित हो चला। विदेशियों का आगमन हुआ विदेशी आक्रमणकारियों से पराजित हो कर वीरता की भावना निराशा में परिणत हो गई है। और निस्सहाय-अवस्था में कोई उपाय न देखकर ईश्वर की भक्ति का आश्रय ग्रहण किया। पुरुषार्थ और जीवन में पराजित का भाव मानस रख नहीं पा सकता। वह जीवन में हारकर दूसरे पर निर्भर होने लगता है। यही हुआ भी। निर्गुण और सगुण शाखाओं की उत्पत्ति हुई। निर्गुणाश्रयी शाखा में साहित्यकार सन्त आदि थे जो वीतराग हो गये थे, संसार को त्याग चुके थे। इन सन्तों की भावना संसार के कौटुम्बिक सुखों से नितान्त परे थी और यही कारण था कि नारी के विषय में उनकी धारणाएँ सर्वथा भ्रान्त थी। जो नारी पुरुष को चेतन करती थी, पुरुष को बल और प्रेरणा देती थी वही उन्हें भयभीत करने लगी। उदाहरणार्थ कबीर के विचार नारी सम्पर्क के विषय में इस प्रकार है :—

नारी तो हम भी करी, जाना नहीं विचार।
जब जाना तब परिहरी, नारी बड़ी विकार॥
नारी पराई आपनी, भोगे नरके जाय।
आग आग सब एक है, हाथ दिये जल जाय॥

अर्थात् महात्मा कबीर ने नारी को आग कहा है जिसके साथ सम्पर्क होने से मनुष्य का हाथ जल जाता है। अर्थात् उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। आगे चल कर और भी जोरदार शब्दों में कहा है:—

नारी की झाँई परत, अन्धा होत भुजङ्ग।
कबीर कहो तिनका क्या हाल, जो नित नारी संग॥

और— "नारी नागिन एक सुभाऊ।"

इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता है। उनका काम ही यही था कि दुनियाँ के प्रपञ्चों से दूर रहें। संसार से विरक्त व्यक्ति नारी की उपेक्षा तो करेगा ही।

सगुणोपासकों में तुलसी ने तो नारी चरित्र के आदर्श ही खड़े कर दिये हैं। सीता, कौशल्या, उर्मिला, आदि सभी आदर्श नारियाँ हैं। कैकेयी भी वास्तविक नारी है। वह आदर्शवाद पर खरी नहीं उतरी है किन्तु वह मानवी है देवी या दानव न होकर मानवी है और जिसमें नारी हृदय की दुर्बलताएँ भी विद्यमान है और समयानुसार वह अपनी दुर्बलताओं पर विजय भी प्राप्त करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे सम्मुख तुलसी जो इतने महान कवि के रूप में उपस्थित हैं वह केवल एक नारी ही के कारण—केवल एक दोहा उपदेश के रूप में कहकर''' वह इस प्रकार है:—

अस्थि चर्म मय देह मम तामें ऐसी प्रीति।
वैसी तो श्रीराम महँ होति न तो भवभीति॥

अनेक व्यक्ति रामचरित मानस की यह पंक्ति उद्धृत करके—'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, यह सब ताड़न के अधिकारी।' तुलसी की नारी के प्रति हीन भावना को स्पष्ट करना चाहते हैं। वह कदाचित यह भूल जाते हैं कि यह पंक्ति समुद्र के द्वारा जो कि कथावस्तु का मुख्य पात्र नहीं है। वहाँ पर कही गई है जहाँ पर वह राम के समक्ष अपनी तुच्छता प्रकट करता है। तुलसी की नारी भावना तो सीता और कौशल्या के रूप में साकार हो उठती है फिर तुच्छ समुद्र की तुच्छता पर क्यों ध्यान दिया जाय। यही बात यदि राम अथवा और कोई प्रमुख पात्र कहता तो अवश्य इसे कुछ महत्त्व दिया जा सकता था।

डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में—वर्णाश्रम धर्म और राजसत्तावाद के साथ नारी की पराधीनता जुड़ी हुई है। विरक्त होने के नाते उसे 'सहज अपावन' समझते हैं—पति भक्ति को पराधीनता का रूप समझ कर वे उस पर आँसू ही बहाते हैं। जिस तुलसी ने 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी' लिखा था, उसीने यह भी लिखा—

कतविधि सृजी नारि जग माही।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥

किसी भी चौपाई में उनका हृदय द्रवित नहीं हुआ जैसा यहाँ। यह पराधीनता सामन्तवाद के साथ ही समाप्त हो सकती थी। तुलसीदास की सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों के लिए पति सेवा छोड़ कर और गति नहीं है परन्तु वे इसे पराधीनता समझते थे। यही क्या कम है। पति सेवा का उपदेश देते हुये ही मैना ने पार्वती से कहा था।

सूर की नारी भावना भी गोपियों के रूप में पर्याप्त स्पष्ट हुई है। यही नहीं उन्होंने वात्सल्य वर्णन करके मातृ-प्रेम का सुन्दर प्रदर्शन किया है। सूर ने केवल वात्सल्य एवं शृङ्गार को अपनाया है। दोनों में ही नारी का भाग महत्त्वपूर्ण है। वात्सल्य रस में यशोदा मातृ-हृदय का वात्सल्य लेकर उपस्थित होती है और शृङ्गार में गोपिकायें अपने प्रणय को ले कर आती हैं।

जननी के रूप में नारी अपने पुत्र को पालने में झुलाती हुई हमारे सम्मुख आती है :—

"जसोदा हरि पालने झुलावै।
मेरे लाल को आऊ निंदरिया-
काहे न आनि सुआवै॥"

या बच्चे को फुसला कर बच्चे (कृष्ण) को दूध पिलाती है—'कजरी को थ्य पियहु लला तेरी चोटी बाढ़ै।'

इसी प्रकार उपर्युक्त पदों में मातृ हृदय का प्रेम स्पष्ट रूप से झलकता है। इसमें कितनी स्वाभाविकता है। गोपियों की भावनाओं का स्पष्टीकरण भी उचित ही हुआ। संयोग, शृङ्गार में उनका मुरली के प्रति यह उपालम्भ कितना हृदय ग्राही है:—

"मुरली तऊ गोपालहि भावति,
सुनरी सखी जदपि नन्द नन्दहि-
नाना भाँति नचावति।"

और इसी तरह वियोग में "निशिदिन अपने नयन बरसाना" तथा उपदेश देने के निमित आए उद्धव के प्रति कभी विनय करना, कभी उपहास करना, कभी उसको दुःख गाथा सुनाना और कभी झुँझला कर कहना :—

"आयो घोष बड़ो व्यापारी,
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की-
ब्रज में आय उतारी।"

इस तरह सूर का प्रणयोन्मत्त नारी हृदय का यथार्थ चित्रण है। इसमें कृत्रिमता नहीं है। नारी हृदय के चित्रण में सूर पूर्ण रूपेण सफल हुये हैं।

भक्ति काल के लिए नारी चित्रण में हमें स्पष्ट ही एक विकास दिखाई पड़ता है। पहिले विराग है जो सन्त कवियों की वाणी में प्रकट है। नारी से भयातुर उसे दूर रखने और दूर हटाने की भावना इस साहित्य में व्याप्त है। दूसरी अवस्था में नारी पुरुष की ओर प्रभावित हुई है। नारी में भक्त की आत्मा अवतरित हुई है, पर उसमें जो प्रेरणा थी वीर गाथा काल में वह पुरुष में प्रवेश कर गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीरा में भी विरह की भावना तीव्रतम है—

'मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणे कोय ।'

जायसी ने भी अपने ग्रन्थ में नागमती की प्रणय की भावना को हमारे समक्ष रखा है । उसमें नागमती को रक्त के आँसुओं से रुलाया है और दुःख पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य सारी सृष्टि में व्याप्त बतलाया है ।

इसी तरह नन्ददास की गोपियों में भी प्रणय की भावना है और वे अधिकतर हमारे सम्मुख कारुणिक दृश्य उत्पन्न करती है ।

रीति काल में काव्य-क्षेत्र में नारी का प्रवेश आवश्यकता से अधिक हुआ है । नारी के नख-शिख वर्णन से रीति-कालीन काव्य भरा पड़ा है । सेनापति, देव, बिहारी आदि कवियों के अधिकांश कवित्त केवल नायिका की प्रशंसा में ही रचे गये हैं । किसी में नायिका की फुलवारी है । किसी में मोहर है । किसी में नवग्रहों की माल है । और किसी में शमादान ही बन गई है ।

सोहति बहुत भाँति चीर सों लपेटी सदा ।
जाकी मध्य दशा सो तो मैन को निधान है ॥

बिहारी ने भी नायिका के सौन्दर्य का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है—

पाँय महावरि देन को नायन बैठी आय ।
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मीजत जाय ॥

केशव प्रणीत नख-शिख काव्य तो नारी को लेकर ही रचित है । किन्तु उसमें भी उसकी भावनाओं का यथातथ्य चित्रण करने के स्थान पर सौन्दर्य का वर्णन है ।

रीति काल से राजदरबार में नारी को क्या समझा जाता था, इसे बताने की आवश्यकता नहीं है । लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपनी थीसिस आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी की उस विलासी मनोवृत्ति को जिसके अनुसार नारी एक क्रीत दासी से बढ़ कर कुछ नहीं है, एक मनोवैज्ञानिक तथ्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ।

आधुनिक काल में जब काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति हुई तो कवियों के नारी के प्रति रीतिकालीन दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था । एक कवि की विचारधारा में इतना परिवर्तन हुआ कि वह कह उठा—

"मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को ।
थामले हृदय अब इस अज्ञान को ॥"

इसी तरह अन्य कवि भी नारी के प्रति नवीन दृष्टि-कोण को लेकर उपस्थित हुए । प्रसादजी ने कामायनी में नारी के महत्व की ओर संकेत किया है । श्रद्धा आदि देव नारी है । वह शाश्वत नारी हृदय की भावनाओं की प्रतीक है । आरम्भ में ही जब मनु से मिलती है तो अपने को समर्पित कर देती है—

"समर्पण लो सेवा का भार ।
सजल संसृति का यह पतवार ॥
आज से यह जीवन उत्सर्ग ।
इसी पद तल में विगत विकार ॥"

प्रसादजी की नारी के पात्र में त्याग और आग्रह, काम-विसर्जन और अधिकार, भोग और निग्रह दोनों बातें हैं :

चञ्चल किशोर सुखरता की,
मैं करती रहती रखवाली ।
मैं बन हलकी सी मसलन हूँ,
जो बनती कानों की लाली ॥

श्रद्धा के समर्पण में सम्पूर्ण स्त्री जाति का समर्पण है । नारी का जीवन त्यागमय है । वह अपने त्याग का प्रति-दान नहीं चाहती है । उसके हृदय का स्नेह बिखेरने के लिए ही बना है । पत्नी रूप में नारी का त्याग ही अधिक महत्वपूर्ण है ।

श्रद्धा का जननी रूप भी उचित है । उसके हृदय में अपने भावी शिशु के लिए अगाध वात्सल्य भरा हुआ है । उसके निम्न शब्दों से माँ बनने की सकुल साध ललित होती है—

"उनके घर में कोलाहल है ।
मेरा सूना है गुफा द्वार ॥"

प्रसादजी का अपना दृष्टिकोण और भी विचारणीय है । उनके अनुसार पुरुष की नारी के बिना उन्नति दुःसाध्य ही नहीं असाध्य है । मनु श्रद्धा की उपेक्षा करता है और इड़ा का पक्ष लेता है । वह राज्य सञ्चालन सम्यक रीति से करता है किन्तु इड़ा के साथ व्यभिचार करने पर उसकी बहुत हानि होती है, उस समय श्रद्धा उसके समक्ष आती है और वास्तविक रूप को पहचानती है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम अजस्र वर्षा सुहाग की,
और स्नेह की मधु रजनी।
चिर अतृप्त जीवन यदि था,
तो तुम सन्तोष बनी थीं॥"

अथवा— "नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नगपद तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के समतल हृदतल में॥"

"जिसे तुम समझे थे अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल्य।
ईश का यह रहस्य बरदान,
कभी मत जाओ इसको भूल॥"

गुप्तजी की नारी का चित्रण भी हृदय ग्राही है—

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

वास्तव में नारी वात्सल्य और करुणा को लेकर ही संसार में आती है। जननी रूप में वह वात्सल्य की प्रतीक है और जाया के रूप में त्याग और करुणा की।

गुप्तजी की यशोधरा वास्तविक नारी है, पति के वियोग से दुःखिनी उसकी इच्छा है—

"बस सिन्दूर बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल,
मेरी मांग्नि गुदड़ी में भी है राहुल सा लाल।"

नारी पति और पुत्र को ही लेकर जीवन भर व्यस्त रहती है। और यदि पति के वियोग में वह प्राण भी त्याग करना चाहती है तो दुःख के कारण ऐसा नहीं कर पाती है। नारी केवल रूप में ही सीमित नहीं है वह जननी भी है और जननी का पद निर्वाह करना उसके लिए आवश्यक है—

"बनी जननी भी जायारी।"

यशोधरा स्वयं ही जननी पद के उत्तरदायित्व का अनुभव करती है तभी तो वह कहती है—

"स्वामी मुझको मरने का भी तो
दे न गये अधिकार।
छोड़ गये मुझ पर अपने उस
राहुल का सब भार।"

अन्त में बुद्ध के बचनों में भी कवि के स्वयम् के विचार ही स्पष्ट होते हैं—

"दीन न हो गोपे, हीन नहीं नारी कभी,
भूत दया मूर्ति वह मन से शरीर से।"

यशोधरा के समान ही 'साकेत' में उर्मिला का चित्रण भी सुन्दर हुआ है।

"किन्तु आर्य नारी तेरा हो,
केवल एक ठिकाना।
चलना कहीं, जहाँ जाकर फिर
नहीं लौट कर आना।"

पञ्चवटी में भी उन्होंने नारी की दुर्दशा पर दुख प्रकट किया है:—

नरकृत शास्त्रों के सब बंधन,
हैं नारी ही को लेकर।
अपने लिये सभी सुविधाएं,
पहले ही कर बैठे नर॥

× × ×

अविश्वास हा अविश्वास ही,
नारी के प्रति नर का।
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं,
स्वामी है वह घर का॥

'प्रिय प्रवास' में हरिऔध जी का नारी हृदय का चित्रण भी सुन्दर है। यशोदा का मातृ हृदय पुत्र के स्नेह से विह्वल होकर नन्द से कहता है—

विमल जल मंगाना देख प्यासा दिलाना॥
कुछ क्षुधित हुए ही व्यंजनों को खिलाना॥

राधा का चरित्र भी स्वाभाविक है। कृष्ण वियोग में वह भी अति खिन्ना है।

काव्य में नारी स्पष्टीकरण उचित रूप में हो सका है। वास्तव में काव्य तथा प्रेम दोनों नारी हृदय की ही अपनी चीजें हैं। काव्य की कोमलता तथा भावुकता का अधिकारी केवल नारी हृदय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्दजी की अमर कृति 'गोदान'

श्री यस० टी० नरसिंहाचारी एम० ए०

जो स्थान कविता के क्षेत्र में रामायण, महाभारत जैसे जातीय महाकाव्यों का है वही गद्य रचना में गोदान का है। ये महाकाव्य युगकाव्य हैं—वैदिक युग धर्म और जीवन प्रयोगों के आधार पर रचित। हमारी संस्कृति—रीति-नीति, धर्म-अन्तःकरण, पारिवारिक और दाम्पत्य-जीवन, संस्कार-सभ्यता के प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। हमारी आकांक्षायें और आदर्श, जीवन में उदात्त की हमारी कल्पना इनमें उच्छ्वसित हैं। एक ओर ये समस्त जाति की वस्तु हैं दूसरी ओर जीवन की पूर्णता, उसकी गहराई और स्वस्थता लिये हुए हैं। महाकाव्य के स्वर में एक उदात्तता और गम्भीरता होती है। 'गोदान' महाकाव्य नहीं गद्य रचना है, इसलिए संस्कृति और जीवन आदर्शों की बातों के लिए उसमें स्थान न रहा अन्यथा उसमें भी महाकाव्य की वह गम्भीरता, उच्चता और शालीनता है। इस दृष्टि से 'गोदान' को एपिक-उपन्यास कह सकते हैं।

'साकेत समीक्षा' में वाजपेयीजी ने उर्मिला-विरह और भरत में एपिक कहने के लिए वीरता की कमी पायी। लेकिन गोदान को एपिक उपन्यास कहने में इस सिद्धान्त से कोई बाधा नहीं होती। वीरता का तात्पर्य केवल काम करने का उत्साह है। और होरी अन्त तक परिस्थितियों से लड़ता रहा, करुणा केवल उसमें उसकी हार और विवशता है। हमारे लिए वह करुण है, होरी तो जीवन भर लड़ता रहा। उसमें दुख की निश्चेष्टता कहीं भी नहीं—नैतिक पतन के बाद भी। यद्यपि शारीरिक दृष्टि से निष्प्राण हो गया, कठोर परिश्रम से ऋण चुकाकर कलङ्क धो लेने की चेष्टा में लगा रहता है।

गोदान को युग रचना कह सकते हैं। आधुनिक युग में राष्ट्रीय और राजनैतिक एकता की भावना आयी, हमारी संस्कृति की एक नयी और व्यापक व्याख्या हुई, समाज-सुधार के प्रयत्न हुए, एक शब्द में जनता में नयी जागृति आ गई। गान्धीजी ने इन सब भावनाओं का समन्वय करते हुए धर्म को व्यापक परिधि के अन्दर कर दिया। इस युग में गान्धीजी के कारण सात्विक जीवन का जन-सामान्य में जो विशेष प्रचार हुआ वह वैदिक या बाद की बौद्ध जागरण से कम नहीं था। संस्कृति और नये जीवन आदर्शों की दृष्टि से एक जातीय महाकाव्य के लिए यहाँ सामग्री मिल जाती है। लेकिन इस आधुनिक युग का एक दूसरा पहलू भी है। युग की नयी जागृति उच्चत तथा मध्यवर्ग तक ही सीमित रही। निम्न श्रेणी के किसान और मजदूर समाज शोषित तथा परिस्थितियों से पीड़ित ही रहे। नयी जागृति होने पर भी परतन्त्र देश में इनके लिए कुछ नहीं हो सका। और यह प्रामीण जनता संख्या में पचहत्तर प्रतिशत से कम नहीं। लेकिन इनका विस्मरण ही हो गया। आज भी हम विवेकानन्द, रवीन्द्र, गान्धी आदि युग विभूतियों का स्मरण करते गद्गद् हो जाते हैं। पर युगस्थिति तो उस छोटे किसान के द्वारा ही समझ सकते हैं। होरी के रूप में प्रेमचन्दजी ने उसे साकार कर दिया। होरी को छोड़कर हम युग की विशेषताओं को जितना ही बखानें वह समग्र नहीं होगा। युग की स्थिति होरी में और उन्नति के प्रयत्न उन महानुभावों के जीवन में देखते हैं।

मानव जीवन और कुछ नहीं, परिस्थितियों से निरन्तर संघर्ष और उन पर विजय पाने की चेष्टा है। इस तरह जब हम अपनी आकांक्षा अभिलाषाओं को पूरा कर लेते हैं तो जीवन की चरितार्थता समझते हैं, जीवन में हमें ईप्सित पाने की एक तृप्ति होती है। यह संघर्ष मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार का हो सकता है। आत्मा की आकांक्षा व्यापकता खोजती है। इसका उज्ज्वल चित्र Jean christophe में देखते हैं। मन के ऊँचे धरातल पर इसकी स्थिति है। यहाँ शरीर नहीं आत्मा का अपने अस्तित्व की स्थापना के लिये संघर्ष है। जीन क्रिस्टफी अपने से लड़ते लड़ते अपनी कला को वह रूप दे सका जो वह चाहता था और समाज से लड़ते-लड़ते अन्त में उससे पहचान भी पाई। इस तरह यह मनुष्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मशक्ति और अन्तिम विजय की कहानी है। लेकिन होरी की लड़ाई भौतिक—अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये, एक आध अपनी छोटी-मोटी अभिलाषा पूरी कर लेने के लिये है। परिस्थितियों से लड़ने में वह हार ही गया। आत्मा की साधना में हार से मन को गहरा अवसाद घेर लेता है लेकिन भौतिक सङ्घर्ष में हार से अस्तित्व का लोप ही नहीं, नैतिक पतन भी हो जाता है—"होरी की दशा दिन-दिन गिरती जा रही थी। जीवन के सङ्घर्ष में उसे सदैव हार हुई, पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी; मगर अब वह उस अन्तिम दशा को पहुँच गया था, जब उसमें आत्म विश्वास भी न रहा; अगर वह अपने धर्म पर अटल रह सकता, तो भी कुछ आँसू पुँछते; मगर वह बात न थी उसने नीयत भी बिगाड़ी, अधर्म भी कमाया, कोई ऐसी बुराई न थी जिसमें वह न पड़ा हो; पर जीवन की कोई अभिलाषा न पूरी हुई, और भले दिन मृगतृष्णा की भाँति दूर ही होते चले गये, यहाँ तक कि अब उसे धोखा भी न रह गया था, झूठी आशा की हरियाली और चमक भी अब नजर न आती थी। हारे हुये महीप की भाँति उसने अपने को इन तीन बीघे खेत के किले में बन्द कर लिया था और उसे प्राणों की तरह बचा रहा था।" उसके लिये अपनी कन्या को बेचने के लिये भी तैयार होगया। मानसिक से भौतिक सङ्घर्ष में विपरीत परिस्थितियों की प्रबलता कुछ अधिक होती है। इसलिये यहाँ हार अधिक है। यह दुःखद होते हुए भी जीवन की यथार्थता है। इस हार में मनुष्य के (कु) संस्कारों का हाथ भी है, जैसे होरी के जीवन में। मनुष्य परम्परागत उन रूढ़ियों से अपने को मुक्त नहीं कर पाता।

होरी का जीवन चरित कितना करुणार्द्र है। परिस्थितियों से निरन्तर लड़ता रहा पर सदा असफल। जमीन का कर चुकाने के लिये लड़की तक को बेचने के उसके नैतिक पतन में उसकी करुण दशा की चरम सीमा है। (लड़ने की वीर भावना के विरोध में करुणा की उज्ज्वलता बढ़ जाती है। वह कभी हार मान कर बैठ नहीं गया।) उसकी एक मात्र अभिलाषा है गऊ से द्वार की शोभा बढ़ाने की, सबेरे-सबेरे उसके दर्शन कर लेने की। "होरी के मन में गऊ की लालसा चिरवाल से चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी।" कैसी विवशता है कि यह भी पूरी नहीं हुई। लेखक ने इस अभिलाषा के परिणाम का बहुत ही करुण चित्र खींचा है। यही उपन्यास का मूल स्वर है जैसा कि उपन्यास के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। भोला की खुशामद ही करके किसी तरह गाय ले आया। 'होरी श्रद्धा विह्वल नेत्रों से गाय को देख रहा था, मानों साक्षात् देवीजी ने घर में पदार्पण किया।' उसके लिए यह 'सजीव संपत्ति' थी। रात भर उसे नींद न आयी, उसकी सेवा-आराम के सिलसिले में सोचता ही रहा। लेकिन अभागे के लिये यह चार दिन की बात हुई। इस अभिलाषा से अब सिर पर एक गाय का ऋण भी बढ़ा। इससे भोला बाद को बैलों को लेगया। कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। मजदूर बनने पर भी पोते के बहाने कठोर परिश्रम करके गाय को लेना चाहता है। काम करते-करते मरता है तो गाय का नाम लेकर ही। लोग उसकी अन्तिम अभिलाषा पूरी होने के लिए गाय दान में देने को कहते हैं लेकिन रुपये कहाँ? मरने पर भी वह साध पूरी नहीं। बीच में लेखक सूचित करता है कि रूपा अपने पिता को गाय भेजने जा रही है जो शायद मरने के बाद पहुँची होगी! कुटुम्ब और समाज में भी होरी की स्थिति दयनीय हो जाती है। वह सबसे प्रेम करता है लेकिन लड़का तिरस्कार करता है, भाई प्रेम के बदले गाय को विष देता है। समाज में एक बैलों को खोल ले जाता है, एक जमीन नीलाम करना चाहता है, तीसरा रसीद न देकर दुबारा कर वसूल करेगा, चौथा समाज बहिष्कार कह कर धमकाता है। महाजनों की बात तो अलग। यह सब उसके भोलेपन से अनुचित लाभ उठा कर। फिर भी होरी अपने मन को समझाता है, किसी को दोष नहीं देता, अपना भाग्य समझ लेता है। कुल मर्यादा के लिए अपने भाई की रक्षा करता है। सास-बहू लड़के के झगड़े के बाद व्यथित होरी के बचन कितने गम्भीर हैं—'जो आदमी नहीं रहना चाहता क्या उसे बाँध कर रखेगी। माँ बाप का धरम है, लड़के को पाल पोस कर बड़ा कर देना। वह हम कर चुके। उनके हाथ-पाँव हो गये। अब तू क्या चाहती है के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाना-चारा लाकर खिलायें। माँ बाप का धरम सोलहो आना लड़कों के साथ है। लड़कों का माँ-बाप के साथ एक आना भी नहीं है। जो जाता है उसे असीस देकर बिदा कर दे। हमारा भगवान मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है भोगेंगे। चालीस साल इसी तरह रोते-रोते कट गये। दस-पाँच साल हैं वह भी यों ही कट जायँगे।' यह न व्यङ्ग है और न उलाहना। इस समव्यथा में भी अपनी स्थिति से सन्धि है। होरी की इस करुण कहानी में समझौते की एक शान्त निश्चलता देखते हैं। विपरीत परिस्थितियों में दाने-दाने के लिए तरसते हुए भी वह मौन है। नैतिक पतन होने पर भी अन्त में उसके क्रिया-कलाप से करुणा का स्वर उदात्त हो जाता है। पुत्र से समझौता करके उसकी आशा उल्लसित हो उठती है, भाई को क्षमा कर प्रेम से गले मिलने में जीवन की हारों को भी विजय समझता है, दामाद का ऋण चुकाकर कलङ्क मिटाने में अविराम परिश्रम करता है और मरते-मरते धनिया से भी माफी माँग लेता है। करुण अन्त होने पर इस तरह के उदात्त आचरण से प्रभाव जोर पकड़ता है। हम कष्टों को व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को भी दृष्टि में रखकर परखते हैं और महान होकर भी सामान्य की तरह कष्ट सहने में उदात्तता मानते हैं। रामचरित में करुणा की अपील इसीलिये विशेष है। होरी सामान्य होकर भी हमारी इतनी सहानुभूति पाता है तो उसीसे लेखक की कला की महानता प्रकट होती है।

जीवन की गहराई में जाकर प्रेमचन्दजी ने होरी का चित्र उपस्थित किया। इसीलिए होरी का जीवन चरित सम्पूर्ण और अखण्ड लगता है। गुणों का बाहर से आरोप कहीं नहीं, वे सब उसके अन्दर से उत्पन्न, उसकी प्रकृति की विशेषताएँ हैं। उसके जीवन की गति में भी स्वाभाविक अनिवार्यता है। अचानक की घटनाएँ और उस कारण परिवर्तन बिलकुल नहीं जैसा कि प्रेमचन्दजी के प्रायः सभी नायकों में देखते हैं। विविध सङ्घर्षों में होते हुए तार्किक परिणाम के रूप में ही उसका वह अन्तिम पतन और दयनीय अवस्था है। किसान के रूप में, कुटुम्ब और समाज में उसकी स्थिति का सम्पूर्ण चित्र आगया है। उसके जीवन में सदा अभाव और सङ्घर्ष रहने पर भी एक किसान की तरह जमीन छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। क्योंकि मजदूर बनने में महतो की 'मर्यादा' नहीं है। जिन्दगी तो किसी तरह काटनी ही है। इसलिए अपनी व्यवहार कुशल बुद्धि से अधिकारियों की चापलूसी में लग जाता है। सहानुभूति दिखा कर भोला से, प्रशंसा कर पत्नी से अपना मतलब निकाल ही लेता है। उसकी एक मात्र और किसान की स्वाभाविक अभिलाषा घर में गाय बाँधने की पूरी नहीं हुई। उसके जीवन संघर्ष के विषाद को यह बहुत ही करुणार्द्र बना देता है। अपने संस्कारों को लेकर वह अन्ततः किसान के रूप में सामने आता है—पुराने जमाने का वह बहुत ही भोला-भाला और धर्मभीरु है जिससे लोग फायदा उठाते हैं, उसे दबाते हैं। नये जीवन की गति पहचान कर गोबर तक उसे, इसके लिए डाँटता है। सङ्कट में भोला की गाय लेना धर्म नहीं है, परम्परागत संस्कारों के विरुद्ध है, लेकिन अपने स्वल्प स्वार्थवश उसकी दृष्टि में अधर्म नहीं। क्योंकि अपने दैनिक अस्तित्व के लिए अभावों को बढ़ा-चढ़ा कर जमींदार-महाजनों के सामने रोना ही पड़ता है। इस तरह प्रेमचन्दजी ने उस औसत किसान का चित्र खींच दिया है जिसकी दृष्टि में दिनचर्या की झूठमूठ अधर्म न समझने का संस्कार हो गया है। इस विरोध में एक ओर मनोरञ्जन की सामग्री है तो दूसरी ओर जीवन की विवशता का चित्र भी। तलाशी के समय, हुक्का पानी बन्द करने पर उसकी बेचैनी में झूठी मर्यादा से कुसंस्कार अच्छी तरह देख सकते हैं, विशेषकर उसकी पत्नी धनिया की व्यवहारिकता के विरोध में। लेकिन अन्त में उसे हार माननी पड़ी—परिस्थितियों से विवश, मर्यादा छोड़कर महतो को मजदूर बनना पड़ा। जमीन के लिए अपनी लड़की तक को बेचने का नैतिक पतन हुआ। इस दुखमय जीवन में उसका एक मात्र विनोद, जिसके लिए वह धनिया के भी तिरस्कार का पात्र बना, भाभी कह कर सहुआइन से चुहलबाजी। दैनिक अभाव के साथ शादी वादी की चिन्ताएँ हैं। पर कुटुम्ब में होरी का कुछ दूसरा ही रूप है जिसको भव्य कहने में सङ्कोच नहीं होता। समाज में हारकर भी यहाँ उसकी आत्मा उन्नत है क्योंकि यहाँ प्रतिकूल नहीं। सबके लिए उसके मन में प्रेम ही है। सोना-रूपा के लिए स्नेही पिता है। गोबर के व्यव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हार से क्षोभ अवश्य होता है पर उसे क्षमा कर देता है, हृदय की ऐसी विशालता कि अपनी ही गलती मानने के लिए तैयार है। गाय को देखने भाई के न आने पर सोच, विष देने पर भी उसकी पत्नी की मदद, अन्त में सब कुछ भूल कर गले मिलने में भ्रातृप्रेम देखते है। उसका यह प्रेम परिवार से बाहर भी प्रकट होता है—झुनिया और धनिया को क्षमा कर आश्रय देने में हृदय की कैसी महानता है। पति-पत्नी प्रेम तो आदर्श है। झगड़ा तो हमेशा होता ही है, पर सब कुछ भूल कर समझौते में देर नहीं लगती। होरी-धनिया एक दूसरे के पूरक हैं। पति व्यवहार-कुशल तो पत्नी स्त्री-दौर्बल्य से उसकी प्रशंसा में आ जाती है। पति उद्दण्ड लड़के को क्षमा कर देता है पर पत्नी का मातृ-हृदय आहत होता है। झूठी मर्यादा के लिए पति दारोगा या पंच को ऋण कर रिश्वत देना चाहता है तो अभाव से परिचित जीवन भाग स्वामिनी टोक देती है। दाने दाने के लिए तरसने वालों की मर्यादा कैसी ? ये अन्तिम प्रसङ्ग प्रेमचन्दजी के मानव स्वभाव परिशीलन के उज्ज्वल उदाहरण हैं। जीवन में हार ही मिलने से अन्त में मन की दुर्बलता के वश होकर जमीन की रक्षा के लिए अकाम होता है अवश्य लेकिन उस भोले-भाले, स्नेहशील आत्मा का अन्तिम करुण चित्र भी देखिये—"धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनों कोनों से आँसू की दो बूंदें ढुलक पड़ीं। क्षीण स्वर में बोला—मेरा कहा सुना माफ करना धनिया। अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहाँ के रुपये क्रिया-करम में जायँगे। रो मत धनियाँ, अब कब तक जिलायेगी ? सब दुर्दशा तो हो गई। अब मरने दे।"

सुख दुख की गहराई में जाकर होरी के जीवन का तल स्पर्शी चित्रण हुआ है। प्रेमचन्दजी के अन्य उपन्यासों की तरह नीति, आदर्श, उद्देश्य, उपादेय की स्थूल दृष्टि से इसे नहीं देख सकते। अपने विचारों का खुलकर प्रचार यहाँ नहीं है। होरी के जीवन के घटना चक्र का यथार्थ चित्रण मात्र है। आदर्शों और सिद्धान्तों में से जीवन को न देखने से यह तटस्थ यथार्थता आ सकी है। होरी के रूप में जीवन का एक अखण्ड चित्र, जैसा कि वह आँखों के सामने है और समझ में आता है, उपस्थित किया गया है। होरी के जीवन के इस घटनाचक्र में अन्य उपन्यासों की तरह आदर्शों की चर्चा और उन पर आसक्ति दिखाते हुए कथातत्व और पात्रों द्वारा सरस और रुचिपूर्ण मनोरञ्जन की सामान्य प्रवृत्ति एकदम नहीं है। होरी के जीवन की गहराई और चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिकता, उसकी गाय की अभिलाषा, भोले संस्कार पति-पत्नी सम्बन्ध में देख सकते हैं। इन्हीं तीन बीज रूप बातों को लेकर होरी का सम्पूर्ण जीवन चित्र खड़ा है। देखने में बहुत ही सामान्य और मोटी बातें हैं। लेकिन गऊ की उस अभिलाषा में ही किसान की दयनीय स्थिति का चित्र आ जाता है। इसमें लेखक की अपूर्व प्रतिभा प्रदर्शित हुई है। भोले संस्कारों में परिस्थितियों के दबाव में समाज शोषित को देखते हैं। फिर भी सहानुभूति शील और स्नेही व्यक्ति परिवार की बात से स्पष्ट हो जाता है।

केवल नाम और आकार के वर्णन को छोड़कर होरी में वैयक्तिक कुछ भी नहीं दिखाया गया क्योंकि तभी 'गोदान' सामान्य का प्रतिनिधित्व करने वाली युग रचना हो सकती है। होरी के जीवन को आधुनिक काल में किसान का इतिहास कह सकते हैं। उसके चित्रण में इतिहास की सचाई पूर्ण मात्रा में है। हिन्दी में 'गोदान' जीवन, साहित्य और इतिहास को एक साथ लिये चिरस्थायी और चिरजीवी क्लासिक (आदर्श) कृति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवादी यथार्थवाद

प्रो० दामोदर झा, एम० ए०

समाजवादी यथार्थवाद साहित्य का नवीनतम सिद्धान्त है। इसका दार्शनिक आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन द्वन्द्वात्मक प्रणाली और भौतिकवादी दृष्टिकोण का सन्निवेश करता है। इसके अनुसार प्रकृति आकस्मिक घटनाओं और प्रक्रियायों का जमघट नहीं, वरन् सङ्गठित और शृङ्खलाबद्ध है; इसमें स्थिरता, सनातनता और अगति नहीं, सतत गति अनवरत विकास और परिवर्त्तन है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन के सिद्धान्तों को ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा गया है। समाजवादी यथार्थवाद ऐतिहासिक भौतिकवाद का साहित्यिक सिद्धान्त है। आधुनिक प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन की दार्शनिक पृष्ठभूमि का आधार भी समाजवादी यथार्थवाद है। आज यह केवल कतिपय सिद्धान्तवादियों के तार्किक क्षेत्र तक सीमित नहीं, हजारों लेखकों, कवियों, और समीक्षकों को अनुप्राणित और सञ्चारित कर रहा है।

समाजवादी यथार्थवाद 'यूरोपीय यथार्थवाद' की पुनरावृत्ति नहीं उसका विकसित और क्रान्तिकारी रूप है। यूरोपीय यथार्थवाद साहित्यिक को व्यक्ति और समष्टि का दर्पण मानता है। साहित्य का प्रयोजन, इस सिद्धान्त के अनुसार, कला-कृतियों के माध्यम से तत्कालीन समाज में विभिन्न रूपों, सामाजिक प्रक्रियायों और प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों का चित्रण प्रस्तुत करना है। साहित्य की यथार्थवादी धारा वैज्ञानिक और ऐतिहासिक प्रणालियों की प्रमुखता और उनमें बढ़ते हुये प्रभाव की कलात्मक अभिव्यक्ति है। बैकरे और हेनरी जेम्स, बालजक और जोला, डास्टव्स्की और टाल्सटाय, यूरोप के साहित्य में, यथार्थवादी साहित्य के सुन्दर उदाहरण हैं।

वस्तुतः समाजवादी यथार्थवाद कोई नूतन साहित्यिक सिद्धान्त नहीं। यह यथार्थवादी प्रणाली को एक सुनिश्चित दार्शनिक दृष्टिकोण के प्रति लागू करता है। यथार्थवादी प्रणाली, मूलतः स्थिर, गतिहीन और चित्रकला के अधिक समीप है। समाजवादी यथार्थवाद एक गतिशील दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य यथार्थवादी प्रणाली के अनुसार समाज में सतत होने वाले परिवर्त्तन, विकास और अविराम गति को चित्रण कर, उच्चतर सामाजिक अवस्था के लिए व्यक्तिगत मनोविज्ञान को प्रेरित करना है। 'समाजवादी यथार्थवाद' के अन्तर्गत व्यक्तिगत भावना का स्थान गौण ही नहीं, वरन् सामाजिक दृष्टिकोण, व्यक्तिगत मनोविज्ञान का नियन्त्रण करता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, जिसका साहित्यिक रूप समाजवादी यथार्थवाद है, विचार और भावना की अपेक्षा वस्तु की प्राथमिकता मानता है। इसके अनुसार वस्तु प्रकृति का दृश्यगत तथ्य है, विचार और भावना की उत्पत्ति वस्तु से होती है। अतः साहित्य का प्रयोजन व्यक्ति के विचार और भावनाओं का संश्लेषण और विश्लेषण प्रस्तुत करना नहीं है। व्यक्ति की भावना का महत्व समाज में वस्तुगत परिवर्त्तन, विकास और क्रान्ति से अलग नहीं है। व्यक्ति की भावना सामाजिक तत्व की प्रक्रिया से उद्भूत हुई है। अतः यथार्थवादी प्रणाली के अनुसार व्यक्ति की भावना और उसमें मस्तिष्क की प्रक्रियायों का चित्रण करता है, सामाजिक तत्व की महत्ता स्वीकार करते हुए भी, व्यक्ति के मन और हृदय के घात और प्रतिघात का विश्लेषण करता है। समाजवादी यथार्थवाद के सिद्धान्त के अनुसार, व्यक्ति का अस्तित्व सामाजिक आन्दोलन, आर्थिक यन्त्र के नियन्त्रणकर्त्ता से स्वतन्त्र नहीं है। यही कारण है कि सोवियट उपन्यास में नायक, कोई व्यक्ति नहीं, वह जन समूह का प्रतीक है, सामाजिक क्रान्ति का यन्त्र है। उसके विचार और भावना की सार्थकता उच्चतर सामाजिक उत्पादन और भविष्य की ओर विकासोन्मुख गतिशीलता में है।

समाजवादी यथार्थवाद, साहित्य के क्षेत्र में, नीति-प्रधान सिद्धान्त है। इसका स्फुरण मार्क्स और लेनिन के दर्शन से हुआ है, लेकिन इसकी रूपरेखा सोवियट साहित्यकारों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मित हुई है। गोगल और पुश्किन, तुर्गनेव और डास्टव्यस्की, टाल्स्टाय और गोर्की के नीति-प्रधान साहित्य का उत्तराधिकारी सोवियट रूस का यथार्थवादी साहित्य है, जिसका लक्ष्य साहित्य के माध्यम से समाज की व्याख्या गति और परिवर्त्तन के सिद्धान्तों के अनुसार कर, सप्रयोजन और सोद्देश्य प्रमाणित करना है। समाजवादी यथार्थवाद में 'शाब्दिक सौन्दर्यवाद' 'शैली प्राथमिकता' का स्थान नहीं। इसके अनुसार साहित्य और कला मानव का व्यापार है और इसका मापदण्ड अन्य मानव व्यापारों की तरह समाज कल्याण-भावना है। 'कला एक मानव व्यापार है' टाल्सटाय ने 'कला क्या है' में घोषित किया। समाजवादी यथार्थवाद टाल्सटाय के सिद्धान्तों, सरलता, सत्यता और कल्याण-भावना की मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार व्याख्या है। मार्क्सवादियों का सत्य ऐतिहासिक और स्थूल वास्तविकता है, जो मानव के विचारों और भावनाओं का रूपान्तर करती रहती है। कल्याण भावना से उनका मतलब क्रान्ति के पश्चात् वर्गविहीन समाज का कल्याण है।

समाजवादी यथार्थवाद सरल सिद्धान्त नहीं है। यह एक निगूढ़ और सतत विकसित होने वाला सिद्धान्त है। व्यापक अर्थ में, समाजवादी यथार्थवाद के अनुसार, कलाकार, शाश्वत कहे जाने वाले सत्यों और मानव वासनाओं में न उलझ, अपने युग की स्थूल ऐतिहासिक घटनाओं से प्रेरणा प्राप्त करता है। 'समाजवादी मानव' मानव का निर्माता है, मानव की वासनाओं का शिकार नहीं। इस दृष्टि से वास्तिविकता का कोई स्थिर और सनातन अर्थ नहीं, यह सतत परिवर्तनशील है। १९४२ ई० का यथार्थ १९४६ ई० का यथार्थ नहीं है। इसके अनुसार दान्ते का 'डीवाइन कौमेडी' और तुलसी की रामायण प्रगतिशील साहित्य है। मध्य युग में धर्म युग की वास्तविकता थी; धार्मिक समस्या युग की स्थूल ऐतिहासिक समस्या थी। आदिम युग में 'व्यक्तिगत वीरता' जीवन का कठोर सत्य थी, जो मानव की सामूहिक जीवन का स्वरूप निर्धारित करती थी। आज के युग में, अर्थ की समस्या और आर्थिक प्रश्नों से संलग्न समस्याएँ युग के ऐतिहासिक सत्य हैं। अतः आज का कलाकार अपने युग की कठोर वास्तविकता से विमुख हो सच्ची कला-कृति का सृजन नहीं कर सकता। कलाकार की सच्ची अनुभूतियों का उद्गम आज के युग में सतत होने वाले संघर्ष और क्रान्तिकारी कार्य होंगे। आज का कलाकार, यथार्थवाद में व्यापक अर्थ में, सामाजिक प्राणी है और विशुद्ध कलाकार गौण रूप में है। सामाजिक प्राणी होने की हैसियत से कलाकार का यह धर्म हो जाता है कि उसकी कला, न केवल अपने युग की चेतना से प्रेरणा प्राप्त करे, वरन् उच्चतर सामाजिक जीवन में होड़ होने वाले प्रयासों में हथियार का काम करे।

संकुचित अर्थ में, समाजवादी यथार्थवाद को वर्ग-सङ्घर्ष के सिद्धान्त तक सीमित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी कला-कृति का मापदण्ड यह है कि यह कहाँ तक वर्ग-सङ्घर्ष से तीव्रकर, इसकी यथार्थता को चित्रण कर, वर्ग विहीन समाज की स्थापना में योग देता है। यह मनोवृत्ति सङ्कीर्ण और सङ्कुचित है, जो साहित्य को जीवन की गतिशीलता से वञ्चित कर सिद्धान्त की बेड़ियों में जकड़ देती है। रूसी क्रान्ति के पश्चात् सोवियट साहित्यकारों और समीक्षकों की यह प्रवृत्ति कुछ वर्षों तक रही। वस्तुतः यह समाजवादी यथार्थवाद के तथ्य का विकृत स्वरूप है।

कहा जाता है कि समाजवादी यथार्थवाद के सिद्धान्तों के आधार पर रचित प्रगतिशील साहित्य में कला के शैली-पक्ष की अवहेलना की जाती है। कला के शैलीपक्ष की उपेक्षा का प्रश्न नहीं है। कला सम्बन्धी सभी सिद्धान्त, वस्तु और शैली की प्राथमिकता से सम्बद्ध हैं। समाजवादी यथार्थवाद, न कोई कलावादियों की तरह, कला को नीति और उपयोगिता से परे मानता है न क्रोचे जैसे अभिव्यञ्जनावादियों की तरह कला को स्वयं प्रकाशज्ञान (Intuition) से उद्भूत मान, कला का चरमोत्कर्ष अभिव्यक्ति में समझता है और न मनोवैज्ञानिकवादियों की तरह कला को मानसिक विकारों के विश्लेषण की सुस्थियों तक सीमित करता है, बल्कि कला में वस्तु की भावपक्ष की प्राथमिकता स्वीकार कर, कला को नीति और उपयोगिता से सम्बद्ध कर, इसका लक्ष्य समाज के स्थूल ऐतिहासिक सत्यों की व्याख्या, उच्चतर समाज स्थापना की दृष्टि से, प्रस्तुत करना मानता है। स्वभावतः कला का शैलीपक्ष,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपेक्षित नहीं, गौण हो जाता है। दर्शन के क्षेत्र में, आदर्शवादी, जड़ की अपेक्षा विचार, भावना तथा स्वयंप्रकाशज्ञान की प्रमुखता स्वीकार करते हैं और कला के क्षेत्र में शैली को या तो प्रधानता देते हैं अथवा वस्तु और शैली को अभिन्न समझते हैं। दर्शन के क्षेत्र में, समाजवादी विचार और भावना को भौतिक अवस्थाओं से उद्भूत मानते हैं, विचार की अपेक्षा जड़ की प्राथमिकता में विश्वास करते हैं, कला के क्षेत्र में. कला के शैलीपक्ष की अपेक्षा भावपक्ष की समाजवादी दृष्टिकोण के अनुसार व्याख्या को प्रधानता प्रदान करते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समाजवादी कलाकार केवल युग की आर्थिक समस्याओं में ही उलझा रहता है अथवा वह कला के शैलीपक्ष की नितान्त अवहेलना करता है। समाजवादी यथार्थवाद, आधुनिक जीवन की जटिलता के अनुसार कला को समाज के आर्थिक पक्ष, बौद्धिक पक्ष और भाव पक्ष से संश्लिष्ट रखता है। प्रगतिशील साहित्य जीवन के अन्तर्सम्बन्धों, जटिलता और विविधता को स्वीकार करता है। इस तथ्य की पुष्टि, सोवियट साहित्यकार अलेक्सी टालस्टाय की कहानियों में होती है। अन्तर इतना ही है कि समाजवादी कलाकार की कृतियों का मनोविज्ञान युग के आर्थिक प्रश्नों और उच्चतर सामाजिक जीवन हेतु सङ्घर्ष अथवा सतत प्रयासों से सम्बन्धित रहता है। चूँकि उसका विश्वास है कि आज के युग में मानव के व्यक्तित्व का विकास प्रधानतः सम्पूर्णतः नहीं आर्थिक अवस्था पर निर्भर करता है। वर्तमान युग में आर्थिक निर्भरता मानसिक और आध्यात्मिक दासत्व की निशानी है। इस अर्थ में समाजवादी कलाकारों का यह दावा है कि वे आध्यात्मिक कलाकार हैं।

समाजवादी यथार्थवाद के सिद्धान्त, व्यापक अर्थ में प्रगतिशील साहित्यिक सिद्धान्त है। इसने साहित्य को कल्पनातीत रहस्यवादियों और प्रतीकवादियों की अस्पष्टता और अबोधगम्यता के घिराउ से छुटकारा दिला, सरलता और बोधगम्यता प्रदान की है, कोरे कलावादियों के शब्द-जाल और अभिव्यक्तिवादियों के दार्शनिक अभिव्यक्तिकरण से उन्मुक्त कर साहित्य को जीवन की दृढ़ भित्ति पर खड़ा किया है, मनोवैज्ञानिकवादियों की आन्तरिकता को समाज के व्यापक स्थूल समस्याओं से संश्लिष्ट कर, बहिर्मुखी बना, मनोविज्ञान की निगूढ़ और पेचीली कोठरी से निकाल साहित्य को जीवन की स्वस्थता और प्रकाश दिया है, प्रकृतिवादी कलाकारों के तटस्थ सिद्धान्तों की निष्क्रियता से विच्छिन्न कर साहित्य को गतिशील और संघर्षशील दर्शन की नीति से संलग्न किया है। साहित्य और जीवन को एक दूसरे के निकट लाना ही समाजवादी कलाकार की सबसे बड़ी देन है।

समाजवादी यथार्थवाद का सिद्धान्त प्रगतिशील, स्वस्थ और आधुनिक युग के अनुकूल है। फिर भी उस सिद्धान्त में एक बहुत बड़ी कमी है। साहित्य को युग के स्थूल, साकार, ऐतिहासिक सत्यों से सम्बद्ध करने के फलस्वरूप कलाकारों की प्रवृत्ति साहित्य के कलापक्ष और भावनापक्ष को हेय समझने की हो जाती है। सोवियट साहित्यकारों की कृतियों को पढ़ने के पश्चात् मेरी यह आशङ्का और भी दृढ़ हो गई है। हिन्दी में भी प्रगतिशील साहित्य के नाम पर साहित्य के कलापक्ष की हत्या हो रही है। यही कारण है कि प्रगतिशील साहित्य के विरुद्ध भी एक प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई है, जो बतलाती है कि प्रगतिशील साहित्य का एक मात्र उद्देश्य अर्थ-साधन और जीवन का कुत्सित चित्रण करना है। इस प्रतिक्रिया के कारण, वे प्रगतिशील कलाकार हैं, जो समाजवादी यथार्थवाद के निगूढ़, गतिशील और अन्तर्सम्बन्धित सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप न प्रदान कर, कला और भावनापक्ष की उपेक्षा कर, साहित्य में गत्यावरोध उत्पन्न कर रहे हैं। वर्तमान-युग, सही अर्थ में, यथार्थवादी कलाकारों की प्रतीक्षा कर रहा है, जो, अपने युग की कठोर यथार्थता का कलात्मक चित्रण कर, साहित्य के सहारे उन्नतिशील समाज की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दे सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

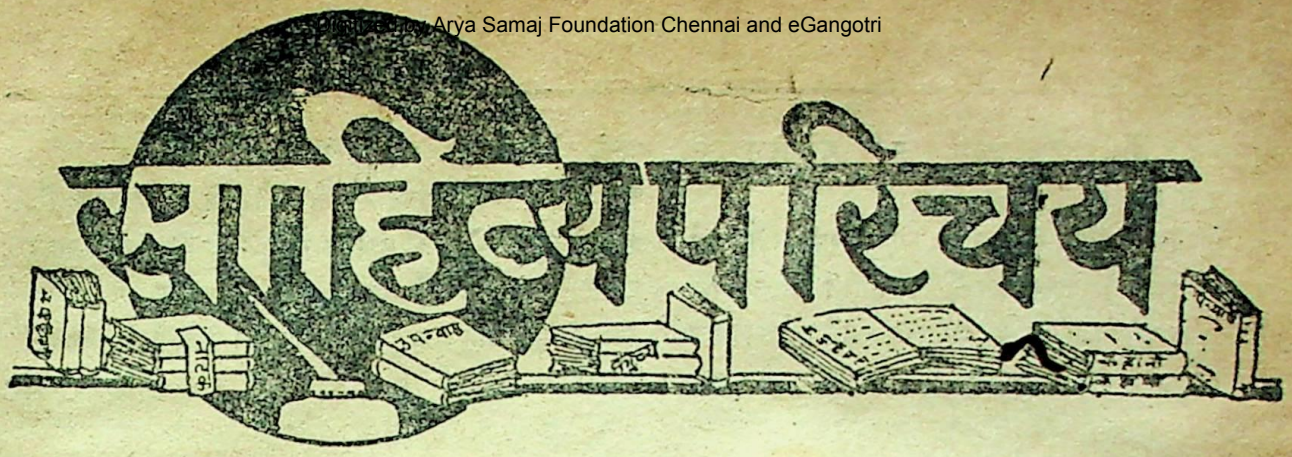

आलोचना

आधुनिक हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि—ले०—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, प्रकाशक—आलोक प्रकाशन, बीकानेर। पृष्ठ २०७, मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है। यद्यपि इस पुस्तक को दो भागों में बाँटा गया है तथापि इस विभाजन का कोई स्पष्ट आधार नहीं दिखाई पड़ता, यदि है तो वह यह है कि पहले भाग में सैद्धान्तिक विवेचन अधिक है और दूसरे में व्यावहारिक आलोचनाओं का प्राधान्य है। ये दोनों ही भाग मार्क्सवादी आलोचना से सम्बन्धित व प्रभावित हैं। मार्क्सवादी या प्रगतिशील आलोचना में लेखकने वस्तु और कला दोनों को महत्व दिया है। इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते किन्तु वस्तु की उपादेयता के मानों और 'बटावें' के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है क्योंकि जैसा होता रहा है, जो आज प्रगतिवादी कहलाता है कल प्रतिगामी हो सकता है। लेखक महोदय वर्तमान प्रगतिवाद को शाश्वत सा मान कर चले प्रतीत होते हैं यद्यपि वे सिद्धान्तः शाश्वत सत्यों के रूपों में भी परिवर्तन स्वीकार करते हैं। दूसरी बात यह भी मानना कठिन है—कि जो कला उनकी समाजवादी अनुभूति पर आधारित है वही सबल कला है और जो अन्य आधारों पर आश्रित है वह क्षीण और निर्बल। शुद्ध प्राकृतिक या मानवी सौन्दर्य की अनुभूति भी उतनी ही सबल हो सकती है जितनी कि समाजवादी आदर्शों की। पन्तजी के पल्लव की कला ग्राम्या की कला से कुछ अधिक सबल ही है। स्वर्ण धूलि और स्वर्णकिरण की कला को जो क्षीण कहा गया है उसके अङ्कन में संस्कारों का भी अन्तर हो सकता है। एक आदर्शवादी की वह कला भी सबल लगती है, सारा प्रश्न अनुभूति का है। पन्तजी की जितनी सौन्दर्यानुभूति तीव्र है उतनी और प्रकार की अनुभूति तीव्र नहीं है। ग्राम्या में भी जो कला की उत्कृष्टता है उसमें भी पन्तजी की सौन्दर्यानुभूति काम कर रही है।

लेखक ने पूँजीवादी कला को निम्न स्थान देकर भी उसे नितान्त हेय नहीं माना है। जनवादी साहित्य उच्च कला को भी कम-से-कम उसके संरक्षणीय तत्वों को अपनायेगा किन्तु वह कला सार्वजनिक होगी, किसी विशेष वर्ग का उसमें एकाधिपत्य न होगा। सब को कला में नैतिक अधिकार स्वीकार करते हुए भी हम को यह मानना होगा कि सबकी कलात्मक अनुभूति एक-सी नहीं होती है। कुछ लोग कला सृजन में अपनी विशेष सौन्दर्यानुभूति के कारण अग्रगामी होंगे और कला की कोटियाँ अवश्य रहेंगी। कला को सार्वजनिक बनाये रखना अच्छी बात है किन्तु सार्वजनिकता के लिए उसका स्तर ऊँचा न उठने देना उसके साथ अन्याय है। ऊँची कला जैसी पूँजीवाद आश्रित कला पीछे चलकर सार्वजनिक हो जायगी।

इस पुस्तक में मार्क्सवादी आलोचना के सिद्धान्तों के साथ बहुत सी व्यापक साहित्यिक मान्यताओं पर भी प्रकाश डाला गया है जैसे 'बिना सिद्धान्त के प्रयोग अन्धा होता है और बिना प्रयोग के सिद्धान्त विफल होता है', 'जो आलोचक यह समझते हैं कि कला का विषय-वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं वे एक आधारभूत गलती करते हैं; इसी प्रकार वे आलोचक जो केवल विषय की प्रगतिशीलता से ही सन्तोष कर लेते हैं और रचना विशेष में साहित्य के गुण नहीं खोजते.....वे साहित्य और पत्रकारिता के भेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भुला देते हैं। हमको इसी स्वस्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता है।'

पुस्तक में आधुनिक साहित्य पर एक बड़ी खोजपूर्ण दृष्टि डाली गई है। आलोचनाएँ कहीं-कहीं समाजवादी पूर्वग्रहों से अवश्य प्रभावित हैं तथापि उनमें गुणग्राहकता की भावना प्रचुर मात्रा में वर्तमान है। वे विशेष कर ज्ञान वर्द्धक हैं। वे पश्चिमी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित कर हमारी एकाङ्गिता को दूर करने में सहायक होंगी। लेखक ने आधुनिक साहित्य के बहुत से अङ्गों को प्रकाश में लाकर अपना नाम सार्थक किया है।

साहित्य-विवेचन—लेखक-श्री क्षेमचन्द्र सुमन तथा योगेन्द्रकुमार मल्लिक। प्रकाशक-आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ ३४७, मूल्य ७)

हिन्दी के बढ़ते हुए लक्ष्य ग्रन्थों के साथ ही साहित्यालोचन सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थों की भी वृद्धि हो रही है। साहित्य-विवेचन के लेखक एक व्यापक दृष्टिकोण लेकर चले हैं और उन्होंने किसी वाद विशेष की वकालत नहीं की है। वैज्ञानिक प्रतिपादन ही उनका ध्येय रहा है। इसमें साहित्य के गद्य-पद्यमय सभी अङ्गों और रिपोतजि आदि पर भी जिनका साहित्य अभी अपेक्षाकृत कम है, प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक विधा के सैद्धान्तिक निरूपण के साथ-साथ उसका हिन्दी और पाश्चात्य साहित्यों में विकास-क्रम भी दिखाया गया है और उसको अद्यतन बनाने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि इसमें पूर्वी और पाश्चात्य दोनों ही सिद्धान्तों का समावेश है तथापि जहाँ भारतीय रस, रीति, शब्द शक्ति आदि का विवेचन हुआ है वहाँ लेखकों ने कुछ क्षिप्रगति से काम लिया है। इससे जहाँ यह दोष आता है कि उनके पूर्ण-विस्तार और गाम्भीर्य का पूरा पूरा चित्र नहीं आ सका है वहाँ यह गुण भी आ गया है कि विद्यार्थियों को आवश्यक ज्ञान तो हो गया है और वे भेद-प्रभेद की भूल भुलैयों और बातों की टकराहट से बच गये हैं।

कोश-कला—लेखक-श्री रामचन्द्र वर्मा, प्रकाशक-साहित्य रत्न कार्यालय, बनारस। पृष्ठ १५६, मूल्य १॥)

कोश-निर्माण भी एक कला है। उसकी अपनी समस्याएँ हैं जो प्रत्येक ईमानदार कोशकार के सामने रहती हैं। अच्छे कोशकार इन समस्याओं के हल स्वरूप जो नियम बना लेते हैं उनका अपने रचे हुये कोश में पालन करते हैं। इस पुस्तक में कोश की व्यापक समस्याओं की कुछ तो शब्द सागर के समय बने नियमों से और अधिकांश में लेखक द्वारा रचित प्रामाणिक कोश में अनुसृत नियमों के आधार पर व्याख्या की गई है। कोश की मूल समस्याएँ हैं शब्दों के संग्रह, (कहाँ से और किस आधार पर लिये जायँ। प्राचीन और नवीन कवियों द्वारा व्यवहृत शब्दों में से कौन से और किस आधार पर शब्द चुने जायँ, दूसरी भाषाओं के कौन से शब्द लिए जायँ आदि) शब्दों के रूप, (शुद्ध और विकृत, इनमें किनको मुख्यता दी जाय, विकारी शब्दों के कई कई रूप होते हैं), शब्द क्रम की (इसके अन्तरगत अन्य समस्याओं के साथ अनुस्वार और पञ्चम वर्ण की समस्या पर भी प्रकाश डाला गया है और यह भी बतलाया गया है कि व्यावहारिक कारणों से कोशकारों ने पञ्चमवर्ण की अपेक्षा अनुस्वार को महत्ता दी। शब्दों के क्रम की बात कोश से लाभ उठाने वाले लोगों के लिए विशेष लाभ की होगी) निरुक्ति या व्युत्पत्ति और अर्थ विचार। इनमें निरुक्ति और अर्थ विचार का विवेचन भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए भी लाभदायक होगा। कुछ शब्दों की व्युत्पत्तियाँ बड़ी रोचक हैं। जैसे मूँगफली शब्द का शुद्ध रूप भूमिफला है, भूमिफली से भूगफली बना, भूगफली से मूँगफली (जहाँ एक से वरण होते हैं वहाँ एक वर्ण बदल जाता है) किन्तु बहुत से शब्दों की व्युत्पत्ति में अब भी मतभेद हो सकता है, जैसे चाँदनी की (जो कपड़ा फर्श पर बिछाया जाता है), व्युत्पत्ति लेखक ने नूरजहाँ के फर्शे चन्दी से की है किन्तु उसके सफेद रङ्ग के कारण उसको चन्द्रमा की चाँदनी से व्युत्पन्न मानना अधिक ठीक प्रतीत होता है। छत की चाँदनी को भी चाँद (चन्द्र) से ही निकली समझना चाहिए। चाँद सिर को भी कहते हैं शायद इसलिए कि वह ऊपर की चीज है। कोई और संस्कृत शब्द से निकली हो तो दूसरी बात है लेकिन उसका चान्दनी से सम्बन्ध कम है। ऐसे ही कुछ और भी शब्द हैं। अर्थ-विचार भी विद्यार्थियों के लिए जितना लाभदायक होना चाहिए था उतना नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका है। उद्धरण दे दिये गये हैं किन्तु उन शब्दों की पूरी व्याख्या नहीं की गई है।

यद्यपि प्राचीन निरुक्तिकार ने इस विषय का बीजारोपण कर दिया था तथापि यह विषय अछूता-सा ही रहा। आजकल कोशकारों की समस्याएँ भी बढ़ गई हैं जिनके लिए एक छोटी सी पुस्तक पर्याप्त भी नहीं है। इस पुस्तक में प्रामाणिक कोश के विज्ञापन की ही गन्ध आती है और कुछ शब्द कोश को भी जरूरत से ज्यादह महत्ता दी है (क्योंकि पीछे सब कोश उसके ही अनुकरण से नहीं बने हैं) किन्तु सिद्धान्तों के निरूपण के लिए इन कोशों का उल्लेख आवश्यक भी था। लेखक को इस अछूते विषय से हिन्दी के लाभ के लिए बधाई है। —गुलाबराय

वाद-समीक्षा—लेखक—श्री कन्हैयालाल सहल, प्रकाशक—आत्माराम एन्ड सन्स दिल्ली। पृष्ठ ९८, मूल्य ॥।)

सहलजी साहित्य सन्देश के चिर परिचित विद्वान लेखक हैं। इस पुस्तक में उन्हीं के पाँच लेखों का संकलन किया गया है। लेखों के शीर्षक हैं:—छायावाद, रहस्यवाद का स्वरूप, द्वन्द्वात्मक वाद और प्रगतिवाद, अभिव्यञ्जनावाद, हिन्दी की प्रयोगवादी कविता। सहलजी की लेखनी में प्रसाद गुण तो है ही, कठिन विषय को सरलता से समझाने की शक्ति भी है। लेख और लेखक दोनों के विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है।

ग्राम साहित्य—पहला भाग—पं० रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक हिन्दी मन्दिर, प्रयाग। पृष्ठ ३७६, मूल्य ४)

वर्षों पहले त्रिपाठीजी ने कविता कौमुदी नाम से आठ भागों में विभिन्न प्रकार की कविताओं का संग्रह किया था। इसके पाँचवें भाग में ग्राम गीत थे। पुस्तक की बड़ी माँग थी पर उसका दूसरा संस्करण हो नहीं हुआ। अब आपने उसी पुस्तक को दो भाग में करके ग्राम साहित्य के नाम से प्रकाशित किया है। पहला भाग हमारे सामने है। इसमें सोहर, अन्न प्राशन, मुण्डन, जनेऊ, नहछू और विवाह सम्बन्धी गीतों का संग्रह है। यह सभी गीत उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में प्रचलित अवधी भाषा में हैं। ब्रजभाषा का मेरठ की ओर बोली जाने वाली भाषा के गीतों को इसमें स्थान नहीं मिल सका है। उनके अलग संग्रह निकालने की आवश्यकता अभी बनी है। फिर भी इस पुस्तक से हिन्दी का बड़ा हित साधन होगा।

इस पुस्तक की दो बड़ी विशेषताएँ हैं एक तो इसमें प्रत्येक गीत का अर्थ दे दिया गया है जिससे विभिन्न भाषा भाषी सज्जन इस पुस्तक से पूरा लाभ उठा सकते हैं। और गीतों का मर्म समझ सकते हैं। दूसरे इसके प्रारम्भ में दो भूमिकाएँ दी गई हैं। जो बड़ी महत्वपूर्ण हैं। इनसे ग्राम साहित्य ग्राम बोली और ग्राम संस्कृति पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। त्रिपाठीजी ने इन गीतों के संग्रह करने में बड़ा परिश्रम किया है और वहाँ की बहुत सी समस्याओं का निकट से अध्ययन किया है। अतः उनकी यह भूमिकाएँ बड़ी उपयोगी साबित होंगी। —म

कविता

भूमि की अनुभूति—लेखक—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'। प्रकाशक—साहित्य प्रकाशन मन्दिर, हाईकोर्ट रोड, ग्वालियर। मूल्य २॥)

श्री मिलिन्दजी हिन्दी के उन कवियों में से हैं, जिनकी कृतियाँ यथार्थ जीवन से प्राणवत्ता प्राप्त करती हैं। उनमें एक आदर्श, एक दिशा, एक सन्देश, एक तारतम्य और एक संकेत होता है। प्रस्तुत संग्रह भी इन विशेषताओं से रहित नहीं है। अपने नाम के अनुरूप इस संग्रह की कविताएँ भूमि और भूमि पुत्रों की आत्मा का दिग्दर्शन कराती हैं। इन कविताओं में कवि के अन्तर का रस है इसलिए उनमें 'नारेबाजी' नहीं है। कवि ने भूमि और भूमि पुत्रों की व्यथा को उनके बीच रह कर अनुभव किया है। कवि ने नए युग के कवि को जन देवता और मानवता की उपासना करने का निमन्त्रण दिया है और उसे लघु, पीड़ित, दलित और शोषित तथा उपेक्षित अङ्ग के प्रति अपनी सहानुभूति देने के लिए आह्वान किया है। यों अनेक कवि श्रमिक और कृषक वर्ग के सम्बन्ध में कविताएँ लिखते हैं पर मिलिन्दजी की दृष्टि की गहराई और सूझ अनोखी है। अन्य कवियों से वे इसलिए अलग हैं कि वे सामान्य मानव की महत्ता का प्रतिपादन करके उसके जीवन में आशा और विश्वास की अखंड ज्योति प्रज्व[illegible] रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन देवता की उपासना करने वाले इस साधक को ये रचनायें प्रत्येक साहित्य मर्मज्ञ के हृदय को चिन्तन की नवीन सामग्री देंगी।

अलका—लेखिका—श्रीमती शान्ति सिंहल। प्रकाशक—भारतीय साहित्य सदन, नई दिल्ली। मूल्य २॥)

४० गीतों के इस संग्रह में कवियित्री का स्वर निश्छल प्रेम, उदार समर्पण और सजग आत्म-विश्वास से पूर्ण है। अपने आराध्य की निष्ठुरता के प्रति जहाँ उसने बार-बार संकेत किया है, वहाँ अपनी ओर से उसने उसकी अर्चना में त्रुटि नहीं होने दी। महादेवी की भाँति प्रेम का आदर्श कवियित्री ने दीपक को माना है और जलन तथा अश्रु उसकी ऐसी निधियाँ हैं, जो प्रियतम की उपेक्षा में भी उसे साहस रहित नहीं होने देतीं। अपने आत्म-विश्वास के कारण ही उसमें इतना बल आ जाता है कि वह 'मैं न होती भावना फिर तू कहाँ भगवान होता' जैसी बात कह उठती है। कहीं-कहीं रहस्यात्मकता का निर्वाह भी सफलता के साथ हुआ है। गीतों में सरलता और सरसता दोनों का मणिकाञ्चन संयोग है।

गुरुदेव—लेखक—श्री महावीरशरण अग्रवाल। प्रका०—श्री मन्दिर कार्यालय १५, दरियागंज, दिल्ली। मू० २॥)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के गद्य काव्यों का सङ्कलन है। इसके तीन भाग हैं—गुरुदेव, मानव और मायाविनी। जैसा कि स्वयं लेखक ने 'विचारों की झाँकी' में स्वीकार किया है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की 'गीताञ्जलि' और 'माली' नामक रचनाओं का उस पर प्रभाव पड़ा है। अतएव शैली की दृष्टि से रचनाओं में वही गीताञ्जलि की उड़ान है पर भावुकता के आधिक्य के कारण विचारों के तारतम्य में स्पष्ट सङ्गति नहीं है। प्रकृति की रहस्यमयता से निरन्तर अभिभूत होना लेखक का स्वभाव है। प्रकृति में प्रियतम का दर्शन वह करता है। 'मानव' खण्ड में नारी के बिना मनुष्य की अपूर्णता की ओर संकेत है। नारी ही उसके जीवन-विकास की विधायक शक्ति है। 'मायाविनी' में एक काल्पनिक कथा है, जिसका ध्येय स्वर्ग को अस्तित्व हीन कर पृथ्वी का महत्व बढ़ाना है और देव तथा दानवों को मनुष्य का अनुचर बनाना है। यह कहानी हिन्दी की एक मौलिक कृति है और लेखक के गम्भीर चिन्तन की प्रतीक है। हमारा विश्वास है कि यदि लेखक उफान को कम कर दे और विचार द्वारा संतुलित रचनायें दे तो उससे उच्चकोटि की रचनायें मिलने की आशा हो सकती है।

वनफूल—लेखक—प्रो० रामसञ्जीवन सिंह एम० ए०। प्रकाशक—श्री घोटनप्रसाद सिंह पाटलीपुत्र प्रबोध प्रकाशन, बाँकीपुर, पटना। मूल्य २)

'वनफूल' काव्य ग्रन्थ में भारत की चिर उपेक्षित आदिवासी जाति के जीवन का चित्र है। इसमें पाँच सर्ग हैं। 'जागरण गान' नामक प्रथम सर्ग में 'जय धरती के आदि देव संस्कृति के पहले गान' के उद्घोष द्वारा आदिवासी को जागृति का सन्देश दिया गया है। 'प्रकृति का रङ्गमञ्च' नामक द्वितीय सर्ग में आदिवासी जाति की लीला भूमि के पार्वतीय और तराई के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण है और आदिवासी जीवन के दैनिक कार्य-कलाप का अङ्कन है। 'सरना की पूजा' नामक तृतीय सर्ग में आदिवासियों के कुल-देवता के जागरण का शङ्खनाद है, जिसमें पूँजीवादी समाज के शोषण और आदिवासियों की दुर्दशा की झाँकी है। 'अखरा का गीत' नामक चतुर्थ सर्ग में आदिवासियों के पौरुष का विस्तृत वर्णन है। इस सर्ग में भी वर्तमान अधोगति की ओर संकेत है पर साथ ही 'हैं अपना भगवान हमीं हम धरती की सन्तान' का गर्वित आत्म-सम्मान भी मुखर है। 'धुन कड़िया का जय जयकार' में प्रकृति का वासन्ती वैभव और उसके बीच आदिवासी के उल्लसित जीवन की ओर दृष्टिपात किया गया है। कवि की अनुभूति बड़ी तीव्र है और उसे आदिवासियों के जीवन तथा उनके वन-प्रान्तर का यथेष्ट ज्ञान है। पूरे काव्य में कवि की अन्तरात्मा की वह प्रवृत्ति झलक रही है, जो दस शताब्दियों से पद-दलित जाति के उत्थान की सच्ची कामना से पूर्ण है।

त्रिवेणी के सङ्गम पर—लेखक—श्री वासुदेव गो०, प्रकाशक—सहयोगी प्रकाशन मन्दिर लिमिटेड, दतिया। मू० १।)

प्रस्तुत कविता संग्रह में कवि की ३६ कविताएँ संग्रहीत हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों की कविताओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कहीं आपको चुस्त और फड़कती हुई घनाक्षरियाँ मिलेंगी, कहीं हृदय की विवशता और वेदना से पूर्ण मार्मिक गीत मिलेंगे और कहीं हास्य की मर्मस्पर्शी उक्तियाँ मिलेंगी। 'सिन्ध-प्रवाह' कविता में कवि की वर्णन शक्ति का सुन्दर परिचय है परन्तु हमें ब्रजभाषा की कविताएँ विशेष सुन्दर जान पड़ीं। ऐसी कविताएँ बहुत दिनों बाद पढ़ने को मिलीं।

प्यास—लेखक श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव 'अतृप्त', प्रकाशक अनुपम प्रकाशन, बिरहाना, लखनऊ। मूल्य १।)

यद्यपि यह कवि की कविताओं का प्रथम संग्रह है तथापि इससे कवि के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना निस्सन्देह की जा सकती है। कविताएँ सभी प्रेम से सम्बन्ध रखती हैं, पर उनमें ऊँचाई और गाम्भीर्य की कमी नहीं है। भाषा का प्रवाह और प्रचलित छन्दों का ओज लेकर कवि की कथा और वेदना ने ऐसा आकर्षक रूप लिया है, जिसे देखकर कवि की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

नाचती लहरें—लेखक—श्री गणेश ज्योति, प्रकाशक हिन्दी भवन, प्रेस रोड, ट्रिवेन्ड्रम। मूल्य १॥)

इस काव्य संग्रह की कविताओं का स्वर युग के अनुकूल है। कवि में देश प्रेम, राष्ट्रीयता, यथार्थ जीवन के प्रति अनुरक्ति, मुक्ति की कामना, कला साधना के प्रति निष्ठा, क्रांति की भावना आदि वे सभी बातें मिलती हैं, जो एक सजग सृष्टा के लिए आवश्यक हैं और इस दृष्टि से उसकी सराहना करनी पड़ेगी, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति अभी कमजोर है।

द्रोपदी दुकूल—लेखक—श्री रामलला, प्रकाशक—ब्रज-साहित्य मण्डल, मथुरा। मूल्य ॥)

द्रोपदी के जीवन से सम्बन्ध रखने वाला यह एक खण्ड काव्य है, जो आठ सर्गों में समाप्त हुआ है। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि चौथे सर्ग का कहीं पता ही नहीं है। काव्य की दृष्टि से 'द्रोपदी दुकूल' आधुनिक ब्रजभाषा की रचनाओं में एक महत्वपूर्ण कृति है। राममलालाजी का ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार है। इसीलिए इसमें चमत्कार वृत्ति और रस परिपाक दोनों का अपूर्व संयोग है। 'अमृत-ध्वनि' छन्द तो रामलला जी की अपनी चीज है और वह इस कृति में भी खूब फबते हैं। नवीनजी की भूमिका से पुस्तक का विशेष महत्व बढ़ गया है।

हेम किरण—लेखक—श्री रामचन्द्र 'प्रदीप', प्राप्तिस्थान वाणी मंदिर, चौड़ा रास्ता, जयपुर। मूल्य १)

कवि की प्रारम्भिक कविताओं का यह संग्रह है। कवि की व्यापक दृष्टि प्रकृति के छोटे बड़े दृश्यों में रमण करती है और उसमें भावुकता भी पर्याप्त मात्रा में है पर रचनाओं में परिष्कार न होने से उसकी कविताएँ पढ़ते समय पग-पग पर धक्का-सा लगता है। यदि ये भावना और विचार छन्द रहित ही होते तो कवि को अधिक सफलता मिलती। 'एक बात' में लेखक ने जो सफाई इस विषय में दी है, उसे देकर ही वह कवि के उत्तरदायित्व से छुट्टी नहीं पा सकता।

रावी के तट पर—लेखक—श्री राधेश्याम द्विवेदी, प्रकाशक—केशव साहित्य कुटीर, करेरा (मध्यभारत)। मूल्य॥।)

प्रस्तुत पुस्तक में सन् १८५७ से लेकर भारतीय गण-तंत्र की स्थापना तक की राजनीतिक घटनाओं के आधार पर राष्ट्रीय संघर्ष का पद्य बद्ध चित्रण है। काव्य का आरम्भ लाला लाजपतराय के निधन से होता है और रावी तट पर राष्ट्र प्राण नेहरू की पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की प्रतिज्ञा पर उसका चरम उत्कर्ष होता है। कवि को क्रांतिकारियों के प्रति बड़ी श्रद्धा है।

नेहरू प्रकाश—लेखक—श्री घासीराम अग्रवाल, प्रकाशक—वर्ग बन्धु कला मन्दिर, वल्लभनगर (राजस्थान) मूल्य ।-) यह छोटी सी पुस्तिका नेहरूजी की प्रशस्ति है।

मानस-अन्त्याक्षरी—लेखक—श्री व्यापक, प्रकाशक, मानससङ्घ पोस्ट रामबन बाया सतना। मूल्य ॥)

'रामचरित मानस' से अकारादि क्रम से संग्रहीत चौपाइयों का यह संग्रह स्कूलों के विद्यार्थियों के बड़े काम का है।

—कमलेश

१—सूर-बालकृष्ण-पदावली—सम्पा०—श्री प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक—भरतपुर प्रेस, मथुरा। पृष्ठ २००, मूल्य १॥)

२—सूर रामचरित मानस—सम्पादक और प्रकाशक उपर्युक्त। पृष्ठ ७६ मूल्य १॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीतलजी ने ब्रज साहित्य के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का सङ्कलन कर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। अष्ट-छाप पर आपकी पुस्तक काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। सूर-निर्णय शीर्षक आपकी पुस्तक भी बहुत महत्व पूर्ण है। हाल में आपने महाकवि सूरदास के सम्बन्ध में दो और पुस्तकों का सङ्कलन किया है। इन दोनों पुस्तकों में महा-कवि के पदों का संग्रह किया है। एक में सूरदास के बाल-कृष्ण सम्बन्धी और दूसरी में राम सम्बन्धी पद संग्रहीत हैं। विशेषता इसमें सम्पादन की है। बालकृष्ण सम्बन्धी पदों का सङ्कलन और सम्पादन ऐसे सुन्दर ढङ्ग से किया गया है जिससे पुस्तक स्वतन्त्र पदों के स्थान पर एक क्रमबद्ध प्रबन्ध काव्य की पुस्तक प्रतीत होती है। इसी प्रकार राम सम्बन्धी पद भी ऐसे ढङ्ग से रक्खे गये हैं कि उनसे राम का चरित्र सामने आजाता है। राम पदावली के नाम से जो पद अन्यत्र मिलते हैं उन्हीं पदों का इस पुस्तक में राम चरित्र नाम दिया गया है। दोनों पुस्तकों के प्रारम्भ में दी गई आलोचनात्मक भूमिकाएं बहुत उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक हैं।

नाटक

मङ्गल सूत्र—लेखक-श्री वृन्दावनलाल वर्मा, प्रकाशक मयूर प्रकाशन, झाँसी। पृष्ठ ८५, मूल्य १)

मङ्गल सूत्र एक सामाजिक नाटक है जिसमें वर्त्तमान शिक्षित नवयुवक और नवयुवतियों के क्रिया कलाप दिखाए गए हैं। अलका नामक एक लड़की का विवाह उसके पिता रोहन, कुन्दनलाल नामक नौजवान के साथ कर देते हैं—पर कुन्दनलाल का वर्त्ताव अलका के साथ अच्छा न होने के कारण रोहन एक पड़ोसी शाक्ती की मदद से अलका को कुन्दनलाल के घर से निकाल लेते हैं और एक पड़ौसी शाक्ती के साथ उसके सूने घर में रख देते हैं और फिर अलका का पुनर्विवाह एक दूसरे व्यक्ति के साथ कर देते हैं। समाज की यह स्थिति अभी शायद नहीं है—आगे सम्भव है। परन्तु आज तो रोहन का चरित्र हमें सर्वथा अस्वाभाविक लगता है। पढ़े लिखे कुन्दनलाल का शिक्षिता अलका को बेंतों से पीटना भी कुछ समझ में नहीं आया। वार्त्तालाप और स्थिति निर्देश ठीक है। वर्माजी ने यह पुस्तक लखनऊ की एक सत्य घटना के आधार पर लिखी है पर हमें वह मङ्गल-सूचक नहीं जँची।

उपन्यास

शून्य का विस्तार—लेखक-शैलेश, प्रकाशक-मानव-मन्दिर, मॉडल हाऊस लखनऊ। पृ० १५६, मू० १)

यह एक छोटा सा सरल्या प्रधान उपन्यास है। लेखक की दृष्टि में दो बिन्दु हैं (१) बालक की मनोवृत्ति के अनुकूल ही उसका जीवन विकसित होने देने के कारण सम्भावित हानियाँ (२) राजनैतिक व सामाजिक यथार्थ घटनाओं पर समुचित प्रकाश। और ये दोनों बिन्दु एक बड़ी 'शून्य की परिधि' में विलीन होते दिखाये गये हैं क्योंकि लेखक के अनुसार सारा संसार मिथ्या है—बाजीगर का खेल। इस दृष्टि से पहला बिन्दु उपन्यास में विकसित हो जाता है, श्रीनाथ को देखकर हम कह सकते हैं कि उसके कलाकार के रूप को उसका पिता नहीं समझ पाता और इसीलिये उसकी माता को मरना पड़ता है, और वह स्वयं 'पागल' हो जाता है। यह तो ठीक हुआ किन्तु उपन्यास के अन्त में 'शून्य का विस्तार' दिखाने का प्रयत्न जबकि सन्तोष व अनिल के विवाह की शहनाइयों के बजने का समय है, व्यर्थ और हानिकर है। पाठक पर व्यर्थ का बोझ पड़ता है। वस्तुतः उपन्यास की सफलता लेखक के अपने सन्तुलन पर होती है और 'शून्य-वादी विचारधारा' के सम्बन्ध में लेखक अपना सन्तुलन खो बैठा है। —बि० ना० उपाध्याय

कहानी

चिमिरिखी—लेखक व प्रकाशक-श्री शारदाप्रसाद 'भुशुण्डि', बिरहाना, लखनऊ। पृष्ठ १०२, मूल्य १॥)

कविताओं की पैरोडी तो बहुत निकली हैं और अच्छी अच्छी निकली हैं, पर कहानियों की पैरोडी के रूप में यह पुस्तक शायद पहली ही है। सर्वश्री गुलेरी, प्रेमचन्द प्रसाद, सुदर्शन आदि लेखकों की लेखक की सम्मति में सर्वश्रेष्ठ आठ कहानियों की छाया लेकर यह आठ कहानियाँ रची गयी हैं। इन कहानियों में हास्य की मात्रा तो है पर मूल कहानियों का-सा गठन इनमें नहीं आ पाया है। और वह शायद हो भी नहीं सकता था। फिर भी पैरोडी की मात्रा खूब है। पुस्तक में कुछ प्रयोग खटकने वाले हैं वे न होते तो भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजन में कमी न आती। जैसे "कौन है यह उल्लू का पट्ठा"। "तुम्हारे अब्बा मेहरा" आदि।

अफीम की पीनक—लेखक-श्री रघुकुल तिलक, प्रकाशक-प्रभात प्रेस, मेरठ। पृष्ठ ९८, मूल्य १।)

लेखक की सात कहानियों के इस संग्रह में कई प्रकार की कहानियाँ आ गयी हैं। अफीम की पीनक में रेल के सफर में मिलने वाले विभिन्न विचार के लोगों की बातचीत और एक स्त्री की दशा का सुन्दर चित्रण है। कहानी हास्य से पूर्ण है। 'बुधुआ की मृत्यु' में एक देशभक्त कैदी की जीवन-चर्या का अच्छा खाका खींचा गया है। 'कलजुग' में आधुनिक नौजवानों की हुलिया वर्णित है। सभी कहानियों में हास्य की मात्रा विद्यमान है। यह कहानी संग्रह उच्च कोटि का है।

जीवनी व संस्मरण

मैं इनसे मिला : दूसरी किश्त—लेखक-श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', प्रकाशक-आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ २४६, मूल्य ३॥)

कमलेशजी की प्रस्तुत पुस्तक के भाग प्रथम की चर्चा इन पृष्ठों में कुछ महीने पूर्व हो चुकी है। यह उसी पुस्तक का दूसरा भाग समझिए। इसमें प्रो० इन्द्र, रायकृष्णदास, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री यशपाल, श्रीमती दिनेशनन्दिनी, डॉ० नगेन्द्र, श्री अञ्चल, श्री माचवे, और श्री विष्णु प्रभाकर—ग्यारह साहित्यकारों की चर्चा है। इनके चुनाव में कौन आगे और कौन पीछे हो—यह तो लेखक की अपनी रुचि की बात है—पर पहले भाग से इस भाग में एक विशेषता अवश्य है और वह है इसमें पहले के समान एकरसता का प्रायः अभाव। इसकी ओर लेखक ने स्वयं भूमिका में संकेत भी कर दिया है।

आत्मकथा हर व्यक्ति नहीं लिख सकता। और लिखे भी तो उसे छपावे कौन? इस भारी समस्या को श्री कमलेशजी ने कुछ अंश में अपनी इस पुस्तक द्वारा हल कर दिया है। इस पुस्तक में आपने जीवन की ही नहीं मन की भी अनेक बातें उन्हीं के शब्दों में निकलवा दी हैं और उन्हें बड़े ही ढङ्ग से लिपिबद्ध कर हिन्दी संसार के आगे रख दिया है। एक बार फिर हम इस पुस्तक के लिए लेखक को बधाई देते हैं।

—म०

रेखा-चित्र—ले०-बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ काशी। पृ० २७५, मूल्य ४)

पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने जीवनी साहित्य में विशेषता प्राप्त की है। संस्मरण और रेखाचित्र दोनों ही जीवनी साहित्य के अङ्ग हैं। कला तो संस्मरण और रेखाचित्र दोनों ही में है किन्तु रेखाचित्र लिखने में लेखक को अपनी वर्णन शक्ति पर अधिक भरोसा रखना पड़ता है। उसमें कला की मात्रा भी कुछ अधिक रहती है। लेखक की लेखनी तूलिका का रूप धारण कर लेती है, उसमें लेखक शब्द चित्र उपस्थित करता है, लेखक स्वयं उसका आलोचक नहीं होता। प्रस्तुत रेखाचित्रों में बीच-बीच में रेखाचित्र के तत्व तो आ गये हैं किन्तु वे अर्द्धांश से कुछ अधिक में संस्मरण हैं और कम से कम एक चौथाई भाग में चरित्र नायक का गुण-कथन है। कुछ-कुछ में तो, जैसे 'सम्पादक की समाधि' में तो, कहानीकार के विवरण या प्रस्थन (Narration) के भी गुण हैं।

लेखक ने अपने वर्ण्य विषय जो चुने हैं उनमें से कुछ को मैं नहीं जानता हूँ, यह मेरी ही अज्ञता है किन्तु उल्लू कबै लौटैगो मनुख और कक्का, अन्धी चमारिन के चित्र बड़े करुणापूर्ण हैं। इनमें लेखक की व्यापक सहृदयता का परिचय मिलता है। कुछ संस्मरण बड़े मनोरञ्जक भी हैं। आचार्य क्षितिमोहन की भाँति बहुतसों को खाना ठण्डा हो जाने पर खाने का अवसर पाने के लिए अपनी धर्मपत्नी का कोप-भाजन बनना पड़ता होगा किन्तु उनमें आचार्य की सी प्रत्युत्पन्न मति न होगी। आचार्य ने थाली उठाकर अपनी पत्नी के सर पर रख दी और पूँछने पर यह व्याख्या दी कि देवीजी थाली ठण्डी हो गयी है और आपका दिमाग गरम हो गया है। अब दोनों का तापमान बराबर हो जायगा।

जहाँ पुस्तक में इतने गुण हैं वहाँ उसमें कुछ दोष भी हैं। कहीं-कहीं 'रेवड़ी बाँटने' की बात आगयी है उसके लिए लेखक ने पहले ही क्षमा-याचना भी कर ली है। वे भूमिका में लिखते हैं 'भक्तिपूर्वक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए हम अपना सन्तुलन भूल जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्मरण—लेखक–श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। पृष्ठ २५१, मूल्य ३)

संस्मरण जीवनी साहित्य के ही अङ्ग हैं किन्तु साहित्य की इस विधा में लेखक और चरितनायक दोनों को ही महत्व मिलता है क्योंकि संस्मरणों में चरितनायक का वही अंश आता है जिस [illegible] से लेखक सम्पर्क में आया है। पं० बनारसीदासजी का यह सौभाग्य रहा है कि वे एक निजीपन के साथ बड़े-बड़े आदमियों के सम्पर्क में आये हैं। इस संग्रह में साहित्यिकों और कलाकारों के भी संस्मरण हैं और राजनीतिज्ञों के भी। इन संस्मरणों में कुछ पत्रों के भी उद्धरण आये हैं जो उनके लेखकों के चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। द्विवेदीजी की वात्सल्यमयी चिन्ता, गणेश शङ्करजी की निस्वार्थता और निर्लोभता, मीर साहब की गरीबी का इन पत्रों द्वारा एक सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है। साथ ही शुद्ध साहित्यिक के नाते सभी सम्प्रदायों के लोगों के साथ व्यापक सहानुभूति का भी परिचय मिलता है। द्विवेदीजी ने जिन चरितनायकों को चुना है वे स्वयं सम्प्रदाय और जाति के भेद-भावों से मुक्त थे। और उन्होंने अपने जीवन में एक ऊँचे स्तर का नैतिक मानदण्ड स्थापित किया है। द्विवेदीजी की स्वाध्याय-प्रियता से यदि विद्यार्थी लाभ उठायें तो देश का बड़ा उपकार हो। इस पुस्तक में कहीं-कहीं इमरसन, बर्नार्डशॉ आदि के बड़े मार्मिक उद्धरण आये हैं जो हमारे नवयुवकों में जीवन डालने में सहायक हो सकते हैं।

—गुलाबराय

हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति—लेखक–श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली। मूल्य ॥)

डा० राजेन्द्रप्रसादजी के जीवन और संस्मरण सम्बन्धी चार पुराने लेखों का सङ्कलन इस पुस्तक में किया गया है, जिनसे उनके मानवोपम गुणों का परिचय मिलता है।

विचार स्वातन्त्र्य के प्रांगण में—लेखक–स्वामी सत्यदेव परिव्राजक। प्रकाशक–सत्यज्ञान निकेतन–ज्वालापुर। पृष्ठ २०८, मूल्य १॥)

स्वामी सत्यदेव भारत की महान विभूतियों में से एक हैं, जिन्होंने देश के स्वतन्त्रता संग्राम में योग दिया है। उनकी आत्मकथा 'स्वतन्त्रता की खोज में' से जो भ्रम फैला था, तथा जिसकी आड़ लेकर 'लिटरेचर' के सम्पादक पन्त सरकार से बदला चुकाना चाहते थे, तथा जिसके अन्दर कुछ विषयों एवं विचारों से राष्ट्रपतिजी को दुःख हुआ था, उनका निराकरण इस पुस्तक में बड़ी ही रोचक शैली में किया गया है। रोचकता के कारण उपन्यास का सा आनन्द उत्पन्न होता है। पुस्तक के उत्तरार्ध में स्वामीजी ने कुछ विषयों 'बुद्धिवाद', 'संतुलन सिद्धान्त' एवं 'सभ्यता एवं संस्कृति' आदि पर विचार प्रकट किये हैं, जो सुन्दर बन पड़े हैं। प्रगतिशील साहित्य के कुछ समाज विरोधी अंश की ओर सरकार का ध्यान भी आकर्षित किया गया है। आशा है यह पुस्तक स्वामीजी की आत्मकथा के पूरक रूप में देशवासियों को विचार-स्वातन्त्र्य, निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता की प्रेरणा दे सकेगी।

—रामबाबू शर्मा एम० ए०

प्राप्ति-स्वीकार

मालव, मालव जनपद और उसका क्षेत्र विस्तार—लेखक श्री सूर्यनारायण व्यास, प्रकाशक मालव लोक साहित्य परिषद, उज्जैन। पृष्ठ १६

Astronomical Ephemeris of Geocentric Places of Planets for 1963—प्रकाशक–श्री जीवाजी ओब्जरवेटरी, उज्जैन (मध्यभारत) पृष्ठ ६६, मूल्य १।)

इसमें वर्ष भर के ज्योतिष सम्बन्धी अनेक उपयोगी आंकड़े दिए गए हैं।

चित्राङ्कदा—लेखक–श्री चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र', प्रकाशक दीदी कार्यालय, इलाहाबाद। पृष्ठ ५६, मूल्य ॥।)

'चन्द्र' जी की कविता पुस्तक है।

हरिजन दिग्दर्शन—लेखक–श्री दशरथराम घासी, प्रकाशक–परसराम अग्रवाल, भुरकुण्डा (हजारीबाग)। पृष्ठ १६, मूल्य ।) हरिजन समस्या पर कुछ विचार।

बिहार के नवरत्न—लेखक–श्री रमेन्द्रप्रसादसिंह, प्रकाशक–भारत प्रकाशन मण्डल, पटना। पृ० १६, मू० ≈) भगवान् महावीर से डा० श्रीकृष्णसिंह तक का परिचय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की

संवत् २०१० की सं० विवरण पत्रिकाएँ हमसे

मुफ्त मँगायें

इस अङ्क में भी ये विवरण पत्रिका आपको अन्यत्र मिलेंगी

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

हिन्दी की पुस्तकें

पौने मूल्य में

सूचीपत्र मुफ्त मँगायें

भारत पब्लिशिङ्ग हाउस,

५, सिविल लाइन्स, आगरा।

(यहाँ से काटिये)

यहाँ से काटिये—

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

प्राचीन कवि—डा० सुधीन्द्र	आलोचना	२)
तुलसी गीतावली—गुलाबराय	,,	१।)
प्रेमचन्द—डा० त्रिलोकी नारायण	,,	२।।)
हिन्दी साहित्य उसके अंग—गयाप्रसाद शुक्ल		२)
हिन्दी साहित्य का सं० इतिहास— ,,	,,	२)
रीतिकाल रत्नाकर—कृष्णकुमार	,,	२।)
प्रथमालङ्कार निरूपण—	,,	।—)
अलङ्कार प्रकाश—	,,	।।)
हिन्दी साहित्य की रूपरेखा—	,,	।—)
लकड़ियमा—जी० पी० श्रीवास्तव	हास्यरस	१।)
मय्या कवि लवहादुर—	,,	२।।)
माँ—मैक्सिम गोर्की (सचित्र)	उपन्यास	१।।)
ठकुरानी बहू का बाजार—रवीन्द्रनाथ ठाकुर		२)
पराया— ,,	,,	२।।)
अभिलाषा—कपिलदेव		३)
मृग क्यों रुकें—देसाई	कहानी	२।।)
नाट्य रत्न माला—पं० कालीचरन	,,	।।।)
पं० रामचरित मानस—	धार्मिक	१।)

—जो पुस्तक आप न लेना चाहें उसे काट दें।

नियम पीछे देखें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

License No. 16.
Licensed to post without prepament.

यह सरकारी आर्थिक वर्ष का अन्तिम महीना है

सभी कालेज, पुस्तकालय तथा अन्य शिक्षा संस्थाएं अपने बजट के अनुसार

पुस्तकें खरीदेंगी

हमारे भण्डार में हिन्दी पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह है। कमीशन भी नियमानुसार दिया जाता है।

इस मास में सरकारी शिक्षा संस्थाओं की बिक्री अधिक होती है। अतः आप अपना आर्डर देते समय हमें अपने बजट का रुपया भी लिख भेजें जिससे हम बजट के अनुसार पुस्तकें पूरी भेजदें। पसन्द न आने पर यह पुस्तकें निःसंकोच आप हमसे बदल सकते हैं।

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

Postage will be Paid by Addressee

BUSINESS REPLY CARD

No postage Stamp necessary If Posted in India

AGRA G. P. O.
Permit No 1136

Book Post

To.

श्री पत्रालय,

साहित्य-रत्न-भण्डार,

, गांधी मार्ग,

आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एन. ए. पी-एच डी.
महेन्द्र

*

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा।

*

वार्षिक मूल्य ४), एक अङ्क का ।=)

वर्ष १४] आगरा—अप्रेल १९५३ [अङ्क १०

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचारधारा— सम्पादक
२—आचार्य भामह : अलङ्कारवाद और रसवाद— श्री लाल रमायदुपालसिंह एम० ए०, एल-एल० बी०
३—काव्य-दोषों पर हिन्दी का एक महत्व पूर्ण रीतिग्रंथ— डा० भोलाशङ्कर व्यास एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री
४—सन्त साहित्य का मूल— श्री त्रिलोचन पाण्डेय
५—कहानी तथा गद्य की कुछ विधाएँ— प्रो० शिवबालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए० 'आनर्स'
६—दो 'झाँसी की रानी'— प्रो० गोपीनाथ तिवारी एम० ए०
७—कहानीकार यशपाल— श्री गोवर्द्धन शर्मा
८—'विरहँटा' और 'छरहटा' का रहस्य— श्री मिथिलेश कान्ति एम० ए०, साहित्य-रत्न
९—प्रकृति-चित्रण में एक नवीन दिग्दर्शन प्रो० कन्हैयालाल सहल एम०-ए०
१०—साहित्य परिचय—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह की १५ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३१ तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापस कर दिए जाते हैं।
७ साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : मार्च १९५३

उपन्यास

नया रास्ता—रमेशचन्द्र वर्मा ३)
उजाले में अँधेरा—आर्थर कास्लर १॥)

नाटक

सफर की साथिन—रामशरन शर्मा १॥।)
देश भर का दुश्मन-राजनाथ पाण्डेय एम० ए० १)

राजनीति

बापू का सपना—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ।॥)
नई सभ्यता की झाँकी—रावट मैगिडोफ १॥)
मास्को में तीन वर्ष—वाल्टर वेडल स्मिथ १॥)
आतङ्क से दूर—अलेक्जेण्डर बारमीन १॥)
दिशा सङ्कुष—पेनिंग्टन हेल १॥)
नई निर्मीक योजना-विलर्ड आर० एस० पी० १॥)
लोक तन्त्र—गॉसलिन १॥)
रूजवेल्ट के संस्मरण—जान गन्थर १॥)
आजादी की खोज में—पीटर पिरोगोफ १॥)
रूस में बेगारी—डेविड जे डालिन १॥)
सं० रा० अमेरिका स्थायी क्रान्ति—
रसल डब्ल्यू डेवन पोर्ट १॥)
अन्न और आजादी—एडवर्ड जैरो मडाईज १।)

जीवनी

विचारवान इमर्सन—मार्क वैन डोरेन १॥)
जार्ज वाशिंगटन कार्वर—शर्ले ग्राहम जार्ज १॥)
देहाती डाक्टर—आर्थर ई० हर्ट जलर १॥)
जैफरसन प्रबन्ध और परिचर्य—
एड्रीन कॉच और विलियम पेडन १॥)
परिव्राजक की प्रजा—शान्तिप्रसाद द्विवेदी ३॥)
मैं इनसे मिला (खण्ड २)—कमलेश ३॥)
रेखा चित्र—बनारसीदास चतुर्वेदी ४)
हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति-इन्द्र विद्यावाचस्पति ॥)
मैं न भूल सकूँगी—एलेनोर रूजवेल्ट १॥)

कहानी

पानी बोला—रामचन्द्र तिवारी २।)

बालोपयोगी

मेले के मोती—रघुवीरशरण मित्र १)
बाल कहानी-कुञ्ज—जनकराज लक्ष्मी ॥=)
सरल कहानियाँ—सन्तराम विचित्र १)
काश्मीर की लोक कथाएँ—नन्दलाल १)

यात्रा

यात्रा के पन्ने—राहुल ६)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १५] . आगरा—अप्रेल १९५३ [अङ्क १०

हमारी विचार-धारा

राष्ट्र-भाषा के उत्थान के लिए एक व्यापक योजना की आवश्यकता—

राष्ट्र-भाषा के उत्थान के सम्बन्ध में कई प्रयत्न हो रहे हैं—कुछ केन्द्र की संरक्षता में और कुछ प्रान्तीय सरकार की संरक्षता में और कुछ स्वतन्त्र। ये सभी प्रयत्न हिन्दी के हित के लिए किये जा रहे हैं किन्तु इनमें किसी प्रकार का पारस्परिक तालमेल नहीं है। अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग की बात चल रही है। यद्यपि उत्तर दायित्व केन्द्रों, प्रान्तों और जनता सभी का है तथापि बिना संयोजन के कार्यों में पुनरावृत्ति और द्विविधिता का भय रहता है। इसी भय से बचने के लिए आर्थिक उद्योगों की पञ्चवर्षी योजना बनाई गई है। हिन्दी में जो कमियाँ बतलाई जाती हैं उनमें प्राथमिकता की दृष्टि से उनकी पूर्ति का प्रबन्ध किया जाय। महत्व की दृष्टि से वैज्ञानिक और शास्त्रीय साहित्य को प्राथमिकता मिलना चाहिए। इसमें पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के साथ मौलिक अनूदित ग्रन्थों की भी रचना रहेगी।

पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में जो निर्णय किये जाय उनमें अधिकार से कम काम लिया जाय। उनमें विद्वानों का मत ही मान्य समझा जाय। अनुवादित ग्रन्थों का निर्माण भी एक योजना के अनुकूल होना चाहिए। पहले जिन ग्रन्थों का अनुवाद होना हो चाहे वे साहित्य के हों और चाहे विज्ञान के उनकी एक सूची बना ली जाय और अनुवाद के सिद्धान्तों का भी निर्णय कर लिया जाय। और इसके अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं के विशेषज्ञों का एक बोर्ड बना दिया जाय जो इस कार्य को अपनी देख-रेख में करावे। बिना योजना के अनुवादों पर पुरस्कार वितरण विशेष लाभदायक न होगा। जहाँ तक हो अनुवादों से अनुवाद न कराये जायँ क्योंकि वह वास्तविकता से दो दर्जे हटे होंगे। इसी प्रकार मौलिक ग्रन्थों के सम्बन्ध में एक बोर्ड बना दिया जाय जो यह कार्य अपनी देख-रेख में करावे। केन्द्र इसमें प्रान्तों का सहयोग प्राप्त कर कार्य का कुछ भाग स्वयं अपने हाथ में ले ले और कुछ प्रान्तों को सौंप दे। प्रान्तों में किये हुये कार्य को वह स्वयं अपनी स्वीकृति की छाप दे-दे जिससे उनको अखिल भारतीय मान्यता हो जाय। आशा है सरकार इस कार्य को गम्भीरता-पूर्वक विचार कर एक योजना के अनुसार काम कराने का उद्योग करेगी और जो कुछ शब्दावली निर्माण के सम्बन्ध में कार्यवाही हुई है उसे शीघ्र प्रकाशित करने का कष्ट करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ता विश्व-विद्यालय में हिन्दी—

हाल में लखनऊ विश्व-विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डाक्टर दीनदयाल गुप्त का हिन्दुस्तान टाइम्स में एक पत्र प्रकाशित हुआ है जिससे प्रतीत होता है कि भारत के प्रमुख और शायद प्राचीनतम विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यद्यपि विश्व-विद्यालयों में कलकत्ता विश्वविद्यालय को ही सबसे पहले हिन्दी का एम० ए० में स्थान देने का श्रेय है तथापि अभी तक वहाँ हिन्दी को उचित मान्यता नहीं मिली है। वहाँ के कर्मठ, विद्वान और यशस्वी प्राध्यापक अभी लेक्चरर ही के रूप में काम कर रहे हैं। वहाँ हिन्दी का कोई रीडर या प्रोफेसर नहीं है। आशा है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी को उचित स्थान देने के लिए हिन्दी विभाग का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया जायगा और पं० ललिताप्रसाद शुकुल की सेवाओं को भी मान्यता दी जायगी।

खरीदकर पढ़िए—

'खरीदकर पढ़िए' यह नारा अब कुछ लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहा है, क्योंकि इस पर यदा-कदा विचार प्रकाशित होते रहते हैं। इस पर हम अपनी सम्पादकीय टिप्पणी पहले दे चुके हैं। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि खरीदकर पढ़ना एक अच्छी बात है, इससे साहित्यकार को प्रोत्साहन मिलता है, प्रकाशक को अपने व्यवसाय में रुचि आने लगती है और पाठक को पुस्तक का अधिकारी होने का आनन्द ही नहीं मिलता, ऐसी कितनी ही सुविधाएँ मिलती हैं जो अपनी पुस्तक से ही मिल सकती हैं। किन्तु इसके साथ ही कुछ अन्य प्रश्न भी उठ खड़े होते हैं। एक सब से महत्वपूर्ण प्रश्न पुस्तकों के मूल्य का है। हमारे एक पाठक श्री जगदीशकुमारसिंह, साहित्यालङ्कार ने मसाढ़, शाहाबाद, बिहार से हमें पत्र लिखते हुए जहाँ खरीदकर पुस्तक के पढ़ने की अपनी आदत की सूचना दी है, वहाँ उसके कारण हिन्दी साहित्य के बहुत से अंश से अपरिचित रहने की ओर भी संकेत किया है और समस्या को इन शब्दों में स्वयं रखा है—

"हिन्दी के विद्वान कहते हैं—'माँग कर पढ़ना हिन्दी के मार्ग में रोड़े अटकाना है।" परन्तु मेरी समझ से तो महँगी पुस्तक प्रकाशित करना ही हिन्दी के मार्ग में रोड़े अटकाना है। क्या आप कोई ऐसी युक्ति बता सकते हैं, जिसका अवलम्बन कर साधारण पाठक भी हिन्दी की इन महँगी पुस्तकों का रसास्वादन कर सके?"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक पाठक की क्रय-सामर्थ्य सीमित ही होती है। इन सामर्थ्यों की श्रेणियाँ भी होती हैं इसीलिए कितनी ही भाषाओं में एक ही कृति के कई प्रकार के संस्करण प्रकाशित किये जाते हैं। वही पुस्तक 'पैंगुइन पुस्तकमाला' में यदि बारह आने में मिलेगी तो किसी अन्य प्रकाशक के यहाँ वह ३५ या ४० रुपये की भी मिल सकेगी। यदि हिन्दी का पाठक यह निश्चय ही कर लेगा कि वह पुस्तक खरीदकर ही पढ़ेगा तो शीघ्र ही हिन्दी भी सस्ते से सस्ते संस्करण प्रकाशित कर सकेगी। खरीददार बढ़े और मूल्य कम हुआ। सस्ती पुस्तकें पाने का हल भी यही आन्दोलन है। आज तो सामर्थ्यवान भी खरीदकर नहीं पढ़ना चाहता।

परीक्षकों की रिपोर्टों का प्रकाशन विद्यार्थियों के लिए लाभदायक होगा—

आज-कल परीक्षायें चल रही हैं। उनमें बहुत से पास होंगे और बहुत से फेल होंगे। जो विद्यार्थी फेल होते हैं वे अकारण तो फेल नहीं होते, किन्तु वे उन कारणों से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं। यह तो सम्भव नहीं कि विद्यार्थियों को उनकी कापियाँ दिखाई जा सकें, किन्तु यह अवश्य हो सकता है कि विद्यार्थियों की व्यापक भूलें जो प्रत्येक प्रश्न-पत्र के सम्बन्ध में हुई हैं हर साल यूनिवर्सिटियाँ और परीक्षा बोर्ड प्रकाशित कर दिया करें। यूनिवर्सिटियाँ परीक्षकों की रिपोर्ट प्रकाशित करती हैं, किन्तु उनकी पहुँच विद्यार्थियों तक नहीं होती। परीक्षार्थी जो फीस देते हैं उसके फलस्वरूप उनको अपनी परीक्षाओं का परिणाम जानने का तो अधिकार है ही किन्तु उसके साथ यदि उनको शिक्षा के अङ्ग स्वरूप उनकी व्यापक भूलें भी बता दी जाया करें तो वे भविष्य में उन भूलों से बचे रहें। बहुत से विद्यार्थी प्रश्नों के ठीक न समझने के कारण अङ्क खो बैठते हैं। परीक्षक कुछ चाहता है, वे लिखते कुछ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा के पश्चात् यदि उनको किसी प्रकार मालूम हो जाय कि अमुक प्रश्न में उनसे क्या अपेक्षित था तो उनका बड़ा उपकार ही। आशा है कि यूनीवर्सिटी और बोर्ड के अधिकारी इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक ध्यान देंगे।

राष्ट्र-भाषा प्रचार-समिति का सराहनीय कार्य—

भारत में तो राष्ट्र-भाषा प्रचार-समिति अपना कार्य कर ही रही है, अब सूचना मिली है कि इस समिति के परीक्षा-केन्द्र दक्षिण-अफ्रीका और पूर्वी अफ्रीका में भी हैं। अन्डमान और निकोबार में भी उसके केन्द्र हैं, और लन्दन तथा लङ्का में भी राष्ट्र-भाषा हिन्दी के लिए प्रयत्न होते रहते हैं। यह अभिनन्दनीय है।

सुदूर दक्षिण से एक खत—

श्री टी० गङ्गाधर मेनन बी० ए०, रा० भा० बिशारद, पट्टाम्बी, दक्षिण मलाबार से एक पत्र हमें मिला है। पत्र-लेखक ने चाहा है कि उनका पत्र विचारार्थ साहित्य-संदेश में प्रकाशित कर दिया जाय। किन्तु उसका अधिकांश भाग 'साहित्य-सन्देश' से सम्बन्धित है, जिसमें उन्होंने यह चाहा है कि साहित्य-सन्देश (१) लेखकों का परिचय भी दिया करे, (२) नयी प्रवृत्तियों का परिचय और अधिक दिया जाय, (३) प्राचीन कवियों के जो उद्धरण लेखों में दिये जायँ उनके अर्थ पाद-टिप्पणियों में दे दिये जायँ और चौथी बात उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :—

चौथी बात यह है कि जबकि भारतीय संविधान में हिन्दी को राज-भाषा के तौर पर स्वीकार करते हुए राष्ट्र-भाषा में प्रयुक्त होने के लिए "भारतीय-अङ्कों के अन्तर्राष्ट्रीय-रूप" को मान्यता दी गयी है, साहित्य संदेश जैसी प्रमुख हिन्दी-पत्रिकाओं को, जो दिवानिश हिन्दी की उन्नति व प्रचार के लिये आवाज बुलन्द कर रही हैं, संविधान के उस निर्देश की ओर आँखें मूँदना नहीं चाहिये था। यदि आप लोग अब भी अङ्क सम्बन्धी झगड़े में कट्टरता प्रकट करते हैं तो सङ्कुचित-बुद्धि रखने वाले दक्षिण के कुछ विच्छिन्न-वादियों का हिन्दी-विरोध भी अर्हणीय और निन्दा के लायक न होगा। क्योंकि ये दोनों दल हमारे विधान को मानने और आदर करने को तैयार नहीं हैं। कोई पूरे तौर पर और कोई आंशिक रूप में! दोनों असल में एक ही पलड़े पर हैं। एक राई का चोर है तो दूसरा हाथी का। इतना ही फरक है। यह विपत्ति-जनक हालत है। इसलिये हमें विचारणीय यह है कि हमें देश में सर्वत्र प्रचलित और राष्ट्र के विधान से निर्देशित अङ्क का आदर करना चाहिये या विधान का अपमान करके राष्ट्र-भाषा के ही विरोधियों के साथ आंशिक रूप से मिलना चाहिये।"

पत्र-लेखक ने जो यह कहा है कि "ऐसी हालत में और जबकि हिन्दी केवल हिन्दी वालों की ही चीज न रहकर सारे राष्ट्र की चीज बन रही है और आपका साहित्य-सन्देश भी साथ साथ सारे राष्ट्र की चीज बन रहा है।" यथार्थ है और हम इस दृष्टि से भी प्रमाद नहीं कर रहे।

किन्तु चौथी बात से हम सहमत नहीं। संविधान देवनागरी अङ्कों को अस्वीकार नहीं करता। अङ्क भी देवनागरी लिपि में आते हैं। हिन्दी भाषा जहाँ केवल राजकीय कार्य के उपयोग में आयेगी वहाँ अवश्य अङ्क रोमन-लिपि के लिखे जायेंगे। इसी दृष्टि से साहित्यिक-पत्र साहित्य-संदेश देवनागरी अङ्कों का उपयोग करता है।

साथ ही जब संविधान हिन्दी को राष्ट्र-भाषा स्वीकार करके भी प्रत्येक प्रादेशिक भाषा के स्वरूप तथा प्रवृत्तियों की सुरक्षा की प्रतिष्ठा करता है तो मातृ भाषा हिन्दी की प्रवृत्तियों की भी उसे रक्षा करनी होगी। साहित्य-सन्देश राष्ट्र-भाषा हिन्दी का ही नहीं, मातृ-भाषा हिन्दी की प्रवृत्तियों का भी पोषक है।

आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी महासभायें—

१९५३ मार्च १८ व १९ को गुंटूर में आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी महासभा का २० वां अधिवेशन और १७ वाँ आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार सम्मेलन अत्यन्त वैभव के साथ मनाये गये। हिन्दी महासभा का उद्घाटन मद्रास के महामहिम राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजी ने किया और आन्ध्र के गण्यमान्य नेता श्री गाड़िचर्ल हरिसवा[illegible] राव ने अध्यक्षासन ग्रहण किया। आ० रा० हिन्दी प्रचार सम्मेलन का उद्घाटन दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मन्त्री श्री मो० सत्यनारायण ने किया और श्री दुर्गिराल बलराम कृष्णय्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। आन्ध्र प्रान्त के सभी जिलों से हिन्दी प्रचारक, हिन्दी पण्डित और हिन्दी प्रेमियों ने प्रतिनिधियों के रूप में सभा में भाग लिया जिनमें स्त्रियाँ भी थीं।

महासभा का उद्घाटन करते हुये मद्रास के महामहिम राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश ने अपने भाषण में तीन बातों पर विशेष जोर दिया—

१—"यह तो मानी हुई बात है कि देश की एकता को बनाये रखने के लिए सारे देश के लिए, जहाँ भिन्न-भिन्न भाषायें बोली जाती हैं, एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है। पर इस आवश्यकता को लेकर हिन्दी भाषा-भाषी अपनी हिन्दी को दूसरे भाषा-भाषियों के ऊपर लादना चाहें तो यह अनुचित होगा। प्रेम व सहृदयता के साथ इसका प्रचार बढ़ाना चाहिए।"

२—"दूसरी बात यह है कि जब दूसरे भाषा-भाषी अनिवार्य रूप से हिन्दी सीखते हैं तो हिन्दी भाषा-भाषियों को भी कोई एक प्रान्तीय भाषा अनिवार्य रूप से सीखनी चाहिए।"

३—"बहुत से लोग चाहते हैं कि हिन्दी प्रचार कार्य में सरकार के द्वारा सहायता मिले। कोई भाषा शासन के द्वारा आगे नहीं बढ़ सकती। इसके अलावा दक्षिण में भाषा के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। द्रविड़ वाले हिन्दी का नाम सुनते ही ऐसे भड़कते हैं जैसे लाल कपड़े को देख कर साँड़ भड़कता है। ऐसी हालत में मेरे लिए यही अच्छा है कि हिन्दी के सम्बन्ध में मैं कुछ न बोलूँ।"

महासभा के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए श्री गडिचर्ल हरिसर्वोत्तम राव ने अपने भाषण में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार कार्य में सरकारी सहायता के अभाव की आलोचना की और दक्षिण में प्रचार के कार्य की फिर भी अच्छी प्रगति की सूचना देते हुए दो बातें विशेषतः प्रस्तुत कीं—

(१) एक समय था जब कि आन्ध्र-प्रान्त के बहुत से लोग तेलुगु भाषा से परिचय न रखते हुये भी हिन्दी सीखने लगे थे। यह ठीक नहीं था। उस गलती को ठीक करते हुये हमने इस सिद्धान्त को ग्रहण किया कि मातृ भाषा का स्थान पहला है, राष्ट्र भाषा का दूसरा और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा (अंग्रेजी) का स्थान तीसरा है। मनुष्य की प्रवृत्ति को जो अच्छी तरह जानते हैं वे इस क्रम को बदल नहीं सकते।

(२) तमिल प्रान्त में हिन्दी के प्रति विरोध बढ़ रहा है। वहाँ द्रविड़ कषगम नामक एक संस्था कायम हुई जो भारत से अलग होकर स्वतन्त्र द्रविड़ स्थान कायम करना चाहती है।

सम्मेलन के अध्यक्ष श्री दक्षिणात्य बलराम कृष्णय्या ने कई महत्वपूर्ण बातें कहीं, जिन पर ध्यान देना चाहिए—

"आजकल बहुत से प्रमुख नेता कहते हैं कि हिन्दी को किसी के ऊपर जबरदस्ती नहीं लादना चाहिये। पर जिस अंग्रेजी को हम निकालना चाहते हैं उसे तो आज भी हाईस्कूलों में अनिवार्य रूप से पढ़ाया जा रहा है, पर हिन्दी को आज तक परीक्षा का विषय भी नहीं बनाया गया है। अगर कोई हिन्दी को ऐच्छिक विषय के रूप में ले तो उसे हिन्दी में परीक्षा देने की आवश्यकता नहीं होती, उसे वह पढ़े या न पढ़े, परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है। अगर हम कहें कि हिन्दी को अनिवार्य व परीक्षा का विषय बनाया जाता तो अनुचित है। अंग्रेजी क्यों अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है? क्या यह जबर्दस्ती नहीं है? हिन्दी की वृद्धि नहीं होगी बल्कि इसके प्रति उदासीनता और भी बढ़ेगी।" उनके भाषण के इस अंश के मर्म को हमारे केन्द्रीय-शिक्षा-विभाग को हृदयङ्गम करने की आवश्यकता है। उक्त समस्त भाषणों से हिन्दी-विषयक दक्षिणी मनोवृत्ति का स्पष्टीकरण हो जाता है। संविधान ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा स्वीकार किया है, नहीं स्वतन्त्रता से बहुत पहले ही काँग्रेस ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा माना था और गान्धीजी ने इसीलिए दक्षिण में हिन्दी-प्रचार में इतनी रुचि दिखायी थी। देश की एकता की आवश्यकता को यदि दक्षिण नहीं समझता और महत्व नहीं देता तो देश का दुर्भाग्य ही होता। हिन्दी हिन्दी-वालों के कहने और आग्रह मात्र से राष्ट्र-भाषा नहीं बनती, उसके साथ भारत की ऐतिहासिक प्रगति की जो पृष्ठ भूमि है उसे समझना चाहिए। जो उसे नहीं समझ पा रहे वे ही देश का घात करने के लिए ऐसी बातें कहते और करते हैं जिनका वस्तुतः कोई अर्थ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य भामह : अलङ्कारवाद और रसवाद

श्री लाल रमायदुपालसिंह एम० ए०, एल एल० बी०, साहित्याचार्य

हमारी सौन्दर्य-मीमांसा का प्रभात काश्मीर की उन उपत्यकाओं में हुआ जिनमें हिमालय 'देवतात्मा' बन चला था और 'वनदेवता का शृङ्गार' अपने चरम पर था; जहाँ आज भी 'स्वर्णकमल' खिलते हैं, 'भ्रमर वंशी' सुनने को मिलती है और 'सौरभ और पराग की चहल-पहल' दिखाई देती है और जिनके मुकुर निर्मल हिमसङ्घात में स्वर्ग अपनी छवि सर्वदा देखता रहेगा। उपवनों में नन्दन, सरितों में मन्दाकिनी, विटपों में पारिजात तथा प्राणवानों में रति-काम की प्रतिमूर्तियाँ नयनगोचर होती हैं।

ऐसे उस मूर्त सौन्दर्य के स्वर्ग में काव्य-सौन्दर्य के राजकुमार भामह ने अपनी रमणीयोन्मेषिणी आँखें खोलीं। लोनी लताओं के नर्तन, ऊर्मिमालाओं के गायन तथा शीतल समीर की वंशी ने उसका स्वागत किया। कवि के स्वप्नों को मूर्त देखने वाले उस मनीषी को उसके हृदय के अन्तराल-अन्तराल को विवेचना की वाणी प्रदान करने में कोई भी कठिनाई न महसूस हो सकी।

भामह के हृदय की साहित्य की कमनीयता परखने की एक सहज शक्ति प्राप्त हुई। यद्यपि उनके पहले भी मेधाविन् रामशर्मन् आदि ने काव्य-सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किए थे, पर वे सारी कृतियाँ आज अन्धकार की मोटी तहों में विलीन हो चली हैं। आज का उपलब्ध वाङ्मय तो भामह को ही आद्य अलङ्कारिक के रूप में सिंहासन पूजा प्रदान करता है।

उस अलङ्कार-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक का ऐतिह्य भी काल-कवलितप्राय ही है। इतना ही अन्तःसाक्ष्य के आधार पर जाना जा सकता है कि वह 'रक्तिलगोमिन्' का पुत्र था और था 'सर्वज्ञ सार्व' (शार्व) का भक्त। उनका समय अभी तक पूरी तरह नहीं निर्धारित किया जा सका है।

काल-निर्णय—इधर संस्कृत साहित्य का एक साङ्गोपाङ्ग नवीनतम इतिहास निकला है। लेखक हैं संस्कृत के प्रख्यात विद्वान् डा० सु० ना० दास गुप्त और डा० सु० कु० दे। इन्होंने भामह को ईसा की अष्टम शतक में रखा है। आधार केवल दो हैं:—

(१) भामह के न्याय सम्बन्धी अंश पर डा० याकोबी के अनुसार आचार्य धर्मकीर्ति का प्रभाव।

(२) परिणामतः एक और अनुमान कि भामह ने महाकवि भट्टि की कटु समीक्षा की है।

जहाँ तक पहले प्रमाण का प्रश्न है मुझे यही कहना है कि ग्रन्थकारों की तीव्र दृष्टि श्री ब० ना० शर्मा और श्री व० उपाध्याय की 'काव्यालङ्कार की भूमिका' उपेक्षित ही रही अन्यथा डा० याकोबी के प्रमाणों के वैसे तर्कसङ्गत खण्डन के अनन्तर फिर से दुहराने की आवश्यकता न प्रतीत होती। उनका निष्कर्ष संक्षेप से यह है।

"वे थोड़ी बातें जिनका निर्देश ऊपर किया गया है किसी भी निष्पक्ष आदमी को यह मनाने के लिए कि भामह पर धर्मकीर्ति का प्रभाव सम्भव नहीं और चाहे जो हो बहुत काफी हैं।"

भामह ने इन न्याय-सम्बन्धिनी बातों को आचार्य वसुबन्धु और दिङ्नाग से लिया था। ये गुरु-शिष्य, जैसा कि डा० विद्याभूषण ने अपने 'भारतीय न्याय के इतिहास' में सिद्ध किया है, पाँचवीं शताब्दी ई० में विद्यमान थे। अतः आचार्य भामह निश्चित रूप से ५०० ई० के बाद के हैं।

साथ ही जहाँ तक द्वितीय के दूसरे तर्क की युक्ति-युक्तता का प्रश्न है मुझे यह बहुत ही शोक के साथ कहना पड़ता है कि वह एकदम 'असमीक्ष्यविनिवेशित' है। सत्य इसके बिल्कुल विपरीत है। भट्टि ने ही भामह का साहित्यिक प्रत्याख्यान किया है।

भामह का तो प्रसङ्गतः कोई सम्बन्ध भी भट्टि से नहीं माना जा सकता। क्योंकि उनका उद्देश्य तो यमक अलङ्कार का विश्लेषण मात्र है। 'प्रतीतशब्दता' के प्रसङ्ग से उन्होंने यमक कही जाने वाली 'प्रहेलिका' बनाने की प्रवृत्ति पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ोर आघात किया है जिसे 'रामशर्माच्युतोत्तर' में प्रकाश-प्रश्रय दिया गया था। इन रचनाओं का अर्थ प्रयुक्त धातु के बहुतेरे अर्थ होने के कारण गम्भीर हो जाता है। ऐसी प्रचलित उन्हें सह्य नहीं। वे सरल और सुबोध शब्दों के यमक के हिमायती हैं। अतः ऐसी रचनाओं के सम्बन्ध में उनका कहना है कि "अगर ये काव्य भी शास्त्रों की तरह बिना टीका के न समझ में आ सकने लायक हुये तब मौज तो रही पण्डितों की और कम समझ बेचारे मारे गए"—

प्रतीत शब्द ओजस्वि सुश्लिष्टाद सन्धि च।
प्रसादि स्वभिधानस्य यमकंकृतेनाम्मतम् ॥१८॥
नानाधात्वर्थगम्भीरा यमकव्यपदेशिनी।
प्रहेलिका सादुदता रामशर्माच्युतोत्तरे ॥१९॥
काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ॥२०॥
(काव्यालङ्कार—द्वि० परि०)

जबकि भट्टि ने निम्न पद्य अपने महाकाव्य के २२ वें सर्ग में अपनी रचना का गुण-गान करते हुए लिखा है:—

'व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम्।
हता दुर्मेधसश्चास्मिन् विदुषिप्रियतया मया ॥'

[विदुषिप्रिय होने के नाते मैंने इसमें कमसमझों की मौत बुलाई है क्योंकि यह काव्य बिना व्याख्या के नहीं समझ में आ सकने लायक है, पंडित लोग खूब खुशियाँ मनाएँ।]

इस रचना में जान-बूझकर लाए गए 'व्याख्यागम्यं', 'काव्यं', 'उत्सवः', 'सुधियां', 'दुर्मेधसः, और 'हताः' शब्द इस बात के प्रमाण हैं कि भट्टि ने भामह की उक्त प्रसङ्गोपात्त समीक्षा पर इस कटाक्ष किया है। भामह को डा० दासगुप्त के अनुसार व्याख्या उचित मान ली जा सकती थी। यदि उन्होंने 'रामशर्माच्युतोत्तरे' बिलकुल स्पष्ट न लिख दिया होता। इस प्रकार तो सन्देह को कोई अवकाश ही नहीं रह जाता। भामह निश्चय ही भट्टि के पूर्ववर्ती थे। भट्टि का काल श्रीधर सेनों के राज्यकालानुसार ५००–६५० ई० के बीच माना जाता है। इस प्रकार भामह छठी सदी ईसवी के पूर्वभाग में विद्यमान रहे होंगे। दिङ्नाग के थोड़ा पीछे और भट्टि से कुछ पूर्व।

अलङ्कारवाद और रसवाद:—

आचार्य भामह ने काव्य का केवल एक सीधा-सादा लक्षण भर किया है। "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"—शब्द ब्रह्मवादी आलङ्कारिकों को छोड़ काव्य का यह लक्षण सर्वसम्मत है। दण्डिन, उद्भट, रुद्रट, मम्मट, विश्वनाथ, भोज आदि सभी इस मामले में एकमत हैं। 'शब्दार्थ-साहित्य' को सभी काव्य मानते हैं। अन्तर है तो इतना कि वे 'विशिष्ट' पद और जोड़ देते हैं। और फिर 'विशिष्ट' का वे जैसा कि समुद्रबन्ध ने दिखाया है, विविध अर्थ करते हैं। पर आचार्य भामह को 'शब्दार्थ-साहित्य'—विशिष्ट या अविशिष्ट कैसा स्वीकार्य था, कहना अत्यन्त कठिन है। अधिकांश अलङ्कार-शास्त्री भामह को अलङ्कार-वादी मानते हैं। पर सत्य क्या है इसे इन पृष्ठों में विश्लेषित करने का प्रयास किया जायगा।

भामह ने काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है। और अलङ्कारवाद या रसवाद का अर्थ सीधे-सीधे काव्य की आत्मा पर ही आश्रित है। जिस मत में अलङ्कार को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया जाता है उसे 'अलङ्कारवाद' और जिसमें रस को वह स्थान प्रदान किया जाता है उसे 'रसवाद' कहा जाता है। यही बात वक्रोक्तिवाद आदि अन्य वादों के लिये भी सच है। इसलिए मोटे रूप से भामह को किसी भी वाद के शिकंजे में पूरी तरह नहीं कसा जा सकता।

साथ ही भामह ने न तो 'अलङ्कार' का कोई लक्षण किया है और न अलङ्कारों के स्थान को ही काव्य में महत्व प्रदान किया है। एक कारिका ऐसी अवश्य 'काव्यालङ्कार' में उपलब्ध होती है जो काव्य में अलङ्कारों के स्थान पर पर्याप्त प्रकाश डालती है:—

'गिरामलङ्कारविधिः सविस्तरः
स्वयं विनिश्चित्य धिया मयोदितः।
अनेन वागर्थविदामलङ्कृता
विभाति नारीव विदग्धमण्डना ॥'

[मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार खुद अच्छी तरह सोच समझ कर विस्तारपूर्वक वाणी के अलङ्करणों का विवरण दिया है। अर्थज्ञ (कवियों) की वाणी इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण उसी तरह विशेष रूप से सुशोभित होती है जैसे आभूषण डाल लेने पर तरीके से 'मेक अप' करने वाली महिला।]

मतलब यह कि अलङ्कार भामह के अनुसार, सिर्फ वाणी की ही विशेष कर देते हैं (अनेन विभाति) अर्थात् ये शोभावर्द्धक हैं। शोभोत्पादक भी नहीं। मात्र वृद्धि भी ठीक आभूषणों के सदृश ही करते हैं। और हम जानते हैं कि यह स्थिति रसवादियों को भी मान्य है। आनन्दवर्द्धन के शब्दों में :—

"अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत्।"

इस प्रकार काव्य में अलङ्कारों के स्थान की दृष्टि से भामह और रसवादी के मतों में कोई अन्तर नहीं।

जहाँ तक काव्य में गुण के शोभाकरत्व की प्रश्न है रसवादी भी माधुर्य, ओजस और प्रसाद को 'उत्कर्ष-हेतु' मानता है और साथ ही भामह भी। रसवादी कहता है:—

"रसोत्कर्ष हेतवः प्रोक्ताः गुणालङ्कारीतयः।"

भामह भी माधुर्य और प्रसाद से युक्त काव्य को अभीष्ट मानते हैं:—

"श्रव्यवृत्तिसुखान्तार्थं काव्यं मधुर मिष्यते।
आविद्ध दहनावान्त प्रतीतार्थं प्रसादवत्॥"

इस दृष्टि से भी रसवादी और भामह दोनों एक हैं। अब हम इस विषय पर विचार करेंगे कि भामह रस को काव्य में कैसा स्थान देते हैं। साधारणतः रस को भामह 'रसवद्' में सीमित देखते अवश्य हैं; पर यह बहुत बड़ी भूल होगी यदि उनके दृष्टिकोण को हम एक अलङ्कारवादी की दृष्टि तक सीमित मान लेंगे। जैसा कि निम्नलिखित कारिका से स्पष्ट है। वे रस को काव्य के एक बहुत ही महत्वपूर्ण अङ्ग के रूप में स्वीकार करते हैं। यहाँ तक कि शायद उसे काव्य के सञ्जीवन तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं—

"स्वादु काव्य रसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपयुञ्जते।
प्रथमालीढमधवः पिबन्ति कटुभेषजम्॥"

कितनी अगर श्रद्धा है रस के प्रति! यही वह तत्त्व है जो कि शास्त्र जैसे निर्जीव विषय को भी स-प्राण-सजीव कर देता है। कटुता के लिए मधु है। भामह की दृष्टि में 'काव्य-रस' निश्चित रूप से रचना को अनुप्राणित कर देने वाला तत्त्व है। उन्होंने और किसी काव्यतत्त्व को इतने महत्त्व का नहीं माना है। अलङ्कार (और गुण) शोभा के बढ़ाने वाले हैं जब कि रस उसे उत्पन्न करता है। यहाँ तो असुन्दर को सुन्दर करने का प्रश्न है। सुन्दर में सौन्दर्योत्पादक तत्त्व होने की तो बात ही बेकार। भामह यहीं नहीं रुक जाते। उन्होंने रस को महाकाव्य के लिए भी आवश्यक ठहराया है जो है उनकी दृष्टि में—"महताञ्च महत्।" उस 'महानों से महान्' काव्य में भी रस की महत्ता उसे मान्य है—

"युक्तं लोक स्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।"

इस प्रकार आचार्य भामह और एक पक्के रसवादी में अन्तर है तो केवल इतना ही कि रसवादी रस को काव्यात्म का स्थान खुल्लमखुल्ला प्रदान करता है जब कि हमारे आचार्य आलङ्कारिक ऐसा कहीं नहीं करते। पर शब्दान्तरेण वे उसे आत्मा से कम महत्त्व का तत्त्व नहीं मानते। इस वस्तु को हम विकास के प्रथम सोपान के रूप में भी देख सकते हैं।

वास्तव में कहानी अङ्क में कहानी साहित्य की पूर्ण सामग्री है। हिन्दी साहित्य की प्रगति के लिये उसके विविध अङ्ग पर इस प्रकार के विशेषाङ्क निकालना आवश्यक है। आपके इस प्रयास के लिये हार्दिक बधाई!

—अम्बाप्रसाद पाण्डेय एम० ए०
प्रिंसिपल, श्री राधाकृष्ण उ० मा० विद्यालय,
उमानगर, फैजाबाद।

* * * *

कहानी अङ्क देखा। छोटे छोटे निबन्धों का अच्छा चयन है। इस सीमा में इससे अधिक सामग्री की आशा नहीं की जा सकती है। हिन्दी के विद्यार्थियों का इससे बड़ा लाभ होगा। मैं आपके प्रयत्न का साधुवाद करता हूँ।

पाश्चात्य साहित्य में इधर कहानी-साहित्य पर जो महत्वपूर्ण अध्ययन किए गये हैं, या अन्य साहित्य-रूपों पर जो कुछ हो रहा है, इन प्रगतियों से परिचित होने का एक सुन्दर माध्यम भी यह सर्वाधिक लोकप्रिय आलोचना पत्रिका ही हो सकती है। आशा है, इस ओर आप थोड़ा भी ध्यान अवश्य देंगे।

—सिद्धेश्वरप्रसाद, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य-दोषों पर हिन्दी का एक महत्वपूर्ण रीतिग्रन्थ

डा० भोलाशङ्कर व्यास, एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री

भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने कविता-कामिनी के अङ्गोपाङ्गों का विवेचन करते समय उसके लावण्य विघातक दोषों का भी विवेचन किया है। ये दोष काव्य के सौन्दर्य रूप-रस की प्रतीति में विघ्न उपस्थित कर काव्य को निम्न कोटि का सिद्ध करते हैं। अतः कवित्व की पराकाष्ठा इसी में है कि यथावश्यक इनसे काव्य को अछूता रक्खा जाय। वैसे तो दोषों का संकेत भरत, भामह तथा दण्डी में भी पाया जाता है, किन्तु दोषों की कल्पना तथा भेदोपभेदों की जो सैद्धान्तिक सरणि व्यक्ति विवेक के लेखक महिम भट्ट ने दी, वही भारतीय साहित्यशास्त्र में बद्धमूल हो सकी। व्यक्ति विवेक के द्वितीय विमर्श में महिम ने अर्थ विषयक अनौचित्य का विवेचन दिया है। इनको फिर से अन्तरङ्ग (रसदोष) तथा बहिरङ्ग इन दो भेदों में बाँटा है तथा पुनः उनका वर्गीकरण किया गया है। महिम भट्ट का ऋण मम्मट के काव्यप्रकाश में स्पष्टतः प्रतिबिम्बित है। यही नहीं, विधेयाविमर्श आदि नामकरण जो महिम भट्ट ने किये हैं, साहित्य-शास्त्र में रूढ़ बन गये हैं। आगे जाकर विश्वनाथ आदि आलङ्कारिकों ने मम्मट के ही मार्ग पर काव्य-दोषों का विश्लेषण किया है।

हिन्दी के रीति-ग्रन्थों के लिए कई आचार्यों का मत है कि अधिकतर हिन्दी आलङ्कारिकों ने दोषों का विवेचन नहीं किया है। इतना होते हुए भी मुझे एक ग्रन्थ ऐसा मिला है जो पूरा का पूरा काव्यदोषों पर ही लिखा गया है। इस ग्रन्थ का हवाला नागरी प्रचारिणी की खोजों में भी पाया जाता है, और नाम का संकेत डॉ० भगीरथ मिश्र ने भी 'हिन्दी काव्य-शास्त्र के इतिहास' में किया है। डॉ० मिश्र ने इस ग्रन्थ के न मिलने के कारण इसका विवरण नहीं दिया है। यह ग्रन्थ है ग्वाल कवि का 'कवि-दरपन' (कवि-दर्पण)। यह ग्रन्थ छः 'कान्तियों' में विभक्त है, तथा अन्त में एक पूरा परिच्छेद प्रश्नावली का है। ग्रन्थ में लक्षण दोहे में है, तथा स्थान-स्थान पर संस्कृत के ढङ्ग की खण्डन-मण्डन शैली का आश्रय लेकर विषय को वार्ता (गद्य) के द्वारा भी स्पष्ट किया गया है। ग्वाल कवि ने दोषों के लक्षणों को लेते हुए सर्वप्रथम अन्य आचार्यों के लक्षणों का उल्लेख किया है तथा उनमें दोष बताकर अपने निजी लक्षण दिये हैं। उदाहरणों के रूप में हिन्दी प्रमुख कवियों (केशव, बिहारी आदि) के पद्यों को लेकर उनमें दोष दिखाये हैं, तथा उनको शुद्ध कर निर्दुष्टरूप भी दिया है। ग्रन्थ एक विशाल कलेवर कृति है, तथा काव्य दोषों ही पर स्वतन्त्र रूप से लिखा गया ऐसा ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में भी नहीं है।

प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक ग्वाल कवि हैं, तथा इसकी रचना मथुरा में संवत् १८९१ में हुई है। जैसा स्वयं लेखक लिखता है :—

बन्दी विप्र सु ग्वाल कवि श्री मथुरा सुषधाम।
प्रगट कियो या ग्रन्थ को कवि-दरपन यह नाम॥
संवत् ससि निधि सिधि ससी आस्विन उत्तम मास।
बिजै दसमि रवि प्रगट हुत कवि-दरपन परकास॥
—(१-३-४)

ग्रन्थ की योजना बड़ी महत्वपूर्ण है, तथा इसको छः 'कान्तियों' (परिच्छेदों) में विभक्त किया गया है:—

(१) पदपदांस दोस निर्नय (पदपदांश दोष निर्णय)
(२) वाक्य दोष निर्णय।
(३) अर्थ दोष निर्णय।
(४) रस दोष निर्णय।
(५) दोषैकता करण नियम।
(६) दूषणोद्धार वर्णन।

इसके बाद एक लम्बी प्रश्नावली है, जिसमें काव्यदोषों पर पुनः प्रकाश डाला गया है।

काव्य के दोषों की हेयता का हवाला मम्मट अपनी काव्य की परिभाषा* में 'अदोषौ' विशेषण के द्वारा दे चुके

* तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यह 'अदोषौ' विशेषण साहित्य-दर्पणकार के खण्डन का कारण बना है। वस्तुतः अच्छे से अच्छे कवियों की रचनाएँ भी सदोष पाई जाती हैं, तथा कई सुन्दर रस एवं ध्वनि युक्त काव्यों में दोष पाया जाना ही उसके लावण्य को बिलकुल नष्ट नहीं कर देता। तो इस 'अदोषौ' का अर्थ 'दोषों का सर्वथा अभाव' है या 'कम दोषों का होना' (ईषदर्थे नञ्) है। यदि पहला अर्थ लिया जायगा, तो अच्छे-अच्छे काव्य भी अकाव्य सिद्ध हो जायँगे, तथा काव्य की कसौटी पर खरे उतरने वाले पद्य कुछ ही मिलेंगे। अगर दूसरा अर्थ लेंगे तो सर्वथा दोषरहित काव्य, काव्य न हो पायँगे क्योंकि लक्षण में 'ईषद्दोषवत्' विशेषण मान लिया जाता है। वस्तुतः काव्य के तारतम्य में दोषों का वही स्थान है, जो रत्न के मूल्य करते समय कीड़े आदि से लगे होने का। कीड़े से लगे होने से रत्न का रत्नत्व नष्ट नहीं हो जाता, हाँ उसकी कीमत में फर्क जरूर पड़ जाता है। इसी तरह काव्य में दोष होने से काव्यत्व नष्ट नहीं हो जाता, उसके मूल्य में ही अन्तर होता है। कहा है—

कीटानुविद्धरत्नादि साधारण्येन काव्यता।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाध्यनुगमः स्फुटः॥

कवि ग्वाल के सम्मुख यह प्रश्न ग्रन्थ के आरम्भ में ही उपस्थित हुआ है। वे पूछते हैं क्या दोष के कारण काव्य काव्य नहीं, क्या दोष के कारण कवि कवित्व से च्युत हो जाता है? इसका निर्णय ग्वाल यों देते हैं कि कवि की समस्त कृतियों में यदि आधी कृतियों में दोष हो तो वह दोष है, पर न्यून अंश में दोष होने पर दोष नहीं माना जाना चाहिए।

जाके सिगरे ग्रन्थ में आधे दोषि कवित्त।
ताके सब ही कवित अरु कवि हू दूषित नित्त॥
जे कहुँ सिगरे ग्रन्थ में परै पाँच मैं दोष।
तौ तिन ही मैं जानिये कवि को गिनौ अदोष॥
(१—१०—११)

काव्य में कतिपय दोषों की सत्ता कवि की निकृष्टता को द्योतित नहीं करती, क्योंकि जो अधिक वर्णन करते हैं, वे कभी कभी चूक भी जाते हैं।

तुरी को चढ़ैया जैसे तुरी को नचावे नित्त,
जो पैं गिरयो कबहूँ तौ इलम कटै नहीं।
तान कौ मिलैया जैसे तानन मिलायौ करै,
कबहुँक मिलौ न तौ प्रमान सु हटै नहीं॥
ग्वाल कवि पण्डित परम तापैं काइ समै,
आई इक बातन तौ पण्डित मिटै नहीं।
कवि के कवित्त मुक्ताहल से साँचे लाख,
तामैं एक झूँठो मिलै पानिय घटै नहीं॥
(१—१३)

ग्वाल कवि ने दोष के लक्षण पर विशेष विचार किया है। इसके पहले कि हम उसके लक्षण को लें, मम्मट व विश्वनाथ के लक्षणों को देख लें। मम्मट के मतानुसार काव्य के मुख्यार्थ को विघ्न पहुँचाने वाले दोष होते हैं। रस मुख्य अर्थ है अतः अर्थ तथा उसके उपयोगी शब्दों के दोष भी काव्य के दोष माने जाते हैं।

मुख्यार्थहतिर्दोषो रसस्तु मुख्यस्तदाश्रमाद्वाच्यः
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दशयास्तेन तेष्वनि सः॥
(का० प्र० ७—१)

ग्वाल कवि सर्वप्रथम कवि वल्लभकार के मत का खण्डन करता है, जो काव्य के आत्मस्वरूप रस को पुष्ट करने वाले तत्वों को दोष मानते हैं। इसमें ग्वाल अव्याप्ति दोष मानते हैं, तथा बताते हैं कि इस लक्षण में पद, वाक्य तथा अर्थ-विषयक दोषों का समावेश नहीं होता। अन्त में ग्वाल कवि अपना लक्षण यों देते हैं :—

सुनत और समुझत समै नियमवान आनंद।
ताकौं जो रोकै दुषद सो दूषन बुधवृंद॥
(१—२०)

(टीका) "पद औ वाक्य कै सुनत समै औ अर्थ औ रस के समुझत समै नियम कहिये जो आदि तैं बरन नै मर्जाद बाँधा है की यैसी ठौर यैसौ कहनो यैसो न कहनो ये जो नियम ताको जो आनंद सो नियमरू आनंद ताकौं रोके सो दुषद याते दोष कहिये।"

प्रथम कान्ति में पद तथा पदांश विषयक श्रुतिकटु आदि १३ पद-दोषों का वर्णन किया गया है। इसी के साथ वाक्य के उन दस दोषों का भी उल्लेख है जो पद-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषों के समान ही है। पद के दोष हैं—श्रुतिकटु, गत-संस्कृत (च्युत संस्कृति), अप्रयुक्त, असमर्थ, निहतार्थ, अनुचितार्थ, निरर्थक, अवाचक, ३ अश्लील, संदिग्ध, अप्रतीत, ग्राम्य तथा नेयार्थ। इनमें वाक्य में च्युतसंस्कृति, असमर्थ तथा निरर्थक ये तीन दोष नहीं पाये जाते। ग्वाल ने इन दोषों के कई कवियों से उदाहरण दिए हैं तथा कई को शुद्ध भी किया है। यहाँ एक पद-दोष का उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

जोग जुगति सिखये सबै मनो महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता कानन सेवत नैन॥

बिहारी के इस दोहे में 'अद्वैत' पद में श्रुतिकटु दोष बताया गया है। ग्वाल ने यह भी बताया है कि इस दोहे के इसी पद में 'कवि वल्लभ हूर' अप्रतीत दोष मानते हैं, क्योंकि अद्वैत पद वेदान्त शास्त्र में ही प्रसिद्ध है। ग्वाल कवि भी यह दोष मानते हैं। इस दोहे को वह "चाहत पियसों एकता" यह शुद्ध रूप देते हैं। हमारा निजी मत यह है कि यहाँ श्रुतिकटुत्व तो है, किन्तु अप्रतीतत्व नहीं, क्योंकि वेदान्त प्रसिद्ध अर्थ की ज्ञप्ति कराना भी यहाँ कवि को अभीष्ट है, तभी तो यहाँ 'कानन' के श्लिष्ट शब्द का तथा 'योग' एवं 'महामुनि' शब्दों का प्रयोग हुआ है।

द्वितीय कान्ति में वाक्य-दोषों का विवेचन है। पद-दोषों तथा वाक्य-दोषों में यह भेद है कि पद दोषों में दुष्टता केवल किसी पद में होती है, जब कि वाक्य दोषों में दुष्टता सम्पूर्ण वाक्य में होती है, जैसे बिहारी के निम्न दोहे में अधिक पद-दोष है—

रनित भृङ्ग घंटावली झरत दान-मधु नीर।
मंद मंद आवत चलत कुंजर-कुंज समीर॥

यहाँ 'नीर' शब्द अधिक है, किन्तु इसके पद-दोष न होकर वाक्य दोष ही है, क्योंकि वाक्य में यह पद अधिक है। इसका ज्ञान अन्वय के बाद ही हो जाता है। ग्वाल कवि ने इसे "झरत दान-मधु-भीर" इस प्रकार शुद्ध किया है।

तृतीय कान्ति में अर्थ दोषों पर विचार किया गया है। ये दोष काव्य के वाच्यार्थ में पाये जाते हैं। जैसे, निम्न-दोहे में विरुद्ध दोष है—

तिय मुख लखि हीरा जड़ी बेंदी बढ़ै विनोद।
सुत सनेह मानो लियो विधु पूरन बुध गोद॥

इसमें नायिका की हीरे जड़ी बेंदी को बुध मानना (उत्प्रेक्षित करना) दोष है। हीरा सफेद होता है तथा ज्योतिष में बुध को हरे रङ्ग का माना है, अतः बुध को सफेद मानना विद्या विरुद्ध (अर्थ दोष) है। ग्वाल कवि इसे यों शुद्ध करता है। "तिय मुख हरित सुमनि जरी"।

चतुर्थ कान्ति में रस दोषों का वर्णन है। रसदोषों का लक्षण ग्वाल कवि यों देते हैं:—

रसानन्द मैं करत है अन आनन्द जे आय।
ते रस दूषन कहत हैं ग्रन्थन को मत पाय॥ (४–३)

वस्तुतः दोषों के कारण ही रस में विघ्न होता है। दोषों का न होना ही रस की चरम परिणति का रहस्य है। रस के इन्हीं दोषों को 'अनौचित्य' के नाम से पुकारते हुए ध्वनि-कार आनन्दवर्धन ने भी कहा था—

अनौचित्यादृते नान्यद् रस भंगस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा

जैसे निम्न दोहे में रस का नाम लिया गया है अतः रस में शब्दवाच्यता नामक दोष है।

लोल कपोल जु लोल दृग बोल अमोल सुबाल।
तोकों लखि सिङ्गार रस विस्मृत किय नँदलाल॥ (४–६)

यह उदाहरण सम्भव है ग्वाल का स्वयं का है। 'सिङ्गार रस' के प्रयोग से शब्द वाच्यता नामक रसदोष है। इसे हम यों शुद्ध कर सकते हैं—"तोकौ लखि सुधि बुधि ललकि बिसरि दीन्ह नँदलाल।"

पञ्चम कान्ति में एक ही से दिखने वाले दोषों में भेद बताया गया है। उदाहरण के लिए पदगत श्रुतिकटु दोष तथा रसगत वर्ण प्रतिकूल दोष को ले लें। वैसे ये एक से ही जान पड़ते हैं, किन्तु ये दोनों भिन्न भिन्न हैं। वर्ण प्रति-कूल में रस विशेष में निषिद्ध वर्गों का होना पाया जाता है, जैसे शृङ्गार में टवर्ग, ष, र आदि वर्ग दोष हैं। श्रुतिकटु दोष शृङ्गारादि रस से भिन्न स्थानों पर भी माना जा सकता है। हाँ, वक्ता, वाच्य, विषय आदि के कारण वह कभी-कभी गुण बन जाता हो, यह दूसरी बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ कान्ति में दूषणोद्धार का वर्णन है। कहाँ कहाँ दोष गुण बन जाते हैं इस पर विचार किया गया है। सबसे पहले नित्य तथा अनित्य दोषों का संकेत करते हुए अनित्य दोषों की तालिका दी है, जो गुण भी हो सकते हैं।

और गुन ह्वै जात जहँ चमतकार सु उदोत।
केती केती ठौर में दोषन गुन कछु होत॥ (६—५)

जैसे इन नीचे के दो दोहों में ग्राम्य दोष है। किन्तु बिहारी ने यहाँ वर्णन ग्रामीण नायिका का ही किया है अतः दोष न रहकर गुण हो गया है।

(१) गोरी गदकारी बहै हँसत कपोलन गाड़।
कैसी लसत गँवारि के सुनकिरवा की आड़॥
(२) फफुला हार हिये लसै सन की बेंदी भाल।
राखत खेत खरे खरे खरे उरोजन बाल॥

इनमें 'गदकारी' 'गाड़' 'सुनकिरवा', 'फफुला का हार' 'सन की बेंदी' 'खरे उरोजन' आदि ग्राम्य प्रयोग हैं, किन्तु ये गुण हो गये हैं।

अन्त में एक लम्बी प्रश्नावली देकर दोष विषयक प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ वस्तुतः एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है इसमें कोई सन्देह नहीं। उदाहरणों की विवेचना करते समय वार्ता (टीका) में अलङ्कार शास्त्र के अन्य सिद्धान्तों पर भी प्रसङ्गवश सुन्दर प्रकाश डाला गया है, यद्यपि ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय काव्यदोष ही है।

नोट—महाकवि ग्वाल व्रज के प्रसिद्ध कवि थे। मथुरा में आपकी शिष्य परम्परा अभी तक चल रही है। उनके 'कवि-दर्पण' के दर्शन हमने भी आज से तीस वर्ष पहले आगरे के मुन्शी पन्नालाल 'प्रेमपुञ्ज' के पास किए थे। एक स्वार्थी महानुभाव इस ग्रन्थ को उनसे उड़ा ले गए। उसके बाद उसके दर्शन नहीं हुए। हम चाहते हैं कि इस ग्रन्थ की दो-तीन प्रतियाँ मिल जायँ तो उनको मिलाकर शुद्ध-रूप में 'कवि-दर्पण' का एक सटिप्पण सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया जाय। मथुरा के या बाहर के जिन महानुभावों के पास यह ग्रंथ हो वे उसकी सूचना हमें देने की कृपा करेंगे तो हम उनके अत्यन्त आभारी होंगे। 'काव्य दर्पण' के प्रकाशन की बड़ी आवश्यकता है।

साहित्य-सन्देश के पिछले अङ्क

साहित्य-सन्देश के निम्नलिखित पिछले अङ्कों की हमें अपने लिए आवश्यकता है। जिनके पास हों भेजने की कृपा करें। इनके बदले में वे हमारी प्रकाशित कोई भी पुस्तक मँगा सकते हैं। एक अङ्क के बदले में हम एक रुपए की पुस्तक देंगे। अथवा एक अङ्क के बदले में आगामी वर्ष के तीन अङ्कों का मूल्य जमा कर लेंगे।

चतुर्थ वर्ष—अप्रेल, मई १९४१ के दो अङ्क
पाँचवाँ वर्ष—अप्रेल, मई, जून १९४२ के तीन अङ्क
छठा वर्ष—मार्च १९४५ का एक अङ्क
सातवाँ वर्ष—अक्टूबर १९४५ का एक अङ्क
आठवाँ वर्ष—दिसम्बर १९४६, फरवरी १९४७ के दो अङ्क
नवाँ वर्ष—जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर १९४७ के चार अङ्क
दसवाँ वर्ष—सितम्बर, अक्टूबर दिसम्बर १९४८ तथा जनवरी, मार्च अप्रेल १९४९ का अङ्क
ग्यारहवाँ वर्ष—जुलाई १९४९, जनवरी, फरवरी, मार्च १९५० के चार अङ्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त साहित्य का मूल

श्री त्रिलोचन पाण्डेय

सन्त साहित्य के सम्बन्ध में विभिन्न वाद-विवाद उठने का कारण रहा है उसे भक्ति कालीन एक प्रवृत्ति विशेष मान लेना। जो परिस्थितियाँ भक्ति-काल के उत्थान के लिए उत्तरदायी रहीं उन्हें सन्त काव्य के आरम्भ का कारण भी समझ लिया गया। किसी ने उनकी वाणी को मुसलमानी राज्य स्थापना के फल स्वरूप पौरुष से हताश जाति की प्रतिक्रिया माना किसी ने समय की आवश्यकता कह कर उन्हें नए पन्थ निकालने का श्रेय दिया। अवतार-वाद, एकेश्वर वाद, खुदा वाद तक दौड़ लगा कर उनकी खण्डन मण्डनात्मक प्रवृत्ति में 'मुसलमानी जोश' की सम्भावना भी की गई। शुक्लजी ने उन पर सिद्धनाथों का प्रभाव, प्रभाव मात्र ही माना है। वस्तुतः किसी साहित्य की उपस्थिति पूर्व-परम्परा का विकास होती है। कोई भी साधना या काव्य धारा न तो एकाएक चल पड़ती है न एकाएक लुप्त ही हो जाती है। जिस सन्त साहित्य को विभिन्न परिस्थितियों ने परिवर्द्धित कर व्यापक रूप दिया वह मूल में सिद्ध-नाथ साहित्य की परम्परा में था। सन्त साहित्य का आरम्भ सिद्ध और नाथ कवियों की वाणी से होता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि सन्तों ने सिद्धनाथों का ही पिष्टपेषण किया है या सन्तों में मौलिकता नहीं है। उनके अपने विचार हैं, भक्ति का बहुमुखी रसात्मक योग है। शून्य महल के गीतों के अतिरिक्त उनमें लोकस्थिति की भावना भी है यथार्थ चित्रण भी। उनकी निजी देन है अवश्य, पर ये सब उस साहित्य-वृक्ष की पुष्ट शाखाएँ हैं जिनकी जड़ सिद्ध-नाथों की वाणी में है। उनके साहित्य की प्रायः सभी मुख्य प्रवृत्तियाँ मूल में सिद्ध-नाथों के साहित्य से संबद्ध हैं।

सिद्ध और नाथ वज्रयान-सहजयान सम्प्रदायों के अन्तिम योग साधक थे। मन्त्रों द्वारा सिद्धि प्राप्ति पर उनका विश्वास था। उनके मतानुसार मनुष्य के शरीर में कुण्डलिनी नामक शक्ति है जिसे उद्बुद्ध करना प्रत्येक साधक का लक्ष्य है। त्रिकुटी में सहस्रार चक्र की कल्पना है जहाँ से अमृत झरता है। यहाँ 'शून्य' में उनके परमात्मा का निवास है जो निराकार, निर्गुण और घट के भीतर निवास करने वाला है, वह अनिर्वचनीय है, सब कुछ है—

१— "सुनि ज माई सुनि ज बाप।
सुनि निरंजन आपै आप॥" —गोरख

२— "भाव न होइ अभाव न होइ।
अइस संबोहे को पतिआइ॥" —लुइपा

ये साधक 'शून्य' की महिमा गाने में नहीं थकते। यहीं कुण्डलिनी को पहुँचाना उनका लक्ष्य है। यहाँ हवा नहीं चलती, सूर्य-चन्द्र का प्रवेश भी नहीं है—

"जहि वन पवन न संचरइ रवि ससि नह पवेस।
तहि वट चित विसाम करु सरहे कहिय उवेस॥"
—सरहपा

आत्मा भी अनेक रूपात्मक कही गई है। शरीर भी कहीं दर्पण है, कहीं वृक्ष, कहीं नाव—'काआ नावड़ि' कहा है। योग में निर्वाण की व्यवस्था की है।

निर्गुणी सन्तों का ईश्वर परम पुरुष है, सर्व व्याप्त, निराकार है। उसकी प्राप्ति भी शून्य-चक्र में होती है। वह सगुण निर्गुण से परे, अलख, शाश्वत, अजर-अमर है, सर्वत्र उसी का प्रकाश है, वह वर्णनातीत है—

१—"घीव दूध में रमि रह्या व्यापक सबही ठौर"। —दादू

२— "सब महँ ज्योति ज्योति है सोय।
तिसके चानणि सब महँ चानणि होय॥" —नानक

३—"जहँ बसहु निरंजन तहँ किछु आहि कि सुन्यं"
"कहि किमि तोहि रूप बखानों?" —कबीर

आत्मा परमात्मा वस्तुतः एक हैं। उनका सम्बन्ध वृक्ष-पत्तों सा है। शरीर-प्राण का, किरण-प्रकाश का अभेद सम्बन्ध है—आत्मा परमात्मा का भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१— "एक बुंद से काया महल उठावल हो।
निरगुन से हंस आइल सगुन समाइल हो॥"
—धरमदास

२—"ब्रह्म तें जीव, जीव तें मन यों न्यारा मिला सदा ही"
—कबीर

सन्तों ने भी आत्मा को पक्षी, मछली, बूँद, हंस आदि रूपों में लिया है। षट्चक्रों की, पाँच तत्वों की निरन्तर चर्चा की है। कुण्डलिनी को जगा कर शून्य तक चलने की बात कही है—

"चल हंसा वा देस जहँ पिया बसै चित चोर।
सुरत सुहागिन है पनिहारिन भरै ठाढ़ बिन डोर॥"

सिद्ध-नाथों की साधना योग-क्रियाओं द्वारा परम-तत्व प्राप्त करने की थी। इसके लिए पहले शरीर शुद्धि की आवश्यकता है। माया-मोह विकारों का त्याग आवश्यक है। मन को इन्द्रिय नियोग द्वारा निर्विकार करना है, तब सहज संयम होता है—

१—"छाँड़ छाँड़ माया मोहा विषम दुन्दोली" —शवरपा
२—"काया तरुवर पंच विडाल, चंचल चील बईठा काल"
—लुइपा

शरीर शुद्धि के उपरान्त धौती, नौली, प्रत्याहार, मुद्रा आदि साधनों द्वारा साधक कुण्डलिनी को ऊर्ध्वमुख करता है, उसे इड़ा-पिंगला नाड़ियों द्वारा शून्य चक्र तक जाना है। साधना होती है—

१—"आसण बैसिबा, पवन निरोधिबा, धाँन मान सब धंधा"
—गोरख

२—"गंगा जमुना माझे रे बहइ नाइ" —डोम्बिया

वैराग्य, इन्द्रिय निग्रह, प्राणयोग उसके क्रमिक सोपान हैं। साधक पूर्ण आत्म-दर्शन के लिए कटिबद्ध है।

सन्त साधकों ने यही आयोजन साहित्य में विस्तृत रूप से किया है। मन को निरन्तर जीतने का उपदेश है, तृष्णा-वासना को नष्ट करना है, मनसा, वाचा, कर्मणा की शुद्धि ही पार लगा सकती है। मन को संसार से उदासीन कर अन्तर्मुखी करना उनका भी ध्येय है—

१—"मैमंता मन मारि रे मन ही माँहीं घेटि"—कबीर
२—"निर्मल प्राणी पंथ करि प्राणी लंघै पार"—दादू
३—"पिया मिलन को उठ चली चौमुख दियना बारि"
—चारी साहब।

अन्तर्मुखी साधना का वर्णन सन्त भी उसी वाणी में करते हैं:—

"इक बिरब भीतर नदी चाली कनक कलस समाइ
पञ्च सुरना आइ बैठे उदै भइ बनराइ"—कबीर

किन्तु ब्रह्म दर्शन इतना सरल नहीं है। साधक को शरीर पर विश्वास तो हो गया परन्तु माया पर उसका वश नहीं है। यही पथ भ्रष्ट करती है। मार्ग का भी उसे सही ज्ञान नहीं। वह अतः साधना चाहे करले किन्तु इन प्रलोभनों से बचने के लिए किसी विज्ञ की सहायता अपेक्षित है। इस जटिल पद्धति का निर्वाह भी वह अपने ही भरोसे पर नहीं कर सकता। इसे सुलझाने व मार्ग प्रदर्शन के लिए किसी की आवश्यकता है जिसे वह 'सद्गुरु' कहता है। सिद्धनाथ साहित्य में इसी कारण गुरु का महत्व है—

१—"सद्गुरु पाअ पए जाइव पुणु जिण उए"
—डोम्बिया

२—"गुरु कीजै गहिला, निगुरा न रहिला
गुरु बिन ज्ञान न पाइला रे भाइला" —गोरख

निर्गुणी सन्त साहित्य में गुरु का महत्व इसी परम्परा में होने से स्वाभाविक ही था। गुरु सद् मार्ग प्रदर्शक हैं। यह शुद्ध भारतीय परम्परा है। उसको कहीं लुहार कहा है, कहीं अहेरी, रँगरेज, जिसके बल पर कबीर शरीर रूपी चादर ज्यों का त्यों रखने मे गर्व कर सके थे। ईश्वर कृपा से ही गुरु मिलता है, वह समकक्ष ही नहीं ईश्वर से बड़ा भी है।

१—"साँचा समरथ गुरु मिल्या तिन तत दिया बताय"
२—"गुरु विनु आतम विचार न लहतु है" —सुन्दरदास
३—"जबही गुरु किरपा करै तबही राम किछु दै।"
—मलूकदास
४—"मैं मिरगा गुरु पारधी सबद लगायो बान।"
—चरनदास
५—"सतगुरु की सेवा करै पावै मुक्तामाल" —गरीबदास

इतने 'गोरख धन्धे' के बाद होता है आत्म दर्शन। सिद्धि प्राप्त हो जाती है। साधक सिद्ध हो जाता है। आत्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत रस पान करती है, वहाँ सूर्य, चन्द्र, गङ्गा, जमुना का मेल हो जाता है। अब वह हवा में उड़ सकता है, अदृश्य हो सकता है। आत्मा की महासुख सम्बन्धी अवस्था यही है।

१—"आहण अन्तण मज्झण्डे णउ भवणउ णिव्वाणु
एहुसो परम महासुह णउ परणउ अप्पाणु"
—सरहपा

२—"महासुहे विलसांति, शवरो लुइया सुंण मेहेतो"
—शवरपा

३—"सुरहट घाट अम्हे बणिजारा सुंनि हमार पसारा
लेण न जाँणौ देण न जाँणौ, एद्वा वणज हमारा"
—गोरख

उधर सन्त साधकों के हृदय की मुक्तावस्था कैसी है? शून्य से अमृत झर रहा है, आत्मा भीग रही है, प्रेमरस पान हो रहा है! वहाँ करोड़ों सूर्य प्रकाशित हैं, सोहं, ओहं, ररङ्कार की ध्वनियाँ हो रही हैं साधक अनहद नाद में दैनिक कार्य भूल गया है हंस मोती चुग रहा है। अलौकिक झिलमिली का वर्णन किस प्रकार हो?

१—"चुवत अमीरस भरत ताल जहँ सबद उठै असमानी हो
सरिता उमड़ि सिन्धु को सोखै नहिं कछु जात बखानी हो
बाजे बजैं सितार बाँसुरी ररंकार मृदुबानी हो....."
—कबीर

२—"नैनहुँ आगे देखिए आतम अन्तर सोइ
तेज पुञ्ज सरि रह्या झिलमिल झिलमिल होइ"
—दादू

३— "सुंन महल तें अमृत बरसै
प्रेम अनन्द होइ साधु नहाय
खुली किवरिया मिटी अँधिरिया....."
—धरमदास

सन्त साहित्य में हमें रहस्य भावना के दर्शन होते हैं। परमात्मा की नाना रूपों से अनुभूति होती है जिनका उन्होंने काव्यमय वर्णन किया है। उनकी वाणी में अद्वैत के प्रति सौन्दर्य व प्रेम-मूलक रहस्य-भावना व्यक्त हुई है। अनुमान होता है इसी भावना ने उनके काव्य को काव्य बनाया है। इस भावना की पृष्ठभूमि में भी सिद्ध-नाथ हैं। रहस्य-भावना का शुद्ध दार्शनिक पक्ष सिद्ध-नाथों का है—भावात्मक रूप सन्तों का अपना है। शून्य में साध्य की अवस्थिति, संयम, जप, ध्यान, धारणा, समाधि, नाद, रस, एकत्व की अनुभूति व उसका विचित्र लौकिक प्रकाशन—सिद्ध-नाथों में और सन्त कवियों में एक सा है। डा० रामकुमार वर्मा ने ठीक ही लिखा है—

"हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद जिस प्रकार विकसित हुआ है उसे समझने के लिए सिद्ध साहित्य का रहस्यवाद एक बड़ी महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि उपस्थित करता है।"

काव्य की बहिरङ्ग दृष्टि से भी सन्त साहित्य इसी परम्परा में है। सिद्ध-नाथों की वाणी में प्रायः वाच्यार्थ व लक्ष्यार्थ की प्रायः भिन्नता रहती है। लौकिक व पारलौकिक शब्दों के विपरीत अर्थ लगते हैं। कहीं उन्होंने विचित्र शब्द चित्रों द्वारा भी भाव प्रकाशन किया है। यह भाषा साँकेतिक थी जिसे 'उलट-बाँसी' नाम दिया गया है।

१—"बलद बियाएल गबिया बाँझै,
बेंग संसार बड्हिल जाय॥
नित निते बियाला सिंघ सम जूझय" —ढेरढपा

२—नाथ बोलै अमृत वाणी
बरषैगी कँवली भीजैगा पाणी" —गोरख

इसी का एक दूसरा रूप था—

"पाताल की मीढ़की आकास जन्त्र बावै
चन्द सूरज मिलै तहाँ गंग जमुन गीत गावै।
सकल बृह्माण्ड तब उलट फिरै तहाँ अचर नाचै"॥
—गरीबनाथ

सन्त कवियों की वाणी द्वारा यह उक्ति वैचित्र्य की पद्धति या शैली दो रूपों में प्रकट हुई। स्वाभाविक व्यापारों के विपरीत अर्थ में—

१—"पहले पूत पीछे भइ, माइचेला के गुरु लागे पाइ"
"चींटी परवत ऊपराया लै राखौ चौड़े'—कबीर

२—"बिन पावक पावक जलै, बिन सूरज परकास
बिन बादल बरषा घनी, छइरितु बारहमास"
—दरिया साहब

और दूसरे आश्चर्य मूलक चमत्कार पूर्ण घटनाओं के रूप में—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—"बिन पग चलना, बिन पर उड़ना बिना चुँच का चुगना"
—कबीर

२—"बिन स्रवनन सब कुछ सुनै बिन नैनन देखै"—दादू

सन्त साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द तो प्रायः सभी सिद्ध-नाथों के हैं। सबद, गगन, शून्य, लौ, नाद, विन्दु, सुरति निरति की समानता के अतिरिक्त इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना, षट्चक्र, कुण्डलिनी आदि से दोनों साहित्य भरे पड़े हैं। गोरख ने कहा—

"छसै सहंस इकीसौ जाप, अनहद उपजै आपहि आप
ब्रह्म नालि में ऊगै सूर, रोम रोम धुनि बाजै तूर।"

तो कबीर ने उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाया—

"आदै गगना, अन्तै गगना, मध्ये गगना भाई"
"सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै"
"षट् चक्र की कनक कोठरी वस्तु भाव है सोई" आदि

सन्तों की वाणी पद-दोहों में व्यक्त हुई। सिद्धों द्वारा भी यही प्रयुक्त छन्द थे, यही शैली। साखी बानी का उल्लेख भी उनकी वाणी में समान है। "·····वैं ही पद, वे ही राग रागिनियाँ, वही दोहे कबीर आदि ने व्यवहार किये हैं जो उनके पूर्ववर्ती सन्तों ने किये थे। क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलङ्कार, क्या छन्द, क्या पारिभाषिक शब्द सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्ग दर्शक हैं।"! —हजारीप्रसाद द्विवेदी

एक दृष्टि और। सन्त साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है साधना के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति का समान स्तर स्वीकार करना। उन्होंने ऊँच, नीच, अमीर-गरीब, ब्राह्मण-शूद्र का भेद मिटाने की चेष्टा की। कुरीतियों की असमानता की, विभिन्न मत मतान्तरों की जड़ खोदने पर ये सन्त तुल गए थे। भक्ति में बड़ा छोटा कोई नहीं, इसकी घोषणा के लिए कबीर चौराहे पर खड़े थे। व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और यह 'जोश' सिद्ध-नाथों की अक्खड़ता की परम्परा में है। इन्हीं का खून उनकी रगों में खौल रहा है। रूढ़ि, कुरीतियों, जाति भेद के विरुद्ध इन सन्तों की आवाज सिद्ध-नाथों की आवाज थी। सिद्ध-नाथ कौन थे? भुसुकपा, तन्ती, गुँडरिया कुम्हार, कड्डीपा शूद्र, मीनपा मछुवा, चर्पटी या कहार, कन्तालि या दर्जी—जाति पाँति का खण्डन तो वे स्वयं थे। और सन्त साधक? जुलाहे, धोबी, कुम्हार, चमार किन्तु उन्हें इसका गर्व था, वे डंके की चोट अपनी गौरव घोषणा करते थे!

१—"को ब्राह्मन को सूद्रा?
"जो तुम बाम्हन बाम्हनि जाए
और राह तुम काहे न आए?" —कबीर

२—"हमरे मत मँह कोऊ आवै
सीताराम गाइ सुख पावै।" —सुन्दरदास

३—"जाति भी ओछी, करम भी ओछा,
ओछा किसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है,
कह रैदास चमारा।" —रैदास

सिद्धनाथ साधकों ने संसार के प्रति विरक्ति का उपदेश दिया। संसार मैला है, माया अस्थिर है, सर्वत्र दुविधा है। सांसारिक भोग विलास में आसक्ति अनुचित है।

१—"चारि पहर आलङ्गन निद्रा संसार जाइ विषया बाही"
—गोरख

और सन्तों ने भी यही भाव प्रकट किए हैं। सन्त कवियों ने ईश्वरोपासना के बाह्य-विधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट की है। वेद-शास्त्र का अध्ययन, तीर्थाटन निस्सार कहा है, विद्वानों का महत्व अस्वीकार कर दिया है। बाह्याचार सब व्यर्थ हैं। इस भावना का मूल भी सिद्ध-नाथों की वाणी में देखा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं सन्त साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियों का मूल सिद्ध-नाथ साहित्य है। प्रभाव, प्रभाव मात्र ही नहीं है, एक निश्चित परम्परा बना गया है। उनकी साधना, विचार-धारा, करनी-रहनी एक सी हैं। कबीर आदि का साहित्य वस्तुतः सिद्ध-नाथों की साधना के विकास-रूप में है। सिद्ध-नाथ-साहित्य अपनी सीमा में ही सङ्कुचित न रहा अपितु परवर्ती एक विशाल काव्य-धारा की आधार-शिला बना। सन्तों ने इस आधार पर अपना साहित्य खड़ा किया, उसे व्यापक व समृद्ध बनाया तथा भाव व कला दोनों दृष्टियों से सँवारने की चेष्टा भी की। हिन्दी में निर्गुणधारा का यह साहित्य सिद्ध-नाथों से चल कर आज तक किसी न किसी रूप में कवियों व साधकों को प्रेरणा देता रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी तथा गद्य की कुछ विधाएँ

प्रो० शिवबालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए० 'आनर्स'

मनुष्य का हृदय • सरसता की मनोरम क्रीड़ास्थली, मानस कौतुक प्रिय कामना का साधना-सदन और मन सत् असत् की विवेचिका चिन्तना का चैत्य है। एक बार तीनों (सरसता, कामना और चिन्तना) अपनी रुचि के अनुसार अपने अपने प्राप्तव्य के लिए ठुनकने लगीं। 'कविर्मनोषी परि भू स्वयंभू' ने व्यवहारविद् कार्य कुशल पिता की भाँति एक को भाव दूसरे को वस्तु और तीसरे को विचार देकर सन्तुष्ट किया। सरसता, कामना और चिन्तना ने क्रमशः कविता, कहानी (उपन्यास भी) और निबन्ध (आलोचना भी) पाये। कितने सन्तुष्ट हुए वे! हाँ तो एक का रिरंसन् (रमण करने का भाव) दूसरे का मीमांसन और तीसरे का जिज्ञासन् (भाव) सर्वस्व हुआ। साहित्य का यह विशाल प्रासाद अपने विविध कक्षों के साथ उक्त तीन तत्वों (प्राप्यों) की आधार शिला पर टिका हुआ है।

मर्मदर्शी साहित्य-मनीषियों तथा विवेक वरिष्ठ विद्वानों ने इस साहित्य को जीवन की व्याख्या कहा है। साहित्य (स + हित है न) मानव का सबसे बड़ा हित साधक और कल्याण विधायक है। श्री जैनेन्द्र ने कहा है, "हमारा बहता हुआ जीवन कहानी बन जाता है।" आदि कवि बाल्मीकि का क्रौञ्च-वध पर द्रवित होना एक कहानी है। पहले कवि (?) के वियोग की कोई कहानी चली होगी और तभी तो उसके उच्छ्वास कविता के रूप में परिणत हो गये। मुक्तकों में घटना से कोई प्रयोजन नहीं होता परन्तु मन की भावनाओं, हृदय के सङ्कल्प-विकल्पों और अन्तर की मधुर वेदना की व्यक्ति का साधन है मुक्तक कविता। साहित्य की अन्य विधाओं के उपन्यास, प्रबन्ध-काव्य और नाटक में एक कहानी तो रहती ही है यहाँ तक कि रेखा-चित्र, जीवनी, इतिहास, संस्मरण और समागम (Interviews) अन्ततः कहानी के छोटे बड़े भाई हैं। फिर भी इन विधाओं में शिला-विन्यास के दृष्टिकोण से बड़ा अन्तर है। यहाँ हम कहानी के साथ एकाङ्की नाटक, उपन्यास और निबंध का पृथक् पृथक् सन्तुलन प्रस्तुत करेंगे।

कहानी और एकाङ्की नाटक—कहानी बहुत पुरानी रचना है। इसकी जड़ें वेदों तक में बिखरी पड़ी हैं। परिवर्तन शील संसार की सभ्यता के साथ साथ उसने भी कथा परिकथा और कथालिका से चलकर कहानी का वर्तमान गल्प का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। और एकाङ्की नाटक पट-उत्थापक (Curtain raiser) से आज इतना महत्व-शाली बन बैठा है। उसके इस रूप में किसी डाक्टर के पास काम करने वाले कुशल कम्पाउण्डर की (डाक्टर की नौकरी छोड़ देने के उपरान्त) निजी दूकान और उसकी अपनी प्रैक्टिस का स्वरूप सामने आ जाता है। एकाङ्की नाटक ने अभी प्रायः पच्चीस बसन्त देखे हैं। एकाङ्की नाटक में खण्ड-काव्य का कवित्व और कहानी की मनोहरता का प्रभाव वैसे ही विद्यमान रहता है जैसे माता पिता के संस्कारों का प्रभाव बालक पर।

एकाङ्की दृश्य और कहानी श्रव्य काव्य हैं। यदि पश्चिमी चश्मे को उतार कर देखा जाय तो एकाङ्की में नाटक की भाँति वस्तु विचार और भाव तीनों ही पाये जायेंगे। पाश्चात्य विद्वान नाटक को घटना प्रधान मानते हैं। वहाँ जब नाटक ही में रस परिपाक का विशेष महत्व नहीं तो पिद्दी के शोरवे (एकाङ्की नाटक) की क्या चर्चा! कहानी और एकाङ्की में वही अन्तर है जो उपन्यास और नाटक में। एक पाठ्य है दूसरी दृश्य कहानी है। किन्तु कहानी एकाङ्की का सफल रूप नहीं ग्रहण कर सकती। 'उसने कहा था' का नाटकीकरण एक समस्या होगी।

लक्ष्य के दृष्टिकोण से एकाङ्की और कहानी में विशेष भेद नहीं। श्री सद्गुरुशरण अवस्थी के शब्दों में "कुशल एकाङ्की नाटककार जीवन की वास्तविकता के एक स्फुलिङ्ग को पकड़ कर अपने रेखाचित्र अथवा सुकुमार संक्षिप्त मूर्ति द्वारा उसे ऐसा प्रभावपूर्ण बना देता है कि मानवता के समूचे भाव जगत को एक साथ झनझना देने का उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति आ जाती है।" बाबू गुलाबरायजी के अनुसार "कहानीकार केवल एक ही दृश्य पर सारा आलोक केन्द्रस्थ कर उसके प्रभाव को तीव्रतम बना देता है।" एकाङ्की में रस-सञ्चार करने और जीवन की झलक दिखाने की शक्ति अधिक होती है कारण कि कहानी कोरा सन्देश-कथन करती है और एकाङ्की नाटक सब कुछ सामने लाकर रख देता है। कहानी यदि स्वयं पाकी कान्यकुब्ज पुरोहित को दिया हुआ सीधा है तो एकाङ्की सुस्वादु डिशेस युक्त अप-टु-डेट बाबू के सामने रखी हुई प्लेट। एकाङ्की नाटक में अभिनय के सहारे प्रदर्शित भावभङ्गी और रस-मग्न कर देने की क्षमता कहानी में नहीं पाई जाती। परन्तु एकाङ्की नाटक की कुछ परिमितियाँ भी है। कभी-कभी एकाङ्की नाटककार अन्तर्द्वन्द्व और भावों के आरोह और अवरोह दिखाने में असफल रह जाते हैं। कहानीकार की भाँति नाटककार को अपनी ओर से कुछ बोलने का अधिकार नहीं अतः चरित्र-चित्रण का क्षेत्र भी एकाङ्की में सीमित ही रहता है। मञ्च-निर्देश और अनिभनेय दृश्य कोष्ठकों ही की श्रीवृद्ध करते हैं। कार्य-व्यापार का भी अभाव एकाङ्की में रहता है।

एकाङ्की नाटक में भावों की उछल-कूद मचती है। घटनाओं का अनुक्रम त्वरित गति से चलता है। उपन्यास के आगे तो कहानी 'मेढक जैसी छलाँग मारती है परन्तु एकाङ्की के आगे वह मन्थरगामा कच्छप रह जाती है।"

यदि एकाङ्की और कहानी की व्यक्ति और प्रभाव पर विचार किया जाय तो कहानी प्रेम और एकाङ्की नाटक श्रद्धा कहा जा सकता है। प्रिय और प्रेमी की भाँति कहानी और पाठक का सम्बन्ध गल्प में मान्य है। श्रद्धेय तथा श्रद्धालु के बीच श्रद्धेय के कर्मतन्तु की निजी महत्ता है। बस एकाङ्की नाटक में दर्शनीय पात्र विशेष की भूमिका करने वाले अभिनेता, मञ्च की साज सज्जा के द्वारा ही वास्तविक लक्ष्य पर पहुँचते हैं।

कहानी की विस्तार-सीमा छोटी होने के कारण उपन्यास के सभी तत्वों का नियोजन उसमें कठिन होता है उसी प्रकार नाटक के सभी तत्वों का विशेष कर प्रकरी और पताका स्थानक और गौण चरित्रों का प्रवेश एकाङ्की में नहीं हो पाता। कहानी और एकाङ्की दोनों चुस्त रहती हैं। कहानी में जिस प्रकार अन्तिम संवेदना और कौतूहल की महत्ता है उसी प्रकार एकाङ्की में परिचय, चरित्र-चित्रण और चरम-सीमा का निरूपण होता है। इसी अवधि में दोनों एकाङ्की और कहानी में चरित्र का परिवर्तन विन्दु भी दिखा दिया जाता है। रेडियो समाचार की भाँति यह वृत्त और चरित्र-संघर्ष प्रायः एक घन्टे में ही दिखा दिया जाता है। कहानी ने 'श्रुतिपथ' से आकर नानी और नाती का रञ्जन किया। 'मञ्जरी' की भाँति 'सरित्सागर' से सिञ्चित हो आज वह 'मनोहर' 'माया' का 'छाया' लालू बिछा 'सजनी' और 'सुमित्रा' बन रही है। एकाङ्की ने रूपकों के व्यायोग प्रहसन अङ्क, वीथी, भाण और उपरूपकों के गोष्ठी नाट्यरासक श्रीगदित आदि का भेद मिटाकर पट उत्थापक (Curtain raiser) का रूप ग्रहण किया। और आज वह 'भुवनेश्वर', 'गोविन्द', 'उपेन्द्र' और 'राम', (कुमार) 'शङ्कर',' भट्ट' आदि देवताओं से लेकर 'सद्-गुरु', 'प्रेमी' का कृपा-पात्र बना हुआ है।

कहानी और उपन्यास—वस्तु प्रधान इन दोनों रचनाओं में तत्वों के विचार विन्दु से कोई अन्तर नहीं। एक में जीवन के किसी एक अंश का चित्रण होता है तो दूसरी में सम्पूर्ण जीवन की विशद झाँकी। यदि एक-एक ही व्यक्ति की विशिष्ट पोज का चित्र है तो दूसरा किसी पार्टी या क्लब के सदस्यों का फोटो ग्रुप। दूसरे में सबके सब अङ्ग स्पष्ट नहीं हो पाते। अगली पंक्ति के लोगों का चित्र सुन्दर उतरता है, उनमें भी मध्य में बैठे हुए विशिष्ट सम्मानितों का। कहने का तात्पर्य यह कि उपन्यास में प्रासङ्गिक कथाएँ विस्तार के दृष्टिकोण से चलती रहती है दूसरे में उनकी स्थिति नहीं होती। जो लोग कहानी को उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण समझते है वे, मेरी समझ में, भूल करते हैं। कहानी छोटी होते हुये भी अपने में पूर्ण होती है। डिकेंस, हार्डी और प्रेमचन्द के उपन्यासों के संक्षिप्तीकरण को कहानी अभिधा देने का दुस्साहस कौन कर सकता है? राम बारह और कृष्ण सोलह कलाओं के अवतार हैं पर हैं दोनों अपने में पूर्ण। "को बड़ छोट कहत अपराधू" उपन्यास का एक अध्याय कभी कहानी नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता क्योंकि पार्थक्य से वह पूर्वापर घटनाओं से असम्बद्ध हो जायगा।

कहानी "रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल बेल बूटे सजे हुए हैं बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने संपूर्ण रूप में दृष्टिगोचर होता है।" मुन्शी प्रेमचन्द की इस परिभाषा से जीवन का यह टुकड़ा (Snapshot या Slice) अपना महत्व रखता दीखता है। हाथ की महत्ता के साथ उँगलियों का भी अपना स्थान है। कहानी जीवन का निरपेक्ष और स्वच्छन्द अङ्ग है उपन्यास उसका सापेक्ष सम्बद्ध अंश है। अनेक घटना-युक्त उपन्यासकार को अपनी रचना में कहानीकार से अधिक समवधान एवं कलासंयमी होना चाहिए। मिस्टन स्ट्राङ्ग के शब्दों में—

A story should only start once and it should go straight ahead and contain nothing that does not lead directly or indirectly to the climax.

XXX

No admittance except on business must be the short story writer's motto.

कहानी में अनिवार्य कार्यों में योग देने वाले उपस्करों के अतिरिक्त अन्य उपादानों का प्रवेश निषिद्ध है। उधर उपन्यासकार को जीवन से सम्बद्ध सभी मोटी बातें देखनी पड़ती हैं इसलिए कि वह जीवन का चित्र है। अर्नाल्ड बैनेट के शब्द स्मृतव्य हैं—

The novelist is one who having seen life and being so excited by it that he absolutely must transmit his ideas to others chooses the narrative fiction as the liveliest vehicle for the relief of his feelings.

जीवन को देखकर उससे पूर्णतः प्रभावित होकर उसे आवश्यक गहरी हलकी रेखाओं से अङ्कित करना उपन्यास है किन्तु यह 'जीवनी' की भाँति जीवन का प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता कारण कि उसके तथ्य तथ्य होते हैं व्यक्ति व्यक्ति होता है काल्पनिक पात्र नहीं।

कहानी में पात्रों की अधिकता नहीं होती। पात्र बाहुल्य कहानी का अहित करता है। चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण से कहानी और उपन्यास में कुछ अन्तर है। कहानी के पात्रों का चरित्र-चित्रण संश्लेषणात्मक पद्धति पर होता है जब कि उपन्यासों के पात्रों का शील-निरूपण विश्लेषणात्मक शैली पर होता है। इसलिए कि सीमित और विस्तृत क्षेत्रों में संयोजक और विभाजक तत्व काम करते हैं। पात्रों के अपना मत प्रकट करने, घटना जाल में पड़कर दुरूह कार्यों में उलझने और उपन्यासकार के तटस्थ भाव से ही सही अधिक कुछ कहने से चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक हो जाता है। कहानी एक लक्ष्य लेकर प्रारम्भ हुई देखते ही देखते सम्बद्ध क्रम से वह अपने लक्ष्य पर पहुँच गयी। अतएव चरित्र-चित्रण संश्लेषणात्मक हो गया।

उपन्यास में कथावस्तु, चरित्र और देशकाल सभी विद्यमान रहते हैं। कहानी में दो को गौण और एक को प्रधान समझा जाता है। रचना-विधान के विचार से कहानी में अविरल एक-ध्येयता और उपन्यास में विरल अनेक-तथ्यता होती है। कहानी का प्रभाव हमारे ऊपर शीघ्र पड़ता है उपन्यास का पिछला अंश भूल जाया जा सकता है। ऐसा सम्भव इसलिए है कि उपन्यास-सम्राट 'रङ्गभूमि' में कारखानों के सुचारु रूप से चलने की बात पहले लिखकर पुनः आगे उनके खुलने के उपक्रम का उल्लेख करते हैं। जब लेखक भूल कर सकता है तो पाठक की बात ही क्या, फिर सभी पाठक 'शिवनारायण श्रीवास्तव' कैसे बन सकते हैं। कहानी और उपन्यास के इस भेद को एक दूसरे उदाहरण से स्पष्ट कर दूँ। कहानी रूपी कन्या का लक्ष्य केवल वर-रूप है और उपन्यासकार वर से सम्बद्ध सभी बातों की खोज करता है। उसे कन्या, कन्या-पितरों, बन्धु बान्धव और इतरेजनाः की इच्छा का भी ध्यान रखना पड़ता है।†

उपन्यास में बीच-बीच में रहस्योद्घाटन की प्रवृत्ति काम करती है। कहानी में कौतूहल ही का महत्व है।

†कन्या वरयते रूपम्, माता वित्तम्, पिता श्रुतम्।
बांधवानाम् कुलमिच्छन्ति मिष्ठानमितरेजनाः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम संवेदना से ही कहानी के पिछले संकेत स्पष्ट हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे अनुभावों द्वारा हृदय की स्थिति। कहानी पूर्ण संवेदना लेकर कौतूहल में समाप्त होती है। और कहानी के इस तत्व को हिन्दी वालों ने Element of suspense से सीखा, ऐसा वे भ्रम वश समझते हैं। पश्चिमी आलोक से चकचौंध जाने वाली दृष्टि अपनी रत्न-राशि की अवहेलना ही करती है। बाणभट्ट ने न जाने कब कादम्बरी में कहा था।

स्फुरत्कलालाप विलास कोमला
करोति रागम् हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्याम् स्वयमभ्युपगता
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥

कहानी और निबन्ध—काव्य और शास्त्र साहित्य के प्रयोग तथा सिद्धान्त माने जाते हैं। जिस रचना में रागात्मिका वृत्ति लीन हो जाती है वह काव्य और जिसमें बोधवृत्ति सन्तुष्ट होती है वह शास्त्र कहलाता है। कहानी काव्य के अन्तर्गत आती है और निबन्ध शास्त्र से सम्बद्ध। प्रजा में अव्यवस्था, अशान्ति आदि के प्रसरित होने पर सुयोग्य शासक की आवश्यकता पड़ती है। काव्य को सुनियन्त्रित और नियमबद्ध रखने के हेतु शास्त्र की अपेक्षा होती है। इससे सिद्ध हुआ कि विचार सम्पन्न बुद्धि का व्यवसाय कहानी के बाद की सृष्टि है। कहानी का उद्देश्य रञ्जन होता है। वह नचिकेताओं की—जिज्ञासु किन्तु अनवगतों की—जिज्ञासावृत्ति की तृप्ति करती है।

कहानी और निबन्ध साधारण रीति से गद्य की ही विधाएँ हैं किन्तु दोनों ही पद्य में भी सकते हैं। श्री सियारामशरण गुप्त की 'मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर' जैसी अनेक पद्यात्मक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं और पोप का 'ऐसे आन मैन' और 'ऐसे आन क्रिटिसिज्म' तथा रत्नाकरजी का पोप के 'Essay on Criticism' का 'समालोचनादर्श' शीर्षक पद्यात्मक अनुवाद, आचार्य द्विवेदी की 'हे कविते' तथा हिन्दी-उर्दू के झगड़े को लेकर पद्यबद्ध रचनाएँ निबन्ध ही मानी जायँगी।

कहानी और निबन्ध की प्रगल्भता और गाम्भीर्य में अन्तर होता है एक के साधारण पठन से आनन्द आता है दूसरे के मनन से ज्ञानार्जन होता है। निबन्ध के लिए मनोयोग और अध्ययन-कक्ष के शान्त वातावरण की अपेक्षा होती है कहानी के हेतु रेलगाड़ी के कोलाहल पूर्ण डिब्बे की एक सीट पर्याप्त है। (सभी कहानियों के हेतु मैं ऐसा नहीं कह सकता) निबन्धकार के मानसिक धरातल तक पहुँचना कठिन है।

कहानी साहित्य के अन्य सभी अङ्गों की अपेक्षाकृत जीवन के अधिकाधिक निकट है कारण कि वह जीवन की एक क्षणिक प्रभा द्वारा ही हमें शाश्वत रूप से प्रभावित करने की क्षमता रखती है। उसमें स्वच्छन्दता और अपने में पूर्ण निरपेक्षता तथा कलनात्मक किन्तु स्वाभाविक झलक होती है। डा० जानसन के शब्दों में—

'....If the surrounding circumstances are false, as it is no longer any representation of reality, it is no longer worthy of our attention.

यहाँ कहानी के वातावरण और जीवन तथ्यों के स्वाभाविक निरूपण की एक रेखा लक्ष्मण की भाँति जॉनसन ने कहानी के चारों ओर खींच दी है। कहानी इधर से उधर हुई कि सीता की भाँति उसकी दुर्गति हुई। "कला के साथ मनमानी किसी की नहीं चल सकती" परन्तु निबन्ध को इन्हीं जॉनसन ने नारद की भाँति परम स्वतन्त्र कहा है—

A loose sally of mind, an irregular indigested piece.....

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने आत्म वैचित्र्य के प्रदर्शनार्थ लिखे गये लेखों को निबन्ध कहा है और तब हम प्रसिद्ध निबन्धकार श्री बख्शीजी के कोट टाँगने के लिए किसी प्रकार (चाहे जैसी भी) की खूँटी को पर्याप्त नहीं समझते। कारण यह है कि जङ्ग लगी हुई लोहे की पुरानी खूँटी कोट का कालर खराब कर देगी। इसलिए मैं 'मानसिक जगत के संश्लेष बुद्धि विलास को 'विभ्रम विलास' समझता हूँ। ऐसे निबन्धों को, आज के प्राणहीन गीतों, विफल वासना परक कहानियों की भाँति या तो जमोगा (Tiran) पहले ही घर लेता है। (रद्दी टोकरी में फेंक दिये जाते हैं) या मुर्गी के अण्डे के भाग्य को प्राप्त करते हैं। छदमीलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंसारी के यहाँ हल्दी की पुड़िया बाँधने में काम आते हैं।

अब कहानी और निबन्ध के उभयनिष्ठ तत्वों को लेते हैं। कहानी हमारी जिज्ञासा तृप्ति करके हमारे ऊपर एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ती है। निबन्ध भी वही करता है। कहानीकार जीवन सरिता की वेगवती धारा को पुल पर से देखता है कभी-कभी कूदकर उस प्रखर धार का अनुभव भी करता है और तब उनको मूर्त रूप देता है। निबन्धकार का मन पहले किसी विषय पर सोचता है, विचार एकत्र करता है, अनुभूतियाँ सँजोता है और फिर सबको निबद्ध कर अपनी वैयक्तिक अनुभूति का प्रभाव सुज्ञ अध्येताओं पर छोड़ता है। ख्यातनाम कहानीकार एडगर एलेन पो और लब्ध प्रतिष्ठ निबन्धकार ए० सी० बेन्सन ने impression पर विशेष बल दिया है। सुनिए।

A short Story is a narrative..... written to make an impression on the reader. —Edger Elen Po.

कहानी के इस प्रभाव का महत्व तभी आँका जा सकता है जब कौशिक समधियों की बातचीत को समझने वाला महमूद गजनवी के मन्त्री जैसा कोई भावुक भाषाविद् मिले। बेन्सन महोदय निबन्ध के विषय में लिखते हैं—

The essential thing is that the writer shall have formed his own mind; and the charm of essay depends upon the charm of the mind that has conceived and recorded the impression †

मैंने प्रारम्भ में निबन्ध को चिन्तना का चैत्य कहा है क्योंकि निबन्ध में प्रायः लेखक 'आप, अपनी कहता है' निबन्धकार का यही निजीपन है। निबन्ध ही ऐसा शिल्प है जिसमें लेखक समुण और व्यक्त हो जाता है।† 'चिंतामणि', 'फिर निराश क्यों' ? 'अशोक के फूल', 'बुद्धतरङ्ग', 'कुछ' आदि इस विचार-बिन्दु से पठनीय हैं।

† The essay is the reverie, the frame of mind in which a man says in the words of old song 'Says I to myself says I' —A. C. Benson.

निबन्ध में बौद्धिक तर्कों की प्रधानता होती है। निबन्धकार छोटे को बड़ा और बड़े को छोटा बना सकता है। कहानी भी वैसा ही कर सकती है। यदि कहानीकार को उदात्त कल्पना का प्रश्रय प्राप्त हो। कहानी कविता ही की भाँति एक बार तर्क को तर्क कर देती है। सब जानते हैं कि शाहजहाँ ने मुमताज की स्मृति में ताज बनवाया था किन्तु मेरे एक कहानीकार मित्र ने अपनी 'प्रतिकार' शीर्षक कहानी में हसन नामक शिल्पकार को मुमताज का बालपने का प्रेमी परिकल्पित किया है। भग्नाश प्रेमी मुगल सम्राज्ञी का निधनवृत्त सुन आगरा आता है और प्रधान शिल्पी के रूप में अपनी पाषाण-हृदया प्रियतमा को—मुगल सम्राट् की प्राणेश्वरी को—सङ्गमरमर में सुला देता है। एक ने धन से दूसरे ने कला द्वारा अपने प्रेम को मूर्त किया। हाँ यह एक कोरी कल्पना है किन्तु अस्वाभाविक नहीं। कलाकार की भावना का सत्य मेहदी की हरी पत्तियों में समाई हुई लालिमा की भाँति इसमें विद्यमान है।

कुछ ऐसी कहानियाँ होती हैं जिनमें विचार का प्राधान्य रहता है और कुछ ऐसे निबन्ध हैं जिनमें भावों का अविरल स्रोत प्रवाहित होता है जैसे तरङ्ग और धारा शैली वाले निबन्ध। पन्तजी की 'पानवाला' कहानी 'पर्सनल ऐसे' ही कहा जायगा और श्रद्धेय बाबू गुलाबरायजी की 'मेरी असफलताएँ' सजीव शैली के कारण जीवनी ही नहीं कहानी बन गये हैं। बख्शीजी का 'रामलाल पंडित', सुश्री महादेवी वर्मा का 'अलोपी' आदि ऐसे ही कथात्मक निबन्ध हैं।

निबन्ध का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। निबन्ध का कोई भी विषय हो सकता है। इसी से तो 'हाँ' 'नहीं' 'कुछ' 'देखा जायगा' जैसे शीर्षक प्रचलित होते जा रहे हैं। फिर इतिहास से लेकर संस्मरण, जीवनी, रेखाचित्र, गद्यकाव्य और समागम तक कहानी रूपी शङ्कर तथा निबन्ध रूपी शङ्कर के विभिन्न रूप धारी गण ही तो हैं। इनका कहानी से सम्बन्ध दिखाने के लिए इस निबन्ध का स्वरूप देना पड़ेगा। और जब प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दों में 'कहानी ने कविता को दबाया, निबन्धों को भगाया, नाटकों को नवाया और उपन्यासों को गाया' तो गद्य की अन्य विधाएँ (इतिहास जीवनी समागम आदि) किस खेत की मूली हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो 'झाँसी की रानी'

प्रो० गोपीनाथ तिवारी, एम० ए०

यह वह शब्द है जो प्रत्येक भारतवासी को उमङ्गित एवं उत्तेजित कर देता है, गर्वित एवं आह्लादित बना देता है। 'झाँसी की रानी' नामक दो उपन्यास हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं। एक है श्री वृन्दावनलाल वर्मा का 'झाँसी की रानी' और दूसरा है श्री शान्तिनारायण का 'महारानी झाँसी'। दोनों ने अपने उपन्यासों को 'ऐतिहासिक उपन्यास' लिखा है। दोनों लगभग एक ही समय में प्रकाशित हुए; वर्माजी का कुछ मास पूर्व। दोनों ने इतिहास-पुष्ट सामग्री देने का प्रयास किया है। किन्तु दोनों में अन्तर भी असीम है। एक पृथ्वी पर पड़ा है तो दूसरा आकाश में खड़ा है। शान्तिनारायणजी का ग्रन्थ 'महारानी झाँसी' ऐतिहासिक उपन्यास न होकर केवल इतिहास है जब कि वर्माजी का सफल ऐतिहासिक उपन्यास है।

शान्तिनारायण वर्मा ने, पता नहीं क्यों इस पुस्तक 'महारानी झाँसी' को ऐतिहासिक उपन्यास नाम दिया है। विषय और शैली, दोनों दृष्टियों से यह इतिहास है। इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास में विशेषतया शैली का अन्तर है। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास का अनुगमन करता हुआ भी स्वतन्त्र रहता है। वह चित्रों को सम्पूर्ण करने में कल्पना का प्रयोग करता है। वह शुद्ध उपन्यास न देकर एक सम्पूर्ण और सजीव कहानी का सृजन करता है। शान्तिनारायणजी इसमें सर्वथा असफल सिद्ध हुए हैं। हाँ, यदि उनके इस कथन को कि इस पुस्तक को ऐतिहासिक उपन्यास उसी प्रकार उपन्यास मान लिया जाय, जिस प्रकार भक्ति एवं रीतिकाल के 'देव माया प्रपञ्च', 'रामायण महानाटक', 'हनुमन्नाटक', इत्यादि को नाटक माना जाता है, तो दूसरी बात है। नहीं तो इसमें उपन्यासत्व है ही नहीं।

'महारानी झाँसी' का लेखक १८५७ के सङ्घर्ष को विद्रोह मानता है। वह कहता है कि इस विद्रोह को कुछ देशभक्त स्वातन्त्र्य युद्ध भी कहते हैं। पर इनसे शान्तिनारायणजी सहमत नहीं। पुस्तक में इसी विद्रोह का कथन है। हाँ, मुख्य ध्यान रहा है झाँसी पर और उसकी महारानी लक्ष्मीबाई पर। जिस प्रकार इतिहास में एक घटना या तथ्य देकर उसकी पुष्टि इतिहास पृष्ठों, सिक्कों, परवानों, अन्य लेखकों से करते हैं, वही कार्य किया है, लेखक ने सम्पूर्ण पुस्तक इसी इतिहास शैली पर है। लार्ड डलहौजी ने रानी के पास आज्ञा पत्र भेजा जो 'महारानी झाँसी' के ७ पृष्ठों (९४ से १०१ तक) में दिया गया है। पुनः इस आज्ञा-पत्र के सम्बन्ध में इतिहासज्ञों एवं अन्य विश्वसनीय लेखकों के मत उद्धृत किये गये हैं। इनमें मेजर इवालिस बेल, मि० डब्ल्यू० एम० टाटमैन्स, मि० जान सैल बिन के मत मुख्य हैं। १०१ से १०५ पृष्ठ तक ये मत देकर परिच्छेद को समाप्त कर दिया। १४ वें अध्याय में विप्लव के कारणों पर प्रकाश डाला है। किया क्या है? भिन्न-भिन्न पुस्तकों से पन्ने उठाकर रख दिये हैं। उनमें से कुछ पुस्तकें हैं, 'अङ्गरेजी भारत में लार्ड डलहौजी का शासन व्यस्त (१३९-१४० पृष्ठ), 'एशिया में अँग्रेजी साम्राज्य' (१४३) मैमोरियल्स। २४ वाँ परिच्छेद है 'सात दिन की लूट और भीषण हत्याकाण्ड'। पूरे परिच्छेद में भिन्न-भिन्न ऐतिहासिकों के मत भरे हैं, कथा कहीं भूले से भी नहीं फटक पाती। तीन चौथाई भाग इसी शैली से भरा है जिसमें कथा नाम-मात्र को भी नहीं। कहीं कथा चलाई भी है तो वर्णन-मात्र दिये गये हैं। न वहाँ कथोपकथन है, न प्रकृति या मानव का चित्रण।

दोनों पुस्तकों का अन्तर सर्वत्र दीख पड़ेगा। शान्तिनारायणजी ने दो देशद्रोहियों का वर्णन किया है। एक के विषय में लिखा है "कहा जाता है कि ऐसे ही किसी भेदी देशद्रोही ने सर ह्यूरोज को भी भेद जा बताया कि कहाँ से मार करने से उनका मनोरथ सिद्ध हो सकता है। बेचारे लेखक को इतना ही ज्ञात था। बस लिख दिया। इसके विपरीत 'पीर अली' का विकसित चित्रण हम देख सकते हैं वर्माजी के उपन्यास 'झाँसी की रानी' में। पर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अली का एक सम्पूर्ण चित्र उन्होंने खींचा है। यही तो वह आस्तीन का साँप है जो रानी से मिला रहा और अँग्रेजों को समाचार देता रहा। रानी की पराजय का प्रमुख कारण पीरअली है। वह इतना धूर्त, काइयाँ, पर वाक्यपटु है कि रानी को उस पर सन्देह नहीं होता। जब होता भी है तो वह विवश है, विश्वास करने के लिए, दिखाने भर ही के लिए सही। दूसरे देश शत्रु के विषय में शान्तिनारायण ने लिखा है "कहा जाता है, दूलाजी बुन्देला नामक एक देशद्रोही सरदार ने इस स्थान पर सुगमता पूर्वक सीढ़ी लगा सकने का गुप्त रहस्य बता कर अँग्रेजों को दुर्ग विजय में बड़ी सहायता दी और अपनी इस सेवा के लिए उनसे दो गाँवों की जागीर पारितोषिक रूप में प्राप्त की" (२४६) इतना भीमकाय वाक्य लिखते हैं लेखक। इसमें दूल्हाजी का चित्रण समाप्त। इसकी तुलना में वर्माजी के दूल्हाजी का चित्रण देखिये, पूर्ण है। किस प्रकार धीरे-धीरे वे परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं जिनके द्वारा वह अँग्रेजों से मिलता है। पीरअली ही असन्तुष्ट दूल्हाजी को अँग्रेजों के पास ले जाता है। धूर्त पीरअली तो रानी के पास आता जाता है पर दूल्हाजी को साहस नहीं होता। यही अन्तर है, उस समय के मुसलमान और हिन्दू में।

रानी का अन्त—एक ऐसी दुर्घटना है जो लेखक को स्वयं औपन्यासिक बनाने में समर्थ है। जिस प्रकार रामचरित्र ही मनुष्य में काव्यत्व उकसा देता है, जिस प्रकार प्रताप का नाम ही त्याग का बल देने में पर्याप्त है, उसी प्रकार रानी का अन्त ही किसी की भी कल्पना को उर्वरा बना सकता है। इस घटना का वर्णन दोनों में भिन्न है। 'महारानी झाँसी' में ३३ वें परिच्छेद के साढ़े तीन पृष्ठों में सुन्दर व रानी का अन्त कर दिया गया, वह भी वर्णनमात्र देकर नीरस व रूखा वर्णन। इसके बाद लगभग ७ पृष्ठों में अँग्रेज एवं भारतीय लेखकों के उद्धरण दिये हैं कि रानी का अन्त कैसे हुआ, लेखक को कोई प्रेरणा, कोई बल, कोई आवेश, इस अपूर्व एवं स्मरणीय घटना से न प्राप्त हुआ। वह अपनी ओर से इसकी सुन्दर कथा भी न बना सका। किन्तु जब हम 'झाँसी की रानी' में वर्माजी द्वारा चित्रित रानी का अन्त ९०-९१-९२-९३ वें परिच्छेदों में पढ़ते हैं तो एक सुन्दर कथा में वीरता और साहस, त्याग और बलिदान, अपूर्व श्रद्धा और भक्ति का निर्झर झरता पाते हैं। रानी का अन्त जहाँ हमारे हृदय से आह निकालता है, अश्रुपात कराता है वहाँ रानी की अभूतपूर्व वीरता के लिए सिर को झुकवा देता है। हम गङ्गादास को धन्यवाद देते हैं जिसने उस स्वतन्त्रता की पुजारिन के लिए अपनी झोंपड़ी को चिता में बदल दिया। हम कह उठते हैं—यह भी मुसलमान है जब हम गुल मुहम्मद के त्याग और उसकी श्रद्धा को फूलते-फलते देखते हैं।

तुरन्त उसने मन में कहा "ओ कबी नहीं, वो मरा नहीं। वो कबी नहीं मरेगा। वो मुर्दों को जान बख्शाता रहेगा।" चिता ठण्डी हो जाने पर गुल मुहम्मद ने उस स्थान पर एक चबूतरा बाँधा, और कहीं से फल लाकर उस पर चढ़ाये। अंग्रेजी सेना का एक दल रानी की ढूँढ़ खोज में वहाँ पर आया। गुल मुहम्मद से पूछा—"यह किसका मजार है साईं साहेब?" गुल मुहम्मद ने उत्तर दिया—"अमारे पीर का, वो बोत बड़ा वली था।"

शान्तिनारायणजी रानी के चरित्र को उठा नहीं सके। जिस रानी को हम उनके तथाकथित उपन्यास में पाते हैं वह भारतीयों की श्रद्धा पा सकती है क्या? इससे तो हम उसी रानी पर अधिक गर्व कर सकते हैं जिसके विषय में अँग्रेजों (उसके शत्रुओं) ने सराहना के शब्द कहे हैं। झाँसी की रानी का चरित्र-चित्रण असफल रहा है। इससे तो श्रेष्ठतर है तांत्या का चरित्र, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा लेखक करता है और जिसके लिए रानी के बलिदान के बाद भी एक परिच्छेद दिया है। अँग्रेज इतिहासकार एवं कुछ चालूम इतिहासकारों ने रानी के युद्ध को विवशता का युद्ध बताया है। शान्ति नारायणजी भी इसी स्वर में गाते हैं।

शान्तिनारायण जी ने रानी के चरित्र-विकास पर ध्यान नहीं दिया। आरम्भ में वह हमें एक हठी बालिका के रूप में दिखलाई देती है। हाँ, वह एक भविष्य वाणी करती है "मेरे भाग्य में तो एक छोड़ दस-दस हाथी लिखे हैं। एक दिन देख लेना।" बस इसके बाद वह झाँसी की रानी है और विधवा होने पर उसे आज्ञा सुनाई जाती है कि झाँसी अँग्रेजी राज्य में मिला ली गई। वह "प्राणान्तकारी चोट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार कर एक निर्जीव लोथ के समान गिर पड़ी।" उसका हृदय टुक-टुक हो गया। उसे राजा की व्यक्तिगत सम्पति एवं आभूषण तक न मिले। इस मर्म-भेदी चोट के बाद उनका कार्य क्रम क्या था? "उन्हें आँसू बहाने के सिवा और कुछ सूझता ही न था।" जब चारों ओर विद्रोह की ज्वाला फैली तो रानी शान्त थीं, स्वस्थचित्त थीं, 'प्रभु-इच्छा' समझ कर चुप थीं। उन्होंने इरादा कर लिया था कि मैं अँग्रेजों की ही भक्ति में लीन रहूँगी, उन पर विश्वास रक्खूँगा। वह कहती थीं—"मुझे अँगरेज जाति की न्यायप्रियता से यह पूर्ण विश्वास है कि वह अन्ततः मेरे साथ अवश्यमेव न्याय करेगी (पृष्ठ १५०)। इसीलिये रानी जितनी सहायता कर सकती थी, अङ्गरेजों की करती रहीं। विद्रोहियों ने रानी पर आक्रमण किया तो अपने आभूषण जो लाख सवालाख के थे देकर अपना पिण्ड छुड़ाया। झाँसी का प्रबन्ध हाथ में लिया। क्यों? सागर के अङ्गरेज अधिकारियों की आज्ञा थी। फरमाबरदारी दिखानी ही थी। फिर अङ्गरेज रानी के विरुद्ध क्यों हुए। दुर्भाग्य, ग्रहों का चक्र। नहीं तो रानी कब अँग्रेजों का विरोध करने वाली थी। नत्थेखाँ के आक्रमण करने पर उसने कई पत्र अँग्रेजों की सेवा में भेजे जिसमें अपनी वफादारी एव सहायता का गुणगान किया एवं उन्हें विश्वास दिलाया कि मैं तो सहायक हूँ, आपकी ओर से राज्य करती हूँ, परन्तु नत्थेखाँ के जासूसों ने ये पत्र अँग्रेजों के पास न पहुँचने दिये। वरन् रानी से पराजित होकर अँग्रेजों का मन विषाक्त कर दिया। उन्हें रानी का घोर विरोधी बना दिया। जनाल ह्यू रोज की चढ़ाई के समय पुनः रानी ने अपनी अँग्रेज भक्ति व सहायता का गुणगान गाते हुए पत्र लिखा परन्तु वह पत्र-वाहक रास्ते में ही कहीं गुम होगया।" अँग्रेजों से कभी कोई टक्कर लेने का तो विचार तक भी उनके मन में कभी नहीं आ पाया था। कारण, वह अँग्रेजों को जातीय रूप से फिर भी इन विद्रोही सरदारों तथा सैनिकों की अपेक्षा कहीं अधिक सुनियन्त्रित और न्याय-प्रिय समझती थी।" (२११) रोज के आक्रमण के फल स्वरूप रानी को झाँसी छोड़नी पड़ी। वर्षों का बँधा पिंजर-पक्षी स्वतन्त्र हो सुखी हुआ, रानी ने मुक्त की साँस ली। कब? जब झाँसी छोड़ बाहर आई। "दुर्गद्वार से बाहर निकलते ही महारानी जी ने स्वतन्त्रता और निश्चिन्तता का एक गहरा और लम्बा साँस लेकर ऐसा आनन्द अनुभव किया जैसे कोई वर्षों छोटे पिञ्जरे में बन्द पक्षी अकस्मात् ही ऊँचे असीम सुविशाल वायु मण्डल में स्वाधीन रूप से अपने पङ्ख खोलकर ऊपर नीचे मनमानी उड़ान भरने में अनुभव कर सकता है।" ऐसे दीर्घ और शिथिल वाक्यों में भरा है रानी का शिथिल चरित्र। इससे स्पष्ट होता है रानी को झाँसी के प्रति एक देशप्रेमी की भाँति ममता न थी। झाँसी से निकलकर उन्होंने 'स्वतन्त्रता' देखी, इससे पूर्व नहीं। 'अकस्मात्' शब्द घोषित करता है, रानी बराबर बाहर भागने के प्रयत्न में थीं। भाग्यवश सुअवसर प्राप्त हो गया। रानी को बड़ा आनन्द हुआ, झाँसी छोड़कर। कितना गिराया है रानी का चरित्र। आगे और भी गिरा है। रानी अब तक क्यों लड़ी? आगे भी क्यों सङ्घर्ष किया? केवल स्वार्थ वश, राज्य पाट की लिप्सा से। तात्याँ जब रानी के पास जाकर सहायता की प्रार्थना करता है तो महारानी ने यही उत्तर दिया था कि "अब न तो मुझे जय-पराजय की चिन्ता है, न राज्यपाट की ही कोई लालसा।" (३४२) जब रानी राज्यपाट की ओर से निराश होगई तो उसने सोचा, चलो, कुछ नाम भी कमालो और भारत माँ की दुहाई भी दे दो। अतः आगे वे कहती हैं "यदि कोई आकांक्षा है तो केवल यही कि मेरी भारत माता का सिर ऊँचा हो।" (३४३) यह भी विवशता का रोना है, भारत माँ से दिखावे का प्रेम है। इस प्रकार शान्तिनारायणजी ने महारानी झाँसी के चरित्र को क्रमशः गिराया ही है जो बहुत ही अनुचित हुआ है। न यह इतिहास ही है न उपन्यास। इतिहास होता तो भी हम समझते, अँग्रेज चाटुकार ने लिखा होगा।

इसके विपरीत श्री वृन्दावनलालजी वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास में रानी के चरित्र को अनुसन्धान के आधार पर पूर्णता दी, ऊपर उठाया, स्मरणीय बनाया। हमारी यही वीराङ्गना रानी है, हम भारतवासी इसी पर गर्व करते हैं और सदा के लिए हृदय-सिंहासन पर इसी को आसीन किये हुए हैं। वर्माजी ने उसके चरित्र का विकास क्रमशः कराया है। वह ७ वर्ष की बालिका थी तभी से बड़ी वीर और साहसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह कर्म से लड़ती है और संकटों को गले लगाती है। बचपन से ही वह भारत माँ को सताने वाले अँग्रेजों से घृणा करने लगी है। वह सरला बालिका प्रश्न ही ऐसे करती है—"ग्वालियर, इन्दौर, बड़ौदा, नागपुर, सतारा इत्यादि के होते हुये भी थोड़े से अँग्रेजों ने आप सबको दाब लिया।" (परिच्छेद ३) वह अपने विवाह के लिए आये ब्राह्मण तांत्या दीक्षित से पिता और पेशवा के सामने कहती है—"पर कुछ लोग भी ऐसा कहते हैं कि अँग्रेजों ने ऐसा जोर बाँध लिया है कि कोई सिर ही नहीं उठा सकता।" (परि० ४) "वह छत्रपति शिवाजी इत्यादि के आधुनिक और अर्जुन, भीम इत्यादि के पुरातन आख्यानों से प्रेरणा प्राप्त करती थी।" (परि० ५) नानाजी जो आयु में बालिका से कुछ ही बड़े हैं अँग्रेजों की धाक मानते हैं, परन्तु बालिका हँसते-हँसते उत्तर देती है—"नाना साहब को कदाचित् विश्वास नहीं होता कि अँग्रेज भी हराये जा सकते हैं।" (परि० ६)

झाँसी की रानी बनने पर वह विवाहित सुख में लीन नहीं हो जाती। उसे अपने देश का सतत् ध्यान बना है। अतः उसके सामने दो कार्य हैं, राजा को सहायक बनाना और आगे आने वाले स्वातन्त्र्य युद्ध के लिए तैयारी करना। राजा ने पूछा—क्या तुम्हें मेरी नाटकशाला पसन्द नहीं? रानी ने गहरी चोट की—"इन दिनों अब इससे अधिक और हो ही क्या सकता है? राज्य का काम चलाने के लिए दीवान है, डाकुओं का दमन करने और प्रजा को ठीक पथ पर चालू रखने के लिए अँग्रेजी सेना है ही। इस पर भी यदि कोई गलती होगई तो कम्पनी के एजेण्ट की खुशामद करलो।" (परि० १६) ऐसी ही युक्तियों का प्रभाव था कि राजा ने गार्डन को वह फटकार पिलाई कि बेचारा अँग्रेज तिलमिलाया तो, पर मन मसोस कर रह गया। इस घटना को सुन कर रानी तो उछल पड़ी और अपनी सहेलियों से कहा—"मुझको अपने राजा का, अपनी झाँसी का अभिमान है।" केवल बातों तक ही वह वीराङ्गना सीमित न रही। उसने स्त्री-सेना बनाई। अबला सबला बनी। वे मलखम्ब, कुश्ती, तलवार, तोप-बन्दूक चलाने में लगीं। आगे जाकर स्वातन्त्र्य-संग्राम में इस स्त्री-सेना ने अँग्रेज सेनापतियों को नाकों चने चबवाये और उनके दाँत खट्टे कर दिये। रोज जैसे सेनापतियों के मुख से भी वाह-वाह निकली और वह आश्चर्य-सागर में डूबा और उतराया। जब वह प्रसूति-गृह में ही थी, निर्बल थी, तब उसने तांत्या टोपे से कहा था—"समर्थ रामदास का दिया हुआ स्वराज्य-सन्देश, छत्रपति शिवा का पाला हुआ वह आदर्श, छत्रसाल का वह अनुशीलन, अमर और अक्षय है।" तथा उसने तांत्या टोपे को परामर्श दिया कि—"कान और आँख खोल कर समय की प्रतीक्षा करो।" अपने लिए उसने बताया "स्वस्थ होते ही अपने आदर्श के पालन में सचेष्ट हो जऊँगी। अपने आदर्श को कभी न भूलना।" अपने कथनानुसार स्वस्थ होते ही रानी ने तांत्या द्वारा राजा-नवाबों में आग फूँकी, झाँसी को सुसंगठित किया।

राजा के मरणोपरान्त जब झाँसी को हड़पने का गवर्नर जनरल का फरमान आया तो रानी शान्तिनारायण की महारानी के सदृश चीख मार कर बेहोश नहीं हो जाती, वरन् वह पर्दे के पीछे से दृढ़ता पूर्वक कहती है। "मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी।" इसके बाद स्वतन्त्रता युद्ध के लिये रानी ने प्राण-पण से तय्यारियाँ आरम्भ कीं। पुरानी लड़ाइयों के नक्शे उनके महल में थे। वे उनका बारीकी के साथ अध्ययन करती थीं। अपनी सहेलियों के साथ युद्ध-परिस्थितियों पर वाद-विवाद करती थीं।....जो स्त्री पुरुष उनके पास भेंट के लिये आते उन सबसे कहतीं, शरीर को इतना कमाओ कि फौलाद हो जावे। (परि० ३५) रघुनाथसिंह एवं जवाहरसिंह को कहा: तुम्हारे हाथों स्वराज्य के आदर्श का पालन हो। (३७ परि०) और उन्हें जोश दिलाया—"अपने पीछे ऐसा नाम छोड़ जाओ कि आने वाली अनन्त पीढ़ियाँ तुम्हारे स्मरण से अपने को शुद्ध करती रहें।"

इस प्रकार वर्माजी का चरित्र-चित्रण पूर्ण एवं उत्कृष्ट हुआ है। वर्माजी ने इतिहास, अनुसंधान और कल्पना के बल पर जो रानी ने हमें दी वह हमारे मस्तक को ऊँचा करती है। वर्माजी का उपन्यास बड़ा सफल ऐतिहासिक उपन्यास है जो इतिहास-पुष्ट चरित्रों के आधार पर सम्पूर्ण एवं सजीव कहानी कहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानीकार यशपाल

श्री गोवर्द्धन शर्मा

आधुनिक कहानी लेखकों में यशपाल का अपना एक विशिष्ट स्थान है। उस स्थान के वे सर्वांश में अधिकारी हैं। किन्तु यह देख कर खेद होता है कि उन्हें उचित मान्यता (Recognition) नहीं दी गई। यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि हमने पक्षपात, पूर्व-निश्चय, भ्रांति और दलबन्दी के कारण अपने समय की अनेक प्रतिभाओं का समुचित सम्मान नहीं किया है। यशपाल का विरोध तो इतना अधिक नहीं हुआ किन्तु उपेक्षा अवश्य की गई। यशपाल की अनेक कहानियाँ बेजोड़ हैं पर कितने संग्रह-कर्त्ताओं ने उन्हें अपने संग्रह में स्थान दिया? यह देख कर घोर निराशा होती है कि इतने अधिक और श्रेष्ठ रचनाओं का निर्माता कलाकार सबसे कम आलोचित हुआ है।

यशपाल की इस उपेक्षा के पीछे एक मनोवृत्ति काम कर रही है। हम सदा पूर्व-धारणा बना लेते हैं कि उनमें तो बस एक 'वाद विशेष' का प्रचार मात्र है। कहना न होगा कि यह कथन भ्रान्त धारणा पर आधारित है। इससे मैं इन्कार नहीं करता कि उसकी रचनाओं में कुछ प्रचार है ही नहीं। मेरा विश्वास है, "कला सदा एक सन्देश देती है"। क्या यह मान्यता इसे स्वयं-सिद्ध नहीं मान लेती कि प्रत्येक कलाकृति में कुछ देने को होता है? उसे हम 'सन्देश' कहें चाहे 'आदर्श'। क्या यह 'संदेश' स्वयं प्रचार का एक रूप नहीं है? विश्व-साहित्य की श्रेष्ठतम कृतियाँ होमर की 'ओडेसी' और 'इलियड', दाँते की 'डिवाइन कामेडी', तुलसीदास की 'रामचरितमानस', गेटे की 'फाउस्ट' कालिदास की 'शकुन्तला' सभी कुछ न कुछ 'सन्देश' अवश्य देती हैं। यह सन्देश किन्हीं विशेष आदर्शों का प्रचार नहीं तो क्या है? अतः केवल यह कहना कि यशपाल का साहित्य प्रचारात्मक है बेमानी है। हाँ, यह बात अवश्य है कि यदि वह 'साहित्य' न होकर केवल 'प्रचार साधन' मात्र बन जाय तो उसका मूल्य कला और स्थायित्व दोनों दृष्टियों से बहुत कम हो जाता है। यशपाल के प्रति पूर्वाग्रह बनाकर चलना ही हमारी गलती है उसकी कहानियों में केवल 'प्रचार' ही नहीं है, प्रचार भी है। प्रचार के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है जो लेखक को महत्व और श्रेष्ठता देता है।

यशपाल प्रेमचन्द के बाद हिन्दी में सबसे सशक्त कहानीकार है। उन्हें कहानी कहना भली प्रकार आता है। वस्तु-चयन, रचना-तन्त्र और जीवन-तत्वों तथा सम्वेदनाओं के चित्रण की दृष्टि से उनको अच्छी सफलता मिली है। यशपाल हिन्दी का आवेगपूर्ण और क्रान्तिकारी लेखक है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में "प्रेमचन्द के बाद यशपाल सही माने में जन-साधारण के लिये भी हिन्दी कथा-साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी रचनायें एक ओर साहित्यिकों के लिये हैं, दूसरी ओर जनता के लिये भी आकर्षक हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से ऐसा जान पड़ता है कि मानो प्रेमचन्द ही नये युग में नया शरीर धारण कर पुनः सजीव हो गये हों.....। कथानक, चित्रण, चरित्रांकण और शैली की दृष्टि से यशपाल, एक शब्द में, प्रेमचन्द की तिरोहित प्रतिभा की तरुण शक्ति है।"† किन्तु यशपाल पर आरोप लगाया जा रहा है कि उसकी कहानियों में 'रोटी' और 'सैक्स' को छोड़कर कुछ अन्य है ही नहीं। उसको मार्क्स अथवा फ्रायड किसी की भी मार्मिक अनुभूति नहीं है। अतः उसकी रचनायें स्थायी नहीं हो सकतीं, न कला के मापदण्ड से उन्हें श्रेष्ठ ही कहा जा सकता है। देखें, इन दोनों विरोधी विचार-धाराओं में कहाँ तक सचाई है।

इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि यशपाल की कहानियों में 'रोटी' या 'सेक्स' भावना की छाया नहीं है। "विश्व जीवन की विपन्नता और राष्ट्रीय जीवन की दरिद्रता के फलस्वरूप आज भारत शोषित वर्ग के साथ अपनी रक्षा का उपाय, समाजवाद की सामूहिक और समतामयी

† शान्तिप्रिय द्विवेदी—सामयिकी पृ० २८३-८४.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावधारा में टटोल रहा है।.....साहित्य में इस विचार-धारा का आग्रह बढ़ता जा रहा है। यशपाल का कथा साहित्य इसी ओर प्रयत्नशील है।"* ऐसी दशा में यशपाल का कथा-साहित्य जनता की भावनाओं के अधिक निकट है। 'जिन कहानियों का आधार जितना ही व्यापक और सार्वजनिक अनुभव होगा, उनमें उतनी ही अधिक सांकेतिकता होगी और मानव हृदय को वह उतना ही अधिक स्पर्श करेगा।"† जन-भावनाओं की अभिव्यञ्जना रचना को अधिक ग्राह्य और प्रिय बना देती है। उसकी अपील भी व्यापक होती है। यशपाल की कहानियों का वस्तु-संचय वास्तव में बहुत विस्तृत है। उन्हें जीवन तत्वों की सूक्ष्म और असाधारण पहिचान है। उनका अनुभव बड़ा व्यापक है और बौद्धिक चेतना प्रबुद्ध है। अतः उनकी कई कहानियाँ टेकनीक और कला दोनों की दृष्टि से अप्रतिम हैं। प्रभाकर माचवे ने ठीक ही लिखा है—"यशपाल ने अच्छा लिखा है, उतना ही उस पर बहुत कम समीक्षा रूप में कहा गया है।.....यशपाल की शैली बहुत आकर्षक है। प्रेमचन्द के बाद उतने ही यथार्थवादी, आकर्षक, सजीव वर्णन इनमें ही मिलते हैं।"‡

यशपाल की अनेक कहानियों 'ज्ञानदान', 'धर्मरक्षा', 'फूलों का कुर्ता' आदि में फ्रायड के मनोविज्ञान का बिल्कुल खुला रूप और प्रभाव चित्रित किया है। अँग्रेजी उपन्यासकार डी० एच० लारेन्स की तरह स्त्री और पुरुष के यौन सम्बन्ध में इच्छाओं को निर्बन्ध और मुक्त माना है। इस प्रकार यशपाल समाजवादी और प्राकृतवादी कथा-धारा के सङ्गम हैं। उनकी रचनाओं में मनोविज्ञान की बारीकियाँ सुलझे हुए रूप में देखने को मिल सकती हैं। यशपाल की इस विशेषता को आलोचक उनकी उपजोगी मानते हैं यथा—"फ्रायड और मार्क्स विरोधी तत्व हैं, इन दोनों में कोई तात्त्विक एकता नहीं।.....इन दोनों में ३ और ६ का सम्बन्ध है, दोनों एक साथ एक स्थान पर मिल कर नहीं रह सकते। किसे मालूम नहीं कि कम्यूनिस्ट कॉडवेल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Study in Decaying culture में फ्रायड की न जाने कितनी भर्त्सना की है, पर यशपाल की कहानियों में फ्रायड और मार्क्स मानों अपने शाश्वत विरोध का परित्याग कर साथ-साथ गलबाही देकर घूम रहे हैं।.....तो इसका अर्थ यही है कि यशपाल के फ्रायड न तो असली फ्रायड हैं और न मार्क्स मार्क्स।.....किसी की भी मार्मिक अनुभूति यशपाल को नहीं है। नहीं तो नर और वानर का सङ्ग, प्रकाश और अन्धकार का सङ्ग एक स्थान पर सम्भव नहीं था।"* इस आरोप के सम्बन्ध में मेरा तो यही नम्र निवेदन है कि विद्वान आलोचक ने उक्त दोनों चिन्तन-धाराओं को भेद की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। वैसे देखा जाय तो प्रत्यक्ष में प्राकृतवादी रचनायें चाहे मार्क्स के वर्ग-सङ्घर्ष के विपरीत जान पड़े किन्तु उनका उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। मार्क्सवाद समाज की प्रचलित रूढ़ियों और परम्पराओं को मान्यता नहीं देता। समाज के नैतिक आदर्श, धार्मिक विश्वास और पाप-पुण्य की कसौटी उसे स्वीकार नहीं। वह इन्हें 'बुर्जुवा' संस्कृति का प्रतीक मानता है और उनके विरुद्ध जेहाद का झण्डा उठाता है। वह निश्चित रूप से पाप और पुण्य की नैतिक तुला पर जो वर्तमान समाज में मान्य और प्रचलित है, नारी और पुरुष यौन सम्बन्ध को तोलने के सर्वथा विरोध में हैं। यहीं पर आकर मार्क्स और फ्रायड में सामञ्जस्य है—यशपाल ने इस समन्वय की गुरुता को बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण ढङ्ग से निभाया है। यह उसकी बड़ी भारी सफलता है।

इस प्रकार हमने देखा कि यशपाल पर लगाये जाने वाले आरोप पूर्ण सत्य नहीं हैं। अंशिक सत्य हैं। यशपाल के पात्र मध्यम वर्ग या निम्न वर्ग के रहते हैं। किसी आन्दोलन के अंश वे नहीं होते, किन्तु यशपाल ने उन्हें बड़े सुलझे हुए और वैज्ञानिक ढङ्ग से उतारा है। वातावरण बनाने में ये कुशल हैं। लेखक को सामाजिक रीति-रिवाज, और आचार-विचार, बोल-चाल का बड़ा गहरा ज्ञान है अतः उसके चित्र बड़े सजीव होते हैं—यथार्थ होते हैं।

* गङ्गाप्रसाद पाण्डेय—आधुनिक कथा साहित्य पृ. १८२
† नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृ० १६१
‡ प्रभाकर माचवे—साहित्य-सन्देश, नवम्बर १६४५

* देवराज उपाध्याय—आलोचना अक्टूबर १६५२ पृ० १४७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशपाल के बौद्धिक व्यंग श्रेष्ठ चेतना के परिचायक हैं और शॉ, इब्सन, गालसवर्दी के व्यङ्गों से स्पर्धा करते हैं। जहाँ एक ओर उन्होंने समाज की अनेक समस्याओं पर सफलता पूर्वक लेखनी चलाई है वहाँ बड़ी मीठी चुटकियाँ भी ली हैं और तीखे व्यङ्ग भी चलाये हैं। डिप्टी साहब, पाँव तले की डाल, धर्मरक्षा, ... आदि तीखे व्यङ्ग हैं। पराया सुख, हलाल का टुकड़ा, देवी का वरदान, प्रतिष्ठा का बोझ, आदमी का बच्चा, गरुडेरी शम्बूक, पुलिस की दफा, चित्र का शीर्षक, बदनाम आदि समाज के विभिन्न स्तरों का बड़ा वास्तविक चित्रण है। उनकी यह वास्तविकता केवल यथार्थ के नाते नहीं होती। उसमें निर्माण का संकेत रहता है। उन्होंने खुद स्वीकार किया है—"मैंने वास्तविकता के प्रति ईमानदारी निबाहने के लिए वास्तविकता का चित्रण नहीं किया है। मुझे आधारभूत वास्तविकता तो यह दिखाई देती है कि सामाजिक व्यवस्था के हमारे परम्परागत विचार बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रहे हैं। इस तथ्य की ओर संकेत करने के लिए मैंने उन वास्तविकताओं की कल्पना की है जो परम्परागत आदर्शों और नित्य जीवन के क्रम में वैषम्य प्रकट करते हैं। हिन्दू-गृहस्थ की यह धारणा कि पतिता स्त्री को अपने परिवार में स्थान देने से उनके धर्म और पुण्य का नाश होता है, दूसरी ओर पतिता स्त्री का दूसरे धर्म में शरण लेने देना भी हिन्दू समाज को असह्य होना। मेरा अभिप्राय है कि समाज यह अनुभव करे कि धर्म सम्बन्धी प्राचीन धारणाएँ आज वे-मौसमी बीज की तरह हमारे सामाजिक जीवन के खेत में केवल कूड़ा-कबाड़ ही पैदा कर रही हैं और मौसमी बीज को या जीवन में सफलता दे सकने वाली विचार-धारा को सफलता से पनपने का अवसर नहीं दे रहीं।" * इस कथन से हम स्पष्ट देखते हैं कि उनका दृष्टिकोण सदैव रचनात्मक रहा है।

यशपाल की कुछ कहानियों में कला की दृष्टि से बड़ा भारी दोष है। कुछ कहानियों के पात्र 'सिद्धान्त प्रतिपादन' करने लगते हैं, वहाँ कुछ पोचपन आ जाता है। हर्ष की बात है कि प्रारम्भिक कहानियों के इस दोष का परिहार हो गया है और अब यशपाल शैली और कला की दृष्टि से उत्कृष्ट रचनाएँ दे रहा है। कुछ रचनायें तो विश्व के श्रेष्ठ कहानीकार मोपांसा, चेखव, तुर्गनेव आदि की अच्छी रचनाओं के समकक्ष रखी जा सकती हैं। यशपाल की कहानियाँ कलेवर की दृष्टि से छोटी, वेगवती व प्रभाव-जनक होती हैं।

* प्रतीक जनवरी १९५१ पृ० १४-१५।

(पृष्ठ ४२९ का शेषांश)

का विरोध करते हैं जो ग्रन्थ की लगभग दो दर्जन प्रतियों में से समस्त हस्त-लिखित प्रतियों और प्रायः समस्त संस्करणों में मिलता है, जो प्रयोग-सम्मत है, व्युत्पत्ति और अर्थ की दृष्टि से सर्वथा ग्राह्य है, और प्रसङ्ग से सिद्ध है, डा० गुप्त नहीं वह किसी का भी क्यों न हो तो आपका विरोध व्यर्थ होगा। समय बदल रहा है! पाठक वैज्ञानिक अध्ययन को प्रश्रय देना चाहता है, कल्पनाओं को नहीं। इस प्रकार के प्रयासों से वैज्ञानिक अध्ययन रुक नहीं सकता, चाहे कितना भी आप सावधान करें। डा० गुप्त ने तो 'जायसी-ग्रंथावली' के वैज्ञानिक सम्पादन के रूप में हिन्दी जगत् को एक सर्वथा नवीन दिशा प्रदान की है, उनके इस उपकार के लिए वह उनका सदैव आभारी रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चिरहँटा' और 'छरहटा' का रहस्य

श्री मिथिलेशकान्ति एम० ए०, साहित्य-रत्न

उपर्युक्त शीर्षक से श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने गत नवम्बर १९५२ के 'साहित्य सन्देश' में एक लेख लिखा है। प्राचीन हिन्दी साहित्य और पाठ-विज्ञान के एक विद्यार्थी के नाते उक्त तथाकथित 'रहस्य' के सम्बन्ध में मैं अपने विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ। आशा है कि 'साहित्य-सन्देश' के पाठक इन पर यथोचित ध्यान देंगे।

'जायसी-ग्रन्थावली' के डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित और हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित संस्करण में एक स्थान पर आता है।

कतहुँ छरहटा पेखन लावा। ३९–५

डा० गुप्त का पक्ष संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) प्रतियों के साक्ष्य के ध्यान से इस पंक्ति के एक भी शब्द का पाठान्तर न ग्रियर्सन को उन दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में मिला था जिनके आधार पर उन्होंने रायल एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल द्वारा प्रकाशित अपने 'पदुमावति' का सम्पादन किया था, और न डा० गुप्त को ही उन चौदह प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में मिला जिनके आधार पर उन्होंने अपने 'जायसी ग्रन्थ वली' के संस्करण में 'पद्मावत' का पाठ निर्धारित किया। इसलिए ग्रियर्सन और डा० गुप्त दोनों ने उपर्युक्त पाठ ही दिया है।

(२) प्रयोग के ध्यान से 'छरहटा' शब्द-मात्र विचारणीय है। 'छरहटा' शब्द जायसी द्वारा प्रयुक्त नहीं हुआ है, किन्तु 'पद्मावत' की कुछ प्रतियों में पाये जाने वाले एक छन्द में जिसे ग्रियर्सन और पं० रामचन्द्र शुक्ल ने प्रामाणिक किन्तु डा० गुप्त ने प्रक्षिप्त माना है यह शब्द आता है।

खिन एक महँ छरहट होइ बीता।

जिससे यह स्पष्ट है कि शब्द प्रयोग में आता रहा है। 'छर' और 'हट' अलग अलग तो 'पद्मावत' में अनेक बार आते हैं।

(३) व्युत्पत्ति और अर्थ की दृष्टि से भी 'छरहटा' मात्र विचारणीय है। इसकी व्युत्पत्ति डा० गुप्त ने 'छल' + 'हट्ट' करके दी है, और इसका अर्थ किया है 'छल' = इन्द्रजाल (की) 'हट्ट' = 'हाट'।

पं० रामचन्द्र ने विवेचनीय स्थल पर ग्रियर्सन को "कहीं-कहीं ठीक अर्थ बैठाने के लिए पाठ भी विकृत" करने के दोष का भागी बनते हुए कहा है कि "जैसे कतहुँ चिरहँटा पंखिन्ह लावा' का 'कतहुँ छरहटा पेखन्ह लावा," कर दिया गया है....."

(१) प्रतियों के साक्ष्य के ध्यान से उन्हें 'चिरहँटा' और पंखिन्ह' कहाँ मिले यह शुक्लजी ने नहीं कहा है। शुक्लजी के सामने ग्रन्थ के चार संस्करण थे। एक नवलकिशोर प्रेस का, दूसरा पं० रामजसन मिश्र का, तीसरा कानपुर के किसी पुराने प्रेस का और चौथा ग्रियर्सन का। इनके अतिरिक्त शुक्लजी को ग्रन्थ की कैथी लिपि में लिखी एक हस्तलिखित भी प्राप्त हुई थी। न यह पाठ नवलकिशोर प्रेस के संस्करण में है, न कानपुर के संस्करण में, और न ग्रियर्सन के संस्करण में—ग्रियर्सन ने प्रयुक्त विभिन्न प्रतियों में पाए जाने वाले पाठान्तर भी अपने संस्करण में दिये हैं किन्तु वहाँ भी यह पाठ नहीं है। रामजसन मिश्र वाला संस्करण तथा शुक्लजी द्वारा प्रयुक्त उपर्युक्त कैथी की हस्तलिखित प्रति अप्राप्य है, इसलिए उनके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। डा० गुप्त ने यह अवश्य लिखा है कि 'शुक्लजी को यद्यपि उन्होंने कहा नहीं है, यह पाठ नवल किशोर प्रेस वाले उक्त संस्करण में मिला था जिसकी पाठ भ्रष्टता की स्वतः उन्होंने निन्दा की है। (जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० १०९) किन्तु डा० गुप्त ने कदाचित् ध्यान से देखा नहीं : नवल किशोर प्रेस वाले संस्करण में पाठ 'चिरहटा' और 'पंखी' हैं, और 'चिरहँटा' और 'पंखिन्ह' नहीं।

(२) प्रयोग की दृष्टि से 'चिरहँटा' मात्र, विचारणीय है। न वह जायसी में कहीं मिलता है न उनके समकालीन या परवर्ती किसी लेखक में और न लोक-भाषा अथवा लोक-साहित्य में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) व्युत्पत्ति और अर्थ की दृष्टि से भी 'चिरहँटा' मात्र विचारणीय है। 'चिरहँटा' की व्युत्पत्ति शुक्लजी ने नहीं की है—कदाचित उसे आवश्यक भी नहीं समझा, केवल अन्य की पादटिप्पणी में उन्होंने 'चिरहँटा' बहेलिया लिखा है। नवलकिशोर प्रेस के उक्त संस्करण में 'हटा' को कदाचित् 'हट्ट' से व्युत्पन्न मानकर उसका अर्थ बाजार दिया हुआ है।

उपर्युक्त तीनों दृष्टियों से पांडेयजी का क्या कथन है और वह कहाँ तक मान्य है, यह हमें देखना है।

(१) पांडेयजी को इस बात से कोई बहस नहीं है कि 'चिरहँटा' या 'पंखिन्ह' पाठ 'पदमावत' की उन लगभग दो दर्जन प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों और संस्करणों में भी मिलता है या नहीं। शुक्लजी ने यह पाठ दिया है, उनके लिए यही यथेष्ट है।

(२) पांडेयजी को इस बात से भी कोई मतलब नहीं कि कभी, कहीं और किसी ने भी 'चिरहँटा' शब्द का प्रयोग किया है। शुक्लजी ने इसका प्रयोग किया है, उनके लिए यही पर्याप्त है।

डॉ० गुप्त के 'छरहट' के उदाहरण पर उन्हें अवश्य आपत्ति है क्योंकि डा० गुप्त के ही कथनानुसार वह एक प्रक्षिप्त छन्द में आता है। किन्तु इस विषय में तो डा० गुप्त का विचार स्पष्ट है—उनका आशय यह है कि यद्यपि यह शब्द जायसी द्वारा अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है किन्तु उनके किसी परवर्त्ती ने उनके ग्रन्थ में अन्यत्र प्रक्षेप मिलाते हुए इस शब्द का उपयोग किया है, जिससे यह सुगमता से अनुमान किया जा सकता है कि यह शब्द प्रचलित रहा है।

पाण्डेयजी को उक्त उदाहरण के सम्बन्ध में आपत्ति इसलिए और भी है कि शुक्लजी ने उक्त उदाहरण के छन्द को प्रामाणिक मान कर 'छरहटा' के स्थान पर पाठ झुरमुट दिया है और इसका अर्थ किया है 'अँधेरा'। 'झुरमुट' शब्द का प्रयोग 'अँधेरा' के अर्थ में न जायसी के किसी अन्य में मिलता है, न उनके समकालीन या परवर्ती किसी लेखक के किसी ग्रन्थ में, और न लोक-भाषा या लोक-साहित्य में, वह शब्द तो 'झुटपुटा' है जिसका अर्थ 'संध्या का हलका अँधेरा' होता है। प्रसङ्ग भी उक्त छन्द में अँधेरे का नहीं है, और न अँधेरा एक क्षण में होकर समाप्त ही हो जाता है जैसा डा० गुप्त ने कहा है। किन्तु पाण्डेयजी को इन बातों से कोई सरोकार नहीं है। 'झुरमुट' पाठ और उसका 'अँधेरा' अर्थ शुक्लजी ने दिया है, यह क्या कम है?

उलटे पाण्डेयजी ने 'झुरमुट' का जो 'छोटी झाड़ी' अर्थ डा० गुप्त ने किया है, उस पर आपत्ति की है और इस सम्बन्ध में एक आधुनिक संक्षिप्त हिन्दी कोष से अर्थ उद्धृत करते हुए कहा है कि यह अर्थ उसमें नहीं मिलता। वास्तव में 'झुरमुट' शब्द का अर्थ लगाने के लिए उसकी व्युत्पत्ति और तदनन्तर उसका अर्थ समझने की आवश्यकता है।

'झुरमुट' शब्द 'झूड़-मुठ' = 'झुण्ट + मुष्ट' से बना है। 'झुड़' और 'झूड़' की 'झुण्ट' से व्युत्पत्ति प्लैट्स की 'हिन्दुस्तानी-हिन्दी इंग्लिश डिक्शनरी' में दी हुई है। इसी व्युत्पत्ति के आधार पर 'झुरमुट' शब्द का सम्बन्ध समस्त कोषकारों ने सं० 'झुण्ट' से लगाया है।

'झुण्ट' शब्द के विषय में संस्कृत तथा हिन्दी कोषों में इस प्रकार आता है—

झुण्ट = a shrub—M. Williams: Sanskrit Eng. Dictionary.

झुण्ट = a shrub, a bush—Bate's Hindi-Eng. Dictionary और 'shrub' के विषय में सर्वाधिक प्रामाणिक Oxford New. Eng. Dictionary. इस प्रकार कहती है।

Shrub = 1. a woody plant smaller than a tree. 2. A twig, Sprig, Sprout.

संस्कृत का एक अन्य प्रसिद्ध अभिधान 'वाचस्पत्य' 'झुण्ट' शब्द का अर्थ इस प्रकार देता है:—

झुण्ट = अकाण्डे १—डुमे, २—स्तम्बे, ३—गुल्मे। इनमें से केवल 'स्तम्ब' शब्द ज्ञातव्य है। मोनियर विलियम्स उसका अर्थ इस प्रकार देते हैं—

स्तम्ब = a clump or tuft of grass, any clump or bunch or cluster, a sheaf of corn, a bush, a thiket, a shrub or plant having no decided stem (such as the jhinti or Barleria cristata.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'झिरटी' को प्लैट ने भी अपने कोष में Barleria Cristata कहा है, इसलिए यह समझा जा सकता है कि दोनों एक ही हैं।

पुनः Barleria को डा० रघुवीर ने अपनी Great English Indian Dictionary में 'कुरण्ट' कहा है और 'कुरण्ट' को 'हिन्दी शब्दसागर' में पीली कटसरैया' कहा गया है।

इसके साथ ही 'झाड़ी' का अर्थ देते हुए उपर्युक्त बेट्स तथा प्लैट Forest, Wood तथा Jungle जैसे अर्थ भी देते हैं इसलिए 'कुरण्ट' = 'कुराँट' = 'पीली कट सरैया' जैसे छोटे पौधों के 'झुरमुट' को 'छोटी झाड़ी' न कह कर और क्या कहा जाय, यह बात पाण्डेयजी ही जानें।

(३) व्युत्पत्ति की दृष्टि से पाण्डेयजी 'छरहटा' को 'छर हट्टक' से व्युत्पन्न बताते हैं, किन्तु 'हट्ट' या 'हाटा' का 'हटा' भी हो जाता है इस तथ्य पर पाण्डेयजी ने ध्यान नहीं दिया—'चौहटा' तो समस्त प्राचीन हिन्दी साहित्य में उन्हें मिल सकता है, और पसरहटा, कसरहटा जैसे अनेक हाट नगरों में आज भी उन्हें मिल सकते हैं। 'हट्टक' से 'हटा' का कोई उदाहरण यदि पाण्डेयजी के ध्यान में हो तो वही जानें, प्रस्तुत लेखक के ध्यान में तो नहीं आ रहा है।

फिर, पाण्डेयजी 'चिरहँटा' के 'हँटा' की व्युत्पत्ति संस्कृति के 'हन्' से बताते हैं, और कहते हैं कि यही 'हटा' अँग्रेजी के 'हंट' और 'हंटर' में भी है।

'हँटा' में 'हन्' धातु है इसके उदाहरण में वे एकमात्र 'किलहँटा' या 'किलहँट' शब्द को रखते हैं, किन्तु किसी कोष में 'किलहँटा' या 'किलहँट' की यह व्युत्पत्ति नहीं मिलती! कदाचित किसी कोषकार को यह व्युत्पत्ति ज्ञात नहीं थी।

इससे भी एक नई खोज पाण्डेयजी की 'हण्ट' और 'हण्टर' को 'हन्' धातु से सम्बद्ध करने की है। उच्चारण-साम्य के अतिरिक्त इसका क्या आधार है, यह पाण्डेयजी ही जानें। 'हन्' धातु से निसृत offend, defend जैसे fend से बने अँग्रेजी शब्दों को देते हुए भी मोनियर विलियम्स या किसी भी संस्कृत-अँग्रेजी कोषकार ने 'हण्ट' और 'हण्टर' को उससे सम्बद्ध नहीं किया है। और 'आक्स फोर्ड न्यू इंग्लिश डिक्शनरी' वेब्स्टर की 'इंग्लिश डिक्शनरी' तथा अन्य अँग्रेजी कोषों में Huut को Hent तथा Hend से व्युत्पन्न बताते हुए Hent को गॉथिक himpen = to seize और Hand को ओल्ड इङ्गलिश Gehenden = to handle से निकला हुआ बताया गया है। इन समस्त कोषों में फलतः Hunt का मुख्यार्थ 'पीछा कर के पकड़ना' या 'पीछा करना' मात्र माना गया है—चाहे जीवित पकड़ा जावे चाहे मृत, और चाहे जीवित पकड़ने के लिए पीछा किया जावे, चाहे मारने के लिए। पता नहीं पाण्डेयजी किस, इनसे भी अधिक मान्य प्रमाण पर 'हण्ट' और 'हण्टर' को 'हन्' से उद्भूत बताते हैं।

पुनः पांडेयजी को डा० गुप्त के 'छल' = 'इन्द्रजाल' पर आपत्ति है, क्योंकि यह अर्थ उन्हें 'प्रामाणिक हिन्दी कोष' में नहीं मिलता है। यहाँ भी पांडेयजी की कठिनाई उपर्युक्त प्रकार ही की है।

मोनियर विलियम्स, बेट्स, प्लैट आदि के सभी पुराने संस्कृत और हिन्दी कोषों में 'छल' के विभिन्न अर्थों में—deception, stratagem, sham, delusion और illusion हैं; और इसी प्रकार उनमें 'इन्द्रजाल' के विभिन्न अर्थों में भी deception, stratagem sham, delusion और illusion हैं अतः 'छल' का एक पर्याय 'इन्द्रजाल' भी माना जायगा। पता नहीं ऐसा करने में डा० गुप्त ने कौन सी भूल की। फिर पांडेयजी को ज्ञात नहीं है, किन्तु स्वतः जायसी ने भी 'छल' का प्रयोग इसी 'इन्द्रजाल' के अर्थ में किया है जिसका सम्बन्ध पांडेयजी 'जादू' वा 'माया' से बताते हैं।

तू काँवरूपरा बस टोना, भूला जोग छरा तोहि सोना।

इस विषय में पांडेयजी ने प्रसङ्ग की बात भी उठाई है। वे कहते हैं कि जिस 'इन्द्रजाल' = 'जादू' वा माया का प्रसङ्ग डा० गुप्त यहाँ समझते हैं, वह तो 'चेटक' के रूप में पहले ही आचुका है।

कतहूँ नाटक चेटक कला।

और 'चेटक' के अर्थों के विषय में पुनः पांडेयजी 'प्रामाणिक हिन्दी कोष' का प्रमाण उद्धृत करते हैं। किन्तु यहाँ भी उनकी कठिनाई वही है जिसकी ओर ऊपर संकेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जा चुका है। और नहीं, यदि उन्होंने उस 'हिन्दी शब्द सागर' को ही उठाया होता जिसके स्वतः शुक्लजी प्रमुख सम्पादक थे, और 'प्रामाणिक हिन्दी कोष' जिसका अधिकांश में एक संक्षिप्त रूपान्तर मात्र है, तो उनकी यह कठिनाई हल हो गई होती। उसमें 'चेटक' के अनेक अर्थों में भाँड़ों का तमाशा 'कौतुक' भी दिया हुआ है, और उदाहरण में न केवल जायसी की उपर्युक्त पंक्ति दी है, तुलसीदासजी की भी निम्नलिखित पंक्तियाँ दी हुई हैं—

नट ज्यों जिन पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौटिक ठाट ठयों।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'नट' और 'नाटक' के प्रसंग में 'चेटक कला' का यही अर्थ सङ्गत होगा।

पांडेयजी यदि अकेले 'प्रामाणिक हिन्दी कोष' जैसे संक्षिप्त और मुख्यतः आधुनिक हिन्दी के कोष को लेकर प्राचीन हिन्दी-साहित्य का अध्ययन करने का यत्न करेंगे तो इस प्रकार भी उनकी कठिनाइयों का अन्त नहीं हो सकेगा।

(४) पांडेयजी ने 'चिरहँटा' और 'छरहटा' पाठों के सम्बन्ध में प्रसङ्ग का भी प्रश्न उठाया है। पांडेयजी का कहना है कि प्रसङ्ग 'सिङ्गार हट' का ही है, उसकी भाँति किसी अन्य हाट का नहीं।

'सिङ्गार हाट' का वर्णन इसके पूर्ववर्ती छन्द ३८ में अवश्य होता है, किन्तु उसी छन्द में वह समाप्त भी हो जाता है। प्रस्तुत छन्द ३९ में तो सिंहल नगर की फुटकर हाटों का वर्णन करके नगर-वर्णन समाप्त किया जाता है, और आगे के छन्द में कवि सिंहलगढ़ का वर्णन प्रारम्भ करता है। यदि पाण्डेयजी का कथन मानकर यह समझा जावे कि प्रस्तुत छन्द ३९ में भी 'सिंगार-हाट' का ही वर्णन चल रहा है, तो निम्न-लिखित पंक्तियों :—

कतहूँ पण्डित पढ़हिं पुरानू।
धरम पन्थ कर करहिं बखानू॥
कतहूँ कथा कहै किछु कोई।

आदि का, जो विवेचनीय पंक्ति के ठीक ऊपर आती हैं, समाधान क्या होगा, यह पाण्डेयजी ही जानें।

इतना ही नहीं, 'सिंगारहाट' में पाण्डेयजी 'बहेलिए' और 'पंखिन्ह' की आवश्यकता भी बताते हैं, क्योंकि "प्रेम' का 'पक्षी' से भी कुछ नाता है।" प्रेम और पक्षी का यह नाता 'बहेलिए' की आवश्यकता तो उत्पन्न करता ही है, जायसी के उस 'प्रेम' को, जिसके लिए उन्होंने कहा है:—

मानुस पेम भएउ बैकुंठी।
नाहिंत काह छार भरि मूठी॥ १६६-२
पेम सुनत मन भूलु न राजा।
कठिन पेम सिर देइ तौ छाजा॥ ९७-१
दुख भीतर जो पेम मधु राखा।
गंजन-भरन सहै जो चाखा॥ ९१-३
जेहँ नहिं सीस पेम पँथ लावा।
सो प्रिथिमी महँ काहे को आवा॥ ९८-४
गगन दिस्टि सौं जाय पहूँचा।
पेम अदिस्ट गगन सौं ऊँचा॥ १२२-६
धुव ते ऊँच पेम धुव उवा।
सिर दै पाउ देइ सो छुवा॥ १२२-७
पेम पहार कठिन विधि गढ़ा।
सो पै चढ़ै सीस सौं चढ़ा॥ १२४-३
गजपति यह मन सकती सीऊ।
पै जेहि पेम कहाँ तेहि जीऊ॥ १४२-१
उलटा पन्थ पेम कइ बारा,
चढ़इ सरगसौं परइ पतारा॥ २२९-६
सीस दीन में अगुमन पेम पाय सिर मेलि। २४३-८

उस 'प्रेम' को पाण्डेयजी एक 'हाट' की वस्तु बना देते हैं।

अपने ऐसे विचारों को लेकर पाण्डेयजी फिर क्यों न डा० गुप्त की कृति से जिस "घोर अपकार की सम्भावना" उनको समझते हैं, उससे "सबको सावधान भी कर देना अपना कर्त्तव्य" समझें।

कोई कृति शुक्लजी की है, या कोई कृति डा० गुप्त की है, पाठक को इससे क्या? उसे तो प्रामाणिक पाठ चाहिए। फलतः यदि आप किसी ऐसे पाठ का समर्थन करते हैं जो दो दर्जन के लगभग प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों और संस्करणों में से एक में भी नहीं मिलता, जो न प्रयोग-सम्मत है, न व्युत्पत्ति और अर्थ की दृष्टि से ग्राह्य है, और न प्रसंग से सिद्ध है, भले ही वह स्व० शुक्लजी का हो, और ऐसे पाठ

(शेष पृष्ठ ४२५ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति-चित्रण में एक नवीन दिग्दर्शन

प्रो० कन्हैयालाल सहल, एम० ए०

जो केवल वसन्तकालीन सुषमा, शारदीय ज्योत्स्ना, झर-झर करते हुए जल प्रपात, नभ में गुरु गम्भीर गर्जन करने वाले मेघों में ही प्राकृतिक सौन्दर्य का दर्शन करते हैं, "उनकी दृष्टि एकाङ्गी है" ऐसा कहने में किसी प्रकार की अतिरञ्जना नहीं है। जो कवि प्रकृति के विराट सौन्दर्य का दर्शन करते हैं, उनको प्रचण्ड झञ्झावात, साँय-साँय करता हुआ निर्जन अरण्य और मरुस्थल के टीलों में भी एक अलौकिक सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है, जिसकी सफल अभिव्यक्ति वे अपनी अनुभूति के बल पर कर जाते हैं। 'मरु के टीले' में हिन्दी के उदीयमान कवि श्री 'द्विरेफजी' ने प्रकृति वर्णन के सम्बन्ध में उसी विराट दृष्टिकोण का परिचय दिया है। सहज ही यह प्रश्न उठता है "इन पर कोई कैसे गाये?" टीलों के पास न वैभव है न भविष्य के कोई स्वर्णिम स्वप्न हो। संसार तो मकरन्द-चयन में मस्त रहता है, माणिक मदिरा से जिनकी दो सुनहली घड़ियाँ खाली नहीं, वे भला दूसरों के दुःख की घड़ियों को क्यों सुनने लगे? लेकिन कवि का मन टीलों में उलझा हुआ है, कोई किसी के बाल-जाल में अपने दृगों को उलझाता है, कोई एकान्त में बैठी हुई प्रकृति की मोहक छवि को एक दृष्टि से देखता है, किन्तु यह कवि स्वय टीलों के देश का वासी है, टीले उसे आत्मीय से लगते हैं। कवि के शैशव के चरणों ने टीलों पर अथक नृत्य निरन्तर किया है, टीले उसे अत्यन्त प्रिय लगें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? टीलों पर पैर पसारे कवि ने सूर्य को छिपते, उगते और किरणों को बिखराते तथा समेटते देखा है वह इन टीलों को भला कैसे भूल सकता है? कवि की दृष्टि में संसार टीलों को नहीं समझ पाया है किन्तु टीले संसार को समझ गये हैं। बिना अनुभूति के सच्ची कविता की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। 'मरु के टीले' कवि की अनुभूति की प्रबल अभिव्यक्ति है। श्री द्विरेफजी को टीले कुछ खोजते से जान पड़ते हैं, यह समझ नहीं पड़ता कि इनको कौन खोजने जाता है? ऐसा भी लगता है जैसे टीले किसी की आगमन प्रतीक्षा में निश्चल मौन बने बैठे हैं—

आगमन प्रतीक्षा में जिसकी
ये मौन बने बैठे निश्चल
मैं उसको ढूँढ रहा प्रतिपल।

स्थान स्थान पर इस प्रकार छायावादी कवियों की सी काव्योचित रहस्य-भावना प्रस्तुत गीतों में दिखलाई पड़ती है, जो केवल कल्पना का स्वच्छन्द उन्मुक्त विलास नहीं वह अनुभूति का अङ्ग बनकर आई है, इसलिए उसमें प्रभविष्णुता का स्वर है। टीलों के अन्तस्तल का भी कवि ने अनुभव किया है, कवि क्योंकि स्वयं चेतना सम्पन्न प्राणी है इसलिए उसे इन टीलों में भी उसकी भावना के अनुरूप स्वर्णिम इच्छाओं का अविराम नर्तन दिखलाई पड़ता है। टीलों के मुख से उन्होंने कहलवाया है कि वनोपवन और नभ प्रांगण में सर्वत्र कलरव सुनाई पड़ता है। किन्तु हम अब भी अपनी असफलताओं को धूलि उड़ाते हैं। टीलों को उन्मन और जर्जर ही कवि ने विशेष रूप से देखा है, वे भला मुस्काना क्या जानें? ऐसा लगता है जैसे कवि का व्यक्तिगत निराशावादी स्वर टीलों पर भी आरोपित कर दिया गया है, किन्तु कवि अपनी स्वाभाविक निराशा को टीलों में भी नहीं छिपा सकता—

"मरु भू के मौन तपस्वी हैं ये टीले,
व्यथित प्रकृति के ललित संत हैं ये।"

इनकी सी महामहनीयता और गरिमा भला अन्यत्र कहाँ मिलेगी? पर वेदना और निराशा का स्वर कवि का पीछा नहीं छोड़ता.....

ये ऊपर से चितचोर, कान्त
पर भीतर हाहाकार, रुदन
वह क्या जाने, जिसने केवल
ऊपर की ही देखी झाँकी
युग युग से टीले एकाकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इस अभिव्यक्ति में कृत्रिमता नहीं, यह निश्छल सरल अभिव्यक्ति है, जिसे दुःख की कसक ने और मधुरतर बना दिया है। और फिर इनके अविराम श्रम को तो देखिये—

हो निशीथ चाहे दोपहरी
रुक न यहाँ पाती श्रम-लहरी
थिरक थिरक प्रतिपल अनन्त का
क्या न सतत बरसे रहते हैं
टीले श्रम करते रहते हैं।

निरन्तर श्रम और तिस पर भी उन्मन और जर्जर टीले आज की विषम आर्थिक व्यवस्था पर कुछ परोक्ष से संकेत करते जान पड़ते हैं। कवि इन टीलों से इस प्रकार आत्मीयता प्रकट करता है, मानो वे उसके बन्धु अथवा मित्र हों, तभी तो वह कहता है—

'आओ इनका मन बहलायें'

सच कहा जाय तो काव्य का कोई विषय नहीं होता। जिस आलम्बन को लेकर कवि की कल्पना रमणीय रूप धारण कर लेती है और अपनी अनुभूति को प्रेषणीय बना पाती है वह कल्पना निश्चय ही सफल है। हिन्दी के किसी कवि ने सम्भवतः अपनी प्रेयसी को लक्ष्य में रखकर कहा है—

इन गीतों के लिए तुम्हारा
ऋणी रहूँगा मैं आजीवन

श्री द्विरेफजी को टीलों ने गीत दिये, यदि कवि को अपने खोये गान इनमें मिल गये, यदि शान्ति-सांत्वना कवि को इन टीलों में मिली, तो वह इन टीलों का ऋणी क्यों न होगा?

हिन्दी में अनेक प्रकार का प्रकृति-चित्रण आज दिखलाई पड़ता है, किन्तु श्री 'द्विरेफजी' ने टीलों को लेकर जैसा प्रकृति-वर्णन उपस्थित किया है, वह नितान्त विरल है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

कवि की अनुभूतिमयी आँखों से देखने पर ये टीले किसे प्रिय न लगेंगे? इस प्रकार के व्यापक दृष्टिकोण को लेकर जो प्रकृति-वर्णन इन गीतों में किया गया है, उससे हिंदी संसार इन गीतों की ओर आकृष्ट होगा, ऐसी आशा है।

हमारे सहायक

साहित्य-सन्देश के प्रचार में सहायता देने वाले निम्न महानुभावों के हम आभारी हैं—

१—श्री उमेशचन्द्र मिश्र, बेलागंज, पटना।
२—श्री श्यामबिहारी उपाध्याय, निचितपुर स्टेशन, मानभूमि।
३—श्री सी० सी० मूद, शिमला।
४—श्री मूलचन्द्र जोशी, अम्बाला।
५—श्री सञ्चालक राष्ट्रभाषा विद्यालय, बेल्लूर (द० भारत)
६—प्रो० श्री शिवबालक शुक्ल, मुरादाबाद।
७—श्री मथुराप्रसाद दास, भागलपुर।
८—श्री कामताप्रसाद श्रीवास्तव, टोंक (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास

पतवार—(गान्धीवादी विचार-धारा का मनोविश्लेषण-प्रधान सामाजिक मौलिक उपन्यास) लेखक—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, प्रकाशक—मेहरचन्द मुन्शीराम, दिल्ली। पृ० ३१७, मूल्य सजिल्द का पाँच रुपया।

'चलते-चलते' लिख चुकने के उपरान्त ही उपन्यासकार ने यह 'पतवार' सँभाला होगा। उपन्यासकार वाजपेयीजी अपनी कला में दृढ़ता पूर्वक चलते-चलते आज एक अभिनन्दनीय स्थान पर आ पहुँचे हैं। 'गुप्तधन' और 'चलते-चलते' जैसे उपन्यासों में जो रहस्य का एक दीर्घ सूत्र लेखक ने स्थापित किया था और उसे अपनी टेकनीक का एक अङ्ग बना लिया था, उसे इस उपन्यास में उसने अत्यन्त सीमित कर लिया है—दादा और दीदी के प्रासङ्गिक प्रकरण में ही कुछ-कुछ वह मिलता है। अतः कथा-सूत्र स्पष्ट, सरल और प्रवाहमय है। कथा यह है कि लालाजी का भतीजा दिलीप, लालाजी की स्वार्थ-निष्ठ नीति के कारण मेडीकल की पढ़ाई बीच से ही छोड़ कर परोपकार में लग गया और दीन-दुखियों के प्रति यथार्थ करुणा रखने के कारण शीघ्र ही लोक-प्रिय भी होता गया। वह एक बाढ़-पीड़ित क्षेत्र में सहायता के कार्य में जुटा हुआ था, वह एक बार नगर से पीड़ितों की सहायतार्थ पाँच हजार से अधिक धन प्राप्त कर अपने लक्ष्य-स्थान को जा रहा था कि पहले तो हत्यारों के षडयन्त्र से जैसे-तैसे बचा तब तक एक दूसरे स्थान पर वह अटैची-केस जिसमें दान में प्राप्त रुपये भरे हुए थे किन्हीं महानुभाव के अटैची केस से बदल गया। ग्लानि से दिलीप पहले तो एक गाँव में अपने मित्र के यहाँ मुँह छिपाये रहा, फिर काशी पहुँचा जहाँ उसके मित्र ने उसको ५०००) प्रदान कर दिये कि वह उस ग्लानि से मुक्ति पाये। उधर दादा ने भी जाकर उसके नाम से पाँच हजार जमा करा दिये कि उस पर कलङ्क न रहे, और जिन महानुभाव का अटैची-केस बदला था वे भी उन रुपयों को यथा-स्थान लौटा गये। इस प्रकार दिलीप के चरित्र की कालिमा से उज्ज्वलता का प्रकाश हुआ। इस प्रधान सूत्र के साथ उसके चाचा 'लाला गिरधारी' का चरित्र है जो अपनी सन्तान-के हित के लिए भतीजों पर अत्याचार करने चले हैं, पर दिलीप को मारने के लिए हत्यारे भेजने के बाद यह सुन कर कि ईश्वरीय लीला ने उसे बचा दिया वे ईश्वर से भयभीत हो सन्मार्ग पर आगये और मृत्यु के मुख में जाते-जाते स्थिति को सम्हाल कर दिलीप का प्रेम भी प्राप्त कर सके। दिलीप के परोपकारी व्रत के साथ दादा की नूतिन लक्ष्मणा से उसके शुद्ध प्रेम के व्यापार की कहानी भी चलती है। इस प्रकार इस उपन्यास में प्रेम की सुषमा के साथ स्त्री-पुरुषों के चरित्रों का अध्ययन ही नहीं, सत्य और अहिंसा के जीवन का स्वरूप भी दिखाया गया है। प्रत्येक घटना किसी न किसी गम्भीर विचारपूर्ण टिप्पणी के द्वारा मानव-जीवन की आलोचना प्रकट करती है। जड़-प्रकृति द्वारा सञ्चालित घटनाओं की विवशता में मनुष्य द्वारा उपार्जित निजी चरित्र-बल की महत्ता का सबल प्रतिपादन इस उपन्यास में हुआ है। लालाजी और दादाजी के चरित्र-बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। उपन्यास इस नये युग के विश्व-ङ्कलित भारतीय युवक और मानव के लिए मार्ग-चेता हो सकता है।

—सत्येन्द्र

उल्का—लेखक—श्री वि० स० खांडेकर, प्रकाशक—देशमुख आणि कम्पनी १६१ शनवार, पूना। मूल्य ६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत उपन्यास मराठी से श्री प्रभाकर माचवे द्वारा हिन्दी में अनूदित है। उल्का बहुत कुछ साम्यवादी विचार-धारा से प्रभावित है। प्रस्तावना में ही लेखक ने उसकी जन्म-कहानी पर प्रकाश डाला है। उल्का एक प्राइमरी स्कूल के शिक्षक की पुत्री है जिसने स्वेच्छा से अध्ययन-अध्यापन का मार्ग स्वीकार किया है। कन्या को उन्होंने पढ़ाया, अन्त में एक धनी व्यक्ति से विवाह कर दिया। 'निरा' निम्न स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, 'इन्दु' धनिक वर्ग का जिसके पिता निरन्तर बम्बई से अवकाश नहीं पाते। उच्च शिक्षा प्राप्त है। उसे Platonic love पर विश्वास होने लगा! चन्द्रकान्त क्रान्तिकारी है जो गांधीजी के आन्दोलनों में भाग लेकर जेल भी गया, मजदूरों का सहायक भी बना। पर लोगों की दृष्टि में वह आवारा है। 'उल्का' से उसका बचपन का प्रेम है, पत्र-व्यवहार होता रहता है। पर वह शारीरिक नहीं हृदय-गत है। उल्का के पति की जीवन रक्षा करने का उसने भरसक प्रयत्न किया। इसी सम्बन्ध में उसे दस वर्ष का कारावास हो गया। प्रत्येक पात्र वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। उल्का भी एक टूटा हुआ तारा है जिसका प्रकाश महान परिवर्तन का सूचक है।

अपराजिता—लेखक-आचार्य चतुरसेन शास्त्री; प्रकाशक-आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृ० १४०, मू० २)

ब्रजराज राज कुमारी का शिक्षक था। कहाँ राज एक उच्च शिक्षित खानदान की सुपुत्री और कहाँ ब्रज एक प्रासीण-परिवार का युवक। पर ब्रज था प्रतिभाशाली और सच्चरित्र युवक। दोनों का स्नेह और पारस्परिक प्रेम इतना बढ़ा कि उनका विवाह होना निश्चित होगया। राज के पिता जिन अधेड़ मजिस्ट्रेट साहब के ७ लाख रुपये के कर्जदार थे उन्होंने शर्त लगादी कि रुपया तुरन्त चुकाओ वर्ना राज की शादी उनके साथ करके खाता चुकता करो। पिता को सङ्कट-मुक्त करने के लिए पुत्री ने साग्रह अपने जीवन की सारी खुशी दूसरों की दृष्टि में हँसते हँसते बलिदान कर मजिस्ट्रेट साहब से विवाह कर लिया परन्तु अपने लिए मिला हुआ सारा दहेज और वह जेवरात भी जो वर-पक्ष की ओर से चढ़ाये गये थे, विदा होने से पूर्व राज ने ब्रज और राधा को अर्पण कर दिये और नाटकीय ढङ्ग से उन्हें विवाह-सूत्र में बाँध दिया इससे आगे नारी-जीवन का वह संघर्ष शुरू होता है जिससे हमारे देश की लाखों ललनाएँ जूझी हुई हैं। किन्तु, इस उपन्यास में दर्शनीय यह है कि राज ने नारी-सुलभ कोमलता, शील और कर्तव्य-निष्ठा से च्युत हुए बिना कितने पौरुष के साथ इस सङ्घर्ष का मुकाबिला किया। निस्संदेह राज का पार्ट भारत के नारी-समाज के लिये मार्ग दर्शक बनेगा। लेखक का प्रयत्न सर्वथा स्तुत्य है।

—आनन्द

रक्तक भक्तक—लेखक-श्री मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक-आलोक प्रकाशन, बीकानेर। पृष्ठ १४०, मूल्य २)

पुस्तक एक उपन्यास है जिसमें एक ओर हैं सम्पन्न डा० लक्ष्मणस्वरूप, दूसरी ओर एक धनी व्यापारी दीनानाथ। डा० साहब अभी तक सदा ईमानदार रहे हैं किन्तु अब घर का खर्च बढ़ गया है। पहले बेटियों की शादी में खूब धन खर्च किया था अब कुछ कमी है। पर लोगों पर प्रभाव पूर्ववत् हो रहे, अतः कार भी रखनी पड़ती है। दीनानाथ को कुछ बीमारी होने का सन्देह हो गया है, जबकि वह बिल्कुल ठीक है। वही डा० साहब का भक्ष्य हो जाता है। घोड़ा घास की रखवाली करे तो खाये क्या? अतः वे भी किसी प्रकार रुपया ऐंठने की धुन में लगते हैं।

लड़की वर्णा द्वारा आजकल के कालेज जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। यह भी कृष्णकुमार आदि के वर्णनों से स्पष्ट है, सम्बन्धी किस प्रकार धनी बहनोई की मृत्यु-कामना करते हैं, उनका धन चुरा कर अपने घर रख लेते हैं। स्त्री भी उनकी बहन है। भूत-प्रेतों पर विश्वास, तत्सम्बन्धी कुत्सित विचार तथा कार्यों पर भी प्रकाश डाला है। आजकल के औलिया, ओझा कैसे हैं, निम्न वर्ग की स्त्रियों की धारणाओं आदि का विवेचन भी हुआ है।

लेखक मनोवैज्ञानिक चित्रण में दक्ष मालूम होता है। क्यों एक व्यक्ति किसी कार्य विशेष में तत्पर होता है, उसकी परिस्थितियों का पूरा विश्लेषण इसमें मिलेगा।

—त्रिलोचन पांडेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

शिमले की क्रीम—लेखक- श्री वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता, प्रकाशक—नीलाभ प्रकाशन गृह, ५ खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद। मूल्य २।)

पुस्तक में लेखक की २१ कहानियाँ संग्रहीत हैं। विषय दैनिक जीवन से सम्बद्ध हैं। 'शिमले की क्रीम' में बड़ा तीखा व्यंग्य है। 'मनोविज्ञान का बेचा' में हास्य की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक है। 'पिल्ले' में एक उच्च पदाधिकारी का गृह-चित्र है तो 'कुत्ते का दीपक' में मध्यम वर्ग का 'दिलोर' एक रेखा चित्र है। 'टिप' 'आबियों का गुच्छा' में यथार्थ अनुभूति है, चित्र जीते जागते हैं। पढ़ते समय मन ऊबता नहीं। भाषा चलती है अँग्रेजी, उर्दू के शब्द प्रवाहानुकूल हैं। भावों के अनुकूल शब्द-योजना में लेखक कुशल है।

संध्या-दीप—लेखक-श्री वि० स० खांडेकर, प्रकाशक—रा० क० देशमुख, देशमुख आणि कम्पनी, १९१ शनवार, पूना। मूल्य ३)

पुस्तक मराठी से अनूदित है। इसमें ७ कहानियाँ संग्रहीत हैं। एक लम्बी कहानी के पश्चात् एक छोटा सा आख्यान आद्योपान्त है। यह क्रम की विशेषता है। छोटे आख्यानों के पात्र कहीं पक्षी हैं, कहीं प्रेतात्माएँ आदि। वैसे कहानियाँ केवल चार हैं। आख्यानों को लेखक ने 'रूपक कथा' कहा है। अहिंसा को प्रधानता देने वाला व्यक्ति भी जीवन में हार जाता है, इस पृष्ठभूमि पर 'शान्ति' लिखी गई, 'दो प्रेतात्माएँ' में सूचित है अपने परिश्रम तथा ईश्वर पर अधूरा विश्वास करने वाले तिरस्कृत होते हैं। हमारी भ्रान्त धारणाओं के कारण जीवन के मूल्य किस प्रकार बनावटी तथा विकृत हो गए हैं इसका चित्रण 'तीन जगत' कहानी में है। 'दो नारङ्गियाँ' वाली कहानी की पृष्ठभूमि में "जीवन के लिए मूलाधार एक श्रद्धा का—मानवता का—विषय चित्रित करने की चेष्टा की गई है।" 'सोने की गाड़ी' पारिवारिक कहानी है पर इसकी पृष्ठभूमि में भी एक समस्या है—जीवन में श्रद्धा का शीघ्रता से लोप होना। 'संध्यादीप' कहानी देशभक्ति की नाव पर आधृत है। अनेक हिन्दी कहानी संग्रहों में यह उत्कृष्ट है। —त्रिलोचन पांडेय

काश्मीर की लोक कथाएँ—लेखक-श्री नन्दलाल चक्ता, प्रकाशक-आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली। पृ० ४८, मूल्य १)

बड़े आकार की मोटे अक्षरों में छपी इस बालोपयोगी पुस्तक में काश्मीर की ६ कहानियाँ हैं। कहानियाँ बड़ी मनोरंजक और सचित्र हैं। उनमें आदर्श तो कम है—पर विचित्रता खूब है। बच्चे रुचि से पढ़ेंगे।

सरल कहानियाँ—लेखक-श्री सन्तराम विचित्र, प्रकाशक-आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली। पृ० ४८, मू० १)

'काश्मीर की लोक-कथाएँ' के समान ही इस पुस्तक का भी आकार-प्रकार और चित्र आदि हैं। इसकी कहानियाँ नाम के अनुसार सरल और प्रभावोत्पादक हैं। प्रकाशक बच्चों के लिए ऐसी आकर्षक पुस्तकें निकाल कर हिन्दी जगत का उपकार कर रहा है।

गद्य-गीत

अभिसार—लेखक-श्री किशोर साहू, प्रकाशक-हिन्दुस्तान चित्र, चेम्पूर, बम्बई। पृष्ठ ९१० मूल्य ३॥)

पुस्तक श्री किशोर साहू के ३९ गद्य-गीतों का संग्रह है। इसमें वे कवि के रूप में आये हैं। गीत भाव-पूर्ण हैं और कुछ में तो केवल एक पंक्ति है। ३२ वाँ गीत है: "पाप की नींव पर पुण्य की भी दीवार नहीं ठहर सकती" ३५ वाँ है "शर्म की हद हो सकती है बेशर्मी की नहीं।" कुछ दो तीन पंक्तियों के हैं, कुछ पूरे पृष्ठ के भी। समय और मन की लहर के अनुसार लिखे गये हैं। जैसा लेखक का कहना कभी एक ही दिन में तीन चार लिख डाले, कभी महीनों बाद एक लिखा। उनकी भावनायें अवश्य ही बिना किसी बनावट के इन गीतों में ढल गई हैं। कवि को विश्वास है "इन्हें दुनियाँ मेरे बाद भी याद रखेगी।"

—त्रिलोचन पांडेय

एकाङ्की

सफर की साथिन—(हास्य विनोद-पूर्ण सरस एकांकी) लेखक-श्री रामसरन शर्मा। प्रकाशक-आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली ६। पृष्ठ १२५, मूल्य १॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संग्रह में लेखक के लिखे हुए ९ हास्य-विनोद पूर्ण सरस एकांकी हैं। पहला है 'सफर की साथिन', जिसमें रोमांस की प्रतीक्षा में रेल के डिब्बे में लेटे हुए युवक को एक नव-युवती प्रवेश कर अपने प्रेम का पात्र बनाती है, वह उसे अपना प्रेमी बनाती है, उसके साथ लेट जाती है, तभी एक दूसरा पुरुष आता है, जैसे उस स्त्री का ही पीछा करने आया हो। वह युवती नवागन्तुक को रेल से धकेल कर स्वयं भी कूद जाती है। वह युवक गाड़ी की जञ्जीर खींचकर रुकवा देता है। ड्राइवर बताता है कि यह कोई दुर्घटना नहीं। "बरसों हुए तब ऐसी घटना वास्तव में हुई थी। ठीक आज ही की तारीख थी। तब से हर साल, आज की रात, इस वक्त वही बात फिर होती है। क्या जाने भूत है, क्या है?" बंद दरवाजा में मूलचन्द पहाड़िन शर्वती को बन्द रखता है, पर तूफान के साथ अविनाश शर्वती के बन्द दरवाजे के भीतर पहुँच जाता है। भोली पहाड़िन को एक दिन बन्द दरवाजे का मूलचन्द का लगाया ताला तोड़कर अविनाश ले जाता है, शर्वती प्रसन्नता से उसके साथ चली जाती है। बेचारी चुड़ैल, बाप को बिल्ली बन के, माँ का बोझ बन के, छोटेराम को भी जीने नचाकर, लड़की को साँप बनकर, रमेश को प्रत्यक्ष उपस्थित होकर डराना चाहती है; पर बाप पानी डालकर, माँ शरीर दबवा कर, राम शंकर की सौगन्ध से, लड़की मरने के लिए प्रस्तुत होकर बेचारी को परेशान कर देते हैं, उधर रमेश तो बेचारी चुड़ैल से जैसे विवाह कर घर-मालकिन ही बना देता है। इसके उपरान्त 'वकालत' 'पत्रकारिता', बीमारी में बुद्धुओं की छीछालेदर है, जिसमें अति करदी गयी है। 'मिल की सीटी' में मिल मजदूर की सुरक्षा और उसकी स्त्री की इज्जत का मूल्य बताया है, उसे कहाँ तक विवश किया जा सकता है। 'भूतों की दुनियाँ' में मनुष्य स्त्री के पारस्परिक विश्वासघात का चित्र है। समस्त एकांकियों का आधार बहुधा मनुष्य की पतनोन्मुख भावनायें हैं, पर उनकी भर्त्सना भी निहित है। हास्य का सौष्ठव अक्षुण्ण रखने की चेष्टा लेखक ने की है। वकालत, पत्रकारिता और बीमारी में हास्य के विभावों में कुछ अद्भुत और अस्वाभाविक का समावेश है, जो रुचि-वैचित्र्य के संतोष के लिए माना जा सकता है। —सत्येन्द्र

धर्म

तत्व समुच्चय—सम्पादक-डॉ० हीरालाल जैन, प्रकाशक—भारत जैन महामण्डल, वर्धा। पृष्ठ १८८, मू० ३)

जैन धर्म के विषय में ठीक-ठीक ज्ञान साधारण जनता में बहुत कम है। बहुत-सी मिथ्या धारणाएँ इस धर्म के विषय में जनता में आज तक फैली हुई हैं। जैन तत्व का परिचय तो बहुत ही कम लोगों को है। प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा विद्वान सम्पादक ने इस कमी की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार की पुस्तकें हिन्दी में उतनी नहीं हैं जितनी संस्कृत या प्राकृत में है। प्राकृत में तो अपार साहित्य जैन-धर्म के विषय में अब भी उपलब्ध है। उन्हीं प्राकृत ग्रन्थों में से छाँट कर अनेक तत्व, ज्ञान और आचार सम्बन्धी बातों का सङ्कलन इस पुस्तक में किया गया है, जिनके द्वारा जैन-धर्म का बहुत कुछ परिचय संक्षेप में मिलता है। प्रारम्भ में प्राकृत गाथाएँ और आगे उनका हिन्दी अनुवाद देने के अतिरिक्त एक कोश भी दे दिया गया है जो विद्यार्थियों के लिए अधिक हितकर है। कई अन्य उपयोगी बातें भी दी गई हैं। —प्र

राजनीति

आजकल का मानव-जीवन और उसकी समस्यायें—लेखक-आचार्य रामेश्वर गुप्त एम० ए०, प्रकाशक-चेतना प्रकाशन, बम्बई। पृष्ठ १३१ मूल्य २)

प्रस्तुत पुस्तक में वर्तमान मानव और विशेष कर भारतीय समाज की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर कुछ गम्भीरता के साथ विचार किया गया है। लेखक का दृष्टिकोण प्रत्यक्षवादी है। वह बिना प्रत्यक्ष प्रमाण आवागमन जैसे सिद्धान्त को भी मानने को तैयार नहीं है। लेखक प्रत्यक्षवादी होते हुए भी संयत जीवन के पक्ष में है। लेखक मार्क्सवाद से अधिकांश में प्रभावित है किन्तु पूँजीवाद का नितान्त विरोधी नहीं है। वह बचाये हुए रुपये का सदुपयोग चाहता है। अन्न की समस्या की भीषणता को लेखक पूरी तौर से सामने लाया है किन्तु उसका हल सन्तान-निरोध में ही देखता है। —गुलाबराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिक और नागरिकता—लेखक श्री शुभदा-तैलंग, प्रकाशक—लोक सेवक प्रकाशन, बनारस। पृष्ठ ४५८, मूल्य ४॥)

प्रस्तुत पुस्तक में नागरिक और नागरिकता दोनों पर प्रकाश डालते हुए उससे सम्बन्धित सभी बातों की चर्चा की है। पुस्तक विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। क्योंकि इसमें जहाँ प्रारम्भिक सभी बातों का ज्ञान कराया है वहाँ विषय से सम्बन्धित कोई बात छोड़ी भी नहीं है।

सचित्र संविधान—लेखक—श्री इन्द्र एम० ए०, प्रकाशक—आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ ७२, मूल्य १॥)

भारतीय संविधान का परिचय देने वाली यह उपयोगी पुस्तक इसलिए और अधिक उपयोगी हो गई है कि उसमें अनेक चित्रों द्वारा विषय को समझाने की चेष्टा की गई है।

अर्थशास्त्र

सर्वोदय अर्थशास्त्र—लेखक—श्री भगवानदास केला, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला कार्यालय, दारागञ्ज, इलाहाबाद। पृष्ठ ३५२, मूल्य ४)

जाजू।

यह पुस्तक अर्थशास्त्र विषय के हिन्दी के पुराने तपस्वी लेखक श्री भगवानदास केला की लिखी हुई है। अब तक केलाजी ने एक ओर तो पाश्चात्य दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र सम्बन्धी साहित्य लिखा और प्रकाशित किया था, दूसरी ओर भारतीय गौरव को भारतीय परम्परा की दृष्टि से हृदयङ्गम करते और प्रकाशित करते रहे। उसका स्वाभाविक फल किसी दिन यह होना ही था कि किसी दिन ये पूरब और पश्चिम मिल जाते। केलाजी की इस पुस्तक में दोनों मिल गये हैं। पाश्चात्यों ने हमें अर्थशास्त्र दिया, उस अर्थशास्त्र का ढाँचा ही इस अर्थशास्त्र का ढाँचा है। पहले खण्ड में वही अर्थशास्त्र की परिभाषाएं और विभाग-विवेचन, दूसरे खण्ड में 'उपयोग', तीसरे में 'उत्पत्ति', चौथे में 'विनिमय', पाँचवें में 'वितरण', छठवें में अर्थ व्यवस्था और राज्य पर विचार हैं। किन्तु इस रूपरेखा में 'सर्वोदय' की भावना ओत-प्रोत है। 'सर्वोदय' गांधीवाद का मर्म है। यह शुद्ध भारतीय परम्परा पर निर्भर है। इस सर्वोदय दृष्टि में मनुष्य और मानवता का महत्व है, अर्थ उसी के लिए है। इसलिए अर्थ का 'उपभोग' नहीं 'उपयोग' होना चाहिए। भारत ने सदा ही मानवता के दृष्टिकोण से समस्याओं पर विचार किया है, आज भी गांधीजी के द्वारा यह दृष्टिकोण भारत के लिए ही नहीं विश्व के लिए भेंट किया गया है। भारत को तो अपना 'अर्थशास्त्र' अपनी ही दृष्टि से बनाना होगा। केलाजी का इस दिशा में यह प्रथम विधिवत् प्रयास है। इसमें सातवें खण्ड में सर्वोदय अर्थशास्त्र की विशेषताएँ भी बता दी हैं। वस्तुतः केलाजी की यह पुस्तक सर्वोदय दृष्टि से अर्थशास्त्र की टैक्स्ट-बुक है। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी को सर्वोदय की दृष्टि से अर्थशास्त्र को समझने की अवश्य चेष्टा करनी चाहिए; उसमें केलाजी की यह पुस्तक अवश्य सहायक होगी।

सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था—लेखक—श्री जवाहरलाल जैन, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, इलाहाबाद। पृष्ठ १२७, मूल्य १॥)

केलाजी की उपरोक्त पुस्तक यदि टैक्स्टबुक है, तो यह पुस्तक उसकी सिद्धान्तिका है। केलाजी ने स्थूल रूप-रेखा स्थूल युक्तियों के साथ प्रस्तुत कर दी है। जैन महोदय ने उस रूप-रेखा के आधारभूत सिद्धान्तों का कुछ गहराई से विवेचन किया है। इसमें तीन खण्ड हैं—पहले में सर्वोदय अर्थ व्यवस्था ही क्यों? पर प्रकाश डाला गया है और आर्थिक दृष्टि से जो दो विरोधी दृष्टिकोण विश्व में संघर्ष कर रहे हैं, उन्हें पूँजीवादी और साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था का नाम दे कर दोनों की कमियाँ बताते हुए सर्वोदय अर्थशास्त्र का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। दूसरे खण्ड में सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था के कुछ आधारभूत सिद्धान्त स्पष्ट किये गये हैं। तीसरा खण्ड सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था की कुछ विशेषताओं पर विचार करता है।

केलाजी और जैन महोदय ने अपनी-अपनी पुस्तक में यह स्पष्ट कर दिया है कि मूलतः दोनों मिल कर अर्थशास्त्र लिखना चाहते थे, बाद में शैली आदि में भिन्नता के कारण दोनों को पृथक् पृथक् पुस्तकों का रूप दिया गया। वस्तुतः दोनों में शैलीगत ही नहीं, विषयगत अन्तर भी है। केलाजी अर्थशास्त्र लिखते-लिखते नैतिक पक्ष पर विशेष बल दे कर 'स्मृति-ग्रन्थ' लिख गये हैं, किन्तु जवाहरलालजी ने सर्वो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दय को नैतिक का समानार्थी नहीं माना, उसे मानवता और समग्र व्यक्ति और समग्र समाज की पृष्ठभूमि पर खड़ा किया है। अतः दोनों पुस्तकों का साथ-साथ पढ़ना ही हितकर होगा।

हमारा अर्थशास्त्र कैसा हो—सं०—श्री भगवानदास केला, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, इलाहाबाद। पृष्ठ ४२, मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तिका में सर्वोदय अर्थशास्त्र का महत्त्व और आवश्यकता बताने वाले ६ निबन्ध संग्रहीत हैं। तीन स्वयं सम्पादक की लेखनी से हैं, शेष सर्वश्री कृष्णदास जाजू, सुरेश रामभाई, दयाशङ्कर दुबे, बृजनाथ चतुर्वेदी, डा० जी० का० कुमारप्पा के हैं। नवीन दृष्टिकोण के प्रचार में यह छोटी पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

सर्वोदय-राज : क्यों और कैसे ?—लेखक—श्री भगवानदास केला, प्रकाशक—भारतीय ग्रंथमाला, दारागञ्ज प्रयाग। पृष्ठ ७२, मूल्य ॥≈)

केला जी राष्ट्रीय चेतना के विचारक रहे हैं। निश्चय ही वे पुस्तक-प्रकाशक हैं, स्वयं एक आर्थिक संस्था हैं, उसके मर्म को चतुराई से समझे हुए, फिर भी 'सत्य' का आग्रह आपको सदा रहा, उस सत्य के दो पहलू बने हैं। 'मातृ भू-प्रेम' और 'मानवता का सम्मान' इसलिए ये गुलामी के समय में राष्ट्रीयता के भावों के प्रबल प्रचारक रहे, और ब्रिटिश-शासन के विरोधी। आज के भारतीय-शासन से भी वे दुखी हैं, उसी की आलोचना करते हुए, उसकी कमियों को दिखाते हुए, 'सर्वोदय-राज' की कल्पना की रूपरेखा इसमें प्रस्तुत करने की चेष्टा उन्होंने नपे-तुले किन्तु मार्मिक शब्दों में की है। इस सर्वोदय-राज की तीलियाँ उन्होंने गाँधीजी से ली हैं, किन्तु जोड़ा अपने ढङ्ग से है। आज प्रत्येक भारतीय को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। केलाजी ने अन्त में गांधीजी के वाक्यों को भी विविध-शीर्षकों के अन्तर्गत रख दिया है। वस्तुतः हमें भारत में स्वदेशी-राज्य ही नहीं, 'स्वराज्य' लाना है तो आज पाश्चात्य की नकल पर बनी समस्त संस्थाओं को निर्ममता-पूर्वक शस्त्र-परीक्षा ही नहीं करनी होगी, उन्हें ध्वस्त करके नया-निर्माण भी करना होगा। इस छोटी-सी पुस्तक से एक चेतना और प्रकाश मिलता है।

भारत और दक्षिणी-पूर्वी एशिया—लेखक—भरतसिंह उपाध्याय, एम० ए०, प्रकाशक—सरल साहित्य-प्रकाशन, बड़ौत (मेरठ)। पृष्ठ ६६, मूल्य २)

इस पुस्तक में सात अध्यायों में विद्वान् लेखक ने साहित्य और इतिहास से प्रमाण देकर भारत के एशिया, श्री लंका, बर्मा, श्याम, भारत-चीन, इन्डोनेशिया तथा मलाया से सांस्कृतिक सम्बन्धों के स्वरूप का प्रतिपादन किया है। भारत संसार का एक महान् संस्कृति से युक्त देश है। अब तक गुलामी के कारण वह अपने को भूला हुआ था, किन्तु अब जब वह स्वतन्त्र हुआ है, उसे आवश्यक है कि अपने स्वरूप को भली प्रकार समझे, अब तो उसने जो खोया है उसे भी समझे, उसका अपव्यापन जहाँ-जहाँ है वहाँ भी अपने को भली प्रकार खोजे। इस छोटी पुस्तक में कुछ वैसा ही उद्योग ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर किया गया है। लेखक की चाह रही है कि जब भारतीय आज इन देशों और उनके निवासियों से मिलें तो सांस्कृतिक-ऐक्य से सौहार्द बढ़ायें। वस्तुतः चीन से लेकर दक्षिण तक द्वीप में भारत सांस्कृतिक रूप में आज भी सजीव है। लेखक पाली पर विशेष अधिकार रखता है, इसीलिए इन सम्बन्धों में वह बुद्ध प्रभाव को जितनी विशदता से दिखा सका है, अन्य को नहीं। पुस्तक निश्चय ही अध्ययन योग्य और संग्रहणीय है।

—सत्येन्द्र

समाज-शास्त्र

सामाजिक अध्ययन—लेखक—श्री प्रेमनारायण मथुर, प्रकाशक—समाज-शास्त्र परिषद, वनस्थली (राजस्थान) मूल्य ३)

इस पुस्तक में पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर आज के युग तक की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक धारा का विशद विवेचन सरल भाषा में किया गया है। विशेषता यह है कि यह पुस्तक पाठक को मानव इतिहास के भूतकाल का दिग्दर्शन कराती हुई प्रगतिशीलता और अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर ले जायगी। जितनी जानकारी इसमें दी गई है कम से कम उतनी मनुष्य मात्र के लिए आवश्यक ही है और इस दृष्टि से यह पुस्तक विद्यार्थियों और जन साधारण के लिए समान रूप से उपयोगी है।

—आनन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविज्ञान

बचपन-विकास का मनोविज्ञान—लेखक-प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप, प्रकाशक-राजेश्वरी पुस्तकालय, गया। पृ० ३७१, मूल्य ४)

मनोविज्ञान की कई शाखाएँ हैं उनमें एक बाल मनोविज्ञान भी है। बचपन-विकास का संक्षिप्त मनोविज्ञान में बालकों के मानसिक विकास का वैज्ञानिक चित्रण है। यद्यपि यह लेखक के बाल-मनोविज्ञान का संक्षिप्त संस्करण है तब भी इसमें अपनी विशेषताएँ हैं और उसमें एक बड़ी पुस्तक की प्रौढ़ता है। इसमें बालकों की मानसिक वृत्तियों जैसे ईर्ष्या, स्पर्द्धा सहानुभूति और मनोवेगों की वैज्ञानिक व्याख्या की है। इन वृत्तियों का विवरण शिक्षा के सम्बन्ध में किया गया है। मनोवृत्तियों के साथ भाषा और व्यवहार का भी विवेचन हुआ है। बच्चों के नैतिक सुधार के लिए उनके चरित्र-गठन के विभिन्न तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है और बच्चों को उनके व्यक्तित्व, रुचि और बौद्धिक-विकास के अनुकूल शिक्षा देने के अर्थ इन तत्त्वों का विवेचन किया गया है। शिक्षा मनोविज्ञान के लिए यह पुस्तक बड़ी उपादेय है।

सामान्य मनोविज्ञान—ले०-अर्जुन चौबे काश्यप, प्रकाशक-राजराजेश्वरी पुस्तकालय, गया। पृ० ४४३, मू० ५)

यह पुस्तक जैसा कि नाम से विदित है सामान्य मनोविज्ञान की है। इसमें मनोविज्ञान की व्यापक समस्याओं और प्रायः सभी अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है। मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों और विवेचन प्रणालियों का जैसे अन्तर्दृष्टि-प्रणाली, बहिर्दृष्टि-प्रणाली, मनसमीक्षण पद्धति का पक्षपात शून्य विवेचन हुआ है और इसमें उनके गुण-दोषों पर भी प्रकाश डाला गया है। पुस्तक को अद्यतन बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया है। लेखक महोदय ने हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में एक विशेष सीमा तक सफलता प्राप्त की है। फिर भी शब्दों के पूर्ण अभिज्ञान के लिए उनके अँग्रेजी पर्याय भी दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर महोदय ने कुछ नये शब्दों का भी प्रयोग किया है जो कुछ चिन्त्य है जैसे Sublimations के लिए परिष्कार उन्नयन शब्दार्थ के अधिक निकट है Compensation के लिए सन्तोष प्रतिभाव बहुत सुन्दर शब्द नहीं है। क्षति-पूर्ति अधिक प्रचलित है। Psycho-analytic method के लिए मनोविश्लेषणात्मक शब्द अधिक प्रचलित है। शब्दावली का प्रश्न बड़ा जटिल है। इसके लिए हम प्रोफेसर महोदय को दोष नहीं देते। पुस्तक एफ० ए० और बी० ए० के सभी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

फुटकर

Hindi self-taught through English—लेखक-श्री रञ्जबिहारीलाल, प्रकाशक-सोहनलाल पब्लीकेशन्स लिमिटेड, अम्बाला कैन्ट। पृ० ३६६, मूल्य ५)

हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गई है और उसका कम से कम इतना ज्ञान कि दैनिक और अन्तप्रान्तीय व्यवहार चलाया जाय हरेक देशवासी के लिए आवश्यक है। इतना स्वीकार कर लेने पर उसके सिखाने वाली पुस्तकों की आवश्यकता भी अनिवार्य हो जाती है। यह पुस्तक उसी दिशा में किया गया एक स्तुत्य प्रयत्न है। इसमें अँग्रेजी और हिन्दी व्याकरण का अन्तर दिखाते हुए हिन्दी भाषा का क्रमिक और व्यावहारिक ज्ञान कराया गया है। विभिन्न कोटि की लेखन शैलियों के जैसे वर्णनात्मक, विवरणात्मक, संवादात्मक, उपदेशात्मक आदि का समाचारपत्रों, पुस्तकों, भाषणों आदि से उदाहरण उपस्थित किये गये हैं। वर्गीकृत शब्दावली जिसमें शासन और विधान सम्बन्धी, शरीर सम्बन्धी, भोजन सम्बन्धी शब्दावलियों ने, इस पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। —गुलाबराय

सत्य लोक यात्रा—लेखक—स्वामी सत्यभक्त, प्रकाशक-सत्याश्रम वर्धा। पृष्ठ १४४, मूल्य १॥)

स्वामी सत्यभक्त सत्य के जिज्ञासु और अपना पन्थ चलाने वाले धर्म नेता हैं। वे सत्येश्वर के पूजक और सत्याश्रम के संस्थापक हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने कल्पना और भावुकता के सहारे सारे धर्मों की आलोचना की है और अपने पन्थ के प्रचार की आवश्यकता बताई है। सभी धर्मों की आलोचना में स्पष्टता और खरापन है। जो खराबियाँ इन धर्मों में आगई हैं उनकी चर्चा खूब की गई है। सब धर्मों में सामञ्जस्य पैदा करने और उन्हें आधुनिकतम रूप देने की चेष्टा विद्वान समीक्षक ने की है और उसमें उन्हें यथेष्ट सफलता मिली है। —म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की पुस्तकें

पौने मूल्य में

सूचीपत्र मुफ्त मँगायें

भारत पब्लिशिङ्ग हाउस,

५, सिविल लाइन्स, आगरा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की

प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की

संवत् २०१० की सं० विवरण पत्रिकाएँ हमसे

मुफ्त मँगायें

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

(यहाँ से काटिये)

यहाँ से काटिये

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

.....

.....

क्र० सं०.....

—रघुवंश—रामप्रसाद सारस्वत	कविता	१॥)
—मन्दाकिनी—शान्ता राठी		१॥।)
—देव के आँसू—कमलेश	,,	२)
—प्यार के क्षण—श्री इन्दु	,,	१।)
—तुलसी गीतावली—गुलाबराय	आलोचना	१।)
—प्रेमचन्द : कृतियाँ-कला—प्रेमनारायण टण्डन		२।)
—प्रेमाश्रम : एक अध्ययन—	,, ,,	१॥)
—सेवासदन एक अध्ययन—	,, ,,	१॥)
—राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान—	कन्हैयालाल सहल	३)
—साहित्य-शुषमा—नन्ददुलारे वाजपेयी		२)
—आत्म-संयम—गांधीजी	स्वास्थ्य	१॥)
—सोने की कला—डा० हीरालाल	,,	।॥)
—माओ के देश—रामआसरे	यात्रा	१)
—यात्रा के पन्ने—राहुल	,,	६)
—केवड़े का फूल—श्री इन्दु	कहानी	१।)
—राजा परीक्षित—द्विजेन्द्र	नाटक	१॥)
—रामायण कोश—बद्रीनाथ भट्ट		४)

नोट—जो पुस्तक आप न लेना चाहें उसे काट दें।

नियम पीछे देखें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. 268. Sahitya Sandesh, Agra. APRIL, 1953. License No. 16.
Licensed to post without Prepament.

हमारा नवीन प्रकाशन

हिन्दी एकांकी

लेखक—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

(हिन्दी नाटकों का ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक विवेचन)

मूल्य २॥)

भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि

लेखक—श्री किशोरीलाल गुप्त एम० ए०

हिन्दी अध्यक्ष—शिवली नेशनल डिग्री कालेज।

मूल्य ॥।)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

१—पौने मूल्य में कृपया पीछे छपी पुस्तकें वी० पी० से भेज दें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वी० पी० अवश्य छुड़ा लूँगा। अन्तिम ता० ३१—५—५३, तक

२—एक रु० से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

Postage will be Paid by Addressee

BUSINESS REPLY CARD

No Postage Stamp necessary If Posted in India

AGRA G. P. O.
Permit No 1136

Book Post

To

श्री सञ्चालक,

साहित्य-रत्न-भण्डार,

४, गांधी मार्ग,

आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य
सन्देश

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम. ए. पी-एच. डी.
महेन्द्र

*

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा।

*

वार्षिक मूल्य ४), एक अङ्क का ।=)

वर्ष १४] आगरा—मई १९५३ [अङ्क ११

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचारधारा— सम्पादक
२—काव्य की आत्मा और उसके विवेचक आचार्य प्रो० अम्बाप्रसाद 'सुमन' एम ए०
३—भारतीय लोकनायक तुलसी— श्री अरविन्द मालवीय एम० ए०
४—ब्रज साहित्य के तीन तत्व— श्री शर्मनलाल अग्रवाल एम० ए०
५—महाकवि प्रसाद और समन्वयवाद— कुमारी डी० शान्ता एम० ए०
६—मराठी लघुकथा— श्री वसन्तम् कोगनोलकर एम० एस-सी०, बी० टी०
७—चौरासी वैष्णवन की वार्ता में आचार्यजी के शिष्य श्री लालताप्रसाद दुबे एम० ए०, रिसर्च स्कालर
८—पन्तजी के आलोचक— श्री त्रिलोचन पाण्डेय
९—जोश मलीहाबादी के विचार— श्री गङ्गाप्रसाद कमठान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह की १५ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापस कर दिए जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : अप्रेल १९५३

आलोचना

सूर समीक्षा—रामरतन भटनागर ३)
काव्य कौमुदी—श्री धरानन्द व्याकरणाचार्य ३॥)
हिन्दी साहित्य—हजारीप्रसाद द्विवेदी ७॥)
कला—हंसकुमार तिवारी ५)
तीन महाकाव्य—भारतभूषण सरोज ३)
भारतेन्दु उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि—
किशोरीलाल गुप्त ।॥)
साहित्यकी—शचिरानी गुर्टू ५)
छायावाद युग—शम्भूनाथसिंह ६॥)

कविता

ज्योति कण—श्यामसुन्दर तिवारी १)
चाँदनी रात और अजगर—उपेन्द्रनाथ अश्क ३।)
कालि—बालकृष्ण शर्मा नवीन ३॥)

कहानी

शिमले की क्रीम—मेहदीरजा २।)
पीर या नावालिग—चतुरसेन शास्त्री १।)
लम्ब ग्रीव— ,, ,, १।)
मौत के पंजे में जिन्दगी की राह—,, ३)
अनथन— ,, ,, २)

उपन्यास

नए नगर की नई कहानी—रावी १।)

नाटक

मङ्गल सूत्र—वृन्दावनलाल वर्मा १)
मक्खी महारानी—शद्गुरुशरण अवस्थी
मानव प्रताप—देवराज दिनेश २)
एकाङ्की समुच्चय—जयनाथ नलिन ३)

यात्रा

आँखों देखा रूस—सत्येन्द्रनाथ मजमूदार २)

इतिहास

भारतवर्ष में जाति-भेद-क्षितिमोहनसेन २)

शिक्षा

भारतीय शिक्षा का इतिहास-प्यारेलाल रावत ८)

स्फुट

मुखाकृति विज्ञान-पं० कृष्णगोपाल तिवारी ३॥)
पशु लोक—जार्ज अमरवेल १॥)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १५] आगरा—मई, १९५३ [अङ्क ११

हमारी विचार-धारा

किस भाषा में लिखें, हिन्दी में या अँग्रेजी में—

हमारे कुछ लेखकों के सामने यह समस्या रहती है कि किस भाषा में लिखें हिन्दी में या अँग्रेजी—एक संस्कृत के प्रोफेसर एक विद्वन्मण्डली में कह रहे थे कि वे अपने मौलिक लेख अँग्रेजी में ही लिखते हैं जिससे कि उनके लेख अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर सकें हिन्दी में उच्चकोटि के लेखों के पढ़ने की कमी है।

हमको अत्यन्त गर्व और हर्ष होगा यदि उनके लेख अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करते हैं और हम उनकी उन्नति और ख्याति में बाधक नहीं बनना चाहते हैं। हम उनसे तथा उनकी मनोवृत्ति के विचारकों से निवेदन करना चाहते हैं कि वे पहले अपनी भाषा और अपने देश के लोगों का ख्याल करें। यद्यपि यह ठीक है कि उनकी ख्याति से देश की भी ख्याति है तथापि अपनी भाषा और देश के लोगों को अपने विचाराम्बुत से वञ्चित रखना अन्याय है। देश में पढ़ने वाले और समझने वालों की कमी नहीं है—ऐसी बात नहीं है कि "गुण ना हिरानो गुण गाहक हिरानो है" वास्तव में गुण-ग्राहकों की कमी नहीं है—गुणों की ही कमी है। गुण जहाँ होते हैं छिपे नहीं रहते। कवीन्द्र रवीन्द्र, महात्मा गान्धी, जवाहरलाल नेहरू, के० एम० मुन्शी आदि के विचार हिन्दी से ही क्यों न प्रकट किये गये हों विश्व ख्याति प्राप्त कर लेते हैं। ख्याति के लिए योग्यता और साधना की आवश्यकता है। जितने दिन ऐसे विचारक हिन्दी में नहीं लिखते हैं वे हिन्दी भाषा को सम्पन्नता से वञ्चित रखते हैं। फिर ये ही महानुभाव इस बात की शिकायत करते हैं कि हिन्दी में कुछ पढ़ने को नहीं है। वे उन लोगों में से हैं जो अपने पैरों से धूल उड़ाते हैं और कहते हैं कि दिखाई नहीं देता है। हिन्दी की दरिद्रता ऐसे लोगों के ही कारण है जो विचारक होते हुए भी हिन्दी में नहीं लिखते। उनको पढ़ने वालों की कमी न होगी। हमारे विश्वविद्यालय हिन्दी और संस्कृत के इतने एम० ए० ओं का निर्माण करते हैं उनमें से कम से कम ५० प्रतिशत तो अपने-अपने विषयों में रुचि रखते हैं। हिन्दी जब उच्च-शिक्षा का माध्यम स्वीकृत हो चुकी है तो पढ़ने वाले तो अच्छी पुस्तकों की माग तोड़ कर लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देंगे। यदि ऐसे लोग फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के इच्छुक हों तो रवीन्द्रनाथ की भाँति अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अँग्रेजी में भी लिखें किन्तु देश के हित के लिए वे हिन्दी में अवश्य लिखें।

हिन्दी में गद्यावरोध क्यों ?

श्री ललिताप्रसाद सुकुल ने 'हिन्दी में अवरुद्ध गद्यावरोध क्यों ?' के कारणों पर विचार करते हुए लेखकों के तीन स्तर माने हैं। पहली कोटि में वे मनीषी कलाकार आते हैं जिनकी दृष्टि विश्व-व्यापिनी हो। जिनका आत्म-संयम ध्रुव सा अचल हो और नव-निर्माणोन्मुखी विश्वचिन्ता ही जिनकी रचना की मूल-प्रेरणा हो। केवल इसी प्रकार के कलाकार संसार को नवचेतना देने में समर्थ होते हैं—दूसरी कोटि की कला की साधना होती है प्रतिक्रिया—चित्रण-शीला—इसकी सफलता निर्भर हुआ करती है। कलाकार की अनुभूति की गम्भीरता पर तृतीय श्रेणी की कला होती है अनुकरणोन्मुखी—आकर्षक होते हुए भी यह अपने प्रभाव में स्थायी नहीं होती।

अधिकांश में हमारा साहित्य तीसरी और दूसरी कोटि का है। यह बात नहीं है कि पहले कोटि के लेखकों का हमारे यहाँ अत्यन्ताभाव है—प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि पहली ही कोटि के हैं किन्तु ये पहले तो थोड़े हैं और इनकी सभी कृतियाँ पहली कोटि में नहीं आतीं। हमारे साहित्यिकों में जीवन-प्रवाह में घुल-मिल जाने और विश्व की समस्याओं को अपनी समस्या बनाने की क्षमता का अपेक्षाकृत अभाव है। हमारे साधकों को वैयक्तिक योग-क्षेत्र के बन्धनों से ऊपर उठकर देश और विश्व की समस्याओं पर गम्भीरता के साथ विचारने की आवश्यकता है। यह बात नहीं है कि हमारे पास मस्तिष्क की कमी है वरन् कमी है व्यापक सहानुभूति और परिमार्जित रुचि की। इसलिये हमारे कलाकारों को गम्भीर पाण्डित्य के साथ जीवन में रुचि, विस्तृत निरीक्षण, व्यापक सहानुभूति और सत्य के उद्घाटन के साहस सम्बन्धी मानवी गुणों के भी अनुशीलन की आवश्यकता है। हमारे साहित्य में विचार के साहित्य का अभाव नहीं किन्तु वह अधिकांश में अनुकरणात्मक है। "कह कबीर को लीजिये जूठी पातर चाट।" हमको इस बात की आवश्यकता है कि ज्ञान-गङ्गा को भारत से चारों ओर प्रवाहित करें और भारत के ऋणी होने के कलङ्क को दूर करें।

डा० धीरेन्द्र वर्मा का भाषण—

जिला-राष्ट्रभाषा-परिषद् के द्वितीय वार्षिकोत्सव के सभापति के आसन से डा० धीरेन्द्र वर्मा ने जो भाषण दिया वह छोटा होने पर भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसकी कुछ बातों की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं—

"व्यवहारिक दृष्टि से भाषाओं के अनेक रूप सम्भव हैं—राष्ट्रभाषा, राजभाषा, साहित्यिक भाषा, जनभाषा। भारतवर्ष की ६० प्रतिशत जनता की पृथक-पृथक् जनभाषाएँ अथवा मातृभाषाएँ हैं। उदाहरण के लिए बिहार में तीन प्रधान जनभाषाएँ हैं—मगही, भोजपुरी तथा मैथिली। विस्तृत मैदानों में जनभाषाएँ विशाल भूखण्ड में मिलती-जुलती होती हैं। फलस्वरूप उनमें से कोई एक प्रधान साहित्यिक-भाषा के पद पर आसीन कर दी जाती है, शेष अर्द्ध-साहित्यिक अथवा केवल मौखिक रूप में चलती रहती हैं। आर्यावर्त के मध्यदेश में संस्कृत, पाली, शौरसेनी तथा ब्रजभाषा क्रम से भिन्न भिन्न कालों में प्रधान साहित्यिक-भाषा के रूप में प्रचलित रहीं। मध्यदेश के सांस्कृतिक महत्त्व के कारण इनका प्रचार समस्त भारत में और कुछ का प्रचार भारत के बाहर के देशों में भी हुआ। आज इस पद पर खड़ी बोली हिन्दी को इस सब ने बिठाया है। स्वतंत्र देशों में साधारणतया देश की साहित्यिक-भाषा ही राजभाषा होती है, किन्तु राजनीतिक पराधीनता के फलस्वरूप गत ८०० वर्ष तक देश की राजभाषाएँ विदेशी रहीं—प्रारम्भ में फारसी और बाद को अंग्रेजी राजभाषा रही। देश के स्वतंत्र होने पर यह निश्चय किया गया कि स्वदेश भाषा ही राजभाषा होनी चाहिए और खड़ी बोली हिन्दी को विधान ने राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया, यद्यपि व्यावहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए पन्द्रह वर्ष के संक्रमणकाल की छूट रखी गई।

अवैज्ञानिक रूप—इधर कुछ दिनों से यह चर्चा कभी कभी सुनाई पड़ती है कि हिन्दी भाषा का साहित्यिक रूप तथा राष्ट्रभाषा का रूप भविष्य में भिन्न भिन्न होगा। विनोद में कभी-कभी कहा जाता है कि हम हिन्दी भाषियों ने हिन्दी को भारतीय राष्ट्र की गोद-स्वरूप दे दिया है, अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र जिस तरह चाहे उसे पाले और बढ़ा करे। फलस्वरूप इस बात पर बल दिया जाने लगा है कि इस भावी राष्ट्रभाषा के विधान में स्वीकृत चौदहों भाषाओं की शब्दावली होगी और इन भाषाओं के अतिरिक्त प्रधान अन्तर राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग होगा। राष्ट्रभाषा के व्याकरण में भी कुछ इसी सिद्धान्त के अनुसार भविष्य में सुधार किया जावेगा। वर्त्तमान राजभाषा हिन्दी में अङ्कों के चिह्न तो अंग्रेजी से ले ही लिये गए हैं, देवनागरी लिपि में भी सुधार-सम्बन्धी अनेक आयोजन हैं यद्यपि अभी यह चर्चा सुनने को नहीं मिली है। देवनागरी के राष्ट्रलिपि वाले रूप में समस्त भारतीय लिपियों के चिह्नों का विशेष अनुपात में समावेश होना चाहिए। राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में उपर्युक्त कल्पना मुझे तो अत्यन्त विचित्र, अवैज्ञानिक तथा हास्यास्पद मालूम पड़ती है। हमने जब अंग्रेजी सीखी थी तो कभी इस बात का आग्रह नहीं किया था कि अंग्रेजी भाषा हमें तभी स्वीकृत होगी जब हमारे अभ्यास के अनुरूप इसमें परिवर्त्तन हों—

हिन्दी लेखकों का उत्तरदायित्व—वास्तव में राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास का प्रधान उत्तरदायित्व हिन्दी-लेखकों पर है। जैसे-जैसे हिन्दी में अनेक विषयों पर उपयोगी तथा ललित-साहित्य की वृद्धि होगी वैसे वैसे भाषा विकसित होती जायगी। जटिल भावों के प्रकट करने की शक्ति निरन्तर प्रयोग से आती है, ऊपर से कृत्रिम ढङ्ग से गढ़े हुए शब्दों को थोपने से नहीं आ सकती। किन्तु यदि राष्ट्र के कुछ लोगों का यह आग्रह हुआ कि नहीं राष्ट्रभाषा को वे इसी प्रकार गढ़ लेंगे तो हम भी उसे राष्ट्रभाषा के रूप में सीख लेंगे। किन्तु साथ ही यह नहीं भुलाना चाहिए कि हिन्दी भाषा भारत की राष्ट्रभाषा होने के अतिरिक्त देश की लगभग १५ करोड़ जनता की साहित्यिक भाषा भी तो है। इसके अतिरिक्त यह साहित्यिक भाषा दस राज्यों की प्रादेशिक राज्यभाषा भी है।

संस्कृत की आवश्यकता—इस अवसर पर एक बात की चर्चा मैं और करना चाहता हूँ जिस तरह यह एक गलत भावना कुछ लोगों के हृदयों में है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास भारत की चौदह भाषाओं के मेल-जोल से होगा, उसी प्रकार कुछ अन्य लोगों की यह धारणा है कि हिन्दी को प्रौढ़ तथा विकसित करने का सबसे सुन्दर उपाय यूनीवर्सिटी के प्रत्येक हिन्दी-विद्यार्थी को संस्कृत तथा अँग्रेजी भाषाएँ भी साथ-साथ पढ़ा देना है। उत्तर-प्रदेश में आजकल इसकी चर्चा छिड़ी हुई है। इस वर्ग की धारणा है कि हिन्दी-पाठ्यक्रम अधूरा है यदि अनिवार्य रूप में उसके साथ कुछ प्रश्न-पत्र संस्कृत और अँग्रेजी के न हों। इन लोगों का कहना है कि हिन्दी-भाषा के नेत्रों की ज्योति इस समय मन्द है, इसलिए उसके एक हाथ में संस्कृत भाषा की मशाल और दूसरे में अँग्रेजी भाषा की मशाल दे देनी चाहिए। दूसरे ढङ्ग के ढङ्ग से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा पंगु है, अतः उसके एक बगल में संस्कृत भाषा की बैसाखी और दूसरी बगल में अँग्रेजी भाषा की बैसाखी दे देनी चाहिए, तभी वह कुछ आगे बढ़ सकेगी। मुझे तो उपर्युक्त तर्क अत्यन्त बचकाना मालूम होता है। यदि हिन्दी के नेत्रों की ज्योति मन्द है तो नेत्रों का इलाज करना होगा, ये मशालें कब तक रास्ता दिखलावेंगी। यदि हिन्दी पंगु है तो उसके पैरों को सबल करने का कोई उपाय कीजिए। बैसाखी लगवाना तो कोई इलाज नहीं है। हिन्दी तो तब सबल होगी जब उसमें संस्कृत, पाली आदि प्राचीन भारतीय-साहित्यों के समस्त ग्रन्थों, अंग्रेजी आदि विकसित विदेशी भाषाओं के ग्रन्थरत्नों तथा मराठी, तमिल, गुजराती आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं की विशिष्ट कृतियों के अनुवादों तथा साथ ही मौलिक ग्रन्थों के द्वारा उसका अपना भंडार भरा जावेगा। मेरा तो दावा है कि आर्थिक पञ्चवर्षीय-योजना के समान राष्ट्रभाषा के विकास के लिए अनुवादों और मौलिक ग्रन्थों की रचना के सम्बन्ध में एक योजना बननी चाहिए। हिन्दी के दस राज्य क्या, यदि अकेला बिहार राज्य ही इसे अपने हाथ में ले ले और पात्रों के हाथ में इस महत्वपूर्ण कार्य को सौंप दे तो पाँच वर्षों में हिन्दी को समुन्नत और विकसित करने का बहुत कार्य सम्पन्न हो सकता है। विश्वविद्यालयों की उच्चतम कक्षाओं तक के लिए आवश्यक साहित्य तो निश्चित रूप से इतने समय में तैयार किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का उद्देश्य—

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के द्वितीय वार्षिकोत्सव के अवसर पर, स्वागताध्यक्ष के पद से भाषण देते हुए आचार्य श्री बदरीनाथ वर्मा ने परिषद् के जो उद्देश्य बताए वे यह हैं—

"परिषद् का उद्देश्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य के संवर्द्धन, भारत की राष्ट्रभाषा तथा बिहार की राजभाषा हिन्दी में कला, विज्ञान एवं अन्यान्य विषयों के मौलिक तथा उपयोगी ग्रंथों के प्रकाशन एवं बिहार की प्रमुख बोलियों के अनुशीलन की समुचित व्यवस्था करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, परिषद् निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करती है—

(क) हिन्दी में लिखित विभिन्न विषयों के प्रामाणिक ग्रंथों के प्रणयन के लिये पुरस्कार-प्रदान; (ख) अन्य भाषाओं के महत्त्वपूर्ण साहित्यिक और वैज्ञानिक ग्रन्थों के हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करना तथा उनके प्रकाशन की व्यवस्था; (ग) साधारणतः बिहार की तथा विशेष अवस्था में, राज्य-सरकार की स्वीकृति से, भारत के अन्य राज्यों की साहित्यिक संस्थाओं अथवा सम्पादन-समितियों को आर्थिक सहायता दे कर, हिन्दी तथा बिहार की अन्य प्रचलित भाषाओं के मौलिक एवं अनूदित ग्रन्थों के प्रकाशन को प्रोत्साहन-प्रदान; (घ) साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के लोक-साहित्य के सङ्कलन और प्रकाशन का प्रबन्ध; (ङ) बिहार में प्रचलित विभिन्न बोलियों के साहित्यिक एवं वैयाकरणिक स्वरूप तथा हिन्दी के साथ उनके सम्बन्ध के विषय में अध्ययन को प्रोत्साहन-प्रदान; (च) विभिन्न विषयों के विशिष्ट विद्वानों को, हिन्दी में ऐसे विषयों पर भाषण करने तथा व्याख्यान देने के लिए, आमन्त्रित करना जिनमें उन्होंने विशेषज्ञता प्राप्त की हो और उन भाषणों तथा व्याख्यानों को सम्पादित कर, उनका ग्रन्थाकार प्रकाशन; (छ) महत्त्वपूर्ण प्राचीन हस्तलिखित पोथियों और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की दुर्लभ प्रकाशित पुस्तकों के अन्वेषण तथा प्रकाशन की समुचित व्यवस्था और (ज) उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त, परिषद् के उद्देश्य की सम्यक् सिद्धि के लिए, अन्यान्य आवश्यक कार्यों का सम्पादन।"

पुरस्कार और भाषण—

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की ओर से इस साल निम्नलिखित पुरस्कार दिये गये—

(१) बिहार के वयोवृद्ध साहित्यकार, 'बटोहिया' लोकगीतवाले, छपरा-निवासी श्री रघुवीर नारायण को डेढ़ हजार रुपये का सम्मान-पुरस्कार।

(२) बिहार के उदीयमान युवक कवि श्री गोदार रामावतार 'अरुण' को पाँच सौ रुपये का प्रोत्साहन पुरस्कार।

(३) पटना विश्व-विद्यालय के डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर को, उनके लिखे 'प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति' नामक ग्रन्थ पर, एक हजार रुपये का पुरस्कार।

(४) हिन्दी-निबन्ध-प्रतियोगिता में विजयी होने वाले छात्रों को एक एक सौ रुपये के आठ पुरस्कार दिये गये।

परिषद की ओर से निम्नलिखित तीन भाषण हुए—

(१) डा० सत्यप्रकाश (प्रयाग विश्वविद्यालय)—'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा' पर।

(२) प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा (बिहार यूनिवर्सिटी इन्सपेक्टर)—'रबर' पर।

(३) श्री गोरखनाथसिंह (भूतपूर्व शिक्षा-निर्देशक, बिहार)—'राष्ट्रीय अर्थनीति' पर।

प्रत्येक भाषण पर एक-एक हजार रुपया दिया गया।

२७५०० के पुरस्कार—

उत्तर-प्रदेशीय सरकार कई वर्ष से हिन्दी के लेखकों को पुरस्कार दे कर हिन्दी का हित कर रही है। इस देने की विधि आदि में त्रुटियाँ हैं और जो पुरस्कार दिए जाते हैं उसमें सुधार की आवश्यकता अनुभव करते हुए भी हम सरकार के इस सुकृत्य की प्रशंसा बराबर करते रहे हैं और अब भी कर रहे हैं। हमें आश्चर्य हुआ था—इस वर्ष यह पुरस्कार क्यों नहीं दिए गए। अभी-अभी सरकार ने इस वर्ष के पुरस्कारों की घोषणा कर दी। इसमें ५५ लेखकों को २७५००) की निधि वितरित की गई है। यह सूची हम अगले अङ्क में छाप सकेंगे। इस समय तो हम पुरस्कृत लेखकों को बधाई देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य की आत्मा और उसके विवेचक आचार्य

प्रो० अम्बाप्रसाद 'सुमन' एम० ए०

भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र की रचना भारतीय विद्वान् ईसा पूर्व द्वितीय शतक में मानते हैं। आचार्य भरत ने दृश्य-काव्य की ही विवेचना की है। श्रव्य काव्य का विवेचन तो ईसा की चौथी पाँचवीं शताब्दी में हुआ था। काव्य क्या है, तथा उसकी आत्मा क्या मानी जा सकती है? इसका उत्तर देने के लिये ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक संस्कृत के कई आचार्य उठे। उनमें से कुछ ऐसे थे जो अपने पूर्ववर्ती आचार्य अथवा आचार्यों का ही समर्थन करते थे और कुछ ऐसे थे जो काव्यात्मा (काव्य के प्रधान तत्त्व) की विवेचना में अपनी मौलिकता का प्रदर्शन करते थे। अतः संस्कृत भाषा के सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र-साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि काव्य के प्रधान तत्त्व का विश्लेषण करने के लिये प्राचीन आचार्यों के छः सम्प्रदाय आलोचना के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। काल-क्रम के अनुसार हम उन्हें इस प्रकार लिख सकते हैं:— (१) अलङ्कार-सम्प्रदाय—इसके आचार्य भामह, दण्डी और उद्भट माने जाते हैं। (२) रीति-सम्प्रदाय—इसके आचार्य वामन माने जाते हैं। (३) ध्वनि-सम्प्रदाय—इसमें आचार्य आनन्दवर्द्धन हैं। (४) वक्रोक्ति सम्प्रदाय—इसके आचार्य कुन्तल हैं। इनको कुन्तक के नाम से भी पुकारा जाता है। (५) औचित्य सम्प्रदाय—इसके आचार्य क्षेमेन्द्र माने जाते हैं। (६) रस सम्प्रदाय—इसके आचार्य भरतमुनि और पण्डित विश्वनाथ हैं।

(१) अलङ्कार सम्प्रदाय—ईसा की सातवीं शताब्दी में दण्डी ने 'काव्यादर्श' की रचना करते हुए अलङ्कारों को काव्य का एक मात्र प्रधान तत्त्व घोषित किया। उनका कथन है कि अलङ्कार काव्य के शोभाकर धर्म हैं। अपने 'काव्यादर्श' में वे अलङ्कारों को काव्य का प्रधान गुण मानते हुए कहते हैं—

"काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते।"

कुछ बदले हुए शब्दों में इसी का समर्थन भामह और उद्भट ने किया है। आचार्य भामह दण्डी के पूर्ववर्ती थे। इनका जन्म ईसा की पाँचवीं शताब्दी में माना जाता है। इन्होंने सर्व प्रथम वक्रोक्ति को काव्य मान कर उसमें प्रधान तत्त्व की खोज की है। इनका काव्य-शास्त्र पर लिखा हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' है। इसमें इन्होंने अलङ्कारों की कुल संख्या ३८ मानी हैं और उन्हें दो प्रधान भेदों में विभक्त किया है—(१) शब्दालङ्कार, (२) अर्थालङ्कार। आचार्य भामह वक्रोक्ति को सब अलङ्कारों का प्राण मानते हैं। उनका कथन है कि बिना वक्रोक्ति के तो कोई अलङ्कार, अलङ्कार संज्ञा प्राप्त करने का अधिकारी नहीं। जिस प्रकार भामह वक्रोक्ति को सब अलङ्कारों का प्राण मानते हैं, उसी प्रकार दण्डी भी अपने काव्यादर्श में अतिशय को सम्पूर्ण अलङ्कारों का आश्रयदाता मानते हैं। यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि भामह का वक्रोक्ति और दण्डी का अतिशय वर्तमान अलंकार ग्रन्थों में पाये जाने वाले अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति अलङ्कार नहीं हैं। वर्त्तमान अलङ्कारों में पाये जाने वाले 'काकु वक्रोक्ति' और 'श्लेष वक्रोक्ति' तो शब्दालङ्कार के भेद हैं जो कि केवल काव्य-शरीर के बाह्य भूषण हैं और शब्द चमत्कार प्रदर्शित करते हैं। इसी प्रकार अतिशयोक्ति भी अर्थालङ्कार का भेद है। परन्तु भामह की 'वक्रोक्ति' और दण्डी का 'अतिशय' काव्य-शरीर के बाह्य भूषण ही नहीं हैं, वे आन्तरिक शोभा के भी प्रदाता हैं। उनकी वक्रोक्ति और अतिशय अलौकिक चमत्कार के प्रतीक हैं।

सन् ८०० ई० में अलङ्कार-सार संग्रह (काव्यालङ्कार-संग्रह) की रचना आचार्य उद्भट ने की। इस ग्रन्थ की रचना प्रणाली से स्पष्ट विदित होता है कि उद्भट ने आचार्य भामह का अनुसरण किया है। इस ग्रन्थ के अलङ्कारों का क्रम भामह के अलङ्कार क्रम के सदृश है। आचार्य उद्भट भी अलङ्कारों को काव्य की आत्मा मानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। जब अलङ्कार को काव्य की आत्मा मान लिया गया तो बिना अलङ्कार के काव्य का अस्तित्व ही नहीं हो सकता था। आत्मा के बिना शरीर व्यर्थ एवं सारहीन है। अतः अलंकारों की व्यापकता वाञ्छनीय हुई। व्यापकत्व को दृष्टि-पथ में रखते हुए ही स्वभावोक्ति को भी आचार्य उद्भट ने अलङ्कार माना। इस तरह से सहज कथन अथवा साधारण कथन भी अलङ्कार बन गया और अलङ्कार के अस्तित्व से वह स्वाभाविक उक्ति काव्य कहलाने की अधिकारिणी हो गयी। इस तरह हम देखते हैं कि भामह, दण्डी और उद्भट तीनों आचार्यों ने अलङ्कार सम्प्रदाय का अनुसरण किया है। भामह (५०० ई०) ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' में कुल अलङ्कार ३८ माने हैं। उद्भट (८०० ई०) ने 'काव्यालङ्कार-संग्रह' में ४१ अलङ्कारों को लिखा है और फिर रुद्रट (८१० ई०) ने अपनी पुस्तक 'काव्यालङ्कार' में दो और बढ़ाकर कुल ५० अलङ्कार लिखे हैं। आगे चलकर मम्मट ने (ई० ११ शती) काव्य में मुख्य अलङ्कार ६८ माने हैं। पण्डित विश्वनाथ (१४ वीं शती) ने साहित्यदर्पण में ७८ और पीयूष वर्षी जयदेव (ई० १३वीं-शती) ने चन्द्रालोक में ९४। इस प्रकार हम देखते हैं कि ५०० ई० से लेकर १४०० ई० तक अलङ्कारों की संख्या ३८ से १०० तक पहुँच गई थी। बहुत-कुछ ऐसा ही क्रमिक विकास रसों और छन्दों का भी रहा है। भरत मुनि ने अपने 'नाट्य शास्त्र' के छठे अध्याय में भावादि का मूल बीज रस माना है और उनकी संख्या ४ मानी है—(१) शृङ्गार, (२) वीर (३) बीभत्स (४) रौद्र—'तेषामुत्पत्तिहेतवः चत्वारो रसाः। तद्यथा शृङ्गारो रौद्रो वीरो बीभत्स इति।" तदुपरान्त शृङ्गार से हास्य, वीर से अद्भुत, बीभत्स से भयानक और रौद्र से करुण रस की उत्पत्ति मानी है। आगे चलकर साहित्य-दर्पणकार पं० विश्वनाथ ने रसों के १० भेद माने हैं। मम्मट ने तो नव रस माने अर्थात् भरत मुनि के आठ रसों में एक शान्त रस और बढ़ा दिया और रूपगोस्वामी द्वारा माने हुए भक्ति रस का खण्डन किया। फिर विश्वनाथ ने वात्सल्य को पृथक् रस मान कर रसों की कुल संख्या १० करदी। जयदेव में पं० विश्वनाथ की अपेक्षा मौलिकता अधिक है। विश्वनाथ बहुत कुछ मम्मट के विचारों पर ही चले हैं। जयदेव विरोध और विरोधाभास को पृथक् अलङ्कार मानते हैं, जबकि मम्मट और विश्वनाथ 'विरोधाभास' नाम का कोई अलङ्कार मानते ही नहीं।

(२) "रीतिरात्मा काव्यस्य"

—वामन (काव्यालङ्कार सूत्र-वृत्ति)

रीति को काव्य की आत्मा बताने वाले आचार्य वामन हैं। इनका जन्म ई० ८०० के लगभग हुआ था। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार सूत्र' और उसकी 'कविप्रियवृत्ति' में रीति को काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना है। उनके मत से रीति के तीन भेद हैं जो कि भौगोलिक महत्त्व रखते हैं:—(१) वैदर्भी (२) गौडी (३) पाञ्चाली। वैदर्भी रीति विदर्भ नामक भूभाग से सम्बन्ध रखती थी जिसे आजकल 'बरार' कहते हैं। गौडी रीति का सम्बन्ध गौड़ (बङ्गाल) प्रान्त से था और पाञ्चाली पाञ्चाल (पञ्जाब) प्रान्त से सम्बद्ध थी। वामन ने रीति की परिभाषा भी लिखी है। वह बतलाता है कि विशिष्ट पद-रचना रीति कहलाती है। "विशिष्टा पद-रचना रीतिः" उनका कथन है कि ओज, प्रसाद आदि जिन गुणों का स्वभाव है वे पद ही विशिष्ट कहलाते हैं। इस प्रकार वामन ने रीति और गुण का सामञ्जस्य कर दिया है। अतः हम वामन को गुण-सम्प्रदाय का आचार्य भी कह सकते हैं अर्थात् जिस सम्प्रदाय को हम रीति सम्प्रदाय कहते हैं उसे गुण सम्प्रदाय भी कह सकते हैं।

रीति शब्द को समझने में साहित्य का प्रारम्भिक विद्यार्थी बड़ी कठिनाई का अनुभव करता है। इसका एक मात्र कारण है कि रीति शब्द का प्रयोग आजकल के हमारे प्रतिदिन के व्यवहार से बहुत दूर जा पड़ा है। वैसे रीति-भावों की अभिव्यक्ति के लिये एक प्रकार की शब्द संयोजना है। जिसे आजकल हिन्दी के विद्वान् 'शैली' अंग्रेजी के आलोचक स्टाइल (Style) कहते हैं। उसी को संस्कृत के प्राचीन आचार्य रीति के नाम से पुकारते थे। वास्तव में 'मार्ग' शब्द भी 'रीति' का पर्यायवाची ही है। संस्कृत में 'रीङ्' धातु गत्यर्थक है। इसमें 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से 'रीति' शब्द बनता है जिसके अर्थ गति, मार्ग वीथिका आदि हो सकते हैं।

वामन के अतिरिक्त आनन्दवर्द्धन और विश्वनाथ ने भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीति की परिभाषाएं लिखी हैं। वे पदों (शब्दों) की शोभन-रूप संयोजना को रीतिक कहते हैं। उन दोनों ने पद-संघटना को रीति कहा है। आचार्य वामन और विश्वनाथ में अन्तर यही है कि वामन रीति को ही काव्य की आत्मा मानते हैं और विश्वनाथ काव्य की आत्मा 'रस' को मानते हैं। परन्तु रीति को वे रस भावादि की उपकर्त्री मानते हैं। विश्वनाथ की दृष्टि में रीति का रस से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्होंने 'साहित्य दर्पण' के नवम् परिच्छेद में लिखा है—

"पद-संघटना रीति रङ्ग संस्था विशेषवत्
उपकर्त्री रसादीनाम्।"

आचार्य वामन रीति का गुणों से सामञ्जस्य स्थापित करते हुए रीतियों की संख्या तीन मानते हैं—(१) वैदर्भी (२) गौड़ी (३) पाञ्चाली। परन्तु रुद्रट (८०० ई०) रीतियों की संख्या चार बताते हैं। ये वामन की तीन रीतियों में एक लाटी और बढ़ा देते हैं। रुद्रट 'काव्यालङ्कार' में बतलाते हैं कि माधुर्य गुण युक्त असमास-पद रचना वैदर्भी रीति के अन्तर्गत आती है और ओज गुण पूर्ण समास-बहुला शब्द संयोजना गौड़ी रीति के अन्तर्गत। यदि किसी पद-रचना में ईषद्समास हो और वह प्रसाद गुण से पूर्ण भी हो तो वह पाञ्चाली रीति में मानी जायगी।

यह स्मरण रखना चाहिये कि दण्डी (७०० ई०) से लेकर कुन्तक (१०२५) ई० तक रीतियों का सम्बन्ध क्रमशः देश, विषय और कवि से रहा है। दण्डी से लेकर कुन्तक तक के इतिहास को हम तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं। (क) प्रथम रीति-काल—इस काल में रीतियों का सम्बन्ध प्रान्त विशेष से था। वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली रीतियाँ इस काल में भौगोलिक महत्त्व रखती थीं। विदर्भ, गौड़ तथा पाञ्चाल आदि भूभागों में रहने वाले कवि-गण अपने अपने ही प्रान्तों की शैलियों में रचना करते थे। यह ईसा की सातवीं और आठवीं शताब्दी का काल था। दण्डी आदि इस काल के आचार्य माने जा सकते हैं।

(ख) द्वितीय रीति काल—इस काल में रीतियों का सम्बन्ध प्रान्त विशेष से पृथक करके विषय के साथ स्थापित किया गया। इस काल में पाञ्चाल का कवि भी युद्ध-वर्णन के समय में गौडी रीति का प्रयोग करता था। प्रथम रीति काल की भाँति वह अपनी पाञ्चाली रीति में ही युद्ध-वर्णन के लिए बाध्य न था। यह सन् ९००—१००० ई० का काल था। वामन इस काल के आचार्य माने जा सकते हैं।

(ग) तृतीय रीतिकाल—रीति के इतिहास का यह तृतीय काल विशेष महत्त्व का है। सन् १०२५ ई० के लगभग कुन्तक ने रीतियों के सम्बन्ध में अपनी मौलिकता तथा नवीन सूझ का परिचय दिया। उसने रीतियों का सम्बन्ध न देश विशेष से बताया और न विषय विशेष से। उसने तो रीतियों का साक्षात् और सीधा सम्बन्ध कवियों से स्थापित किया। कवि की जैसी मनःस्थिति तथा मनोवृत्ति होगी वैसी ही शब्द-योजना वह कर लेगा। कुन्तक ने बताया कि रीतियों का सम्बन्ध वास्तव में कवि के स्वभाव से है। कुन्तक का यह कथन प्रसिद्ध जर्मन आलोचक 'वफन' से पूर्णतः साम्य रखता है। वफन महोदय ने भी कुन्तक के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा है—Style is the man himself अर्थात् शैली ही मनुष्य का स्वरूप है। जिस शब्द संयोजना और वर्ण मैत्री को आज का आलोचक 'शैली' कहता है, उसे दण्डी (६०० ई०) ने मार्ग या वर्त्म, उद्भट (८०० ई०) ने वृत्ति और वामन (८०० ई०) ने रीति कहा है। राजशेखर (९०० ई०) ने काव्य मीमांसा के तृतीय अध्याय में लिखा है कि "विलास विन्यास क्रमो वृत्तिः, वचन विन्यास क्रमो रीतिः।"

(३) "काव्यस्यात्मा ध्वनिः"

—आनन्दवर्धनाचार्य (ध्वन्यालोक)

कुछ विद्वान् ध्वनिकार और आनन्दवर्धनाचार्य को पृथक-पृथक व्यक्ति मानते हैं, परन्तु मेरे मत में दोनों एक ही हैं। आपने काव्य की आत्मा ध्वनि को माना है। ध्वनि एक प्रकार का अर्थ चमत्कार है। साधारणतः ध्वनि की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं—"ध्वनि एक चमत्कार है जो वाच्यार्थ के अतिरिक्त व्यंग्यार्थ के रूप में प्रकट होता है।" आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्य प्रकाश' में ध्वनि को उत्तम काव्य माना है और ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार की है—जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारक हो वहाँ ध्वनि होती है।"

विद्यार्थी ध्वनि के स्वरूप से पूर्ण परिचय प्राप्त करले,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी मन्तव्य से हम यहाँ एक वार्ता का उल्लेख कर देना उचित समझते हैं :—

एक बार एक सुन्दर युवती ने बर्नार्ड शा की विद्वत्ता पर मुग्ध होकर उससे कहा—"महोदय ! मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ। हम दोनों से जो सन्तान होगी उसे रूप मेरा प्राप्त होगा और बुद्धि आपकी।" बर्नार्ड शा रूपवान न थे युवती के प्रस्ताव को सुनकर वे उत्तर में कहने लगे—"देवि, यदि उस सन्तान को रूप मेरा और बुद्धि आपकी मिली तो ?" शा महोदय के इस उत्तर को सुन कर युवती निरुत्तर हो गई और चुपचाप वहाँ से चली गई। यहाँ देखना यह है कि शा महोदय के कथन में वाच्यार्थ की यह अपेक्षा व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार है। उसमें ध्वनि यह है कि—"शा महोदय उस युवती से विवाह करना नहीं चाहते।" निषेध करने का यह चमत्कारक ढङ्ग है जो कि व्यंग्यार्थ के रूप में प्रकट हो रहा है। यह चमत्कारक ढङ्ग ही ध्वनि है।

आनन्दवर्धन ही ध्वनि-सम्प्रदाय के आदि आचार्य हैं। इस सम्प्रदाय का प्रभाव हमें मम्मट और पंडित राज जगन्नाथ पर भी प्रतिलक्षित होता है। यद्यपि मम्मट समन्वयवादी है परन्तु उन्हें काव्य में ध्वनि की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार है। 'काव्य प्रकाश' में काव्य के भेद करते हुए उन्होंने ध्वनि को उत्तम काव्य माना है। वैसे तो वे अदोष एवं सगुण शब्दार्थ को ही काव्य मानते हैं—

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृतीपुनः क्वापि"

आचार्य मम्मट कहते हैं कि—"जिसके शब्दों और अर्थों में कोई दोष न हो किन्तु गुण अवश्य हों, चाहे अलङ्कार हों या न हों, उसे काव्य कहते हैं।"

आचार्य मम्मट का समय ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है। आनन्दवर्धन ने सन् ८५० ई० के लगभग अपने 'ध्वन्यालोक' की रचना की थी। इनसे लगभग ३५० वर्ष पश्चात् उत्पन्न होने वाले मम्मट भी ध्वनि-सिद्धान्त से प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं। इतना ही नहीं सन् १६६० ई० के लगभग 'रस गङ्गाधर' नामक ग्रन्थ के रचने वाले पंडितराज भी आनन्दवर्धन के ध्वनि सम्प्रदाय से प्रभावित हुए हैं। पंडितराज के 'रसगङ्गाधर' के अध्ययन से विदित होता है कि वे ध्वनिकार के सिद्धान्त का समर्थन कर रहे हैं। काव्य की परिभाषा करते हुए उनका मन्तव्य यही है कि वे भाव और उसकी अभिव्यञ्जना दोनों का ही अस्तित्व स्वीकार करते हैं। ध्वनि एक अर्थ चमत्कार है। इस अर्थ चमत्कार को पण्डितराज रमणीय अर्थ के नाम से पुकारते हैं और रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य बतलाते हैं—

"रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"

इस तरह पंडितराज जगन्नाथ काव्य का लक्षण बतलाते हुए ध्वनिकार के सिद्धान्त की भी पुष्टि करते हैं। वास्तव में पंडितराज की लेखनी से उद्भूत काव्य का लक्षण बहुत व्यापक, उपयुक्त तथा पूर्णतः सङ्गत है। रमणीय अर्थ में अदोष, सगुण, सालङ्कार, सरीति, सध्वनि तथा सरस शब्दों के अर्थ समाविष्ट हो जाते हैं। उनकी काव्य-परिभाषा में काव्य के चारों (राग, बुद्धि, कल्पना और शैली) तत्त्वों का भी समावेश हो जाता है यद्यपि ये रस-सिद्धान्त के विरोधी हैं।

(४) "वक्रोक्तिः काव्यस्य जीवितम्"

—कुन्तल (वक्रोक्ति जीवित)

कुन्तल ने अपने ग्रन्थ वक्रोक्ति जीवित में वक्रोक्ति को ही, काव्य की आत्मा माना है। उसने ध्वनि अथवा व्यंग्य को वक्रोक्ति में ही अन्तर्भूत कर लिया है। आचार्य कुन्तल ने अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्ति-जीवित' की रचना सन् १०२५ ई० के लगभग की थी। कुन्तल ने वक्रोक्ति को बड़े व्यापक अर्थ में लिया है। इसी व्यापक अर्थ में इनके पूर्ववर्ती आचार्य मम्मट भी ले चुके हैं। उन्होंने भी सारे अलङ्कारों का प्राण वक्रोक्ति को ही माना था। कुन्तल ने भी वक्रोक्ति को एक कथन प्रणाली ही बतलाया है परन्तु वह कथन प्रणाली हृदय की भावना तथा उल्लास को भी साथ लेकर प्रकट होती है। अतः कुन्तल की वक्रोक्ति भाव तथा अभिव्यञ्जना दोनों से युक्त है। कुन्तल ने वक्रोक्ति को 'वैदग्ध्य भङ्गी भणिति' कहा है। इसका अर्थ है—कवि-कौशल के चमत्कार से परिपूर्ण कथन-प्रणाली। वैदग्ध्य का कवि कौशल है। अतः वैदग्ध्य भङ्गी के अन्तर्गत भावानुभूति की जागरूकता का आभास हमें कुछ-कुछ मिल जाता है। इस तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुन्तल ने वक्रोक्ति को काव्य का जीवित रूप बताकर उसे एक अनिवार्य तत्त्व सिद्ध किया है। कुन्तल के इस सिद्धान्त का अनुसरण किसी परवर्त्ती आचार्य ने नहीं किया।

(५) "औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरंकाव्यस्य जीवितम्"

—क्षेमेन्द्र (औचित्य-विचार-चर्चा)

क्षेमेन्द्र ईसा की ११ वीं शताब्दी के आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने औचित्य को रस-सिद्ध काव्य का स्थिर जीवित माना है। क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्त्ती आचार्य भरत और आनन्दवर्धन भी काव्य में औचित्य की महत्ता स्वीकार कर चुके हैं। यदि हम गम्भीर दृष्टि से विचार करें तो विदित होता है कि क्षेमेन्द्र ने रस-सिद्ध काव्य के जीवित औचित्य को माना है। अतः काव्य में रस की सत्ता पहले है फिर औचित्य की सत्ता आवश्यक बनती है। रस के बिना औचित्य की बात कोई मूल्य नहीं रखती। अतः क्षेमेन्द्र का औचित्य-विचार रस-सम्प्रदाय का ही अनुसरण करता है। वह रीति अथवा वक्रोक्ति की भाँति एक पृथक सम्प्रदाय नहीं है। जो लोग क्षेमेन्द्र के औचित्य-सम्प्रदाय को पृथक सम्प्रदाय मानते हैं वे क्षेमेन्द्र को समझने में भूल करते हैं। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र के औचित्य का सम्बन्ध रस और ध्वनि से अवश्य है। अतः वह काव्य का एक अन्तरङ्ग तत्त्व है। इसे भरत मुनि ने रस के सम्बन्ध में और ध्वनिकार ने ध्वनि के सम्बन्ध में स्वीकार किया है। औचित्य तो उचित का भाव है। यह भाव सम्बन्धवाची है। पहले किसी का अस्तित्व अवश्य होगा जिसके विषय में उचित अनुचित की बात सोची जा सकती है। अतः औचित्य मूलतः कोई प्रधान एवं अनिवार्य तत्त्व नहीं हो सकता। हम उसे सहायक अनिवार्य तत्त्व मान सकते हैं।

(६) "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"

—विश्वनाथ (साहित्य दर्पण)

नाट्य-शास्त्र के रचयिता भरत मुनि दृश्य-काव्य के विवेचन में रूपक के लिए रस की अनिवार्य प्रधानता स्वीकार कर चुके थे। परन्तु श्रव्य-काव्य के लिए उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा था। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र का रचना-काल ईसा पूर्व द्वितीय शतक माना जाता है। आचार्य भरत के उपरान्त रस को काव्य की आत्मा साहित्य दर्पणकार पंडित विश्वनाथ ने ही माना। विश्वनाथ द्वारा प्रतिपादित रस-सिद्धान्त बहुत लोकप्रिय एवं सर्वमान्य सिद्ध हुआ।

वर्तमान काल के सभी प्रसिद्ध आलोचक काव्य की आत्मा रस को ही मानते हैं। भरत मुनि का सूत्र—"विभावानुभाव संचारि संयोगादस निष्पत्तिः" भी काव्य की आत्मा रस को ही मानता है। इस सूत्र के व्याख्याकार लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त भी काव्य की आत्मा रस को ही मानते हैं। आज का मनोविज्ञान भी यही सिद्ध करता है कि काव्य का प्रधान तत्व 'मूड' (Mood) भाव या रस है। इसके बिना काव्य, काव्य नहीं, वह एक शव की भाँति व्यर्थ तथा सारहीन है।

यदि इस काव्य के स्वरूप का वर्णन करें तो स्पष्ट-रूपेण कह सकते हैं कि रस काव्य की आत्मा है और ध्वनि उसका प्राण है जो उसे जीवन प्रदान करती है। शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं। 'गुण' (माधुर्य, ओज, प्रसाद) काव्य शरीर में शूरता, गम्भीरता आदि गुणों की भाँति हैं। कानापन आदि की तरह 'दोष' काव्य-शरीर में दोष है। सन्धियों (जोड़ आदि) की भाँति रीतियाँ हैं और वस्त्राभूषण की भाँति काव्य में अलङ्कारों का स्थान है।

आज के आलोचक ने उपर्युक्त सारे झगड़े को मिटा कर एक सूक्ष्म-सी बात कह डाली है। वह अनुभूति और अभिव्यञ्जना के समन्वय में ही काव्य का स्वरूप मानता है। वह काव्याङ्गों के उक्त झमेले में नहीं पड़ता। उसका कथन है कि अनुभूति काव्य की आत्मा है और अभिव्यञ्जना है उसका बाह्याङ्ग। ये बाह्य अङ्ग हैं—भाषा, अलङ्कार और छन्द जो कि अभिव्यञ्जना के ही प्रकार हैं।

'साहित्य-सन्देश' का 'कहानी अङ्क' बहुत अच्छा रहा। सुन्दर विवेचनात्मक सामग्री है। इसी तरह नाटक-अङ्क, रस-अङ्क, अलङ्कार अङ्क, आदि निकालें तो अच्छा रहे। बल्कि ध्वनि अङ्क, लक्षणाङ्क, अनुमितिवाद अङ्क और वक्रोक्तिवाद अङ्क भी निकाले जा सकते हैं।

—वि० दा० वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय लोकनायक तुलसी

श्री अरविन्द मालवीय एम० ए०

प्रसिद्ध भाषा-वेत्ता एवं विद्वान् डा० सर जार्ज ए० ग्रियर्सन का यह मत है कि बुद्धदेव के उपरान्त भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसी थे। इस मत के औचित्य में किसी प्रकार के संशय की प्रतीति नहीं होती। भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है, प्रत्येक दृष्टि से—भूगोल, भाषा, रहन-सहन, आचार-विचार आदि सब प्रकार से इसमें विशालता एवं अनेकत्व है। इस देश में लोकनायक की पदवी वही भक्त पा सकता है जो कि देश में प्रचलित सब प्रकार के भाव-विचार, रहन-सहन, भाषा-संस्कृति आदि का समन्वय कर सके। और अभी तक जितने भी इस प्रकार के भक्त हुए हैं, सबने यही किया—भगवान बुद्ध, महात्मा गांधी, कवीन्द्र रवीन्द्र आदि समस्त महापुरुषों का जीवन एक प्रकार के समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण ही शाश्वत है। यही एक ऐसी विशेषता रही है भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की जिसके कारण अनेकों अन्य सभ्यता एवं संस्कृति के इसमें समावेश होने के विपरीत भी यह अनन्त काल से जीवित एवं सजग रहती चली आई है और भविष्य में भी ऐसी ही रहेगी यदि इसमें यह विशेषता वर्तमान रही तो।

तुलसीदासजी ने भी इसी प्रकार अपनी कृतियों में एक समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तुलसी ने समन्वय पर जोर दिया—लोक और शास्त्र, गार्हस्थ और वैराग्य, भक्ति और ज्ञान, भाषा और संस्कृति, निर्गुण और सगुण, कथा और तत्व ज्ञान, ब्राह्मण और चांडाल, पाण्डित्य और अपाण्डित्य—सबों का समन्वय तुलसी ने किया। 'मानस' पूर्णतया एक समन्वयवादी महाकाव्य है। भारतीय जनता के समस्त आचार-विचार, सभ्यता संस्कृति, रहन-सहन, भाषा आदि का प्रतिनिधित्व तुलसी ने किया। भारतीय जनता का प्रत्येक वर्ग अपने आप को तुलसी में (उनकी कृतियों में) पूर्णतया प्रतिबिम्बित पाता है। स्वर्गीय आचार्य शुक्ल के शब्दों में—"भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को।"

इस दृष्टि से यदि हम तुलसी के काव्य का सिंहावलोकन करते हैं तो हमें उसमें पर्याप्त तथ्य एवं सौन्दर्य की उपलब्धि होती है। वास्तव में यदि तात्विक दृष्टि से विवेचन किया जाय तो हमको यह अनुभव होता है कि तुलसी, सूर आदि की तरह कवि, समाज सुधारक, उपदेशक आदि सब कुछ होने से पहले भक्त हैं, कविता करना तुलसी का प्रधान उद्देश्य नहीं है अपितु भगवान की भक्ति, राम की भक्ति ही उनका अभीष्ट है, कविता केवल उसका साधन-मात्र है। तुलसी ने कुसी से स्वयं ही प्रारम्भ में ही अपनी दुर्बलता स्वीकार कर ली—

"कवि न होउँ नहीं चतुर प्रवीना।
सकल कला सब विद्या हीना॥"

और इस समस्त चराचर को 'सियारामसय' जानते हुए उन्होंने जो कुछ कहा वह 'सत्य', 'कोरे कागद' पर लिख कर।

अतः सर्वप्रथम तुलसी की भक्ति पद्धति पर ही दृष्टिपात करना चाहिए। हम देखते हैं कि जिस समय तुलसी का आविर्भाव हुआ उस समय भारत के धर्म एवं भक्ति के क्षेत्र में बहुत अन्धकार तथा अव्यवस्था का समावेश हो गया था। यद्यपि तुलसी से पूर्व कबीर जैसे निर्गुण-पन्थी महात्माओं एवं तुलसी के साथ ही सूरदास जैसे सगुण-पन्थी भक्तों ने इस क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किया था, परन्तु फिर भी अभी तक सामान्य जनता में बज्रयानी सिद्धों एवं नाथपन्थी हठयोगियों की 'रहस्यमयी' वाणी का ही आतङ्क था; जनता इन योगियों की रहस्यमयी उलटी-सीधी वाणियों एवं गुह्य-योग क्रियाओं आदि को ही धर्म का रूप समझे हुए थी। धर्म और भक्ति का सच्चा रूप जनता से छिपा हुआ था। गोस्वामी जी पूर्णरूपेण लोकदर्शी थे; जनता को 'लोक-धर्म' समझाते हुए उस समय इस 'लोक-धर्म' पर जिन-जिन बातों से आघात पहुँचता था, उसकी उन्होंने कड़ी आलोचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की। अपने सामने 'अलख-अलख' कहने वाले योगी को उनकी यह फटकार सर्वविदित ही है—

"हम लख लखहिं हमार लखि, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखे, राम नाम जपु नीच॥"

गोस्वामीजी ने जो लोक-धर्म देश की जनता के समक्ष रक्खा, वह कोई नवीन, उनकी अपनी व्यक्तिगत उद्भावना अथवा उनके प्रकाण्ड ज्ञान से उद्भूत धर्म-सिद्धान्त नहीं था। वह तो देश में प्रचलित समस्त धार्मिक विश्वासों तथा मतों, समस्त भक्ति-पद्धतियों एवं समस्त देवी-देवताओं की उपासना का निचोड़ था—वह "जनता की प्रवृत्तियों का औसत" था। यह धर्म समाज के समस्त अङ्गों को स्पर्श करने वाला, मानव जीवन की प्रत्येक प्रकार की समस्याओं, विश्वासों एवं मान्यताओं से युक्त था। समस्त दार्शनिक तथा धार्मिक मत-मतान्तरों का यह सार था। गोस्वामीजी ने इसमें ज्ञान, कर्म तथा भक्ति या उपासना के अपूर्व सामञ्जस्य को दिखाते हुए सब प्रकार के धार्मिक अविश्वासों, भ्रमों एवं कुप्रवृत्तियों का निवारण किया। सिद्धों, योगियों आदि के कारण प्रचलित जनता में सच्चे धर्म के प्रति अज्ञान, भ्रम आदि को गोस्वामीजी ने अपनी सारग्रहणी प्रतिभा द्वारा भगवान राम का मानवीय लोकरञ्जक रूप रख कर मिटाया। इसके द्वारा गोस्वामीजी ने "वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, कुलाचार, वेद-विहित कर्म, शास्त्र-प्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सबके साथ भक्ति का पुनः सामञ्जस्य स्थापित करके आर्यधर्म को छिन्न भिन्न होने से बचाया।" इस प्रकार जनता को उन्होंने भक्ति का वास्तविक स्वरूप बताया, सब प्रकार के धार्मिक-दार्शनिक मत मतान्तरों का सार बता कर। गोस्वामीजी ने धर्म के सब पक्षों का इस प्रकार से सामञ्जस्य बैठाया जिससे कि समाज के प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी प्रकृति तथा विद्या बुद्धि के अनुसार धर्म का स्वरूप ग्रहण कर सकें। उनकी इसी लोक-कल्याणमयी धर्म-भावना का प्रभाव आज तक जनसाधारण में व्याप्त है; आज एक साधारण से साधारण व्यक्ति भी निम्न पंक्तियों का महत्व समझता है—

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिनहिं विलोकत पातक भारी॥"

× × ×

"अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुन शठ ये कन्या सम चारी॥
इन्हें कुदृष्टि बिलोकहि जोई।
ताहि बधे कछु पाप न होई॥"

× × ×

"आपति काल परखिए चारी।
धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी॥"

तुलसी ने अपनी इस सर्वाङ्गपूर्ण भक्ति-पद्धति में भगवान राम का जो लोकरञ्जनकारी शील-शक्ति-सौन्दर्य युक्त रूप जनता के सम्मुख रक्खा, वह सम्पूर्ण रूप में जन-जीवन में व्याप्त हो गया। प्रत्येक भारतीय के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं परिस्थितियों में—खेल-कूद, हर्ष शोक, विवाह-आनन्दोत्सव आदि में—उसका समावेश हो गया। भारतीय जातीयता का वह अत्यन्त महत्वपूर्ण आन्तरिक तत्व बन गया। किसी भी परिस्थिति में, कहीं भी भारतीय 'राम राम' को नहीं भूले, न भूलेंगे। शुक्लजी ने ठीक ही कहा है कि "हमने चौड़ी मोहरी का पायजामा पहना, 'आदाब अर्ज' किया, पर 'राम-राम' न छोड़ा। अब कोट-पतलून पहन कर बाहर 'डैम नान्सेंस' कहते हैं, पर घर में आते ही फिर वही 'राम-राम'। यह भी अब बीत चुका, अब फिर हम गांधी टोपी, अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहन कर बाहर 'जय हिन्द' करते हैं, पर घर में हर हालत में राम का नाम ही याद करते हैं। राम नाम की इस सर्व व्यापकता के द्वारा तुलसी ने धर्म और जातीयता के समन्वय का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण रक्खा है।

गोस्वामी जी की भक्ति-पद्धति में अन्य बातों के साथ-साथ ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य बहुत महत्वपूर्ण है। भगवान की भक्ति में बाबाजी दोनों ही पथ को श्रेयस्कर मानते हैं, दोनों में ही कुछ भेद नहीं है—

"ज्ञानहि भगितिहि नहिं कछु भेदा।"

क्योंकि साध्य की एकता से दोनों एक ही हैं—

"उभय हरहिं भव-संभव खेदा॥"

इसी प्रकार उन्होंने शील और भक्ति का भी अपनी भक्ति-प्रणाली में बहुत सुन्दर सामञ्जस्य दिखलाया है। शील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय की वह स्थायी स्थिति है जो स्वयंमेव सदाचार की प्रेरणा कराती है। यह सदाचार ज्ञान द्वारा हुआ अथवा भक्ति द्वारा, इसके लिए गोस्वामी जी यह कसौटी बताते हैं कि ज्ञान द्वारा जो सदाचार प्रवर्तित होगा—यद्यपि वह होगा अवश्य—वह कष्टप्रद, साधनापरक तथा हृदय का दमन करने से होगा, परन्तु भक्ति द्वारा प्रवर्तित सदाचार आनन्दप्रद, सहज, उल्लासपूर्ण एवं सतत होगा—वह हृदय से होगा, उसके दमन करने से नहीं, क्योंकि भक्ति विश्वास समन्वित रागात्मिका वृत्ति है। गोस्वामी जी ज्ञान द्वारा प्रवर्तित सदाचार को स्पष्ट शब्दों में कठिन बताते हैं—

"कहत कठिन, समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौ पुनि प्रत्यूह अनेक॥"

बहुत ही स्पष्ट शब्दों में उन्होंने ज्ञानाश्रित अथवा भक्ति द्वारा सदाचार की सुगमता अथवा सुलभता पर प्रकाश डाला है—

"कै तोहि लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहि।
दुइ महँ रुचै जो सुगम सो कीजै तुलसी तोहि॥"

भक्त होने के साथ-साथ गोस्वामीजी दार्शनिक भी थे; परन्तु इस क्षेत्र में भी उन्होंने कोई नवीन भक्तिगत सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया, अपना वही समन्वयवादी दृष्टिकोण इसमें भी रक्खा। सब प्रकार के दार्शनिक 'वादों', मत-मतान्तरों का समन्वय 'विनय-पत्रिका' के एक पद की इन पंक्तियों से दृष्टिगत होता है—

"कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल करि माने।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥"

इसी कारण गोस्वामीजी ने जो कुछ कहा श्रुति-सम्मत कहा; किसी भी कल्पित खोज दार्शनिक मत का आविष्कार उन्होंने नहीं किया। अपनी दार्शनिक विचारधारा में बुद्धि पक्ष एवं हृदय पक्ष का सुन्दर समन्वय दिखाते हुए उन्होंने हिन्दू धर्म का विशुद्ध रूप प्रस्तुत किया। आदि-काल से प्रचलित सब प्रकार की भारतीय दर्शन की विचार धाराओं का सामञ्जस्य बैठाते हुए तुलसी ने एक मानव धर्म का रूप गढ़ा जो कि प्राणी मात्र के लिए ग्राह्य है। "जात पाँत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई" वाली बात तुलसी की विचार धारा पर लागू हो जाती है। इसी कारण तुलसी के लोक-धर्म को 'नकद धर्म' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त अपनी काव्य-कृति में भी तुलसी समन्वयवादी दृष्टिगत होते हैं। अपनी कृतियों में अनेकों प्रकार के छंद-अलंकार विधान, वर्णन-शैलियाँ एवं भाषा का प्रयोग किया; सबका बहुत सुन्दर सामञ्जस्य बैठाया है। ब्रजभाषा एवं अवधी दोनों पर तुलसी का समान अधिकार है। उनकी कृतियों में प्रत्येक मुख्य रसों से युक्त वर्णन हैं—वात्सल्य का उदाहरण राम एवं अन्य 'भूप के बालकों' के बाल वर्णन में मिलता है, शृङ्गार का सन्निवेश जनकपुरी के दृश्यों में पूर्णतया हो गया है, लङ्का के दृश्य सब वीर रस से आप्लावित हैं, तथा शान्त तो उनकी कृतियों में सर्व व्याप्त ही है। कहीं भी तुलसी भगवान का ध्यान अपने मन से नहीं भुलाते। इसी प्रकार अनेकों प्रकार के छन्द, अलङ्कार तथा वर्णन शैलियों का पर्याप्त तथा सफल प्रयोग करते हुए तुलसी अपने आप को प्रत्येक क्षेत्र में एक सच्चे समन्वयवादी सिद्ध करते हैं।

'साहित्य-सन्देश' का ग्राहक होने के नाते मुझे भी मासिक का 'कहानी अङ्क' देखने का सुअवसर मिला है। विद्वान् लेखकों द्वारा कहानी तत्वों पर डाला हुआ प्रकाश परीक्षार्थी बन्धुओं को विशेष लाभदायक हो सकता है। इस राष्ट्र-सेवा से सन्देश पत्र बधाई के योग्य है।

—उमाशङ्कर शर्मा 'राकेश'

* * * * * *

साहित्य-सन्देश का कहानी अङ्क पढ़ा। वैसे तो सारे लेख ही उपयोगी हैं परन्तु प्रान्तीय भाषाओं विषयक लेख अत्यन्त उपयोगी ज्ञात हुये। यदि प्रत्येक अङ्क में प्रान्तीय भाषा विषयक लेख एकाध निकले तो बड़ा अच्छा हो।

—श्यामनारायण वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रज-साहित्य के तीन तत्व

श्री शर्मनलाल अग्रवाल, एम० ए०

भारतीय साहित्य में ब्रज-साहित्य का एक विशिष्ट स्थान है। ब्रज-प्रदेश ने सहस्रों वर्षों से भारतवर्ष की सभ्यता, कला, साहित्य और संस्कृति को प्रभावित किया है। शौरसेन-प्रदेश एक प्रकार से वह प्रकाश का ज्योतिर्मय पुञ्ज रहा है जिससे चारों ओर प्रकाश किरणें फैलकर देश के विभिन्न भागों को प्रकाशित करती रही हैं। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक खोज करते-करते इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि संस्कृत से पूर्व जो वैदिक भाषा थी उसका मूल स्रोत यह शौरसेन प्रदेश ही था। भगवान कृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण यह सदैव से ही समस्त देशवासियों के आकर्षण का केन्द्र बनी रही। सीमान्त-प्रदेश का पठान रसखान इसी भूमि में रमने को आया, राजस्थान के मरुस्थलों को अपने पैरों से चीरती हुई मीरा को भी यहीं आकर शान्ति मिली, बङ्गाल के सुदूर प्रदेश से महात्मा चैतन्य इसी प्रदेश की ओर दौड़ पड़े। यह भूमि भक्त, कलाकार, कवि एवं प्रकृति प्रेमी सभी के आकर्षण का केन्द्र रही है।

इस भूमि का साहित्य प्रायः कवितामय है। हिन्दी के प्रारम्भ से इस प्रदेश ने जो साहित्य दिया है। वह हिन्दी साहित्य की आधार-शिला है। बहुत वर्षों तक राष्ट्र भाषा का सौभाग्य ब्रज-भाषा को ही मिलता रहा और ब्रज-भाषा-साहित्य ही देश का प्रमुख साहित्य स्वीकृत किया गया। पिछले अनेक वर्षों में अनेक राज्यक्रान्तियाँ हुईं, भारत के इतिहास में अनेक नये अध्याय जुड़ते गये किन्तु ब्रज-साहित्य की धारा निरन्तर बहती ही रही जिससे भक्त, दार्शनिक, प्रेमी सभी वर्गों के व्यक्तियों को शान्ति और सन्तोष मिलता रहा। प्रश्न यह होता है कि ब्रज-साहित्य की इस सुदृढ़ स्थिति का रहस्य क्या है।

ब्रज-साहित्य का सिंहावलोकन करने पर हम उसमें तीन स्वभावगत विशेषताएँ पाते हैं—

१—आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

२—कलात्मक अभिव्यक्ति

३—जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण

ब्रज-साहित्य में दर्शन और कविता का सुन्दर समन्वय हुआ है। कृष्ण को यहाँ भगवान के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया और राधा को उनकी आह्लादिनी शक्ति के रूप में। इसका फल यह हुआ कि यहाँ का साहित्य लौकिक होते हुए भी अलौकिक रहा। अष्ट-छाप के समस्त कवियों ने राधा और कृष्ण को ही अपने काव्य का आधार बनाया। सूर, तुलसी, नन्ददास, रसखान आदि कवि इसी आध्यात्मिक भावना से प्रेरित होकर साहित्य सर्जना में लीन हुए। यह कविता उनके लिए मनोरञ्जन न थी वह स्वयं एक साधना थी। कवि होने के साथ-साथ वे साधक थे। लौकिक लीलाओं के वर्णन में भी वे कृष्ण के अलौकिक रूप, जीव और आत्मा के पवित्र सम्बन्ध तथा जीवन में भक्ति और त्याग के महत्वपूर्ण स्थान को न भूल सके। समस्त ब्रजकाव्य में यह आध्यात्मिक भावना पके हुए आम्र-रस के समान फूट-फूट कर निकलती है। इसका फल यह हुआ कि रीतिकाल में जिन कवियों ने शृङ्गारमयी लौकिक भावना को ही अपने काव्य का आधार बनाया वे भी इस आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को न छोड़ सके। उनकी कविता स्पष्ट रूप से लौकिक प्राणियों को लेकर लौकिक विषयों पर लौकिक साधनों की प्राप्ति के लिए ही है। पर रङ्ग-मञ्च पर अभिनय के समय धीरे-धीरे बजने वाले वाद्य यन्त्र की भाँति इसमें से भक्ति और आध्यात्मिकता की लहरी प्रभावित होती रहती है। बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर, रहीम आदि रीतिकालीन कवि तथा रत्नाकर और भारतेन्दु आदि वर्तमान युग के कवियों की शृङ्गारमयी कविता के सम्बन्ध में यही बात कही जा सकती है।

"जैसे उड़ जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै"

इन कवियों ने कल्पना को ऊँची उड़ानें ली हैं, संयोग, शृङ्गार के बड़े आकर्षक चित्र उपस्थित किये, सुन्दरियों के विश्लेषण में अपनी प्रतिभा का खूब ही चमत्कार दिखाया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इस आध्यात्मिकता का प्रभाव इनके पीछे अवाधगति से रहा और घूम फिर कर फिर उसी भूमि पर आगये।

दूसरी प्रमुख विशेषता कविता का संगीत से समन्वय है। कविता के समान संगीत को भी जीवन की साधना के रूप में स्वीकार किया गया। ब्रज-साहित्य के सभी प्रमुख कवि गीतकार के रूप में भी आते हैं। सूर हमारी भारती के अमर गायक हैं। जिनकी मधुर वाणी कोटि-कोटि कण्ठों से मुखरित होकर ब्रज प्रदेश ही नहीं वरन् समस्त राष्ट्र को गुञ्जित किया करती है। हमारे कवियों ने आध्यात्मिकता के लिये कविता का आश्रय लिया और कविता के लिए संगीत को माध्यम बनाया। इस प्रकार ये दो प्रमुख कलायें जीवन के क्षेत्र में अधिक दूर नहीं जा सकीं। हमारे कवि साधक कवि और गायक एक साथ रहे। आज हिन्दी में जो शास्त्रीय संगीत है वह केवल ब्रज-काव्य है। स्वामी हरिदास, तानसेन बैजू बावरा, विष्णु दिगम्बर और ग्वारिया बाबा आदि प्रमुख संगीतज्ञों के द्वारा वह परिष्कृत होकर इस रूप तक पहुँच चुका है। संगीत की यह पूर्णता हमारे साहित्य की एक महान् विशेषता है।

हमारे साहित्य की तीसरी विशेषता है जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण। हमारे कवियों के लिए जीवन न तो दार्शनिकों की भाँति केवल स्वप्न, कल्पना तथा 'क्षण भंगुर' रहा और न घोर भौतिकवादियों की भाँति केवल ऐन्द्रिक वासनाओं की पूर्ति का साधन मात्र रहा, हमारे कवि जीवन में स्वार्थ और परमार्थ, श्रेय और प्रेय, इहलोक और परलोक, यथार्थ और आदर्श सभी का समन्वय देखते हैं। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही विशाल उदार एवं बहुमुखी रहा है। उसमें आनन्द, उल्लास, जिज्ञासा, त्याग तथा मंगल भावना का समुचित सामञ्जस्य है। हमारे कवि इस शरीर को हेय समझकर ठुकराते नहीं थे वरन् इसको सांसारिक सुख और ब्रह्म-प्राप्ति का साधन समझते थे। भक्त-कवि तो मुक्ति को भी तुच्छ समझ कर बार-बार भक्ति के लिए ही, उस लीलामय भगवान की मङ्गलमयी लीलाओं की झाँकी के लिए इस जगत में बार-बार आना चाहते थे। ब्रज के काव्य में कवियों का आत्म-गौरव झलकता है। गौरव के इसी भाव ने तो कुम्भनदास से कहलवाया।

"सन्तन कहा सीकरी सों काम"

\+ \+ \+

जिनके मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम॥

सूरदास ने संयोग और वियोग जीवन के किसी भी क्षेत्र में निराशा एवं कटुता का भाव जाग्रत नहीं होने दिया है। गोपियाँ विरह की भयङ्कर रात्रि को भी उद्धव के साथ किए हुए अपने मनोविनोद द्वारा जगमगा देती हैं। कृष्ण के प्रति उनकी मङ्गल-भावना सदैव बनी रहती है। प्रकृति की पुकार उन्हें सदैव बाहर खींचकर बुलाती है, ग्राम्य-जीवन के दृश्य उन्हें आकर्षित करते ही रहते हैं तथा "यह मथुरा काजर की नगरी-ज्यो आवत ते कारे" ऐसी व्यंगपूर्ण युक्तियाँ सहज ही उनके मुख से निकल जाती हैं। हमारे कवियों ने जीवन को एक नागरिक, प्रेमी, भक्त और दार्शनिक सभी दृष्टि से देखा है और सभी भावनाओं का समुचित समावेश किया। यही कारण है कि ब्रज-काव्य में मानव को उस रसमयी अनुभूति के दर्शन होते हैं जिसके द्वारा वह आत्म-विभोर हो उठता है। राधा और कृष्ण की प्रेम-लीलायें, गोपियों के आँसू, नन्द यशोदा का विलाप, ग्वाल बालों की चिन्ता, कंस के षड्यन्त्र, गोपी उद्धव संवाद और भक्तमयी पावन सूक्तियाँ सभी प्रसंग जीवन के उतार-चढ़ाव के भिन्न-भिन्न रंगीन पहलू हैं। इस प्रकार ब्रज-साहित्य की यह विशेषता उसे सर्वाङ्गीण बनाती है, एवं विश्व-साहित्य में उसे प्रमुख स्थान प्रदान करती है।

आपका कहानी अङ्क बहुत पसन्द आया। अधिकांश लेख हमारा स्थायी साहित्य हो सकता है।

एक बात मुझे जरूर खटकी। आपका प्रश्न "आपकी सर्वश्रेष्ठ कहानी कौन है तथा क्यों?" बिल्कुल स्वाभाविक था। इस सीधे प्रश्न का उत्तर भी सीधा होना चाहिए। मुझे तो उन कहानीकारों की बात कुछ समझ में नहीं आई जिन्होंने घुमाव-फिराव से इस प्रश्न का उत्तर दिया है।

—राधेश्याम टण्डन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि प्रसाद और समन्वयवाद

कुमारी डी० शान्ता एम० ए०

महाकवि प्रसाद के साथ हम प्रधानतः दो वादों को लिपटे हुये देखते हैं—एक छायावाद और दूसरा रहस्यवाद। प्रसाद के इन दो पहलुओं पर हम थोड़ा-सा प्रकाश डालेंगे। हाँ, यह सत्य है कि प्रसाद छायावादी भी थे और रहस्यवादी भी। जब हिन्दी के आधुनिक काव्य-साहित्य का आरम्भ हुआ तब पश्चिमी काव्य-साहित्य का प्रभाव उस पर अनिवार्य रूप से पड़ा। और उस समय हिन्दी-साहित्य-जगत भी हरिश्चन्द्र युग की इतिवृत्तात्मकता से ऊब गया था। अतः कवि का ध्यान सिर्फ अपने पर ही न जाकर अपने से भिन्न और अपने आस-पास की प्रकृति पर भी जाने लगा। जिसकी ठंडी छाँह में बैठ कर वह अपनी थकान को मिटाता है, जिसकी कल-कल ध्वनि को सुन कर उसके भी हृदय-वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं, जिसकी हरी-भरी घास उसका शीतल बिछौना बनता है, जिसके फूलों की महक से उसका सम्पूर्ण हृदय आनन्द से पूर्ण हो जाता है, जिसकी विशाल गम्भीरता में कभी-कभी वह मग्न हो जाता है, जिसकी ऊँची चोटियों के सामने कभी वह अपनी निम्नता का अनुभव करता है, और जिसकी सम्पूर्ण सुन्दरता, विशालता, गम्भीरता, शीतलता उसके हृदय को भाव-विभोर कर देती है। ऐसी प्रकृति को भुलाना कवि के लिए असम्भव हो गया। अतः कवि ने अपनी विचार-धारा में सारी प्रकृति को समेट लिया और अपनी लेखिनी की नोक से उसे प्रकट करने का प्रयत्न करने लगा।

कवि प्रसाद का यह प्रयत्न ही उन्हें छायावादी के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। लेकिन प्रकृति की सुन्दरता का अनुभव मात्र छायावाद नहीं है। प्रकृति की सुन्दरता का अनुभव करते-करते, कवि उस परोक्ष सत्ता की झाँकी उसमें देखने लगता है। कवि की अनुभूति परोक्ष से अपरोक्ष तक पहुँचने लगती है। लेकिन प्रसाद के अनुसार छायावाद यहीं तक नहीं है, उसमें वे कुछ और तत्वों को भी जोड़ते हैं। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान और स्वानुभूति प्रसाद छायावाद में आवश्यक समझते हैं। अतः प्रसाद की छायावादी कविता प्रकृति में परमात्मा की छाया मानते हुए उपरोक्त विशेषताओं को भी लिए चलती है।

प्रसाद रहस्यवादी कवि भी थे, यह तो स्पष्ट है। कामायनी में प्रसाद का रहस्यवाद अपने विकास से लेकर निर्वेद, दर्शन और रहस्य-लोक को पार करता हुआ अपनी अंतिम मंजिल आनन्द तक पहुँच गयी है। रहस्यवाद का आधार स्तम्भ अद्वैतवाद और रहस्य की प्रारम्भिक स्थिति जिज्ञासा आदि को हम कामायनी के प्रथम सर्ग में ही पाते हैं।

लेकिन छायावाद और रहस्यवाद से भी बढ़ कर कवि की महानता उनके समन्वयवाद में है। कवि प्रसाद ने जीवन और जगत का गहरा अध्ययन किया था, मनुष्य में उठने वाली भावनाओं, आकांक्षाओं, उमङ्गों, आवेगों आदि के तूफानों से वे अच्छी तरह परिचित थे। खुद अपने जीवन में भी वे इन तूफानों के शिकार हुए थे। कवि प्रसाद की प्रौढ़ चिन्तन ने जीवन की इस जटिलता को सुलझाना चाहा। उनका वह सुलझाव ही समन्वयवाद का रूप धारण कर गया। मानव-मानव में, समाज-समाज में, राष्ट्र और राष्ट्र में, देश और देश में, और अन्त में सम्पूर्ण लोक में बिना समन्वय के शान्ति नहीं, प्रसाद का प्रौढ़ मस्तिष्क इस सत्य का अनुभव कर चुका था। यह सत्य उनकी कविता में सर्वत्र स्पष्ट है।

कवि प्रसाद ने अन्तर्जगत और बहिर्जगत दोनों में सामञ्जस्य अनिवार्य बतलाया है, नहीं तो जीवन में आनन्द की उपलब्धि असम्भव है। प्रसाद के काव्य का यही चिरन्तन सन्देश रहा है—"जीवन के मध्य पथ से लो सगति सुधार" और यही उनके काव्य-साहित्य का मूल मन्त्र है।

उनके काव्य में, जड़ और चेतन का सामञ्जस्य, व्यष्टि और समिष्टि का सामञ्जस्य, बुद्धि और हृदय का सामञ्जस्य, सुख और दुःख का सामञ्जस्य, परिवर्तन और स्थिरता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामञ्जस्य, प्रवृत्ति और निवृत्ति का सामञ्जस्य, शासक और शासित के अधिकारों का सामञ्जस्य, नर और नारी के बीच सम्बन्ध का सामञ्जस्य, वासना और संयम का सामञ्जस्य, द्वयता और इकाई का सामञ्जस्य, आदि कई प्रकार के सामञ्जस्य का रूप हमें दिखाई देता है। प्रसाद के इस सामञ्जस्य का घेरा भी बहुत ही विस्तृत है। मनुष्य के जीवन में, समाज के जीवन में, राष्ट्र के जीवन में, देश के जीवन में और समस्त विश्व के जीवन में यह सामञ्जस्य सुख और शान्ति के लिए आवश्यक है। कवि प्रसाद ने अपने काव्य में इसी सत्य का उद्घाटन किया है।

'कामायनी' का आरम्भ ही जड़ और चेतन के सामञ्जस्य से होता है। मनु शिला की शीतल छाँह में बैठ कर जल प्रवाह को देख रहे थे और—

"नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन॥"

हिम और जल को लेकर दोनों में एक ही तत्व का स्थापन और उसमें जड़ और चेतन का सामञ्जस्य इतनी सरल पंक्तियों में स्थापित करना प्रसाद की ही कलम की कुशलता है।

व्यष्टि और समष्टि का सामञ्जस्य 'कामायनी' में काम के शाप द्वारा कवि ने स्पष्ट किया है। व्यक्ति और समाज में समन्वय स्थापित करने के हेतु, मानव को अपनी संकुचित दृष्टि को त्याग कर, विस्तृत समन्वयपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा। नहीं तो इसके भयङ्कर परिणाम का वर्णन कवि ने इन पंक्तियों में लिखा है:—

"यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि।
द्वयता में लगी निरन्तर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि,
अनजान समस्याएँ गढ़ती रचती हैं, अपनी ही विनष्टि।
कोलाहल कलह अनन्त चले, एकता नष्ट हो बढ़े भेद,
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।
हृदयों का हो लघु आवरण अपने वक्षस्थल की जड़ता,
पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता।
सब कुछ भी हो यदि पास भरा, पर दूर रहेगी सदा तुष्टि,
दुःख देगी यह संकुचित दृष्टि।"

यह पितृ वात्सल्य से पूर्ण एक पिता के हृदय की अपने निष्ठुर दामाद के प्रति और उसकी भौतिक उन्नति की अभिलाषा के प्रति व्यक्त क्षोभ ही नहीं है, पर कवि प्रसाद के हृदय की, इस भौतिकता से पूर्ण आज की मानवता के प्रति एक अभिशाप है। व्यष्टि और समष्टि के बीच की खाई को पाटने के लिए कवि के हृदय का आवेग उपरोक्त पंक्तियों में काम के क्रोध का रूप ग्रहण कर गया है।

बुद्धि और हृदय के सामञ्जस्य पर तो सम्पूर्ण कामायनी काव्य स्थित है। इड़ा के पास हृदय का अभाव था। उस बुद्धि-प्रधान स्त्री के पास जाकर मनु को विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। इसीसे श्रद्धा उसे समझाती है:—

"तू सिर चढ़ी रही पाया न हृदय....."

बुद्धि और श्रद्धा का सामञ्जस्य करने के लिये ही प्रसाद कामायनी द्वारा उसके पुत्र मानव को इड़ा को सौंपते हैं और कहलाते हैं—

"यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय।"

केवल श्रद्धा ही नहीं पर इड़ा भी इस समन्वय की ओर अग्रसर है। वह आनन्द सर्ग में श्रद्धा के सामने नत हो कहती है—"हे मङ्गलमयी मैं यहाँ आकर धन्य हुई।" अतः मानव जीवन में सङ्घर्ष और विषाद बुद्धि की अधिकता और श्रद्धा की न्यूनता के कारण है। इनके समन्वय पर ही आनन्द की स्थापना होगी।

सुख और दुःख का समन्वय तो प्रसाद के काव्य का प्रधान विषय है, 'आँसू' में उसका निखरा रूप स्पष्ट है। मनुष्य के आनन्द की कुञ्जी इस वाक्य में है:—

"सुख मान लिया करता था,
जिसका दुःख था जीवन में"

दुःख को सुख मान लिया करना, सुख-प्राप्ति का कितना सरल साधन है। कामायनी में भी इसी समन्वय पर जोर दिया गया है:—"सुख दुःख की मधुमय धूप छाँह....
उल्लास पूर्ण आनन्द सतत।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासक और शासित के अधिकारों का सामञ्जस्य भी 'कामायनी' में दिखाया गया है। इसी सामञ्जस्य के अभाव के कारण मनु का इड़ा तथा प्रजा के बीच सङ्घर्ष होता है।

नर और नारी के अधिकारों का सामञ्जस्य भी कामायनी का एक प्रधान विषय है। अपनी इस भावना को प्रसाद ने इन पंक्तियों में उपस्थित किया है—

"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में,
कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी,
अधिकार और अधिकारी की॥"

हम पहले ही बता आये हैं कि कवि प्रसाद ने जीवन और जगत का गहरा अध्ययन किया था। उनकी कविता मानव से कुछ अलग नहीं है। प्रसाद भी पुरुष थे, अतः पुरुष-प्रकृति से वे भली भाँति परिचित भी थे। आज की इस बीसवीं शताब्दी में पुरुष और स्त्री के हृदयों में सामञ्जस्यता के अभाव का कारण प्रसाद का हृदय अनुभव कर चुका था। पुरुष की स्त्री के प्रति वासनात्मक मोह की प्रधानता ही इस असमञ्जसता का प्रधान कारण है। जब तक पुरुष स्त्री के अपार सौन्दर्य-जलधि से इस तरह गरल पात्र भर कर लाता रहेगा तब तक यह असमञ्जसता नहीं मिटने की। सुखपूर्ण दाम्पत्य-जीवन की जटिल ग्रन्थि को भी कवि प्रसाद 'कामायनी' काव्य में उपरोक्त पंक्तियों द्वारा सुलझाते हैं। नर और नारी की भावनाओं में सामञ्जस्य तभी सम्भव है, तभी सुख और शान्ति की आशा की जा सकती है। नर और नारी के सम्बन्ध की समरसता को भुला देने के कारण ही मनु के जीवन में शान्ति प्राप्त नहीं हो सकी।

'कामायनी' काव्य में कवि ने वासना और संयम के सामञ्जस्य की भी आवश्यकता दिखाई है। प्रलय का कारण इन दोनों में सामञ्जस्य का अभाव ही है। देवता अपने यौवन मद में भूले थे और वासना और मोह के प्रवाह में बहे जा रहे थे, जिसके फल स्वरूप भयङ्कर प्रलय उपस्थित हुआ था।

'कामायनी' का अन्तिम सन्देश द्वयता और इकाई का सामञ्जस्य है। यह सामञ्जस्य कर्म और ज्ञान के सामञ्जस्य द्वारा स्पष्ट किया गया है। केवल इच्छा पंगु है, उसे कर्म का सहारा चाहिये। केवल कर्म अन्धा है, उसे ज्ञान का आलोक और अंकुश आवश्यक है। आज की विडम्बना का कारण इनमें सामञ्जस्य का अभाव है—

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की॥"

'कामायनी' के अन्त में 'अहम्' का 'इदम्' में पर्यवसान दिखाया गया है। प्रकृति तथा पुरुष सभी समरस हैं आनन्द में मग्न हैं—

"समरस थे जड़ या चेतन,
सुन्दर साकार बना था।
चेतना एक विलसती,
आनंद अखंड घना था॥"

इस महाकवि की यह महान विभूति हिन्दी-साहित्य में ही नहीं पर समस्त संसार के साहित्य में अपना महत्व रखती है।

मैंने कहानी अङ्क के कुछ पृष्ठों का अवलोकन किया। मैं उसके साहित्यिक महत्व और उच्च स्तर को देख कर बड़ा प्रभावित हुआ। मैं आपको ऐसे सुन्दर विशेषाङ्क निकालने के लिए बधाई देता हूँ।

—मथुरालाल शर्मा एम० ए०, डी-लिट्०
शिक्षा सञ्चालक राजस्थान।

* * * *

'कहानी विशेषाङ्क' उत्तम है। साहित्य-प्रेमियों एवं विद्यार्थियों के लिए बड़ा उपयोगी है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी लघुकथा

श्री वसन्तम् कोगनोलकर एम० एस-सी०, बी० टी०

साहित्य हमेशा जीवित होना चाहिए। यही उसकी प्रगति और उत्कर्ष का लक्षण है। जिस साहित्य में उसके विविध अङ्गों-प्रत्यङ्गों में विकास के गुण नहीं दीखते हैं वह साहित्य अवश्य ही मृतप्राय होता जाता है। साहित्य का प्रत्येक क्षेत्र जीवन, स्फूर्ति और उत्साह का प्रतीक होना चाहिए। यही गुण मराठी साहित्य में पूर्णतया पाये जाते हैं और यही कारण है कि इस देश की कितनी ही प्रादेशिक भाषाओं के बीच अल्पसंख्यकों की भाषा होते हुए भी मराठी का साहित्य भारत का एक उच्च साहित्य गिना जाता है। नाटक, उपन्यास तथा कविता के क्षेत्रों में जिस प्रकार मराठी ने अपने उत्कर्ष से ऊँचा स्थान प्राप्त किया है उसी प्रकार लघुकथाओं के प्राङ्गण में भी उसका कार्य प्रशंसनीय रहा है। उसके विविध लेखकों ने अपनी कला-कृतियों से मराठी को विशेष स्थान प्राप्त करा दिया है।

एक समय था जब लघुकथाएँ, नाम को ही लघुकथाएँ कहलाती थीं। उनमें लघुकथाओं का लालित्य, विकास तथा तन्त्र (Technique) न था। उपन्यासों के समान बहुत लम्बे कथानक होते थे। और मन की पकड़ साधने के लिए कोई विशेष गुण न रहते थे। फिर भी अपनी लेखन-शैली के कारण लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। कहानियाँ तो मनुष्य को बचपन से ही प्रिय होती हैं। परियों, राजकुमारों और राक्षसों की कहानियों में किस बच्चे को आनन्द नहीं आता? वयस्क पुरुषों के लिए उन्हीं कहानियों का एक बड़ा रूप—इतना ही उन दिनों लघुकथाओं का महत्व था। हरिभाऊ के अथक प्रयत्नों के कारण और उनके साप्ताहिक पत्र 'करमूक' के कारण जनता की रुचि लघुकथाओं की ओर बढ़ी। उनकी खुद की शैली भी अत्यन्त रोचक होने के कारण जनता ने उन्हें सहर्ष अपनाया।

समय बदलता गया, पत्रकारिता ने भी कदम बढ़ाया, और जनता के सुशिक्षितता के पथ पर बढ़ते जाने से विशेष रोचक साहित्य की आवश्यकता प्रतीत हुई। जिस प्रकार उन दिनों नाटक और कविता ने कदम बढ़ाया उसी प्रकार लघुकथाओं ने भी प्रगति की ओर प्रयाण किया परन्तु उस समय तक भी लघुकथाओं का कार्य विशेष उल्लेखनीय नहीं रहा। उनका अब भी बालपन ही था, उनमें सौन्दर्य और आकर्षण का अभाव विशेष रूप से खटकता था। अवयवों में रूप आ रहा था परन्तु मन को आकृष्ट करने की क्षमता उनमें न थी।

परन्तु प्रयत्न कभी विफल नहीं जाते हैं। अधिकाधिक लेखकों ने इस क्षेत्र में अपना कार्य दिखाने का प्रयत्न किया और पिछले बीस वर्षों में श्री वि० स० खांडेकर, ना० सा० फड़के, य० गो० जोशी०, चि० वि० जोशी आदि लघुकथी लेखकों ने मराठी साहित्य को मान का स्थान दिलाने में विशेष रूप से प्रयत्न किया और इस दृष्टि से मराठी का प्रत्येक पाठक उन लेखकों का अवश्य ही आभारी रहेगा। इस अवधि में लघुकथाओं को विशेष रूप प्राप्त हुआ। उनमें जीवन के चिह्नों का प्रादुर्भाव हुआ। उनके लिखने के तन्त्र की जानकारी हुई और उन्हें परिणामकारक बनाने के लिए विविध उपायों का अवलम्बन किया गया। रोचक शुरूआत, मन को आकृष्ट करने वाला कथानक, धीरे-धीरे क्रम से एक उच्च बिन्दु Climax की ओर बढ़ना और कथानक का पूर्ण रूप से विकसित होना, तथा अन्त में विशेष नाटकीय Dramatic अन्त होना, इन बातों का अवलम्बन कर लेखकों ने जनता में लघुकथाओं के प्रति रुचि उत्पन्न की।

श्री फड़के ने शृङ्गार युक्त भाषा का उपयोग किया और शृङ्गार रस का विशेष पुट देते हुए कालेज के तरुण युवक विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों को उनमें गूँथना चाहा। जैसा कि अपेक्षित ही था कालेज के विद्यार्थी गण तथा युवक उस ओर आकृष्ट हुए और यही कारण है कि ह्न० सी० फड़के ने लघुकथा क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान बना दिया है। चि० वि० जोशी की हास्य रस पूर्ण लघुकथाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त रोचक होती हैं और सहज ही लोगों का ध्यान खींच लेती हैं। वि० स० खांडेकर ने अलङ्कारों का और अपनी ही विशेष भाषा शैली का अवलम्बन किया। परिणाम यह हुआ कि जनता उन्हें भी अत्यन्त रुचि से पढ़ने लगी। उनकी कहानियाँ पढ़ते समय स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि उनके लेखन में एक अत्यन्त चतुर कलाकार का हाथ है। खांडेकरजी की लघुकथाएँ हमेशा से ही लोक प्रिय होती आई हैं। एक विशेष कारण उनके लोकप्रिय बनने का यह भी है कि अद्यावत् (uptodate) कथानक उनकी कहानियों में पाया जाता है। जो भी राजनैतिक घटनाएँ उस समय घटित हो रहीं हों उन्हीं को कथानक का मध्यवर्ती क्षेत्र बनाकर अपने विचारों को प्रदर्शित करने का उनका अपना ही तरीका है। साथ ही बहुत ऊँची कवि कल्पनाओं के कारण वे साहित्य का एक प्रमुख अङ्ग बन जाती हैं।

इन सभी लेखकों ने अपनी लघुकथाओं को समयानुकूल बनाने के सिवा एक यह बात और भी की कि लालित्यपूर्ण भाषा में सामाजिक प्रश्नों के हल करवाने में भी मदद की। समाज को सदियों के बन्धन से छुड़ाने में तथा उसे प्रगतिशील बनाने में उन्होंने विशेष रूप से कार्य किया।

इतनी बात अवश्य कहनी पड़ेगी कि पाश्चिमात्य लघुकथाओं की कला का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा। परन्तु प्रगति के लिए कारण कुछ भी क्यों न हो परन्तु परिणाम ही विशेष रूप से देखा जाना चाहिए। यह पश्चिमात्य परिणाम विशेष रूप से तन्त्र की दृष्टि से था और वह उसमें आना वांच्छनीय तथा आवश्यक भी था। उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में विदेशी भाषाओं के नमूने उपस्थित करना भी एक दृष्टि से सर्वाङ्गीण उन्नति करने का एक सरल मार्ग है। यही कारण है कि मराठी भाषा में उस तन्त्र का उपयोग कर प्रगति करने में विशेष सहायता प्राप्त हुई।

आज लघुकथा लेखकों में खांडेकर प्रभृति लेखक विशेष ख्यात नाम हैं। साथ ही वि० भा० दि० पटवर्धन, ठोकल, आपटे, मालती दांडेकर, सदानन्दरेमे, शांता अ० वा० वर्टी आदि नवोदित लेखकों ने भी शारदादेवी की इस क्षेत्र में सेवा कर अच्छा नाम कमाया है। इन लेखकों की एक विशेषता यह भी है कि जनता की रुचि की ओर ध्यान देकर इन लेखकों ने सुहृद कथानकों का उपयोग कर और अत्यन्त रोचक ढङ्ग के वर्णन देकर पाठकों के मन को पकड़ने की कला अवगत करली है। इनमें रुचि होने का स्पष्ट प्रमाण यही है कि आज के मासिकों में से इन लेखकों के लेख जिनमें आते हैं उन्हीं की खपत अधिक हो रही है। आज के इन लेखकों में विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि लघुकथा लेखन के तन्त्र को न त्यागते हुए, भाषा तथा रोचकता की दृष्टि से उत्कृष्ट साहित्य-निर्माण की ओर इनकी प्रवृत्ति है।

खांडेकर की काव्य कल्पनाएँ तथा अलङ्कारों से सजी हुई रोचक भाषा, वर्टी की हास्य रस प्रधान लघुकथाएँ तथा शेजर आदि लेखकों की रहस्यकथाएँ इस समय विशेष उल्लेखनीय हैं।

गत कुछ वर्षों से 'नवकथाओं' का विशेष रूप से जनता के सामने नाम आ रहा है। इन कथाओं में मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है। अब लघुकथाओं में विशेषतया भावनाओं का स्पष्टीकरण, मानसिक अवस्था का वर्णन तथा किसी विशिष्ट परिस्थितियों में विचार करने का मनोवैज्ञानिक ढङ्ग प्रमुख स्थान पा रहा है। फ्राइड युग तथा नवीन मनोवेत्ताओं के लैंगिक तत्वों का भी इन लघुकथाओं में प्रादुर्भाव हुआ है। गङ्गाधर, गाडगील प्रभृति लेखकों का तो यहाँ तक कथन है कि कोई विशेष लैंगिक भावना की ओर मनुष्य के आकृष्ट होने से किसी विशेष घटना में मानसिक विचारों को चालना मिलती है और मन की अस्थिरता तब तक शान्त नहीं होती है जब तक कि वह विशिष्ट भावना सफल न होजाय। इस कथन पर कितने ही नवीन तथा ख्यातनाम लेखकों ने विरोध किया है, परन्तु लघुकथाओं में एक नवीन धारा का प्रवेश, इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो वह लेखक भी अत्यन्त सफल प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि गङ्गाधर-गाडगील, अरविन्द गोखले आदि नव-कथा लेखकों ने एक विशिष्ट रूप में लघुकथाओं को ढाल कर नाम कमाया है।

अब तक की लघु कथाओं में कथानक की ओर विशेष रूप से भार दिया जाता था। कथानक की रोचकता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष स्थान प्राप्त था परन्तु इस नव-कथा काल में घटना सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करती है और अनुभव करते समय की मानसिक अवस्थाओं के बदलने का वर्णन प्रथम स्थान पाता है। इस प्रकार पूर्व-काल की लघुकथाएँ कथानक-प्रधान होती थीं जब कि आज की मनोविश्लेषण-प्रधान होती हैं। या दूसरे शब्दों में कहा जाय तो पहिले की लघुकथाएँ जब बहिर्मुख थीं तब आज की अन्तर्मुख हैं। भाव निरूपण, प्रेरणाओं का विकास, और घटनाओं के प्रभाव के कारण मानसिक अवस्था का बदलना मिलकर मनुष्य के हाथ तदनुसार कृतियाँ होना, इन नवकथाओं के गुण हैं।

लघुकथाओं के प्रिय होने का एक और भी कारण है। सामाजिक तथा राजकीय गुत्थियों को सुलझाने का लेखकों द्वारा उसमें प्रयत्न भी होता है। कथानक साधारण ही सा क्यों न हो परन्तु उसमें आज की समस्याओं में मनुष्य को क्या करना चाहिए इनका हल दिया होता है और वह भी अत्यन्त रोचक तथा सुहृद भाषा में। भाषा की शैली अपना स्थान अवश्य रखती है परन्तु एक लेखक अभी तक समस्या को सुलझाने के लिए एक रस का आश्रय लेता है जबकि दूसरा किसी दूसरे रस का। प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में मार्मिक तथा प्रभावपूर्ण रीति के मार्ग सुझाता है और इस प्रकार जनता को प्रगति का मार्ग दिखलाया जाता है।

परन्तु आज की लघुकथाओं के क्षेत्र में एक भाग बिलकुल अछूता ही रह गया है। वैज्ञानिक विषयों को प्रयोग कर लघुकथाओं को लिखने का प्रयत्न अब तक कम ही हुआ है। वेल्स की तरह के लेखकों का जन्म अब भी होना है। यही कमी मुझे हिन्दी के लघु कथा साहित्य में अब तक खटकती है। लेखकों को इस कमी की पूर्ति कर अपने साहित्य को प्रत्येक दृष्टि से समृद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिये।

मराठी की लघु कथाओं ने हिन्दी-साहित्य-संसार में अच्छा नाम प्राप्त कर लिया है। आज के हिन्दी लोकप्रिय मासिकों में मराठी की लघुकथाओं के अनुवाद बढ़ती संख्या में देखकर यह स्पष्ट हो जाता है। परन्तु आज भी जबकि बहुत कुछ साध लिया गया है, बहुत कुछ करना अब भी बाकी है। और आशा है कि मराठी का साहित्य भारत का प्रमुख साहित्य बनने का प्रयत्न और भी दृढ़ता से करेगा। साथ ही यहाँ यह कहना भी इष्ट ही होगा कि वह दिन दूर नहीं जब कि मराठी का साहित्य अपनी राष्ट्रभाषा के मुकुट का एक अत्यन्त प्रसिद्ध चमकता हीरा बन जायगा।

(पृष्ठ ४६२ का शेषांश)

प्रभु का नाम तक नहीं आता है। सम्पूर्ण वार्ता श्री गुसाँईजी से सम्बद्ध है। और जैसा हम ऊपर देख चुके हैं 'सेवा' इन्हें श्री गुसाँईजी ने पधराई। अतः यह वार्ता भी केवल भ्रमवश चौरासी वार्ता में आई हुई ज्ञात होती है।

अतः हम स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि उपर्युक्त आठ वार्ताएँ जिनकी संख्याएँ ५, ६, ७, १०, ११, ६०, ८६ और ६१ हैं तथा जिनके वैष्णवों के नाम क्रमशः तुलसा, पार्वती, रघुनाथ, रुक्मिनी, गोपालदास, भगवानदास, भावजी पटेल तथा उनकी स्त्री बिरजो और कृष्णदास हैं, बाद में ग्रन्थ में किसी प्रकार आगई हैं। यदि ६२ सेवकों में से यदि आठ निकाल दिये जायँ तो शेष ८४ वैष्णव रह जाते हैं। आचार्यजी महाप्रभु से उन्हीं चौरासी वैष्णवों ने दीक्षा ली होगी और कदाचित् इसीलिये उस ग्रन्थ का नाम 'आचार्यजी महाप्रभु के चौरासी वैष्णवन की वार्ता' रखा गया होगा।

कहानी-अङ्क मिला, जिसके लिए प्रत्याशा थी। सुधी समीक्षकों द्वारा विभिन्न दृष्टिकोण से लिखे गये सुरुचिपूर्ण निबन्धों की एकत्र झाँकी मिली। साहित्य-सागर में अवगाहन कर 'साहित्य-सन्देश' ने जो अक्षय-निधि प्रस्तुत की है उससे हिन्दी-जगत का मस्तक बहुत ऊँचा हो गया है। हार्दिक बधाई!

—प्रो० रामचन्द्र प्रसाद सिंह एम० ए०, सेण्ट कोलम्बा कालेज, हजारीबाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौरासी वैष्णवन की वार्ता में आचार्यजी के शिष्य

श्री लालताप्रसाद दुबे एम० ए०, रिसर्च स्कालर

जितनी ही विकट समस्या दोनों वार्ताओं के लेखकों और आख्यानों के विषय में है, उससे भी अधिक उलझन आचार्यजी के शिष्यों के विषय की है। "श्री आचार्यजी महाप्रभुन के सेवक चौरासी वैष्णवन की वार्ता" से तो यही प्रतीत होता है कि वार्ता के सभी वैष्णव श्री आचार्यजी के शिष्य थे, परन्तु इस ग्रन्थ में बावने शिष्यों के नाम आते हैं। यदि उनके बावने शिष्यों के विषय में लिखा गया होता तो यह कदाचित् चौरासी वैष्णवन की वार्ता न होकर आचार्यजी महाप्रभुन के बावने वैष्णवन की वार्ता हुई होती। अतः ज्ञात होता है कि कुछ वैष्णवन की वार्ताएँ कदाचित् बाद में मिला दी गई हैं। कुविलानुसार इन वैष्णवों को हम तीन भागों में रख सकते हैं।

क—इस ग्रन्थ में केवल छिहत्तर सेवकों के नाम ऐसे मिलते हैं जो आचार्यजी द्वारा दीक्षित हुये थे, अथवा उनके सेवक थे इसका स्पष्ट उल्लेख चौरासी वार्ता के भीतर मिलता है। इन सेवकों की वार्ताओं में कुछ ही प्रसङ्ग ऐसे हैं जो श्री गुसाँईं जी से सम्बद्ध है, इनकी वार्ता संख्याएँ निम्नलिखित हैं :—

१, २, ३, ४, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १६, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २८, २९, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५८, ५९, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८७, ८८, ८९, ९०, ९२

ख—लगभग दस सेवक ऐसे हैं जिनकी वार्ताएँ केवल श्री गुसाँईं जी से सम्बद्ध हैं, अथवा उनके साथ की हैं। आचार्यजी से सम्बन्धित उसमें प्रसङ्ग नहीं आये हैं। अन्त में केवल आचार्यजी के कृपापात्र अथवा भगवदीय लिखा हुआ है। उनकी वार्ता संख्याएँ १०, १७, २७, ३०, ४३, ४४, ५७, ६० ६१ और ७८ हैं। इनमें से वार्ता १० तथा ६० के वैष्णव आचार्यजी से सम्बन्धित नहीं ज्ञात होते हैं।

ग—शेष छः सेवकों की वार्ताएँ गुसाँईंजी से ही सम्बद्ध हैं। ये वार्ताएँ या तो किसी परिवार की होने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से सम्मिलित की गई प्रतीत होती हैं। इसमें आचार्यजी से सम्बन्ध रखने वाले न तो प्रसङ्ग ही हैं, न सम्बन्धित वैष्णव उनके कृपापात्र अथवा भगवदीय उल्लिखित हैं। इनकी वार्ता संख्याएँ ५, ६, ७, ११, ८६, ९१ हैं।

भाग (ख) की वार्ताएँ १० और ६० जो कदाचित् सम्बन्धित वैष्णवों के, केवल महाप्रभुन के कृपा पात्र होने के कारण उसमें रख दी गई हैं, और (ग) की वार्ताएँ ५, ६, ७, ११, ८६, ९१ इन आठ वार्ताओं के वैष्णव आचार्यजी के शिष्य नहीं ज्ञात होते, अतः इनकी वार्ताओं पर क्रमशः नीचे विचार किया जायगा।

वार्ता सं० ५ 'पद्मनाभदास की बेटी तुलसा'—पद्मनाभ चौरासी वार्ता के चौथे वैष्णव हैं। इन्होंने आचार्यजी बल्लभाचार्य से दीक्षा ली थी। "सो पद्मनाभदास श्री आचार्य महाप्रभून के मुख ते भगवत् प्रसंग सुन्यो तबते जानों जो ए साक्षात् पूरन पुरुषोत्तम हैं, सो पूरन पुरुषोत्तम जानि के पद्मनाभदास श्री आचार्यजी महाप्रभून की शरण आये नाम पायो पाछें मन्त्र दीक्षा करवायो" पद्मनाभदास के विषय में सात प्रसंग वार्ता के अन्दर आये हैं। उनमें प्रसंग ४ और ५ में तुलसा विषयक वार्ताएँ हैं। इन दोनों प्रसङ्गों में इसका कोई भी उल्लेख नहीं है कि तुलसा ने किससे दीक्षा ली थी।

वार्ता ५ में तुलसा के विषय में दो प्रसङ्ग आये हैं, इन दोनों प्रसङ्गों में आचार्यजी से संबद्ध कोई भी घटना नहीं है, दूसरा प्रसङ्ग केवल श्री गुसाँईं जी से संबद्ध है। घटना इस प्रकार है:—श्री गुसाँईं जी 'तुलसा' के घर पधारते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसा भली भाँति सेवा करती हैं, और श्री गुसाँईजी पद्मनाभदास की संतति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। वार्ता की अन्तिम पंक्ति में भी गुसाँईजी से सम्बन्धित बातें हैं। "तब श्री गुसाँईजी बहुत प्रसन्न भये वह तुलसा ऐसी भगवदीय हुती ताते श्री ठाकुरजी आंते सहि न सके ताते वा तुलसा के ऊपर श्री गुसाँईजी बहुत प्रसन्न रहते ताते इनकी वार्ता कहाँ ताईं लिखिये" प्रसङ्ग॥२॥ वैष्णव ॥५॥

अधिकतर चौरासो वार्ता के भीतर यह देखा गया है कि वार्ताएँ चाहे श्री गुसाँईजी से सम्बद्ध हों, फिर भी आचार्यजी के कृपापात्र अथवा उनके भगवदीय अवश्य लिखा रहता है, परन्तु इस वार्ता में ये दोनों बातें भी नहीं हैं। यह सम्भव हो सकता है कि पद्मनाभदास के परिवार की होने के कारण ही तुलसा की भी वार्ता चौरासी वैष्णवन की वार्ता में सम्मिलत करली गई है।

वार्ता सं० ६ पद्मनाभदास को बेटा ताकी बहू पार्वती—पार्वती की घटना इस प्रकार है। उसके हाथ पाँव किसी विशेष रोग के कारण सफेद हो जाते हैं। श्री गुसाँईजी की आज्ञानुसार पार्वती सेवा में संलग्न रही और "बहुर गुसाँईजी को पत्र लिख्यौ भेंट पठाई और कह्यौ जो महाराज के प्रताप ते नाकी भई हों, सो पत्र बाँच के श्री गुसाँईजी बहुत प्रसन्न भये सो वह पार्वती बड़ी कृपापात्र भगवदीय हुती प्रभून के परमान चलती ताते श्री गुसाँईजी इनके ऊपर सदा प्रसन्न रहते। यह वार्ता पद्मनाभदास कुटुम्ब की ताते पद्मनाभदासजी बड़े भगवदीय हैं ताते इनकी वार्ता कहाँ ताईं लिखिये॥ प्रसङ्ग॥१॥ वैष्णव॥६॥

हो सकता है कि पार्वती ने श्री गुसाँईजी से दीक्षा ली हो, फिर भी इसलिए उसकी वार्ता इस ग्रन्थ में आई हो कि उसके श्वसुर 'पद्मनाभदासजी' महाप्रभून के सेवक थे। इस वार्ता में आचार्यजी का कहीं नाम भी नहीं आया है, केवल एक स्थल पर 'प्रभू के परमान चलती' लिखा हुआ मिलता है, परन्तु यह तो प्रत्येक पुष्टिमार्गीय के विषय में कहा जा सकता है।

वार्ता सं० ७ 'पद्मनाभदास कौ नाती पार्वती कौ बेटा रघुनाथदास'—इनकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है। रघुनाथदासजी बनारस में रह कर शास्त्रों का अध्ययन कर, गोकुल आते हैं। गोकुल में श्री गुसाँईजी द्वारा कही गई कथा को सुनते हैं, परन्तु समझ में कुछ भी नहीं आता है। 'परमानन्द सौनी' की प्रार्थना पर "श्री गुसाँईजी ने रघुनाथदास को ग्रन्थ दोय-चार पढ़ाय और मार्ग की प्रनालिका कही पाछें रघुनाथदास समझन लाग्यौ बड़ौ पण्डित भयौ सो कहो जो हूँ तो नियारो होयगौ श्री ठाकुरजी की सेवा करूँगो तब माता ने कही जो भलेई तू सेवा करि पाछें न्यारौ भयौ।"

इस वार्ता में भी रघुनाथदास के विषय में यह कहीं नहीं आया है कि उन्होंने आचार्यजी से दीक्षा ली थी। उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि श्री गुसाँईजी ने रघुनाथदास को ग्रन्थों का अध्ययन करवाया और साथ ही साथ मार्ग की प्रणालिका भी बतलाई थी। अतः यह माना जा सकता है कि इन्होंने श्री गुसाँईजी से दीक्षा ली होगी। फिर भी इनकी वार्ता इस ग्रन्थ में कदाचित् इसलिए रखली गई है कि ये महाप्रभून के सेवक 'पद्मनाभदास के पौत्र थे।

वार्ता सं० १० 'पुरुषोत्तमदास की बेटी रुक्मनी'—पुरुषोत्तमदास जी वार्ता के नवें वैष्णव हैं। इन्होंने आचार्यजी से दीक्षा ली थी, प्रारम्भ की कुछ पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है "सो सेठ पुरुषोत्तमदास कों श्री आचार्यजी महाप्रभून की आज्ञा हुती जो तुम पास कोई नाम लेन आवै ताको तुम नाम दीजियो तातें सेठ पुरुषोत्तमदास नाम देते और अपने घर श्री मदनमोहन जी की सेवा करते।"

आचार्यजी ने दीक्षा दी होगी उसके पश्चात् दूसरे व्यक्तियों को दीक्षा देने की आज्ञा प्रदान की होगी। पुरुषोत्तमदास से सम्बद्ध पाँच प्रसङ्ग इस वार्ता के भीतर आये हैं, किसी में रुक्मनी के विषय में कुछ भी नहीं मिलता है। रुक्मनी विषयक तीन प्रसङ्ग वार्ता संख्या १० में आये हैं, और तीनों में आचार्यजी से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी घटना नहीं है। केवल अन्तिम पंक्ति में "श्री आचार्यजी महाप्रभून की ऐसी कृपा-पात्र भगवदीय ही ताते इनकी वार्ता अनिर्वचनीय है सो कहा ताई लिखिये।" प्रसङ्ग॥३॥ वैष्णव॥१०॥ केवल कृपापात्र लिख कर उन्हें आचार्यजी के सेवकों की गणना में रखने के लिए ऐसा किया गया प्रतीत होता है। वास्तव में पुरुषोत्तमदासजी ने आचार्यजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से दीक्षा ली थी, और रुक्मनी उनकी कन्या थी। हो सकता है कि महाप्रभून के एक सेवक के परिवार की हो के कारण ही इन्हें भी इस ग्रन्थ में स्थान मिला हो।

वार्ता सं० ११ 'पुरुषोत्तम कौ बेटा गोपालदास'—इस वार्ता में कहा गया है कि ये आचार्यजी के ग्रन्थ "श्री सुबोधिनीजी, श्री भागवत् निबन्ध और रहस्य-ग्रन्थ का पाठ करते थे। आचार्यजी से संबद्ध कोई भी प्रसङ्ग वार्ता के अन्दर नहीं आया है। श्री गुसाँईजी के सम्बन्ध में अवश्य यह कहा गया है कि इनके देहावसान पर गुसाँईजी ने सराहना की। इनकी वार्ता भी इस ग्रन्थ में कदाचित् इसीलिये आई है कि ये पुरुषोत्तमदास के बेटे थे, जो महाप्रभून के सेवक थे। इस बात की पुष्टि वार्ता की समाप्ति के इस वाक्य से भी होती है सो यह वार्ता सब सेठ पुरुषोत्तमदास के परिवार की भई ताते इनकी वार्ता कौ पार नाहीं सो अब कहाँ ताँई लिखिये।" प्रसङ्ग ॥१॥ वैष्णव ॥१॥

वार्ता सं० ६० 'वैष्णव भगवानदास श्रीनाथजी के भीतरिया'—वार्ता के अनुसार इन्हें श्री आचार्यजी ने श्रीनाथजी की सेवा प्रदान की थी। इस वार्ता के प्रथम प्रसङ्ग की अन्तिम पंक्ति में स्पष्ट लिखा है कि "भगवानदास श्री आचार्यजी महाप्रभून के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं सो इनकी वार्ता अब कहाँ ताईं लिखिये।" प्रसङ्ग ॥१॥ वैष्णव ॥६०॥ परन्तु उसी वार्ता में भगवानदास ने श्री गुसाईंजी के लिये 'श्री विट्ठलेश चरण कमल' कहा है। आचार्यजी के विषय में इस प्रकार का कोई भी वर्णन नहीं पाया जाता है। विचारणीय बात यह है कि सूरदासजी ने गुसाँईं विट्ठलनाथजी की विद्यमानता में, अपने अन्तिम समय में, आचार्यजी के विषय में यह पद गाया—

"भरोसौ दृढ़ इन चरणन केरौ,
श्री बल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माझि अँधेरौ।"

यदि भगवानदासजी श्रीबल्लभ के शिष्य होते तो वे भी उनके विषय में कहते।

दूसरी बात—जो विशेष महत्व की है, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में वैष्णव १७२ 'श्री गुसांईजी के सेवक भगवानदास भीतरिया' का नाम आया है। इन्होंने श्री गुसाँईजी से दीक्षा ली थी—उसमें स्पष्ट कहा गया है कि "गुजरात ते आयकें श्री गोकुल में श्री गुसाईंजी के सेवक भये और श्री गुसाँईजी ने कृपा करके श्रीनाथजी की सेवा में राखे तब भगवानदास श्रीनाथजी की सेवा नीकी भाँति सों करन लगे" अतः यह असम्भव प्रतीत होता है कि भगवानदास एक बार श्री आचार्यजी महाप्रभून के शिष्य हुये हों और दूसरी बार श्रीगुसाँईजी के?

वार्ता ८६ 'मावजी पटैल तथा इनकी स्त्री बिरजौ'—इस वार्ता में तीन प्रसङ्ग आये हैं, तीनों प्रसङ्ग श्री गुसाँईजी से संबद्ध हैं, और आचार्यजी महाप्रभून का कहीं नाम भी नहीं है। पहले प्रसङ्ग की कुछ पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने श्री गुसाँईजी से दीक्षा ग्रहण की होगी। "सो वे मावजी पटैल तथा इनकी स्त्री बिरजौ बरस दिन में दोय बेर श्री गोकुल आवते श्रीनाथजी के दर्शन को तथा श्री गुसाँईजी के दर्शन को आवते सो श्री गुसाँईजी इनके ऊपर बहुत प्रसन्न रहते, बहुत कृपा करते पाछें उनको कृष्णभट्ट को संग भयौ तब बिरजौ ने कृष्णभट्ट सों कह्यौ जो तुम हमारे माथे सेवा पधरावो तो भलौ है तब कृष्णभट्ट ने महाराज श्री गुसाँईजी से बीनती करिकें कह्यौ और उनके माथें सेवा पधराई सो गुसाँईजी ने श्री ठाकुरजी को पाट बैठारयौ सो स्नेह पूर्वक सेवा करते सामग्री भाँति सों करते × × × × ॥ प्रसङ्ग ॥ १ ॥

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि दोनों स्त्री-पुरुष प्रति वर्ष दो बार गोकुल में श्रीनाथजी तथा श्री गुसाँईजी के दर्शन के लिये आते थे। अन्त में कृष्णभट्ट की प्रार्थना पर श्री गुसाँईजी ने "उनके माथे सेवा पधराई" अतः उन्होंने दीक्षा भी दी होगी।

दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि बहुधा वार्ताएँ जो श्री गुसाँईजी से संबद्ध हैं, उन वार्ताओं की अन्तिम पंक्ति में भी श्री आचार्यजी महाप्रभून के कृपापात्र अथवा भगवदीय अवश्य लिखा रहता है, किन्तु इस वार्ता की अन्तिम पंक्ति देखिये:—"सो वह बिरजौ ऐसी भगवदीय ही सो पद्मावल के संगते तातें संग करनौ भगवदीय कौ करनौ सो इनकी वार्ता को पार नाहीं ताते अब कहाँ ताईं लिखिये" प्रसङ्ग ॥३॥ वैष्णव ॥८६॥ इस सम्पूर्ण वार्ता में आचार्यजी का नाम भी नहीं आया है। हो सकता है कि इन लोगों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षा तो श्री गुसाँईजी से ली हो और इनकी वार्ता इस ग्रंथ में बाद में मिला दी गई हो।

वार्ता सं० ९१ 'कृष्णदास'—चौरासी वार्ता में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि इनको श्री गुसाँईजी ने गायों की सेवा दी थी। इन्होंने किससे दीक्षा ली थी अथवा ये किसके सेवक थे इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। प्रत्युत इनकी वार्ता के अन्त में केवल "सो वे कुम्भनदासजी श्री आचार्यजी महाप्रभून के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हैं ताते इनकी वार्ता को पार नाहीं तातें इनकी वार्ता कहाँ ताईं लिखिये" ॥१०१॥ वैष्णव ॥९१॥ यही मिलता है।

कुम्भनदासजी वार्ता के ९० वें वैष्णव हैं। इन्होंने आचार्यजी से दीक्षा ली थी "ब्रज में श्री आचार्यजी महाप्रभून के सेवक बहुत भये और कुम्भनदासजी श्री आचार्य जी महाप्रभून की शरण आये।" परन्तु उनके पुत्र कृष्णदास के विषय में उस वार्ता में भी कोई उल्लेख योग्य बात नहीं आई है।

इन्हीं कृष्णदास के विषय में दो० वा० वै० की वार्ता में "श्री गुसाँईजी के सेवक कुम्भनदास के बेटा कृष्णदास" शीर्षक आया है। ये उस वार्ता के १६४ वें वैष्णव हैं। कृष्णदास विषयक वार्तायें दोनों वार्ताओं (चौ० और दो० वा०) में लगभग एक ही हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि चौरासी वैष्णवन की वार्ता में वार्ता ९० 'कुम्भनदास गोखा' की है और ९१ वीं कृष्णदास के विषय की। कृष्णदास के साथ कुम्भनदास की कुछ घटनायें आई हैं। दो० वा० में केवल कृष्णदास का नाम है, कृष्णदास की वार्ता जो चौरासी में आई है, उसमें आचार्यजी का कोई भी उल्लेख नहीं है। अतः यह असम्भव सा प्रतीत होता है कि पिता और पुत्र दोनों ने एक ही कृष्णदास को दीक्षा दी हो। यदि केवल कृपा-पात्र बनाने से ही कृष्णदास आचार्यजी के सेवक नहीं ठहरते हैं तो इसी प्रकार उपर्युक्त भाग (ख) के समस्त वैष्णव श्री गुसाँईं के सेवक हो सकते हैं।

कृष्णदास के विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि कुम्भनदासजी ने आचार्यजी महाप्रभून से दीक्षा ली थी। यद्यपि कृष्णदास को श्री गुसाँईजी ने दीक्षा दी थी, और केवल इसी कारण कृष्णदास की वार्ता इस ग्रन्थ में आई है कि इनके पिता कुम्भनदास महाप्रभून के सेवक थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त भाग (ग) के आठ वैष्णवों में जिनकी वार्ता संख्यायें ५, ६ और ७ हैं, एक पुत्री, दूसरी बहू और तीसरा पौत्र है और ये पद्मनाभदास के परिवार के हैं। वार्ता १० और ११ के वैष्णव रुक्मिणी और गोपालदास दोनों पुरुषोत्तमदास के परिवार के हैं। एक पुत्री है तो दूसरा पुत्र। पद्मनाभदास और पुरुषोत्तमदास ने आचार्यजी से दीक्षा ग्रहण की थी तथा ये लोग उन्हीं के शिष्य थे। उन्हीं के परिवार के होने के कारण वार्ता संख्यायें ५, ६, ७, १० और ११ भी उन्हीं के साथ ग्रन्थ में आगई हैं, यद्यपि इन लोगों ने श्री गुसाँईजी से दीक्षा ग्रहण की थी।

इसी प्रकार वार्ता ९१ के वैष्णव कृष्णदासजी भी कुम्भनदासजी के पुत्र थे। कुम्भनदासजी ने आचार्यजी से दीक्षा ग्रहण की थी। अतः पुत्र होने के कारण कृष्णदास की वार्ता चौरासी वार्ता में आ गई। इन्होंने श्री गुसाँईजी से दीक्षा ग्रहण की थी, जिसकी पुष्टि दो० बा० वार्ता से हो जाती है। अतः उपर्युक्त वार्ता ५, ६, ७, १० और ११ के वैष्णव परिवार के होने के कारण ग्रन्थ में आगये हैं।

शेष वार्ता ६० और ८६ के वैष्णव क्रमशः भगवानदास और भावजी पटेल तथा उनकी स्त्री बिरजो रह जाती हैं। भगवानदास ने निश्चयपूर्वक ही श्रीगुसाँईजी से दीक्षा ली होगी, क्योंकि 'विट्ठलेश चरण कमल' चौ० बा० में लिखा हुआ है। पुष्टि-मार्गीय वैष्णव गुरु ही में ईश्वर की भावना करते हैं। साथ ही दो० बा० वार्ता १७२ में वही भगवानदास श्री गुसाँई के शिष्य लिखे हुये हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या जिनको एक बार श्री आचार्यजी ने दीक्षा दी होगी, उन्हीं को श्री गोसाँईजी ने भी। कम से कम अभी तक तो वैष्णव भक्तों में ऐसा नहीं देखा गया है कि एक गुरु का शिष्य उन्हीं के पुत्र से भी दीक्षा ले। अतः भगवानदास की वार्ता चौरासी वार्ता में भ्रम-वश ही आई ज्ञात होती है।

वार्ता ८६ में भावजी पटेल तथा उनकी स्त्री बिरजो का नाम आता है। इस सम्पूर्ण वार्ता में आचार्यजी महा-

(शेष पृष्ठ ४५८ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्तजी के आलोचक

श्री त्रिलोचन पाण्डेय

आज से लगभग पचीस-तीस वर्ष पूर्व हिन्दी-साहित्य की आलोचना करते समय लोग यह अवश्य कहते थे कि खड़ी बोली में माधुर्य नहीं है, करकराहट है, शब्दों का भी अभाव है। दूर होने की सम्भावना पर भी बहुत कुछ संदेह ही था। और तत्कालीन साहित्य तो इतिवृत्तात्मक, उपदेशात्मक, शुष्क—बहुत कुछ था। लेकिन 'पल्लव' के प्रकाशन के उपरान्त लोगों ने देखा कि काव्य के नियम, भाषा, अभिव्यञ्जना-पद्धति, छन्द आदि सभी क्षेत्रों में एक युगान्तर उपस्थित करने वाली पुस्तक सामने आई है। तब आगे-पीछे तीन कवियों का तत्सम्बन्धी साहित्य निर्मित हुआ जिसे एक वाद विशेष के अन्तर्गत लिया गया है। कवियों की इस त्रयी में प्रसाद अब नहीं रहे, निराला ने कुछ नहीं लिखने का निश्चय-सा कर लिया है। केवल पन्तजी ही एक मात्र प्रतिनिधि रह गए हैं और अपने जीवन व साहित्य दोनों से समय का साथ दे रहे हैं। उनकी अब तक की प्रकाशित पुस्तकें १६-१७ हैं जिनका साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टियों से मूल्य है।

स्वाभाविक था उनकी रचनाओं का मूल्याङ्कन हो। बढ़ा कर या घटा कर—यह बात अलग है—पर हुआ। आलोचक उनके अनेक हैं। स्वतन्त्र पुस्तकें भी निकली हैं, समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी। आचार्य शुक्ल, डा० श्यामसुन्दरदास आदि ने साहित्य के इतिहास में भी कुछ विशेषताएँ बतलाई हैं। उस समय शुक्लजी को डा० नगेन्द्र की पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पन्त' ही कुछ ठिकाने की लगी थी।

१—सुमित्रानन्दन पन्त, डा० नगेन्द्र—नगेन्द्रजी ने आरम्भ में छायावाद की मूल प्रवृत्तियों का निर्देश किया है। स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह को ही वे इसका आधार मानते हैं। इस विद्रोह के तीन अर्थ हैं (१) 'उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह' (२) 'नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातन्त्र्य का विद्रोह' (३) 'काव्य के बन्धनों के प्रति कल्पना और टेकनीक का विद्रोह।' आगे चल कर वे लिखते हैं "यदि वास्तव में देखा जाय तो आधुनिक छायावाद का रहस्यवाद एक अङ्ग तो है, पर्याय नहीं। इसके अन्तर्गत और भी बहुत सी विचारधाराएँ काम कर रही हैं जिनका आध्यात्मिकता से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं।" उसकी मुख्य प्रवृत्तियां स्पष्ट करने के उपरान्त उन्होंने 'चित्ररेखा' में पन्तजी के प्रारम्भिक जीवन पर हल्का सा प्रकाश डाला है। भाव-जगत व विचारधारा का विवेचन करते हुए उनका कहना है—"पन्तजी सुन्दर के ही कवि हैं—यद्यपि उनका सुन्दर शिव और सत्य से शून्य नहीं है। सौन्दर्य—प्राकृतिक, मानसिक और आत्मिक ही इनकी कविता का अचल विषय है।" कला के अन्तर्गत उनकी चित्रण-शक्ति, चित्रमय विशेषण, शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान, वर्ण-परिज्ञान, ध्वनि-चित्रण, अप्रस्तुत योजना छन्द का विचार है। वास्तव में पन्तजी की देन है भी इसी क्षेत्र में, जो हिन्दी में पहली बार आई है।

'भाषा के अन्तर्गत' पन्तजी के शब्द-चयन, प्रयोग, पद-योजना, व्याकरण का विचार किया है। विशेषता यह है कि कवि के निजी दृष्टिकोण का ध्यान भी आलोचक ने रखा है। वाह्य प्रभाव शीर्षक सम्बन्धी लेख में संस्कृत कवियों, रवीन्द्र, शेली, कीट्स, टेनीसन के कुछ उद्धरणों द्वारा वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कवि ने विभिन्न साहित्यों का चर्वण किया है। उसी के संस्कार-स्वरूप कुछ प्रतिध्वनियाँ कविता में भी मिल सकती हैं। यह तो पन्तजी ने भी माना है—उन पर अनेक प्रभाव हैं। तब डा० साहब ने 'युगान्त' तक की रचनाओं का संक्षेप में 'अध्ययन' किया है।

'उत्तरार्द्ध' में वर्तमान कविता-प्रगति पर विचार करते हुए 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' पर प्रकाश डाला है। नवीन जीवन दर्शन (स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण) पर भी अन्त में एक लेख लिखा है। इस प्रकार पुस्तक को उपादेय बनाने का प्रयत्न किया गया है। गुणों का प्रकाशन अधिक है और सहृदयता-पूर्वक है। पन्तजी ने 'दो शब्द' में लिखा भी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अपने स्वच्छ हृदय के माधुर्य से मेरे काव्य को और भी सुन्दर बना कर वह पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सके हैं—इसमें मुझे सन्देह नहीं।" पन्तजी पर यह सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक है।

२—सुमित्रानन्दन पंत—विश्वम्भर 'मानव'—दूसरी पुस्तक है श्री विश्वम्भर 'मानव' की 'सुमित्रानन्दन पन्त'। ४७४ पृष्ठ हैं (प्रथम संस्करण) १७ अध्यायों में पन्तजी के व्यक्तित्व, उनके युग तथा काव्य पर विचार किया है। पहले २ पृष्ठों में तो उन्होंने पन्तजी से अपनी एक भेंट में ही उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। तब १४ पुस्तकों के प्रकाशनों के तिथि सहित नाम दे दिये हैं। पृष्ठभूमि पर विस्तृत प्रभाव डालते हुए पन्तजी की तत्सम्बन्धी रचनाओं की आलोचना की है। 'छायावाद', 'रहस्यवाद' शीर्षक लेखों में विभिन्न आलोचकों के विचार एकत्र करने का उनका प्रयत्न अवश्य सराहनीय है। उनके अपने विचार से हिन्दी में रहस्यवाद का प्रचलन दो बार जोर पकड़ता है। भक्तिकाल के पूर्व (१) नाथपंथी रहस्यभावना (२) सिद्ध रहस्यभावना (३) सन्तों की रहस्य भावना (४) सूफियों की रहस्यभावना। यह वर्गीकरण उनका ही है। आज के रहस्यवाद के अनेक विभाग किए हैं। और मैथिलीशरण गुप्तजी भी उसमें भक्तिपरक रहस्यवादी होगए हैं। छायावाद के सम्बन्ध में वे लिखते हैं "सन् १९१५ से आधुनिक हिन्दी-काव्य फिर एक नई दिशा की ओर मुड़ता है और १९३५ तक एक धारा में बँधकर चलता है। इस काल में भारतेन्दु अथवा महावीरप्रसाद द्विवेदी की भाँति कोई ऐसा व्यक्तित्व नहीं है जो सब पर छा जाय और अन्य व्यक्ति उससे प्रेरणा ग्रहण करें। इसी से इस काल का नामकरण किसी व्यक्ति के नाम पर न होकर एक प्रमुख प्रवृत्ति के नाम पर हुआ है। बीस वर्ष के इस काल को 'छायावाद काल' कहते हैं।" १९३६ के उपरान्त उन्होंने प्रगतिवाद काल माना है। नवीन परिभाषा दी है। "प्रकृति में चेतना के आरोप को छायावाद कहते हैं। यह आरोप आलङ्कारिक रूप में न हो, वास्तविक ढङ्ग का हो।" स्मरणीय बातें हैं—

१—"छायावाद का सम्बन्ध केवल प्रकृति के जीवन से है।"

२—"इसमें प्रकृति चेतन मानी जाती है।"

३—"प्रकृति में वे सारी भावनाएँ प्रदर्शित की जाती हैं जो नर-नारी के जीवन में किसी भी प्रकार उत्पन्न हो सकती हैं।"

पन्तजी के प्रगतिवाद पर भी दृष्टिपात किया है। उसके चरण माने हैं—ईश्वर, प्रणय, प्रकृति और जीवन, प्रकृतिवाद, रोमांसवाद और प्रगतिवाद। तब पन्तजी के प्रकृति-वर्णन, प्रेम भावना, कला-सम्बन्धी विवेचन के उपरान्त लेखक ने उनका मूल्यांकन किया है। पन्तजी को हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवियों तुलसी, सूर की कोटि में माना है। उनसे महाकाव्य रचना की आशा भी की है जिसका आधार आलोचक ने कुछ लम्बी तथा घटना-प्रधान रचनाओं को माना है।

मानना पड़ता है कि पुस्तक निर्धारित विषय से कहीं हट कर चली है। आलोचक अपने दृष्टिकोण में स्वतन्त्र अवश्य होता है पर दूसरों पर व्यंग्य करना उसकी कला हो तो हो! प्रगतिवादी लेखकों पर उन्होंने आक्षेप किये हैं, चुन-चुन कर उद्धरण दिए हैं। उनका कहना है कि अगर साहित्य का स्वाभाविक विकास रुकता है तो बहुत अंशों में डा० रामविलास उसके भागी होंगे। क्योंकि "उन्होंने बहुत से अच्छे साहित्यिकों को, जिनमें भविष्य के कवि, उपन्यासकार, नाटककार और आलोचक सम्मिलित थे, अपने लेखों के द्वारा विरोधी बनाया है।" उनके लेखों में अधिकांश दूसरों के उद्धरण हैं। चर्चा भी असंबद्ध है। पन्तजी की प्रशंसा सर्वत्र है, त्रुटियाँ उन्हें दिखाई ही नहीं दीं! पन्तजी को पिछली अर्द्ध-शताब्दी का प्रतिनिधि मानना तो उतना आपत्ति-जनक नहीं पर जब वे लिखते हैं—"अपने काव्य के राजहंस की मुक्त उड़ान के लिए प्रगति और अध्यात्म के दोनों पक्षों की रक्षा उन्होंने की।" "यदि मैं एक वाक्य में पन्तजी का वर्णन करना चाहूँ तो कहूँगा कि जो व्यक्ति, शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से पूर्ण सुन्दर है उसका नाम पन्त है।" इस आलोचना के लिए क्या कहा जाय? अन्यत्र भी उन्होंने महादेवी आदि की आलोचना करते समय ऐसी ही बातें लिखी हैं।

डा० देवराज ने अपनी पुस्तक 'छायावाद का पतन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पन्त-काव्य पर यथा-स्थान विचार किया है। उनकी दृष्टि से 'पल्लव' का 'प्रवेश' स्थूल है कविता के अन्तरङ्ग पर दृष्टि नहीं डाली है। पन्त में कहीं गौण चित्रों में बहक जाने की प्रवृत्ति है। विचारात्मक-रागात्मक असामञ्जस्य भी मिलता है। कल्पना का अतिरेक भी सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। पन्त को वे सर्वोत्कृष्ट छायावादी कवि मानते हैं। विवेचन प्रौढ़ है और पुस्तक एक निश्चित दृष्टिकोण उपस्थित करती है।

३—'पन्त का काव्य और उनका युग'—यशदेव—एक पुस्तक और है श्री यशदेवजी की 'पन्त का काव्य और युग'। युग का अध्ययन अधिक है, उसी की पृष्ठभूमि में पन्त-काव्य का विवेचन हुआ है। आरम्भ में लेखक ने भाव, विचार, काव्य आदि की परिभाषा पर विचार किया है। अपने लक्षण निर्धारित किए हैं। छायावाद की पृष्ठभूमि में उन्होंने तत्कालीन प्रवृत्तियों के साथ-साथ पाश्चात्य प्रभाव से उत्पन्न विचारधाराओं का उल्लेख किया है। उनके विचार से छायावाद को स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह कहना उपहासास्पद है। वह तो "हमारे मध्यवर्ग की पराजय की स्वीकृति तथा सामाजिक विशृङ्खलता का परिणाम था जिसने व्यक्ति की आकांक्षाओं की व्याप्ति तो दी किन्तु तृप्ति के साधन नहीं।" आज की आलोचना वे बहुत उच्च नहीं मानते।

पन्तजी की 'वीणा' से लेकर 'युगान्तर' तक की रचनाओं पर उन्हें ने विहङ्गम दृष्टि डाली है। अपना निर्णय दे दिया है 'मेरे विचार में उनके काव्य में काफी निर्जीवता तथा पीलापन है—उसी अनुपात में जितनी अनुभूति की कमी है।" पुस्तक के विषयों का स्थूल विभाजन हो सकता है (१) आरम्भ में युग दर्शन 'स्थापना' (२) छायावाद की पृष्ठभूमि के साथ तत्सम्बन्धी रचनाओं की आलोचना (३) प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि देते हुए पन्तजी की प्रगतिशील कही जाने वाली रचनाओं का विवेचन (४) नूतन रहस्यवाद का विश्लेषण करते हुए 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि' 'उत्तरा' 'युगान्तर' की परीक्षा। लेखक सर्वत्र निरपेक्ष रहा है और सोदाहरण असङ्गति, अनुभूति-शून्यता, व्यर्थ के शब्द विधान आदि पर उन्होंने प्रकाश डाला है। पन्तजी की परवर्ती रचनाओं में अस्पष्टता भी बढ़ गई है, दोष भी। काव्यत्व भी कम हो चला है। और जो संस्कृत आदि से अनुवाद हैं मूल से विकृत ही हुए हैं। अब पन्तजी 'इन्द्रधनुष' की कविता में 'असतो मा सद्गमय' की चर्चा करते हैं। लेखक का मत है "छायावाद ने हमारे काव्य को काफी निर्बल और दुरूह बनाया, अब यदि यह नूतन रहस्यवाद भी कुछ फल-फूल सका तो हमारे काव्य को कुछ दशाब्दियों तक और सत्काव्य से वञ्चित रहना होगा।"

पुस्तक की विशेषता है शास्त्रीय गम्भीर विवेचन का प्रयत्न। लक्षणों पर काव्य को घटित करने की चेष्टा है। पन्तजी के अधिकांश आलोचक उनकी प्रशंसा करके ही रह गये हैं। यही एक पुस्तक अत्यन्त स्पष्ट रूप से उनके काव्य का नीर-क्षीर विवेचन करती है। युग-सम्बन्धी निबंध अत्यन्त गम्भीर अध्ययन के उपरान्त लिखे गये हैं। सर्वत्र दोष ही नहीं है। कल्पना का मूर्त होना लेखक ने पन्तजी का विशेष गुण माना है। अभी तक की प्रकाशित पुस्तकों में इसका आधार व विवेचन अपेक्षाकृत अधिक ठोस है।

४—'सुमित्रानन्दन पन्त'—शचीरानी गुर्टू—पन्त-काव्य पर कुछ निबन्धों का एक संग्रह ग्रन्थ शचीरानी गुर्टू ने प्रकाशित किया है। उनके व्यक्तित्व, प्रकृति-चित्रण, प्रगतिशीलता, आध्यात्मिक आदि विषयों पर वचन, सांकृत्यायन, माचवे आदि के लेख हैं। 'निराला' ने भी बहुत पहले 'पन्त और पल्लव' शीर्षक से १०० पृष्ठों का एक लेख लिखा था जिसमें उनके अनेक आक्षेप व्यक्तिगत हो गए हैं। एक स्थान पर उन्होंने पन्तजी की शिल्प-विषयक योग्यता पर आपत्ति की है। कहीं उन्हें 'सौन्दर्य कला में निपुण' कहा है तो कहीं उनकी कोमलता को 'स्वभाव का स्त्रीत्व।' पन्तजी को वे प्रकृति का सुकुमार कवि मानते हैं।

प्रगतिवादी आलोचकों में डा० रामविलास ने 'मार्क्स', 'युगवाणी' को युग का नेतृत्व करने वाली कृतियाँ माना है। 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि' की आलोचना में उन्होंने प्रवञ्चनामूलक अध्यात्मवाद को स्पष्ट किया है। कहीं-कहीं खींचातानी भी की है। अपनी पुष्टि के लिए भी कहीं आगे-पीछे इस प्रकार पंक्तियाँ रख दी हैं या कहीं का उद्धरण कहीं इस प्रकार रख दिया है कि तात्पर्य ही बदल जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इलाचन्द्र जोशी ने भी प्रशंसा अधिक की है और 'स्वर्णकिरण' इत्यादि को उच्चेतन का विस्फोट कहा है। अपने पक्ष के समर्थन में तो उनकी शैली शक्तिशाली है ही। शान्तिप्रिय द्विवेदीजी को पन्त-काव्य में माधुर्य, भावों की सुकुमारता, अनुभूति की आध्यात्मिकता—सभी गुण मिल जाते हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी भी इसी प्रकार लिखते हैं, बौद्धिकता कम है कल्पना का संसार अधिक चुना है। भाषा, विषय—सब तीनों दृष्टियों से नवीनता है, आदि। उनके विचार से इधर पन्त के दार्शनिक निष्कर्ष बढ़ गया है और कविता बोझिल हो गई है। 'सुधांशु', रामरतन भटनागर की आलोचना भी बहुत कुछ इसी प्रकार की है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने सबसे बड़ी विशेषता उनकी अप्सरा सी कल्पना को माना है। उनकी दृष्टि में "पन्तजी यथार्थ जगत के कवि नहीं। जीवन संघर्ष से उनका कोई प्रयोजन नहीं। संसार की समस्या उनके लिए नहीं। आत्म चिन्तन उनका काम नहीं। वे तो प्रकृति के कवि हैं—कल्पना उनका क्षेत्र है और सौन्दर्य उनका राज्य।" इसी प्रकार पत्र-पत्रिकाओं में भी आलोचकों ने अपने विभिन्न दृष्टिकोण उपस्थित किए हैं। गहराई से उनके काव्य का मूल्याङ्कन प्रत्येक आलोचक बड़ी सहृदयता से करता है।

(पृष्ठ ४७३ का शेषांश)

जानती? नरेश केवल दर्शक ही क्यों? सब को मुग्ध बना कर 'न समझने' वाली उलझन पेश करके कला कर्म का समर्थन नहीं कर सकती। आज उसकी सख्त जरूरत है।

शैली—जैनेन्द्र की कथा-शैली शाब्दिक-चमत्कार (जो अपने आप में काफी ताकतवर चीज है) के सहारे पाठक को अन्त तक अपने साथ बहा ले चलती है। पर बहने के बाद किनारा नहीं मिलता। फिर भी शैली की प्रशंसा करनी ही होगी। इसलिए शैली के सहारे जैनेन्द्र ने व्यक्ति के उस सङ्घर्ष को चित्रित किया है, जो एक से अधिक व्यक्ति भोग चुके हैं, जान चुके हैं। निस्तार पाने के लिए आज भी लोग व्याकुल हैं। इसलिए जहाँ समस्या प्रिय लगती है, वहाँ निदान न मिलने पर शैली के चमत्कार के प्रति एक रोष-सा उत्पन्न होता है।

जरूरत—संक्रान्ति काल की जरूरत होती है, विस्तृत समस्याओं का झुलझाव। अद्वितीय और अनूठे व्यक्तियों का 'जू' नहीं। क्रान्तिकारी व्यक्तित्व सम्पन्न और विशिष्ट रूप में होंगे, इसमें सन्देह नहीं। पर उनका उठाव किसी विना पर आगे बढ़ेगा। केवल कल्पना उसे बल नहीं दे सकती। आज यह हिन्दी की नहीं संसार के अधिकांश भाग की समस्या है, निराशा की प्रताड़ना और उसे तर्क-सङ्गत बनाकर आँख मूदने का प्रयत्न।

क्या जैनेन्द्र सजीव कला के साधक नहीं बन सकेंगे? ऐसे साधक जो अपने से अधिक के लिए प्राण करे, सोचे, और दे।

'कहानी अङ्क' की सामग्री ठोस व अध्ययन करने योग्य है। मेरे विचार से कहानी के बारे में जितनी सामग्री वहाँ संग्रहीत की गई है, उतनी दूसरी जगह मुश्किल से देखने को मिलेगी। अङ्क वास्तव में संग्रहणीय है। परन्तु इस सम्बन्ध में मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ। आजकल कहानी, उपन्यास, एकाङ्की आदि की बाढ़ सी आगई है इस कारण यदि आप पिछले दश या पाँच वर्षों के प्रमुख पठनीय साहित्य की एक स्मृति साहित्य-सन्देश में प्रकाशित करते रहें तो हिन्दी-प्रेमियों को यथेष्ट लाभ मिलेगा। वे अवकचरी वस्तुएँ पढ़ने के बजाय उच्चकोटि की रचनायें पढ़ सकेंगे।

—ज्ञानचन्द्र जैन, जोधपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोश मलीहाबादी के विचार

श्री गङ्गाप्रसाद कमठान

उर्दू के अग्रगण्य प्रगतिशील कवि जोश मलीहाबादी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कहा कवि जोश ने शङ्काओं का समाधान कर राष्ट्र को, साहित्य को एक नया सन्देश दिया। जो प्रश्न उनसे किये गये वे उत्तर सहित निम्नाङ्कित हैं :—

क्या उर्दू दो राष्ट्रों—दो संस्कृतियों की भावनाओं को बल देती रही है?

उर्दू के प्रेमी और उसको समझने वाले जो सदा से बहुतायत में रहे हैं, उन्होंने दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को कभी भी पनपने नहीं दिया क्या पद्य में और क्या गद्य में। जब से मुस्लिम लीगियों ने दो राष्ट्रों के थोथे सिद्धान्त का प्रचार किया तब से उर्दू के कवियों ने जोरदार अलफाजों में इस गन्दी क्रिया के खिलाफ आवाज बुलन्द की। शायरों ने देश सेवा और हिन्दू मुस्लिम एकता पर नज्में लिखीं। यही वहीं उर्दू शायरी के जादू से अँग्रेजी हकूमत की दीवारें तक हिल गई थीं।

क्या वर्ड्सवर्थ, कीट्स और शैली की रचनाओं का उर्दू काव्य पर प्रभाव पड़ा?

उर्दू पर शैली, कीट्स आदि की रचनाओं का प्रभाव पड़ा और खूब पड़ा। लेकिन उर्दू-कवियों को कभी इन्सान की सुन्दरता ने मोहित किया तो कभी प्रकृति की सुन्दरता ने। इससे उनके काव्य में जो एक नई शैली चली उसमें और हिन्दी के छायावाद में कोई विशेष अन्तर नहीं, फिर भी पन्त का छायावाद उर्दू के किसी कवि की रचना से कहीं अधिक गहराई लिए हुए है। किन्तु उर्दू के शायर प्रकृति और इन्सान के प्रेम से प्रभावित हो अपनी शायरी को दो भागों में ठीक रूप से विभाजित नहीं कर सके हैं। उनकी यह मिली-जुली भावना से भरी शायरी 'वाटर टाइट कम्पार्टमेंट' की तरह हो गई है।

क्या उर्दू शायरी Pictorial Art चित्रमय कला और Onomatopocia ध्वनिव्यञ्जक कला से परिपूर्ण है?

उर्दू शायरी का एक युग जो बँगला के रवीन्द्र से प्रभावित है Musical Sound से भरा पूरा है। कहीं-कहीं उर्दू शायरी औसिखियों के हाथों में पड़ और Musical Sound से रँ[illegible] अश्लील युग रीतिराज से भी बढ़ी-चढ़ी हो गई है। उर्दू के नाम पर काला दाग लगा गई है।

क्या आप मार्क्स की विचारधारा को उर्दू में स्थान दे रहे हैं?

मैं मार्क्स की विचारधारा का सौ फीसदी तहेदिल से हामी हूँ। चाहता हूँ देश में एक क्रान्ति लाकर देश में फैली भुखमरी और कपड़े-लत्ते की गरीबी को दूर कर दूँ। वह जोश और जवानी उर्दू शायरी में फिर पैदा हो जो मुल्क की आजादी की जङ्ग के दौर में उसमें था। फिर भी मैं उस लेनिनवादी क्रान्ति का हामी नहीं हूँ जिसमें इन्सान अपनी इन्सानियत को खो, लहू की नदी बहा, जान से हाथ धो बैठे। मैं मार्क्स की बताई मञ्जिल पर पहुँचने का इरादा कर चुका हूँ लेकिन देश की नैया को इस दौर से गुजरने के लिए तेजी से नहीं दौड़ाऊँगा जिससे कोई झटका देश को लग जाये, धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता अपनी मञ्जिले-मक्सूद पर पहुँचूँगा।

क्या आपको विश्वास है कि आप अपनी इस चाल से मञ्जिल तक पहुँच सकेंगे?

मैं आशावादी हूँ। और फिर शायर होने के नाते रोज ब रोज नई दुनियाँ के नक्शे आप खींचता हूँ, साथ ही यह मुझे विश्वास है कि एक दिन मैं अपने इरादे को सही सीधी-साधी तसवीर खींचने में बिलाशक कामयाब हूँगा। हालाँकि मेरे इन मार्क्सवादी विचारों की रिपोर्ट पन्त तक हुई लेकिन मैं अपने इरादे पर कमर कसे रहा।

आज कल सुमित्रानन्दन पन्त मार्क्स से अरविन्द की ओर झुक गये हैं, क्या आप इससे सहमत हैं?

बेशक पन्त आजकल मार्क्स से श्री अरविन्द की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झुक गये हैं, लेकिन वे झुके पिछली एटोमिक लड़ाई के बाद, बङ्गाल के अकाल के बाद। अगर पन्त लड़ाई से पहले अरविन्दवादी होते तो देश का साहित्य दुनियाँ को एक नई रोशनी दिखाता और पन्त आज जिस तख्त पर हैं उससे भी कहीं ज्यादा ऊँचे उठे नजर आते। 'उत्तरा' में पन्त ने जो भी खुआब देखे हैं पर मेरे नजदीक वो कभी असली जामा नहीं पहनेंगे। और वह खुआब खुआब ही बनकर रहेंगे। पन्तजी के स्वप्न 'उत्तरा' को एक नई शक्ल देकर उसे पहेली [illegible] गये हैं। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूल' उनकी वेदान्त पर लिखी किताबें कही जा सकती हैं। इन पुस्तकों में वेदान्त उभरा है—उभरा है।' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में जो पन्त आये हैं वह मार्क्सवादी के रूप में नहीं केवल देश की सही हालत का सच्चा मुताबी नक्शा लिये हुए जिसमें से गरीबी की दबी आवाज चीखकर कुछ कहना चाहती है। इन्सान से कुछ माँगती नहीं बल्कि 'भारत-माता' ग्राम-वासिनी बन अपने पेट को पीठ से लगा हुआ दिखाना चाहती है।

क्या आप पन्त से प्रभावित हैं? जहाँ तक पन्तजी के बड़प्पन का प्रश्न है मैं उन्हें आदर से देखता हूँ। वे मेरे बुजुर्गवार हैं। लेकिन जहाँ तक उनकी शैली और विचारों का सम्बन्ध है मैं उनसे बिलकुल प्रभावित नहीं हूँ। उनके बर्क्स हूँ।

क्या आप भी उदयशङ्कर भट्ट, बच्चन, निराला और पन्त की तरह नये शब्दों का निर्माण कर रहे हैं?

मैं नए अलफाज कोइन कर रहा हूँ साथ ही एक नई शैली और नये छन्द भी उर्दू शायरी की खिदमत में पेश कर रहा हूँ। चाहता हूँ देश में गांधी की हिन्दी पनप सके हिन्दी और उर्दू का चोली-दामन का साथ है। उर्दू वास्तव में दक्षिणी हिंदी के चोले को पहने हुए है। लोग साम्प्रदायिकता के चश्मे को उतार कर देखें तो उर्दू कोई विदेशी नजर नहीं आवेगी, यह अपने देश की भाषा है।

क्या इकबाल पैन इसलामिस्ट के रूप में थे? जैसा कि डाक्टर रामबाबू सक्सैना ने 'उर्दू साहित्य के इतिहास भाग १' में उनके सम्बन्ध में लिखा है।

इकबाल की एक बड़ी गलती यह थी कि उन्होंने शायरी की बुलन्दी से उतर कर उपदेश देने की रीति अपनाली थी। शायरी के जरिये धर्म का प्रचार करना काव्य-कला का सही माइनों में इस्तैमाल करना नहीं है बल्कि उसकी नाली को गदा कर देना है। मैं इकबाल की शैली से बिलकुल अलग हूँ जैसे गङ्गा का पानी जमुना के पानी से मेल खाने पर भी अलग ही अलग दीखता है। आजादी के बाद देश में फैली फूट से मेरा दिल जल उठा है। अवसरवादियों से मैं उकता गया हूँ। मेरी हाल की ये पंक्तियाँ मुझे प्रकाश में ले आवेंगी:—

"शैतान इक रात में इन्सान बन गए,
जितने नमक हराम थे कप्तान बन गए।"

आपका देश और साहित्य के लिए क्या सन्देश है?

मैं अलीगढ़ में हुई पिछले महीनों डाक्टर जाकिर-हुसैन की तकरीर से बिलकुल भी इत्तफाक नहीं करता हूँ। वे उर्दू के पक्षपाती हैं। वे नहीं देख रहे आज की सदी क्या माँग रही है। वे मील के पत्थर की तरह खड़े हुए हैं। 'साहित्य-सन्देश' में उनके भाषण पर जो आपत्ति दिखाई गई है वह किसी हद तक ठीक है।

मेरी यही अपील है कि राष्ट्र और साहित्य रवीन्द्र के अनुसार 'बेगेर धाओ उन्नति के पथ पर बढ़े।' हम लोगों में करेक्टर (चरित्र) की बुनियाद पड़े जिस पर इन्सानियत की मीनारें उठें और आगे आने वाली पुश्तों को रोशनी दें।

आखिर मेरा मतलब यही है कि दुनिया कर्म और उद्योग की पगडण्डी पर अपने पैरों चले और गांधी के आदर्श को, उसकी कुरबानी को, राहे चिराग बनाए।

'कहानी-विशेषाङ्क हमारे लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। हम कॉलेज के विद्यार्थियों की भूख रहती है ऐसी सामग्रियों की। हमारे लिए तो परीक्षा में भी उपयोगी हुआ। —शारदाप्रसाद श्रीवास्तव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवर्त

श्री सत्य

सुखदा के पश्चात् जैनेन्द्र का नया उपन्यास 'विवर्त' हमारे सामने है। हिन्दी के उपन्यासों के क्रान्ति-काल से जैनेन्द्र भी सम्बद्ध रहे हैं। इसलिये इस उपन्यास को देखते हुए, हम हिन्दी के उस क्रान्तिकाल के पतनोन्मुख प्रवाह को देख सकते हैं।

साहित्य संक्रांति-काल से आज गुजर रहा है। इस काल ने अपनी पुरानी मान्यतायें बदल दी हैं। नये जमाने के साथ नयी समस्याओं का आगमन हो चुका है। और इसलिए नयी दृष्टि की अपेक्षा भी सामयिक ही है। हम अपने पुराने साहित्यकारों को इस ऐंगल से देखने पर विशेष उत्साह नहीं पाते।

एक अर्से के मौन के बाद यह उपन्यास हमारे सामने आया है। जैनेन्द्रकुमार की विचार-धारा अपनी विशिष्ट शैली के साथ पाठक को आज तक बहाने में सफल हुई थी। आज भी वह सफल है। देखना यह है कि बहाने की सामर्थ्य की सफलता किस सीमा तक कायम रह सकती है।

कथा : सीधी और संक्षिप्त—जीवन के अतिरिक्त देखने का दृष्टिकोण जरूरी हो या न हो, पर अपने आप में महत्वपूर्ण है। इस उपन्यास का धरातल ही मौत पर अवलम्बित है। ढीले तौर से आने वाली मौत ? उससे भय ! और भय के प्रति कातर तर्कशीलता—शहादत के रूप—यह हैं उपन्यास की आउट लाइन्स, बाहरी रेखाएँ।

कथा सीधी संक्षिप्त है। अधिक घुमाव-फिराव नहीं। उलझन है—कि मोहिनी विवाह का सवाल नहीं उठाती, जवानी के करीब, बल्कि मँझधार में आकर भी। एक पत्रकार जितेन उसे मिलता है, गरीब है, नौकरी करता है। मोहिनी की आप्रत माँग जितेन से माँग करती है : प्रेम की शर्त रख कर। जितेन एकबारगी रुकता है, झिझकता है। अनबूझ है वह, इसलिए समझ नहीं पाता उसे। प्रेम के विशाल सागर में भावी खतरों को जान कर, पहचान कर, व्यर्थ डूबने को वह तैयार नहीं।

लेखक को उपन्यास के हर पात्र की शिकायत है, सुलझाव नहीं। मोहिनी जितेन को नहीं समझ सकती। जितेन नहीं समझ पाता मोहिनी को। तिश्ती नहीं समझती जितेन को, कि पार्टी के अन्य सदस्य भी नहीं समझते जितेन को। कि चड्ढा नहीं समझ पाता मोहिनी को, कि नरेश नहीं जानता उसे। मोहिनी समझ नहीं पाती अपने पति को—नरेश को। सब में उदात्तता है, ऊँचाई है, जिसे कोई छू नहीं सकता। प्रत्येक पात्र एक दूसरे से दूर है, अलग है। एक दूसरे को पकड़ नहीं सकते, केवल देख सकते हैं। और अपना-अपना काम करते जाते हैं।

मोहिनी—उपन्यास की नायिका मोहिनी संक्षिप्त है, पर अपने में बहुत कुछ है उसके पास। कोयला काला है, पर सुलग सकता है। अस्थिर, विचलित नहीं रहना चाहती है वह। जान लेती है कि जितेन उसे नहीं समझ सकता, अथवा समझने के लिए आवश्यक कारण नहीं है, तो वह अलग हो जाती है। पिता के निर्देशन के अनुसार विवाह कर लेती है नरेश से। अपने अस्तित्व की माँग नहीं है। नरेश को किया हुआ आत्म-समर्पण सार्थक मानती है वह।

नरेश—नरेश मोहिनी का पति है। उपन्यास की गति तेज करने वाला नहीं, केवल देखने वाला—दर्शक। लेखक उसकी वकालत करता है, उसके अस्तित्व को मानता ही नहीं, बल्कि उसके परिष्कृत रूप का हिमायती भी है। तब लगता है कि दर्शन से, दृश्य से दर्शक अधिक महत्वपूर्ण है। वह उदार और उदात्त है, पर उदारता अथवा उदात्तता का अहङ्कार उसमें नहीं है। जीवन में प्रेम को वह जानता है, समझता है, स्वीकार भी करता है। सुन्दर प्रपात उसे अच्छा लगता है, आग्रह नहीं है कि प्रवाहित प्रपात कहाँ से आता है—यह जाने। इतिहास मालूम होने पर भी वह उसके प्रति उदास है। २२ वर्षीय लड़की का भी अपना इतिहास हो सकता है, इस ओर नहीं, वह इस ओर अधिक ध्यान देता है कि अतीत से जुड़ा हुआ वर्तमान कैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? पौरुष को दी गयी चुनौती को वह स्वीकार करता है, बीच दर्द है इसे स्वीकार करने में, पर वह फफोला नहीं बनने देता उसे। पौरुष अर्थात् अपनी मान्यता और उस पर आघात। पीड़ा को अपने आर बहने देता है, आह भर कर गति नहीं देता।

मोहिनी—विवाह के पश्चात् क्रान्तिकारी जितेन नये रूप में उसके सामने आता है। एक व्यक्ति जिसके साथ वह जीवन मर्यादा बाँधना चाहती थी—वह जितेन। विराग युक्त आसक्ति लेकर वह उसके पास विश्वास के बल पर आ जाता है। मोहिनी अस्वीकार नहीं कर सकती उसे। पति उसे प्यारा है, पर इसके अतिरिक्त भी कोई प्यार करने के लिए है। जितेन उसे नहीं समझ पाता, वह जितेन को समझा नहीं पाती, अथवा उसे समझ नहीं पाती। उलझनों के तार गुँथे हुए हैं, सुलझाने वाला कोई नहीं।

लेखक पात्रों पर उलझन लादता जाता है। पर बात स्पष्ट नहीं हो पाती कि उलझन क्या है ? "न समझना क्या है ?" यही न कि एक की मान्यता को दूसरा न मान सके। उपन्यास के पात्र बात चीत के दौरान में जाहिर करते हैं कि वे दूसरे की मान्यताओं को समझने में असमर्थ हैं। पर उसका प्रभाव ऐसा नहीं है। तिन्नी जितेन को नहीं समझ पाती, पर उसे किसी तरह का विरोध नहीं है। उसके पास कहने को कुछ नहीं है। किसी तरह की शिकायत नहीं, कोई शिकवा नहीं। जितेन को राह मिलती है, तिन्नी की ओर से भी और मोहिनी की ओर से भी।

जितेन—जितेन गरीब था। पत्रकार बना। मोहिनी के झगड़े से प्रभावित होकर अपनी नौकरी छोड़ देता है, चला जाता है। वापस जब आता है तो क्रान्तिकारी के रूप में। कैसा क्रान्तिकारी है ? क्या चाहता है ? अन्त तक स्पष्ट नहीं हो पाता। स्पष्ट करने का प्रयत्न भी नहीं किया गया। क्या वह केवल व्यक्तिगत उलझन का तेज प्रवाह मात्र था ? क्रान्तिकारी बन कर चोरी करता है, डाका डालता है, रेल उड़ा देता है। पनाह लेता है मोहिनी के यहाँ। मोहिनी उसे बचा भी लेती है। जितेन का भी उस ओर एक खिंचाव है। पर दूरी कम नहीं होती। लेखक चाहता नहीं इसलिए नहीं होती। हो जाती तो कारण काफी थे। जितेन का व्यक्तित्व नवीन ढङ्ग से बनाने के लिए आकर्षण का रूप बदल जाता है। वह वही चोरी करता है। मोहिनी के गहने लेकर वह चला जाता है। उन्हीं गहनों से ५० हजार रु० वसूल करने का प्रयत्न करता है मोहिनी को कैद करके। अन्त में उसे दी गई पीड़ा उसे खुद को बर्दाश्त नहीं होती। अपने साथी सदस्यों के लिए कुछ रकम, कृपा के तौर पर माँग कर वह बड़ी आसानी से आत्म-समर्पण कर देता है। मोहिनी की चालाकी से, चड्ढा पु० इन्सपेक्टर जिस व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं कर सका था, उसे वह आसानी से अपने कब्जे में कर लेता है।

क्रान्तिकारी नहीं : एक उलझन—जितेन क्रांतिकारी नहीं है। अपने आप में उलझा हुआ, भटका हुआ एक व्यक्ति है। यद्यपि लेखक की वकालत उसे क्रान्तिकारी के रूप में पेश करने का हर-चन्द प्रयत्न करती है। पर नायक उसके सारे प्रयत्नों पर पानी फेर देता है। क्रान्ति व्यक्तिगत क्रिया-प्रतिक्रिया की देन नहीं, सामूहिक दृष्टि से देखा हुआ पथ है, जिस पर व्यक्ति न्यौछावर हो जाता है। पर यहाँ व्यक्ति की उलझन, आत्म-विश्वास की दरिद्रता उसके सारे विचारों को एक ओर सरका देती है, व्यक्तिगत उलझनों से छुटकारा पाने के लिए वह अपने आपको अपराधी स्वीकार कर लेता है। सामूहिक प्रयत्नों को अपने विचारानुसार कमजोर महसूस करता है। किसी को दया पर छोड़ कर 'छुट्टी' पा लेता है।

मृत्यु की अनित्यता को मानता हुआ, अपनी इस कमजोरी को ढँकने का प्रयत्न करते हुये शहीद बनने की कोशिश में पीड़ित यह व्यक्ति कहता है :—"किसे मरना नहीं है, और कौन किसे मार सकता है ? जन्म मृत्यु तो है, बिना इनके सृष्टि नहीं। काल के ये अस्त्र हैं, इन्हीं औजारों से उसकी सब रचना है। इस द्विविधा में राग क्या और द्वेष क्या ? नहीं, मोहिनी, वह नहीं है। आँसू नहीं है दया नहीं है····कुछ और है····सत् ही है, असत् नहीं हो सकता। लाख कर लो, असत् हो नहीं सकता। उसकी हस्ती नहीं। जो नहीं है वह नहीं है। कितना भी कर लो, नहीं कभी 'हो' नहीं जायगा। फिर जो असत् होता है, क्यों होता है ? मिथ्या क्यों हो जाता है ? बुरा क्यों हो जाता है ? ईश्वर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी रहते शैतान क्यों हो जाता है ? कहाँ से हो जाता है ?"

आज जीवन दर्शन में क्रान्ति आ गयी है। जीवन केवल मरने के लिये नहीं है। मरने और जीने के बीच की अवस्था भी सत् है। अस्ति है। उसमें खोजने को बहुत कुछ है, पाने को बहुत कुछ है। पाने और खोने की जिज्ञासा भी गलत नहीं; क्योंकि यही जीवन का राग है। इससे प्राप्त होने वाली हँसी सत् है, रोना सत् है।

लेकिन लेखक का यह उपन्यास मृत्यु के सर्प-दर्शन से आरम्भ से लगा कर अन्त तक पीड़ित है। कथा खत्म हो जाती है, मौत के समीप जाकर। यह बड़ी बात नहीं। पर मौत जब लक्ष्य, डेस्टीनेशन बन जाती है, तो वह जीवन के लिये उत्साहप्रद नहीं मानी जा सकती है। इस विराम के प्रति इतना आग्रह जीवन के प्रति जागृति का द्योतक नहीं। निराशा की निशानी है। जीवन खण्डित नहीं है, खण्ड-खण्ड पर अलग-अलग से विचार नहीं किया जा सकता। जीवन समूह है, कई रिश्तों का, कई सम्बन्धों का! उसकी अनुभूति है, क्रिया है, प्रतिक्रिया है, उत्थान है, पतन है। यदि मृत्यु सत्य है, वह प्राप्ति लक्ष्य है, तो उससे पहले भी बहुत कुछ प्राप्य-लक्ष्य हो सकता है, होना चाहिये।

लेकिन—वह चोरी करता है। सफाई पेश करते हुये कहता है :—"हमारी चोरी चोरी नहीं है सीनाजोरी है। उसमें खींचने का जोर लगता है, अक्ल लगती है, विज्ञान लगता है। लेकिन सवाल दूसरा है, वीर। हम सामान पैसे से लेते हैं। आदमी पैसे से जुटाते हैं, उस पैसे से जिस पर आप सरकारी है। जैसे हम सरकार को हटाते नहीं, जमाते हैं। सवाल है, पैसे के बगैर हमारा काम हो सकता है। या पैसा हो सकता है, जो हमारा हो। सरकार का न भी हो। हमारा सिक्का हमारी साख। सुनो वीर। असली क्रान्ति यह है। तमंचा तोप का सामना न कर पायेगा। चलेगा वह जिसके आगे तोप न चले। क्यों वीर, ठीक कहता हूँ न?"

क्रान्ति जब असफल होकर 'यूटोपिया' की बात करने लगे, तो समझ लेना चाहिये—क्रान्ति स्वयं संक्रान्ति-काल से गुजर रही है। वह बुरी अवस्था नहीं भी कही जाय पर अपेक्षित अवस्था नहीं मानी जा सकती।

जितेन रुपये की समस्या पर बात करता है। धनवानों पर व्यंग्य भी कसता है। अन्त में समझ लेता है, अपनी साख होने पर सरकार के पाये कमजोर होंगे। सरकार की अनुपस्थिति ही क्रान्ति का अन्तिम उत्तर है। यदि ऐसा नहीं होता तो आदमी को किए हुये कामों को असफल मान कर, अथवा कम मान कर आत्म हत्या कर लेनी चाहिए। अपने आपको नष्ट कर देना चाहिये। इसलिए कि दुनियाँ को जैसी वह चाहता है, है नहीं। बदलने के जो तरीके हैं, या तो उसके बस के नहीं, अथवा वहाँ तक पहुँच नहीं पाता।

तो—प्रयत्नों की असफलता, अथवा ओछी जान कर आदमी को निराश हो जाना चाहिए। यदि यही कहना था तो समझ में नहीं आता कि करीब सवा दोसौ पेज का उपन्यास लिखने की क्या जरूरत थी। यह बात एक लेख से अच्छी तरह कही जा सकती थी। कला को अधिक सजग रूप से जाहिर करने का माध्यम उपन्यास है। व्यक्तिगत ऊँचाई-नीचाई में गिरफ्तार व्यक्ति स्वयं जब पतनशील होता है, तो बिना दूसरों को उठाये अपने पापों का प्रायश्चित् जब करने लगता है तो सवाल उठता है उसके आश्रितों का, जिन्होंने उस पर विश्वास किया, नष्ट सहे अथवा अपने जीवन के प्रति विशेष किस्म का ढाँचा तैयार किया।

नहीं—आज निराशात्मक उपन्यासों की जरूरत नहीं। व्यक्तिगत असफलताओं से प्राप्त आत्म हत्याओं को प्रोत्साहन नहीं। चाहे उस आत्म हत्या का रूप कैसा भी क्यों न हो। जितेन चाहता तो अपने आपको दूसरे रूप में ढालता, चढ्ढा तो आत्म-समर्पण नहीं कर देता। संघर्ष में आदमी मर जाये यह बुरा नहीं है बल्कि यही शहादत है। पर मौत को अकिञ्चन मान कर उसे अङ्गीकार कर लेना बहुत बड़ी बहादुरी नहीं। इसलिए जीवन के प्रति उसकी कोई देन नहीं। और यह मानना भी तो बड़ा मुश्किल है अकिञ्चन मान कर, प्रभु पर भरोसा करने का आशीर्वाद देकर, व्यक्ति अपने प्रति भी ईमानदारी कर पाता है या नहीं।

तिब्बी मौन क्यों? श्रद्धा का अन्ध-रूप दृष्टव्य है क्या? मोहिनी मजबूत होते हुए भी अपने प्रति ईमानदार क्यों नहीं। जैसा वह सोचत है, करती है उसे ठीक क्यों नहीं

(शेष पृष्ठ ४६६ पर देखिये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

हिन्दी साहित्य—लेखक—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—सर्वश्री अत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्स, देहली। पृष्ठ ५७०, मूल्य ७)

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर कई पुस्तकें निकल चुकी हैं किन्तु आचार्य शुक्लजी, डा० श्यामसुन्दरदास, डाक्टर रामकुमार वर्मा की पुस्तकों के पश्चात् यह पहली पुस्तक है जिसने अब तक के साहित्यिक इतिहास को कुछ नई देन से विभूषित किया है। वैसे तो साहित्य में मौलिकता के लिए अधिक स्थान नहीं रहता। तथ्यों को सभी को दुहराना पड़ेगा, इस दृष्टि से तो यह अधिकांश में शुक्लजी से क्या अपने पूर्ववर्ती सभी इतिहासों से प्रभावित है किन्तु यह अपनी विशेषताएँ लेकर आया है। इसमें अपभ्रंश काव्य की परम्परा को परवर्ती साहित्य से सम्बद्ध करने में एक कदम आगे बढ़ाया है और इसके पढ़ने से यह मालूम होता है कि हिन्दी साहित्य ने प्राचीन परम्पराओं का किस प्रकार पालन किया है। इस प्रसङ्ग में अब्दुलरहमान के संदेश रासक का भी उल्लेख हुआ है। (इसका उल्लेख शायद अन्य इतिहास-ग्रन्थों में नहीं है) इसी अपभ्रंश के सहारे जैन कवियों का भी इसमें कुछ विशेष उल्लेख हुआ है। वीरगाथा काल का विभाजन आधार विषय को न लेकर आपने उस समयानुक्रम से आदि-काल कहा है जिसकी हाथी के पैर जैसी व्यापकता में परवर्ती साहित्य की प्रायः सभी मूल प्रवृत्तियाँ आ जाती हैं।

भक्ति साहित्य का भी वर्णन कुछ विशदता के साथ हुआ है किन्तु इसमें शुक्लजी की भाँति प्रबन्ध काव्य के प्रति किसी वैयक्तिक अभिरुचि का परिचय नहीं दिया गया है। इस सम्बन्ध में डाक्टर साहब ने आचार्य शुक्लजी पर करारा व्यङ्ग्य किया है—"हिन्दी में एक ऐसे समालोचकों का दल पैदा हुआ है, जो हर काव्य में महाकाव्य या प्रबन्ध-काव्य का गुण खोजता है और न पाने पर अफसोस प्रकट करता है।" ऐसे समालोचकों की लपेट से सूरदास भी नहीं बचे हैं। कृष्ण-काव्य के सम्बन्ध में और राम-काव्य के सम्बन्ध में भी माधुर्य-भाव और सखी-भाव की पर्याप्त चर्चा हुई है और उन भावनाओं को भी सहृदयता की दृष्टि से देखा है। इन भावों के उचित या उससे भी अधिक मूल्याङ्कन में शान्ति-निकेतन का निवास और बङ्गला वैष्णवता सहायक हुई मालूम देती है।

प्रेम-कथानकों के साहित्य को काल-क्रम से स्थान न देकर महत्व-क्रम से कहें या और किसी क्रम से राम-काव्य के पश्चात् स्थान दिया है। रीति काव्य के प्रादुर्भाव के लिए और कारणों के साथ कृष्ण-काव्य को अधिक महत्व दिया गया है। यह विकास में एक कड़ी अवश्य है किन्तु अन्य-कारण अधिक महत्वपूर्ण हैं। रीति-काल के साहित्य की मौलिकता स्वीकार न करने में डाक्टर साहब शुक्लजी से एक मत हैं किन्तु रीति-काल की जो कुछ थोड़ी-बहुत देन हो सकती है उसके सम्बन्ध में पर्याप्त उदारता से काम नहीं लिया गया मालूम पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान काल का वर्णन यद्यपि सविस्तार क्रम है तथापि उसमें प्रवृत्तिगत विश्लेषण अच्छा हुआ है और चोटी के कवियों को उनकी विशेषताओं के साथ यथा-स्थान प्रविष्ट करा दिया गया है। छायावाद और रहस्यवाद अलग-अलग प्रवृत्ति मानते हुए रहस्यवाद को छायावाद की शैली मात्र नहीं माना है। रहस्यवाद में एक परात्पर असीम के प्रति आस्था को आवश्यक माना है। रहस्यवाद में दो धाराएँ कर दी हैं एक चिन्तन-मनन प्रधान जिसका प्रतिनिधित्व प्रसाद करते हैं और दूसरी भावना और अनुभूति प्रधान जिसका प्रतिनिधित्व महादेवी करती हैं। रहस्यवाद में इन्हीं दो कवियों को मुख्यता दी गई है। डाक्टर साहब प्रगतिवाद के प्रति सहानुभूत रखते हुए भी उसे साम्प्रदायिक नहीं बनाना चाहते हैं।

पुस्तक के विवेचन में आवश्यक गाम्भीर्य के साथ सन्तुलन से काम लिया गया है।

कवि प्रसाद, आँसू तथा अन्य कृतियाँ—लेखक—श्री विनयमोहन शर्मा, प्रकाशक—प्रतिभा प्रकाशन नागपुर। पृष्ठ २००, मूल्य ४)

इस पुस्तक में प्रसादजी और उनके साहित्य पर एक संक्षिप्त या मार्मिक आलोचना उपस्थित की गई है। "प्रत्येक कलाकार अतीत का फल और भविष्य का बीज होता है" इस दृष्टि से प्रसाद के साहित्य को हिन्दी साहित्य के विकास की महत्वपूर्ण शृङ्खला के रूप में देखा गया है। पहले तो प्रसाद का विभिन्न वादों के सम्बन्ध में अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में इन वादों के तात्विक परिचय के साथ प्रसादजी की विचारधारा के योगायोग का भी पता चल जाता है। प्रसाद की आठ काव्य कृतियों का संक्षिप्त अध्ययन उपस्थित किया गया जिसमें आँसू को मुख्यता दी गई है। उसका व्यापक विवेचन भी है और प्रत्येक छन्द का व्यापक रूप से विवेचन हुआ है। पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आँसू का उसी छन्द में मराठी अनुवाद भी हो चुका है।

शर्माजी का आलोचनात्मक दृष्टिकोण बड़ा व्यापक और सहृदयतापूर्ण है। —गुलाबराय

'महाकवि देव'—लेखक—श्री भोलानाथ तिवारी एम० ए०, प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद। पृष्ठ २३२, मूल्य २॥)

रीतिकाल के किसी भी कवि को भली प्रकार समझने के लिये उस काल का विस्तृत ज्ञान और उसका वर्ण्य विषय जानने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी दृष्टिकोण को लेकर तिवारीजी ने इस पुस्तक में रीतिकाल के इतिहास, समाज, मूर्ति एवं चित्रकला आदि पर पहिले प्रकाश डाला है। देव की जीवन सामग्री प्रस्तुत करने के लिये लगभग ७ पुस्तकों से सहायता ली गई है और उन्होंने भिन्न-भिन्न मतों के साथ-साथ अपना मत भी दे दिया है।

देव रचित लगभग २० ग्रन्थों के विषयों को देते हुए और आवश्यक ग्रन्थों के वर्ण्य-विषयों को विशेष रूप से स्पष्ट करते हुए उन्हें पाँच भागों में विभाजित किया गया है जैसे—प्रामाणिक, प्राप्त, नाम-मात्र वाली तथा देव के नाम पर अन्य कवियों की सामग्री आदि। रीति-ग्रन्थकारों की परम्परा को संस्कृत से लेकर देव तक देकर उसके क्रमिक विकास, रस, अलङ्कार, नायक-नायिका भेद, वृत्तियाँ और पदार्थ भेद आदि का अच्छा विवेचन किया गया है। काव्य सौष्ठव को स्पष्ट करने के लिए शृङ्गार, प्रेम, दर्शन, नीति, चित्र, प्रकृति और मानव आदि के सुन्दर-सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

कलापक्ष में भाषा, अलङ्कार, उक्ति वैचित्र्य, गुण-दोष और छन्दों का विवेचन सुन्दर उदाहरणों के साथ किया गया है। देव का स्थान हिन्दी साहित्य में नियत करने के लिये, मतिराम, पद्माकर, बिहारी आदि कवियों से उनकी तुलना भी की गई है।

देव के साथ-साथ इस पुस्तक में रीति का जितना विवेचन आगया है वह दूसरे रीति कवियों को समझने में भी सहायता प्रदान करता है। —दयाप्रकाश एम० ए०

शाकुन्तला-दर्शन—लेखक—सिद्धान्त वाचस्पति, पं० मूँगाराम त्रिपाठी, प्रकाशक—भारतीय साहित्य मन्दिर-नर्मदा-पथ, १४५५ गोरखपुर, जबलपुर। पृ० १२८, मूल्य १।)

इस पुस्तक में श्री त्रिपाठीजी ने विश्व-कवि कालिदास के नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का सभी प्राचीन एवं अर्वा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन दृष्टिकोणों से परीक्षण किया है। 'शकुन्तला' को समझने के लिए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

—रामबाबू शर्मा एम० ए०

कविता

कासि—लेखक—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ १४५, मूल्य ३॥)

'कासि' में नवीनजी की कवित्वपूर्ण रचनाएँ संगृहीत हैं, साथ में एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी है। दोनों ही सरस हैं। भूमिका में पहले उन्होंने उन प्रगतिशील आलोचकों की खबर ली है जो कभी इस उस कवि या लेखक को बढ़ावा देते हैं और फिर उसे प्रतिक्रियावादी करार दे देते हैं। चाहिए यह कि एक बार जो प्रगतिशील हो गया, वह हो गया, जैसे एक बार जो देशभक्त हो गया, वह हो गया, अब वह किसका साथ देता है, क्या कहता है? यह सब जाँच पड़ताल करना देशभक्ति और साहित्य के साथ अन्याय करना है।

नवीनजी को उन आलोचकों पर विशेष रोष है जो प्रसाद की कामायनी को विषय और भाषा के प्रौढ़ साम्रज्य का अनुपम उदाहरण नहीं मानते। क्यों नहीं मानते? "कदाचित् इसलिये कि वे स्वर्गीय प्रसादजी को प्रगतिशील नहीं मानते।" नवीनजी का "कदाचित्" यह साबित करने के लिए काफी है कि जो प्रगतिशील आलोचक 'कामायनी' को आधुनिक हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ काव्य नहीं मानते, वे उन्हें प्रगतिशील नहीं मानते। यही नहीं, प्रसादजी "उनकी दृष्टि में कदाचित् परम्परावादी कवि भी हैं, इसलिये उनकी प्रशंसा सुनकर ये आलोचक विचलित होते हैं। अब ये दो कदाचित् देख कर मानना ही पड़ेगा कि प्रगतिशील आलोचकों ने प्रसाद को परम्परावादी और प्रतिक्रियावादी कहा है और इसीलिये उन्होंने हिन्दी साहित्य के साथ घोर अन्याय किया है।

लेकिन नवीनजी की विद्वत्ता इस साधारण स्तर पर प्रकट नहीं हुई। उन्होंने प्रगतिवादियों के आचार्य मार्क्स और एंगेल्स पर ही हल्ला बोल दिया है और उनके दर्शन को जड़वादी साबित कर दिया है। फिर इस जड़वाद से दुनिया को ढेर करने वालों की एटरी कैसे बैठ सकती है?

नवीनजी ने मार्क्स से जो उद्धरण दिया है। (पृ० ८), उसके शुभ पक्ष पर उन्होंने प्रशंसा के कई पैराग्राफ लिखे हैं। इससे यह तो साबित हो ही जाता है कि वह अनासक्त हो कर दार्शनिक समस्याओं पर विचार करते हैं। लेकिन मार्क्स के उद्धरण में एक शब्द आया है, प्रैक्टिस। ज्ञान को प्रैक्टिस या अभ्यास से अभिन्न माना गया है। अभ्यास से पुनर्जन्म आदि सिद्ध हो जाय तो मार्क्सवाद उसे अस्वीकार नहीं करेगा। उसके लिए ज्ञान को परखने और अर्जित करने का आधार अभ्यास ही है। नवीनजी ने प्रशंसा और आलोचना में अभ्यास जैसे हलके शब्द को छोड़ दिया है, कारण कि चिन्मय अखण्ड आत्मा का ज्ञान भला अभ्यास जैसी भौतिकवादी वस्तु से क्या वास्ता रख सकता है? अर्थात् नवीनजी ने अपनी भूमिका में जिस विज्ञानोपरि ज्ञान की चर्चा की है, वह मानव अभ्यास (विज्ञान) से परे है। इसलिए यह भूमिका विशेष विद्वत्ता पूर्ण है।

कविताओं में रस की दृष्टि से करुण रस की प्रचुरता है। बीच बीच में चरण-चुम्बन के लिए लाक्षायिक कवि ने रसराज का पुट भी दे दिया है, लेकिन पुट ही, इससे अधिक नहीं। आत्म-निवेदन इन कविताओं की विशेषता है। कितनी ही पंक्तियाँ पढ़ कर पाठक का हृदय कवि के लिए विचलित हो उठता है जैसे—

यौवन यों बीता जाता है,
हिय पलपल में अकुलाता है।
मुझको रह रह के इधर उधर,
उन्मत्त भव भटकाता है।
टुक रो लेने दो तनिक देर,
क्यों छोड़ रहे हो बेर बेर?
मार्गच्युत हूँ, हूँ लक्ष्य हीन,
तन छीन, बना हूँ मन मलीन।
मतिहीन, लीन मादकता में,
मारा फिरता हूँ मैं नवीन।
पथ पर तुम लाओ मुझे घेर,
टुक रो लेने दो तनक देर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की पुस्तकें

पौने मूल्य में

सूचीपत्र मुफ्त मँगायें

भारत पब्लिशिङ्ग हाउस,

५, सिविल लाइन्स, आगरा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की

प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की

संवत् २०१० की सं० विवरण पत्रिकाएँ हमसे

मुफ्त मँगायें

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

(यहाँ से काटिये)

यहाँ से काटिये

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

.....

.....

क सं०.....

प्राचीन कवि—डा० सुधीन्द्र	आलोचना	२)
प्रसाद का कथा साहित्य—रामरतन भटनागर		४)
हिन्दी सा० का सं० इतिहास—,, ,,		४)
कहानी कला और विकास—छविनाथ त्रिपाठी		३)
हिन्दी रचना—कामेश्वर नाथ		१॥)
रचनादर्श—		२)
तुलसी गीतावली—गुलाबराय		१।)
यात्रा के पन्ने—राहुल	यात्रा	६)
माओ के देश में—राम आसरे	,,	१)
केवड़े का फूल—श्री इन्दु	कहानी	१।)
प्यार के क्षण—श्री इन्दु	कविता	१।)
राम पञ्चाध्यायी—	,,	१॥)
ज्योतिकण—श्यामसुन्दर तिवारी	,,	१)
सनातन धर्म प्रदीप—नरोत्तम मालवीय		॥)
बहता पानी—गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश उप०		३।)
राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ—		१॥)
सं० रामचरित मानस	धार्मिक	१।)

नियम पीछे देखें—

ट—जो पुस्तक आप न लेना चाहें उसे काट दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. 268. MAY, 1953. LICENSE NO. 16.

Sahitya Sandesh, Agra. Licensed to post without Prepament.

हमारा नवीन प्रकाशन

हिन्दी एकांकी

लेखक—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

(हिन्दी नाटकों का ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक विवेचन)

मूल्य २॥)

भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि

लेखक—श्री किशोरीलाल गुप्त एम० ए०

हिन्दी अध्यक्ष—शिवली नेशनल डिग्री कालेज।

मूल्य ॥।)

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

१—पान मूल्य में कृपया पीछे छपी पुस्तकें वी० पी० में भेज दें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वी० पी० अवश्य छुड़ा लूँगा। अन्तिम ता० ३१—५—५३, तक

२—एक रु० से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

Postage will be Paid by Addressee

BUSINESS REPLY CARD

No Postage Stamp necessary If Posted in India

AGRA G. P. O.
Permit No 1136

Book Post

To.

श्री सञ्चालक,

साहित्य-रत्न-भण्डार,

४, गांधी मार्ग,

आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

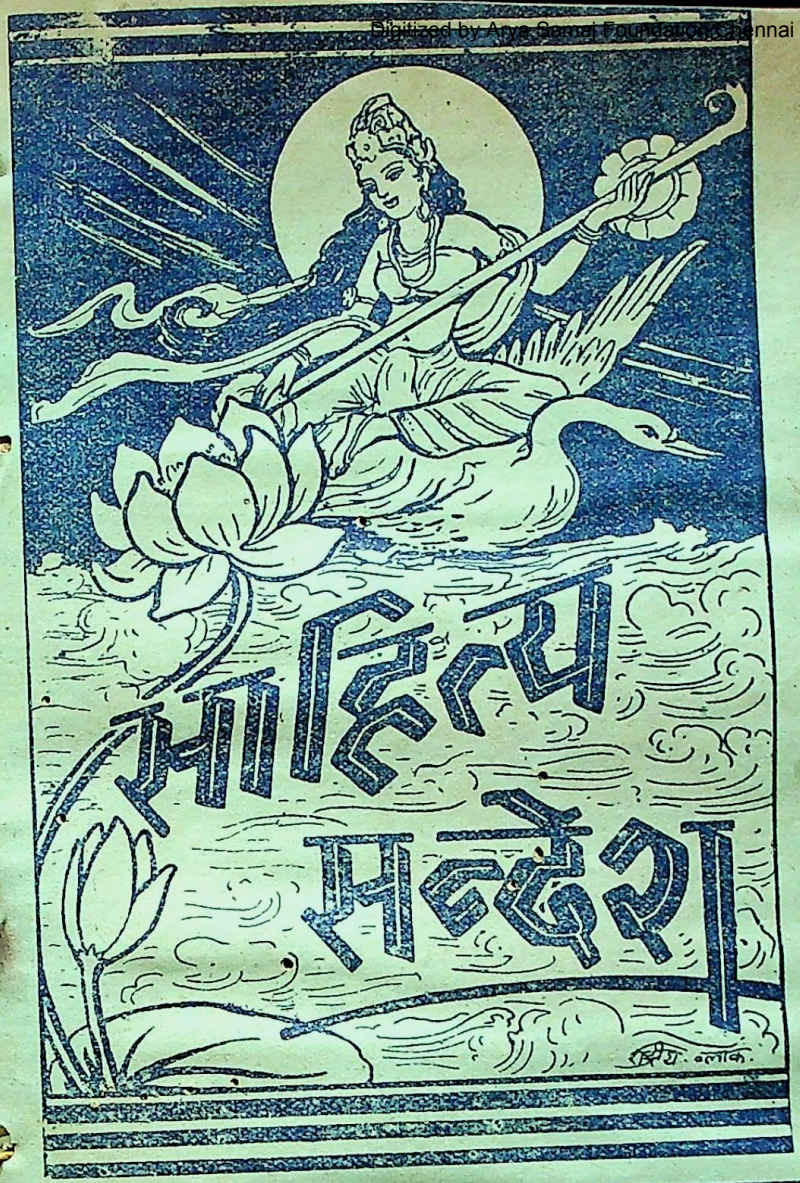

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम. ए. पी-एच. डी.
महेन्द्र

*

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

*

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा।

*

वार्षिक मूल्य ४), एक अङ्क का ।=)

वर्ष १४] आगरा—जून १९५३ [अङ्क १२

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचारधारा — सम्पादक
२—रस का स्वरूप — श्री चर्ल जनार्दन स्वामी
३—सूर-सागर में रामकथा — श्री केदार जोशी
४—रा० च० मा० में एक हास्य-रसात्मक नाट्य खंड — श्री हृदयनारायनसिंह एम० ए०
५—चन्द्रगुप्त नाटक के काल-दोष पर एक दृष्टि — श्री पं० रघुवीर मित्र एम० ए०, शास्त्री
६—हिन्दी का पहला शृङ्गारी कवि : उसका महत्व — श्री त्रिलोचन पाण्डेय
७—उद्धव-शतक में भक्ति और रीतिकाल की छाप — श्री महेन्द्रसागर प्रचंडिया बी० ए०, साहित्यालङ्कार
८—सन्त सुन्दरदास के नारी सम्बन्धी विचार — प्रो० योगध्यान आहूजा एम० ए०, पी-एच० डी०
९—प्रभाकर माचवे के दो लघु उपन्यास : एक तारा और परन्तु — कुमारी आनन्दी तमिल
१०—मराठी साहित्य के प्रेमचन्द — श्री सुशीलकुमार भा 'शीतल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह की १५ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता-कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापस कर दिए जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : मई १९५३

आलोचना

चिन्तामणि दर्शन—हरिहरनाथ टंडन ३)
मृगनयनी में कला और कृतित्व—डा० सत्येन्द्र २।)

कविता

संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो—हजारीप्रसाद द्वि० ३।।)

उपन्यास

चोर की प्रेमिका—कृष्णमूर्ति 'कल्कि' ४)
महल और मकान—यज्ञदत्त एम० ए० ३)
गङ्गा मैया—भैरवप्रसाद गुप्त १।। =)

नाटक

पैसा परमेश्वर—रामनरेश त्रिपाठी ३)

राजनीति

मानव संस्कृति—भगवानदास केला २।।)

जीवन साहित्य

अन्तरात्मा से—रङ्गनाथ दिवाकर २।)
अन्तर निरीक्षण—न० पोरबन्दर २।।)
भाग्य पर विजय—जेम्स एलेन ।।=)
हमारे मानसिक शिशु—लिली एलेने ।।)
रत्न समुच्चय—जगपति चतुर्वेदी १)
ईश्वर के सम्पर्क में—अनु० केदारनाथ गुप्त २)
तपोवन—शुकदेव दुबे १।।)

मनोविज्ञान

आपका सुन्ना—सावित्री देवी वर्मा ३।।)

इतिहास

भारत का चित्रमय इतिहास—भाग १—
महावीर अधिकारी ६)

यात्रा

यूरोप—देवेशचन्द्रदास ३)
हिमालय परिचय-भाग १—(गढ़वाल) राहुल १०)

चिकित्सा

किशमिश चिकित्सा—अनु० केदारनाथ गुप्त ।।=)
धातु रोग और उसका इलाज—
महेन्द्रनाथ पाण्डेय २।।)

ग्राम साहित्य

ग्राम साहित्य—भाग ३—रामनरेश त्रिपाठी ६)

स्वास्थ्य

कब्ज—महावीरप्रसाद पोद्दार १।।)

स्फुट

अनुवर्ग सूची कल्प—
रा० रङ्गनाथन तथा मुरारीलाल नागर १२)

निबन्ध

प्रबन्ध सागर—यज्ञदत्त शर्मा ५।।)
जीवन और शिक्षण—विनोबा २)

बालोपयोगी

नन्हे लंगूर की कहानी— १।।।)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १५] आगरा—जून, १९५३ [अङ्क १२

हमारी विचार-धारा

राष्ट्रभाषा सदन—

आगरे में विश्व विद्यालय के तत्त्वावधान में राष्ट्र-भाषा सदन की स्थापना होने जा रही है। उसमें हिन्दी के अनुसन्धान कार्य के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिन्दी और प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के अध्ययन का कार्य होगा। उसके द्वारा बी० लिट० और एम० लिट० की उपाधियों के अतिरिक्त डिप्लोमाओं और सार्टीफिकट परीक्षाओं का भी आयोजन रहेगा। अन्य प्रान्तों के परीक्षार्थी कुछ दिनों इस संस्था में अध्ययन कर इन परीक्षाओं से लाभ उठा सकेंगे। यह संस्था यथा समय साहित्य-निर्माण का भी कार्य हाथ में लेगी।

आचार्य शिवपूजन सहाय रुग्ण—

सर्व श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, चन्द्रबली पांडेय, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, राजबली पांडेय, वासुदेवशरण अग्रवाल, गोविन्दप्रसाद केजरीवाल, तथा शिवनाथ के हस्ताक्षरों से एक अपील निकली है जो यहाँ प्रकाशित की जा रही है। हम आशा करते हैं कि इस विषय में हमारे पाठक भी अपना पूरा सहयोग प्रदान करेंगे —

हिन्दी-जगत् को यह जानकर परम दुख होगा कि आचार्य शिवपूजन सहाय को क्षय हो गया है। समुचित चिकित्सा से उनके जीवन की रक्षा असम्भव नहीं है। उसके लिए स्वास्थ्यकर स्थान तथा मूल्यवान औषधियों की आवश्यकता है। यह कार्य द्रव्यसाध्य है। धन के अभाव में हिंदी का एक तपा हुआ साहित्यकार घुल घुल कर मरे, यह हिंदी प्रेमियों के लिए एक विचारणीय बात है।

श्रीमान् रामवृक्ष बेनीपुरी ने एक अपील निकालकर १०००० रु० (दस हजार) एकत्र करने का निवेदन किया है। सभी हिंदी-प्रेमियों को चाहिए कि अपने-अपने नगर में इस पुण्य कार्य में संलग्न हों। हिन्दी के महान् साधक की जीवन-रक्षा के लिए हमें विमुख न होना चाहिए। सहायता इस पते पर भेजें : आचार्य शिवपूजनसहाय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कदमकुआँ, पटना।

हिन्दी में नया साहित्य—

हिन्दी में राष्ट्र की समुचित सहायता के बिना नये साहित्य का निर्माण सन्तोषजनक द्रुतिगति से हो रहा है। उस नये साहित्य का यथा सम्भव साहित्य संदेश के आलोचना स्तम्भों में होता रहता है किन्तु फिर भी बहुत से साहित्य की सूचना यथा समय नहीं हो पाती है। इसमें लेखकों और प्रकाशकों के क्रियात्मक सहयोग की आवश्यकता है। इसमें लेखकों और प्रकाशकों का तो हित है ही हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भी हित है। हिन्दी में जिस गति से साहित्य निर्माण हो रहा है उस गति से उसकी विज्ञप्ति नहीं हो पा रही है। सब प्रकाशक अपने नये प्रकाशनों की सूचना भेजने में विलम्ब न किया करें तो हम भी यथा सम्भव उस साहित्य को शीघ्र प्रकाश में लाने का उद्योग करें।

हमारी दृष्टि में ऐसे साहित्य को अधिक से अधिक प्रकाश में लाने की आवश्यकता है—(क) जो अँग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं और प्रादेशिक भाषा परिनिष्ठित ग्रन्थों के प्रामाणिक ग्रन्थ हों। (ख) जो किसी विषय विशेष का ऐसा प्रतिपादन करते हों जिनसे पाठ्य पुस्तकों की कमी की पूर्ति हो सके। (ग) जो गद्य के माध्यम से किसी उच्च-राजनीतिक या सामाजिक अथवा वैज्ञानिक समस्या का उद्घाटन करें और विचार के उत्तेजक हों। (घ) नये नाटक और उपन्यास जिनमें साहित्यिक सम्पत्ति बनने की क्षमता हो। (ङ) वे प्रबन्ध और मुक्तक काव्य जो स्थायी महत्व की सम्भावना रखते हों।

हिन्दी भाषा का भारतीय स्वरूप—

यह सत्य है कि भारत एक महान देश है। उसका इतिहास सिद्ध करता है कि यहाँ कितनी ही संस्कृतियों का महान संगम हुआ है। किन्तु इस आधार पर यदि कोई यह आग्रह करे कि आज भी भारत उन ऐतिहासिक संस्कृतियों में विभक्त और विशृङ्खलित है तो भूल होगी। अनादिकाल से ही भारत अपनी एकता और भारतीयता के अस्तित्व का प्रमाण देता रहा है। बड़े बड़े आन्दोलनों ने आधुनिक-युग से पूर्व के युगों में आपाद मस्तक प्रभावित किया है। इसी दृष्टि से द्राविड़ और आर्यों का जातीय भेद भी आज कोई महत्व नहीं रखता, और हिन्दी का 'आर्य भाषात्व' भी शुद्ध नहीं है। इस सम्बन्ध में आगरा नागरी प्रचारिणी सभा में अभी डा० सुनीतिकुमार चटुर्ज्या ने बताया कि हिन्दी भारत के लिए एक महान वरदान है, और आर्य भाषा वर्ग की होते हुए भी इसकी आत्मा भारतीय है। उन्होंने वैदिक संस्कृत से बाद की संस्कृत की तुलना से भी यह बताया कि यह बाद की संस्कृत भी द्राविड़ प्रभाव से मुक्त हो चली थी। हिन्दी के कारक और सम्बन्ध बोधक योजना, उसका रूप-निर्माण, उसके मुहाविरे सभी में द्रविड़ का प्रभाव स्पष्ट है। शब्द-समुदाय में तो इस द्रविड़ प्रभाव को बहुत से विद्वान बहुत समय से दिखाते आ रहे हैं।" डा० चाटुर्ज्या का यह अभिमत किसी सामयिकता के कारण नहीं, ठोस वैज्ञानिक आधार पर है। यह मानना पड़ेगा कि हमें आज वैज्ञानिक दृष्टि से ही किसी समस्या को देखना होगा। फल : 'हिन्दी' भाषा को भारतीय ही मानना पड़ेगा।

हिन्दी भाषा में भारतीय संस्कृति—

भारतीय हिन्दी में भारतीय संस्कृति का ही सन्देश है, और भारतीय संस्कृति का ही प्राधान्य है। इसका प्रमाण है हिन्दी में भक्ति साहित्य की प्रचुरता। वस्तुतः आज आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का भेद देखना अवैज्ञानिक और अनैतिहासिक है, जैसा डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने 'राष्ट्रभारती' (मई १६५३) के निबन्ध में कहा है :

"द्राविड़ वाङ्मय से द्राविड़ संस्कृति का स्वरूप निश्चित करना आसान नहीं, क्योंकि सबसे प्राचीन द्राविड़ी वाङ्मय केवल २००० साल का पुराना है, और उस समय आर्य और द्राविड़ संस्कृतियों का समन्वय पूर्णतया हो चुका था।.... फिर भी भक्ति के सम्बन्ध में भागवत में भक्तिरूपी बाला ने नारदजी यही कहा है कि 'मैं द्राविड़ में उत्पन्न हुई।' हिन्दी ने द्रविड़ भक्ति को ही नहीं अपनाया, उसने भारत भर की समस्त संस्कृतियों और धर्मों के लिये माध्यम का स्थान प्राप्त किया और अपने माध्यम से उन संस्कृतियों का सांस्कृतिक वैषम्य भी दूर किया। इसीलिए डा० चटर्जी के साथ हम भी यह मानते हैं कि हिन्दी भारत के लिए एक महती वरदान है। आज प्रत्येक भारतवासी वह चाहे आर्य हो या द्रविड़, या कोई और यदि भारतीय है तो हिन्दी के माध्यम से वह और भी निकट आयेगा। यह निकटता प्राप्त करने की चेष्टा का ही परिणाम ही 'राष्ट्रभाषा' की जय है।"

हिन्दी की आधुनिक समृद्धि—

'नई धारा' में सम्पादक ने 'हिन्दी का आधुनिक साहित्य, विनम्रता बनाम हीनभावना, मैदान हमारे पास : माइक तुम्हारे हाथ, हमारी अभिनव देन क्या नगण्य' आदि शीर्षकों से 'हिन्दी-अहिन्दी' के संघर्ष का विश्लेषण किया है "जो अपने तर्क को बढ़ाते-बढ़ाते"... इस छोर पर वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते हैं। हिन्दी में हैं क्या ?" और इसके उत्तर में जो उन्होंने लिखा है उसके स्वयं पठनीय है। नई धारा के सम्पादक महोदय के मत से पाठक को सहमत होना ही पड़ेगा, और यह भी आवश्यक प्रतीत होगा कि हिन्दी को अब अपना माइक भी खड़ा करना होगा। इसी सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उन शब्दों को भी हमें स्मरण रखना चाहिए जो उन्होंने 'विन्ध्य प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के चतुर्थवार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहे—कि

संसार की समस्त भाषाओं में हिन्दी का अपना विशिष्ट स्थान है और वह केवल इस कारण कि अन्य भाषाओं को किसी न किसी रूप में राज्याश्रय प्राप्त होता रहा है पर हिन्दी उससे वंचित रही है। किन्तु इतनी उपेक्षा और दमन के बावजूद हिन्दी न केवल आज जीवित है वरन् उसका साहित्य कोष दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि करता जारहा है। हिन्दी की इस गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा का श्रेय उन भारत के साहित्यकारों को है जिन्होंने बिना किसी प्रलोभन के और बिना किसी स्वार्थ से वशीभूत हुए अपने रक्तदान द्वारा हिन्दी के वृक्ष को जीवित बनाए रखा। हिन्दी राजाश्रय से वंचित रही पर वह किसी भी हालत में कभी भी जनता से विलग नहीं हुई तथा 'उच्च आदर्श' के लक्ष्य की ओर ध्यान दिलाते हुए द्विवेदीजी ने कहा कि जिस साहित्य का आदर्श उच्च होता है वही साहित्य प्रगति करता है। हिन्दी का भक्तिकालीन साहित्य ऐसे ही आदर्शों का ओतप्रोत है। जब-जब हमने उच्च आदर्श को ग्रहण किया तभी-तभी हिन्दी साहित्य में अभिनव ग्रन्थ तैयार हुए। यह सत्य है कि ध्येय की प्राप्ति के लिए त्याग और बलिदान की आवश्यकता है किन्तु लक्ष्य की प्राप्ति का उत्साह इन कष्टों और कठिनाइयों को तुच्छ बना देता है। और आज जब भारत विश्व का नेतृत्व करने जा रहा है, हिन्दी के साहित्यकारों को अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग होना चाहिए। विदेशी साहित्य से प्रतिस्पर्धा हमारे साहित्य के कोष की अभिवृद्धि करेगी। हिन्दी साहित्यकारों को हीनता की भावना त्यागना चाहिए और आत्मविश्वास पूर्ण होना चाहिए। हीनता की मनोवृत्ति घातक है। यह कथन और धारणा कि हिन्दी साहित्य दुर्बल या कमजोर है अथवा अपूर्ण है सोलह आने गलत है। यह कहना भी गलत है कि हिन्दी स्वयं कमजोर है और कमजोरों की भाषा है और इस कारण उसका निर्माण करना है।

पारिभाषिक शब्दों की समस्या—

'पारिभाषिक शब्दों' की समस्या पर आचार्य द्विवेदीजी ने कहा कि 'हिन्दी भाषा की परम्परा उदार रही है। संस्कृत भाषा ने विदेशी भाषाओं के प्रतिनिधिपूर्ण और उपयोगी शब्दों को सदैव स्वीकार किया है। कोई भी भाषा विदेशी शब्दों को स्वीकार करने से विकृत नहीं होती है। पारिभाषिक शब्दों की समस्या हल करने के लिए एक केन्द्रीय समिति का निर्माण होना चाहिए और इस प्रकार के शब्दों का निर्माण होना चाहिये जो सभी विश्वविद्यालयों को मान्य हो। विश्वविद्यालयों में हिन्दी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। जबतक भारतवासी इस हीन भावना को नहीं बदल देते और यह निश्चय नहीं कर लेते कि हिन्दी हीन नहीं है, उसमें शक्ति है, तबतक आत्म-विश्वास नहीं आसकता और यदि हीन भावना के साथ ही हम आगे चलेंगे तो १५ वर्ष में तो क्या १५० वर्षों में भी हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।'

इस विषय पर 'भाषा विकास सम्मेलन' ने पूना में ये परामर्श दिये हैं :—

१—सभी ज्ञान विज्ञानों के लिए पारिभाषिक शब्दों का आधार यथासम्भव संस्कृत हो।

२—समस्त अन्तर्राष्ट्रीय, संकेतों, प्रतीकों और सूत्रों को जैसे वे इस समय हैं इसी रूप में रहने दिया जाय।

३—अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिभाषाओं को उसी रूप में रहने दिया जाय यदि उनके लिए कोई उपयुक्त हिन्दी शब्द न मिले।

४—वैज्ञानिक और टेक्नीकल शब्द सारे भारत में यथासम्भव एक ही प्रकार के हों।

पूना सम्मेलन के परामर्शों को यदि द्विवेदीजी के भाषण के उक्त अङ्ग के साथ पढ़ा जाय और उसी के अनुकूल कोई विधि स्थिर की जाय तो मार्ग बन सकता है। पर यथार्थ यह है कि अभी तक अधिकांशतः 'पर उपदेश कुशलता' ही विशेष दीखती है। आगरा विश्वविद्यालय की 'हिन्दी इलक्टी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्यूट' यदि शीघ्र स्थापित हो सके, और वह इस कार्य को अपने हाथ में ले सके तो एक महान कार्य सम्पन्न हो सकता है।

देवनागर का पुनर्जन्म—

केन्द्रीय संसद की हिन्दी-परिषद की ओर से नई दिल्ली से 'देवनागर' का जन्म हुआ है। ४६ वर्ष पूर्व स्व० श्री शारदाचरण मित्र ने इसको निकाला था, जो अल्प आयु में ही बन्द हो गया था। अब निम्न उद्देश्य को लेकर उसका पुनर्जन्म हुआ है। हम इस पत्र का सहर्ष स्वागत करते हैं—

भारत की विभिन्न भाषाओं का साहित्य देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करना और इस प्रकार एक संश्लिष्ट भारतीय साहित्य के विकास में योग देना इस पत्र का उद्देश्य होगा। विषय सामग्री की रूपरेखा सामान्यतः इस प्रकार होगी—

१—(देवनागरी लिपि में) विभिन्न भाषाओं की प्रतिनिधि कृतियाँ तथा उनके हिन्दी अनुवाद अथवा टिप्पणियाँ।

२—विभिन्न भाषाओं की साहित्यिक गतिविधि पर हिन्दी में संक्षिप्त लेख।

३—अन्य भाषाओं में हिन्दी की कुछ विशिष्ट रचनाओं के रूपान्तर।

४—मूल उद्देश्य से सम्बद्ध सम्पादकीय आदि।

अपने विषय में—

इस अङ्क के साथ साहित्य सन्देश का चौदहवाँ वर्ष व्यतीत हो रहा है। १९३७ में साहित्य सन्देश का जन्म हुआ था। १९४२–४४ आन्दोलन के दो वर्षों को छोड़ कर जब अंग्रेज सरकार की कृपा से हमें जेल में रहना पड़ा था और हमारे प्रेस पर सरकारी ताला रहा था साहित्य-सन्देश प्रकाशित नहीं हो सका था—साहित्य-सन्देश ने हिन्दी की प्रगति में निरन्तर अपनी सेवा समर्पित की है। साहित्य सन्देश के जन्म के प्रायः साथ ही हिन्दी के आलोचना काल का जन्म हुआ है और आज उसका मध्याह्न है। इस बीच में आलोचना क्षेत्र में हिन्दी ने जो उन्नति की है हमें इसका गर्व है कि उसमें साहित्य सन्देश का भी बहुत बड़ा हाथ है। साहित्य सन्देश का जन्म ही आलोचना क्षेत्र में काम करने के लिए हुआ था और आज १४ वर्ष बीत जाने पर भी वह अपने पथ से रत्तीभर भी विचलित नहीं हुआ है। यही नहीं, उसके द्वारा वह पथ और भी प्रशस्त हुआ है।

साहित्य सन्देश की इस प्रगति का श्रेय उसके प्रेमी लेखक बन्धुओं और स्नेही ग्राहक अनुग्राहकों को है। साहित्य सन्देश का लेखक परिवार बहुत बड़ा है—असीम। उसका अपना कोई गुट नहीं है। सभी सुधी लेखक उसके अपने परिवार के लोग हैं। साहित्य सन्देश ने लेख आते ही कभी पहले लेखक को नहीं देखा—लेख को देखा। यदि लेख अच्छा है तो लेखक कोई भी हो—उसे छापा गया है। और यदि लेख अच्छा नहीं है या वह हमारे उद्देश्य के अनुकूल नहीं है तो भले ही वह प्रसिद्ध लेखक का हो—हमने उसे वापस करने में सङ्कोच नहीं किया है। हमारी यही नीति आगे भी रहेगी। इस नीति के द्वारा साहित्य सन्देश को पचासों नए लेखक उपलब्ध करने का गौरव मिला है और वह आशा करता है कि बड़े-छोटे सभी लेखक उसके प्रति ऐसा ही स्नेहभाव बनाए रक्खेंगे।

ग्राहक बन्धुओं से—

साहित्य सन्देश के इस अङ्क के साथ जिन ग्राहक महानुभावों का मूल्य समाप्त हो रहा है और ऐसे सज्जनों की संख्या कई हजार है—उनसे हमारा निवेदन है कि वे आगामी वर्ष का मूल्य शीघ्र ही मनीआर्डर से भेजने की कृपा कर दें। हमारे सभी प्रेमी बन्धु यह सुझाव दे रहे हैं कि साहित्य सन्देश में कागज अच्छा लगाया जाय और उसका 'गेट अप' सुधारा जाय। यह तभी सम्भव हो सकता है जब साहित्य सन्देश का मूल्य बढ़ाया जाय। हम मूल्य बढ़ाने के पक्ष में नहीं रहे हैं—पर जब सभी ओर से यह सुझाव आ रहा है तो हम भी यह सोचते हैं कि इस प्रस्ताव को मान लिया जाय। अभी अन्तिम निश्चय हमने नहीं किया है। यदि मूल्य बढ़ाया भी गया तो जिन लोगों का मूल्य पहले आजायगा उन्हें उस मूल्य के समाप्त होने तक इसी मूल्य में पत्र मिलेगा। इस सम्भावित सुविधा से भी मनिआर्डर भेजने वाले सज्जन लाभ उठा सकेंगे। मनिआर्डर न मिलने पर जुलाई का अङ्क वी० पी० से भेजा जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस का स्वरूप

(तेलुगु भाषा से अनुवादित)

अनु० श्री चर्ल जनार्दन स्वामी

[लेखक का संक्षिप्त परिचय—आन्ध्र प्रान्त श्री मुटनूरि कृष्णारावजी का चिर ऋणी है। आप आन्ध्र के प्रसिद्ध विद्वान्, संपादक तथा निबन्धकार थे। आपने, अपनी 'कृष्णा पत्रिका' के द्वारा, जो कि आन्ध्र जनता में सर्वाधिक समादरणीय स्थान पा चुकी है, आन्ध्र साहित्य तथा जनता की अनुपम सेवा की थी। आप उच्च कोटि के विचारक तथा समालोचक भी थे। आपने राष्ट्रीय आन्दोलन में भी काफी हद तक हाथ बँटाया। आपके लिखे निबन्ध बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में संकलित हैं। आपकी भाषा मधुर तथा मँजी हुई होती है।

आपकी 'कृष्णा पत्रिका' का कार्यालय आन्ध्र प्रान्त का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर 'मछिलीपट्टणम' में स्थित है, (जो कि मध्य-प्रान्त (Central Province) के वर्तमान राज्यपाल माननीय डा० पट्टाभि सीतारमैया जी का वास-स्थान था।) आज भी 'कृष्णा पत्रिका' आन्ध्र प्रान्त में लोकप्रिय है और श्री काटूरि वेंकटेश्वररावजी वर्तमान सम्पादक हैं। आपका कार्यालय एक साहित्यिक दरबार था, जहाँ आप कितने ही उदीयमान कलाकारों का पथ-प्रदर्शन करते थे।

अपनी जन्म-भूमि तथा मातृ-भाषा की अनन्य सेवा कर के यह साहित्यकार १९४३ ई० में अमर हो गये।]

ऐसा कौन होगा, जो कि 'राधामाधव विलास', 'गीत गोविंद', 'कृष्ण कर्णामृत' आदि काव्यों के गीतामृत का पान करके भावावेश में उन्मत्त न हो जाय? संस्कृत को छोड़ कर अन्य भाषाओं के साहित्य में दुर्लभ, इस काव्य वर्णन से उपलब्ध होने वाली यह रस-दशा अनुभव गम्य ही है। इसका वर्णन करके बताना किसके बस की बात है?

"विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा,
प्रमोदो निद्रा वा किमु विषसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे ममहि परिमूढेन्द्रिय गणो
विकाराश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च॥"

इस प्रकार रचित, उस प्रकाश, आनन्द, तथा चित् से परिपूर्ण रूप के बारे में मैं कैसे कह सकता हूँ कि वह इस प्रकार का है? अद्वैतवादी उस अपूर्व वस्तु को भले ही मिथ्या कहें! ब्रह्मसमाजी उस लीला मानुष विग्रह को, उसे अलौकिक बताना कह कर भले ही अवहेलना करें। 'प्यूरिटेन' लोग उस मधुर रस को रक्त और माँस के उत्तेजना कह कर, भले ही उसका निषेध करें, किन्तु जो मनुष्य नहीं है, जो मूर्तिमान नहीं है, उसकी उपासना मैं कैसे करूँ? अगर मैं समझूँ कि मेरा आराध्य देव मनुष्य नहीं है, मूर्तिमान नहीं है, तो रसभंग के सिवा और क्या होगा? जहाँ ममता का गन्ध नहीं उस निराकार तत्व में रसास्वादन कैसे सम्भव हो सकता है? क्या यह लीला मानुष विग्रह, वन्ध्या के पुत्र के समान असम्भव कल्पना है? केवल कल्पना के बल पर भले ही पुलक और अश्रु प्रकटित हो, फिर भी आत्मिक विकार मात्र ही है। सात्विक भाव कदापि नहीं है। मृदङ्ग की आवाज सुनते ही अपने आप ही पैर नाच उठता है। मगर हृदयांतराल के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब भावनाओं की तरंगें उमड़ पड़ती हैं, और समस्त अङ्ग चेतनशील होकर नाचने लगते हैं, तब होने वाली नाच में और केवल मृदङ्ग की आवाज से अपने आप शुरू हुई नाच में आकाश पाताल का अन्तर है। पदों का झङ्कार, उनका छन्द, उनका रूप, मानव की स्नायु मण्डली को उत्तेजित करके, पुलक और अश्रुओं को, अङ्ग विलासों को जन्म दे सकते हैं। मगर इसमें सच्ची रसानुभूति कहाँ? परम्परागत क्रियों पर विश्वास रखने वाला वह संसार भ्रम में पड़ता है कि जो मुख पर छापा-तिलक, गले में मालायें, हाथ में करताल लेकर मिथ्या भक्ति का प्रदर्शन करते हैं, उनके स्नायुओं की उत्तेजना के कारण उत्पन्न दशा ही रसानुभूति है। इसी वजह से 'गीत-गोविन्द' आदि महान काव्यों की अश्लील कीर्ति पर चर्चा लगती है।

जयदेव आदि महाकवियों के साहस का हम किन शब्दों में वर्णन करें? उन्होंने सर्वान्तर्यामी, सर्वातीत, परब्रह्म को एक साधारण मनुष्य बना दिया है! क्या केवल यह कवि का कौशल ही है? इस अनन्त मानव कोटि का सृजन, पालन, इत्यादि कार्य करने वाला, मानव ही है? अगर मनुष्य का रूप नित्य हो, तो मानव धर्म को भी नित्य होना चाहिए। अगर नर का रूप नित्य सिद्ध न हो तो, क्रमागत रीति से इतने नर रूपों की उत्पत्ति कैसे होती है? अगर नर प्रकृति अनादि न हो तो यह नर प्रकृति धाराबाहिक रूप से कैसे विकसित होती है? नर रूप विश्वजनीन है, नित्य सिद्ध है। वही विभिन्न देशों तथा विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अभिव्यक्त हो रहा है। वह रूप परिपूर्ण है। इन व्यक्तियों का रूप तो अपूर्ण है। वह अनादि नर प्रकृति देश और काल से अतीत है। मगर यह प्रकृति देश और काल की सीमाओं के अन्दर आंशिक रूप में प्रकट होती है। उस प्रकृति की पूर्णता ही हमारी अपूर्णता का निदर्शन है। इस में पर्यवसित होने वाली प्रकृति उसमें यदा कदा प्रस्फुटित होती है।

मनुष्य में स्वभावतः रूप लालसा विद्यमान है। वह कहाँ से आई? समस्त नारी तथा नर रूपों में निहित विश्व मानव रूप के लिये हमारी आँखें अन्वेषण करती रहती हैं। अपने गुणों से हमें स्वाभाविक आकर्षण की कोई जरूरत नहीं है। हमारा हृदय उस अनन्त गुण की खोज करता है। हमारे इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, सब कुछ उसी लीला मानुष विग्रह को जानने के लिये, उसी को देखने के लिए, स्पर्श करने के लिए तथा भोग करने के लिए लालायित होते रहते हैं। मानव के समस्त उद्यम, सकल चेष्टायें, नर में अन्तर्निहित उसी नरोत्तम को, पुरुष में स्थित पुरुषोत्तम को पाने के लिए ही हैं। नरोत्तम के लिए नर का, नर के लिए नरोत्तम का, निरन्तर अन्वेषण चल रहा है। इसी वजह से एक नर दूसरे नर को पहचानने में समर्थ हो रहा है, प्रेम कर रहा है। जिस चीज को खुद नहीं जानता, उसको पाने के लिए कोशिश कर सकता है? अगर भगवान और मनुष्य में कोई सजातीय धर्म न हो तो हम उसका भजन नहीं कर सकते। जहाँ भाव की ऐक्यता नहीं, वहाँ भजन कैसे सम्भव हो सकता है? अगर हम चाहते हैं कि ईश्वर का भजन हमारे लिए सुसाध्य हो, तो— या तो मानव को ईश्वर बनना पड़ता है, नहीं तो ईश्वर को मानव बनना पड़ता है। ईसाई साधकों ने ईश्वर को आसमान से पृथ्वी पर उतार कर मनुष्य बना के, भजन को सुलभ साध्य बना दिया। लेकिन हिन्दुओं ने मनुष्य को ही ऊपर उठाया और ब्रह्म से एकीकृत किया। अगर ईश्वर को नीचे उतारते हैं तो उसके ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा की हानि होती है।

ईश्वर की मानवता सच्ची है या आरोपित है? अगर ईश्वरत्व और मानवत्व परस्पर विरोधी तत्व हों तो ईश्वर सचमुच मानव नहीं बन सकता। कुछ तत्व ज्ञानवेत्ताओं ने ईश्वर की मानवता को माया बताया। शङ्कराचार्य स्वामी ने भगवद्गीता के 'सम्भवामि' शब्द की व्याख्या करते हुए उसमें 'इव' जोड़ दिया और यह कह कर कि "मनुष्य की तरह मैं जन्म लेता हूँ", मनुष्यता को मायावस्तु के रूप में सिद्ध किया। ईसाई धर्म में भी यह मायावाद मौजूद है। प्राचीन ईसाइयों में कुछ लोगों ने ईसाई लीलाओं को 'Apparent' (अप्पेरेण्ट) कहा था। शङ्कराचार्य स्वामी के 'इव' शब्द में, ईसाइयों के 'अप्पेरेण्ट' शब्द में विशेष अन्तर नहीं है। कुछ आचार्यों ने इस स्वतः व्याघात का विरोध करके कहा—'गुड़ परब्रह्म मनुष्य लिङ्ग' परब्रह्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निगूढ़ स्वरूप ही नर रूप है। 'उत्तमं रहस्यं' कह कर, परब्रह्म के नित्यसिद्ध नर रूप होने के कारण ही, भगवद्-गीता ने क्षर और अक्षरों को अन्तर्भुक्त करके पुरुषोत्तम के स्वरूप का निर्देशन किया है। श्रीमद्भागवत यहीं तक रुकी नहीं। उसने पुरुषोत्तम को निखिल रसामृत मूर्ति के रूप में सिद्ध किया।

रस इन्द्रिय गोचर वस्तु नहीं है। 'गूँगे के गुड़' की भाँति आन्तरिक अनुभूति द्वारा ही जाना जा सकता है। प्रेम को किसी ने आँखों से नहीं देखा, कानों से नहीं सुना, जिह्वा से उसका स्वाद न लिया। किन्तु रस और इन इन्द्रियों का गहरा सम्बन्ध है। रूप का आश्रय लिये बिना, इन्द्रियों की प्रेरणा को प्राप्त किये बिना, इस प्रेम का जन्म ही नहीं होता। इसका विकास नहीं होता। प्रेम, रूप के अभाव में प्रकाशित नहीं होता। बत्ती में पैदा होकर भी दीपशिखा उससे परे हो जाती है। इसी प्रकार प्रेम भी किसी सुन्दर व्यक्ति के नेत्र कमल, अङ्ग विलास, तनुशोभा आदि के द्वारा उत्पन्न होकर उन सब से परे हो जाता है। मन के भावरूप में रहने वाले कामक्रोध आदि, शरीर के सारे अङ्गों में सात्विक व्यापार तथा विलासों के विशिष्ट रूपों में प्रकट होते हैं। प्रेमोन्मत्त के रूप को देख कर हम उसकी दशा को पहचान सकेंगे। इसी प्रकार जब रस भी हृदय के अन्दर से मनुष्य के अङ्ग प्रत्यङ्ग में उलझने लगता है, तब उसका वह रूप रसमूर्ति बनता है। उस तरह की सब रस मूर्तियाँ रस को उद्दीप्त करती हैं। जब रस विलास प्रत्यक्ष होता है, तब मेरे अन्तस्थल में भी रसका उदय होता है। अचेतन दशा में पड़े हुए मेरे भाव, सचेतन हो कर मनोवीथियों में विहार करने लगते हैं। हास्यरस का जब स्वाद लेता हूँ तब अधरों पर हँसी की रेखा दौड़ पड़ती है। प्रेम विवश मूर्ति को जब देखता हूँ तब मुझमें भी प्रेम का भाव उद्दीप्त हो उठता है। आन्तरिक रस और बाहरी रस में कोई घनिष्ट सम्बन्ध न हो तो हमारे हृदयान्तराल में सुप्त रस जागृत नहीं हो सकते। हरेक रस का अपना एक विशिष्ट रूप होता है। उसके आधार पर ही वह रस उमड़ पड़ता है। अगर वह आलम्बन हीन हो तो रस का जन्म तथा योग्यता ही नहीं। जिसमें समस्त रस मूर्तिमान हो गये, हमारे हृद्गत भाव जिसका अन्वेषण करते रहते हैं, जिसका आभास मिलते ही सुप्त रस जागृत हो कर नाचने लगते हैं, उसी को निखिल रसामृत मूर्ति कहा जा सकता है।

श्री जयदेव कवि ने श्रीकृष्ण के रस विलास का, रूप संपत्ति के साथ चित्रण करके, इन्द्रियों की अनुभूति तथा इन्द्रियों से अतीत रसानुभाव का घनिष्ट सम्बन्ध अनुपम रूप से प्रदर्शित किया। हमारी सब इन्द्रियों को उस अमृत मूर्ति की प्राप्ति के लिये सतत तृष्णा होती है। किन्तु इस इन्द्रिय राज्य में उस अमृत मूर्ति का अनुसंधान नहीं कर सकते। वह चीज उस अतीन्द्रिय राज्य से आत्मा के दहराकाश के भीतर से इन्द्रियों के सम्मुख बिजली की रेखा की भाँति चमक जाती है, स्थिर सौदामिनी की तरह प्रकाशित नहीं होती। इसी कारण से आँखें प्रत्येक रूप में भ्रमर की भाँति चञ्चल होकर भटकती फिरती हैं। मनमोहक आकृति को बार-बार देखने की इच्छा होती है। आँख समझती हैं कि वह प्रीति उस रूप में है। किन्तु थोड़ी देर तक देखकर वह असफल होती हैं और उसको प्राप्त नहीं कर पाती। सब इन्द्रियों की यही दशा होती है। वह अमृत मूर्ति किसी की पकड़ में नहीं आती। ये इन्द्रिय उसको पकड़ने के लिए दौड़-धूप करते हैं। वाह कैसा भ्रम है! उस प्राण तुल्य मोहन मूर्ति का, उसके सुन्दर तथा मधुर रूप का, जब तक हम अपने अनुभव से दर्शन नहीं करपाते, तब तक 'गीत गोविन्द' आदि का लाख कीर्तन करें या सुनें, तो भी वह सिर्फ दिल बहलाव की ही चीज होगी। जब हम 'कृष्ण-कर्णामृत' को खोलकर श्रीकृष्ण के रूप, गुण तथा लीलाओं का वर्णन पढ़ते हैं, तब यह प्रश्न न उठाना चाहिये कि श्रीकृष्ण ईश्वर हैं या मनुष्य? अगर प्रश्न करोगे तो सारा मजा किरकिरा हो जायगा। हृदय का उमड़ता हुआ आनन्द-सागर सूख जायगा। मेरे प्राणों के मर्म के भीतर, समस्त प्रकृति के हृदय मध्य में, तीव्र वेदना उत्पन्न करने वाली रस पिपासा को सन्तुष्ट कर सकने वाला कौन है! ईश्वर रूप-रहित है! मैं रूप देखना चाहता हूँ। ईश्वर अरस है? मैं रस का भोग करना चाहता हूँ। ईश्वर अगंध है! मैं गंध का आस्वादन करना चाहता हूँ। इन्द्रियों की शांति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये मैं आनन्द का द्वार बन्द करना नहीं चाहता। अगर मैं उसको बन्द करूँ तो मेरी मनुष्यता का ही अन्त हो जायगा। जो वस्तु मैं नहीं हूँ, उसकी प्राप्ति की आशा मैं कैसे कर सकता हूँ? ईश्वर को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध से रहित बनाकर मैं अपने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की तृप्ति कैसे कर पाऊँगा? अथवा, इनको सिर्फ मैं मनुष्य के ही वर्ग में रखकर, उन्हें मैं कैसे सार्थक कर ले सकता हूँ? मेरे अन्तस्थल के मानव को छोड़कर बाहर किसी अरूप या अदृश्य शक्ति का अन्वेषण करने में मुझे तृप्ति नहीं मिलती, वह अदृश्य शक्ति मुझे अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकती, मेरे प्राण किसी मित्र का आलिङ्गन करके संतृप्त होना चाहते हैं, किन्तु वह पूर्ण संतुष्टि नहीं दे सकता। इस दोनों के अंतर से कोई हमको इस असंतुष्टि के द्वारा अपनी ओर आकर्षित करता है। एमर्सन कवि ने कहा—'Love in me nods to love in you' मित्र जितना समीप रहते हैं उतनी दूर होते हैं। जितनी तृप्ति होती है, उतनी क्षुधा भी होती है। अपने मित्र को छोड़ें तो भी तृप्ति नहीं, उसके साथ रहें, तो भी तृप्ति नहीं। तब मेरा प्राण क्या चाहता है? जो इन्द्रिय रहित होते हुये भी सर्वेन्द्रियों के गुणों के आभास से सम्पन्न है, जिसमें कल्पना, सत्य बनती है और सत्य, कल्पना बनता है, जिस को मैं देखते हुये भी देख न पाता, जिसको स्पर्श करते हुये भी स्पर्श न कर पाता, समस्त रसों में डुबकियाँ लगाते हुये भी, किसी भी रस में जिसकी पूर्णानुभूति प्राप्त नहीं कर पाता, उस सखा उस वल्लभ अथवा उस रमण की मुझे जरूरत है। उसके प्रत्यंग सांगत्य के लिये मेरा प्राण तड़पता रहता है। मेरा प्राण स्वर्ग के ईश्वर को नहीं चाहता। मर्त्य स्वभाव से युक्त, उदय तथा अस्त शील, रोग, शोक, जरा, मृत्यु आदि से पीड़ित मनुष्य को भी मुझे चाह नहीं है। मेरा प्राण तो मनुष्य को ही चाहता है। मगर वह कैसा मनुष्य है? जो रोग, शोक, जरा आदि से मुक्त, नित्यानंद स्वरूप तथा रस मूर्ती होकर मेरी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर सकता है, देह इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और आत्मा से अनुभव्य होकर मानवता को समग्र, सम्पूर्ण तथा सार्थक बना सकता है, उस तरह के हमारे रसामृत का मूर्तिमान मनुष्य मुझे चाहिये। इस मनुष्य की मूर्ती को साकार करने वाले कवि, गायक, चित्रकार और शिल्पकार कहाँ हैं? कहीं भी दृष्टिगत नहीं होते। आंशिक रूप में अनेकों ने इसका चित्रण किया है। श्रीमद्भागवत, गीत-गोविन्द तथा कृष्ण कर्णामृत ने छाया मात्र ही प्रकट किया है। सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त करना असाध्य है। कोई भी उस परम तत्व को विशुद्ध मानव प्रकृति सपन्न पुरुष के रूप में चित्रित करने का साहस न कर सका। उसमें सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि रस बोध मात्र को आभास के रूप में चित्रित कर सके।

यद्यपि हम संसार में ये सख्य, वात्सल्य आदि सम्बन्ध पाते हैं, तथापि रसानुभूति दुर्लभ है। इन सम्बन्धों के दो विशेष धर्म होते हैं। (१) तरलता (२) आनन्द। तरलता से मतलब है सर्वत्र सञ्चार करने वाला। सब में प्रवेश करने वाला। जहाँ आनन्द का सञ्चार होता है वहाँ सुख की उत्फुल्लता होती है। रस का मुख्य धर्म है, सर्व सञ्चार शीलता और सर्वानन्ददान। ये धर्म तो थोड़ी-बहुत मात्रा में इस संसार में भी पाये जाते हैं। ये सांसारिक सम्बन्ध भी तरल और सुखमय होते हैं, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन उनका विकास नहीं होता। वे सम्बन्ध देह, मन और प्राण पर्यन्त भी व्याप्त नहीं हो सकते। तब कहने की क्या जरूरत है कि उनका अतिक्रमण नहीं कर सकते? देह, मन और प्राण से सम्बन्धित होकर, जब तक उनसे परे हुये बिना रहते हैं, तब तक उनको हम रस नहीं कह सकते। सख्य रस को देखिए! जब यह सख्य रस देह, मन, प्राण से परे होने लगता है, तभी सखा का जीवन सुखमय होता है। पाँचों इन्द्रिय सखा की प्राप्ति के लिए व्याकुल होते रहते हैं। मन अविराम गति से सखा के रूप का ध्यान करता रहता है। दोनों देहों में एक ही प्राण स्पन्दित होता रहता है। सुख दुःखों में दोनों की पूर्ण ऐक्यता होती है। जागृत दशा स्वप्न दशा-सी प्रतीत होती है। देह, प्राण और मन परस्पर समग्रता के लिए अविराम वेदना पाते हैं। देह की स्नायु-मण्डली उत्तेजित होती है। प्राणों की आकांक्षा प्रज्वलित होती है। मन अपनी भाव-नाओं से नूतन जगत का सृजन करता है। चाहे आँख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूँदें या खोलें परस्पर रूपों का अवलोकन होता रहता है। चाहे ब्रह्म श्रुति कुछ न हो फिर भी कानों में कुछ शब्द सुनाई पड़ता है। बहरी इन्द्रियों से साक्षात्कार न होने पर भी पाँचों इन्द्रिय अपने सखा के सांगत्य का सुख भोगते हैं। स्वेद, कंप, पुलक, अश्रु, आदि सात्विक लक्षण प्रकट होते हैं। तब देह और आत्मा, इन्द्रिय और अतीन्द्रिय का अन्तर मिट जाता है। आत्मा देह के धर्म, तथा देह, आत्म के धर्म उपलब्ध करती हैं। आत्मा देह में प्रकट होती है, देह आत्मा में लीन हो जाती है। यह अपूर्व स्थिति अनिर्वचनीय है। जिसने अखण्ड रस के एक कण का भी आस्वादन किया हो, उसके लिये यह निरी कल्पना की बात नहीं है। शैशव-काल के उपरान्त यौवनोदय के समय में, जिसने इस सखा रस का थोड़ा सा स्वाद न पाया हो, ऐसा अभागा कौन होगा?

यह रस मानसिक वस्तु है? नहीं। दैहिक वस्तु है? नहीं। वह मानसिक वस्तु हो सकती है, किन्तु वह इन्द्रिय रहित मानस नहीं। वह आत्मिक वस्तु हो सकती है, मगर वह आत्मा शरीर से पृथक आत्मा नहीं है। उस वस्तु में, शब्द और अशब्द, रूप और अरूप, एक अनुभूति के रूप में मिश्रित होते हैं। इसको केवल आत्मिक भाव के रूप में बताना जितना असत्य है, रक्त माँसों की और स्नायुओं की उत्तेजना का फल कहना उतना ही असत्य है। रस को शरीर के समस्त धर्मों से शून्य, इन्द्रिय सम्पर्क रहित बताने वाले यह बिल्कुल नहीं जानते कि रस का क्या स्वरूप होता है? मतलब यह है कि उन्हें रसास्वादन का भाग्य कभी प्राप्त हुआ ही नहीं। इस रस को केवल इन्द्रिय विकार कहने वाले लोगों को भी रस का बिल्कुल ज्ञान नहीं है। अतीन्द्रिय वस्तु इन्द्रियों का सहारा लेकर अपना विकास कर लेती है। इसी विकास में रस की अभिव्यक्ति होती है। रस, इन्द्रिय राज्य में जन्म लेकर अतीन्द्रिय राज्य में अपनी लीला दिखाता है। इसका मर्म जो जानते हैं, वे ही बता सकते हैं कि रस वस्तु कैसी होती है।

वस्तुओं का अनुभव पहले इन्द्रियों की सहायता से उत्पन्न होता है। यह अनुभव और रस एक ही वस्तु नहीं है इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होने वाला वस्तु-साक्षात्कार ही अनुभव है। (अनु०—पश्चात् ; भव—जन्म लेने वाला)—(Perception)। यह अनुभव सिर्फ मानवों को ही नहीं, प्रत्युत समस्त पशु, पक्षी, कीट आदि को भी साधारण रूप से मिलता है। रस वस्तु तो इस अनुभव से भिन्न होती है। किन्तु वह इसी पर आश्रित है। दूसरी तरह से वह उत्पन्न हो ही नहीं सकती। रस, अनुभव के अधीन है। अनुभव इन्द्रियों के अधीन है। अनुभव के बिना जो रस होगा, वह केवल वस्तु तन्त्र रहित कल्पना मात्र ही है। वह वास्तविक रस नहीं है। इन्द्रियों के साक्षात्कार से उत्पन्न अनुभव को छोड़ कर और कहीं रस का जन्म नहीं होता। अनुभव तो इन्द्रियों का अतिक्रमण करके अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। किन्तु रस तो अनुभव में जन्म लेने पर भी, उस अनुभव को ही नहीं, अतीत अनुभवों को भी जगा कर उन सब से परे हो जाता है। साधारण रूप से, आँख दूसरे इन्द्रियों का काम नहीं कर सकती। किन्तु जब इन्द्रियों का अनुभव रस के रूप में परिणत हो जाता है, तब सिर्फ आँखों को ही नहीं बल्कि सकल इन्द्रियों को, रूप संस्पर्श के कारण, पिपासा पैदा होती है। चक्षुरिन्द्रिय के अनुभव में प्रायः रूप, वर्ण और घटना इन तीनों का ज्ञान होता है। परन्तु जब यह अनुभव रस का रूप धारण कर लेता है, तब वह रूप केवल चक्षुओं का ग्राह्य रूप नहीं है। रसावेश में प्रकट होने वाला रूप बुद्धि ग्राह्य, ध्यानगम्य और चिन्मय है। जो चक्षुजन्य अनुभव में आनन्द पाते हैं, उनमें रसोदय होने वाला है, ऐसा हम कह सकते हैं। "य तो भावः ततो रसः"। नाम सुनते ही समस्त इन्द्रिय जब उन्मत्त होते हैं, तब हम कह सकते हैं कि रस का आवेशन हुआ है। तब एक ही इन्द्रिय बाकी सब इन्द्रियों का काम कर सकता है। यह इन्द्रिय राज्य से अतीन्द्रिय राज्य में जाने की अवस्था का सूचक है। अनुभव तो बीज है, रस तो वृक्ष है। रस का अर्थ अंग्रेजी का 'फीलिङ्ग' (Feeling) नहीं है। आलङ्कारिक जिसे रोमान्स (Romance) कहते हैं, वह आंशिक रूप में रस का निर्देशन करता है। रस इन्द्रियों के द्वारा पैदा होकर, इन्द्रियों का अतिक्रमण करता

(शेष पृष्ठ ४९३ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरसागर में रामकथा

श्री केदारदत्त जोशी

सूरसागर के नवम स्कन्ध में एक सौ सत्तावन पदों में संक्षिप्त रूप से रामकथा कही गई है। कथा में प्रबन्धात्मक गठन नहीं है परन्तु मुख्य मुख्य घटनाओं एवं प्रसङ्गों के सङ्कलन और वर्णन में लगभग वही क्रम पाया जाता है, जो अन्य रामकथाकारों ने रखा है। वास्तव में रामकथा सूरसागर में वर्णित एक प्रसङ्ग मात्र है। जिस प्रकार कोई पथिक अपनी यात्रा में प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को देख कर क्षण भर विश्राम कर लेता है और उनकी प्रशंसा करने लगता है, उसी प्रकार सूरसागर का कवि भी भागवत की कथा कहते-कहते कुछ विराम-स्थलों पर पहुँच कर स्वतः अपनी भावनाओं को मुखरित करने लगता है। सूरसागर में रामकथा और कृष्णकथा ऐसे ही विराम-स्थल हैं। सूरसागर में भगवान के चौबीस अवतारों का वर्णन किया गया है। दशम स्कन्ध में कृष्णकथा के वर्णन में कवि की भावनाएँ जल में पड़े हुये भँवर की तरह अत्यन्त गतिशील हो जाती हैं; कृष्णावतार के पश्चात रामावतार की महिमा इसमें विस्तार से गाई गई है। अन्य अवतारों का वर्णन केवल कथानक की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, परन्तु रामावतार और कृष्णावतार के वर्णन काव्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट हैं।

सूरदास ने रामावतार का कारण भागवतकार की भाँति ही दिया है और वह इस प्रकार है—

एक दिन ब्रह्मपुत्र सनकादि हरिदर्शन के लिए बैकुण्ठ लोक में गये। वहाँ जय-विजय नामक द्वारपालों ने उन्हें रोका। इस पर सनकादि ऋषियों ने क्रुद्ध होकर उन्हें राक्षस हो जाने का शाप दे दिया। हरि ने भी आज्ञा दे दी कि वे राक्षस होकर संसार में रहें और तीसरे जन्म में उनसे मिलें। जय विजय राक्षस योनि पाकर हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप कहलाये और देवताओं को दुःख देने लगे। तब भगवान ने वाराह रूप और नृसिंह रूप धारण कर इनका संहार किया; तीसरे जन्म में यही राक्षस रावण और कुम्भकर्ण हुए और इनका उद्धार करने के लिए राम प्रकट हुये।

बालकाण्ड के आरम्भ में ही रामजन्म का वर्णन किया गया है। महाराज दशरथ के घर में भीड़ लगी हुई है। अयोध्या में बधाइयाँ बज रही हैं। फिर धनुष-बाण लिए हुए राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की बाल शोभा, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, अहल्या-उद्धार, धनुषभंग, पाणिग्रहण और परशुराम-मिलाप, इन प्रसङ्गों का क्रमशः सक्षिप्त वर्णन करते हुए बालकाण्ड की कथा समाप्त की गई है। दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में कवि बाल कृष्ण की छवि का वर्णन करते हुए अघाता नहीं परन्तु राम की बाल शोभा के वर्णन में उसने दो ही छन्द लिखे हैं।

अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में राम-वन-गमन का प्रसंग है। महाराज दशरथ अब का राज्य राम को देकर स्वयं वन को चले जाना चाहते हैं। इसी समय कैकेयी पहले दिए हुए दो वचनों का स्मरण दिला कर राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत को राजपाट देने के लिए उनसे प्रार्थना करती है। यह सुनकर राजा दशरथ अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं, परन्तु राम पिता की आज्ञा समझ कर वन जाने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। सीता और लक्ष्मण को भी उनकी ओर से तुरन्त ही साथ चलने की आज्ञा मिल जाती है। राम के वन चले जाने पर अवधवासी अत्यन्त दुखी होते हैं। वन गमन के अवसर पर सूरदास ने मानस के कवि की भाँति कैकेयी विषयक कथानक का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। मन्थरा का नाम भी इसमें नहीं आता। उन्होंने उपदेशों के विस्तार से भी कथानक को बचा लिया है।

इसके पश्चात केवट प्रसंग और पुर-वधू प्रसंग आते हैं। इनका वर्णन मानस और सूरसागर में समान रूप से किया गया है। पुरवधू प्रसंग में पुर-वधुएँ सीता से पूछती हैं कि उनके साथ श्याम और गौरवर्ण पुरुष कौन हैं, अथवा उनमें से कौन उसके पति हैं? सीता मानस और सूरसागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों में भारतीय नारी की सहज संकोच युक्त विधि से इस प्रश्न का उत्तर देती है—

कोटि मनोज लजावनि हारे।
सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे॥
सुनि सनेह मय मंजुल बानी।
सकुची सिय मन महँ मुसकानी॥
× × ×
सहज सुभाय सुभग तन गोरे।
नाम लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयनि।
निजपति कहेउ तिन्हहि सिय सयनि॥

(मानस)

× × ×

(१) कौन बरन तुम देवर सखि री, कौन तिहारो नाथ?
कटि तट पट पीताम्बर काछे, धारे धनु तूनीर।
सोई बरन मेरे देवर सखि, पिय श्याम शरीर॥

(२) इनमें को पति औहि तिहारे पुरजनि पूछैं धाइ।
राजिव नैन सैन की मूरति, सैननि दियो बताइ॥

(सूरसागर)

इधर अयोध्या में महाराज दशरथ राम के वियोग में देह त्याग देते हैं। भरत दशरथ और राम के बिना सूनी अयोध्या में अत्यन्त खिन्न हो जाते हैं और कैकेई के कपट व्यवहार की भर्त्सना करते हैं:

राम जू कहाँ गये ही माता?
सूनो भवन सिंहासन सूनो, नाहीं दशरथ ताता।
धृग तव जन्म, जियन धृग तेरो, कही कपट मुख बाता।
मेवक राज, बास बन पठये, यह कब लिखी बिधाता।
मुख अरविन्द देखि हम जीवत, ज्यों चकोर ससि राता।
सूरदास श्री रामचन्द्र बिनु कहा अजोध्या नाता।

फिर गुरु वशिष्ठ के आदेशानुसार राजा दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया कर वे राम को घर लौटा लाने के लिए चित्रकूट जाते हैं। वहाँ रामचन्द्र जी उन्हें उपदेश देते हैं और वे पादुका लेकर घर लौट जाते हैं:—

बन्धु, करियौ राज सँभारे।
राजनीत अरु गुरु की सेवा, गाइ बिप्र प्रतिपारे।
कौसल्या-कैकई सुमित्रा-दरसन साँझ सबारे।
गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमन्त सौं, परजा हेतु बिचारे।
भरत गात सीतल ह्वै आयौ नैन उमँगि जल ढारे।
सूरदास प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारे।

सूरसागर के भरत बड़े नम्र, विनयी और संयमी हैं। कठिन दुख आ पड़ने पर भी वे धीर और गम्भीर बने रहते हैं। मानस के भरत कैकेई के प्रति क्रोध नहीं रोक सके हैं और आवेश में उसे बुरा भला कह देते हैं:

जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ।
खंड खंड होइ हृदय न गयऊ।
बर माँगत मन भई नहि पीरा,
गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।

परन्तु सूरसागर में वे इस क्रूर कर्म का कारण आने को समझकर बड़े दुखी होते हैं, "मो अपराधी के हित कारण, तैं रामहिं बनवास दियौ।"

अरण्यकाण्ड में सूर्पनखा-नासिकोच्छेदन, खर दूषण वध, सीताहरण, जटायु और शबरी उद्धार के प्रसङ्ग हैं जो बड़े करुण हैं। साधारण मानव की भाँति राम सीता के वियोग में शोकाकुल हो जाते हैं:—

रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत।
हाथ धनुष लीन्हे कटि माथा,
चकित भये दिसि बिदिसि निहारत।
निरखत सून भवन जब ह्वै रहे,
खिन लोटत धर, वपु न सँभारत।
हा सीता, सीता कहि सियपति,
उमड़ि नयन जल भरि-भरि ढारत।
लगत सेष कर बिलखि जगत गुरु,
अद्भुत गति नहिं परति बिचारत।
बितत चित्त सूर सीतापति,
मोह मेरु दुख टरत न टारत।

सीता की खोज करते हुए एक दिन राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचते हैं वहाँ सुग्रीव अपने भाई बालि के भय से भागकर रहता था, राम और लक्ष्मण को देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर वह भयभीत होता है और हनूमान को उनके पास भेजता है। फिर स्वयं भी राम के सम्मुख आकर विनती करता है, राम बालि का वध करके किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को देते हैं। इसके उपरान्त बानरों का समूह सीता की खोज में निकल पड़ता है। यहाँ तक किष्किन्धा काण्ड की कथा है।

सुन्दर काण्ड के आरम्भ में ही सूरदास ने सीता की खोज में गये हुये बन्दरों के समूह को समुद्र पार करने के लिए केशरीसुत हनुमान की प्रशंसा करते हुए दिखाया है। हनुमानजी प्रभु का नाम लेकर एक ही छलाँग में समुद्र को लाँघ जाते हैं। लङ्कापुरी के ऐश्वर्य को देख कर हनुमानजी चिंतित हो जाते हैं और चारों ओर घूम-फिर कर भी सीता का पता नहीं पाते। कभी सोचते हैं कि सम्भवतः सामने देखकर भी वे सीता को न पहचान सकें क्योंकि पहले तो उन्होंने सीता को देखा नहीं है। और कभी शङ्का होती कि कहीं राक्षसों के भय से सीताजी समुद्र में न डूब मरी हों। अपने तथा अपने पूर्वजों के बल और पराक्रम पर गर्व करने वाले हनुमानजी यह सोच-सोच कर दुखी होते हैं कि सीता का पता लिये बिना वे राम, सुग्रीव, अङ्गद और जामवन्त के सम्मुख कैसे उपस्थित होंगे।

रावण के नग और मणिरत्नों से सुसज्जित, सुगन्धित वायु से परिपूरित तथा अन्यान्य ऐश्वर्य-साधनों से परिपूर्ण महलों में सीता को न पाकर हनुमानजी अशोकवाटिका में पहुँचते हैं जहाँ अनेक निशिचरियाँ सीता को घेरे हुए हैं। हनूमानजी एक पेड़ की शाखा पर बैठ जाते हैं। इसी समय निशिचरियाँ सीता से रावण के ऐश्वर्य की चर्चा करती हैं। फिर रावण भी स्वयं आकर सीता को लङ्कापुरी के ऐश्वर्य का लालच और भय दिखाकर लङ्का की रानी बनाना चाहता है। परन्तु रावण के कुतर्क सीता को छू भी नहीं सकते और वह रावण का तिरस्कार करती है :—

कठिन बचन सुनि श्रवन जानकी, सकी न बचन सँभारि।
मुख अन्तर दै दृष्टि तरौंधी, दियौ नयन जल डारि।
पापी जाउ जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात बिचारी।
सिंह को भच्छ सृगाल न पावै, हौं समरथ की नारी।
मेरी हरन भरन है तेरी, स्यौं कुटुम्ब-सन्तान।
जरि है लङ्क कनकपुर तेरौ, उदवत रघुकुल भान।
रे दशकन्ध अन्धमति तेरी, आयु तुलानी आनि।
सूर राम की करत अवज्ञा, डारैं सब भुज भानि।

अशोकवाटिका में सीता को सान्त्वना देने वाली केवल त्रिजटा नाम की राक्षसी है। वह अपने स्वप्न की बात सीता से कहती है 'मैंने स्वप्न में देखा कि राम ने राक्षसों का संहार कर लङ्का का राज्य विभीषण को देदिया है और राम, लक्ष्मण और सीता विमान पर बैठे हुए हैं।'

फिर सीता को अकेली देखकर हनुमान उनके सामने प्रकट होते हैं। उन्हें देखकर सीता को भ्रम होता है कि यह कहीं राक्षस माया न हो परन्तु हनुमानजी राम की मुद्रिका देकर उनके भ्रम को मिटादेते हैं और शीघ्र ही दल बल सहित राम के साथ लङ्का पहुँचने का वचन देते हैं।

चलने से पहले अशोक वाटिका के सुन्दर फलों से लदे हुए वृक्षों को देखकर हनुमानजी की इच्छा फल खाने की होती है और सीताजी से आज्ञा लेकर वे वाटिका में पहुँचते हैं। खट्टे-मीठे फलों को खाते, शाखाओं को तोड़ते और पहरे दारों को मार पीट कर भगा देते हैं। परन्तु अन्त में मेघनाद के नागपाश में बँध कर रावण के दरबार में उपस्थित होते हैं। वहाँ भी निर्भीक होकर राम की महिमा गाते हैं और रामनाम के प्रभाव से बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं; दुर्बुद्धि राक्षस उनकी पूँछ को वस्त्रों से लपेट-कर और तेल से भिगोकर आग लगा देते हैं परन्तु यह लङ्कपुरी के दहन का ही कारण होता है। लङ्का में आग लगा कर हनुमानजी सीता के पास पहुँचते हैं, उन्हें प्रणाम कर फिर समुद्र पार करके अङ्गदादि को साथ लेकर राम के सम्मुख उपस्थित होते हैं और समुद्र-लङ्घन, सीताशोध, लङ्का-दहन आदि का वर्णन करते हैं।

सूरसागर में वर्णित रामकथा में लङ्का काण्ड अन्य काण्डों की अपेक्षा बड़ा और चरित्र चित्रण तथा काव्यत्व की दृष्टि से ऊँचा है, घटनाओं का वर्णन कथानक के प्रवाह को बढ़ाने वाला है। इस काण्ड में राम की लङ्का पर चढ़ाई, राक्षसों का संहार और अन्त में राम के अयोध्या लौट आने की कथा वर्णित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनासहित राम सिन्धु-तट पर खड़े हैं, सिन्धु पार जाने का कोई उपाय न देखकर वे हनुमानजी की ओर देखते हैं। हनुमानजी इस बाधा का निवारण क्षणमात्र में कर देना चाहते हैं :—

राघौ जू कितिक बात, तजिचित।
केतिक रावन-कुम्भकरन-दल, सुनिये देव अनन्त।

× × ×

जेतिक सैल सुमेरु धरनि में, भुज भरि आनि मिलाऊँ।
सप्त समुद्र देऊँ छाती तर, केतिक देव बढ़ाऊँ।
चली जाऊ सेना सब मो पर, धरौ चरन रघुबीर।
मोहिं अधीस जगत जननी की, नवत न बज्र सरीर।

परन्तु राम को साधारण मनुष्य समझ कर समुद्र उनकी ओर ध्यान नहीं देता। तीन दिन बीत जाने पर राम हाथ में आग्नेय बाण लेते हैं। तब समुद्र ब्राह्मण का रूप धारण कर अनुनय-विनय करता हुआ उनके सम्मुख खड़ा होता है। फिर वृक्षों और पत्थरों से सेतु-बन्धन कर सेना सहित राम समुद्र पार करते हैं।

लङ्का में जब यह समाचार पहुँचता है तो बड़ी खल-बली मच जाती है। मन्दोदरी रावण को समझाती है कि सीता को राम के पास पहुँचा दे और स्वयं राम की शरण में जाए। परन्तु रावण त्रिया-वचन की उपेक्षा करता है क्योंकि उसे अपने पराक्रम पर अभिमान है :—

कहा तू कहति बार बारी।
कोटि तैंतीस सुर सेव अहनिसि करैं,
राम अरु लच्छमन हैं कहा री।
मृत्यु को बाँधि मैं राखियो कूप में,
देखि आवन कहा डरति नारी।
कहति मन्दोदरी, मेटि को सकै तिहिं,
जो रची सूर प्रभु होनहारी।

फिर विभीषण और कुम्भकर्ण रावण से विनय करते हैं कि राम की शरण में जाएँ परन्तु रावण उनकी भी अवहेलना करता है। रामचन्द्रजी अङ्गद को रावण के पास भेजते हैं अङ्गद अनेक प्रकार से रावण को राम से बैर छोड़ उनकी शरण में जाने का उपदेश देता है। परन्तु रावण एक ओर अपने क्षत्री हठ के कारण और दूसरी ओर शीघ्र ही शिवलोक की प्राप्ति के मोह से युद्ध के ही लिये प्रस्तुत होता है :—

सङ्कट परैं जो सरन पुकारौं, तौ छत्री* न कहाऊँ।
जन्महिं तैं तामस आराध्यौ, कैसैं हित अपजाऊँ।
अब तौ सूर यहै बनि आई, हर को निज पद पाऊँ।
ये दससीस ईस निरमाथल कैसैं चरन छुवाऊँ।

पहले इन्द्रजीत मेघनाद युद्ध के लिये आता है। उधर लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं। बन्दर लङ्कापुरी में उत्पात मचाने लगते हैं। युद्ध में मेघनाद ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है और लक्ष्मण भूमि पर गिर पड़ते हैं। राम अत्यन्त दुखित होकर विलाप करने लगते हैं। उनके ऊपर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा है। यह नवम स्कंध का करुणतम स्थल है :—

निरखि मुख राघव धीर न धीर।
भये अति अरुन विसाल कमल-दल-लोचन मोचत नीर।
बाहु बरष नींद है साँची, तातें विकल सरीर।
बोलत नहीं मौन कहा साध्यौ, बिपति-बँटावन बीर।
दशरथ मरन हरन सीता को, रन बैरिनि की भीर।
दूजो सूर सुमित्रा-सुत बिनु, कौन धरावै धीर!

इसी समय भक्तवत्सल राम को एक और चिन्ता होती है :—

मैं निज प्रान तजौंगो सुनि कपि, तजहि जानकी सुनिकै,
है है कहा विभीषन की गति, यहै सोच जिये गुनिकै।

इस सङ्कटकाल में महाबली हनुमान कितने आतुर होकर राम को सान्त्वना देते हैं :

रघुपति मन सन्देह न कीजै।
मो देखत लछिमन क्यों मरिहैं, मोकौं आज्ञा दीजै।
कहौ तौ सूरज उगन देउँ नहिं, दिसि दिसि बढ़ै तम।
कहौ तौ गन समेत ग्रसि खाऊँ जमपुर जाइ न राम।
कहौ तौ कालहि खण्ड-खण्ड करि, टूक टूक करि काटौं।
कहौ तौ मृत्युहिं मारि डारि कै, खोदि पतालहि पाटौं।
कहौ तौ चन्द्रहिं लै अकास तैं, लछिमन मुखहि निचोरौं।
कहौ तौ पैठि सुधा कैं सागर, जल समस्त मैं बोरौं।

* रावण ब्रह्मर्षि विश्रवा का पुत्र और पुलस्त्य का नाती था। उपर्युक्त पद में उसके लिए 'छत्री' का प्रयोग अशुद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रघुवीर मोसौं जन जाकैं, ताहि कहा सँकराई !
सूरदास मिथ्या नहिं भाषत, मोहिं रघुनाथ दुहाई ।

इसके पश्चात् हनुमानजी संजीवनी लाने के लिए दूनागिरि पर्वत पर जाते हैं। वहाँ सञ्जीवनी न पहचान सकते। इसलिए वे दूनागिरि पर्वत को ही लेकर आकाश मार्ग से चल देते हैं, भरत इसे राक्षसी माया समझ कर उन पर बाण मार देते हैं और राम नाम कहते हुए हनुमानजी भूमि पर उतर जाते हैं। भरत यह जानकर दुखी होते हैं कि उन्होंने राम के भक्त को बाण मार दिया। हनुमानजी उन्हें सीताहरण और लक्ष्मण को शक्ति लगने का समाचार सुनाते हैं। कौशल्या, सुमित्रा तथा अन्य पुरवासी बिलख बिलख कर रोने लगते हैं। कवि ने इस स्थल पर कौशल्या और सुमित्रा के मातृत्व को अलौकिक रूप दे दिया है। सुमित्रा कौशल्या से कहती है कि वीर को उत्पन्न करने वाली माता धन्य है, लक्ष्मण को जन्म देकर मैं भी सपूती हो गई हूँ। इसलिए यह दुख का अवसर नहीं है। कौशल्या हनुमान से राम के पास सन्देश भेजती है :—

कहौ कपि कौसल्या की बात ।
इहि पुर जनि आवहिं मम वत्सल बिनु लछिमन लघु भ्रात ।
छाँड्यौ राजकाज माता हित, तुव चरननि चितलाइ ।
ताहि विमुख जीवनाधिक रघुपति कहियौ कपि समझाइ ।
लछिमन सहित कुशल वैदेही, आनि राज पुर कीजै ।
नातरु सूर सुमित्रा-सुत पर, वारि अपुनपौ दीजै ।

और सुमित्रा अपना सन्देश राम के पास भेजती है:—

मारुत सुतहिं सँदेश सुमित्रा, ऐसैं कहि समुझावै ।
सेवक जूझि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै ।
जबतैं तुम गवने कानन कौं, भरत भोग सब छाँड़े ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, दुख समूह उर गाँड़े ।

अधिक विलम्ब होते देख हनुमानजी वहाँ से विदा होते हैं और दूनागिर को लेकर लङ्का में पहुँचते हैं। सञ्जीवनी के प्रयोग से लक्ष्मण स्वस्थ हो जाते हैं।

पुनः युद्ध आरम्भ होता है। इस बार राम अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्ध में आये हैं। ब्रह्मादिक देवता विमानों से युद्ध देख रहे हैं। समस्त भूमंडल में खलबली मची हुई है। ध्वजा, पताका, छत्र, रथ, धनुष, चक्र टूट रहे हैं, वीर भिड़ रहे हैं, श्रोनित की धार आकाश तक उछल रही है। देखते-देखते रावण के कुम्भकर्ण आदि सब योद्धा राम की क्रोधाग्नि में जल कर भस्म हो जाते हैं :—

आजु अति कोपे हैं रन राम ।
ब्रह्मादिक आरूढ़ विमाननि देखत हैं संग्राम ।
× × ×
सुरपुर तैं आयौ रथ साजिकै, रघुपति भये सवार ।
काँपी भूमि कहा अब ह्वै है, सुमिरत राम मुरारि ॥
× × ×
टूटत धुजा पताका छत्र रथ, चाप-चक्र सिर त्रान ।
जूझत सुभट जरत ज्यों दव द्रुम, बिनु साखा बिनु पान ।
श्रोनित छिंछ उछरि आकासहिं, गज-बाजिन-सिर लागि ।
मानौ निकरि तरति रन्ध्रनि तैं, उपजी है अति आगि ।
× × ×
रावनकुल अरु कुँभकरन बन सकल सुभट रनधीर ।
भये भस्म कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट चीर ।
सूरदास प्रभु आपु बाहुबल, कियौ निमिष मैं कीर ।

मन्दोदरी तथा रावण की अन्य चौदह सहस्र सुन्दरियाँ विलाप करती हैं। विभीषण भी रावण के रुण्ड मुण्ड गोद में लेकर रोता है।

राक्षसों का संहार करके राम सीताजी के पास आते हैं, सीताजी की अग्नि-परीक्षा की जाती है, राम इन्द्र द्वारा अमृत की वर्षा करते हैं जिससे युद्धभूमि में पड़े हुए मृत तथा घायल भालु कपि-समूह जीवित और स्वस्थ हो उठता है, फिर लङ्का का राज्य विभीषण को देकर राम सीता सहित विमान पर बैठकर अयोध्या की ओर चल देते हैं।

अयोध्या नगरी तोरण ध्वजादि से सजाई गई है। घर घर में दही, दूब हल्दी फल-फूल से युक्त कनक थाल हाथ में लेकर स्त्रियाँ मंगल गान कर रही हैं, आज राम अयोध्या लौट आयेंगे इसलिये सर्वत्र जयजयकार की ध्वनि गूँज रही है।

रामचन्द्रजी दूर से अवध का यह दृश्य सुग्रीव, विभीषण, जामवन्त, अंगद, नल-नील, हनुमान, सुषेन आदि को दिखा रहे हैं, भरत की ओर इंगित करके वे कहते हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखौ कपिराज, भरत वै आए,
मम पाँवरी सीस पर जाकैं, कर-अँगुरी रघुनाथ बताये।
छीन सरीर बीर के बिछुरैं, राज-भोग चित तैं बिसराये॥
तप अरु लघु-दीरघता सेवा, स्वामि-धर्म सब जगहिं सिखाये।

फिर दूर ही से पुष्पक विमान से उतरकर जल्दी-जल्दी चलते हैं। सबसे पहले कैकेई सुत भरत से मिलते हैं।

आनद-मगन पगनि केकइ सुत कनक दण्ड ज्यों गिरत उठाए।
भेंटत आँसू परे पीठि पर, बिरह-अगिनि मनु जरत बुझाए॥

इसी प्रकार राम, लक्ष्मण और सीता यथाविधि शत्रुघ्न कुल-गुरु वशिष्ठ तथा समस्त पुरवासियों से मिलते हैं।

कौशल्या दौड़ कर आती है और सुमित्रा आरती सजा कर लाती है, इन दोनों माताओं के हर्ष का आज पारावार नहीं।

जनु सुरभी बन बसति बच्छ बिनु, परबस पसुपति की नहराई।
चली साँझ समुहाइ स्रवत थन, उमँगि मिलत जननी दोउ आई॥

इस मिलन अवसर पर सूरसागर के कवि ने कैकेई को छिपा दिया है। (क्या साहित्य में यह उपेक्षा वाँछनीय है!)

अंत में भरत राम को मणिमय आसन पर बैठाकर उनके चरण धोते हैं और उन चरणों का बार बार स्पर्श करते हैं जिनके प्रभाव से सब दुख दूर हो जाते हैं।

रामकथा के अंतिम पद में कवि कहता है कि यह सम्पूर्ण रामकथा उसकी विनयपत्रिका (रुक्का) है जिसे वह पतित-पावन भगवान राम के चरणों तक पहुँचाना चाहता है, प्रभु के चरणों में विनती करने का अवसर उसे और कैसे मिल सकता है। उनके दरबार में तो सदैव भक्तों और संतों की भीड़ लगी रहती है, अधम सूर को वहाँ कौन पूछे!

विनती किहि विधि प्रभुहिं सुनाऊँ?
महाराज रघुबीर धीर कौं, समय न कबहूँ पाऊँ।
जाम रहत जामिनि के बीतें, तिहिं औसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद मैं, कैसे प्रभुहिं जगाऊँ।
दिनकर-किरिनि-उदित, ब्रह्मादिक रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि-गन की, तिहिं तैं ठौर न पाऊँ।
उठत सभा दिन मधि, सैनापति-भीर देखि, फिरि आऊँ।
न्हात-खात सुख करत साहिबी, कैसे करि अनखाऊँ।
रजनी मुख आवत गुन-गावत, नारद तुम्बुर नाऊँ।
तुम्ही कहौ कृपानिधि रघुपति किहिं गिनती मैं आऊँ।
एक उपाउ करौ कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ।
पतित उधारन नाम सूर प्रभु यह रुक्का पहुँचाऊँ।

(पृष्ठ ४८७ का शेष)

ही नहीं, प्रत्युत इन्द्रिय ग्राम को भी अतीन्द्रिय रस राज्य में ले जाता है। रस वस्तु आनन्द की सेतु है, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, रूप और अरूप, इन्द्रिय तथा अतीन्द्रिय के बीच में। उस दशा में ये चक्षु, चर्म चक्षु नहीं हैं, रस-चक्षु हैं। ये श्रोत्र, श्रोत्र नहीं हैं, रस-श्रोत्र हैं। "नेत्रस्य नेत्रं, श्रोत्रस्य श्रोत्रं, प्राणस्य प्राणः, मनस्य मनः।" उस समय में नूतन नेत्र, नूतन श्रोत्र, नूतन प्राण, नूतन मन तथा नूतन बुद्धि का उदय होता है। तभी कवि, योगी बनकर श्रवण, दर्शन आदि से रस सिद्धि पाता है। समस्त विश्व एक-एक सम्बन्ध में एक-एक विश्व रूप धारण करके उस सहस्र शीर्ष परमात्मा की विश्व लीलाओं का प्रदर्शन करता है। तब नर-रूप, नर प्रकृति तथा ईश्वर-रूप, ईश्वर-प्रकृति में कोई अन्तर नहीं रहता। तब वह उत्तम रहस्य प्रकट होता है कि पर और अपर प्रकृति, क्षर और अक्षर उस परमात्मा में एक रूप ही हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि महाभाव, शृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, रौद्र, भयानक, हास्य, वीभत्स आदि रस, सृष्टि, स्थिति, लय आदि अवस्थायें, उस नरोत्तम की लीलाओं के रूप में भोग्य वस्तुयें बनती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरित मानस में एक हास्य रसात्मक नाट्यखण्ड

श्री हृदयनारायणसिंह एम० ए०

रामचरित मानस के उन प्रसङ्गों का अध्ययन तथा उनके साहित्यिक प्रभाव का विश्लेषण एक अत्यन्त आनन्द-प्रद तथा महत्वपूर्ण विषय है जिनमें तुलसीदासजी ने वाल्मीकीय रामायण से भिन्न प्रकार से विषय वर्णन किया है अथवा कथा में नवीन उद्भावना की है। जहाँ कहीं तुलसीदासजी ने रामायण के, कथा-विकास में, विशिष्टता प्रकट की है, वहाँ कथा को उन्होंने और सुन्दर तथा नायक और उसके सवर्गीयों के चरित्र को अधिक प्रज्वल बनाया है।

पञ्चवटी में छाया की सीता को बाहर रख कर और असली सीता को अग्नि में प्रवेश कराके अग्निरीक्षा के आच्छन से कवि ने चरितनायक को बड़े कौशल से बचाया है। मानस की कथा को चार वक्ताओं द्वारा चार श्रोताओं से कही गई बतलाकर उन्होंने कथा के प्रवाह में भिन्न भिन्न घटनाओं पर टिप्पणी करने और हमें दुहरी दृष्टि का लाभ देने का अपूर्व अवसर निकाला है।

परशुराम प्रसङ्ग द्वारा भी गोस्वामीजी ने एक अद्भुत साहित्यिक तथा रसात्मक प्रभाव उत्पन्न किया है। वाल्मीकीय रामायण में श्रीरामचन्द्र सीता परिणय के पश्चात् जब अयोध्या लौटते हैं तब मार्ग में परशुराम उनसे मिलते हैं और धनुर्भङ्ग के लिए विवाद और उसकी शान्ति होती है। किन्तु रामचरितमानस में पिनाक टूटने के तुरन्त बाद ही परशुराम आ उपस्थित होते हैं और शिव धनु तोड़ने पर वे राम को दुर्वचन कहते हैं।

समालोचकों ने दोनों के पक्ष में—परशुराम के जनकपुर में उपस्थित होने तथा जनकपुर से अयोध्या जाते समय मार्ग में उपस्थित होने के—बहुत कुछ कहा है। मार्ग में श्रीराम तथा परशुराम की भेंट के पक्ष में यह कहा गया है कि विवाह के मङ्गलमय अवसर पर परशुराम का आगमन अशुभ-सूचक है। अतः उन्हें मार्ग में मिलाना ही अधिक अच्छा है। मार्ग में भेंट कराने से अयोध्या में राम वनवास की जो अप्रिय घटना घटती है उसकी पूर्व-सूचना-सी मिलती है। कुशल नाटककार और महाकवि आनेवाली घटनाओं की पूर्वसूचना दे दिया करते हैं मार्ग में भेंट होना समय के विचार से अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। धनुर्भङ्ग के तुरत बाद ही परशुराम का उसे जान लेना और आ उपस्थित होना अलौकिक तत्व के सहारे तो सम्भव हो सकता है, किन्तु लौकिक सम्भावना की परिधि के बाहर है। इसीलिए तुलसीदासजी को लिखना पड़ा—'अरे भुवन घोर कठोर रव, रवि बाजि तजु मारग चले।' इत्यादि।

जनकपुर में श्रीराम के साक्षात्कार के पक्ष में कहा गया है कि परशुराम के आगमन से राजाओं का नैराश्य-जन्य विरोध अपने आप शान्त हो जाता है। इससे ससुराल में भावी पत्नी, श्वसुर इत्यादि के समक्ष ही श्रीराम के शौर्य और सामर्थ्य का अन्य प्रबल प्रमाण मिलता है। धनुर्भङ्ग के साथ ही परशुराम के आगमन को विश्वसनीय बनाने के लिए गोस्वामीजी ने लोक प्रचलित साहित्यिक उपायों का अवलम्बन लिया है। एक तो पिनाक टूटने का रव इतना घोर होता है कि सारे दिग्मण्डल में व्याप्त हो जाता है और रव द्वारा ही परशुराम उक्त घटना को जान लेते हैं। दूसरे धनुष टूटने के पश्चात् सीता इत्यादि के आनन्द और मङ्गलोत्सव का प्रदर्शन करके और ओछी मनोवृत्ति वाले राजाओं का विरोध दिखलाकर कवि ने ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया है कि जिससे प्रतीत होता है कि पर्याप्त समय व्यतीत हो गया है।

किन्तु सबसे महत्वपूर्ण और प्रबल कारण स्वयंवर तथा विवाह के अवसर पर हास्य तथा विनोद की सामग्री प्रस्तुत करने का है। इस तथ्य की ओर समालोचकों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है।

विवाह इत्यादि अवसरों पर हिन्दू समाज में नाट्य-कौतुक के आयोजन की प्रथा है। उस समय विनोदपूर्ण सुखान्त नाटक खेले जाते हैं। लोकनायक राम के विवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अवसर पर गोस्वामीजी ने प्रकारान्तर से एक सुन्दर प्रहसन उपस्थित किया है।

प्रहसन के लिए रङ्ग-मञ्च, पात्र, रस, सम्भाषण इत्यादि उपकरणों की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत अवसर पर ये सभी तत्व उपस्थित हैं। कवि स्वतः ही सञ्चालक का काम करता है और रङ्गमञ्च निर्देश के द्वारा वह रिक्त स्थलों की पूर्ति करता चलता है और पाठकों को सूचना देता है।

रङ्ग-स्थल—धनुर्यज्ञ अथवा स्वयंवर के लिए जो विस्तीर्ण रङ्गभूमि तय्यार की गई है वही इस नाटक के लिए भी मञ्च का कार्य करती है। किसी अन्य स्थान पर रङ्गमञ्च का आयोजन करना ठीक भी नहीं होता। उक्त स्थल पर राजा जनक का परिवार, प्रजा-वृन्द अपने बल तथा भाग्य की परीक्षा करने के लिए आये हुए भूपाल, दर्शकगण तथा श्रीराम लक्ष्मण इत्यादि उपस्थित थे। धनुर्भङ्ग के तुरन्त पश्चात् वहीं नाटक का आयोजन भी समीचीन था।

श्रीराम-लक्ष्मण-परशुराम संवाद उस मञ्च पर होता है जिस पर सब प्रतिस्पर्द्धी नृपति एकत्र थे—

'अरि मुने तनु जनु बीर रघु आयउ जहँ सब भूप'

इसी स्थान पर विश्वामित्र ने श्रीराम लक्ष्मण को उनके पैरों पर गिराया—

'विश्वामित्र मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥'

यहाँ से वह मञ्च जिस पर रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ा था निकट ही था क्योंकि परशुराम ने वहाँ से ही टूटे हुए धनुष को देखा :—

'सुनत वचन फिरि अनत निहारे।
देखे चापखण्ड महि डारे॥'

यह स्थान पर्याप्त ऊँचाई पर था और सारी जनता वहाँ के कार्यकलाप और संभाषण को देख सुन सकती थी। यह रङ्ग-मञ्च यूरोपियों के खुले रङ्ग-मञ्च के समान था जहाँ यवनिका इत्यादि की आवश्यकता नहीं होती थी।

वेशभूषा—गोस्वामी ने श्रीराम, लक्ष्मण तथा परशुराम के वस्त्र परिच्छद और शील स्वभाव का सविस्तर वर्णन किया है।

सहज मनोहर मूरति दोऊ।
कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चन्द निंदक मुख नीके।
नीरज नयन भावते जीके॥
चितवनि चारु मार मद हरनी।
भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुण्डल लोला।
चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला॥
पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई।
कुसुम कली बिच बीच बनाई॥

× × ×

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर सर धनुष बाम बर काँधे। इत्यादि द्वारा राम लक्ष्मण की वेशभूषा का वर्णन किया गया है। श्री विश्वामित्र के स्वरूप का वर्णन भी बड़े प्रभावशाली ढङ्ग से किया गया है।

गौर शरीर भूति भलि भ्राजा।
भाल विसाल त्रिपुण्ड विराजा॥

× × ×

मृकुटी कुटिल नयन रिस राते।
सहजहु चितवत मनहुँ रिसाते॥

× × ×

संत वेषु करनी कठिन, बरनि न जाय सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु, आयउ जहँ सब भूप॥

पात्र—इस प्रहसन के प्रधान पात्र राम लक्ष्मण तथा परशुराम हैं और जनक विश्वामित्र इत्यादि गौण। प्रहसन के प्रधान लक्ष्य तो परशुराम ही हैं। प्रहसन एक ऐसे व्यक्ति को चुनता है जो समाज विरोधी और विचित्र सा हो। उसके समाज विरोधी कृत्यों और विचित्रताओं का प्रदर्शन कर और उस पर हास्य उत्पन्न कर उसके सुधार का प्रयत्न किया जाता है। हास्यरस का और उसके अन्तर्गत प्रहसन का उद्देश्य मनोरञ्जन और सुधार दोनों होता है। श्री परशुराम समाज के लिए कितने भयानक थे यह निम्नलिखित उद्धरणों से प्रगट होता है। वे अत्यन्त क्रोधी, अभिमानी और असहिष्णु भी थे। उनसे बढ़कर प्रहसन का लक्ष्य और कौन हो सकता है। उनका ब्राह्मणों का तो वेश और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रियों का स्वभाव, यह अर्धोक्ति हास्य का अच्छा कारण बनता है। इस स्थल पर वह डींग तो बहुत हाँकते हैं पर कर कुछ नहीं पाते।

'बाल ब्रह्मचारी अति कोही, बिस्व बिदित क्षत्रिय-कुल द्रोही।
भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्ही, बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनि हारा। परसु बिलोकु महीप कुमारा।
मातु पितहि जनि सोचबस, करसि महीप किसोर॥
गर्भन्ह के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर।
इस आत्मस्तुति और चुनौती के उत्तर में लक्ष्मण उनकी खिल्ली उड़ाते हुए कहते हैं :—

'अहो मुनीसु महा भटमानी।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू, चहत उड़ावन फूँकि पहारू।
इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं, जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठार सरासन बाना, मैं कछु कहा सहित अभिमाना।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई, हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधे पाप अपकीरति हारे, मारत हूँ पा परिअ तुम्हारे'।
इतना कहकर निम्नलिखित व्यंग्य द्वारा तो उन्होंने परशुराम को किसी गिनती में ही नहीं रखा—

जो बिलोकि अनुचित कहेऊँ, छमहु महा मुनि धीर।

कमेडी अथवा हास्य-प्रधान नाटकों में, अंत में, समाज विरोधी व्यक्ति अपनी गलती समझता है और ऐसा आभास मिलता है कि उसका सुधार हुआ होगा। इस स्थान पर भी यही घटित होता है। श्री परशुराम अन्त में श्रीराम के महत्व को समझते हैं और उनसे क्षमा याचना करके चले जाते हैं :—

अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता, छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।
कहि जय जय जय रघुकुल केतू, भृगुपति गये बनहिं तप हेतू॥

रस—यह प्रहसन शृंगार रस की पराकाष्ठा के पश्चात् ही अवतरित किया गया है। रामचन्द्र के गले में जयमाल पड़ती है उसके पश्चात् थोड़ा रौद्र रस का पुट दिया गया है। राजाओं के विरोध के रूप में—और उसके पश्चात्

तेहि अवसर सुनि सिव धनु भङ्गा, आयउ भृगुकुल कमल पतंगा।

के साथ यह नाटक प्रारम्भ हो जाता है।

इसका प्रधान रस तो हास्य है जो अपने सभी अङ्गों के साथ वर्तमान है पर इसके सहयोगी रौद्र और वीर रस हैं। अधिकतर हास्य का संयोग शृंगार वीर और अद्भुत के साथ होता है। रौद्र के साथ उसका परिपाक कवि का विशेष कौशल प्रदर्शित करता है।

परशुराम के वाक्यों और क्रियाओं में रौद्र रस वर्तमान है जिसके आलंबन लक्ष्मण, उद्दीपन लक्ष्मण के वाक्य, उनकी मुस्कराहट इत्यादि, परशुराम के नेत्रों का लाल होना, ओठ फरकना, उनका कुठार सँभालना इत्यादि अनुभाव, मन में ग्लानि कि इसे दण्ड नहीं दिया, क्रोध के वेग का बढ़ना, आत्माभिमान इत्यादि संचारी भाव हैं। क्रोध स्थायी है।

रौद्र के पश्चात् हास्य और हास्य के पश्चात् रौद्र का छींटा, इसी क्रम से प्रहसन के रसों की अवस्थिति है। हास्य के आश्रय तो लक्ष्मण और एक दो भावों में राम भी हैं। उसके आलम्बन परशुराम, उद्दीपन उनका विचित्र वेश, उनके वाक्य, उनकी धमकी इत्यादि हैं। अनुभाव और संचारी भी स्थायी को पुष्ट करते हुए विद्यमान हैं।

श्री लक्ष्मण ने बड़ी मीठी चुटकियाँ ली हैं। उनका व्यंग्य पाठक को हास्य विभोर कर देता है :—

लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा, तुम्हहि अछत को बरनै पारा।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी, बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहि संतोषु त पुनि कछु कहहू, जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू।

परशुराम क्रोध से आग बबूले हो जाते हैं। वे श्री राम को डाँटने फटकारने लगते हैं। इस पर लक्ष्मण फिर व्यंग्य करते हैं—

दूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने, बैठिअ होइहि पाँय पिराने।

परशुराम का अकारण क्रोध, अभिमान और व्यर्थ दूसरे के कार्य में दखल देना लक्ष्मण को असह्य था। इसीलिए प्रारम्भ से अन्त तक वे उन पर व्यंग्य की बौछार करते रहते हैं।

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा।

यह सारा प्रसंग अत्यन्त मार्मिक और शिष्ट हास्य से पूर्ण है।

संभाषण—नाटक केवल संभाषण द्वारा ही कथा को दर्शकों या पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं। यद्यपि महाकाव्य का रूप नाटक से भिन्न होता है तुलसीदास जी ने

(शेष पृष्ठ ४१८ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रगुप्त नाटक के काल दोष पर एक दृष्टि

श्री पं० रघुवीर मिश्र एम० ए०, शास्त्री

प्रसादजी के चन्द्रगुप्त नाटक का प्रचार और प्रसार उच्च शिक्षित मण्डली में पर्याप्त हुआ है। इसके प्रचार और प्रसार के कारण इसकी समीक्षा भी काफी हुई है। विद्वज्जनों में इसके गुण और दोषों की विवेचना बराबर होती रहती है। प्रस्तुत लेख में भी उन दोषों में से एक काल-दोष के आक्षेप पर विचार करना अभीष्ट है। समीक्षकों ने अनेक दोषों का दिग्दर्शन कराते हुए काल-दोष पर अर्थात् इसकी घटनाओं के आरम्भ से समाप्ति पर्यन्त के सुदीर्घव्यापी काल और इस नाटक के पात्रों की एक-रूपता असामञ्जस्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। उनका कहना है कि "चन्द्रगुप्त नाटक का कथानक अपने भीतर पच्चीस वर्षों का कथानक लिए है। किन्तु आरम्भ में जिन पात्रों को युवा देखते हैं उन्हें हम अन्त में वृद्ध नहीं देखते।" यह कथन अपने भीतर कुछ तथ्य रखता है। नाटक का घटना क्रम चन्द्रगुप्त के शिक्षाभ्यास और नन्द के अत्याचार से आरम्भ होकर सेल्यूकस की चढ़ाई और उसकी पराजय में अन्त होता है। इतिहास के पाठकों से यह अविदित नहीं है कि इन घटनाओं का काल-क्रम कितना सुदीर्घ है। सिकन्दर की चढ़ाई के समय चन्द्रगुप्त तक्षशिला विश्वविद्यालय का स्नातक होने वाला छात्र है। इसके बाद सिकन्दर की चढ़ाई होती है और क्रम-क्रम से उत्तरापथ के समग्र राज्यों को जीत कर मालव क्षुद्रकों के गणराज्य से लड़ता भिड़ता वह बिलोचिस्तान होता हुआ भारत से लौटता है। कम से कम तीन वर्ष की अवधि इसमें लगी होगी।

इसके बाद पाटलिपुत्र में नन्द के अत्याचार से ऊबी हुई जनता विद्रोह करती है और नन्द तथा नन्द साम्राज्य का पतन होता है। चन्द्रगुप्त मौर्य भारतेश्वर होते और समग्र भारत को अपनी नीति एवं दिग्विजय से एक शासन-सूत्र में संगठित करते हैं। इसके बाद ही सेल्यूकस की चढ़ाई होती है। इन समस्त घटनाओं के घटित होने में करीब बीस वर्ष लगे होंगे और इतिहास के साक्षित्व पर भी हम यही वस्तुस्थिति पाते हैं। किन्तु नाटककार प्रसादजी ने अपने नाटक के भीतर कोई ऐसा संकेत नहीं किया है जिससे नाटक के पात्रों की अवस्था वृद्धि की हमें सूचना मिले। उनका आचरण और उनकी तेजस्विता नाटक के आरम्भ में जिस तरह के हैं उसी प्रकार के अन्त तक बने रहते हैं। इस त्रुटि को लक्ष्य कर समालोचक-प्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में लिखा है कि "पर 'चन्द्रगुप्त' में एक दूसरा बड़ा भारी दोष आगया है। उसके भीतर सिकन्दर के भारत पहुँचने के कुछ पहले से लेकर सेल्यूकस के पराजय तक के २५ वर्ष के दीर्घकाल की घटनाओं को लेकर कही गयी है। जो पात्र युवक के रूप में नाटक के आरम्भ में दिखायी पड़े वे नाटक के अन्त में भी उसी रूप में सामने आते हैं।

किन्तु उपर्युक्त दोष पर ध्यानपूर्वक विचार करने पर यह दोष हल्का सा या नहीं के बराबर दिखायी देता है। इसके लिए सर्वप्रथम काव्य के उद्देश्य और रसानुभूति की प्रक्रिया पर ध्यान देना होगा। काव्य के अनेक भेदोपभेदों में रम्य नाटकों का भी अन्य भेदों के समान उद्देश्य होता है प्रेक्षकों को भावों में लीन करना। भावों में लीन होने से हृदय की वृत्तियों का व्यायाम होता है वे परिष्कृत होती हैं। अतः काव्य का चाहे वह श्रव्य हो या दृश्य, परम लक्ष्य होता है मनोवृत्तियों का परिशोधन करा के रसानुभूति कराना। काव्य में वर्णित विषयों में एक ऐसी शक्ति हो जाती है जिससे वे दूसरे के भोगने या ग्रहण करने योग्य हो जाते हैं। इस शक्ति को भोजक वृत्ति कहते हैं। इस प्रकार काव्य पढ़ते या नाटक देखते समय पाठक या दर्शक के मन में ऐसी वृत्ति जगती है जो उसे अन्यार्थ को ग्रहण करने योग्य बना देती है। इस वृत्ति को हम भोगवृत्ति कह सकते हैं। इन्हीं दोनों वृत्तियों के कारण होता है। यदि ऐसा न हो तो जहाँ पर काव्यों या नाटकों में पूज्यों के शृंगार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन रहता है वहाँ भी दर्शकों या पाठकों के मन में इन पूज्य व्यक्तियों के शृङ्गार का ग्रहण शृङ्गार रूप में नहीं होता, किन्तु ऐसा होता नहीं है। कारण भोजक वृत्ति के द्वारा उनके विशेषत्व का आवरण हट जाता है। वे पूज्य नहीं रह कर साधारण व्यक्ति मात्र रह जाते हैं। इसी प्रकार दर्शक या पाठक भी अपनी विशेषताओं को छोड़कर साधारण व्यक्ति मात्र रह जाते हैं। इस प्रकार दोनों भोजक और भोग वृत्तियों से अनुशासित साधारणीकरण के द्वारा व्यक्ति कलादि का आवरण रसानुभूति के समय नहीं रहने पाता है।

अब हम देखते हैं कि 'चन्द्रगुप्त' नाटक में वर्णित घटनाओं का कुल करीब २५ वर्षों का समय लिए हुए है। लेकिन नाटक के पात्रों को आरम्भ से अन्त तक एक ही रूप में पाते हैं और मन में यह काल-दोष नहीं खटकता है। अतः जिन लोगों ने इस दोष पर दृष्टिपात किया है उन लोगों ने निश्चय ही इस रसानुभूति सिद्धान्त पर ध्यान नहीं दिया है अगर इस ओर उनका ध्यान आकृष्ट होता तो वे इसे उपस्थित नहीं करते। नाटककार प्रसादजी ने चन्द्रगुप्त में अपनी रचना कुशलता से अतीत का जो दिव्य-चित्र खींचा है उसको प्रेक्षक गण अभिनय के समय प्रत्यक्षयमाण न माने तो उनको अभिनय का यथार्थ रसास्वादन न होगा। ऐसी परिस्थिति में रङ्गमञ्च पर अभिनीत होने वाला कोई भी नाटक चाहे वह सङ्कलनत्रय के अनुसार ही क्यों न लिखा गया हो प्रेक्षकों को बाल-क्रीड़ा सा मालूम पड़ेगा। क्योंकि उसके लिए नकल और अभिनय हो रहा है—इस बात को भूल जाना उतना दुष्कर नहीं है जितना इतिहास की घटनाओं की काल तालिका को। अभिनय के समय नाटक की घटनाओं को भागूहात्मक रूप में तीन-चार घन्टे तक लगातार अभिनीत होते देख ऐतिहासिक दूरी का ज्ञान ही नहीं होता है।

काव्य रसानुभूति ऐसे ही अवसरों पर सहृदय और असहृदय का भेद कर देती है और रूढ़ लौकिक बुद्धि ग्राह्यता को वह उस प्रकार तिरोहित कर देती है कि प्रेक्षकगण आनन्द विभोर हो उठते हैं। यदि वह स्थिति उत्पन्न नहीं होती तो चाहे काव्य हो अथवा नाटक हमें बिलकुल ही प्रसन्न नहीं कर सकता है। अतः चन्द्रगुप्त नाटक के इस दीर्घ कालीन घटनाविस्तार के लिए बहुत से विचारकों का इस काल दोष को उपस्थित करना उचित नहीं प्रतीत होता है।

(पृष्ठ ४६६ का शेषांश)

इस प्रसंग को अधिकतर संभाषणों द्वारा ही लेख बद्ध किया है। कथोपकथन में स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, प्रभावशीलता, लोकोक्तियों का प्रयोग, चरित्रगत विशेषता इत्यादि दर्शनीय हैं।

कथोपकथन के बीच में कवि ने यत्र-तत्र संक्षिप्त टिप्पणियाँ की हैं जो रङ्ग-मञ्च निर्देश का काम करती हैं।

इस प्रसंग से जनकपुर निवासियों तथा अन्य दर्शकों के मन में एक विचित्र आशङ्का उत्पन्न कर दी थी किन्तु उसके समाप्त होते ही उनके आनन्द की मात्रा द्विगुणित हो गयी और सर्वत्र उत्साह पूर्वक मङ्गलवाद्य बजने लगे।

देवन्ह दीन्ही दुन्दुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटी मोहमय शूल।
अति गहगहे बाजने बाजे, सबहि मनोहर मङ्गल साजे।

इस अवसर पर परशुराम प्रसंग में तुलसीदासजी ने वही प्रभाव उत्पन्न किया है जो ऐसे अवसरों पर सुखान्त नाटकों द्वारा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का पहला शृङ्गारी कवि : उसका महत्व

श्री त्रिलोचन पाण्डेय

अनेक पुष्ट प्रमाणों के आधार पर मैं विद्यापति को हिन्दी साहित्य का सर्व प्रथम शृङ्गारी कवि मानता हूँ। कुमार स्वामी ने उनके राधाकृष्ण सम्बन्धी पदों को ईश्वरोन्मुख सिद्ध करने की चेष्टा की, जनार्दन मिश्र ने उन्हें रहस्यवादी लिखा है और कुछ विद्वानों की दृष्टि में वे निंबार्क, विष्णुस्वामी से अन्य भक्तों की तरह प्रभावित हैं। तत्सम्बन्धी उद्धृत पदों में संसार की नश्वरता, अपना दैन्य, ईश्वर के प्रति अनन्य निष्ठा वन्दना आदि बातें भी खोजी जा सकती हैं।

१—"तातल सैकत वारि विन्दु सम,
सुत मित रमनि समाज"
"जनेक जनेक धन पाप बटोरल
मिलि मिलि परिजन खाय"

२—"माधव हम परिनाम निरासा,
तुह जगं तारन दीन दयामय,
अतय तोहर विश्वसा"
"तुअ सम अधम उधर नहिं दूसर,
हम सन जग नहिं पतिता"

३—"तुह पद परिहरि पाप पयोनिधि,
तारब कओन उपाय ?" आदि। उनकी प्रसिद्धि का बहुत कुछ कारण महाप्रभु चैतन्य द्वारा उनका पद कीर्तन भी बतलाया गया है। किन्तु ध्यान यह रखना है केवल राधा-कृष्ण के नाम मात्र से ही कोई कवि भक्त नहीं हो जाता। पदावली में राधा और कृष्ण दो को ही स्थान मिल सका है उनका भी यौवन पक्ष ही वर्णित है, दोनों यौवन में चंचल हैं और भक्ति सम्बन्धी पद तो स्वयं उनके प्रतिनिधि पद नहीं हैं। सर्वाधिक स्थल घेरने वाले विषय हैं—नखशिख, दूती सखी, शिक्षा, अभिसार, मिलन, मान, विरह आदि। यहाँ से वहाँ तक केवल शृङ्गार के चित्र भरे पड़े हैं, उसमें भी संयोग पक्ष प्रधान है, इसको भी उन्होंने चरम सीमा तक कवि ने पहुँचा दिया है कि विनयकुमार सरकार को लिखना पड़ा—"The earthly element, the physical beauty, the dirt and imperfection are really too many to be ignored.....Really it is impossible to recognise any other pleasure in world of Vidyapati."

स्नान के जो चित्र विद्यापति ने खींचे वही रीतिकारों ने भी, संभोग चित्रण भी समान हैं।

कामिनि करए सनाने
हेरि हृदय हनए पंचबाने....
तितल बसन तनु लागू
मुनिहुक मानस मनमथ जागू" —विद्यापति

[कामिनी स्नान करती है। कटाक्ष मात्र से ही पंच-शरों का सन्धान करती है। भीगा हुआ वस्त्र उसके शरीर से चिपक गया है। मुनियों के हृदय में भी कामदेव जाग उठता है।] तो रीतिकाल के दो चित्र लीजिए—

१—"नीवी उकसाय, नैकु नैननि हँसाय, हँसि
ससिमुखी सकुचि सरोवर तें निकसी" —देव

२—"पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल
तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवेनी" —पद्माकर

इसी प्रकार सम्भोग में यदि मतिराम का नायक 'लैला' दिन में ही बात लगाता है तो विद्यापति के आदर्श राधा-कृष्ण को सुबह हो जाने का भी ध्यान नहीं, दूतियों को जगाना पड़ता है! दोनों चित्र एक से हैं। इनमें न तो कुछ रहस्य ही है, न भक्ति-भावना ही। खुला हुआ शुद्ध शृङ्गार है। यही पद विद्यापति की कविता का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। भक्ति कैसे मानी जाय? तब तो सारे रीतिकार भक्ति की पावन गङ्गा में स्नान करते हुए दिखाई पड़ेंगे! वैयक्तिक दृष्टि से भी विद्यापति की रुचि शृङ्गार की ओर थी, इस कारण संस्कृत ग्रन्थों तक में उन्होंने नीति आदि के उपदेश शृङ्गार के ही सहारे दिए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पदों को रहस्यवादी कह कर उद्धृत किया जाता है—

१—"हर घट भक मोहे पारे, देव मैं अपुरुष हारे
हम न जाएब तुअ पासे, जाएब ओघट घाटे कन्हैया....."

२— 'एक ही पलँग पर कान्ह रे,
और लेख दुर देख भान रे।'

पहले में ऐकान्त अभिसार का संकेत है, दूसरा पद ज्ञान संबंधी है। इन्हें आध्यात्मिक रँग के चश्मों से देखना अनुचित है। सांकेतिक अर्थ खोजना व्यर्थ की खींचातानी है और प्रत्यक्ष सत्य को अवहेलना करना है।

रहा राधा-कृष्ण का नाम जो कुछ संशय में डालता है। यदि विद्यापति की रचना के पृष्ठाधार का विश्लेषण किया जाय तो इसका भी निराकरण हो जाता है। वे जयदेव के गीत गोविन्द से प्रभावित हैं वहीं संकेत, अभिसार उनके यहीं हैं। नाम राधा कृष्ण का है। हरि का स्मरण तो विलास-कला-कुतूहल पहले से ही होने लगा था उसी आधार पर विद्यापति भी चले। ये पद भी मनोरंजन के लिए थे, भक्ति जैसे उद्गार नहीं थे। प्रत्येक पद के अन्त में राजा शिव-सिंह, लखमादेवी का उल्लेख इसका स्पष्ट प्रमाण है, उनको दरबार को प्रसन्न करने के लिए इनकी रचना हुई। भक्त के आत्मसुख तल्लीनता का भी इनमें पता नहीं। और राधा-कृष्ण तो शृङ्गार के देवता ही हैं। जैसा कि डा० उमेश मिश्र ने स्पष्ट लिख दिया है, "मूलतः ये शृङ्गार रस के कवि थे और शृङ्गार के अधिनायक देवता अब तक राधा-कृष्ण ही माने जाते रहे।"

जिस प्रकार 'रामचन्द्रिका' लिखकर भी केशव भक्त नहीं कहे जा सकते, "मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय" से मङ्गलाचरण होने पर भी बिहारी को भक्त नहीं माना जा सकता उसी प्रकार दो-चार पदों के आधार पर विद्यापति भी भक्त नहीं हैं। इनके दो कारण हो सकते हैं (१) वृद्धावस्था में लिखे हों, पर यह मूल प्रवृत्ति नहीं थी। (२) धार्मिक शृङ्गार वर्णन के उपरान्त बीच-बीच में व्यक्तिगततः ही वैराग्य मूलक रचना होती रही हो। मेरी दृष्टि से तो दूसरा कारण ही समीचीन जान पड़ता है। यह भक्ति भावना भी उनके शृङ्गार का ही एक अङ्ग थी।

इस प्रकार निश्चित रूप से विद्यापति शृङ्गारी कवि सिद्ध होते हैं। मैंने पहले उन्हें इसलिए कहा है कि उनके पूर्व हिन्दी साहित्य में इतने स्पष्ट रूप से काव्यांगों का, रीतिभेद का, दूती नायिका आदि का इतना क्रमिक विधान किसी कवि ने नहीं किया। पुष्य का इतिहास में केवल नाम है; यदि उसने कोई पुस्तक लक्षण आदि पर लिखी भी हो तो कदाचित संस्कृत में होगी या अपभ्रंश में, उसके उदाहरण भी हिन्दी के नहीं हो सकते। जबकि विद्यापति की भाषा हिन्दी के अन्तर्गत निश्चित ही ली जा सकती है और साहित्यिक परम्परा व संस्कृति की दृष्टि से भी वे हिन्दी के कवि हैं। रहा चन्दबरदाई का 'रासो' जिसमें यत्र तत्र वयः-संधि के चित्र हैं तो सही परन्तु एक तो इसका तत्कालीन ग्रंथ होना ही अप्रमाणिक है, दूसरे ये चित्र केवल संकेतमात्र हैं।

अब हिन्दी के इस पहले शृङ्गारी कवि का स्थान, महत्व भी देखते चलें। रीतिकालीन सम्पूर्ण काव्य पद्धति व विषयों का मूल हमें विद्यापति की रचनाओं में मिलता है। मान, खण्डिता, दूती आदि के प्रसङ्ग बिल्कुल नहीं हैं, सारा काव्य ही उसकी सीमा में रुक गया है। सारी शृङ्गार परम्परा के मूल में विद्यापति हैं। भाव-पक्ष, कला-पक्ष, दोनों में उन्हीं का विकास है। हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन काव्य पर बहुत कुछ लिखा गया है, ध्यान रखना है इसकी जड़ विद्यापति के काव्य में है। रीतिकारों ने राधा कृष्ण आलम्बन भी विद्यापति से ही प्राप्त किए।

दूसरी ओर इन्होंने भक्त कवियों को प्रभावित किया। काव्यपक्ष में अलङ्कार विधान, वर्णन विधि सूर आदि ने विद्यापति से पाई। दृष्टिकूटों में तो यह प्रभाव बिलकुल स्पष्ट है। विद्यापति के दृष्टिकूटों में तो यह प्रभाव बिल्कुल स्पष्ट है। विद्यापति के दृष्टिकूट दो प्रकार के हैं वही सूर काव्य में विकसित हुए—

(१) जहाँ श्लेष बल से चमत्कार लाने की चेष्टा है। विद्यापति ने जो चर्चा "माधव की कहब सुन्दरि रूपे" में की है वही सूर ने "अद्भुत एक अनुपम बाग" में—

विद्यापति—
"पल्लव राज चरन जुग सोभित गति गजराजक भाने।
कनक कदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर—

"जुगल कमल पर गजवर क्रीडत तापर सिंह करत अनुराग"

विद्यापति—

"मेरु उपर दुइ कमल फुलायल, नाल बिना रुचि पाई"

सूर—

"हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर,
गिरि पर फूले कंज पराग"

(२) जहाँ गणित का प्रयोग हुआ है—

विद्यापति—"तुअ बिन करब भुवन रिपु पान"

भुवन = १४, ऋतु = ६, १४ + ६ = २० = विष

सूर—

"वेद नखत ग्रह जोरि अष्ट करि सोइ बनत अब खात"

वेद = ४, नक्षत्र = २७, ग्रह = ९, ४ + २७ + ९ = ४०

÷ २ = २० = विष।

इसी प्रकार विरह वर्णन में प्रकृति उद्दीपक है। दशाएँ, वियोग जन्य उद्गार एक से हैं और यही परम्परा सीधी रीति कवियों तक चली गई है।

१ विद्यापति—

"मोर बन बन सोर सुनइत बढ़त मनमथ पीर"

सूर— "हमारे मोरउ बैर परे"

२ विद्यापति—

"झंपे घन बरजंति संतत भुवन भरि बरसंतिया
अत्त दादुर काक काहुक फाटि जाएत छातिया"

सूर— "किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि·····
किधौं बहि देस मोर, चातक, पिउ, बाँधिबन बधे विसेषनि ?"

३ विद्यापति—लोचन लाए फेराएल हरि नहिं आएल रे
सिव सिव जिबओ न जाए आस अरुझाएल रे"

घनानन्द—

"जब तैं तुम आपन औध बदी तब तैं अँखिया मग मापति हैं"
"बहुत दिनान की अवधि आस-पास परे
खरे अबरनि भरे हैं उहि जान कौं"

४ विद्यापति— "कटिक गौरव पाओल नितम्ब
एक क खीन अओक अवलम्ब"

बिहारी—"स्तन, मन, नैन, नितम्ब कौ बड़ो इजाफा कीन"

इस प्रकार विद्यापति ने एक ओर भक्तिकालीन कवियों को प्रभावित किया, दूसरी ओर रीतिकारों को पोषक तत्व दिए। हिन्दी में इसे मुक्तक रचना ही सर्वाधिक मिलती है, भक्तिकाल में भी, रीतिकाल में भी और आज भी। उनके गीत, काव्य, सङ्गीत, छन्द आदि में वही माधुर्य है जो पीयूषवर्षी विद्यापति की वाणी में। रीतिकारों के भक्ति-सम्बन्धी उद्गार भी मेरे विचार से विद्यापति की परम्परा में हैं। दोनों के प्रकट होने की परिस्थितियाँ भी समान हैं। भक्त कवियों के राधा-कृष्ण अवश्य उनसे भिन्न हैं पर उनके सम्मुख विद्यापति का आदर्श था अवश्य; यह उनकी मर्यादा थी कि इतने आकर्षक पक्ष-विशेष के सामने होने पर भी उस पर वे चले नहीं किन्तु कुछ समय पश्चात् भक्ति-भावना के दब जाने पर वह अवरुद्ध शृङ्गार-धारा पूरे वेग से फूट कर सारे हिन्दी काव्य में फैल गई।

कहानी-अङ्क देखा। छोटे-छोटे निबन्धों का अच्छा चयन है। इस सीमा में इससे अधिक सामग्री की आशा नहीं की जा सकती है। हिन्दी के विद्यार्थियों का इससे बड़ा लाभ होगा। मैं आपके प्रयत्न का साधुवाद करता हूँ।

पाश्चात्य साहित्य में इधर कहानी साहित्य पर जो महत्वपूर्ण अध्ययन किए गए हैं, या अन्य साहित्य रूपों पर जो कुछ हो रहा है, इन प्रगतियों से परिचित होने का एक सुन्दर माध्यम भी यह सर्वाधिक लोकप्रिय आलोचना-पत्रिका ही हो सकती है। आशा है इस ओर आप थोड़ा भी ध्यान अवश्य देंगे।

—सिद्धेश्वर प्रसाद, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धवशतक में भक्ति और रीतिकाल की छाप

श्री महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, बी० ए०, साहित्यालङ्कार

ब्रज-भाषा पर प्रमुखतः कवियों का ही पूर्ण-आधिपत्य रहा और उसके साहित्य में विलक्षण प्रतिभा तथा कुशलता यदि किसी को प्राप्त हुई तो बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' का नाम सर्वोल्लेखनीय है। यह सर्वमान्य बात है कि शब्द चयन, अलङ्कारों का स्वाभाविक तथा शुद्धतम प्रयोग, नाटकीयता के साथ मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में वे अपने समय के पहले और अकेले ही थे।

प्रत्येक कवि का अपना विशिष्ट एवं निजी क्षेत्र हुआ करता है और उसी में रम कर वह अपने जी की बातें व्यक्त किया करता है। भावों की अभिव्यक्ति भाषा और शैली पर पूर्णतः अवलम्बित है। यदि अमुक कवि का भाषा पर पूर्ण और उपयुक्त अधिकार है, भावानुसार शैली का सामञ्जस्य है तो उसके द्वारा वर्णित बातों में सफलता की आशा प्रायः की जाती है। रत्नाकरजी ब्रज-भाषा के आचार्य माने जाते हैं। उनका उस पर पूरा-पूरा अधिकार है। परन्तु उद्धव-शतक के विषय में यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि रत्नाकरजी ने दो क्षेत्रों में विहार किया है—एक भक्ति-काल और दूसरा रीतिकाल। आप के काव्य का सन्देश भक्ति-काल का और अभिव्यक्ति-प्रणाली रीति-कालीन। दोनों उपक्षेत्रों का सामञ्जस्य अनूठा है। आचार्य प्रवर बा० गुलाबरायजी ने लिखा है। यथा—"रत्नाकरजी ने भक्ति-काल की आत्मा के लिए रीति-काल के शरीर को आवरण रूप से स्वीकार किया है।"

उद्धव-शतक की कथा यद्यपि लोक प्रसिद्ध एक संभ्रान्त परिवार से सम्बन्धित है फिर भी वह एक प्रबन्ध काव्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता। वह प्रबन्ध और मुक्तक का सुन्दर सामञ्जस्य है। उसके प्रत्येक पद में अपना निजीपन है। घटना विशेष के होते हुए भी वे एक दूसरे पर आश्रित नहीं हैं। वे पूर्ण स्वतन्त्र हैं और यह स्वतन्त्रता हमारे जी में रसोद्रेक के समय बाधक नहीं साधक के रूप में ही काम करती है।

भक्ति-काल की प्रमुख विशेषता एवं उद्देश्य भक्ति की प्रधानता ही है। भक्ति निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपों में की जाती है। उद्धव-शतक में गोप-गोपियाँ निर्गुण भक्ति का एक मत हो खण्डन और मण्डन करती पाई जाती हैं—सगुण भक्ति का। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या उद्धव-शतक में भक्ति-काल का सन्देश ही चर्चित है। यह तो उसका आधार ही है। उद्धवजी के सन्देश को कटाक्ष तीखे व्यङ्गों द्वारा खण्डित किया जाता है और फिर सगुण भक्ति का मण्डन कथा के साथ विजय के साथ किया गया वर्णित है।

रीतिकालीन प्रवृत्तियों का उल्लेख करते समय भाषा, अलंकार तथा शैली पर ध्यान दौड़ जाता है। 'उद्धव शतक' की भाषा ब्रज भाषा है। उसमें अलङ्कारों का प्रयोग अधिक मात्रा में मिलता है। परन्तु अन्य अनेक रीतिकालीन कवियों की भाँति केवल अलङ्कारों की अभिव्यक्ति के लिए ही काव्य का सृजन किया जाय ऐसी बात उद्धवशतक में नहीं दिखाई देती। भावोत्कर्ष, भावानुभूति की व्यञ्जना एवं रसोद्रेक में पूर्ण सहायक के रूप में शुद्ध तम तथा स्वाभाविक रीति से अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है। यह रत्नाकरजी की अलङ्कार विधान वाली भव्य एवं नव्य प्रणाली श्लाघनीय है। इनकी शैली में सजीवता है। स्वभाविकता के साथ-साथ नाटकीयता का प्रचुर प्राधान्य है। अतः पं० रामशङ्कर शुक्ल ने उद्धव शतक को मूर्त काव्य (विग्रोपम) भी कहा है।

अब प्रत्येक क्षेत्र की प्रमुख छाप जो उद्धव-शतक पर पड़ी है, का विहावलोकन करना इस सूक्ष्म विवेचन का उद्देश्य है। 'उद्धव शतक' की कथा का प्रवाह उस घटना से चलता है जब श्रीकृष्णजी यमुना में स्नानार्थ जाते और वहाँ प्रिय राधा के समान वर्ण वाले अर्ध कुम्हलाए कमल को देख प्रेम विह्वल हो जाते हैं और परम दार्शनिक उद्धव सखा के आग्रह करने पर विह्वलता का कारण वर्णन करते हैं कि अचानक उनका कण्ठ भर आता है। पवित्र और सच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम की अभिव्यक्ति अन्य क्या हो सकती है। यथा—

'गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं,
प्रेम परयौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नेकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं।'

उद्धव कृष्ण के संलाप के समय भक्ति की कितनी सरल और सुन्दर व्यञ्जना प्रस्तुत की गयी है। यथा

"आपु ही सौं आपकौं मिलाप औ बिछोह कहा
मोह यह मिथ्या सुख दुख सब ठायौ है।"

जब उद्धव जी व्रज में प्रवेश करते हैं उसी समय उन्हें सगुण रूप के दर्शन प्रत्येक स्थल पर होने लगते हैं। ऐसा लगता है मानो समूचा गोकुल सगुण भक्ति का उपासक रहा हो। यथा—

"गोकुल के गाँव की गली में पग पूरत ही
भूमि के प्रभाव भाव औरैं भरिबौ लगे।
ज्ञान मारतण्ड के सुखाए मनु मीनस कौं,
सरस सुहाए घनश्याम करिबै लगे॥"

'रत्नाकर जी' ने यों तो अनेक प्रकार के अलङ्कारों का प्रयोग किया है परन्तु श्लिष्ट परिपुष्ट सज्ञ रूपक उपमा, विरोधाभास, यमकानुप्रास आदि अलङ्कारों का बाहुल्य सा प्रतीत होता है।

वक्रोक्ति का कितना रमणीक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है यथा—

"फिरत हुते जू जिन कुञ्जनि में आठौं जाम,
नैननि में अब सोई कुञ्ज फिरबौ करैं।"

उद्धवजी भगवान श्री कृष्ण से गोपियों की प्रीति की चर्चा करते हुए हाथी पकड़ने की प्रक्रिया द्वारा वर्णन करते हैं यथा—

"घात में लगे हैं ये बिसासी ब्रजबासी सबै,
तनके अनोखे छल छन्दनि छनौ नहीं।
बारन कितेक तुम्हें बाँरन कितेक करैं,
बारन उबारन हूँ बारन बनौ नहीं॥"

जिस समय उद्धवजी गोकुल में पहुँच कर नन्द के घर पर यह सूचना देते हैं कि मैं कृष्णजी के द्वारा भेजा हुआ सन्देश लाया हूँ—उस समाचार को सुन कर यत्र-तत्र सर्वत्र और से गोपियाँ आ आ कर उद्धवजी को घेर लेती हैं और व्यग्रतता पूर्वक पूछ उठती हैं—इस प्रश्न में नाटकीयता तथा चित्रोपमता निरवार रूप में प्रदर्शित की गयी है यथा—"हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं।"

अलङ्कारों के अतिरिक्त कमनीय कहावतों का प्रयोग भी कुशलता के साथ किया है। ये सारे वाक्य उपक्रम भावानुकूल प्रयुक्त दृष्टि गोचर होते हैं यही कुशल कवि की विशेषता है। ऐसा लगता है मानो अनायास ही प्रयोग बन पड़ा है—प्रयोग के लिए पूर्वानुराग का प्रायः अभाव लगता है।

"दिपत दिवाकर कौं दीपक दिखावै कहा,
तुम सन ज्ञान कहा जानि कहिबौ करैं।"

उस सूक्ष्म विवेचनाधार पर हम इस निष्कर्ष पर आते है कि उद्धवशतक में भक्त हृदय तथा कला का मणिकाञ्चन का संयोग हुआ है। भाषा भावानुकूल है। सरसता और चित्रोपमता उसके प्रधान गुण है। ब्रजभाषा माधुर्य गुण के लिए चिर प्रसिद्ध है ही।

ऐसे तो साहित्य-सन्देश के जितने भी विशेषाङ्क मुझे पढ़ने के लिए अब तक मिले हैं, वे सभी अपने-अपने विषय में अद्वितीय एवं हिन्दी साहित्य के अक्षय कोष के अनुपम रत्न मालूम हुए हैं; किन्तु 'कहानी विशेषाङ्क' मुझे सबसे अधिक उपयोगी एवं रुचिकर प्रतीत हुआ। आशा है 'सन्देश' सदा ही अपनी सेवाओं से साहित्य-कोष को समृद्ध बनाता रहेगा।

—चन्द्र मिश्र, बेलागंज, (गया)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त सुन्दरदास के नारी सम्बन्धी विचार

प्रो० योगध्यान आहूजा एम० ए०, पी-एच० डी०

सन्त कवियों ने एक अलग ही दृष्टिकोण से देखते हुए नारी-विषयक अपने विचार व्यक्त किए हैं। निर्गुण सन्त परम्परा में कविवर सुन्दरदास[1] का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वह अभी लगभग छः वर्ष के बालक ही थे जब उन्होंने स्वामी दादूदयाल से दीक्षा प्राप्त की और तब से बाल-साधु सुन्दरदासजी का जीवन भिक्षु और वैराग्य का जीवन रहा और उनका सारा समय शास्त्रों के अध्ययन तथा अन्तःसाधना आदि में ही व्यतीत हुआ। जैसा कि स्वाभाविक प्रतीत होता है सन्त सुन्दरदासजी जहाँ हर प्रकार के अन्य सांसारिक सुखों को तुच्छ और त्याज्य समझते हैं वहाँ भोग-विलास को भी निकृष्ट और निंद्य गिनते हैं। काम-वासना के लिए उन्होंने अत्यन्त कठोर शब्दों में कटु उपेक्षा के भाव व्यक्त किये हैं और इसी प्रसङ्ग में नारी के लिए भी।

वैसे सन्त सुन्दरदासजी की लेखनी ने पतिव्रता के एकाग्र पति प्रेम का श्रद्धापूर्ण और आदर-सूचक शब्दों में चित्रण किया है। अपने ग्रन्थ 'सवैया'[2] अथवा सुन्दरविलास और अपनी 'साखी'[3] में भी 'पतिव्रत को अङ्ग'[4] के अन्तर्गत उन्होंने यही दर्शाया है कि पतिव्रता की अनन्यता प्रभु प्रेम के लिए अनुकरणीय आदर्श का स्थान रहती है। ब्रह्म के प्रति आत्मा की विरह व्यथा को वर्णित करने के लिए भी उन्होंने विरहिणी पत्नी की वाणी को माध्यम बनाया है।

सुन्दरदासजी उपेक्षा करते हैं विषय-वासना की। अपने एक लघु ग्रन्थ 'पंचेन्द्रिय चरित्र'[5] में एक स्वेच्छाचारी और स्वच्छन्द-विहारी गज के कामान्ध होकर अन्ध कूप में गिरने और फलतः बाँधे जाने की कथा पद्य बद्ध करके कवि यों निष्कर्ष निकालते हैं:—

इहिं काम अनेक बिगोये,
जो अंध निशा में सोये।[6]

अथवा :—

इहिं काम लोक प्रथ लूटे।[7]

और :—

गज व्यवहारहिं देखि करि बेगहि तजिये काम।
सुन्दर निश दिन सुमरिये अलख निरंजन राम॥[8]

एक अन्य स्थान पर कवि कहते हैं कि कामिनी के प्रेम-पाश में फँस कर कितने ही ज्ञानी गुनी और पण्डित पतन के गर्त में समा गए :—

ज्ञानी गुनी सूर कवि पण्डित होते चतुर सयाना।
सनमुख होइ परे फन्द माँहि जुवती हाथ बिकाना॥[9]

'कामिनी' साधक के लिए बाधक है। 'सवैया' ग्रन्थ के 'साधु को अङ्ग'[10] में कवि 'साधु' के लक्षणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि वंदनीय है वह संत जिसके लिए—

पाप जैसी प्रभुताई, सांप जैसौ सनमान,
बड़ाई हू बंछनी सो, नागनी सी नारी है॥[11]

वैराग्य और विरक्ति का उपदेश देते हुए सन्त सुन्दरदास समस्त सांसारिक प्रलोभनों से बचने का आदेश देते हैं और 'कामिनी' के मोह से भी मुक्त रहने की प्रेरणा करते हैं। ममता के सब बन्धन काट देने चाहिएँ। कवि के वचन हैं:—

१—१६५३-१७४६ विक्रमी।

२—सुन्दर ग्रन्थावली, सम्पादक पु० हरिनारायण, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, १९६३, दूसरा भाग पृष्ठ ३८१ से ६६१ तक।

३—वही, पृ० ६६३ से ८१८ तक।

४—(i) वही, सवैया, पृ० ४७५ से ४७७ तक।
(ii) वही, साखी, पृ० ६६० से ६६५ तक।

५—वही, भाग १, पृ० ११७ से १५० तक।

६—वही, पृष्ठ १२४। ४२

७—वही, पृष्ठ १२४। ४३

८—वही, पृष्ठ १२५। ४५

९—वही, भाग २, पृष्ठ ८२८। ८। २

१०—वही, पृष्ठ ४९० से ५०१ तक।

११—वही, पृ० ४९४।१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मेरि कामिनि केलि करैं नित····
सुन्दर वैसे ही छाडि गयौ सब,
तेल जर्यौ रु बुझी जब बाती ।[१२]

इसी प्रकार:—

·····मेरी जुवती कौ मैं तौ अधिक पियारौ हौं।

× × ×

सुन्दर कहत मेरी मेरी करै जनैं सठ,
ऐसी नाहिं जानै मैं तौ काल ही कौ चाकौ हौं ॥[१३]

एक और प्रकरण में कवि यों कहते हैं:—

जोबन कौ मदमातौ गिनत न कोऊ नातौ,
काम बस कामिनी कै हाथ ही बिकानौ है ।[१४]

अपने ग्रन्थ 'सवैया' में कवि ने "देह मलीनता गर्व प्रहार को अङ्ग"[१५] में तथा इसी शीर्षक से 'साखी' में भी मनुष्य देह की 'मलीनता' का तिरस्कारपूर्ण विवेचन किया है। 'नारी निन्दा को अङ्ग'[१६] का शीर्षक देकर उन्होंने नारी के विषय में भी ऐसे ही विचारों को वाणी दी है। इस अङ्ग की कुछ आरम्भिक पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

कामिनी कौ देह मानौं कहिये सघन बन,
उहाँ कोऊ जाइ सुधौ भूलि कै परतु है।
क्रूर है गति कटि केहरि कौ भय जामैं,
बेनी काली नागिनीऊ फन कौ धरतु है ॥[१७]

कवि नारी के नख-शिख को 'विष वेलि'[१८] बतलाते हैं और कहते हैं:—

कामिनी की अङ्ग अति मलिन महा अशुद्ध ।[१९]

अथवा

सुन्दर कहत नारी नरक कौ कुण्ड यह ।[२०]

और इधर मानव देह के विषय में भी "देह मलीनता गर्व प्रहार को अंग" में उनका वर्णन कुछ कम कठोर नहीं है। मनुष्य का शरीर मलीन[२१] है, महा मलीन[२२] है

अथवा :—

सुन्दर देह मलीन अति बुरी धातु की भौन ।[२३]

और :—

सुन्दर देह मलीन है प्रकट नरक की खानि ।[२४]

सुन्दरदासजी शृङ्गारिकता और रसिकता का तीव्र निषेध करते हैं और इसी प्रसङ्ग में वह रसिक प्रिया[२५] आदि ग्रन्थों को भी उपेक्षणीय गिनते हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि इस प्रकार तिरस्कार के चित्र अङ्कित करते समय नारी का एक ही पक्ष अथवा 'कामिनी' रूप ही सुन्दरदास जैसे सन्तों के सामने रहा है।

१२—वही, पृ० ४०९।२
१३—वही, पृ० ४१२-१३।१५
१४—वही, पृ० ४१६ २३
१५ (i) वही सवैया; पृ० ४३५ से ४३७ तक।
(ii) वही, साखी, पृ० ७२० से ७२२ तक।
१६ वही, पृ० ४३७ से ४४० तक, केवल 'सवैया' में
१७ वही पृ० ४३७ १
१८ वही, पृ० ४३८ २
१९ वही, पृ० ४३८।४
२० वही, पृ० ४३८ ३
२१ वही, पृ० ४३५।१
२२ वही, पृ० ७२१।१५
२३ वही, पृ० ७२० ३
२४ वही, पृ० ७२०।२
२५ वही, (i) पृ० ४३९ ५
(ii) पृ० ४४०।६

कहानी विशेषाङ्क देखा। इसमें बाबू गुलाबराय एम० ए०, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हरिशङ्कर शर्मा, डा० सत्येन्द्र पी-एच० डी० आदि के लिखे लेख महत्वपूर्ण हैं। मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी : क्यों—में कहानीकारों के दिये उत्तर भी काम के हैं। अन्तनोगत्वा कहानी विशेषाङ्क साहित्य प्रेमियों को ही नहीं वरन् साहित्योपासकों एवं कहानीकारों के लिये भी परमोपयोगी सिद्ध हुआ है।

—हरिशङ्कर पाण्डेय, खराबाद, (सीतापुर)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाकर माचवे के दो लघु उपन्यास : एकतारा और परन्तु

कुमारी अ.नन्दी तमिल

एकतारा श्री प्रभाकर माचवे का एक लघु उपन्यास है। सन् ४२ के समाजवादी क्रान्तिकारियों के आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि पर एक पढ़ीलिखी, प्रगतिशील, उत्साही तथा साहसी नारी की करुण कथा को लेकर उपन्यास गूंथा गया है। तारा का जीवन (उस अभागिन का नाम तारा ही है) उसके क्रान्तिकारी दल में भाग लेने से ही कुछ अव्यवस्थित हो गया हो की बात नहीं घटना की ओर माचवेजी का उतना विशेष ध्यान नहीं जान पड़ता जितना कि वे सन् ४२' की राज-नैतिक उथलपुथल के परिणामस्वरूप भारतीय नारी में जागृत एक नयी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

यह बात निर्विवाद है कि हमारे देश में स्वतन्त्रता संग्राम के छिड़ जाने के बाद से नारी जाति में एक प्रकार की हलचल मची हुई है। घर की चहार दीवारों में बन्द नारी, देश की स्वाधीनता की पुकार को सुनकर, उस महत्व-पूर्ण कार्य के लिए, अपनी ओर से कुछ करने को व्याकुल हो उठी और घर के बाहर के विस्तृत क्षेत्र में उसने पदार्पण किया। जो घर और गृहस्थी के लिए मर मिटती थी वह समाज और देश के लिए अपने को समर्पित करने लगी। किन्तु सदियों से बँधे गृहस्थी जीवन से उसका छुटकारा सहज में सम्भव है? उसकी माँग अब घर और बाहर दोनों तरफ है किन्तु दोनों के लिए अपना हाथ बँटाते हुए—वह दोनों में समन्वय ला सकी है—ला सकती है—माचवेजी के 'एकतारा' में भी यही प्रश्न है, यही समस्या है। किन्तु स्वयं नारी-जीवन की इन समस्याओं में, उसके इस दोहरे जीवन-जन्य अतृप्ति और असफलता के लिए, केवल नारी ही कहाँ तक उत्तरदायी है—जीवन-यान में सहचर साथ देने वाला पुरुष—उसके इन दोनों कामों में सन्तुलन लाने के लिए सहयोग देता है—योग नहीं भी दे—क्या कम से कम सहानुभूति भी प्रदर्शित करता है! सहयोग-सहानुभूति दोनों के अभाव में नारी जीवन कितना खोखला और रसहीन हो सकता है—तारा का जीवन इसका साक्षी है।

"मनुष्य मनुष्य का सम्बन्ध आर्थिक है केवल आर्थिक" सरस जीवन का वृक्ष अर्थ की खाद पाकर ही लहलहाता है—सहयोग और सहानुभूति तो न सही—दुर्भाग्य से आर्थिक स्थिति भी बिगड़ जाए तो उस जीवन की भयावह कल्पना भी किस तरह की जाए? अर्थ के बिना मनुष्य मनुष्य का नाता नहीं है, पति के लिए पत्नी नहीं है, पिता के लिए पुत्री है नहीं—मनुष्य मनुष्य का सम्बन्ध केवल आर्थिक है—आर्थिक और नारी इसी अर्थ के कारण पुरुष के अधीन है।

उसके हृदय की समस्त ममता, प्रेम, करुणा सब मिल-कर भी जो सम्बन्ध स्थिर न कर सके हैं, वह केवल अर्थ ही के अभाव के कारण है। सहृदय व्यक्ति इस सत्य को मुश्किल से पचा पाता है, किन्तु वास्तविक जीवन में उसे भी इस अर्थ का अनुशासन मानना ही पड़ता है। संसार की आजकल की गतिविधि ही कुछ ऐसी है कि मन के ऊँचे-ऊँचे विचारों के साथ व्यावहारिक जीवन का बिलकुल मेल नहीं हो पाता और इस अवस्था में आत्मा छटपटाने लगती है। भावुक तारा भी, इस विषमता से वञ्चित नहीं है। फलतः आकाश के एक जाज्वल्यमान तारे के सदृश रहने के स्थान पर उसका उल्कापात ही सम्भव हो सका और वह पत्थर बन गयी—बाहर से भी, भीतर से भी।

वर्तमान युग में, इसी आर्थिक विषमता के कारण जब आदर्शों का बलिदान किया जा रहा है, मानवोचित विशिष्ट गुणों की अवहेलना की जा रही है, तब सफल और सार्थक जीवन के लिए भी कोई विशेष मानदण्ड रह गया है क्या? तारा के जीवन की समस्या, आज के भारतीय समाज के, प्रत्येक अर्थहीन परिवार की समस्या है। कहाँ आदर्श और कहाँ यथार्थ, कहाँ सिद्धान्त और कहाँ दैनिक जीवनचर्या? यह अर्थ की मुसीबत विरक्त पुरुषों को निरर्थक ही जान पड़े, किन्तु इस कीचड़ में फँसे बिना चारा भी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु यहाँ यह भी भुलाया नहीं जा सकता कि अर्थ के पीछे पड़ कर मानव अपने जीवन की अर्थी स्वयं लिए जा रहा है।

तारा की विरक्ति इसी का द्योतक है और उपन्यास के पूरा होते, उसकी हूक, तारा के दीर्घ निश्वास के साथ, समस्त वातावरण में छा जाती है और पुकार उठती है—क्या आदमी-आदमी के बीच के रिश्ते केवल आर्थिक हैं? परन्तु···श्री माचवेजी के चिन्तनशील मस्तिष्क को और एक उपज है। अबकी बार वे प्राणिमात्र की चार मूल-प्रवृत्तियों—१ सेक्स, २ युद्ध प्रवृत्ति, ३ भूख, ४ भय या आत्मरक्षा—इनको लेकर उलझे हैं। मानव स्वभावतया इन प्रवृत्तियों से प्रेषित है। किन्तु सभ्यता और समाज के सामने उसे अपनी इन प्रवृत्तियों को दबाकर रहना पड़ता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति का असली रूप कुछ और ही है किन्तु "वह समाज में एक मुखौटा पहने चलता है।" उपन्यास की छोटी-सी भूमिका में लेखक कहते हैं—इन चार प्रवृत्तियों के विरोध में आदर्शवाद की नकारात्मक शब्दावली का मानसिक संघर्ष चलता रहता है। भौतिकवादी युग की प्रगति के साथ साथ यह नकारात्मक आदर्श मूल्य पराजित होते से दिखाई देते हैं। अर्थात् इन प्रवृत्तियों को समय-समय पर प्रकट होने से रोके रखना आदर्शवाद का काम है। यदि आदर्श का यह निषेधात्मक दृढ़ अंकुश मनुष्य पर न होता तो न मालूम आज मानव किस गर्त में गिरा रहता। किन्तु नहीं, आदर्शवाद का यह सदियों का संस्कार, अभी मानव मन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं ला सका है। इतना अवश्य है कि पशुओं में ये प्रवृत्तियाँ यदि प्रत्यक्ष हैं, तो मनुष्य ने उनको छिपाना और गुप्त रूप में उनके वश में होना—सीखा है और कभी उभरती हुई उनको दबाने में भी वह सफल हो सका है। आदर्श की सफलता यहाँ तक तो स्वीकार करनी ही होगी। आदर्श नम्रता को ढकने वाला वेष्टन मात्र है। जैसे कपड़े बदले जाते हैं वैसे आदर्श भी बदलते रहते हैं, किन्तु भीतर की नम्रता में कोई विशेषता, उन प्रवृत्तियों के उत्थान पतन में कोई अन्तर अभी तक दिखाई नहीं दे रहा। उलटे इन्हीं प्रवृत्तियों से टकराये आकर, मनुष्य आज अधिकाधिक भौतिक होता जा रहा है। अब इनको दबाना तो दूर, वह इन प्रवृत्तियों को अधिक सहज, सरल ढंग से प्रवृत्त करने के लिए साधन ढूँढ़ रहा है और इस कार्य के लिए वह विज्ञान की शरण लिए हुए है। किन्तु उसकी इस भौतिक उन्नति के साझीदार सब कोई हों—यह न हो सका है। तब फिर बीच का व्यवधान हुआ अर्थ—जिसके पास यह सुविधा है, उसके लिए इन प्रवृत्तियों का आवेश बुरा नहीं समझा जाता, उलटे वही सभ्यता है। जो इससे वञ्चित है, उसके लिए प्राप्य भी अप्राप्य ही है।

दूसरे शब्दों में वर्तमान युग को सभ्यता कहलाने वाली चीज इसी अर्थ महाराज से अनुशासित है। इसका रौब, इसका प्रभुत्व, समाज और व्यक्ति पर इस तरह छाया हुआ है कि इस पर मनुष्य की आत्मा से सम्बन्ध रखनेवाले मान, अपमान, गौरव, सम्मान सब कुछ निछावर है। सिक्कों की झङ्कार में और नोटों की सरसराहट में ऐसी अमोघ शक्ति है कि मनुष्य और मनुष्यता खरीदी क्या जा सकती है, स्वयं मनुष्य अपने को उसके बदले में बेचने तक को तैयार है! इस नटवर नागर की सम्मोहिनी शक्ति उतनी है।

यदि किसी भी मनुष्य के हृदय में सौभाग्यवश (या दुर्भाग्यवश?) अब भी संवेदनशील तार शेष हैं जो कि इस अर्थ के अत्याशित स्पर्श से झनझना उठता हो, तो निश्चय मानिए उसकी खैर नहीं। उसकी क्या मजाल है कि वह इस अर्थशासित समाज में अपनी टाँग अड़ाए?

अकेला वह केवल अपने आत्मिक बल (?) पर इस शक्ति का सामना करेगा? या उसके दबाव में आकर अपना अस्तित्व भी खो देगा? किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि बड़ी-बड़ी बातों के अलावा कुछ क्रियात्मक रूप में करके, अर्थ के अट्टहास के सामने चुनौती दे—परन्तु···· के हर एक पात्र इस तरह समाज में अर्थजन्य अस्तव्यस्तता से पीड़ित अङ्ग के प्रतीक हैं। अविनाश, अमिय, अनीता, सेठ जी॰ हेम, का काल चक्र घूमता है, टकराता है—परन्तु···· लक्ष्मीपति सेठजी के सिवाय इनमें किसका मनोभीष्ट पूर्ण हो सका? अविनाश और हेम, अमिय और अनीता की मानव-सुलभ प्रवृत्तियाँ, उठते ही कुचला दी गयीं, किन्तु सेठजी को अर्थ का वरदान जो प्राप्त था·····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो जमाना चल रहा है—मनुष्य जीते हैं, जीते जी मरते हैं, बिना धन का मनुष्य इस जमाने की परिभाषा में निन्दा नहीं माना जाता। सतीत्व लुटता है—

अँधेरे में साँप के मुँह में मेंढक की तरह—यहाँ टर्राना तो है, किन्तु वहाँ एक चीख से ही समाप्त। यहाँ अँधेरा तो रहा—वहाँ पैसे के झिलमिल प्रकाश में आँखें देखकर भी नहीं देखतीं और आत्मा-वह तो कब की मर चुकी है।

परन्तु····जमाने में ऐसी हवा में साँसें भर रहा है और एक-एक निश्वास के साथ उसकी साँस मानो एक बार रुक रुक कर चलने लगती है—परन्तु····। एक विषय चल रहा है—सेठजी के हाथों हेम का सतीत्व लूटा गया वह अब अपने लिए या समाज के लिए इस योग्य न रह गयी कि खुले हृदय से एक निरपेक्ष भाव से अब अपना निर्वाह कर सके।

परन्तु उस दुर्दिन के साथ उसका जीवन समाप्त न हो सका। उसकी भावनाएँ, उसकी तृष्णाएँ—उनकी इतिश्री तो न हो सकी। उस कुत्सित कृत्य के लिए—बड़ी वहाँ तक उत्तरदायी है? उस बलात्कार से न हेम की वासना जगी न तदनन्तर अविनाश के साहचर्य से वह अपने को वश में कर सकी। यह है मनुष्य की प्रवृत्ति—जो बलात् कुचले जाने पर न दब पाती है और बार-बार भड़के जाने पर भी, कभी प्रभावित भी न हो पाती।

प्रत्येक मानव के जीवन का अनुशासन करने वाली तीव्र महती प्रेरणाएँ अहन्त, भय और सेक्स—की जिज्ञासा 'अज्ञेय' जी की नयी रचना 'नदी के द्वीप' में भी लक्षित है। परन्तु 'अज्ञेय' अपनी रचनाओं में अपनी विचार-धारा को, भाषा द्वारा और घटनाओं द्वारा भी ऐसा मूर्त रूप देते हैं कि मनुष्य की मूल प्रवृत्ति की ओर से और मनोविज्ञान की सूक्ष्मदर्शिता की ओर से भी कुछ भी असम्भव और अस्वाभाविक नहीं होने पर भी—बात कुछ गले के नीचे नहीं उतरती।

किन्तु शैली—भाववे जी—विषय के नाजुक स्थलों को छुआ, न छुआ कर छोड़ गये हैं। रेखाएँ अस्पष्ट हैं, किन्तु आकार बन गयी है। पहचानना देखनेवाले की सूझ-बूझ पर निर्भर है। यह संकेतमयता ही कला की विशेषता है।

'कहानी अङ्क' का अवलोकन किया। हिन्दी के जाने माने विद्वानों के स्थायी विचार का सुन्दर चयन किया गया है। हम साहित्यक विद्यार्थियों को तो अपूर्व लाभ पहुँचेगा ही, साथ-साथ मननशील विद्वानों की भी मनस्तुष्टि होगी। कहानी तत्त्वों पर विभिन्न दृष्टिकोणों का संचयन और इतनी उपादेय सामग्री अन्यत्र दुर्लभ है। आपका प्रयास श्लाघनीय है।

—सुशीलकुमार झा 'शीतल', साहित्य-मन्दिर-मधुवन, (भागलपुर)।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

साहित्य-सन्देश के अन्य विशेषाङ्कों के समान 'कहानी-अङ्क' ठोस और उपादेय सामग्री संग्रह की दृष्टि से सफल प्रयास सिद्ध हुआ है और उसे हिन्दी साहित्य में सर्वदा गौरवमय स्थान प्राप्त रहेगा। उसके सम्पादक-त्रय भूरि-भूरि बधाई के पात्र हैं और यह उनका परम सौभाग्य है कि उन्हें इस प्रशंसनीय कार्य में अनेक प्रकाण्ड विद्वानों का सहयोग मिला। "मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी : क्यों" उस अङ्क की निराली विशेषता है। कहानी सम्बन्धी समस्त ज्ञातव्य विषयों का समावेश होने के कारण 'कहानी अङ्क' सभी साहित्य-प्रेमियों की रुचि के अनुकूल पड़ेगा और मुझे आशा है हिन्दी संसार में उसकी बहुत माँग होगी। —युगलसिंह एम० ए०, बार-एट-ला, बीकानेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी साहित्य के प्रेमचन्द

श्री सुशीलकुमार झा 'शीतल'

हिन्दी साहित्य में जो स्थान प्रेमचन्दजी को प्राप्त हुआ है, मराठी साहित्य में वही स्थान श्री विष्णु सखाराम खाण्डेकर को प्राप्त हुआ। श्री खाण्डेकर को मराठी साहित्य का एक युगान्तरकारी लेखक कहा जा सकता है। आपके द्वारा मराठी साहित्य को नवीन दिशा और नवीन दृष्टि प्राप्त हुई। खाण्डेकर मराठी में उतने ही लोक प्रिय हुए जितने हिन्दी में प्रेमचन्द। इनकी कृतियाँ घर-घर में ग्रस्त हो चुकी हैं।

श्री खाण्डेकर का जन्म १८९८ में हुआ। इन दिनों आप कोल्हापुर में निवास करते हैं। रत्नागिरि के शिरोड़े ग्राम के उच्चतम विद्यालय में प्रधानाध्यापक थे। इस विद्यालय को आदर्श बनाने के लिए आपने अपने जीवन का बहुत सा भाग व्यय किया। इसके अतिरिक्त कोल्हापुर से प्रकाशित साप्ताहिक 'अखण्ड-भारत' के सम्पादन-विभाग में भी कुछ समय तक काम किया। आप मराठी साहित्य-परिषद के सभापति भी रह चुके हैं। खाण्डेकर आधुनिक युग के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं। आप का युग मराठी साहित्य में फड़कते-खाण्डेकर युग के नाम से विख्यात है।

सन् १९३५ से १९४० तक का समय सम्पूर्ण मराठी कहानी के विकास का काल कहा जा सकता है। इस काल की कहानी में इसकी भावुकता के साथ कलात्मकता का सम्पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। १९२९ में 'रत्नाकर' मासिक के साथ इस काल का शुभागमन होता है। इस युग में न० चिं० केलकर, गुर्जरजी, वा० म० जोशी, न० ह० आपटे आदि कहानीकार अपनी कहानियों का निर्माण कर रहे थे। लेकिन खाण्डेकर और फड़के की कहानियों ने इस काल के कथा साहित्य में क्रांति मचाई। दोनों अध्यापक थे। अस्तु दोनों का पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में आना आवश्यक ही था। यही कारण है कि उनकी कहानियों में पाश्चात्य आधुनिक कहानियों का अनुकरण मिलता है। आपकी कुछ प्रसिद्ध कृतियाँ ये हैं—

उपन्यास—उल्का, दोन ध्रुव, हृदयाची, हाक, कांचन मृग, दोन मने आदि।

लघु कथा संग्रह—नव मल्लिका, जीवन कला, ऊन पाऊस, देव विंदु, दन्तक व इतर गोष्टी आदि।

जीवन चरित्र—आगरकर चरित्र, गडकरी चित्रादि।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त खाण्डेकर ने नाटक, विनोदी लेख, टीकाएँ, निबंध (सायंकाल संग्रह) आदि साहित्य के विभिन्न अङ्गों पर लिखा है। आरम्भ में कुछ कविताएँ और फिल्मी गीत भी लिखे थे। अनुवाद कार्य भी किया था पर आपकी प्रवृत्ति लघुकथा लिखने में ही है।

खाण्डेकर की प्रतिभा निस्सन्देह सर्वतोमुखी है। आप का वाङ्मय बड़ा विशाल है। यह विशालता मात्रा और गुण दोनों रूपों में द्रष्टव्य है।

प्रेमचन्द के सदृश खाण्डेकर ने भी इतना अधिक लिखा है कि वे मराठी साहित्य पर एक प्रकार से छा गये हैं आपके उपन्यासों और कहानियों पर मराठी में अनेक फिल्में बनी हैं। कुछ ग्रन्थों का गुजराती, हिन्दी, कानड़ी, तामिल आदि भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है।

खाण्डेकर पर मुख्यतः गडकरी, कोल्हटकर, गांधीजी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, खलील जिब्रान, आदि का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। गांधीवाद से आप विशेष प्रभावित हुए हैं।

खाण्डेकरजी का कथा साहित्य में विशिष्ट स्थान है। आप प्रेमचन्द के समान समाज सुधारक होकर पाठकों के सामने अवतरित होते हैं। यही कारण है कि आप की अधिकांश कहानियाँ समाज के विषम मानव जीवन की दुःखमय कहानी ही है। प्रेमचन्द के सदृश आपके भी प्रत्येक कहानियों में गोपनीय उद्देश्य छिपा रहता है। आप कभी कभी उपदेशक होकर पाठक के सामने आते हैं जो प्रेमचन्द के कहानियों का आधार है। दोनों कथा सम्राटों के पात्र किसान, मजदूर, देशभक्त आदि साधारण व्यक्तित्व का जीवन लेकर चित्रित होते हैं। वस्तुतः दोनों की कहानी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श हिन्दी कहानी साहित्य के और मराठी कहानी साहित्य के उत्कर्षकाल में अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ है। आपकी कहानियाँ तीन भागों में विभक्त की जा सकती है—

१—रूपात्मक कहानियाँ। २—पौराणिक कहानियाँ। ३—विनोदी कहानियाँ।

प्रथम श्रेणी की कहानियों में 'चकोर-चातक, छोटा-दजद, दोन आवाज, घोड़चूक पाळण आदि उल्लेख करने योग्य है। इन रचनाओं में नीतितत्व पर अधिक बल देते हैं। संकेतात्मक होने के कारण इन श्रेणी की रचनाएँ लघु-काय हुई है। आपकी कहानियों में काव्यमय वर्णन की प्रचुरता है। हाँ, रस निष्पत्ति का अभाव बेतरह खटकता है।

द्वितीय श्रेणी की रचनाओं में 'चित्रगुप्तांच्या चरित्रे', ऋद्धि-सिद्धी चें स्वयंवर, आदि रखे जा सकते हैं। इन कहानियों में भी तत्व की प्रधानता के कारण रस निष्पत्ति का स्थान न्यून है। विनोदी कहानियों में व्यङ्ग और आलोचना का अपूर्व मिश्रण हुआ है। आप की विनोदी कहानियाँ अन्य कहानियों की अपेक्षा विशेष लोकप्रिय हुई है। इन रचनाओं के लिखने में एक निश्चित उद्देश्य ही काम कर रही थी जो सामाजिक कुसंस्कारों और कुरीतियों के के प्रति तीखा व्यङ्ग करना ही है। आपकी कहानियों का प्रधान विषय आर्थिक विषमता, वर्गकलह सामाजिक अन्याय आदि पर आधारित है। खाण्डेकर साहित्य में उपयोगितावाद के सिद्धान्त को मानने वाले हैं यही कारण है कि आपकी कहानियों में कहीं-कहीं पर रस निष्पत्ति का न होना आप के साहित्य में दोष बनकर छा गया है।

प्रेमचन्द के समान खाण्डेकरजी की शैली भी अपने नवीन एवं मौलिक रूप में आयी है। अनेक दृष्टान्त और उपमाएँ संख्या में इतनी हैं कि यदि उन्हें एकत्र किया जाय तो एक अच्छी खासी पुस्तक तैयार हो सकती है। ये दृष्टान्त और उपमाएँ खाण्डेकरजी के कथा साहित्य में चार चाँद लगा देती हैं। छोटे-छोटे और सरल वाक्यों का प्रयोग आपकी प्रमुख विशेषता है। औपन्यासिक रचना तन्त्र में नये-नये प्रयोग भी आपने स्वतन्त्रता के साथ किया है। प्रेमचन्द के समान खाण्डेकर भी वस्तुवादी-यथार्थवादी कलाकार हैं। अतः इन्हें यदि मराठी साहित्य का प्रेमचन्द कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं।

आगरे का साहित्य-रत्न-भण्डार केवल एक हिन्दी पुस्तकों की दुकान और प्रकाशन स्थान नहीं है। यह सचमुच हिन्दी साहित्य तथा साहित्याश्रयी संस्कृति का एक लक्षणीय केन्द्र है। हिन्दी संसार के लेखकों की पुस्तकों का एक अनोखा संग्रह यहाँ संगठित हुआ है। मुझे यदि समय मिलता तो यहाँ घण्टों तक ठहर कर आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगति का एक दिग्दर्शन कर लेता। भण्डार की सत्वाधिकारी उच्च सांस्कृतिक आदर्श द्वारा अनुप्राणित होकर इस महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान को चला रहे हैं। इनके सौजन्य से मैं मुग्ध होगया हूँ और हृदय से इस प्रतिष्ठान की उन्नति चाहता हूँ ताकि इसके माध्यम से राष्ट्र-भाषा हिन्दी की सेवा हो पावे।

—सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
तुलनात्मक भाषा तत्व का सम्मानित अध्यापक, कलकत्ता विश्वविद्यालय,
सभापति, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
सभापति, पश्चिम बङ्ग विधान परिषद्।

आगरा।
२६-४-'६५१ ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

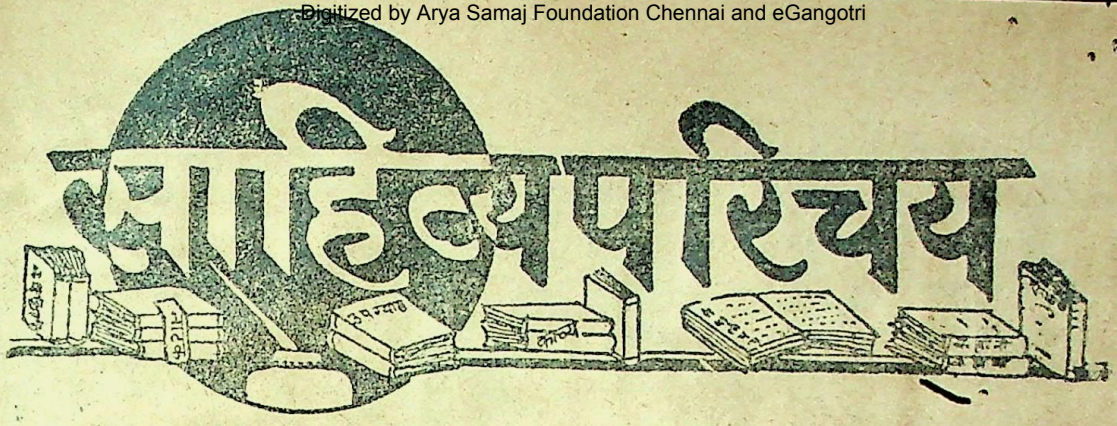

आलोचना

भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि—लेखक—श्री किशोरीलाल गुप्त, प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा। पृष्ठ संख्या ८१, मूल्य ॥)

प्रत्येक प्रतिभाशाली कवि अतीत और अनागत के बीच की कड़ी होता है। वह अतीत का फल होता है और उसमें भविष्य के बीज निहित रहते हैं। यह बात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए अक्षरशः चरितार्थ होती है। शृङ्गार और शृङ्गार प्राचीन काव्य के मूल स्वर रहे हैं उसके पश्चात वीर-रस को स्थान मिलता है। इसी क्रम से भारतेन्दुजी की रचनाओं का पूर्व और परवर्ती कवियों के साथ विचार साम्य दिखाया गया है। इसमें लेखक के व्यापक अध्ययन का परिचय मिलता है। पिता और पुत्र का अध्याय विशेष महत्व का है क्योंकि ऐसा कम देखा गया है कि पुत्र ने पिता की साहित्यिक परम्पराओं को इतने पूर्ण रूप से क्या इतने विस्तार और धारावाहिक वेग से चलाई हो। अपने पिता के अतिरिक्त वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों का भारतेन्दु पर विशेष प्रभाव पड़ा है। इन प्रभावों में रसखान के प्रेम के आदर्श ने भारतेन्दु के काव्य को अधिक अनुप्राणित किया था। इसी दृष्टि से रसखान की प्रेमवाटिका और भारतेन्दुजी के प्रेमसरोवर का तुलनात्मक अध्ययन एक विशेष अध्याय में किया गया है। भारतेन्दुजी की प्रतिभा को समझने और उसके मूलांकन करने में यह पुस्तक विशेष रूप से सहायक होगी। लेखक महोदय यदि प्रस्तुत सामग्री के ही आधार पर इसको कुछ और अधिक विवेचनात्मक बनाते तो विद्यार्थी समाज का और भी उपकार होता।

—गुलाबराय

हिन्दी-काव्य धारा में प्रेम प्रवाह—लेखक—श्री परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद। पृष्ठ २१६, मूल्य ३॥)

इस पुस्तक में १२ अध्यायों के अतिरिक्त प्रस्तावना तथा नामानुक्रमणिका भी है। प्रारम्भिक अध्याय में 'प्रेम-परिचय' दिया गया है इस परिचय में प्रेम के आवश्यक तत्वों का सामान्य परिचय ही दिया गया है हाँ 'काम और प्रेम' का अन्तर स्पष्ट करने की विशेष चेष्टा की गई है। दूसरे अध्याय में आदिकालीन हिन्दी-काव्य में प्रेम का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। आगे के पाँच अध्यायों में मध्यकालीन साहित्य की विविध रूपों में, तथा शेष पाँच अध्यायों में भारतेन्दु से लेकर वर्तमान काल तक के काव्य में प्रेम-प्रवृत्ति का विवेचन किया गया है। यह स्पष्ट है कि लेखक की लेखनी ने मध्यकालीन काव्य में प्रेम की प्रवृत्ति का जिस अधिकार के साथ विवेचन किया है, उस अधिकार के साथ वह आधुनिक काल के ऊपर नहीं लिख सका है। पुस्तक अवश्य ही पठनीय और मननीय है।

सन्तकाव्य—लेखक—श्री परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक किताब महल, इलाहाबाद। पृष्ठ ५८०, मूल्य ६)

प्रस्तावना के अनुसार इस पुस्तक में सन्त कवि जयदेव से लेकर स्वामी रामतीर्थ के समय तक की चुनी हुई रचनाएँ सम्मिलित की गई हैं। इसमें १२६ पृष्ठ की विस्तृत भूमिका में सन्त काव्य का विशद विवेचन है और उनके गुण-दोषों का उल्लेख है। कवि ने समस्त सन्तकाव्य को चार युगों में विभाजित किया है। प्रारम्भिक और आधुनिक युग के साथ मध्ययुग को उसने दो विभागों में बाँट दिया है। इस वर्गीकरण का कोई विशेष वैज्ञानिक कारण नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक शैलियों के प्रकाश को ही कसौटी बनाया गया है। जिस कवि के काव्य के चुने हुए उदाहरण दिये गये हैं, उसका संक्षिप्त परिचय आरम्भ में दिया गया है, फिर प्रत्येक पद के साथ उसका अर्थ भी दिया गया है। अर्थ से सबदा तो अवश्य सहमत नहीं हुआ जा सकता, फिर भी सन्तोष अवश्य होता है। परिशिष्ट में कुछ पारिभाषिक शब्दों की भी व्याख्या दी गयी है। —सत्येन्द्र

(१) 'मृगनयनी' में कला और कृतित्व—लेखक—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी एच० डी०, प्रकाशक—साहित्य प्रकाशन मन्दिर, लेहरा। पृ० १३१, मूल्य २।)

(२) चिन्तामणि दर्शन—लेखक—श्री हरिहरनाथ टण्डन एम० ए० प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा। पृष्ठ २१६, मूल्य ३)

दोनों पुस्तकें दो प्रसिद्ध पाठ्य ग्रन्थों पर लिखी हुई छात्रोपयोगी समीक्षायें हैं। दोनों के लेखक साहित्य क्षेत्र के अनुभवी व्यक्ति हैं। मृगनयनी की समीक्षा में विवेचन और विश्लेषण की अधिक गम्भीरता है। वृन्दावनलाल वर्मा के उक्त सर्व प्रशंसित उपन्यास का अच्छा अध्ययन इसके द्वारा हो जाता है। चिन्तामणि दर्शन के उत्तरार्ध में 'चिन्तामणि' के लेखों पर छात्रोपयोगी टीका है। पूर्वार्द्ध में जो हिन्दी के निबन्ध का संक्षिप्त परिचय दिया गया है वह बड़ा उपयोगी है। —सुरीन्द्र

कबीर दोहावली—टीकाकार—श्री महेन्द्रकुमार जैन, प्रकाशक—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास। पृष्ठ २१४, मूल्य ३)

कबीर साहित्य पर अब तक कितनी ही पुस्तकें निकल चुकी हैं। प्रस्तुत 'कबीर दोहावली' दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा विशेषकर दक्षिण भारत के 'हिन्दी प्रेमी जनों' को संत कबीर के विचारों का बोध कराने के उद्देश्य से लिखी गई है जो सभी हिन्दी रसिकों के लिए समान रूप से ग्राह्य है। इसमें भक्त कबीरदास के ३५० चुने हुये दोहों का संकलन और उन पर टीका है। इस पुस्तक में कबीर के दोहों को अलग अलग विषयों में विभाजन करना टीकाकार की एक विशेषता है। —रमेश वर्मा

कविता

उदय-पथ—लेखक—श्री शील, प्रकाशक—पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस बम्बई। पृष्ठ ६४, मूल्य १)

इस पुस्तक के प्रकाशक मार्क्सवादी और राजनैतिक साहित्य के प्रकाशक के रूप में प्रसिद्ध हैं। लेखक ने भी इस संग्रह में अपनी ३६ कविताएँ संग्रहीत की हैं। इन सभी कविताओं में नया युग लाने की प्रेरणा है और है पुरानी हर चीज को मिटाने की भावना। इसीलिये 'नारी से' कहा गया है कि—

मरणोन्मुखी सभ्यता छोड़ो, ऋण में आश्रित होकर जीना।
अगली पीढ़ी कहे न तुमको, नर की दासी, घर की दीना॥
परिवर्तन के लिये रूढ़ियाँ हँस हँस कर दफनानी होंगी,
आज तुम्हें भी अपनी मंजिल अपने हाथ बनानी होगी॥

उदय पथ का सन्देश उसकी पहली कविता में ही इस रूप में व्यक्त किया गया है—

देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल,
नया संसार बसायेंगे, नया इन्सान बनायेंगे।

ज्योतिकण—लेखक—श्री श्यामसुन्दर तिवारी एम० ए० एवं श्रीकृष्णकुमार त्रिवेदी, प्रकाशक—क्रैस्ट पब्लिशर्स माल रोड, कानपुर। पृष्ठ ८६, मूल्य १)

यह पुस्तक भी मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही लिखी गई लेकिन इसके कवि 'परिवर्तन' दूसरे ढङ्ग से चाहते हैं। उन्हीं के शब्दों में—

होना है परिवर्तन निश्चय
जब जग ही-परिवर्तन मय है!
होता आया है यह तब से,
जब से जग में मानव आया।
मानवता उस क्षण भ्रष्ट हुई,
जब मानव बन दानव आया॥
बन गई परिस्थिति प्रगति शील,
यह परिवर्तन का परिचय है।

इस पुस्तक की कविताओं में जीवन और जागृति के चिह्न हैं, लेखकों में कितना आत्म-विश्वास है, देखिये—

हमारी वाणी को सुनकर,
करोड़ों प्राणी जग जाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे अरमानों को मुक्ति,
मुक्ति के भी पर लग जाते ॥

श्यामा—लेखक-श्री किशोरीलाल गुप्त, प्रकाशक-अभिनव प्रकाशन समिति, आजमगढ़। पृष्ठ ८५, मूल्य १)

पुस्तक के लेखक हिन्दी के पटु लेखक हैं। इस पुस्तक में उनकी ८६ कविताओं का संग्रह है और यह सभी कविताएँ १४ १४ पंक्तियों की हैं। अधिकांश कविताएँ शृङ्गार रस की हैं—कुछ कविताएँ राजनीति की भी हैं। बापू के सम्बन्ध में आपने लिखा है—

किन्तु राम के सदृश तुम्हारा नाम भी,
काटेगा भव जाल हमारे अब सभी।
जरा मरण से परे हो गये कान्ति-धर,
राष्ट्र पिता बापू तुम मर कर भी अमर।

और बापू के घातक के विषय में:—

ओ हत्यारे आज हमारे लाल मुँह
पर तूने दी फेर कालिमा अमिट यह।
तू हिन्दू था—अब लगता सङ्कोच है
अपने को हिन्दू कहने में सर्वथा।

शतदल—ले०-श्री लक्ष्मीशङ्कर मिश्र 'निशङ्क' एम० ए०, प्रका०-नव साहित्य निकेतन, लखनऊ। पृष्ठ ९६, मू० २)

प्रस्तुत पुस्तक में निशङ्कजी की फुटकर कविताओं का संग्रह है। कविताएँ अधिकतर सवैया छन्द में लिखी गई है और खड़ी बोली में उसका निर्वाह खूब हुआ है। कविता का एक नमूना देखिए—ये 'अपना विश्वास' कविता का एक अंश है—

वह शक्ति है, भक्ति का संबल है,
जिसे चाहा उसी को महान बना दिया।
प्रिय प्रेम में जो मिली वेदना तो,
उसे भी अमरत्व का गान बना दिया।
अभिशाप किसी ने दिया यदि तो,
हँसते हँसते वरदान बना दिया।
करुणाब्धि को पाहन में भर के,
उसे भावना ने भगवान बना दिया।

मिट्टी के गीत—लेखक-श्री प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक, प्रकाशक-वाणी कुटीर, बरपाली (उत्कल)। पृष्ठ ८०, मूल्य १॥)

पट्टनायकजी ने उड़िया होकर हिन्दी में ऐसी सुन्दर पुस्तक दी है जिसका हम सहर्ष स्वागत करते हैं। इसमें आपकी देश प्रेम, वीरता और आत्मोत्सर्ग सम्बन्धी २८ कविताएँ संग्रहीत हैं। सभी कविताएँ सामयिक, उत्साह वर्द्धक और सुन्दर हैं। आधुनिक सभी विषयों पर लेखक ने लेखनी चलाई है और सफलता पूर्वक अपने भाव व्यक्त किए हैं। आचार्य विनोबा के भूमिदान के सम्बन्ध में आपने लिखा है:—

भूमि दो उसको कि वामन ने लिया अवतार,
भूमि वालो, आज वामन का करो सत्कार।
भूमि माता के स्तनों से निश्चलता जो दूध,
बाँट लो उसको बराबर प्राण करलो पूत।
माँगता जो भीख उसको आज भर दो थाल,
सामने तेरे खड़ा है युग पुरुष कङ्काल।
आज दीनों का खड़ा जो द्वार पर भगवान,
बाँट अपनी भूमि उसका करो तुम सम्मान।

ऐसी पुस्तकों का जितना भी प्रचार हो—अपने देश का कल्याण होगा। स्कूलों में ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जायँ, बाँटी जायँ, तो हमारी विचार धारा ही बदल सकेगी।

अङ्कुर—ले०-श्री प्रहलाद पाण्डे बी० ए०, प्रका०-चतुर्भुज लाल अग्रवाल, प्रताप प्रेस अलीनगर, गोरखपुर। पृष्ठ ६४, मूल्य १)

इसमें कवि की २४ कविताओं का सङ्कलन है। सभी कविताएँ एक ही छन्द में लिखी गई हैं और अधिकतर शृङ्गार रस सम्बन्धी हैं। 'संसार की असारता से' एक नमूना देखिए:—

फूलों सा हँसमुख मुख ले,
जो भी दुनिया में आया।
अपनी मुस्कान लुटाकर,
अवसाद अन्त में पाया।
जो कभी किये अठखेली,
वैभव के उच्च शिखर पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे आज पराशायी हैं,
यमुना के पावन तट पर।

ताजमहल—ले०-श्री शिवकुमार श्रीवास्तव, प्रका०—नीलकमल प्रकाशन, सागर। पृष्ठ ७६, मूल्य १॥)

मुगल बादशाह शाहजहाँ के बनाये हुये ताजमहल की चर्चा आपने बहुत सुनी होगी। उसकी प्रशंसा में सैकड़ों कवियों ने अपने हृदय के रक्त से अनेक कविताएँ भी रची होंगी और ऐसे प्रशंसक भी शायद आपने देखे हों जो एक अँग्रेज महिला की तरह अपने पति से यह कहने को तैयार हों कि अगर आप मेरे मरने पर मेरी ऐसी यादगार बना सकें तो मैं अभी मरने को तैयार हूँ। लेकिन प्रस्तुत लेखक की पुस्तक ताजमहल में ताजमहल के दर्शन एक दूसरे ही दृष्टिकोण से हुए हैं जिस ओर अभी तक बहुत कम लोगों का ध्यान गया होगा। इस पुस्तक में ताजमहल के बनाने वाले उन मजदूरों और कारीगरों की चर्चा है जिन्होंने अपने पसीने और परिश्रम से ताज का निर्माण किया था। पुस्तक में अपने विषय का निर्वाह खूब हुआ है।

जमालगोटा—रचयिता-श्री भुशुण्डि, प्रकाशक-शारदाप्रसाद भुशुण्डि, बिरहाना, लखनऊ। पृष्ठ ६०, मूल्य १॥)

प्रस्तुत पुस्तक में हास्यरस की कविताएँ हैं जो सामयिक विषयों पर लिखी गई हैं। आज के जीवन में जिन कठिनाइयों का अनुभव लोगों को हो रहा है, उसका हास्य-चित्र मनोरञ्जक भी है और सार्थक भी।

युग प्रवर्त्तक गांधी—लेखक श्री रामेश्याम द्विवेदी, प्रकाशक-केशव साहित्य कुटीर, बरेली, (उ० भारत) पृष्ठ ७८ मूल्य ॥)

महात्मा गांधी के जीवन और उनके महान् कार्यों के सम्बन्ध में लिखा गया यह काव्य ग्रन्थ है। छपाई और कागज के अच्छा न होने के कारण उसका महत्व और कम होगया है। वैसे पुस्तक पठनीय है।

पत्नी—लेखक श्री इलाचन्द्र पाठक 'निराश', प्रकाशक—और मूल्य दि लिखे नहीं हैं। इसमें विवाहित और अविवाहित जीवन का विवेचन है।

कथा-कहानी

दशकुमार चरित—अनु० पं० निरञ्जनदेव आयुर्वेदालङ्कार, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ ४०८, मूल्य ५॥)

संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य दण्डीकृत दशकुमार चरित का यह हिन्दी अनुवाद है। दशकुमार चरित संस्कृत साहित्य का कथा-प्रधान ग्रंथ है। ये कथाएँ इतिहास का अङ्ग तो नहीं बनतीं पर इतिहास के लिये प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करती हैं। अतएव कथाओं से केवल द्विमागी मनोरञ्जन ही नहीं बल्कि तत्कालीन सामाजिक अवस्था का ज्ञान भी होता है। पुस्तक के आमुख में डा० मोतीचन्द्र ने लिखा है—"दशकुमार चरित का मुख्य उद्देश्य जन-जीवन की जिसमें बड़े छोटे सब आ जाते हैं, झलकें दिखलाता है। कहानियों में हम साधु, पाखण्डी, जादूगर, राजकुमारियाँ और राजे महाराजे, वेश्यायें और चोर तथा प्रेम के अन्धे बने हुए कामुकों का चित्र देखते हैं।" अनुवादक की भाषा प्रवाह-पूर्ण है और पुस्तक पढ़ने में मूल-ग्रन्थ का सा ही आनन्द आता है।

मेले के मोती—लेखक-श्री रघुवीरशरण मित्र, प्रकाशक—अ० भा० राष्ट्रीय साहित्य-प्रकाशन, मेरठ, मू० ।)

'मेले के मोती' एक आख्यायिका है जिसकी पृष्ठभूमि देहात में लगने वाले मेले हैं। वहाँ का जीवन, लेन-देन, कार्यविधि तथा विविध उत्सव और उपयोगी बातें और इस सब के साथ मानव-चित्रण, एक कहानी के रूप में लेखक ने सरल रोचक ढङ्ग से लिखे हैं। पाठकों का इससे मनोरञ्जन होगा।

आदर्श-चरित—लेखक-पं० रघुवरदयाल मिश्र, प्रकाशक-दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास। पृष्ठ १२०, मू० ॥≡)

पुस्तक में राजकुमार ध्रुव, सावित्री का पातिव्रत, दमयन्ती और शकुन्तला—नाम की चार कथायें हैं जो एक विशेष दृष्टिकोण से लिखी गई हैं। हिन्दी के विद्यार्थियों के लिये पुस्तक उपयोगी है।

रानी लक्ष्मीबाई—लेखक—श्री ब्रजनन्दन शर्मा, प्रकाशक—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास। पृष्ठ ८७, मूल्य ॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाँसी वाली रानी लक्ष्मीबाई का नाम अब जन-साधारण में स्मरणीय हो गया है। इस पुस्तक में रानी लक्ष्मीबाई की जीवनी दी गई है जो विद्यार्थियों और जन-साधारण के लिए उपयोगी है।

आधुनिक साहित्य प्रकाशन

नई दिल्ली से हाल ही में उक्त नाम से एक पुस्तक-माला निकली है जिसकी २० पुस्तकें हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं। यह पुस्तकमाला अमरीका सरकार से प्रभावित मालूम होती है—उद्देश्य कुछ भी हो, पुस्तक पठनीय हैं। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

लोकतंत्र—(अनूदित) मूल लेखक—श्री रौसिल ओवर गॉखलिन, पृष्ठ ६०, मूल्य १॥)

लोक-तंत्रीय शासन पद्धति की कुछ मौलिक बातें लेखक ने इस पुस्तक में बड़े सरल ढङ्ग से बतलाई हैं। प्रत्यक्ष उदाहरणों से, यथा-प्रसंग चित्रों द्वारा पुस्तक को प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए आकर्षक बनाया है। कागज और छपाई बढ़िया है।

पशु लोक—लेखक—जार्ज ओरवेल। पृष्ठ १२०, मूल्य १॥)

लेखक की मूल पुस्तक एनिमल फार्म (Animal Farm) का हिन्दी रूपान्तर यह पुस्तक है। अनुवाद मौलिक रचना के समान ही हृदयग्राही है। उसमें भारतीय नाम और मुहाविरों का प्रयोग संभवतः अनुवाद की विशेषता है। इसमें रूस की पद्धति को पशु संगठन की उपमा और संज्ञा देकर उसका मजाक उतारा गया है।

नई सभ्यता की झाँकी—लेखक—राबर्ट मैगिडोफ पृष्ठ २२३, मूल्य १॥)

मूल पुस्तक एँगर एण्ड पिटी (Anger and Pity) का संक्षिप्त अनुवाद 'नई सभ्यता की झाँकी' नाम से किया गया है। लेखक एक पत्रकार था जो बारह वर्ष तक रूस में रहा। पुस्तक पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका सम्बन्ध मास्को स्थित अमेरिकन दूतावास से था। रूस सरकार ने उस पर जासूस होने का अभियोग लगाया, फलतः मैगिडोफ को रूस छोड़ना पड़ा। इसके पश्चात् रूस के अपने अनुभव और संस्मरणों पर उक्त पुस्तक लिखी गई। द्वितीय महायुद्ध के बाद से अमेरीका और रूस के सम्बन्ध कटु हो गये हैं और यह पुस्तक रूस के विरुद्ध अमरीका के दृष्टिकोण की परिचायक है। पुस्तक में रूसी-जीवन के कई अङ्गों पर घटनाओं के रूप में प्रकाश डाला गया है। पुस्तक पढ़ने में रोचक है और उसकी लेखन शैली औपन्यासिक है।

आतङ्क से दूर—लेखक—अलेग्जेन्डर बारमीन। पृष्ठ २२६, मूल्य १॥)

लेखक ने रूसी क्रान्ति में भाग लिया। प्रथम महायुद्ध में और बोल्शेविक विजय तथा गृहयुद्ध में वह विजयीदल की ओर से लड़ा। वह एक अनाथ बालक के रूप में था और क्रमशः उन्नति करते हुए यूनान के रूसी दूतावास में प्रथम पद का व्यक्ति बन गया। जहाँ से उसका पलायन हुआ और रूस छोड़ दिया। रूस में राजनैतिक बुद्धि जिसमें क्रान्ति के दिग्गज नेता गोली और फाँसी के शिकार हुए, बड़ी ही लोम हर्षण घटना है। अलेग्जन्डर बारमीन भी उसी 'स्तालिन के विरुद्ध षड्यन्त्र' जिसका अर्थ था सोवियत की नई व्यवस्था को उलटने के षड्यन्त्र के शुबहा का शिकार होने को था कि वह रूस से भाग निकला। इसने अपनी जीवन कथा के प्रसङ्ग में रूस की इस काल की राजनैतिक व्यवस्था का चित्र इस पुस्तक में खींचा है। जिन परिस्थितियों में और जिस मानसिक अवस्था में लेखक ने वह पुस्तक लिखी है, उसमें यह भी स्वाभाविक है कि रूस की एक भयङ्कर तस्वीर ही लेखक के सामने थी। अतः इस नई व्यवस्था की खूबियाँ उसकी आँखों से ओझल हो गयीं। लेखक ने जिन घटनाओं को पुस्तक में दिया है उनकी सचाई में सहसा अविश्वास नहीं होता और उनका प्रभाव भी दिल पर होता है। उनके औचित्य और अनौचित्य पर लोग अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार करते हैं।

मैं भूल न सकूँगी—लेखिका—श्रीमती एलेनोर रूजवेल्ट। पृष्ठ १५०, मूल्य १॥)

अमरीका के ख्याति-प्राप्त प्रेसीडेन्ट स्वर्गीय रूजवेल्ट की पत्नी एलेनोर रूजवेल्ट ने इस पुस्तक में अपने पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113014

संस्मरण लिखे हैं, जो बड़े ही रोचक, आकर्षक और पठनीय है। राजनैतिक विवादों से दूर रह कर एक स्त्री अपने पति के कार्यों को किस रूप में देखती है और अर्धांगिनी के रूप में जनहितकारी और सेवा कार्यों को करते हुए राजनैतिक पति को अपने देश का सबल नेता बनाने में सहयोग देती है, यह इस पुस्तक में देखने को मिलेगा। ऐलेनोर के लेखन में संयम, प्रवाह, भावुकता और देश भक्ति है। पुस्तक पठनीय है।

दिशा सङ्घर्ष—लेखक—पेनिगून हेल, पृष्ठ १८८, मूल्य १॥)

आज विश्व में दो राजनैतिक विचार-धाराओं का गहरा सङ्घर्ष है। एक विचार-धारा का प्रतिनिधि सोवियत रूस है, दूसरी का अमरीका। रूस का राजनैतिक सङ्गठन और कार्य प्रणाली का आधार मार्क्स दर्शन है। लेखक का मत है कि मार्क्स विचार-धारा की भी एक भूमिका है। उसने योरपीय दर्शन की परम्पराओं और उसके क्रमिक-विकास की विवेचना करते हुए अमरीका की पूँजीवादी व्यवस्था का भी एक दार्शनिक आधार बतलाने की चेष्टा की है। और रूस के साम्यवाद से अमरीका के लोक-तन्त्र-वाद को जन कल्याणकारी बतलाया है। राजनीति के विद्यार्थियों के लिए पुस्तक पठनीय है।

मेरी मैक्लौड बेथ्यून—लेखक—कैथरन ओर्वंस पियर। पृष्ठ २८८, मूल्य १।)

मेरी मैक्लौड बेथ्यून अमरीका की नीग्रो (हबशी) जाति की एक लड़की थी। अमरीका में इस कौम का इतिहास एक लम्बी दासता का इतिहास रहा है, जिसे अब्राहिम लिङ्कन ने मुक्ति प्रदान की। किन्तु फिर भी परम्परागत रिवाज और पद्धति का असर एकदम ही कानून द्वारा नहीं मिट जाता। अब तक भी अमरीका में नीग्रो जाति के लोग सभ्यता और संस्कृति में गोरी कौम से पिछड़े हुए हैं। लेकिन दासता के बन्धन कट जाने पर उन्हें जीवन में तरक्की करने का एक अवसर मिला। मैक्लौड बेथ्यून एक दरिद्र घर में पैदा हुई, उसके बाप के बड़े परिवार में केवल एक ही खच्चर खेत जोतने के लिए था। मिशनरियों ने वहाँ एक स्कूल खोला। बेथ्यून ने उसमें शिक्षा पाई। धीरे-धीरे यह हबशी लड़की सुयोग्य ईसाई प्रचारिका बन गई और अन्त में अमरीकन प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट के सानिध्य में एक प्रमुख जन सेविका का पद प्राप्त किया जो राष्ट्र-सङ्घ में नीग्रो जाति की ओर से प्रतिनिधि रूप में सम्मिलित हुई। इस पुस्तक में बेथ्यून की जीवनी कथारूप में आकर्षक ढङ्ग से लिखी गई है।

मास्को में तीन वर्ष—लेखक—वाल्टर बैडल स्मिथ, पृष्ठ २४०, मूल्य १॥)

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक वाल्टर बैडल स्मिथ रूस में तीन वर्ष तक अमरीका के राजदूत बन कर रहे। अतः स्वाभाविक ही रूस की राजनीति और वहाँ के उच्च राजनैतिक व्यक्तियों को उन्होंने निकट से देखा। गम्भीर राजनैतिक समस्याओं पर स्वर्गीय स्तालिन के साथ भी उनकी बात चीत हुई, रूस की व्यवस्था में वर्ग अधिनायकत्व के द्वारा वहाँ के राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का विकास उन्मुक्त प्रवाह की तरह नहीं है जैसा कि अमरीकन लोकतन्त्र में है, बल्कि वह कठोरता से नियन्त्रित धारा के समान है, जिसमें और भी जितने ही दोष हैं। इसके लिए लेखक ने सामयिक राजनैतिक समस्याओं के उद्धरण देकर उन पर रूस की प्रतिक्रिया का उपहास प्रगट किया है। रूस की कृषि व्यवस्था, कलाकारों के जीवन, यहूदी प्रश्न और कितनी ही समस्याओं पर अपने अनुभव प्रगट किए हैं।

परिपक्व मानस—लेखक—एच० ए० ओवरस्ट्रीट, पृष्ठ १४६, मूल्य १।)

मूल पुस्तक का नाम है 'दी मेच्योर माइंड' (The Mature Mind) मानव की पूर्णता कहाँ है—परिपूर्ण मानव कैसा होना चाहिए, इस महा प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। मानव-जीवन के इस साध्य (परिपक्व मानस) की ओर पहुँचने में कितने ही, कई प्रकार के प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान लेखक ने बौद्धिक साधन द्वारा मानव को परिपक्व अवस्था तक बढ़ने के संकेत किये हैं। यह सत्य है कि मानव की परिपूर्णता भौतिक शक्ति और साधनों में निहित नहीं है। विज्ञान की भौतिक शक्तियों के अन्दर जो ध्रुव सत्य है उसकी खोज कर तदनुकूल आचरण करके मानव पूर्णता की ओर कदम बढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and

सकता है। पुस्तक के दो भाग हैं और दोनों में गूढ़ विवेचन द्वारा विद्वान लेखक ने मानव-कल्याण का मार्ग बतलाने में पठनीय सामग्री उपस्थित की है।

देहाती डाक्टर—लेखक—आर्थर ई हर्टजलर। पृष्ठ १४४, मूल्य १॥)

यह पुस्तक लेखक की मूल पुस्तक (The Horse and Buggy Doctor) का संक्षिप्त अनुवाद है। जिसका अर्थ है—मैं डाक्टर कैसे बना। साथ ही स्वास्थ्य और चिकित्सा के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी बातों की जानकारी भी पुस्तक पढ़ने से होती है।

आजादी की खोज में—लेखक—पीटर पिरोगोफ पृष्ठ २७६, मूल्य १॥)

'मैं क्यों भागा ?' (Why I escaped) पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर यह पुस्तक है। पीटर पिरोगोफ रूसी व्यक्ति है, अध्यापक से सैनिक बनता है, सेना में हवाई उड़ाका। महायुद्ध समाप्त होने पर बर्लिन विजय के बाद वह रूस लौटता है। फिर कुछ दिनों बाद वह और साथी के साथ चुपके से वायुयान उड़ाकर आस्ट्रिया में अमरीकन हवाई अड्डे पर उतरता है और इस प्रकार उसका रूसी जीवन समाप्त हो जाता है। रूसी सैनिक जीवन और जर्मनी में लाल सेना के अत्याचारों के उसने वीभत्स चित्र खींचे हैं। इसके वर्णन पढ़कर तो मालूम होता है रूस की लाल सेना का नैतिक जीवन ही कुछ नहीं। रूसी अधिकारी अत्याचार की प्रतिमा हैं। निस्संदेह पुस्तक में अतिरञ्जन है। आश्चर्य यह है कि ऐसा समझते हुये लेखक इतने दिन, युद्ध के अन्त तक उसी सेना में रहकर लड़ता रहा, उस पर शक हुआ और वह भाग निकला। दुनिया के दो राजनैतिक कैम्पों के बीच की खाई कितनी चौड़ी है, यह इस पुस्तक से स्पष्ट विदित होता है। राजनैतिक विचारों से परे रहकर पाठकगण इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो उनका पर्याप्त मनोरञ्जन होगा।

अन्न और आजादी—लेखक—एडवर्ड जेरोम डाईल। पृष्ठ १६२, मूल्य १)

आज का अमरीका विश्व के लिये कुबेर भण्डार बना हुआ है, लक्ष्मी के लिए ही नहीं, अन्न के लिये भी। इस पुस्तक में अमरीका के ऐतिहासिक और प्रसिद्ध पुरुषों के उन प्रयत्नों का उल्लेख किया है जो उन्होंने अमरीका की भूमि को शस्य श्यामला बनाने के लिये किए। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र के सत्रह ऐतिहासिक पुरुष तथा और भी कई प्रमुख अमरीकन व्यक्तियों की कृषि सम्बन्धी सेवाओं का वर्णन इस पुस्तक में आ जाता है। यद्यपि खाद्यान्नों का उत्पादन उन लाखों और करोड़ों जन साधारण के हाथों द्वारा होता है, जिन्हें पुस्तकों में कोई स्थान नहीं मिलता, अमरीका इसका अपवाद नहीं है। फिर भी चूंकि इतिहास बड़े पुरुषों के कामों का लेखा प्रस्तुत करता है। अतएव इस विषय की ओर एक नई प्रेरणा दिलाने की दृष्टि से इस प्रकार लिखी गई पुस्तक का एक महत्व है। पुस्तक में प्रत्येक ऐसे पुरुष की सेवाओं का वर्णन करते हुए प्रारम्भ में उनके जीवन की मुख्य तिथियाँ भी दी गई हैं।

स्थायी क्रान्ति—लेखक—रसल डब्ल्यू० डेवनपोर्ट, पृष्ठ १४१, मूल्य १)

क्रान्ति का उद्देश्य पुरानी व्यवस्था पर एक संघातिक चोट करके नई व्यवस्था का निर्माण करना है। इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि अमरीका ने यही किया है। मानव शक्तियों का विकास करके जीविका के साधनों का विकास और उन्नति ही नहीं बल्कि उनकी संगठन व्यवस्था और उत्पादन का विवरण सामाजिक न्याय के आधार पर किया जा रहा है। यह दृष्टिकोण अमरीका के शासक वर्ग के भक्त और प्रशंसक लोगों का है। कुछ लोगों का इसमें मतभेद भी हो सकता है। अमरीका में क्रांति हुई, लेकिन क्रांति को स्थायी कहना भूल है। इसमें सन्देह नहीं कि अमरीका की व्यवस्था में बहुत सी अच्छी बातें हैं और जीवन को उन्नतिशील बनाने के लिये अमरीका निरन्तर प्रयत्नशील रहा है और ऐसे प्रयत्नों की कुछ तस्वीर इस पुस्तक में मिलेगी।

रूस में बेगारी—लेखक—डेविड जे-डालिन। पृष्ठ २२७, मूल्य १॥)

Forced Labour in Russia का हिन्दी रूपान्तर यह पुस्तक है। पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि रूस में श्रमजीवी वर्ग से अतिरिक्त श्रम लिया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् उसकी मेहनत का जितना बदला (नकद पैसे या वस्तु के रूप में) दिया जाना चाहिये वह उसे नहीं मिलता। इसमें सन्देह नहीं कि अमरीका के प्रति व्यक्ति की आमदनी और वहाँ के श्रमजीवियों की आय रूस के इसी श्रेणी के व्यक्ति से अधिक है। जीवन का मापदण्ड भी अमरीका का ऊँचा है। लेकिन दोनों व्यवस्थाओं में सिद्धान्त और आदर्श का मौलिक अन्तर है। जिस दूरबीक्षण से अमरीका का लेखक रूस को देखता है या अमरीका जिस पैमाने से रूस के श्रम और उत्पादन की नाप करता है, उसमें दृष्टिकोण का भारी भेद है। अतः अमरीका की दृष्टि में जो रूस में बेगारी है, रूस की दृष्टि में वह उसके राष्ट्र-निर्माण का कार्य है। क्रांति के बाद रूस में आर्थिक निर्माण के जो कार्य हुए हैं, उसकी कुछ आलोचना इस पुस्तक में की गई है जो अमरीका का दृष्टिकोण समझने के लिये अच्छी सामग्री है।

डाक्टर जार्ज वाशिङ्गटन कार्वर—लेखक—शलैंब्राइम, जार्ज डी० लिपस्कूम। पृष्ठ १४२, मूल्य १॥)

अमरीका के नीग्रो जाति में पैदा हुए डाक्टर कार्वर के जीवन की दिलचस्प घटनाएँ इस पुस्तक में दी गई हैं। गुलामी में जन्म लेकर कठिनाई के जीवन में विद्योपार्जन करके जार्ज वाशिङ्गटन कार्वर ने अमरीका के कृषि और उद्योग की उन्नति में हाथ बटाया और नये अनुसन्धान किये, जिससे वह अमरीका का न केवल एक प्रमुख नागरिक ही बल्कि ऐतिहासिक स्मृति का व्यक्ति बन गया।

जैफरसन—लेखक एड्रीनकोच और विलियम पैडेन। पृष्ठ २५८, मूल्य १॥)

टामस जैफरसन अमरीका के एक प्रसिद्ध शिल्पकार, कृषक और विचारवान राजनीतिज्ञ के नाम से स्मरण किये जाते हैं। आधुनिक अमरीका के निर्माताओं में आपको उचित स्थान प्राप्त है। इस पुस्तक में आपकी जीवन-कथा और निबन्धों का परिचय मिलेगा।

उजाले में अँधेरा—लेखक—आर्थर कास्लर। पृष्ठ १५०, मूल्य १॥)

सन् १९३७ की रूस की शुद्धि (purge) एक सनसनीपूर्ण राजनैतिक घटना है, जिसमें रूसी क्रान्ति के कितने ही सच्चे नेताओं को फाँसी पर लटकाया गया। दुनिया में इस पर दो विरोधी रुख हैं। एक रुख यह है कि रूस की नई व्यवस्था को उलटने का षड्यन्त्र करने वालों के साथ यही व्यवहार उचित था। दूसरा रुख इस कार्य को नृशंस काण्ड, स्तालिन का फौलादी पञ्जा आदि नामों से कहता है। प्रस्तुत पुस्तक इस दूसरे दृष्टिकोण को प्रगट करती है। इसमें काल्पनिक पात्रों द्वारा रूस के उस न्याय-विधान (दण्ड) का चित्रण किया गया है। किन कठोर उपायों द्वारा अभियुक्तों से अपराध स्वीकार कराया गया। पुस्तक उपन्यास रूप में लिखी गई है और लेखनी का असर दिल और दिमाग पर होता है।

नई निर्भीक योजना—लेखक—विलर्ड आर० एस्पी पृष्ठ २४५, मूल्य १॥)

कम्यूनिज्म की रोक के लिए गत महासमर के बाद संयुक्त राज्य अमरीका की ओर से जो प्रयत्न किए गए हैं, उनमें अमरीका की पूँजी और विपुल साधनों का उपयोग संसार के देशों की सहायता करने में लगाया जा रहा है। संयुक्त-राष्ट्र-सङ्घ, मार्शल योजना, अटलांटिक देशों का सङ्गठन इन तीन साधनों का उपयोग करके अमरीका का चतुर्थ तथा विश्व के पिछड़े हुए और कम उन्नतिशील देशों को विकास के लिए साधन जुटाना है। यही नई निर्भीक योजना है जिसे चतुर्थ लक्ष्य योजना भी कहा गया है। इसके निर्माता भी अमरीका के भूतपूर्व प्रेसीडेन्ट ट्रूमेन हैं। प्रश्न यह है कि अमरीका की पूँजी के खतरे को देखते हुए भी क्या उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता? भारत में यही प्रश्न आज की राजनीति में सबसे अधिक विवादास्पद हो रहा है। नई निर्भीक योजना में अमरीका के धनिकों की व्यक्तिगत पूँजी भी जिसके प्रसार के लिए अब देश में यथेष्ट स्थान नहीं रहा है, विदेशों में भेजी जायगी। भारत में इसका प्रयोग हो रहा है। इस पुस्तक में इसी विषय की चर्चा है और विद्वान लेखक ने संयम पूर्वक दलीलों का सहारा लेकर अमरीका की योजना को विश्व के लिये महान उपयोगी तथा कम्यूनिज्म के खतरे से बचने का एक अचूक उपाय बतलाया है। राजनीति के विद्यार्थी इस पुस्तक को पढ़ कर लाभ उठावेंगे।

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचनात्मक पत्रों में सर्व-श्रेष्ठ

साहित्य-सन्देश आगरा—सन् १९५१-५२ की फाइल

की

कुछ ही प्रतियाँ शेष हैं

साहित्य-सन्देश के गत वर्ष की पूरी फाइल आलोचना विशेषाङ्क सहित उपलब्ध हैं, फाइलों के शीघ्र समाप्त होने की आशा है।

विषय सूची मुफ्त मँगायें। मूल्य ५), पोस्टेज १।=)

मिलने का पता—

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

४, गांधी रोड, आगरा।

(यहाँ से काटिये)

—यहाँ से काटिये—

पीछे [illegible] में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड

नाम .....

पता .....

ग्राहक सं० .....

१—माली—रवीन्द्रनाथ उपन्यास १॥)
२—अपनी दुनिया—,, ,, २)
३—बहता पानी—गिरजाप्रसाद शुक्ल ,, ३॥)
४—माता पिता सुद एक समस्या—अनु. संतोषकुमार ३)
५—हृदय की ज्वाला—कु० प्रभा० सिन्हा ,, ३)
६—रचना दर्श— लेख २)
७—आवश्यकता और लेख—रघुवीरशरण मित्र २)
८—प्यार के क्षण—श्री इन्दु कविता १॥)
९—जीवन सङ्गीत—मिलिन्द ,, ४)
१०—यात्रा के पन्ने—राहुल यात्रा ६)
११—माओ के देश में—राम आसरे ,, १)
१२—केवड़े का फूल—श्री इन्दु कहानी १॥)
१३—जब आकाश भी रो पड़ा—राजबहादुरसिंह ,, २॥)
१४—हिन्दुस्तानी संस्कृति—जङ्गबहादुरसिंह ,, २)
१५—फाँसी—रघुवीरशरण मित्र राजनीति ३)
१६—विश्व शान्ति के उपाय—पॉल हॉफ मैन ,, १॥)
१७—बुद्ध मीमांसा—विश्वनाथप्रसाद मिश्र ३)

नोट—जो पुस्तक आप न लेना चाहें उसे काट दें।

नियम पीछे देखें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. 268. JUNE, 1953. LICENSE NO. 16.
Sahitya Sandesh, Agra. Licensed to post without Prepayment.

नये वर्ष की फाइल

साहित्य सन्देश आगरा की जुलाई सन् ५२ से जून सन् ५३ तक की फाइल

कहानी विशेषाङ्क सहित

तैयार हो रही है

'साहित्य-सन्देश' के सर्वोत्तम विशेषाङ्क 'कहानी अङ्क' सहित पूरे वर्ष के अङ्क आपको इसमें मिलेंगे। शीघ्र आर्डर भेज कर अपनी प्रति सुरक्षित करालें।

मूल्य ५), पोस्टेज अतिरिक्त।

मिलने का पता—साहित्य सन्देश कार्यालय,

४, गांधी रोड, आगरा।

Postage will be Paid by Addressee

BUSINESS REPLY CARD

No Postage Stamp necessary If Posted in India

AGRA G. P. O.
Permit No 1136

Book Post

To.

श्री सञ्चालक,

साहित्य-रत्न-भण्डार,

४, गांधी मार्ग,

आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri